Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य

डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य

लेखक

डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल

[एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०]

प्रो० रीडर, हिन्दी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
0-C1/142

103922

R
0-C1/142 पुस्तकालय 103922
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
विषय संख्या ——— आगत नं० ———
लेखक शुक्ल, श्यामसुंदर
शीर्षक चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
0 ८२
१५२

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

103922

वर्ग संख्या..... आगत संख्या.....

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ धर्मपाल जी (कुलपति, गुरुकुल
काँगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार) को
सप्रेम भेंट ।

श्याम सुन्दर शुक्ल
18.6.97

081,152
103922

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० धर्मपाल, कुलपति द्वारा
प्रदत्त पुस्तक संग्रह

राधास्वामी सम्प्रदाय और उसका साहित्य

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

103922

लेखक
डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल
[एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०]
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक

श्री प्रेमस्वरूप

विरक्त वैष्णव चरणदासीय

शुक भवन, मोहल्ला–हुसायत

वृन्दावन (मथुरा), उत्तर प्रदेश

R
0-29
942

संस्करण - 1995

© लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : 450 रुपये (चार सौ पचास रुपये)

प्राप्तिस्थान :

कला-प्रकाशन

बी० 33/33 ए–1, न्यू साकेत कालोनी

बी० एच० यू० – वाराणसी–5

2 2 1 0 0 5

मुद्रक

मनीष प्रिन्टिंग प्रेस

न्यू साकेत कालोनी, बी० एच० यू०

वाराणसी - 221 005, उ० प्र०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पण

महामना पं० मदनमोहन मालवीय की १२५वीं
जयन्ती के अवसर पर उनकी पावन स्मृति को
हार्दिक श्रद्धा-भक्ति एवं आभार सहित

श्यामसुन्दर शुक्ल
हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमुख

श्री शुक (चरणदासी) सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी श्री श्यामचरणदासजी परमभागवत श्री शुकदेवजी महाराज के शिष्य थे और उन्होंने श्री शुकदेवजी महाराज से सुकताल पर दीक्षा लेकर भक्ति के प्रचार-प्रसार का कार्य उनके निर्देशानुसार प्रारम्भ किया था। श्री स्वामी श्यामचरणदासजी के हृदय में श्री शुकदेवजी का निवास था और उनकी अन्तःप्रेरणा से ही इनमें ज्ञान का उदय हुआ था। श्रीमद्भागवत के प्रवक्ता स्वयं श्री शुकदेवजी थे तथा स्वामी श्री श्यामचरणजी को श्रीमद्भागवत का स्वतःज्ञान अन्तर्दृष्टि द्वारा प्राप्त हुआ था। श्री श्यामचरणदास जी द्वारा विरचित २१ ग्रन्थों का संग्रह 'भक्तिसागर' पूर्णतः श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तों पर आधारित है और कहीं-कहीं श्रीमद्भागवत के प्रसङ्गों का इसमें सरल-सुबोध हिन्दी-काव्य में अनुवाद भी किया गया है। अतः 'भक्तिसागर' एवं 'श्रीमद्भागवत' में यत्र-तत्र पूर्णतया साम्य परिलक्षित होता है।

'भक्तिसागर' में साध्य ब्रह्म, साधक जीव तथा साधन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्ति एवं शास्त्रोक्त कर्मों का पद-पद पर वर्णन है, जिसको समझाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रसङ्गों की प्रतिष्ठा की गयी है और यही सिद्धान्त 'श्रीमद्भागवत' में भी वर्णित है। सर्वप्रथम उपास्य का सूत्ररूप से निम्न पंक्तियों में स्मरण करते हैं :

जय जय ब्रह्म अचल अविनाशी, आपन ही सब ज्योति प्रकाशी।
जय जय अलख निरंजन देवा, ऋषि मुनि शारद लहैं न भेवा॥
जय जय आदि पुरुष जगदीश, हर्षित तोहि नवाऊँ शीश।
जय जय जगपति सिरजनहारा, व्यापि रह्यो जीवजन्तु मँझारा॥
जय जय भूमि भार परहारी, प्रगट होत सन्तन हितकारी।
जय जय बपुधारी चौबीस, लीला कारण त्रिभुवन ईश॥
जय जय कृष्ण मनोहर गाता, नैन विशाल प्रेम के दाता।
जय जय भगतबछल भगवान, व्याधि कटत हैं जिनके ध्यान॥
जय जय निरगुण सरगुण रूप, नाना भाँती अधिक अनूप।

उपरोक्त मंगलाचरण में वर्णित सिद्धान्त भागवत के प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय के २२-३३ वें श्लोक में निर्बाध रूप से देखा जा सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुति :

तू जग के करतार तेरी कहा अस्तुति कीजै ।
तू ही एक अनेक भयो है अपनी इच्छा धार ।।
तू ही सिरजै तू ही पालै तू ही करै संहार ।
जित देखूँ तित तू ही तू है तेरा रूप अपार ।।
तू ही राम, नारायण तू ही तू ही कृष्ण मुरार ।
साधों की रक्षा के कारण युग युग ले औतार ।।
तू ही आदि अरु मध्य तुही है अन्त तेरा उजियार ।
दानव देव तुही सूँ प्रगटे तीन लोक विस्तार ।।
जल थल में व्यापक है तू ही घट घट बोलनहार ।
तो बिन और कौन है ऐसो जासों करौं पुकार ।।
तू ही चतुर शिरोमणि है प्रभु तूही पतित उधार ।
चरणदास शुकदेव तुही है जीवन प्राण अधार ।।

उपरोक्त पद में उपास्य ब्रह्म का अद्वैतस्वरूप वर्णित है, जिसका निरूपण श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के १० वें अध्याय के २६-३७ वें श्लोकों में स्पष्ट है — 'बालेन-ऋषेरासीदनुग्रहान्' ।

'अमरलोक अखण्डधाम' नामक ग्रंथ में भगवान श्रीकृष्ण का त्रिपाद विभूतिस्थ नित्य गोलोक का वर्णन है जिसको श्रीमहाराज ने 'अमरलोक' के नाम से सम्बोधित किया है :

अब सुन अमरलोक की बानी, त्रैगुण रहित परम सुखदानी ।
तेजपुंज के ऊपर राजै, अहं विराट सो बाहर गाजै ।।
ताको ज्योति कहत नरलोई, तेजपुंज कहियत है सोई ।
सूरज मण्डल ताहि बतावै, योगी योग युक्ति सों पावै ।।
सूरज मण्डल जैहैं चीरा, वा लोके कोई पैहैं वीरा ।
कोटि भानु को सो उजियारो, तेजपुंज को रूप विचारो ।।
तीन लोक सों बाहर होई, सात भुवन सों बाहर सोई ।
ताके ऊपर अविचल लोका, पाप पुण्य दुःख सुख नहिं शोका ।।
काल न ज्वाल अवधि नहिं होई, रणजीतदास जहँ सुरति समोई ।
महा अगोचर गुप्त सों गुप्ता, जहाँ विराजत हैं भगवन्ता ।।
अमरलोक निज लोक कहावै, चौथा पद निर्वाण बतावै ।
जो कोऊ जाय बहुरि नहि आवै, आवागमन सकल बिसरावै ।।

—(भक्तिसागर : पृ० १५–१९)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त प्रसंग में वर्णित अमरलोक सम्बन्धित तथ्य श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध, अध्याय ९ के श्लोक ९ से १८ तक में तथा १० वें स्कन्ध, अध्याय १४ के ११ वें श्लोक में द्रष्टव्य हैं।

बीज और जगत् के विषय में भी भक्तिसागर में बड़ा अनुपम वर्णन हमें देखने को प्राप्त होता है :

आप ब्रह्म माया भयो, ज्यों जल पाला होय।
पाला गलि पानी भयो, ऐसे नाहीं दोय॥
झूंठी माया को कहै, ज्ञानी पण्डित लोय।
भर्म भूल साँची लगे, समझै साँच न होय॥
जाको माया कहत है, सो तू नैकु निकास।
जैसे हींग कपूर की, नैक जुदी कर बास॥
जल समान तो ब्रह्म है, माया लहर समान।
लहर सबै वह नीर है, लहर कहै अज्ञान॥

—(भक्तिसागर : पृ० ३५७–३५८)

ब्रह्म बिना खाली नहीं, सरसो सम कहुँ ठौर।
स्वपनों सो जग जानिये, स्वप्न भयो तन मोर॥
शुद्ध ब्रह्म है रैन सम, जगत दिवाली दीव।
ज्यों तरंग जल में उठै, ब्रह्म बीच ये जीव॥
पार न जाको पाइये, पार परै नहिं चीन।
ऐसे सिन्धु अगाह में, जगत जानिये मीन॥
ब्रह्म बीच ये जीव सब, फिरत रहत आधीन।
जैसे सागर सिन्धु में, नाना रूपी मीन॥

—(भक्तिसागर : पृ० ३६३)

उपरोक्त उदाहरणों में वर्णित जीव और जगत् के विषय में श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक में भक्तिसागर की साम्यता हमें देखने को मिलती है एवं तृतीय स्कन्ध के पंचम अध्याय में २३ से २४ वें श्लोक तक में ऐसे उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

उपरोक्त उपास्य तत्व के साक्षात्कार के लिए कर्म, उपासना, वैराग्य और ज्ञान साधन रूप में बतलाये गये हैं, जो निम्न प्रकार समझाये गये हैं :

तन मन साधे साधु सो, वचन साधि जो लेय।
उज्ज्वल करणी के सहित, रामभक्ति चित देय॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिन करणी थोथी सब बातें, जैसे बिन चंदा की रातें ।
ताते समुझि करो तुम करणी, बिन बोये नहिं उपजै धरणी ।।
कीकर नींव बुवे सोई पावै, अरु मेवा बोवे सोई खावै ।

श्रीमद्भागवत के ११ वें स्कन्ध के तीसरे अध्याय का ६, १८, तथा ४३ वाँ श्लोक कर्म के संबन्ध में उपरोक्त व्याख्या करता है ।

उपासना :

उपासना का वर्णन 'भक्तिपदार्थ' नामक ग्रंथ में मुख्यरूप से किया गया है जिसके विविध अंग निम्न प्रकार हैं :

गुरुभक्ति, चरित्र-शुद्धि, साधु-सङ्ग, सत्सङ्ग, भगवान के गुणों का चिन्तन, नवधा एवं प्रेमा-भक्ति :

गुरुभक्ति :

हरि-सेवा सोलह बरस, गुरु-सेवा पल चार ।
तो भी नहीं बराबरी, वेदन कियो विचार ।।
हरि रूठे कुछ डर नहिं, तू भी दे छिटकाय ।
गुरु को राखो शीश पर, सब विधि करें सहाय ।।

—(भक्तिसागर : पृ० १८८, १९४)

चरित्र-शुद्धि :

भक्तिमान निर्मल दशा, सन्तोषी निर्वास ।
मन राखै नवधा विषै, और न दूजी आस ।।
दयावान दाता गुण पूरे, तेज धारणा वचनो शूरें ।।
मुक्ति कामना फल नहिं चाहै, रिद्धि सिद्धि अरु त्यागै लाहै ।
हानि लाभ जिनके नहिं टोटा, बैरी मित्र खरा नहिं खोटा ।।
मान अपमान कछू नहिं तिनके, दुख-सुख एक बराबर जिनके ।
शुभ अरु अशुभ कछू नहिं जानें, राव रंक को ना पहिचानें ।।
कंचन कांच बराबर देखें, जम व्यौहार कछू नहिं लेखें ।
हार जीत नहिं वाद विवादा, सदा पवित्र और समझ अगाधा ।।
हरष शोक जिनके नहिं कबहीं, लख चौरासी प्यारें सबहीं ।
हिंसा अकस भाव नहिं दूजा, सब जीवन की राखें पूजा ।।

—(भक्तिसागर : पृ० १९६)

उपरोक्त प्रसंग श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के तृतीय अध्याय के २१ से लेकर ३१ वें श्लोकों में द्रष्टव्य है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधु संग :

साधुन की सेवा करो चरणदास चित लाय ।
जनम मरण बन्धन कटे जगत व्याधि मिटि जाय ।।

साधु संग बिन गति नहिं होनी, क्या तपसी अरु क्या भया मौनी ।
चरणदास भक्तों की शरणा, ह्वाँई जीवन ह्वाँई मरणा ।।

प्रभु अपने मुखसों कही, साधू मेरी देह ।
उनके चरणन को मुझे, प्यारी लागे खेह ।।
सब तजकर मोकों भजैं, मोही सेती प्रीति ।
मैं भी उनके कर बिक्यों, यही जु मेरी रीति ।।
साधु हमारी आत्मा, सबसे प्यारी मोहि ।
नारद निश्चय कीजिए साँच कहत हौं तोहि ।।
जिनके कारण मैं रच्यो, अद्भुत यह संसार ।
उनही की इच्छा धरूँ, हर युग में अवतार ।।
प्रेमी की ऋणियाँ रहौं, यही हमारी सूल ।
चार मुक्ति दई ब्याज में, दे न सकूँ अब मूल ।।
सर्वस दीन्हों भक्त को, देख हमारो नेह ।
निर्गुण सों सर्गुण भयो, धरी पशू की देह ।।
मोको वश कियो जो चहैं, भक्तन की करि सेव ।
उनमें ह्वै कर मैं मिलूँ, करूँ बहुत ही हेव ।।

उपरोक्त 'साधु-संग' नामक प्रसंग श्रीमद्भागवत के ७ वें स्कन्ध के १७ वें अध्याय के १९ से २२ वें तक एवं ५४ वें श्लोक में वर्णित है ।

सत्संग :

तप के वर्ष हजारहू सत्संगति घड़ि एक ।
तो भी नही बराबरी, शुकदेव जु कियो विवेक ।।
जब जब दर्शन राम दें, तब माँगौं सत्संग ।
चाहौं पदवी भक्त की, चढ़ै सो नवधा रंग ।।
जैसे काठ लोह को तारै, ऐसे संगति मिल भया पारै ।
जैसे पारस लोहा लागा, तो वह कंचन भया सुभागा ।।
ढाका पात पान के साथा, संगति मिलि गयौ भूपन हाथा ।
ज्यों गोविन्द संग गाई कुबरी, सूवा के संग गणिका उबरी ।।
हरि भगतन में दीजै बासा, जनम जनम माँगै चरणदासा ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त प्रसंग का वर्णन श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध के २५ वें अध्याय के २६ वें श्लोक में द्रष्टव्य है ।

भगवान के गुणों का चिन्तन :

बिन होनी हरि करि सकै, होनी देहिं मिटाय ।
चरणदास कर भक्ति ही, आपा देहु उठाय ॥

हरि चितवै सो साँची बाता, औरन सो नहिं टूटे पाता ।
जो कुछ चाहा सो उन करई, अब चाहै सो भी सब सरई ॥
अग्नि माहिं तृण घास बचावै, घट में सगरो सिन्धु समावै ।
पावक राखै पानी माहीं, जल राखै जहाँ धरती नाहीं ॥
गिरिवर सागर माहिं तरावै, चाहै हलका काठ डुबावै ।
सुई के नाके हस्ती काढ़ै, मूल पात बिन लकड़ी बाढ़ै ॥
नर की छाती दूध निकासै, उपजावै वह खेत अकासै ।
चाहै गूँगे वेद पढ़ावै, अँधरे आँखें खोलि दिखावै ॥
सब लायक सामरथ गुसाँईं, चरणदास शुकदेव बताई ।

प्रभु चाहै सोई करै, ताकूँ टोके कौन ।
देखि देखि अचरज रहा, चरणदास गहि मौन ॥

—(भक्तिसागर : पृ० २००–२०१)

नवधा-भक्ति :

नवधा-भक्ति सँभारि, अङ्ग नौ जानि लै ।
शरवण चितवन और, कीर्त्तन मान ले ॥
सुमिरन वन्दन ध्यान, और पूजा करो ।
प्रभु सों प्रीति लगाय, सुरति चरणन धरो ॥
होकर दासहिं भाव, साधु सङ्गत रलो ।
भक्तन की कर सेव, यही मत है भलो ॥
आपा अर्पण देय, धैर्य दृढ़ता गहो ।
क्षमा शील सन्तोष, दया धारे रहो ॥
यह जो मैंने कहा, वेद का फूल है ।
योग, ज्ञान, वैराग्य, सबन का मूल है ॥
प्रेम-भक्ति का तात, ताप तीनों नसैं ।
अर्थ धर्म काम मोक्ष, सकल तामें बसैं ॥

—(भक्तिसागर : पृ० २०८)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त प्रसंग श्रीमद्भागवत के सातवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय के २३-२४ वें श्लोक में विस्तृत रूप से वर्णित है।

प्रेमा-भक्ति :

नवौं अंग के साधते, उपजे प्रेम अनूप।
रनजीता यों जानिये, सब धर्मन का भूप॥
सब मत अधिको प्रेम बतावैं, योग युगत सूँ बड़ा दिखावैं।
प्रेमही सूँ उपजै वैराग, प्रेमहि सूँ उपजै मन त्याग॥
प्रेम-भक्ति सूँ उपजै ज्ञाना, होय चाँदना मिटै अज्ञाना।
दुर्लभ प्रेम जू हाथ न आवै, हरि किरपा करिदें तो पावै॥

प्रेम बराबर योग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम-भक्ति बिन साधबो, सब ही थोथा ध्यान॥
प्रेम छुटावै जगत कूँ, प्रेम मिलावै राम।
प्रेम करै गति और ही, लै पहुचै हरिधाम॥

—(भक्तिसागर : पृ० २०९–२१०)

उपरोक्त प्रसंग श्रीमद्भागवत के सातवें स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय के ३९ से ४१ वें श्लोक में प्राप्त होते हैं।

वैसे तो श्रीमद्भागवत में ज्ञान और वैराग्य की विशिष्टता है पर 'भक्ति-सागर' और श्रीमद्भागवत को साम्य की दृष्टि से देखा जाए तो ये दोनों ग्रन्थ अनूठे ही कहे जा सकते हैं।

ब्रह्मज्ञान अर्थात ब्रह्मात्मैक्यबोध में स्थित होने की महिमा के साथ-साथ उनकी साधना की दुरूहता का भी भक्तिसागर में वर्णन किया गया है तथा शुष्क ज्ञान (भक्तिरहित ज्ञान) की निन्दा भी की गयी है। श्रीचरणदासजी महाराज ने भक्तिसहित ज्ञान को ही लक्ष्य रखा है। यह सिद्धांत निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है :

ज्ञान दशा आवन कठिन, बिरला जानै कोय।
ज्ञान दशा जब जानिये, जीवत मृत्यक होय॥

मृतक अवस्था जीवत आवै, करम रहित वह स्थिर गति पावै।
तब कोई मिन्तर बैरी नाहीं, पाप पुण्य की परै न छाँहीं॥
हरष शोक सम होजा दोऊ, रक्षा करो कि मारो कोऊ।
कोई हाथ में भोजन देजा, कोई छीन कर यों ही लेजा॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान दशा ऐसे करि गाई, चरणदास शुकदेव बताई।
वाचक ज्ञानी बहुतक देखे, लक्ष्य ज्ञानी कोई लेखे लेखें ॥
ज्ञानी बिगड़ै विषयी होई, कहै एक और चाले दोई।
ज्ञान कथै अरु वाद बढ़ावे, रहन गहन का भेद न पावे ॥
ब्रह्म वृत्ति का आवन भारी, चरणदास शुकदेव विचारी।
उन्तीसों लक्षण लिये, भक्ति सहित हो ज्ञान।
ज्ञान दशा जब आय है, करै आतमा ध्यान ॥

—(भक्तिसागर : पृ० २०७)

उपरोक्त प्रसंग श्रीमद्भागवत के १०वें स्कन्ध के १४वें अध्याय के ४ से लेकर ८वें श्लोक तक में वर्णित है।

वैराग्य की दृढ़ता के लिए पद-पद पर अनेक प्रसंग हैं जिनमें 'मनविरक्त-करण गुटकासार' नामक प्रसंग मुख्य है। इसमें अवधूत दत्तात्रेयजी और राजा यदु के संवाद में २४ गुरुओं की कथा जो श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित की गयी है, उसका वर्णन है। वह निम्न प्रकार है :

बोले दत्तात्रेय जब, सुनि हो भूप विशाल।
चौबीस परीक्षा गुरु किये, तासों भये निहाल ॥
पृथ्वी पवन आकाश है, और अग्नि शशि भान।
कपोत गुरु अजगर लखो, और सिन्धु को जान ॥
और सिन्धु को जान, पतंगा भौंरा कहिये।
माँखी हाथी मृगा मीन, अरु पिंगला लहिये ॥
चील्ह बाल कन्या कहूँ, तीर बनावन हार।
साँप माकरी भृंग जो, चौबीसों उरधार ॥

उपरोक्त प्रसंग श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के सप्तम अध्याय के ३३-३४ वें श्लोक में वर्णित है।

अन्तःकरण शुद्धि के लिए अष्टांगयोग और हठयोग का भी निरूपण अपनी जगह एक ही है, जिसका दिग्दर्शन सूत्र रूप से नीचे किया गया है। 'भक्तिसागर' में इसका सविस्तार वर्णन ६६ पृष्ठों में है।

यम के अंग प्रथम सुन लीजै, दूजे नियम कहूँ चित दीजै।
तीजे आसन हित करि साधो, प्राणायाम चौथै आराधो ॥
प्रत्याहार पाँचवाँ जानो, छठें धारणा को पहिचानो।
सतवें ध्यान मिटै सब बाधा, कहूँ आठवाँ अंग समाधा ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त प्रसंग में वर्णित अष्टांगयोग सम्बन्धित तथ्य श्रीमद्भागवत के ११वें स्कन्ध के १९वें अध्याय के ३५वें श्लोक में द्रष्टव्य है।

अतः उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'भक्तिसागर' और 'श्रीमद्भागवत' में सैद्धांतिक साम्य है। इस पुस्तक (चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य) में इसके लेखक डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल ने इस तथ्य को भली-भाँति समझ कर ही शुक संप्रदाय की साधना के सैद्धान्तिक निरूपण की चेष्टा की है, यह प्रसन्नता की बात है। श्री शुक सम्प्रदाय के साहित्य, सिद्धान्त एवं प्रचार-प्रसार का पूरा-पूरा विवरण इस ग्रंथ के माध्यम से देकर शुक्ल जी ने हमारा चिर संचित स्वप्न साकार कर दिया है। इसके लिए ये हम सबकी बधाई के पात्र हैं। इस महनीय ग्रंथ के प्रकाशन की आर्थिक व्यवस्था करके मैंने भी अपना कर्त्तव्य पालन ही किया है, इससे अधिक श्रेय मैं नहीं लेना चाहता। आशा है कि इस पुस्तक के माध्यम से इस सम्प्रदाय से संबद्ध संतों, महन्तों एवं सद्गृहस्थों का ज्ञानवर्द्धन तो होगा ही साथ ही हिन्दी साहित्य के अनुरागियों, विद्वानों तथा अनुसंधित्सु जनों का भी बड़ा हित होगा।

विनीत

प्रेमस्वरूप

विरक्त वैष्णव चरणदासीय

शुक भवन, दुसायत

वृन्दावन (मथुरा)

पौष, कृष्ण, नवमी

सं० २०४४ वि०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोवाक्

आज से लगभग २० वर्ष पूर्व जब मैं दिल्ली के मुहल्ला दस्सान (बल्ली मारान) निवासी अपने एक शुभचिंतक श्री सत्यदेव त्रिपाठी (सेवा निवृत्त प्रधानाचार्य) से मिलने के लिये उनके आवास पर गया था, बात-बात में उसी मुहल्ले के निवासी महन्त गङ्गादासजी की चर्चा चल पड़ी। उनसे मिलने की मेरी इच्छा को देखते हुए उन्होंने सन्त चरणदास जी की शिष्या सुश्री सहजोबाई की आचार्य गद्दी के तत्कालीन प्रबुद्ध महंत (अब स्वर्गीय) श्री गङ्गादास से मेरी भेंट करा दी। महन्त जी के सत्सङ्ग से मुझे चरणदास जी और उनके सम्प्रदाय के साहित्य के गहन अध्ययन की प्रेरणा मिली। उन्होंने चरणदासी सम्प्रदाय के कुछ प्रकाशित ग्रंथ भी मुझे दिये। धीरे-धीरे मेरी रुचि इस ओर अधिकाधिक बढ़ती गयी। मैं बहुधा वाराणसी से दिल्ली जाने का कार्यक्रम बनाकर उनके सत्सङ्ग से ज्ञानवर्द्धन करता रहा। महन्त गङ्गादास जी के यहाँ ही एक सर्वथा फटेहाल और सीधे-सादे वयोवृद्ध सत्पुरुष श्री लक्खूराम गुप्त (स्व०) से मेरी भेंट हुई। गुप्त जी बहुत दिनों तक इस सम्प्रदाय के मुख्य पुस्तकालय से संबद्ध रह चुके थे। उन्हें चरणदासी सम्प्रदाय के इतिहास और साहित्य का आश्चर्यजनक ज्ञान था। उन्होंने मुझे दिल्ली-स्थित तीनों आचार्य गद्दियों (स्वामी रामरूपजी, गोसाईं जुगतानन्द जी और सहजोबाई जी की गद्दियों) के तत्कालीन महन्तों और अन्य चरणदासी विद्वानों से मिलाया। उन्हीं की प्रेरणा से मैं जयपुर और वृन्दावन के महन्तों और आचार्यों से भी मिला। प्रायः सभी लोगों ने मेरा उत्साहवर्द्धन किया और उनके पास या उनकी जानकारी में जितनी भी पाण्डुलिपियाँ थीं, उन्हें देखने और सम्यक् अध्ययन करने की उन्होंने सुविधा प्रदान की। प्रायः सभी आचार्यों और महन्तों की इच्छा थी कि उनके सम्प्रदाय का समग्र इतिहास सिद्धान्त और साहित्य-विवेचन सहित प्रकाश में आना चाहिये। इस समय जब कि यह कार्य पूर्ण हुआ, अपनी प्रेरणा और सहायता के फलस्वरूप मूर्त्तरूप इस ग्रंथ को देख पाने के पूर्व ही महंत गङ्गादास जी, श्री लक्खूराम गुप्त तथा वृन्दावन के विरक्त एवं विद्वान् महात्मा श्री रूपमाधुरीशरण जी दिवंगत हो चुके हैं। उन महापुरुषों की स्मृति को मेरा प्रणाम निवेदित है।

इन लोगों ने स्व० डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित द्वारा डी० लिट्० की उपाधि हेतु लिखित 'सन्त चरनदास' नामक ग्रंथ में समाविष्ट अनेक तथ्यों की ओर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा ध्यान आकर्षित किया और उन्हें त्रुटिपूर्ण एवं भ्रामक बताकर स्व० दीक्षित जी के प्रति अपना रोष प्रकट किया। साथ ही इन लोगों ने यह भी इच्छा व्यक्त की कि केवल चरणदास जी पर ही नहीं बल्कि पूरे सम्प्रदाय पर किसी पुस्तक की रचना होनी चाहिए परन्तु उसमें वे भूलें न हों, जो दीक्षित जी के ग्रन्थ में हुई हैं। मैंने वचन दिया कि उनकी भावनाओं का आदर करते हुए उनके संप्रदाय का एक सर्वांगपूर्ण इतिहास मैं प्रस्तुत करूँगा। मैं जिस समय इस संकल्प को पूरा करने में जुटा, मेरे मन में इस कृति के आधार पर कोई उपाधि प्राप्त करने की कल्पना नहीं थी। अस्तु स्वान्तःसुखाय ही मैंने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सामग्री संकलन, अध्ययन एवं मनन का कार्य प्रारम्भ किया। इतना यहाँ अवश्य कहना चाहूँगा कि अब तक अंग्रेजी और हिन्दी के विद्वानों द्वारा चरणदास जी और उनके संप्रदाय के विषय में जो कुछ भी कहा या लिखा गया है, उससे मेरे निष्कर्ष प्रभावित नहीं हैं। मेरे मन में कबीर साहब की यह उक्ति बराबर गूँजती रही है—

पण्डित मुल्ला जो कह दीआ।
छाँड़ि दिया हम कछू न लीआ॥

अस्तु, 'चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य' शीर्षक इस ग्रंथ में चरणदास जी के साथ उनके १०८ शिष्यों और इन शिष्यों की शिष्य परम्परा में हुए सैकड़ों कवियों द्वारा रचित साहित्य के अध्ययन, अनुशीलन एवं मौलिक लेखन के उद्देश्य को ही प्रमुखता दी गयी है। पृष्ठभूमि के रूप में 'विषय प्रवेश' के अन्तर्गत इस सम्प्रदाय के युगीन परिप्रेक्ष्य को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए चरणदास जी और उनके सम्प्रदाय के संदर्भ से उसे जोड़कर आगे की भूमिका तैयार की गई है। सर्वाधिक कठिनाई प्रथम अध्याय की सामग्री के निर्धारण में हुई। यों तो चरणदास जी के तीन शिष्यों, यथा श्री रामरूप जी ने 'गुरुभक्ति प्रकाश' में, जोगजीत जी ने 'लीलासागर' में तथा जसराम उपगारी ने 'भक्त बावनी' में श्री चरणदास को ही चरित नायक बनाकर उनकी विस्तृत जीवनगाथा प्रस्तुत की है परन्तु फिर भी उनकी अतिरंजित वर्णन प्रणाली और आज के बुद्धिवादी युग के पाठकों की मान्यताओं में तादात्म्य स्थापित करते हुए ही उनका प्रारम्भिक जीवन परिचय लिखना आवश्यक था। साथ ही सन्त चरणदास जी के प्रति चरणदासी सम्प्रदाय के अनुयायियों में जो पूज्य एवं अतिमानवीय भाव है उसे भी ठेस न पहुँचे, इस पर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक था। इस सम्प्रदाय के विद्यमान आचार्यों को हिन्दी और अंग्रेजी में चरणदास जी के विषय में लिखने वालों के प्रति क्षुब्ध देखते हुए पूर्ववर्ती लेखकों द्वारा हुई भूलों (अर्थात् बहुत सी बातों को अतिशयोक्ति मानकर उन्हें संशोधित करके प्रस्तुत करने, तथ्यान्तर कर देने अथवा उनके उल्लेख मात्र से बचने की प्रवृत्ति) का निवारण अनिवार्य था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः सांप्रदायिक साहित्य में वर्णित चरणदास जी के अतिमानवीय स्वरूप तथा उनके बहुत से चमत्कारपूर्ण कार्यों को मात्र गिना कर ही आगे बढ़ने की योजना बनानी पड़ी। फिर भी मुझे डर है कि जहाँ विद्वद्वर्ग इस चरित्र-परिचय में अन्ध श्रद्धा या श्रद्धातिरेक और अतिरंजना आदि की झलक पायेगा वहीं चरणदासी महात्मा और प्रबुद्ध जन अनेक तथ्यों को छोड़ देने या संकेत मात्र कर देने का मुझे दोषी पायेंगे। मुझे विद्वानों का उतना भय नहीं है जितना सांप्रदायिक सन्तों, महन्तों एवं श्रद्धालु अनुयायियों का। इन्हीं उलझनों के बीच पड़कर मैं चरणदास जी के एक लोकविश्रुत समाजसुधारक एवं कवि के रूप से हटकर अपेक्षाकृत उनके योगसिद्ध व्यक्तित्व के अलोकसामान्य रूप की ओर ही अधिक झुकने को बाध्य हुआ हूँ। इतना अवश्य है कि सन्त चरणदास जी के शिष्यों एवं शिष्य परम्परा में हुए अन्यान्य कवियों का परिचय देते समय मैंने अधिकाधिक तथ्यपरक सामग्री देने का यथासम्भव प्रयास किया है। मुझे अपने अनवरत शोध, श्रम और अध्ययन से अब तक जितना कुछ प्राप्त हुआ है, उसे इस ग्रंथ में समाविष्ट करने का लोभ संवरण मैं नहीं कर पाया हूँ, इसलिए इस ग्रन्थ के विपुल विस्तार का मैं दोषी अवश्य कहा जा सकता हूँ।

चरणदास जी के जीवनवृत्त से सम्बद्ध प्रायः उन्हीं चमत्कारपूर्ण कार्यों को मैंने विशेष महत्व दिया है, जो इतिहाससिद्ध हैं, जैसे नादिरशाह के आक्रमण की भविष्यवाणी, मुहम्मदशाह रङ्गीले, जहाँदारशाह, शाह आलम द्वितीय और आलमगीर द्वितीय का चरणदास जी के आश्रम में आकर सत्सङ्ग करना तथा उन्हें भेंट आदि देना, कर्नाल और पानीपत के नवाबों से चरणदास जी की भेंट तथा उनसे उनका प्रभावित होना, जयपुरनरेश सवाई ईश्वरीसिंह तथा उनके अनुज (सवाई माधोसिंह के सुपुत्र) महाराज प्रतापसिंह को जयपुर जाकर अपने सत्सङ्ग का लाभ प्रदान करने तथा उनसे सम्मानित होने का वृत्त, अहमदशाह अब्दाली के दिल्ली पर आक्रमण तथा नगर की लूट के समय चरणदास जी के आश्रम को उसके सिपाहियों द्वारा अपने अत्याचारों से मुक्त छोड़ देने की मान्यता तथा ऐसे ही अन्य ऐतिहासिक घटनाओं से चरणदास जी की सम्बद्धता आदि के सम्बन्ध में स्वामी रामरूप जी के उल्लेख को ही मैंने विशेष प्रमाणिक माना है और उसे ही आधार बनाया है। उनकी जीवनगाथा के प्रसंङ्गों से जुड़े अन्य चमत्कारों का उल्लेख मैंने इसलिए आवश्यक माना है कि साम्प्रदायिक प्राचीन ग्रन्थों में इनका वर्णन अविच्छिन्न रूप से प्रायः अनेक उच्च कोटि के कवियों द्वारा किया गया है और उन्हें आज भी उसी रूप में स्वीकार किया जाता है।

यद्यपि चरणदासी गद्दियों की शिष्य परम्परा के वृत्त का साहित्यिक दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नहीं है परन्तु सम्प्रदाय के उत्कर्ष, विस्तार और इतिहास के प्रति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सम्प्रदाय के अनुयायियों में जो जिज्ञासा और गहरी रुचि है, उसकी इससे परितृप्ति हो सकती है। बहुत सी ऐसी गद्दियाँ हैं, जिनके वर्तमान महन्तों को अपनी ही गद्दी का पूर्ववृत्त ज्ञात नहीं है। जब वे अपनी गद्दी-सहित अपने सम्प्रदाय के लगभग २५० अन्य गद्दियों का इतिवृत्त इस ग्रंथ में देखेंगे तो स्वभावतः उन्हें प्रसन्नता होगी। इसी आशा से मेरे निवेदन पर विभिन्न गद्दियों के वर्तमान महन्तों ने अपनी नाद-वंश-परम्परा की सूचना मेरे पास भेजी थी। इन सूचनाओं के अतिरिक्त पिछले २० वर्षों में मेरे द्वारा विभिन्न केन्द्रों पर की गई यात्राओं के क्रम में बहुत सी सूचनाएँ संकलित हुई थीं। जहाँ मैं नहीं पहुँच पाया था या अब तक जहाँ के स्थान समाप्त हो गये हैं अथवा जहाँ से किसी कारणवश सूचनाएँ प्राप्त नहीं हुईं वहाँ की शिष्यपरम्परा स्थिर करने में मुझे दिल्ली की तीनों आचार्य गद्दियों में सुरक्षित बहियों और रोजनामचों से सहायता लेनी पड़ी। जहाँ-जहाँ के महंतों या शिष्य परम्परा की कड़ी ठीक से नहीं मिल पाई वहाँ विभिन्न सूत्रों से सूचना एकत्र करके या अनुमान के आधार पर ही शिष्य परम्परा का क्रम स्थिर करना पड़ा। विभिन्न चरणदासी गद्दियों द्वारा आरम्भ से आज तक अदालतों में यदि कभी कोई वाद या विवाद प्रस्तुत हुआ था तो उससे सम्बद्ध अभिलेखों को भी देखने का मैंने प्रयत्न किया है ताकि प्रामाणिक सामग्री-संकलन में आवश्यक सहायता मिल सके और इसमें मुझे आशातीत सफलता भी मिली। इस सम्प्रदाय की गद्दियों का इतिहास तैयार करने में मुझे बहुत अधिक समय, श्रम और साधन का नियोजन करना पड़ा। एक दृष्टि से इसे अनुत्पादक कार्य माना जा सकता है परन्तु मेरी मूल योजना ही इस सम्प्रदाय के साम्प्रदाकि चरित्र और इतिहास को प्रस्तुत करने की थी, अतः मुझे अपने इस कार्य से पूर्ण सन्तोष है। मेरे इस उपक्रम में उपयुक्त जानकारी के अभाव में यदि कोई बात छूट गई है या त्रुटिपूर्ण है तो मैं सम्बद्ध महात्माओं, महन्तों और विद्वानों से उस संबन्ध में ज्ञानवर्द्धन हेतु प्रार्थी हूँ। प्राचीन अभिलेखों में उल्लिखित गद्दियों के पते अब वही नहीं रह हैं क्योंकि विगत सौ-सवा सौ वर्षों में जिलों और प्रान्तों के परिसीमन और नामकरण में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। इनमें से कुछ स्थानों की स्थिति के सम्बन्ध में त्रुटि सम्भावित है। अतः इनको त्रुटिनिवारक सूचना स्वागतार्ह है।

इस शोध प्रबन्ध के शीर्षक में तीन मूलभूत प्रश्न समाहित हैं—(१) श्रीचरण दास और उनका सांप्रदायिक एवं साहित्यिक कृतित्व परिचय (२) चरणदासी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव, विकास और प्रचार-प्रसार तथा (३) चरणदासी सम्प्रदाय द्वारा प्रस्तुत साहित्य का लेखा-जोखा। इस सम्प्रदाय के साहित्य का सम्यक् तथा विस्तृत मूल्यांकन मेरे भविष्य में लिखे जाने वाले ग्रन्थ का मुख्य विषय होगा। इस पुस्तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तो तत्तद् कवियों के संक्षिप्त परिचय के साथ उनकी रचनाओं का केवल उल्लेख-परक विवेचन ही किया जा सका है। यहाँ इससे अधिक लिखने के अवकाश का अभाव होने के कारण मैं मनोवांछित विस्तार नहीं कर सका हूँ।

चरणदासजी के १०८ प्रमुख शिष्यों में से लगभग ८०-८५ के सम्बन्ध में विभिन्न सूत्रों से जितनी जानकारी प्राप्त हो सकी है उसे यहाँ प्रस्तुत कर देने के लोभ का संवरण मैं नहीं कर सका। फलतः इस प्रबन्ध के चार अध्याय (तृतीय, चतुर्थ पंचम और षष्ठ) केवल इन्हीं से सम्बद्ध सामग्री को प्रस्तुत करने में खप गये हैं। इनमें से अधिकांश की शिष्य-परम्परायें अभी भी चल रही हैं। अतः मैं उनकी दृष्टि में पक्षपात का दोषी नहीं बनना चाहता था। जिनके विषय में कोई जानकारी ही नहीं मिल सकी उनकी बात और है। श्री चरणदास के इन शिष्यों और उनकी गद्दियों की शिष्य-परंपराओं द्वारा रचित साहित्यिक कृतियों के सम्बन्ध में अपेक्षित सहायता जिन महानुभावों से प्राप्त हुई, उनमें सुश्री सहजोबाई की गद्दी के स्वर्गीय महन्त गङ्गादास जी (दिल्ली) के अतिरिक्त रामरूप जी की गद्दी के निवर्तमान महन्त प्रेमदास जी (दिल्ली), गोसाईं जुगतानन्द जी की गद्दी के महन्त प्रवीणदास जी (दिल्ली), सरसमाधुरीशरण जी की गद्दी (जयपुर) के वर्तमान महन्त श्री अलबेली माधुरीशरण जी, प्रबुद्ध चरणदासी महात्मा स्व० रूपमाधुरीशरण जी (वृन्दावन), प्रेमस्वरूप जी (जयपुर) तथा चरणदासी साहित्य और सिद्धांत के मर्मज्ञ श्री जगदीशदास राठौर का मैं विशेष ऋणी हूँ। इनकी अमूल्य सहायता के बिना यह कार्य असम्भव था।

सप्तम अध्याय में चरणदासी सम्प्रदाय (मूल नाम शुक सम्प्रदाय) की आचार-विचारगत विशिष्ट मान्यताओं का विवेचन इष्ट है। खेद की बात है कि इस श्रीमद्भागवतानुमोदित एवं ज्ञान, कर्म तथा योग से परिपुष्ट प्रेमा भक्तिमार्गी वैष्णव साधना सम्प्रदाय को स्व० डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित सहित श्री चरणदास के सम्बन्ध में लिखने वाले प्रायः सभी लेखकों ने निर्गुण सम्प्रदाय के अन्तर्गत माना है। डॉ० दीक्षित और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने चरणदास जी को सन्त कबीर की विचारधारा की कड़ी के रूप में बताया है तथा उनके सम्प्रदाय की साधना पद्धति को नानक, कबीर और दादू आदि सन्तों की साधना-परम्परा से प्रभावित सिद्ध किया है। केवल डॉ० अब्राहम ग्रियर्सन ही ऐसे विद्वान् रहे हैं जिन्होंने 'इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स' के भाग ३ में समाविष्ट 'चरणदासी संप्रदाय' शीर्षक अपने लेख में इसे वैष्णव संप्रदाय कहा है। फिर भी हिन्दी के विद्वानों एवं आचार्यों—विशेषतः डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० रामकुमार वर्मा, सर्वश्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', श्री गणेश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद द्विवेदी, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी और 'कल्याण' योगांक के संपादक आदि ने जार्ज ग्रियर्सन के विचारों का समर्थन नहीं किया। इस प्रकार गतानुगतिकता को अपनाकर हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक दिग्भ्रम में पड़े रहे। किसी ने चरणदास जी और उनके शिष्यों की रचनाओं को पढ़ने एवं यथार्थमूलक निष्कर्षों पर पहुँचने का प्रयास नहीं किया।

सर्वप्रथम डॉ० दीक्षित ने ही अपने शोधप्रबन्ध में चरणदास जी के 'भक्तिसागर', रामरूप जी के 'गुरुभक्तिप्रकाश' और सहजोबाई जी के 'सहज प्रकाश' को सम्यक् पढ़ने का प्रमाण दिया है तब भी वे कैसे यथार्थ का साक्षात्कार नहीं कर पाये, यह आश्चर्यजनक है। 'सन्तबानी संग्रह,' 'चरणदास जी की बानी'—(२ भाग), 'सहजोबाई जी की बानी' और दयाबाई जी कृत 'दयाबोध' आदि वेलवेडियर प्रेस (प्रयाग) से प्रकाशित रचनाओं की भूमिका लिखने वालों ने इन कवियों की कृतियों को 'सन्तबानी' और उनके सम्प्रदाय को निर्गुण सम्प्रदाय या ज्ञानमार्गी बताकर सुनियोजित ढंग से यह भ्रम फैलाया है।

तथ्य की बात यह है कि आलोच्य सम्प्रदाय के आराध्य राधाकृष्ण-युगल हैं। नवधा भक्ति और अष्टयाम वैधी पूजा इसका उपासना-सिद्धान्त है। वृन्दावन इसका धाम है, बरसाना इसका ग्राम है, श्रीमद्भागवत इसका आधार ग्रन्थ है, श्री चरण-दास से सम्बद्ध स्थान इसके तीर्थ हैं और दिल्ली स्थित मुख्य 'स्थल' (गद्दी) इस सम्प्रदाय का गुरुद्वारा है। इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने सम्प्रदाय को 'पंचम वैष्णवी साधना सम्प्रदाय' माना है। इनके मन्दिरों में वृन्दावनीय पूजा-अर्चा की पद्धति का पूर्णतः पालन होता है। वैष्णवों में मान्य सभी तीर्थ, व्रत, उत्सव, कर्म-काण्ड, बाह्याचार, वेश-भूषा, छापा-तिलक तथा अन्य विधि-निषेध इस सम्प्रदाय में भी स्वीकृत हैं। केवल पीतवस्त्र, श्री तिलक तथा अपने आचार्यों से सम्बद्ध वर्षोत्सव आदि कुछ ही बातें विशिष्ट हैं, जो शुक सम्प्रदाय तथा अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में भेदकता के प्रमाण हैं। इनकी भक्ति साधना नवधा भक्ति से भी आगे बढ़कर प्रेमाभक्ति तक पहुँचने का लक्ष्य रखती है।

अतः इस सम्प्रदाय की साधनागत मान्यताओं के निर्धारण में मैंने पुराने एवं वर्तमानकालीन चरणदासी आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा तत्सम्बन्धी विचारों को ही आधारभूत सामग्री के रूप में ग्रहण किया है। सिद्धान्त निरूपण में मैंने श्री रामसखी (चरणदास के शिष्य) कृत 'भक्तिरसमञ्जरी,' श्री जोगजीत कृत 'लीलासागर', रामरूप जी के 'गुरुभक्ति प्रकाश,' स्वामी सिद्धराम (रामरूप जी के शिष्य) के 'भक्ति सिद्धान्त ग्रन्थ', गो० जुगतानन्द के 'भक्ति प्रबोध,' गुरु छौना जी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के 'षटरूप मुक्ति', चरणदास जी कृत 'भक्तिसागर' (इसमें संकलित सभी ग्रन्थों सहित), श्री आतमराम इकंगी के 'सातिक सुभ लच्छन' और उनके प्रशिष्य श्रीगुरु-सरनदासकृत 'भक्तिसुधा निधि' तथा जैदास जी कृत 'भक्तिरतन पोथी' से विशेष सहायता प्राप्त की है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य जिन वर्तमानकालीन आचार्यों की कृतियों से मैं विशेष लाभान्वित हुआ हूँ, उनमें स्व० श्री सरसमाधुरीशरण, रूपमाधुरीशरण जी और श्री जुगलमाधुरीशरण की सिद्धान्त—विवेचक कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इस विषय में निष्कर्षतः कुछ लिखने के पूर्व वर्तमान युग के प्रसिद्ध चरणदासी आचार्य श्री प्रेमस्वरूप ब्रह्मचारी जी (जयपुर) से भी विस्तृत विचारविमर्श करके उनके सुझावों के अनुसार ही मैंने अपना मंतव्य स्थिर किया है। इस उपकार के प्रति मैं इन सभी महानुभावों का ऋणी हूँ।

इस सम्प्रदाय का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। अब तक लगभग २०० कवियों की रचनाओं का पता लग चुका है और इनमें से अधिकांश की प्राप्त बानियों का मैं अध्ययन-अवलोकन भी कर चुका हूँ। इस सम्प्रदाय की ज्ञात रचनाओं की संख्या १००० के लगभग है। यदि हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में इतनी रचनाओं और उनके रचयिताओं का किसी ग्रन्थ में उल्लेख मात्र किया जाय तो भी उसका एक स्वतन्त्र खण्ड बन जायगा। ये रचनायें दिल्ली, जयपुर और वृन्दावन के वर्तमान महन्तों एवं विद्वानों के यहाँ सुरक्षित, पूजित एवं प्राप्त हैं। आशा है कि इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् बहुत से अनुसन्धित्सु इस ओर प्रेरित होंगे, क्योंकि हिन्दी में जिस बड़ी संख्या में शोध प्रबन्ध लिखे जा रहे हैं, उन सबके लिए अब मौलिक विषयों का व्यापक अभाव सा हो गया है। इस दृष्टि से चरणदासी साहित्य अध्ययन एवं अनुशीलन का एक नवीन एवं प्रशस्त क्षेत्र प्रस्तुत करता है।

इस संप्रदाय के जिन कवियों की कृतियों को मैंने इस शोधप्रबन्ध की उपजीव्य सामग्री के रूप में प्रयुक्त किया है, उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा निवेदित करता हूँ। तत्पश्चात् मैं अपने शोध निर्देशक डॉ० बिजेन्द्रनारायण सिंह, आचार्य-हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय (हैदराबाद) के प्रति श्रद्धापूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ। उन्होंने अपने प्रोत्साहन, मार्गदर्शन और सामयिक परामर्शों का सम्बल प्रदान करके इस काम को पूरा करने की जो शक्ति प्रदान की, यह ग्रन्थ उसी का प्रतिफल है। इसी क्रम में अपने पूज्य गुरु डा० राजपति दीक्षित के प्रति भी मैं नमन निवेदित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। उनके आशीर्वाद और सद्भावों ने मुझे हतोत्साहित होने से बचाया।

इस ग्रन्थ को प्रकाशित रूप में सुधी जनों के समक्ष लाने का पूरा श्रेय मूलतः वृन्दावनवासी परन्तु सम्प्रति जयपुर प्रवासी विरक्त चरणदासीय वैष्णव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं शीर्षस्थ विद्वान् सन्त श्री प्रेमस्वरूप जी महाराज का है। विगत कई वर्षों से उनकी इच्छा थी कि यदि शुक सम्प्रदाय के साहित्य, सिद्धान्त एवं इतिहास को समेटती हुई कोई अच्छी पुस्तक तैयार हो तो उसे प्रकाशित कराया जाय। इस दृष्टि से मेरा शोध प्रबन्ध उन्हें प्रकाश्य प्रतीत हुआ और उन्होंने इसे प्रकाशित करने की अपनी पूर्व योजना को मूर्तरूप देने के लिए आवश्यक आर्थिक व्यवस्था की। इसे प्रकाशित कराने के पूर्व इसके लेखन-क्रम में भी उन्होंने मुझे अपने सत्परामर्श एवं मार्गदर्शन से जितना लाभान्वित किया है, उसका वर्णन मेरे लिए 'गूँगे का गुड़' है। यह पुस्तक जैसा भी है, जो कुछ भी है, वह उन्हीं की देन है।

श्री प्रेमस्वरूप जी महाराज के परमस्नेही गुरुभाई एवं शुक सम्प्रदाय के सिद्धान्त और साहित्य के मर्मज्ञ श्री नारायण लाल जी माथुर ने इस ग्रन्थ में समाविष्ट तथ्यों को प्रामाणिक बनाने में जो श्रम, स्नेह और ज्ञानदान किया है वह मेरे लिए अविस्मरणीय है। वे इस ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना बनने से लेकर उसे मूर्तरूप देने तक की यात्रा में सतत सहयोगी रहे हैं। अतः लेखक उनका कृतज्ञ है।

इस ग्रन्थ को प्रकाशित रूप में देखने और समुचित सहयोग देने की भार्गव समाज के जिन दो महानुभावों की बड़ी इच्छा थी, उनमें प्रथम हैं 'श्री शुकचरण-दासीय साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' के संरक्षक एवं जयपुर एवं वृन्दावन के अनेक सामाजिक-धार्मिक उत्थानमूलक कार्यों के प्रेरक श्री कृष्णजीवन जी भार्गव (जयपुर) तथा दूसरे हैं श्री ओमप्रकाश जी भार्गव (सिन्धिया राज परिवार-ग्वालियर के एवं अनन्य हितैषी, विश्वासभाजन, जो स्वयं भी उच्चकोटि के साहित्य कार एव साहित्य-प्रेमी हैं)। अतः मैं इन दोनों सज्जनों का आभारी हूँ।

श्री महन्त प्रवीणदास जी (गद्दी, गोसाईं जुगतानन्द जी, दिल्ली), सर्व श्री प्रेम-दास जी एवं महन्तानी श्री सविता जी (गद्दी, स्वामी रामरूप जी, दिल्ली), महन्त घनश्यामदास जी (गद्दी, सुश्री सहजोबाई जी, दिल्ली), महंत अलबेली माधुरी शरण जी महाराज (सरस निकुंज, जयपुर), महंत श्री हरीदास जी (रिवाड़ी), श्रीसुरेशदासजी—जयपुर (अखैराम जी का स्थान) और श्री रज्जन लाल जी (सेवानिवृत्त रेलवे अधिकारी एवं चरणदासी भक्त) आदि से समय-समय पर मुझे जो आतिथ्य, सहयोग, सद्भाव और परामर्श प्राप्त हुआ, इन सब के लिए ये सभी महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

अपने विभागीय सहयोगी और हितैषी डॉ० शिवकरण सिंह का यहाँ उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूँ क्योंकि यह उन्हीं के आग्रह का परिणाम है कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत कार्य मूलतः स्वतंत्र ग्रन्थ होने के साथ ही शोधप्रबन्ध के रूप में भी परिवर्तित हो सका था।

काशी के विख्यात मुद्रण संस्थान विद्याविलास प्रेस के संचालक श्री द्वारिकादास जी गुप्त ने जिस तत्परतापूर्वक इस ग्रन्थ को मुद्रित-प्रकाशित कराया तथा डॉ० लालमणि तिवारी ने त्रुटिनिवारण में जो सक्रिय सहयोग दिया, उसके लिये ये दोनों महानुभाव साधुवाद के योग्य हैं। साथ ही जिस किसी पुस्तकालय, व्यक्ति या संस्था से इस पुस्तक के लेखन और प्रकाशन में मुझे न्यूनाधिक सहायता प्राप्त हुई है, उन सबके प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। अपनी सीमित बुद्धि और शक्ति के आधार पर सामग्री संकलन और विनियोजन करने के क्रम में यदि कुछ तथ्यात्मक कमियाँ या त्रुटियाँ रह गई हों तो लेखक द्वारा उनके सम्बन्ध में संशोधन के सुझाव सप्रेम आमंत्रित हैं। आशा है कि सुधी पाठक एवं विद्वज्जन इसे अपना कर मेरा उत्साहवर्द्धन करेंगे।

पौष शुक्ल पञ्चमी, सं० २०४४ वि०
(दिनांक २५ दिसम्बर १९८७ ई०)

—श्यामसुन्दर शुक्ल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

विषय प्रवेश १–५९

(अ) सम्प्रदाय के उदय एवं विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—युगीन परिप्रेक्ष्य और चरणदासी साहित्य :

मुगल वंश का शासन और चरणदासी संप्रदाय—सिक्खों तथा मराठों का उत्कर्ष और चरणदासी संप्रदाय—अंग्रेजों का उत्कर्ष और चरणदासी संप्रदाय। पृ० १–३५

(ब) तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि :

राजकीय घटनाक्रम का समाज पर प्रभाव—धार्मिक परिस्थितियाँ और समाज—समाज की वर्ग-वर्ण-व्यवस्था में भेदमूलक विसंगतियाँ—श्री चरणदास की दृष्टि में समसामयिक समाज का स्वरूप। पृ० ३६–५९

प्रथम अध्याय ६१–१८०

संत चरणदास : जीवन और काव्यकृतित्व :

संत चरणदास : एक महिमामंडित युगपुरुष :

प्राकट्य एवं बाल्यावस्था—सद्गुरु की खोज—व्यासपुत्र श्री शुकदेव मुनि गुरु-रूप में—श्री श्यामचरण दास की योगसाधना—चरणदास: एक सिद्ध साधक के रूप में—भविष्यवाणियाँ और राजकीय शक्तियों से सम्मान-प्राप्ति—विभिन्न स्थानों पर निवास और दिनचर्या—भक्तप्रवर चरणदास का लोकविस्मयकारी चरित्र—अन्य चमत्कारपूर्ण कार्य और उनकी प्रामाणिकता का प्रश्न—चरणदास जी की जाति : विवाद के विन्दु और समाधान—शिक्षा-दीक्षा—वेश-भूषा, रहन-सहन और भगवद्भक्ति का उदय—अपरिग्रह—क्षमाशीलता—चरणदास जी : एक अवतारी शक्ति के रूप में—समकालीन अन्य सम्प्रदायों के महात्मा गण—स्वर्गवास की पूर्व सूचना—जीवनलीला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पटाक्षेपः कालनिर्धारण एवं अंतिम दर्शन—संत चरणदास का साहित्य—रचनाओं का कालक्रम—विभिन्न रचनाओं का परिचयात्मक विवेचन—व्रज चरित्र—अमरलोक अखंड धाम वर्णन—धर्मजहाज—अष्टांग योगवर्णन—योग संदेह सागर—ज्ञानस्वरोदय—पंचोपनिषद् भाषा—भक्ति पदार्थ वर्णन—मनविरक्तकरण गुटका सार—ब्रह्मज्ञान सागर—शब्द वर्णन—भक्तिसागर—दानलीला—माखनचोरी लीला—कुरुक्षेत्र लीला—नासकेत लीला आदि—संत चरणदास का कवि कौशल—श्री चरणदास की शिष्य परम्परा का साहित्यिक योगदान—सम्प्रदाय-प्रवर्त्तन और उसका विस्तार—सम्प्रदाय-प्रचार हेतु की गई यात्राएँ—दिल्ली की मुख्य गद्दी के महंत पद का विवाद और उसकी परिणति—सम्प्रदाय का नामकरण और उसकी शिष्य परम्परा का वैशिष्ट्य।

द्वितीय अध्याय १८१–२४०

चरणदासी संप्रदाय : प्रमुख मान्यताएँ एवं प्रचार-प्रसार—

(क) संप्रदाय प्रवर्त्तन का उद्देश्य :

(ख) क्या चरणदासी सम्प्रदाय निर्गुण संप्रदाय है ?

संप्रदाय प्रवर्त्तन और प्रवर्त्तक—चरणदासी संप्रदाय कोई संप्रदाय है या पंथ—संप्रदाय या पंथविशेष का नामकरण—विन्दुकुल और नादकुल का वंश वृक्ष—शुक संप्रदाय मूलतः क्या है ?

(ग) चरणदासी संप्रदाय की प्रमुख कार्य पद्धतियाँ :

दीक्षा संस्कार, पंच-संस्कार आदि—संप्रदाय में वृन्दावन का महत्त्व—शुक संप्रदाय के वर्तमान मंदिरों के स्थान।

(घ) वैष्णवों के लिए विहित विधि-निषेध-संहिता :

संप्रदाय के व्रतोत्सव—पंच देवोपासाना का निषेध—महंत बनाने की विधि—दिल्ली की तीनों आचार्य गद्दियों का संप्रदाय पर प्रभाव—चरणदास जी के १०८ शिष्यों की सूची का निर्धारण—बड़ी और छोटी गद्दी के भेदक लक्षण—बड़े थाँभों और उनके संस्थापकों की सूची—छोटे थाँमों से संबद्ध शिष्य गण और उनके स्थान—मेलों के आधार पर संप्रदाय के विस्तार का आकलन—थाँभों की संख्या में ह्रास के कारण—प्रदेशानुसार विविध गद्दियों के स्थानों की सूची।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय २४१–३८४

आचार्य गद्दियों के संस्थापक : उनका संप्रदाय और साहित्य को योगदान :

१. सुश्री सहजोबाई और उनकी शिष्य परम्परा का सम्प्रदाय और साहित्य को योगदान :

सहजोबाई जी की गद्दी के उत्तराधिकार का विवाद—बाई जी के शिष्यों और उनके थाँमों का परिचय—सुश्री सहजोबाई का साहित्य—सहज प्रकाश—सोलह तिथि—सातवार—शब्द—**श्री अगमदास** और उनका साहित्य—**कर्त्तानन्द जी** और उनका साहित्य—**रामप्रसाद जो** और **रामजी दास** तथा उनका—साहित्य—**श्री जानकीदास।** पृ० २४५–२७३

२. स्वामी रामरूप : उनकी शिष्य परम्परा और साहित्य :

स्वामी जी के ८२ शिष्यों की सूची—गद्दियों के स्थानों की सूची—रामरूप जी का संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में योगदान—साधना का स्वरूप—स्वामी रामरूप जी का साहित्य को योगदान—गुरुभक्ति प्रकाश—मुक्तिमार्ग—जैमिनी अश्वमेध कथा—**स्वामी सिद्धराम** का संप्रदाय-गठन में योगदान—श्री सिद्धराम का साहित्य—सिद्धराम जी का शिष्य मंडल—**श्री मनमोहनदास** का साहित्य—स्वामी रामरूप के प्रमुख शिष्य तथा उनकी महन्त परंपरा—**श्री ठाकुरदास** और उनकी शिष्य परम्परा का साहित्य—**श्री सरसमाधुरीशरण**—श्री सरस शिष्य परिकर—**श्री रूप माधुरी शरण—धर्ममित्र जी—श्री युगलमनोहर शरण—श्री श्रीमति शरण—मुहम्मद याकूब सनम—देवादास जी—नवल दास जी—अजपादास जी—व्यापकदास जी—सुखनन्दन जी-श्री सतबादी राम** आदि-अन्य गद्दियों का परिचय—**महन्त मँगनीरामजी** और उनका साहित्य—स्वामी रामरूप के अन्य शिष्य एवं उनके स्थान। पृ० २७४–३४५

३. गोसाईं जुगतानन्द : उनकी शिष्य परम्परा तथा साहित्य सेवा :

गोसाईं जी के १२२ प्रमुख शिष्यों की सूची—गोसाईं जी की दिल्ली की आचार्य गद्दी की शिष्य परम्परा—गो० जुगतानंद के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ प्रमुख शिष्य—**बुद्धिविनोद जी—रामचेरा जी**—गोसाईं जी का संप्रदाय को योगदान—गोसाईं जी का साहित्य को योगदान—इतिहास सार समुच्चय—श्रीमद्भागवत भाषा—भक्ति प्रबोध—भगवतगीता माला आदि—गोसाईं जी के साहित्यकार शिष्य—**श्री नवनदास—श्री विषनानन्द**—गोसाईं जी की अन्य शिष्य गद्दियों का वृत्त—भोहड़ा—करीरीवास—गामड़ी—रोहतक—संगरूर आदि। पृ० ३४६–३८४

चतुर्थ अध्याय **पृ० ३८६–५२०**

बड़ी गद्दियों की शिष्य परम्पराएँ और उनकी साहित्यिक उपलब्धियाँ :

१. गुरु छौना जी और उनकी शिष्य गद्दियाँ :

अखैराम जी और उनका संप्रदाय को योगदान—गुरु छौना जी से संबंधित गद्दियाँ—जयपुर, रोडी, झंडूकी, बालावाली, झींद खाश आदि—**गुरुछौना** जी का साहित्य—षट्रूप मोक्ष, बानी आदि—**अखैरामजी** का साहित्य को योगदान—अखैसागर, विचार चरित्र, वाणगंगा माहात्म्य आदि—**बेगमदास जी** और उनका काव्य कृतित्व—**रामुदास जी, हीरादास जी, गंगनदास जी, बाबा मोहनदास, सुश्री खुसाला बाई, चेतराम या चेतनदास** और **रामगोपाल जी** आदि का साहित्य। पृ० ३८९–४३०

२. आतमराम इकंगी : शिष्य परम्परा और साहित्य :

आतमराम इकंगी, व्यक्तित्व और कृतित्व—सातिक सुभ लच्छिन—**श्री लक्षिदास**—शुक पुराण, सारसंग्रह आदि–**श्री गुरुसरनदास**–भक्तिसुधानिधि, द्वादस महावाक्य ग्रंथ आदि—**श्री रामसरनदास**–**श्री चन्द्रसखी** (चन्ददास जी)—**साधुसरन जी**–**श्री मानदास**–**जैदासी जी** (जैदास जी)—**सेवादास जी** आदि।

पृ० ४३१–४६५

३. ध्यानेश्वर जोगजीत जी और उनके थाँभों की महन्त परम्परा—कुरुक्षेत्र, सवाद, शाहजहाँपुर (रिवाड़ी) आदि—लीलासागरः—शुक सम्प्रदाय का एक प्रामाणिक इतिहास—जैमिनी अश्वमेध पर्व तथा अन्य। पृ० ४६६–४७६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. **ब्रह्मप्रकाश जी :** उनकी गद्दियों की परम्परा और साहित्य रचना—धनौरा, असगरीपुर, जटपुरा, धामपुर आदि। पृ० ४७६–४७९

५. **श्री जसराम उपकारी** और उनका काव्य—भक्ति बावनी, भक्ति-प्रबोध, शब्द आदि। पृ० ४७९–४८५

६. **भगवानदास जी**—व्यक्तित्व और कृतित्व—रामाश्वमेध की कथा तथा अन्य। पृ० ४८६–४८८

७. **रसिकाचार्य रामसखी जी**—भक्तिरस मंजरी—अष्टयाम—नृत्य राघव मिलन आदि। ४८८–४९६

८. **प्रेमगलतान जी**—बदेह का थाँभा-प्रेमगलतान जी का साहित्य—विज्ञान पदार्थ, शब्द, बानी आदि। पृ० ४९६–५०२

९. **श्री छीतरमल–रामप्रताप जी–पूर्णप्रताप जी–त्यागीराम जी–ज्ञानानन्द निर्वाणी** और उनका साहित्य—दसम स्कन्ध भागवत भाषा, चौबीस एकादशी आदि—**सबगतिराम जी** (प्रथम)—आत्मबोध, बानी आदि—**बल्लभदास जी :** थाँभे और साहित्य—**ब्रह्मदास जी** का साहित्य—**महन्त मलूकदास** और उनका साहित्य—**घनश्यामदास जी**—**बालगुपाल जी।** पृ० ५०२–५२०

पंचम अध्याय पृ० ५२१–५८४

शेष बड़ी गद्दियों की शिष्य परम्पराएँ और उनका साहित्य—बड़े थाँभों के अवशिष्ट शिष्यगण—निगमदास जी—हरिसेवक जी—परमसनेही जी–धरमदास जी—नन्दलाल जी—चरणरज जी—चरणधूर जी—हरिदास जी (प्रथम)—**परमदास जी—सुखरामदास जी** (प्रथम)—**डंडौतीराम जी**—डहरा और बहादुरपुर का थाँभा—**निर्मलदास जी**—कानपुर (चौक) का थाँभा—**श्री श्यामशरण बड़भागी**—बिठूर का थाँभा—शिवराजपुर और तिन्दुआरी के थाँभे—बड़भागी जी के साहित्यकार शिष्यगण—**गोविन्दशरण जी, रसिकशरण जी, नित्यानन्द जी** आदि—**हरभजनदास जी**—**गुरुप्रसाद जी**—लखनऊ के दौलतगंज के थाँभे—**सुखविलास मस्तराम जी**—**भजनानन्द जी**—चित्रकूट, चरखारी और रायपुर आदि के थाँभे—**श्री मुक्तानंद परमार्थी**—ठाकुरगंज (लखनऊ) का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थाँभा—भजनानन्द जी का साहित्य—**सहजानन्द जी—स्वामी ठंडीराम जी**—असौधा और अजराड़ा के स्थान—ठंडीराम जी के शिष्य **श्री विष्णुदास** का 'रुक्मिणी मंगल' काव्य—अन्य रचनाएँ—**कमलदास जी**—बारहमासी, बारहखड़ी, संतकल्पतरु आदि—**श्री नन्दराम दास** और उनका साहित्य—**गुसाईं नागरीदास जी**—नागरीदास जी का साहित्य—भाषा भागवत, गीता भाषा आदि—**सुश्री दयाबाई** : संप्रदाय और साहित्य को योगदान—दयाबोध, विनयमालिका आदि—**दाताराम जी**—लुजीड़ा का थाँभा, साहित्य रचना—**जीवनदास जी**—बाभनौली का थाँभा—**मधुरीदास जी—श्री गुरुमुखदास**—हेजरपुर का थाँभा—**हरिदेवदास जी**—धाराहेड़ी का थाँभा—**योगी विद्यानाथ**—शामली का थाँभा—**रामधड़ल्ला जी—श्री साधुराम** (प्रथम) **श्यामरूप जी।**

षष्ठ अध्याय ५८५–६१९

छोटी गद्दियों की शिष्य परम्पराएँ और उनका साहित्य—सुश्री नूपीबाई—साहित्य का वैशिष्ट्य—**हरिप्रसाद जी** (सहजोबाई के पिता)—**राधाकृष्णदास जी—श्री गंगा विष्णु दास—श्री दासकुँवर—श्री हरिनारायण—हरिदास जी** (द्वितीय)—**श्री मुरली मनोहर—श्री मुरली विहारी—श्री लालदास—रामकरन जी—राम मौला जी—जैरामदास जी—अमरदास जी—परमानंददास जी—श्री मधुवनदास** (नागा)—**गुरुसेवक जी—श्री रामगलतान—श्री परमानन्द दास** (प्रेमदास)—**जुगलदास जी—प्रेमघन जी—श्री चरणखाक—माधवदास जी—गरीबदास जी—श्री दौलतराम—रामदास जी** (प्रथम)—**रामदास जी** (द्वितीय)—**आसानन्द जी—हरिस्वरूप जी—रामसनातन जी—सवगति राम** (द्वितीय)—**सुखरामदास जी** (द्वितीय)—**हरिविलास जी—रामहेत जी—श्री नन्ददास—श्री हँसमुखदास** आदि।

सप्तम अध्याय ६२०–७०४

तत्वचिंतन और साधना का स्वरूप :

(अ) आराध्य का स्वरूप—उपास्य के रूप में ब्रह्म की स्थिति—ऊँकार तत्व—ब्रह्म और माया—ब्रह्म, माया और जगत् का पारस्परिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंध—परमात्मा और आत्मा—निर्गुण का सगुण रूप धारण—परब्रह्म का पुरुषोत्तम रूप और अमरलोक—आराध्य का सगुणात्मक स्वरूप—परब्रह्म के अवतार के कारण—चौबीस अवतार और श्री कृष्ण—युगलोपासना—परमाराध्या श्री राधा—गोपी, सहचरी, सखी, किंकरी आदि—मुक्ति का स्वरूप और मुमुक्षु के लक्षण—भाग्यवाद और पुनर्जन्मवाद। पृ० ६२५–६५५

(ब) चरणदासी सम्प्रदाय में मान्य साधना का स्वरूप :

ज्ञान मार्ग और उसकी निस्सारता—कर्म मार्ग एवं नवधा भक्ति—मानसोपचार सेवा (मानसी सेवा)—वैधी भक्ति—अष्टयाम सेवा विधि—प्रेमस्वरूपा भक्ति—प्रेमा भक्ति और सखी भाव—शुक सम्प्रदाय में योगसाधना का स्वरूप तथा महत्व—अष्टांगयोग—योगांग—यम नियम, आसन, प्राणायाम, नाडियाँ, वायु, षट्चक्र, मुद्राएँ आदि। पृ० ६५६–६८३

(स) साधना के साधक तत्व :

गुरु तत्व–निगुरा की स्थिति–शुक सम्प्रदाय के आदि गुरु श्री शुकदेव–संतजन और सत्संग–मानव काया के रहस्य का यथार्थ ज्ञान–सामाजिक संबंधों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान—आत्मबोध और वैराग्य–ज्ञानी कौन—ब्रह्मचर्य और नारी त्याग—शील और दया। पृ० ६८४–७०५

(द) साधना के बाधक तत्व :

क्रोध—मोह—लोभ—अभिमान—असज्जनता आदि। ७०५–७०९

उपसंहार ७११–७२६

परिशिष्ट—१ ७२८–७४१

चरणदासी सम्प्रदाय : माधुर्योपासना के तत्व एवं स्वरूप

परिशिष्ट—२ ७४३–७५९

चरणदासी संप्रदाय का वर्तमान परिप्रेक्ष्य

१. व्यक्ति नामानुक्रमणिका
२. स्थान नामानुक्रमणिका
३. उपजीव्य ग्रन्थ सूची
४. सहायक साहित्य सूची

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-प्रवेश

युगीन परिप्रेक्ष्य और चरणदासी सम्प्रदाय

(अ) चरणदासी सम्प्रदाय के उदय और विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (सन् १७००–१८५० ई०) –

(१) मुगल वंश का शासन और चरणदासी सम्प्रदाय।

(२) सिक्खों का उत्कर्ष और चरणदासी सम्प्रदाय।

(३) मराठों का उत्कर्ष और चरणदासी सम्प्रदाय।

(४) अंग्रेजों का उत्कर्ष और चरणदासी सम्प्रदाय।

(ब) सामाजिक पृष्ठभूमि तथा चरणदासी सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार—

(१) राजकीय घटनाक्रम का समाज पर प्रभाव।

(२) धार्मिक परिस्थितियाँ और समाज।

(३) समाज की वर्ण एवं वर्ग-भेदमूलक विसंगतियाँ।

(४) श्रीचरणदास की दृष्टि में समसामयिक समाज का स्वरूप।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१. मुगलवंश और उसका चरणदासी सम्प्रदाय को योगदान –

इस सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री श्यामचरणदास का आविर्भाव और जीवन-काल (सं० १७६०–१८३९ वि०) मुगल साम्राज्य के अन्तिम दिनों की दुःखद गाथाओं से युक्त है। सं० १७६४ (मार्च, सन् १७०७ ई०) में मुगल शाहंशाह औरंगजेब का जीवन-दीप लगभग अर्द्धशताब्दी तक अपनी लौ से आलोक प्रदान करने के उपरान्त दक्षिण भारत के अहमदनगर में बुझ चुका था। उसके साथ ही मुगलवंश के वैभव का सूर्य भी अस्तंगत हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में दिल्ली की तख्त के लिये जो खूनी संघर्ष हुए और एक दूसरे के प्रति षड्यन्त्रों का जो सिलसिला चला उसकी कथा बड़ी करुण, विस्तृत, पेचीदी, मानवता के प्रति आस्था डिगाने वाली तथा वैराग्यमूलक है। उसको जान लेने के बाद यह सोचना पड़ता है कि भाई के प्रति भाई का, माता-पिता के प्रति पुत्रों का, स्वामियों के प्रति सेवकों का, रिश्ते-नातों के प्रति रिश्तेदारों या सम्बन्धियों का, राजा के प्रति प्रजा का या प्रजा का राजा के प्रति अथवा स्वयं मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्यों का जो एक पवित्र विधान है, क्या उसकी अन्तिम परिणति यही है ? इन स्थितियों को देखते हुए क्या मनुष्य किसी का और यहाँ तक कि स्वयं अपना ही निश्चिन्तता के साथ विश्वास कर सकता है ? और तब सन्तों द्वारा कंचन और कामिनी, शराब और शबाब तथा प्रभुता और अधिकारमद से दूर रहने की चेतावनी की यथार्थता पूर्णतः प्रमाणित होती है।

मुगल सम्राट् प्रतापी औरंगजेब के पाँच पुत्र थे, जिनमें से मुहम्मद सुलतान उसके जीवन काल (दिसम्बर, सन् १६७६ ई०) में ही दिवंगत हो गया था। उसका एक अन्य पुत्र अकबर ईरान में निर्वासित के रूप में जीवन-यापन करता हुआ सन् १७०४ में वहीं अल्लाह को प्यारा हो गया। शेष तीन पुत्रों—मुअज्जम, आजम और कामबख्श में सल्तनत की बागडोर अपने हाथ में लेने के लिए जिन षड्यन्त्रों और युद्धों का दौर चला, वह अपने आप में एक करुण कहानी है।

औरंगजेब के दो ज्येष्ठ पुत्र—मुहम्मद सुलतान (सन् १६३९–१६७६ ई०) और मुहम्मद मुअज्जम (सन् १६४३–१७१३ ई०) उसकी हिन्दू महारानी (काश्मीर के राजा राजू की कन्या) के गर्भ से उत्पन्न थे। अपनी आरम्भिक अवस्था में मुहम्मद सुलतान पिता का विश्वस्त सेवक था। गद्दी पर अधिकार करने के लिए अपने भाइयों से हुए संघर्षों में उसने अपने पिता का साथ दिया था। औरंगजेब के भाई मुहम्मद शुजा ने जब दिल्ली पर कब्जा करने के लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूच किया था, उस समय औरंगजेब ने मुहम्मद सुलतान को अपना प्रधान सेनापति बनाकर शुजा को मार भगाने का काम सौंपा था। लेकिन उसके भाग्य में इस उच्चाधिकारपूर्ण पद पर बने रहना नहीं लिखा था। उसने दो बार अपने पिता के विरुद्ध हुए षड्यन्त्रों में शत्रुओं का साथ दिया। एक बार का षड्यन्त्र बादशाह शाहजहाँ का और दूसरी बार का शुजा का था। इस प्रकार वह अपनी विश्वास-पात्रता खो बैठा और मृत्युपर्यन्त उसे जेल में रहना पड़ा।

मुअज्जम मुहम्मद सुलतान का सगा भाई था। उसे पिता की ओर से 'शाह आलम' की उपाधि मिली थी। बहुत दिनों तक वह दकन का व्यवस्थापक था और वहाँ उसने अनेक युद्धों में भाग लिया था। लेकिन औरंगजेब को सदैव यह शंका रहती थी कि वह मराठों और बीजापुर तथा गोलकुण्डा की रियासतों से मिला हुआ है ताकि वे उत्तराधिकार की लड़ाई में उसका साथ दें। सन् १६८७ ई० में उसे अपराधी मानकर जेल में बन्द कर दिया गया। वहाँ उसके अच्छे चाल-चलन को देखते हुए बादशाह ने सन् १६९५ ई० में उसे मुक्त कर दिया और तब से वह अनेक प्रान्तों का व्यवस्थापक (सूबेदार) नियुक्त किया गया। उसे कभी भी लम्बी अवधि तक एक स्थान पर टिकने नहीं दिया गया। बादशाह की मृत्यु के समय वह काबुल का सूबेदार था। वहाँ के निवास के समय ही उसने राजपूतों और सिक्खों से अच्छे सम्बन्ध बना लिये थे। बादशाह औरंगजेब के शेष तीन पुत्र मुहम्मद आजम, अकबर और कामबख्श सगे भाई थे।

मुहम्मद आजम (सन् १६५३–१७०७ ई०) औरंगजेब की मुस्लिम बीबी दिलरास बानो से पैदा हुआ था। बादशाह का वह सर्वाधिक प्यारा बेटा था और उसे 'आलीजाह' की उपाधि प्राप्त थी। मुअज्जम और मुहम्मद सुलतान हिन्दुआनी के पुत्र थे अतः सामान्य विश्वास यही था कि औरंगजेब उन्हें अपना उत्तराधिकारी नहीं बनायेगा। मुहम्मद आजम पर पिता के गहन विश्वास को देखते हुए उसे ही भावी उत्तराधिकारी माना जाता था। परन्तु सन् १६८७ ई० में उसके द्वारा भी विद्रोह कर दिये जाने पर बादशाह उससे रुष्ट हो गया और उसे कोई ऐसा अवसर नहीं दिया गया कि वह अपनी शक्ति बढ़ा सके। औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय पूर्व न चाहते हुए भी वह मालवा भेज दिया गया।

साम्राज्ञी दिलरास बानो का दूसरा पुत्र अकबर अपने पिता को अपदस्थ करके गद्दी पर अधिकार करने के असफल प्रयास के बाद अन्ततः ईरान में जाकर रहने को विवश हुआ था, जहाँ सन् १७०४ ई० में उसका शरीरान्त हो गया। यद्यपि उसे क्षमा करके बादशाह ने बुलाया था परन्तु उसने अपने शंकाशील पिता का विश्वास नहीं किया।

औरंगजेब का कनिष्ठ पुत्र कामबख्श (सन् १६६७–१७०९ ई०) अपने पिता का विश्वस्त एवं प्रिय पुत्र था: उसके भविष्य को सुरक्षित करने के लिए ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाह ने मराठों से सन्धि कर ली थी परन्तु इसका कोई लाभ नहीं हुआ।

पुत्रों में राजगद्दी के लिए लड़ाई न हो, इसके लिए उसने अपनी मृत्यु के पूर्व ही अपना विशाल साम्राज्य अपने तीनों पुत्रों के बीच बाँट दिया था। इस विभाजन के अनुसार बीजापुर और हैदराबाद कामबख्श को, दिल्ली, पंजाब, काबुल, मुलतान, काश्मीर, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, इलाहाबाद और अवध के प्रदेश मुअज्जम को और आगरा, गुजरात, मालवा, अजमेर, खानदेश, बरार, औरंगाबाद और बीदर आजम को दिये गये थे। बँटवारे के हिसाब से मुअज्जम और आजम में से प्रत्येक को ५०० करोड़ दाम के लगान वाले भाग प्राप्त हुए थे जब कि कामबख्श को २०० करोड़ दाम के लगान का ही भूमि भाग मिला था।

चूँकि औरंगजेब का निधन औरंगाबाद में ही हुआ था अतः उसकी मृत्यु का समाचार सबसे पहले आजम को ही मिला। उसने १४ मार्च, सन् १७०७ ई० को अपने आपको बादशाह घोषित करने के साथ ही, अबुल फैज कुतुबुद्दीन मुहम्मद आजमशाह गाजी नाम धारण किया और अपने नाम के सिक्के ढलवाना आरम्भ किया। वह यथाशीघ्र उत्तर की ओर प्रस्थान करके मुअज्जम को परास्त करना और दिल्ली की गद्दी पर अधिकार करना चाहता था। शिया मतावलम्बियों की ओर उसके झुकाव को देखते हुए उसके समर्थक तूरानी अमीर-उमराव उससे रुष्ट हो गये। अन्ततः फिरोज जंग और चिनकिलिच खाँ को क्रमशः औरंगाबाद और बुहरानपुर का सूबेदार नियुक्त करके उसने उनके समर्थन से उत्तर की ओर कूच किया।

(१) बहादुरशाह—(सन् १७०७-१७१२ ई०)—आजम को अपने बेटे बेदारबख्त का भी विश्वास नहीं था जब कि वह बड़ा आज्ञाकारी, पितृभक्त और योग्य सेनापति था। फलतः पिता-पुत्र को आगरा तक पहुँचने में कई महीने व्यतीत हो गये। इस बीच मुअज्जम अफगानिस्तान के जमरूद नामक स्थान से अपने बेटे मुइजुद्दीन के साथ चलकर लाहौर के किले तक पहुँच गया। रावी नदी पार करने से पूर्व ही उसने 'बहादुरशाह' नाम धारण करने की घोषणा कर दी और १ जून को वह दिल्ली जा पहुँचा। १२ जून को उसने आगरा के किले में डेरा डाल दिया। उसके बेटे अजीम ने (जो कि बिहार और बंगाल का प्रशासक था) आगरा के किले पर पहले से ही अधिकार कर लिया था। उसने वहाँ ११ करोड़ रुपयों और २० हजार सिपाहियों का संग्रह किया था। इधर मुअज्जम भी एक बड़ी सेना और तोपखाने के अतिरिक्त ६५ लाख रुपयों के साथ उस किले में आ धमका। उसने अनेक राजपूत और प्रभावशाली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजवाड़ों को अपनी ओर मिला लिया था। उसने एक पत्र भेज कर आजम को समझाया कि पिता ने जिसको जितना भाग दिया है उसी से सन्तुष्ट रहकर सभी भाइयों को प्रेम और सौहार्द्र से रहना चाहिए। लेकिन आजम लड़कर साम्राज्य का एक छत्र शासन पाना चाहता था। अन्ततः बहादुरशाह और आजम की सेनाओं में सामूगढ़ के पास जाजऊ में पहली लड़ाई हुई जिसमें आजम की पराजय हुई और वह सपरिवार बन्दी बना लिये जाने के बाद मार डाला गया। इस युद्ध में उसका बेटा बेदारबख्त, सेनापति खाम आलम, रामसिंह हाड़ा, राव दलपत बहादुर बुन्देला और अनेक सहायक मारे गये।

इधर कामबख्श अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनने के बाद ही अपने को 'दीनेपनाह' घोषित कर बादशाह बन बैठा। उस समय वह दकन में था। कामबख्श की क्रूरतापूर्ण कार्यपद्धति, मनमानी करने के फलस्वरूप उसके सहायकों में असन्तोष और प्रजा में उसकी घटती हुई साख के सम्बन्ध में बहादुरशाह को लगातार सूचनाएँ मिल रही थीं। अतः उसने मई, सन् १७०८ ई० में एक बड़ी सेना के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। नर्मदा नदी को पार करने के पश्चात् वहीं से उसने कामबख्श के यहाँ एक पत्र भेजा, जिसमें उसने उससे आग्रह किया कि वह स्वर्गीय पिता की इच्छाओं का पालन करते हुए उनके द्वारा प्रदत्त भूमि-भाग का शासक बना रहे, परन्तु कामबख्श ने उसे शाहंशाह मानने से इन्कार कर दिया और उसके साथ युद्ध की तैयारियों में लग गया। कामबख्श से उसके अधिकांश सहायक पहले से ही रुष्ट थे। लड़ाई छिड़ जाने पर उनमें से अधिकांश बहादुरशाह के साथ आ मिले और मुट्ठी भर आदमी कामबख्श के साथ बचे रहे। फलतः वह युद्ध में पराजित हुआ और बुरी तरह घायल होकर उसने दम तोड़ दिया। बहादुरशाह ने उसके आश्रितों के साथ मानवता का व्यवहार किया और सभी को यथायोग्य संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार अपने दोनों सगे भाइयों की हत्या करके वह निष्कण्टक रूप से दिल्ली के तख्त पर विराजमान हुआ।

सन् १७०७ ई० में बादशाह होने के तुरन्त बाद उसने एक दरबार आयोजित करके अपने चारों पुत्रों को उपाधियाँ प्रदान कीं। मुइजुद्दीन को जहाँदारशाह की उपाधि के साथ थत्ता और मुल्तान की जागीरदारी प्रदान की गई। मुहम्मद अजीम को अजीमुश्शान की उपाधि देते हुए बंगाल तथा पटना का प्रशासक बना दिया गया। उसने अपने तीसरे पुत्र रफी उल्कद्र को रफीउश्शान बहादुर की उपाधि के साथ काबुल और खुजिस्तान का प्रबन्धक बनाया तथा अपने कनिष्ठ पुत्र अख्तर को जहाँनशाह बहादुर की पदवी देकर मालवा का शासक नियुक्त किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहादुरशाह ने अपनी उदार नीति से सभी वर्गों को प्रसन्न करना चाहा। जिन लोगों ने आजम और कामबख्श की मदद की थी, बादशाह ने उन्हें भी क्षमा कर दिया और सबको यथायोग्य मनसब तथा सम्मान देकर सन्तुष्ट किया। उसकी शासन-पद्धति सामंजस्यपूर्ण और उदार थी। अपने पाँच वर्षों के शासन-काल में उसका अधिकांश समय राजपूतों, सिक्खों और सुन्नी मुसलमानों के विद्रोहों को दबाने में ही बीता। उसकी राजनीति जोड़-तोड़, क्षमा और लेन-देन की थी। सन् १७१२ ई० में इस उदारचेता बादशाह ने विविध समस्याओं से जूझते हुए शरीर-त्याग किया।

(२) जहाँदारशाह (सन् १७१२-१७१३ ई०)—बादशाह के मरने के बाद उसके लड़कों में राजगद्दी के लिए परस्पर संघर्ष शुरू हो गया और उसका ज्येष्ठ पुत्र जहाँदारशाह बादशाह बन बैठा। उसने अपने दो भाइयों को मिलाकर अपने तीसरे शक्तिशाली भाई अजीमुश्शान पर चढ़ाई की और उसे मार डाला। आगे चलकर अपने शेष दोनों भाइयों को (जिन्होंने उसका साथ दिया था) भी उसने युद्ध में परास्त करके समाप्त किया। इस प्रकार भाइयों से छुट्टी पाकर जहाँदारशाह ने एक वर्ष (सन् १७१२-१३ ई०) तक शासन किया। इस एक वर्ष का उसका शासन वस्तुतः उसके वजीर जुल्फिकार खाँ के हाथ में था, जिसने बादशाह के विरोधियों का दमन बड़ी ही क्रूरता से किया। बादशाह स्वयं लालकुमारी नामक वेश्या के घर शराब पीकर पड़ा रहता था। उस समय इस शराबी, विलासी और अयोग्य बादशाह का दरबार अनेकानेक षड्यन्त्रकारियों, पिट्ठुओं, चापलूसों और चुगलखोरों से भरा था। लालकुमारी के सगे-सम्बन्धियों को शासन में ऊँचे पद दिए जाने के कारण अनेक दरबारी असन्तुष्ट थे। ईरानी और तूरानी सरदारों में बड़ी प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। इन दोनों के सिवा एक तीसरा हिन्दुस्तानी वर्ग भी था जो अजीमुश्शान के लड़के फर्रुखसियर को बादशाह बना कर अपना प्राधान्य स्थापित करना चाहता था। पिता की मृत्यु के समय फर्रुखसियर बंगाल का व्यवस्थापक था। वह ससैन्य पटना की ओर बढ़ा और वहाँ पहुँचकर उसने अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया। पटना और इलाहाबाद के सूबेदार सैयद बंधुओं (हुसैनअली और अब्दुल्ला खाँ) ने उसका साथ दिया। परिणाम यह हुआ कि दिल्ली दरबार के हिन्दुस्तानी दल ने लाभ उठाया और जहाँदारशाह का सिंहासन डगमगा उठा। जनवरी, सन् १७१३ ई० में आगरा में एक निर्णायक युद्ध हुआ। युद्ध के मैदान में बादशाह एक बहुत बड़ी सेना के साथ उपस्थित हुआ। तूरानी सरदारों ने बादशाह का साथ नहीं दिया। इधर जाटों ने आक्रमण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके शाही सेना को भारी क्षति पहुँचाई। युद्ध में शाही सेना परास्त हुई और दाढ़ी-मूँछ मुड़ाकर गुप्त रूप से बादशाह को दिल्ली भागना पड़ा।

(३) फर्रुखसियर (सन् १७१३-१७१९ ई०)—फर्रुखसियर ने आगरे के किले में पहुँच कर दरबार लगाया और अपने आपको बादशाह घोषित किया। इसी बीच हुसैन अली ने दिल्ली पर आक्रमण किया। जहाँदारशाह के दोनों विश्वस्त मन्त्रियों असद खाँ और जुल्फिकार खाँ ने बादशाह को दिल्ली के लाल किले में कैद कर लिया और अन्ततः उसे मार डाला गया। इस तरह उसके एक वर्ष के शासन काल का दुःखद अन्त हुआ। अपने विश्वस्त मन्त्रियों द्वारा ही वह कैद किया गया और फर्रुखसियर को प्रसन्न करने के लिए उन लोगों ने इतना जो बड़ा विश्वासघात किया वह मनुष्य की स्वार्थपरता का एक घृणित उदाहरण है।

अब फर्रुखसियर दिल्ली का निष्कंटक बादशाह बना। उसने छः वर्षों तक शासन किया। इस बीच उसे मराठों, सिक्खों और सैयदों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा। अपने वजीर हुसैन अली से उसका वैमनस्य हो गया। फलतः जिन सैयदबन्धुओं की सहायता से वह बादशाह बना था वे भी अब उसे राजगद्दी से हटाने का षड्यन्त्र करने लगे। इस कार्य में उन लोगों ने रफी-उश्शान के लड़के रफी-उद्-दरजात की सहायता ली और बादशाह राजगद्दी से हटा दिया गया। उसकी आँखें फोड़कर उसे जेल में डाल दिया गया और कुछ समय बाद उसकी हत्या कर दी गई। इस दुष्कर्म में उसके श्वसुर और मेवाड़ नरेश श्री अजीत सिंह स्वयं भी शामिल थे।

फर्रुखसियर एक अयोग्य, दुर्बल और विलासी शासक था। यदि उसमें तनिक भी साहस होता तो उसे ऐसी दुर्गति का सामना न करना पड़ता। आमेर के राजा सवाई जयसिंह (द्वितीय) ने उसे राय दी थी कि वह सैयदबंधुओं पर आक्रमण कर दे तो इस कार्य में वे उसकी मदद करेंगे, किन्तु उसकी हिम्मत न पड़ी। धीरे-धीरे उसके अन्य साथियों ने भी उसका साथ छोड़ दिया। अन्ततः वह निस्सहाय और अकेला रह गया। वह कान का कच्चा था। उसके कुछ अंतरंग सलाहकार सैय्यदबंधुओं के उत्कर्ष से जल-भुन रहे थे। वे उसे उनके विरुद्ध भड़काते रहते थे। वह उनके उपकारों और उनकी शक्ति से दबा हुआ था। फिर भी वह मन ही मन उनका अहित चाहता था। उसने अपने दरबारियों में से अनेक लोगों को एक के बाद इस आशा से वजीर बनाया कि वे सैय्यदबंधुओं की हत्या कर देंगे, परन्तु उसकी यह योजना सफल न हुई। उलटे उसका यह भेद भी खुल गया। मेवाड़ के राठौर राजा अजीत सिंह पर आक्रमण करने के लिए उसने सैय्यदबंधुओं को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजकर स्वयं अजीत सिंह को पत्र लिख दिया कि वे उन्हे कैद कर लें। इस प्रकार के अनेक षड्यंत्र उसने उनके विरुद्ध रचे लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। उसके इन कारनामों से चिढ़कर हुसैनअलीबंधुओं ने फर्रुखसियर को बंदी बनाने के बाद रफीउश्शान के लड़के रफी-उद्-दरजात को गद्दी पर बैठाया, लेकिन वह कुछ ही दिनों तक जीवित रहा। तत्पश्चात् उसका बड़ा भाई रफीउद्दौला गद्दी पर बैठाया गया परन्तु वह भी अधिक दिनों तक जीवित न रहा। इसके बाद उसका भाई निकौसियर अन्य अमीरों की सहायता से गद्दी पर आया। उसने सैयदबंधुओं को अपने पक्ष में लेने का यथेष्ट प्रयास किया किन्तु इसमें सफल न हो सका। सैयदबंधुओं ने रौशन अख्तर के बेटे जहाँशाह को गद्दी पर बैठाने का प्रयास किया और सन् १७१९ ई० में जहाँशाह मुहम्मदशाह के नाम से बादशाह घोषित किया गया। इसी को कुछ इतिहासकार मुहम्मद शाह 'रंगीले' भी कहते हैं। यह हिन्दुओं से उतना नहीं चिढ़ता था, जितना उसके अन्य पूर्ववर्ती बादशाह चिढ़ा करते थे।

(४) मुहम्मदशाह (सन् १७१९–१७४८ ई०)—२७ फरवरी; सन् १७१९ को सैय्यदबंधुओं और अपने श्वसुर अजीत सिंह द्वारा फर्रुखशियर पदच्युत करके जेल में बन्द कर दिया गया था। तदुपरांत ३ महीने तक रफीउश्शान का बेटा रफीउद्दरजात गद्दी पर रहा। २० वर्ष की अवस्था में ही क्षयरोग से पीड़ित होने के कारण उसका बड़ा भाई रफीउद्दौला शाहजहाँ द्वितीय के नाम से बादशाह बनाया गया। वह भी रोगी था, अतः ६ जून, सन् १७१९ ई० से १७ सितम्बर तक ही गद्दी पर रहा। क्षयरोग के कारण यह भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। यद्यपि मुहम्मदशाह अपने पूर्ववर्ती शाहजादों से अधिक योग्य था, परन्तु इतने बड़े राज्य का शासन सँभालना उसके बलबूते की बात नहीं थी। उसने सर्वप्रथम सैयदबंधुओं से छुटकारा पाना चाहा। अपनी इस योजना में उसने इलाहाबाद के सूबेदार छबीलाराम नागर, जयपुर नरेश सवाई जयसिंह और मालवा के सूबेदार मुहम्मद अमीन खाँ आदि की सहायता प्राप्त की। मुहम्मदशाह ने निजामुल्-मुल्क को भी मिला लिया। उसकी यह योजना फलीभूत हुई और सैयदबंधु शक्तिहीन हो गए। इससे मुहम्मदशाह की शक्ति बढ़ी। निजामुलमुल्क को दंड देने के लिये किये गये दकन के अभियान में षड्यंत्र द्वारा बादशाह ने हुसैन अली की हत्या करा दी। उसने अपने मंत्रिमण्डल में पर्याप्त हेरफेर भी किया। इससे उसकी शासन-व्यवस्था सुदृढ़ हुई। बादशाह को शीघ्र ही दकन और गुजरात के शासकों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। फलतः दक्षिण भारत का शासन उसके हाथ से निकल गया। उसका वजीर निजामुलमुल्क दकन और दक्षिण भारत के राज्यों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का स्वतंत्र शासक बन बैठा। बादशाह उसका कुछ न बिगाड़ सका और असहाय होकर बैठ गया। इसी बीच सन् १७३९ ई० में नादिरशाह का भारत पर भयंकर आक्रमण हुआ, जिसमें बादशाह की पराजय हुई और दिल्ली लूट और कत्ले आम का शिकार हुई। सारे देश में अराजकता फैल गई। जाटों, बुन्देलों, मराठों, सिक्खों और राजपूतों ने बगावत की आवाज बुलन्द की। फलतः मालवा, दकन, अवध, बिहार, बंगाल, उड़ीसा और काबुल के प्रांत बादशाह के हाथ से जाते रहे। एक प्रकार से सारे देश में अव्यवस्था फैल गई और बादशाह की शक्ति अत्यन्त सीमित हो गई। वह अब नाम मात्र का बादशाह था। उसका अधिकारक्षेत्र सिमट कर दिल्ली और आसपास तक ही शेष था।

(५) अहमदशाह (सन् १७४८-१७५४ ई०)—मुहम्मदशाह का निधन २६ अप्रैल, सन् १७४८ ई० को हुआ। तदुपरांत उसका बेटा अहमदशाह तख्तनशीन हुआ। उसके कुछ ही दिनों बाद ईरानी और तूरानी सरदारों के बीच दिल्ली में ही भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो छः महीने तक चला। अहमदशाह के शासनकाल में ईरानी विजेता अहमदशाह अब्दाली ने उसके राज्य पर कई बार आक्रमण किया और मुलतान तथा पंजाब पर अधिकार कर लिया। इस बीच मराठों की शक्ति इतनी बढ़ गई कि बादशाह के हाथ से प्रायः सभी प्रांत निकल गए। बादशाह की शक्ति इतनी क्षीण हो गई थी कि उसके अमीरों ने उसकी अवहेलना आरम्भ कर दी। उसके दो वजीरों गाजीउद्दीन हैदर और सफदरजंग में प्रधान वजीर पद के लिए भयंकर प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हो गई थी। इसमें गाजीउद्दीन को सफलता मिली और उसने सफदरजंग को अवध में खदेड़ दिया।

(६) आलमगीर द्वितीय (सन् १७५४-१७५९ ई०)- यह एक दुर्बल शासक था। उसका वैमनस्य अपने वजीर और गद्दी दिलाने वाले गाजीउद्दीन (इमाद-उल-मुल्क) से ही हो गया था, जिसने अन्ततः सन् १७५६ ई० में उसे मार डाला और कामबख्श के पौत्र को शाहजहाँ तृतीय के नाम से शासक बनाया, लेकिन किसी भी अमीर ने उसे मान्यता नहीं दी। आलमगीर ने दिल्ली की षड्यंत्रपूर्ण एवं अनिश्चित राजनीतिक स्थिति को देखते हुए उसे अपने भाग्य पर छोड़ दिया था। वह अवध, बिहार, बंगाल और उड़ीसा में रह कर कालक्षेप करता रहा।

(७) शाहआलम द्वितीय (सन् १७५९-१८०६ ई०)—सन् १७५९ ई० में आलमगीर की मृत्यु के बाद उसका लड़का शाहआलम जो उस समय पटना में था, दिल्ली की गद्दी पर बैठना चाहता था, परन्तु उसे कहीं से भी सहायता न मिली।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १७६१ ई० में पानीपत में हुई तीसरी लड़ाई के समय अहमदशाह अब्दाली ने उसे दिल्ली के बादशाह के रूप में मान्यता दी और अवध के नवाब शुजाउद्दौला को उसका वजीर नियुक्त किया। तत्पश्चात् शाहंशाह की सत्ता का एक प्रकार से अन्त हो गया। वह नाममात्र का बादशाह रह गया। उसे परिस्थितिवशात् सन् १७५९ ई० से सन् १७७१ ई० तक बिहार में ही रहना पड़ा, जिससे ११ वर्षों तक सिंहासन खाली रहा। वह कभी मराठों से सहायता माँगता और कभी अंग्रेजों से। आगे चलकर उसकी भी आँखें फोड़ दी गई और उसे बड़े कष्ट में दिन काटने पड़े। उसके जीवनकाल में ही उत्तरी भारत के एक बड़े क्षेत्र का शासन अंग्रेजों के हाथ में आ गया था। सन् १८०६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। तदनन्तर दो और नाममात्र के बादशाह हुए जिनमें अकबर द्वितीय सन् १८०६—१८३७ ई० तक और बहादुरशाह द्वितीय सन् १८३७—१८५७ ई० तक रहे। किन्तु वे ईस्ट इंडिया कम्पनी की कृपा पर आश्रित थे। बहादुरशाह ने सन् १८५७ ई० में विद्रोहियों का साथ दिया। फलतः उसकी नाममात्र की बादशाहत भी छीन ली गई और वह मृत्युपर्यन्त रंगून में एक बन्दी के रूप में रहा।

इस प्रकार बाबर और अकबर द्वारा भारत में स्थापित मुगलवंश का शासन समाप्त हुआ। इस राजवंश में उत्तराधिकार सम्बन्धी किसी निश्चित नियम के न होने तथा दरबार के अमीरों की शक्ति को सीमित रखने का कोई विवादरहित विधान न होने के कारण सबल होते हुए भी बादशाहों की सत्ता सदैव विवादपूर्ण और विपत्तिग्रस्त बनी रही। उन्हें बार-बार आन्तरिक विद्रोहों, दलगत उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमणों का सामना करना पड़ता था। दरबारी सदा इसी प्रयत्न में रहते थे कि सबल शासकों को जैसे भी हो, गद्दी से उतार कर दुर्बल व्यक्तियों को स्थापित किया जाय ताकि उनको मनमानी करने का अवसर मिलता रहे। फलतः हम देखते हैं कि औरंगजेब के बाद प्रायः कठपुतली शासकों का आवागमन बना रहा। मुगलों की केन्द्रीय शक्ति की दुर्बलता का लाभ उठाकर मराठे, सिक्ख और जाट उत्तर भारत में खुलेआम लूट-पाट करते रहे और जन-जीवन असुरक्षित रहा।

२. मुगल बादशाहों द्वारा श्री चरणदास का सम्मान—

जैसा कि हम प्रथम अध्याय में बता चुके हैं, चरणदास जी के जीवनकाल (सन् १७०३–१७८२ ई०) में मुख्यतः ७ बादशाह दिल्ली की गद्दी पर आये थे। इनमें से अधिकांश ने उनका सम्मान किया था और किसी न किसी रूप में वे चरणदास जी से सम्बद्ध रहे। कहीं भी कोई उल्लेख ऐसा नहीं मिलता कि कभी किसी बादशाह या उसके अमीर-उमराओं ने उनकी या उनके आश्रम के महत्व की अवहेलना की हो। इन बादशाहों का कालक्रम इस प्रकार है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) बहादुरशाह (सन् १७०५–१७१२ ई०)—इसके जीवनकाल में चरणदास जी बाल्यावस्था में थे। उनका जन्म ही सन् १७०३ ई० में हुआ था। अतः इस अवधि के बीच घटित घटनाओं का उनके मस्तिष्क के ऊपर विशेष प्रभाव न होगा। इस बीच सन् १७०९ ई० में छः वर्ष की अवस्था में (सन् १७०९ ई० में) वे बहादुरपुर से अपने नाना के यहाँ दिल्ली में रहने के लिये आ गये थे। बहादुरशाह के शासनकाल के अन्तिम तीन वर्षों के घटनाक्रम ने दिल्ली स्थित उनके नाना के परिवार को अवश्य प्रभावित किया होगा।

(२) जहाँदारशाह—इस बादशाह का शासनकाल सन् १७१२ से १७१३ ई० अर्थात् मात्र एक वर्ष का ही रहा। अतः उनके मस्तिष्क पर प्रभाव की दृष्टि से उसका भी कोई विशेष महत्व नहीं है। इस अवधि में वे मुल्ला कादरबख्श से शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

(३) फर्रुखसियर—इसका शासनकाल सन् १७१३ से १७१९ ई० के बीच था। इस बीच श्रीरणजीत (चरणदास) किशोरावस्था में थे और दिल्ली में ही योगाभ्यासरत थे। उस समय दिल्ली दरबार के ईरानी, तूरानी, अरबी और हिन्दुस्तानी अमीरों में भयंकर प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। जनता का जीवन असुरक्षित था और बादशाह का अपने मुसाहिबों पर कोई नियन्त्रण न था। अतः कहा जा सकता है कि इस अवधि के बीच घटित घटनाओं की किशोर चरणदास के मन पर अमिट छाप पड़ी होगी और उनका वैराग्य-भाव दृढ़ हुआ होगा।

इसके पश्चात् दो अत्यन्त अल्पजीवी शासक दिल्ली की गद्दी पर आये—(१) रफीउद्-दजात और (२) रफीउद्दौला। दोनों कठपुतली बादशाह थे और कुछ ही महीनों के नाम मात्र के शासक रहे।

(४) मुहम्मदशाह—इस बादशाह को 'रंगीले' की उपाधि प्राप्त थी। इसका शासन काल सन् १७२० से १७४८ ई० तक रहा। सन् १७२३ ई० में चरणदास जी को प्रसिद्ध पौराणिक मुनि शुकदेव जी गुरु के रूप में प्राप्त हुये। तदनन्तर सन् १७३४ ई० तक (१२ वर्षों तक) दिल्ली के फतेहपुरी नामक स्थान के पास बीरमदे के नाले के निकट एक गुफा में कठोर योग साधना के उपरान्त वे सिद्ध साधक के रूप में दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्र में विख्यात हो गये थे। वे परकाय प्रवेश, गजक्रिया और परान्तःकरण ज्ञान की शक्ति प्राप्त कर चुके थे। सन् १७३९ ई० में नादिरशाह के दिल्ली पर हुए आक्रमण के छः मास पूर्व ही उन्होंने इस आक्रमण की तिथि-वार सहित विस्तृत रूपरेखा भविष्यवाणी के रूप में लिख कर अपने हस्ताक्षर सहित बादशाह मुहम्मदशाह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के वजीर सआदत खाँ के माध्यम से बादशाह के यहाँ भेज दिया था। यदि वजीर और बाहशाह ने उनकी इस भविष्यवाणी पर विश्वास करके सुरक्षात्मक उपाय किये होते तो इतना बड़ा विनाश न होता। अन्ततः जब सारी घटनाएँ उनके द्वारा फर्द पर लिखित, भविष्यवाणी के अनुसार घटित हो गईं तब वजीरों और स्वयं बादशाह की आँखें खुलीं।[1] जब इसकी चर्चा नादिरशाह तक पहुँची तो उसने भी चरणदास को बुलवाने का आदेश दिया। नादिरशाह ने उनसे कुछ दिखाने के लिए कहा और चरणदास जी ने अप्रत्यक्षतः कई चमत्कारों से उसे चमत्कृत ही नहीं किया बल्कि भयभीत भी कर दिया।[2] अन्ततः उसे उनसे क्षमा-प्रार्थना करनी पड़ी और उसने वादा किया कि भविष्य में वह किसी फकीर की परीक्षा नहीं लेगा। इसके साथ ही उसने २५०० स्वर्णमुद्राएँ और कुछ जागीर भेंट के रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना की, परन्तु चरणदास जी ने स्वीकार नहीं किया। इस घटना का वृत्त उनके शिष्य जोगजीत जी ने इस प्रकार दिया है—

इतने में तड़का हो आया। महाराज ने बोल सुनाया॥
मोहि अस्थल को रुखसत कीजै। कछू मँगाय सवारी दीजै॥
नादिरशाह सुनके मुरझाया। ऐसा सकुन न वाहि सुहाया॥
कहा कि रहिये दिन दो चारा। करहूँ और मकान नियारा॥
जब लग मैं यहाँ तब तक रहिये। मेरी खातिर रहाही चहिये॥

महाराज जब मुख कही, करता यों ही जान।
पर दीदारी लोग ह्वाँ, बिन देखे हैरान॥

नादिरशाह कही लाचारा। सुखन तुम्हारा जाय न टारा॥
कीना हुकुम नालकी आवै। बाबा साहिब घर को जावै॥
मुहरें पचीस सौ मगवाई। महाराज को भेंट चढ़ाई॥
फेर दई अड़ रहा न मानै। कहि रख बरकत होय खजाने॥
नादिरशाह कही यह करिहूँ। सुखन तुम्हारा दिल में धरिहूँ॥
हिन्दू तुरुक अब एक निहारे। ये सब मुरशिद करम तिहारे॥

---

१. इस भविष्यवाणी में नादिरशाह के भारत की सीमा पर ससैन्य पदार्पण से लेकर वापस लौट जाने तक की घटनाओं का विस्तृत विवरण था। दिल्ली की लूट की भविष्यवाणी इन शब्दों में की थी—

शहर नवे के मध्य ही लूट कतल ही रीत।
सत्रह सै पिच्चानबे संवत् खोटा बीत॥—लीलासागर : पृ० १४२

२. गुरुभक्तिप्रकाश (स्वामी रामरूप कृत) : पृ० ८६–८७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर मुहब्बत करते रहियो। हजरत मुझको भूल न जइयो ।।
इन्हें नालकी में बैठाया। एक अमीर जु संग पठाया ।।
शाह कुरनिश करके हटा, महाराज चले धाय।
आगे अस्थल जब निकट, जै जै भई लखाय ।।[1]

नादिरशाह सन् १७३९ ई० की वैशाख सुदी अष्टमी, रविवार को वापस गया था।[2]

नादिरशाह के वापस जाने के कुछ समय उपरांत मुहम्मदशाह 'रंगीले' का चरणदास जी के आश्रम में आगमन हुआ। कई घण्टे तक सत्संग होता रहा। फिर उन्होंने बादशाह को वापस जाने का आदेश दिया। उसने चरणदास जी की सेवा मे तमाम भेंट और जागीर आदि दी जिसे उनके शिष्यों ने स्वीकार किया। उन्होंने स्वयं कुछ भी नहीं लिया।[3] इसके उपरांत बादशाह अपनी बेगमों के साथ प्रायः आश्रम में आते रहे और भेंट के रूप में कुछ न कुछ अर्पित करते रहे। उन पर चरणदास जी की विशिष्ट कृपा बनी रही। यह उन जैसे महात्माओं के आशीर्वाद का ही परिणाम था कि यह बादशाह २९ वर्ष तक दिल्ली की गद्दी पर बना रहा।

(५) अहमदशाह सानी—सन् १७४८ ई० में मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका बेटा अहमद शाह गद्दी पर बैठा। छः वर्षों का उसका शासनकाल

---

१. लीलासागर : पृ० १५७–१५८।

२. वैशाख सुदी आठें रविवारा। बहुत खजाना लेय सिधारा।'
गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ९१।

३. तीन महीने पीछे चीन्हों। मुहम्मदशाह मिलन को कीन्हों ।।
नजर धरी अस दरशन कीना। बैठन कारन आयसु लीना ।।
चार घड़ी बैठे रहे बिनती करी बनाय।
महाराज किरपा करी उर से लिया लगाय ।।
फेर कही अब रुखसत लीजै। हमें फरागत बेगी दीजै ।।
द्रव्य जवाहर सब ले जइये। यह तो हमको कछू न चहिये ।।
याही में है खुशी हमारी। कछू न छोड़ों ले जा सारी ।।
कही बादशाह मैं नाहिं लेहूँ। उलटी घर कैसे ले जैहूँ ।।
दूसरपति खुश होय विशेखा। खोल जवाहर सब ही देखा ।।
नौ रतनन की पहुँची लीनी। वाके मन की खुशी जु कीनी ।।
और सभी दिया फेर के कही कि तुम ले जाव ।।
गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ९२–९३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता के लिए अत्यन्त पीड़ादायक था। इस बीच ईरान के अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर कई बार आक्रमण किया। सन् १७५४ ई० में बादशाह के मीरबख्शी इमाद ने बादशाह को गद्दी से उतार दिया और उसकी आँखें फोड़ दीं। उस समय तक चरणदास की पर्याप्त ख्याति हो चुकी थी। उन्होंने अनेक चमत्कारपूर्ण कार्यों से सभी वर्गों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। अहमदशाह चरणदास जी के आश्रम में आया या नहीं, इसका पता नहीं चलता। यदि उसे इस सिद्ध सन्त का आशीर्वाद मिला होता तो उसकी ऐसी दुर्गति नहीं हुई होती। संभवतः वह हिन्दू-मुसलमान के भेद-भाव से ग्रस्त था।

(६) आलमगीर द्वितीय—अहमदशाह सानी के पदच्युत हो जाने के पश्चात् वजीरों ने जहाँदारशाह के पुत्र मुहम्मद अजीमुद्दौला को आलमगीर द्वितीय नाम से दिल्ली की गद्दी पर आसीन किया। गद्दी पर आने के कुछ काल पश्चात् उसने अपने एक अमीर के माध्यम से चरणदास जी के दर्शन की इच्छा व्यक्त की परन्तु चरणदास जी ने मिलने की स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने भविष्य-वाणी करते हुए यह कहला दिया—

वाका राज नहीं थिर होना। और सितावी ह्वै है गौना॥
थोड़ी उमर रही जग माहीं। तातें मिलिबें कूं चित नाहीं॥
मौत छुरी की यह मरि जैहे। बहुत दिना जीवन नहिं पैहैं॥[1]

अंततः बादशाह स्वयं मिलने आया और भेंट स्वरूप उसने पाँच गाँव और कुछ स्वर्ण मुद्राएँ देने का प्रस्ताव किया, जिसे चरणदास जी ने स्वीकार नहीं किया। यह भेंट सन् १७५७ ई० में हुई थी। इसके दो वर्ष बाद २९ नवम्बर, सन् १७५९ ई० को उसके बजीर इमाद-उल-मुल्क ने कोटला फिरोजशाह के एक सन्त से भेंट कराने के बहाने वहाँ ले जाकर धोखे से उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार चरणदास जी की उसके सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी यथार्थ सिद्ध हुई। इस घटना से इतना अवश्य संकेतित होता है कि शासन की दृष्टि से अयोग्य होने पर भी वह आस्थावान् व्यक्ति था। साधुओं-फकीरों में उसका विश्वास था। ५५ वर्ष की अवस्था में वह गद्दी पर बैठा था। इसके पूर्व का अधिकांश समय उसने जेल में ही व्यतीत किया था। सम्भवतः इसीलिए वह छल-प्रपंच रहित और श्रद्धालु था। वह दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता था तथा राज-काज से अनभिज्ञ था। उसकी मृत्यु के बाद उसके बेटे अलीगौहर की अनुपस्थिति में दरबारियों ने शाहजहाँ तृतीय को बादशाह घोषित किया। शाहजहाँ ने उसके सारे परिवार को कैद कर लिया।

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १८५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १७५७ ई० (सं. १८०४) में ही अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब के सूबे को अधीनस्थ करने के बाद दिल्ली शहर पर अधिकार कर लिया और १ महीने तक शहर में रहकर उसने लूट-पाट और नरसंहार किया। चरणदास जी का आश्रम उसके प्रकोप से चमत्कारिक ढंग से बच गया था। इस घटना का वर्णन चरणदास जी के वरिष्ठ एवं प्रिय शिष्य रामरूप जी ने इस प्रकार किया है—

दुर्रानी कन्धार सूँ, आया अहमदशाह।
दिल्ली में दखनी हते लूट कतल भई माह॥

भक्तराज के अस्थल माँही। आये मुगल चढ़ाये वाहीं॥
महाराज पै तेग चलाई। रह गया हाथ चली वह नाहीं॥
फिर दूजे ने तेग चलाई। हाथ बँधे ह्वाँ तक नहिं आई॥
फिर वै सब चरणों पर गिरिया। इक इक शस्तर भेंट जु धरिया॥
भय कूँ देख लोग भज गये। अस्थल में दो चारेक रहे॥
भगे जिन्हों कुछ औरै कही। भक्तिराज की देही गई॥
अतीत संग थे सो सब मारे। भाजि बचे सो भाग हमारे॥
सुन सुन बहुत देखने आये। महाराज आनंद सूँ पाये॥

और साधु जो पास थे, तिनकूँ लगी न आँच।
धनि धनि सब कहने लगे, आँखों देखा साँच॥[1]

ज्ञातव्य है कि अब्दाली का भारत भूमि पर यह चौथा आक्रमण था। इसमें मराठों और दक्षिण भारत से आये मुसलमानों की सामूहिक हत्या की गई थी।[2]

(७) अलीगौहर (शाह आलम द्वितीय)—आलमगीर द्वितीय के बाद उसके बेटे अलीगौहर ने शाह आलम द्वितीय के नाम से २० दिसम्बर, सन् १७५९ ई० को स्वयं को बादशाह घोषित किया। जिस समय बादशाह की मृत्यु हुई, अलीगौहर पटना में था। बादशाह की विधवा बेगम अपने बेटे के भविष्य के सम्बन्ध में चिंतित थी। वह सन्त का आशीर्वाद लेने के लिए चरणदास जी के शुकदेवपुरा के आश्रम में आई। चरणदास जी ने उसे लिखकर दे दिया कि उसका बेटा शीघ्र ही बादशाह होगा। भविष्यवाणी सच हुई। उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर अमीरों द्वारा आलमगीर के जिस अन्य पुत्र को शाहजहाँ तृतीय के नाम से बादशाह की गद्दी पर बैठाया गया था उसे कुछ ही महीने के बाद पेशवा के सेनापति भाऊराव ने पदच्युत कर दिया और अलीगौहर के दिल्ली वापस आने तक उसके बेटे

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १८७
२. लीलासागर : पृ० २५५-५६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाँवख्त को पिता के स्थान पर कार्यभार सँभालते रहने के लिए नियुक्त कर दिया।[1] इस प्रकार शाहजहाँ तृतीय गद्दी से उतार दिया गया। पानीपत की तीसरी लड़ाई के समय (जनवरी सन् १७६१ ई०) में अहमदशाह अब्दाली ने शाह आलम द्वितीय को बादशाह के रूप में मान्यता दी और शुजाउद्दौला को उसका वजीर नियुक्त किया।

बादशाह होने के कुछ दिनों बाद वह धूम-धाम के साथ चरणदास जी का आशीर्वाद लेने के लिए आश्रम में आया। उसकी भेंट भी स्वीकार की गई।[2] वह बीच-बीच में आश्रम में दर्शनार्थ आता रहता था। येन-केन-प्रकारेण वह सन् १८०६ ई० तक गद्दी पर रहा। चरणदास जी का स्वर्गवास सन् १७८२ ई० में ही हो गया था। यद्यपि परिस्थितिवशात् यह बादशाह गद्दी प्राप्त करने के ११ वर्ष बाद तक दिल्ली के बाहर ही रहने को बाध्य था तथा अंग्रेजों, जाटों, और मराठों की कृपा पर निर्भर था तथापि चरणदास जी के प्रति समर्पित था। जब तक वे जीवित रहे, बादशाह के दिन भी कुशलतापूर्वक व्यतीत हुए। नाममात्र को ही सही, परन्तु उसकी बादशाहत सुरक्षित रही। इसी वर्ष (सन् १७८२ ई०) उसके प्रभावशाली और योग्य वजीर मिर्जा नजफ खाँ का भी शरीरांत हुआ। सन् १७८७ ई० में नजीबुद्दौला का प्रपौत्र और वजीर जाबिता खाँ का बेटा गुलाम कादिर रुहेला मीरबख्शी नियुक्त हुआ। उसने सन् १७८८ ई० में बादशाह की आँखें निकलवा लीं। अन्ततः अन्धे सम्राट् ने अपना जीवन और अधिकार मराठों और तत्पश्चात् अंग्रेजो के हाथ में सौंपकर नाम मात्र की बादशाहत सुरक्षित रखी।

शाह आलम द्वितीय ने सहजोबाई जी, स्वामी सिद्धराम और गो० जुगतानन्द को अलग-अलग जागीरें दी थीं। सन् १७६६ ई० (सं० १८२३) में इस बादशाह ने सहजोबाई जी को ११०० स्वर्ण मुद्राएँ और बंथला नामक एक गाँव (तहसील-

---

१. मरहट्टों ने मता उपाया। जमावखत युवराज बनाया॥
गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १९२।

२. तीज सुदी दरसन को आया। सकल कुटुंब को संगहि लाया॥
दादी भूआ और महतारी। अरु संग आई बीसक नारी॥
फूफा मिरजा बाबा आया। महाराज का दरशन पाया॥
भेंट चढ़ाई बहुत सी, लीना ना महाराज।
मुख सेती ऐसे कहा, राम निमित किये काज॥
आज्ञा में जो रहोगे, तो पावोगे नाम।
हुकुम होयगा मुल्क में, सुधरेंगे सब काम॥
पाँच बार ऐसे ही आये। भक्तराज को नाहिं सुहाये॥
वही : पृ० १९३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाजियाबाद) भेंटस्वरूप दी थी। चरणदास जी के जीवनकाल में उनके शिष्यों को मिलने वाली यह प्रथम जागीर थी। इसके कुछ दिनों बाद इसी बादशाह से उन्हें वृहत्तर देहली क्षेत्र के भोरगढ़, बादली, भलसुआ, जहाँगीरपुर और माँदीपुर— इन पाँच गाँवों की आंशिक जागीर भी प्राप्त हुई। इसी प्रकार शाह आलम द्वितीय ने गुसाईं जुगतानन्द और रामरूप जी को भी जागीरें और स्वर्णमुद्राएँ भेंट में दी थीं। वह उस आश्रम का पक्का भक्त और सेवक था। उसके कारण इस सम्प्रदाय के वरिष्ठ शिष्यों का पर्याप्त यश बढ़ा।

इन बादशाहों की उनके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा से प्रभावित होकर पानीपत के नवाब साकर खाँ, कर्नाल, झींद, संगरूर, लाहौर, पेशावर और मालेर कोटला के नवाबों, पटियाला के सिक्ख राजवंश तथा जयपुरनरेश सवाई महाराज ईश्वरीसिंह और प्रताप सिंह तथा अलवर के नरेशों आदि ने चरणदास जी और उनके शिष्यों को जागीरें भेंट में दी थीं। इसी प्रकार चरखारी नरेश, ग्वालियर की सिन्धिया महारानी बैजाबाई, बूंदी के राणा और महाराज रणजीत सिंह ने भी चरणदास जी के शिष्य-प्रशिष्यों का सम्मान किया था। दिल्ली के मुगल बादशाहों से सम्मानित होने के कारण मुगल दरबार के अमीर-उमराओं और अधीनस्थ राजा-महाराजाओं के लिये स्वभावतः चरणदास जी पूज्य हो गये थे।

यद्यपि इस सम्प्रदाय का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु इसके अनुयायी महात्माओं की सिद्धियों से प्रभावित होकर अनेक समकालीन राजपुरुष इस सम्प्रदाय के महात्माओं की ओर आकर्षित हुये थे और वे अपनी श्रद्धा निवेदित करने के लिए भेंट में जागीर या स्वर्णमुद्राएँ प्रदान करते थे। यह सम्प्रदाय मूलतः निवृत्ति-मार्गी और भक्ति साधना को माननेवाला वैष्णव सम्प्रदाय था। इसमें सांसारिक वैभव को त्याज्य माना जाता था और त्याग-तितिक्षा को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। इसीलिए ये लोग राज-समाज से दूर रहना चाहते थे।

चरणदास जी द्वारा प्रचारित शुक सम्प्रदाय उन दिनों शान्तिदाता के रूप में स्वीकृत था। उनकी कीर्ति चतुर्दिक् फैली हुई थी। सन् १७५८ ई० में दिल्ली को लूटने के समय भी अहमदशाह अब्दाली जैसे ईरानी विजेता ने इनके आश्रम को लूट-पाट से सुरक्षित रखा। इतना समृद्ध आश्रम इन लुटेरों से बच जाय, यह अपने-आप में आश्चर्यजनक बात है परन्तु यह चरणदास की महानता और सिद्धियों का प्रमाण भी है।

३. सिक्ख शक्ति का अभ्युदय और चरणदासी सम्प्रदाय—

सिक्ख धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक देव एक सिद्ध साधक थे। वे धर्म के बाह्याडम्बरों और छूआ-छूत आदि में विश्वास नहीं रखते थे। उनके बाद में हुए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन गुरुओं ने उन्हीं के पथ का अनुसरण किया। चौथे गुरु रामदास को सम्राट् अकबर ने पंजाब में कुछ भूमि दान में दी थी, जिस पर उन्होंने अमृतसर नामक सरोवर का निर्माण कराया और गुरुद्वारा भी बनवाया। पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव ने 'गुरु ग्रन्थ साहब' का संग्रह किया था। विद्रोही शाहजादा खुसरो को आशीर्वाद देने के कारण उनसे रुष्ट होकर जहाँगीर ने उन्हें कैद कर लिया था। सन् १६०६ ई० में जेल में ही उनके जीवन का अन्त हुआ। तभी से सिक्खों ने गुरु हरगोविन्द साहब के नेतृत्व में सैनिक रूप में संगठित होना आरम्भ किया था। उनके नवें गुरु तेगबहादुर की हत्या करके औरंगजेब ने सिक्ख शक्ति को चुनौती दी थी। इस घटना ने सारे पंजाब में खलबली पैदा कर दी थी।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके दमन से पीड़ित उनके पुत्र और उत्तराधिकारी गुरु गोविन्द सिंह और उनके सिक्ख अनुयायियों ने अपनी शक्ति बढ़ानी आरम्भ की। सन् १७०८ ई० में गोदावरी के तट पर नदेर नामक स्थान पर गुरु गोविन्द सिंह की हत्या कर दी गई। उनकी मृत्यु के बाद सिक्खों ने श्री बन्दा बहादुर को अपना सेनापति बनाया। उनके नेतृत्व में चालीस हजार सिक्ख जमा हुए। उनका पहला आक्रमण सन् १७०९ ई० में सरहिन्द पर हुआ। वृद्ध सूबेदार वजीर खाँ मारा गया। सन् १७१२ ई० में लाहौर पर सिक्ख सेना ने आक्रमण किया परन्तु सफलता नहीं मिली।

बादशाह बहादुरशाह के दो सेनापतियों मुहम्मद अमीन खाँ और रुस्तम खाँ के नेतृत्व में शाही सेना से हुए युद्ध में सिक्ख सैनिक बुरी तरह परास्त हुए थे। सन् १७१५ ई० में फर्रुखसियर के अधीनस्थ लाहौर के सूबेदार अब्दुलसमद खाँ ने सिक्खों को पुनः पराजित किया और बन्दा को गुरुदासपुर के किले से कैद कर लिया गया। दिल्ली के किले में लोहे की शलाखों से तपा-तपा कर उसे मार डाला गया। तदुपरान्त मुगल सेना ने सिक्खों का कठोरता से दमन किया। सिक्खों को देखते ही उनकी गर्दन उड़ा दी जाती थी। उनमें से प्राण-रक्षा के लिए कुछ मुसलमान भी बने। परन्तु इससे सिक्ख हतोत्साहित नहीं हुए। वे धीरे-धीरे शक्ति-संचय करते रहे। बीच-बीच में वे अवसर पाकर लूट-पाट भी करते रहते थे। सन् १७३९ ई० में जब नादिरशाह पंजाब, रुहेलखण्ड और दिल्ली को लूट कर अतुल सम्पत्ति के साथ लौट गया तो सिक्खों को इस अराजक स्थिति से लाभ उठानें का मौका मिल गया। उन्होंनें पुनः धन और शक्ति का संचय आरम्भ कर दिया। सन् १७४६ ई० तक वे छोटे-बड़े जत्थे बनाकर निर्द्वन्द्व होकर लूट-खसोट करते रहे। दिल्ली की स्थिति इतनी अस्त-व्यस्त थी कि उनकी ओर देखने की किसी को फुरसत ही नहीं थी। इस प्रकार उनके पास पर्याप्त सम्पत्ति और सेना जुट गई। उनके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला जल रही थी। वे अपने अन्तिम गुरु गोविन्द

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंह और बन्दा बहादुर की हत्याओं का बदला लेना चाहते थे। अब वे मुगल रियासतों से भी कर वसूल करने लगे थे। सन् १७४६ ई० में उनके दमन के लिए दिल्ली से बहुत बड़ी सेना भेजी गई। सिक्ख पराजित हुए और निर्दयतापूर्वक उनका वध किया गया। फिर भी वे शक्ति-संचय में जुटे रहे और शीघ्र ही उनके पास अच्छी सेना तैयार हो गई।

सन् १७४८ ई० में अहमदशाद अब्दाली की विजेता सेनाओं पर सिक्खों ने पीछे से हमला किया। इस तरह वे दिल्ली के बादशाहों और उनके नवाबों की दुर्बलता का लाभ उठाते रहे। इधर दिल्ली के बादशाहों की निगाहें हमेशा अब्दाली की ओर ही रहीं क्योंकि थोड़े-थोड़े अन्तराल में ८ बार दिल्ली की सल्तनत पर उसने हमला किया था। अतः सिक्खों को लूट-पाट करने का विशेष अवसर मिला। सरदार जस्सासिंह कलाल के नेतृत्व में वे पुनः संगठित हुए, परन्तु सन् १७५२ ई० में सिक्खों को लाहौर के सूबेदार मीर मन्नू के हाथों फिर पराजित होना पड़ा। सन् १७५६ ई० में अहमदशाह अब्दाली के बेटे और पंजाब के सूबेदार तैमूर ने सिक्खों को अमृतसर और उसके आस-पास से खदेड़ दिया। सन् १७६१ ई० में पानीपत की लड़ाई में सशक्त मराठे हार गए और इसके साथ ही सिक्खों की शक्ति भी दुर्बल हुई। पानीपत की पराजय के फलस्वरूप राजपूतों, मराठों, जाटों और सिक्खों—इन चारों को मिलाकर भारत में हिन्दू राज्य स्थापित करने की मराठों की योजना ध्वस्त हो गई। सन् १७६२ ई० में लुधियाना के निकट सिक्खों की अहमदशाह अब्दाली के हाथों भयंकर पराजय हुई। इसमें पचीस हजार सिक्ख मौत के घाट उतार दिए गए। सिक्ख इतिहास में इसे महान् विपत्ति (लुघुलघार) की संज्ञा दी जाती है। यह अहमदशाह का भारत पर छठां आक्रमण था। इसी के साथ पटियाला की सिक्ख रियासत का इतिहास आरम्भ होता है, जिसकी स्थापना में अहमदशाह का भी योगदान था।

सन् १७६४ ई० में सिक्खों ने जाटों के साथ मिलकर दिल्ली को घेर लिया। इसमें मराठों से भी सहायता मिली। इस बीच अहमदशाह अब्दाली ने सातवीं बार आक्रमण किया और मराठों में भी फूट पड़ गई। फलतः दिल्ली पर अधिकार करने की मराठों तथा सिक्खों की योजना असफल हो गई। सन् १७६७ ई० में अब्दाली ने पंजाब पर आक्रमण किया परन्तु सिक्खों की विजय हुई। इस बीच सरहिंद और लाहौर के सूबे उनके अधिकार में आ गये थे। सन् १७७२ ई० में झण्डासिंह के नेतृत्व में मुलतान पर सिक्खों ने अधिकार कर लिया, परन्तु उनकी यह विजय स्थायी नहीं रह सकी। सन् १७८१ ई० में सिक्खों के विरुद्ध दिल्ली के शासन ने अभियान आरम्भ किया। इसमें सिक्खों की बड़ी दुर्दशा हुई। बहुत से लोग भूखों मर गए। असंख्य लोग हरियाना और पंजाब छोड़कर भाग गए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R 0-2/752

सन् १७८३ ई० में मेरठ में सिक्खों को पुनः मुँहकी खानी पड़ी। सन् १७८५ ई० में सिक्खों और महादजी के नेतृत्व में मराठों की सन्धि हुई और सन् १७८८ ई० में दौलतराव सिन्धिया का दिल्ली पर अधिकार हो गया। रुहेला सरदार गुलाम कादिर शाह द्वारा उसी वर्ष शाह आलम की आँखें निकाल ली गईं। अब तक सिक्खों की शक्ति पर्याप्त बढ़ गई। उनकी धाक अवध से लेकर सिन्ध तक जम गई थी। वे बादशाहों और सूबेदारों के आपसी संघर्षों में भी दखल देने लगे थे और किसी एक या दूसरे पक्ष के साथ सहयोग करके लाभान्वित हो रहे थे। उनके विभिन्न मिसिल (संगठन) अपनी-अपनी शक्ति बढ़ाने की प्रतिद्वन्द्विता में एक दूसरे से ही टकरा रहे थे। फिर भी तब तक वे एक ऐसी शक्ति बन चुके थे, जिसकी कोई उपेक्षा नहीं कर सकता था। सन् १७९९ ई० में महादजी सिन्धिया के एक अंग्रेज सेनापति जार्जटामस के साथ सिक्खों का संघर्ष हुआ, जिसमें सिक्ख पराजित हुए। इस प्रकार पंजाब और हरियाणा के एक बड़े क्षेत्र पर मराठों का पुनः आधिपत्य हो गया।

103922

सन् १८०१ ई० के आसपास सिक्ख सरदार रणजीत सिंह का उदय हुआ। उन्होंने पंजाब के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। उन्हें अंग्रेजों का संरक्षण भी प्राप्त था। वे कूटनीति में निपुण थे। धीरे-धीरे उनकी शक्ति बढ़ती गई। परन्तु इसके साथ ही उनकी शासन-व्यवस्था में अंग्रेजों का हस्तक्षेप भी बढ़ता गया। ११ सितम्बर, सन् १८०३ ई० को दिल्ली में लार्ड लेक के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना और सिक्खों की शक्ति-सहित मराठों की सेना में एक निर्णायक युद्ध हुआ, जिसमें मराठे पराजित हुए और सिक्ख सेना भी छिन्न-भिन्न हो गई। इस प्रकार मराठों से शाह आलम द्वितीय की रक्षा हुई। इस युद्ध के कुछ समय उपरान्त सरहिन्द के सिक्खों ने अंग्रेजों के समक्ष प्रस्ताव रखा कि वे अपनी सेनाओं की सेवाएँ आवश्यकता पड़ने पर उन्हें अर्पित कर सकते हैं। सन् १८०४-५ ई० तक तो अधिकांश सिक्ख-मिसल अंग्रेजों के साथ हो गये थे। महाराज रणजीत सिंह ने सन् १८१४ ई० में काश्मीर पर आक्रमण किया, किन्तु वे उसमें असफल रहे। सन् १८१८ ई० में मुलतान तथा पेशावर में उनकी प्रभुसत्ता स्थापित हो गई। शाह शुजा से कोहिनूर हीरा उन्हें प्राप्त हुआ। आगे उनकी दृष्टि सिन्ध और लद्दाख पर भी जमी हुई थी। सन् १८३९ ई० में रणजीत सिंह का निधन हो गया। उनका सारा जीवन युद्धों में ही बीता। इस प्रकार उन्होंने सिक्ख राज्य की विधिवत स्थापना करने में सफलता पायी।

महाराज रणजीत सिंह के परलोक गमन के बाद उनके उत्तराधिकार का प्रश्न उलझ गया। फलतः आपसी विवाद में सिक्ख शक्ति बिखरने लगी। सिक्ख

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना इस झगड़े से दूर रही और उसने चीनियों, तिब्बतियों, नेपालियों और अन्य पहाड़ी राजाओं के राज्यों पर आक्रमण करना जारी रखा। इनमें से कुछ को जीत कर राज्य में मिला भी लिया और कुछ के साथ सन्धि कर ली। सिक्खों की बढ़ती हुई शक्ति देखकर अंग्रेज घबरा गए और वे उस शक्ति को कम करने की दिशा में प्रयत्नशील हुए। सन् १८४४ ई० में सिक्ख-सेना और पंजाब के सामन्त वर्ग में भी आपसी कलह का सूत्रपात हुआ। अंग्रेजों ने सिक्खों में आपसी फूट डाल कर धीरे-धीरे सिक्ख राज्य को हथियाना आरम्भ किया। सन् १८४६ ई० तक अंग्रेजों और सिक्खों में एक बड़े युद्ध की सम्भावना प्रकट होने लगी। कुछ दिनों के पश्चात् युद्ध छिड़ भी गया। आरम्भ में सिक्खों की विजय होती रही, परन्तु अंततः सन् १८४७ ई० में उनमें आपस में सन्धि हो गई। सिक्ख राज्य पर अंग्रेजों का संरक्षकत्व स्वीकार कर लिया गया। धीरे-धीरे सन् १८५७ ई० तक पंजाब में अंग्रेजों की धाक जमती गई और उन्हें सिक्ख सूबों का बहुत बड़ा भाग हथिया लेने का अवसर मिला। सीमित क्षेत्रों में बची-खुची रियासतें उनकी कृपा पर बनी रहीं।

सिक्ख स्वभावतः एक लड़ाकू धार्मिक संगठन था। अपने धर्म की रक्षा के लिए सिक्ख गाजर-मूली की तरह अपना सिर कटा सकते थे परन्तु झुकना उनके स्वभाव में नहीं था। उनमें नेतृत्व का अभाव बराबर बना रहा क्योंकि वे प्रायः स्वतन्त्र विचार के थे और अनुशासन में बद्ध होने के आदी नहीं थे। उनकी शासन व्यवस्था सामन्तवादी संघीय प्रणाली की थी, जिसमें अनेक फिरके या संघ थे। किसी एक सरदार के नेतृत्व में बँध कर रहना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। वे अपनी इच्छा के अनुसार किसी का भी साथ देने या न देने के लिए स्वतन्त्र थे। उनकी शासन-प्रणाली अपूर्ण, अस्थायी और क्रमबद्धता के अभाव से पूर्ण थी।

मोटे तौर पर सिक्खों के १२ मिसल या संघ थे। प्रत्येक मिसल का एक सरदार होता था, जिसका आदेश मानना उस मिसल के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य था। इन मिसलों के नाम और उनके क्षेत्र भी निश्चित थे। उनके नाम इस प्रकार मिलते हैं—भंगी, निशानिया, निहंग, रामगढ़िया, नक्कई, कन्पा, सिंहपुरिया, अहलूवालिया आदि। इनमें से कुछ के नाम स्थान के अनुसार और कुछ के नाम गुण या वंश के अनुसार थे। इनमें भी खालसा और अकाली सिक्ख सर्वाधिक लड़ाकू और धर्मपरायण माने जाते हैं। ये अपेक्षाकृत अधिक साहसी, त्यागी और सांसारिकता तथा मुक्ति में सामंजस्य बनाये रखने के आग्रही होते हैं।

इन लोगों ने अपने गुरुमत की रक्षा के लिए अनेक बार प्राणों की आहुति दी। इनकी कट्टर धार्मिकता सब प्रकार से उदाहरणीय और आदर्श है। इनकी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति की मूल प्रेरणा इनका धर्म भाव ही है, परन्तु राजनीतिक सत्ता प्राप्ति की होड़ ने इनकी धार्मिक भावना को विकृत कर दिया था। कालान्तर में इनमें भी प्रायः वे सभी दुर्गुण आ गये जो प्रभुता और राजकीय शक्ति की देन होते हैं। क्षुद्र स्वार्थ-प्रेरित संकुचित मनोवृत्ति, स्वातन्त्र्य भावना का दूषित रूप, धर्म के विकृत स्वरूप का ग्रहण, खान-पान और आचार-विचार के दूषण आदि अनेक दोष इनमें भी आ गये थे। लूट-पाट, उत्पीड़न, परस्पर विद्वेष और युद्धप्रियता तथा अनेक धर्म-विदूषक आचार उनके द्वारा अपना लिये जाने से गुरुनानक तथा अन्य गुरुओं के धर्मोपदेशों की व्यापक अवहेलना दिखाई देने लगी। उनकी हिंसात्मक और लड़ाकू प्रवृत्ति उन्हें आपस में ही कट मरने की प्रेरणा देती थी। इस प्रकार वे आत्महंता प्रवृत्ति के शिकार हो रहे थे। फिर भी उनके शौर्य की गाथा प्रशस्त है। यदि उनमें वीरता के साथ व्यवहारकुशलता और दूरदर्शिता का योग रहा होता तो उनकी कथा कुछ और ही होती।

सिक्ख न केवल सिक्ख सम्प्रदाय के वरन् हिन्दूधर्म के अन्तर्गत समाविष्ट सभी सम्प्रदायों तथा मतों के संरक्षक थे। वे राम, कृष्ण तथा अन्य हिन्दू देवी-देवताओं, तीर्थों, व्रतों, उत्सवों एवं रीति-रिवाजों के पालक और रक्षक थे। दिल्ली में केन्द्रित तथा वहीं से उद्गमित होने के कारण चरणदासी सम्प्रदाय में उनकी विशेष आस्था थी। सिद्धान्त रूप में भी आरम्भिक चरणदासी सम्प्रदाय गुरु नानक देव, कबीर और दादूदयाल की परिष्कृत आचार-विचारमूलक मान्यताओं का ही अपनी बानियों में प्रचार करता प्रतीत होता था और इसके साथ ही स्वामी रामानन्द की भाँति अपने शिष्यों को सगुण साधनावलम्बी अथवा निर्गुण साधक होने की छूट देता प्रतीत हो रहा था। अतः इस सम्प्रदाय के प्रति सिक्खों का आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। साथ ही श्री चरणदास सहित उनके सैकड़ों चमत्कारी शिष्य भी समाज में श्रद्धास्पद बन रहे थे।

चरणदास जी के जीवन-घटनाक्रम से ज्ञात होता है कि कई नानकपंथी उनकी कड़ी परीक्षा लेने के पश्चात् उनके सन्तसुलभ स्वभाव और उनकी सिद्धियों से प्रभावित तथा अभिभूत होकर उनके शिष्य बने थे। इस प्रकार की एक घटना का उल्लेख चरणदास जी के शिष्य श्री रामरूप ने 'गुरुभक्ति-प्रकाश' में इस प्रकार किया है—

एक दिन एक नानक पन्थी हाथ में तूंबा और कन्धे पर कंथा लटकाये आठ अन्य अतीतों के साथ आश्रम में आ पहुँचा। सब ने चरणदास जी को प्रणाम किया और उनके पास वे बैठ गये। स्वामी जी के राजसी रंग-ढंग को देखकर उनके मन में विस्मय और अश्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ। तभी वहाँ एक भक्त द्वारा प्रदत्त पाँच रुपये की भेंट स्वीकार करने से इनकार करते हुए देखकर चरणदास के प्रति नानक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्थियों को और भी आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा, यदि यह सत्य है कि ये किसी की भेंट नहीं लेते तो फिर इनका यह राजसी ठाट-बाट कैसे चलता है? क्या ये चोर, ठग, छली, रसायनी या तान्त्रिक तो नहीं हैं? उन लोगों ने अपने मन का वह भाव बड़े ही रुक्ष शब्दों में व्यक्त किया। साथ ही उन्होंने सन्त को अपनी सिद्धियों को प्रमाणित करने की चुनौती भी दी। चरणदास जी ने उत्तर में उनसे निवेदन किया कि जिस चद्दर को उन लोगों ने अपने हाथ से बिछाकर आसन ग्रहण किया है वे उसी को उलट कर देखें कि वहाँ क्या है? ऐसा करने पर उन्होंने देखा—

उठाय बिछौना देखिया, लखा द्रव्य का ढेर।
नानक पन्थी चौंकिया, कौन गया ह्याँ गेर॥

फिर उन लोगों ने अपने तूंबे को अशर्फियोंसे भरने का आग्रह किया। तूंबे को कपड़े से कुछ देर तक ढँके रखने के बाद जब उसे खोला गया तो उसमें अशर्फियाँ भरी हुई थीं। चरणदास जी ने उनमें से दो अशर्फी नानक पन्थियों को देकर शेष कूयें में गिराने का आदेश दिया; फिर तो वे भी उनके मुरीद हो गये—

हाथ जोड़ अस्तुति करी, ह्वाँ थे मनुष्ष पचास।
सब ऐसे कहने लगे, धन्य चरण ही दास॥[1]

आगे चलकर कई सिक्ख राजाओं ने उनके शिष्यों को भेंट और जागीरें तो दीं ही, इस सम्प्रदाय की गद्दियाँ स्थापित करने की सुविधाएँ भी दीं। सिक्खों को इसी धार्मिक सहिष्णुता और आलोच्य सम्प्रदाय के प्रति आदर भाव का यह परिणाम है कि आधुनिक हरियाणा और पंजाब (तत्कालीन पंजाब) में श्री चरणदास के जीवन काल में ही इस सम्प्रदाय की पचासों गद्दियाँ स्थापित हुईं, जो आगे चलकर कई सौ गद्दियों के रूप में प्रस्फुटित-पल्लवित हुईं।

इस सम्प्रदाय के प्रथम महन्तान् महन्त (महन्तों में शीर्षस्थ) गो० जुगतानन्द जी (चरणदास जी के शिष्य) के जीवन काल में महाराणा रणजीत सिंह सन् १८१० ई० के आस-पास चरनदास जी के अस्थल (मंदिर) में पधारे थे। उन्होंने पूजा-भेंट भी चढ़ाई थी और जुगतानन्द जी का आशीर्वाद लिया था। उसी गद्दी के महन्त घनश्यामदास के समय में (सन् १८६० ई० के आस-पास) पटियाला के सिक्ख नरेश इन्द्रसिंह जी उनकी गद्दी में पधारे थे और एक मुहर भेंट में दी थी। उन्होंने पटियाला आने का निमन्त्रण भी दिया था। सन् १८६४ ई० में जब घनश्यामदास जी पटियाला गये तो तत्कालीन महाराजा महेन्द्रसिंह ने उनका बड़ा सम्मान किया था।

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १५७–५८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन गद्दियों में जगाधरी, करनाल, पानीपत, कुरुक्षेत्र, खरक, थानेश्वर, सबाद, कान्हौरी, गुड़गाँव, नूह, पटौदी, पलवल, फर्रुखनगर, लोकरी, झींद, चरखी-दादरी, भिवानी, नारनौल, जीतपुरा, रिवाड़ी, शाहजहाँपुर (महेन्द्रगढ़) रोहतक, कोसली, छापर, दुजाना, नाहड़, फतेहपुरी, बलियाणा, बेरी, हसनगढ़, रोड़ी, सिरसा, सोनीपत और हिसार आदि हरियाना (वर्तमान) की गद्दियाँ तथा अंबाला, पटियाला, डेरावाली, फ़िरोजपुर, झंडूकी, बालाँवाली, रोपड़, संगरूर, बरनाला, मालेरकोटला और सुनाम आदि पंजाब (वर्तमान) की गद्दियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इन स्थानों के आस-पास की लगभग १०० गद्दियों की शिष्यपरम्परा का वृत्त इस पुस्तक के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्याय में यथास्थान दिया गया है।

इससे यह सिद्ध होता है कि सिक्ख जाति का इस सम्प्रदाय को बहुत बड़ा सहयोग रहा है। यदि उन्होंने जागीरें न दी होतीं और सब प्रकार का सहयोग न दिया होता तो उस सम्प्रदाय का इतना अधिक प्रचार-प्रसार पंजाब में सम्भव न होता। आज भी इस सम्प्रदाय की अनेक गद्दियों के महन्त एवं अनुयायी सिक्ख हैं और वे विधिवत अपने सम्प्रदाय (चरणदासी सम्प्रदाय) की मान्यताओं का पालन करते हैं। गुरु छौना जी और उनके शिष्य अखैराम जी की १५–२० गद्दियाँ भटिंडा और सिरसा जिले में स्थापित हुई थीं जो अब भी चल रही हैं। बाबा मोहनदास, ध्यानदास और शार्दूलसिंह जी जैसे अखैराम जी के शिष्य सिक्ख ही थे, जिनकी बानियाँ काव्यतत्त्व की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं।

४. मराठों का उदय और चरणदासी सम्प्रदाय —

औरंगजेब के शासनकाल में शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने दक्षिण के सूबेदारों को खूब परेशान किया। यहाँ तक कि सम्राट् औरंगजेब भी मराठों से तंग आ गया। उसने उन्हें 'पहाड़ी चूहे' की संज्ञा दी थी। शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त उनके बेटे शम्भूजी और ७ वर्षीय पौत्र शाहूजी को औरंगजेब ने कैद कर लिया था। शम्भूजी तो निर्दयता से जेल में ही मार डाले गये परन्तु शाहूजी अठारह वर्षों तक जेल में रहे। सन् १७०७ में औरंगजेब के निधन के उपरान्त जब उसके बेटे आजमशाह ने अपने आपको बादशाह घोषित किया और दिल्ली पर अधिकार करने के लिए उत्तर की ओर बढ़ा तो शाहूजी और उनके परिवार के अन्य लोगों को भी उसके साथ ही प्रस्थान करना पड़ा। कुछ दूर जाने पर शाहूजी की प्रार्थना पर उन्हें मुक्त कर दिया गया। शाहूजी के वापस आने पर शम्भूजी के छोटे भाई राजाराम की विधवा ताराबाई ने शाहू के उत्तराधिकार को अस्वीकार कर दिया। वह अपने बेटे शिवाजी द्वितीय को छत्रपति बनाये रखना चाहती थी। इस बात को लेकर मराठे आपस में ही लड़ने लगे। इन दोनों की आपसी लड़ाई में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाहूजी एक के बाद एक युद्धों में विजयी होते गए। अन्ततः उन्हें छत्रपति के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई। शाहू जी एक विलासी और आलसी परन्तु व्यवहारकुशल व्यक्ति थे। उन्होंने सारा शासन-प्रबन्ध अपने पेशवा बालाजी विश्वनाथ के ऊपर छोड़ दिया। शाहूजी की दुर्बलताओं से पेशवा ने लाभ उठाया और एक प्रकार से वह स्वयं शासक बन गया। बालाजी बड़े ही योग्य, वीर, कूटनीतिज्ञ, निपुण प्रशासक और दूरदर्शी पेशवा थे। उन्हीं के कारण शाहूजी छत्रपति बने रह गये अन्यथा उसकी चाची ताराबाई ने उन्हें उखाड़ फेंका होता।

सन् १७२० ई० में बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद उनका १९ वर्षीय ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव-प्रथम पेशवा के रूप में नियुक्त हुआ। वह योग्य और प्रभावशाली शासक था। वह राजपूतों को मिलाकर भारत में हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहता था। उसने अपने राज्य का भली-भाँति विस्तार किया और छत्रपति शाहूजी का भी यथायोग्य सम्मान करते हुए उनका विश्वास अर्जित किया। उसने अपनी दूरदर्शिता से मालवा पर अधिकार कर लिया तथा गुजरात, बुन्देलखण्ड, बरार और निजाम से चौथ की वसूली की। सन् १७३७ ई० में बाजीराव अपनी सेना के साथ दिल्ली तक पहुँच गया था। बादशाह मुहम्मदशाह के साथ हुई सन्धि के अनुसार नर्मदा और चम्बल के बीच के पूरे प्रदेश पर मराठों का अधिकार मान लिया गया। इसके अतिरिक्त बादशाह ने पेशवा को पचास लाख रुपये युद्ध-व्यय के रूप में भी दिया। सन् १७३९ ई० में बाजीराव ने पुर्तगालियों को हराया और बेसिन के किले पर अधिकार कर लिया। उत्तर भारत में भी अवध, राजपूताना, पंजाब आदि तक मराठों का आतंक फैल गया। मालवा, गुजरात, निजामशाही, बुन्देलखण्ड आदि पहले ही उसके अधिकार में आ गये थे। उसने अपने अधीनस्थ मराठा सरदारों को यह अधिकार दे दिया कि वे अपने प्रभावक्षेत्र में पेशवा के हस्तक्षेप के बिना चौथ और सरदेशमुखी वसूल करें। उस समय के मुख्य मराठा सरदार गायकवाड़, सिंधिया, भोंसले और होलकर थे। यद्यपि बाजीराव एक योद्धा और महत्वाकांक्षी पेशवा था परन्तु कालान्तर में उसमें भी सुरा-सुन्दरी जनित दुर्बलताएँ आ गई थीं। सैन्यसंचालन, कूटनीति और हिन्दू राष्ट्रवाद की स्थापना के क्षेत्र में वह अद्वितीय कहा जा सकता है। उसके उच्चाशयों के कारण ही राजपूताने के राजपूत सरदार और विशेषतः जयपुरनरेश सवाई जयसिंह और मारवाड़ के राजा अभयसिंह उसका आदर करते थे।

बालाजी बाजीराव—सन् १७४० ई० में बाजीराव का देहान्त हुआ और उनका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना। उसके पेशवाकाल में मराठों ने उड़ीसा को लूटा और बंगाल के सूबेदार अलीवर्दी खाँ को परास्त किया। उन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुगली और पश्चिमी बंगाल पर भी अधिकार कर लिया। सन् १७४८ ई० में शाहू जी की मृत्यु हो गई। मराठों ने दिल्ली में अपना हाथ-पैर फैलाना आरम्भ कर दिया और उसमें वे सफल हुए। सन् १७५९ ई० में मराठों और निजाम में लड़ाई छिड़ गई, जिसमें निजाम की हार हुई। सन्धि के अनुसार बीजापुर, अहमदनगर, बुरहानपुर, असीरगढ़ और दौलताबाद के किले मराठों को मिल गए। सन् १७६० ई० तक मराठों ने प्रायः पूरे भारत से चौथ वसूली आरम्भ कर दी। यह उनकी शक्ति की पराकाष्ठा थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगल बादशाहों की आपसी लड़ाई ने मराठों के लिए एक ऐसा उपयुक्त अवसर प्रदान किया कि वे सन् १७३५ ई० के बाद से ही दिल्ली में मँडराने लगे। वे किसी एक या दूसरे पक्ष में होकर दिल्ली की बादशाहत की निर्णायक शक्ति बन गये थे। सन् १७५८ ई० में पेशवा के भाई राघोजी (रघुनाथ राव) ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया था। यह आक्रमण बादशाह आलमगीर द्वितीय के वजीर गाजिउद्दीन की एक ऐसी योजना के अंतर्गत हुआ था जिसके फलस्वरूप वह एक अन्य प्रभावशाली वजीर नजीबुद्दौला को नीचा दिखाना चाहता था।

इसी क्रम में मराठा सेना सिन्ध तक पहुँच गई और अब वह अहमदशाह अब्दाली के द्वार खटखटाने लगी। पंजाब, सरहिंद और सिंध में उनके द्वारा समर्थित सूबेदार नियुक्त हुए। अब वे अफगानिस्तान और अवध को भी अपने अधिकार में लेने की योजनाएँ बनाने लगे, परन्तु इस बीच क्षुब्ध अहमदशाह अब्दाली मराठों को पाठ पढ़ाने के लिए चल पड़ा और यमुना के किनारे तक पहुँच गया।

पानीपत की तीसरी लड़ाई— नादिरशाह की हत्या के बाद उसका सेनापति अहमदशाह अब्दाली ईरान का शासक हुआ। अब्दाली ने अफगानिस्तान पर अधिकार कर लिया। पंजाब का सूबेदार भी उससे हार गया और दिल्ली के सम्राट् ने वह सूबा अहमदशाह को सौंप दिया। पंजाब का शासन-प्रबन्ध अपने एक सेनापति को सौंपकर अब्दाली वापस चला गया। सन् १७५८ ई० में मराठों ने पंजाब पर अधिकार कर लिया और अब्दाली द्वारा नियुक्त अधिकारी भगा दिया गया। इस समाचार से अब्दाली क्रुद्ध हो गया और मराठों को दण्ड देने के लिए एक बड़ी सेना लेकर चल पड़ा। सन् १७६० ई० में मराठों ने भी पानीपत के मैदान में उसका जम कर सामना किया। पेशवा बालाजी बाजीराव की सेना बहुत बड़ी थी। होलकर, सिंधिया, गायकवाड़, राजपूतों और जाटों ने उसकी सहायता में अपनी-अपनी सेनाएँ भेजी थीं। इस युद्ध में मराठा सेनापति सदाशिव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राव मारा गया और मराठों के तोपखाने का नेता इब्राहिम गर्दी खाँ भी घायल हुआ। होलकर और सिंधिया चोट खाकर मैदान से भाग निकले। मराठों की सेना पराजित हो गई। इस समाचार का बालाजी बाजीराव पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और वह दिवंगत हो गया। फलतः सिक्खों तथा अंग्रेजों को अपनी शक्ति के विस्तार का बड़ा अच्छा अवसर मिल गया क्योंकि मराठा शक्ति इस समय पूर्णतः छिन्न-भिन्न और हतप्रभ थी।

इस प्रकार सन् १६६०–१७६० ई० तक का समय मराठों का युद्धों में ही बीता। इनमें भी प्रारम्भिक बीस वर्ष औरंगजेब की आसुरी शक्ति से टक्कर लेने में बीते। मराठों ने पेशवाओं के काल में अपना चरम उत्कर्ष प्राप्त किया। इनमें भी बाजीराव प्रथम और बालाजी बाजीराव के काल में मराठा शक्ति अपनी उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर थी। इस बीच दक्षिण भारत, मध्यभारत और उत्तर भारत के द्वाब क्षेत्र में उनका एकछत्र शासन था। लेकिन उनकी लूट-पाट की नीति से और उनमें संगठनात्मक अनुशासन का अभाव हो जाने के कारण जनता उनसे रुष्ट हो गई थी। धीरे-धीरे उनका प्रभाव जन-मानस से समाप्त होने लगा। उनमें भी मुगलों की भाँति विलासिता, अनैतिकता तथा अन्य बुराइयाँ व्याप्त हो गईं। यहाँ तक कि पानीपत के मैदान में भी वे अपने साथ पत्नियाँ, दासियाँ, लड़कियाँ और वेश्याओं को ले गए। उन्होंने अपने पारंपरिक युद्ध की कला छोड़ दी और योरोपीय शैली की युद्धपद्धति अपना ली।

सन् १७८५ ई० के आस-पास महाद जी सिंधिया के नेतृत्व में मराठा शक्ति एक बार पुनः उभरी। उसकी प्रशिक्षित और अनुशासित सेना ने आगरा के किले पर अधिकार कर लिया। मुगल बादशाह शाह आलम ने सिंधिया को अपने राज्य का संरक्षक घोषित किया। उसी समय मराठों की सिक्खों से इस शर्त पर सन्धि हुई कि वे जिस क्षेत्र पर अधिकार करेंगे उसका एक तृतीयांश सिक्खों को देंगे और दोनों की सेनाएँ परस्पर सहयोग करेंगी। उस समय अवध के सूबेदार रुहेला सरदार गुलाम कादिर को दण्ड देने के बहाने मराठों ने सन् १७८८ ई० में दिल्ली पर अधिकार कर लिया। सिक्खों की अवहेना करते हुये सिंधिया ने सन् १७९८ ई० के आस-पास पंजाब, हरियाणा और सरहिंद के सूबों से भी कर वसूलना आरंभ कर दिया। दौलतराव सिंधिया का सेनापतित्व डिब्वायन और जनरल पेरन जैसे दो योग्य फ्रांसीसी सेनानायकों के हाथ में था। सन् १८०० ई० के आस-पास होलकर और सिंधिया में वैमनस्य उत्पन्न हो गया। साथ ही सिंधिया का अपने सेनापति पेरन पर भी विश्वास नहीं रहा।

११ सितम्बर, सन् १८०३ ई० को मराठों से शाह आलम को छुटकारा दिलाने के निमित्त अंग्रेजों से मराठों का युद्ध हुआ, जिसमें मराठों की पराजय हुई

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनकी साख को धक्का लगा। इसका बदला लेने के लिए जसवन्त राव होलकर ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाई। उसकी सेना इतनी बड़ी थी कि दोआब का सारा भूमि-भाग सैनिकों से भर उठा और अंग्रेजों का दिल दहल गया पर मराठे दिल्ली पर अधिकार न कर सके और उन्हें वापस जाना पड़ा। उनकी पंजाब, सिंध और कश्मीर-विजय की योजनाएँ भी पूरी न हो सकीं। अंततः सन् १८०५ ई० में अंग्रेजों से सन्धि करने के पश्चात् मराठे मध्य भारत में ही सीमित रहे।

शिवाजी के जीवनकाल में एक विदेशी शासन के जुए को कन्धे से उतार कर फेंक देने का जो अभियान मराठों ने छेड़ा था वह उनके शौर्य, त्याग, धर्म और राष्ट्रप्रेम का अनुकरणीय उदाहरण था। जातिगत वीरता और सामूहिक प्रयास के बल पर वे अपनी स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त करने में सफल अवश्य हुए परन्तु उसे स्थायी कैसे बनाया जाय इस कला से अनभिज्ञ होने के कारण उनकी सैनिक उपलब्धियाँ शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो गईं। सच पूछा जाय तो वीर मराठा शक्ति पेशवाओं के काल में प्रबल स्वतन्त्र्य और धर्म-भावना को छोड़ बैठी और उसका नैतिक स्तर वही हो गया जो उस समय पतनोन्मुख सामन्तवादी म्लेच्छ संस्कृति का था।

जैसा कि अभी कहा जा चुका है, हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा का मिशन लेकर मराठा शक्ति मुगलों से टकराई थी। उसे इस अभियान में हिन्दू जनता का हार्दिक सहयोग और समर्थन था। फलतः मराठों को पर्याप्त सफलता भी मिली। चरणदासी सम्प्रदाय का कार्यक्षेत्र पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के बुन्देलखण्ड, राजस्थान के जयपुर तक के क्षेत्र और दिल्ली के आस-पास चतुर्दिक विशेष रूप से केन्द्रित था। सन् १७५० ई० तक मराठे दिल्ली सहित उत्तर भारत में व्याप्त हो गये थे। चरणदास जी सन् १७८२ ई० तक जीवित थे और इस अवधि में उनकी ख्याति उत्तर भारत में दूर-दूर तक फैल चुकी थी।

दिल्ली जैसे केन्द्र में कोई ऐसा हिन्दू सन्त हो जो तत्कालीन बादशाहों, नवाबों, अमीरों–उमरावों और राजा–महाराजाओं के आकर्षण का केन्द्र हो और पेशवा वहाँ न पहुँचे हों, यह सम्भव नहीं है। यद्यपि इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त नहीं होता परन्तु चरणदास के शिष्यों यथा हरभजनदास, भजनानन्ददास, दयाबाई, श्यामशरण बड़भागी और निर्मलदास आदि को बुन्देलखण्ड में पर्याप्त जागीरें मिली थीं। निश्चित रूप से ये महोबा, छतरपुर, पन्ना और झाँसी की तत्कालीन हिन्दू रियासतों से मिली होंगी। उस समय इस क्षेत्र पर मराठों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रबल प्रभाव था। चित्रकूट और मथुरा-वृन्दावन जैसे तीर्थों के वे संरक्षक के रूप में थे। ग्वालियर की एक राजमहिषी श्रीमती बैजाबाई ने सन् १७५० ई० के आस-पास गो० जुगतानन्द जी के शिष्य श्री वृन्दावनदास की विधिवत् शिष्यता ग्रहण की थी और ग्वालियर तथा वृन्दावन में कई मन्दिरों का निर्माण कराया था। उन्होंने इन मन्दिरों की पूजा-उपासना के व्यय के निमित्त कई गाँवों की जागीर भी दी थी जो आंशिक रूप में अभी भी वृन्दावनदास जी की शिष्य परम्परा के महन्तों के अधिकार में अवशिष्ट है।

इतना ही नहीं बल्कि पूना, जबलपुर, इन्दौर, नागपुर, देवास तथा बुन्देलखण्ड के भी कई स्थानों पर चरणदासी गद्दियाँ स्थापित हुई थीं। श्यामशरण बड़भागी और हरभजनदास को कानपुर, फतेहपुर और बिठूर के पास पचास से भी अधिक गाँवों की जागीरें प्राप्त हुई थीं। यह मराठों की ही देन रही होगी। जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह, ईश्वरीसिंह, माधोसिंह, पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह से समय-समय पर सिन्धिया तथा होलकर सरदारों से मित्रता-शत्रुता होती रहती थी। सभी जयपुरनरेश किसी न किसी रूप से चरणदास जी से सम्बद्ध रहे हैं। अतः प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मराठों पर सन्त चरणदास का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। उनके जीवन काल में मराठे प्रायः किसी न किसी बहाने दिल्ली में और उसके आस-पास के क्षेत्र में बने ही रहे।

५. अंग्रेज और उनका भारत में साम्राज्य-विस्तार—

यह इतिहास-विदित तथ्य है कि भारत में अंग्रेज मुख्यतः व्यवसायी बनकर आये थे। उन्होंने आरम्भ में मसुलीपट्टन, मद्रास, हुगली और सूरत आदि स्थानों में कोठियाँ स्थापित की थीं। सन् १६६७ ई० में चार्ल्स द्वितीय ने बम्बई और सालसट के द्वीप कम्पनी को दे दिये थे। ये द्वीप उसे कैथराइन से विवाह करने के उपलक्ष्य में दहेज रूप में मिले थे। सन् १६८५ ई० में औरंगजेब के बंगाल के सूबेदार साइस्ता खाँ ने ब्रिटिश कम्पनी के माल पर कर लगा दिया, जिससे नवाब और कम्पनी के सम्बन्ध बिगड़ गये। कम्पनी के गवर्नर सरजान चाइल्ड ने पश्चिमी किनारे पर मुगल जहाजों पर हमला कर दिया जिससे औरंगजेब ने क्रुद्ध होकर हुगली और मसुलीपट्टन की कोठियों पर कब्जा करने का आदेश जारी कर दिया। कुछ दिनों तक मुगलों और अंग्रेजों से वैमनस्य बना रहा। अन्ततः डेढ़ लाख रुपये हरजाने के रूप में लेकर बादशाह ने कम्पनी का अधिकार वापस कर दिया। सन् १७१५ ई० में कम्पनी का एक मिशन मुगल दरबार में आया। मुगलदरबार से उन्हें अपने व्यापार के विस्तार के लिए तेईस गाँव प्राप्त हुए और उनके व्यापारिक वस्तुओं पर से चुंगी माफ कर दी गई। इस सुविधा ने भारत में अंग्रेजी राज्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थापना एवं विस्तार के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ प्रदान किया। इस प्रोत्साहन से ईस्ट इंडिया कम्पनी कोअपना कार-बार बढ़ाने का अच्छा मौका मिला। सन् १७६३ ई० में बंगाल के तत्कालीन नवाब मीरकासिम और ईस्ट इंडिया कम्पनी के सम्बन्ध पुनः बिगड़ गए और कम्पनी के सामानों पर फिर से चुंगी लगाई गई। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १७६४ ई० में मीरकासिम की हार हुई। उसके पश्चात् जो सन्धि हुई उसके अनुसार बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी अधिकार कम्पनी को प्राप्त हो गये। इसके बदले में कम्पनी ने बादशाह को प्रति वर्ष छब्बीस लाख रुपये देने का वादा किया। इस प्रकार कम्पनी इस देश के एक भाग में आंशिक शासन का अधिकार पा गई और उसे भारतीय शासकों के आपसी लड़ाई-झगड़ों में किसी एक पक्ष का साथ देकर सौदेबाजी करने का अवसर मिल गया, जो उनकी व्यावसायिक समृद्धि में सहायक सिद्ध हो।

धीरे-धीरे अंग्रेजों ने भारत के राजनीतिक मंच पर हाथ-पैर फैलाना आरम्भ कर दिया। वारेनहेस्टिंग्स ने बंगाल, बिहार और अवध की राजसत्ता के लिए होने वाली आपसी आन्तरिक लड़ाइयों में भाग लिया। कंपनी की शक्ति क्रमशः बढ़ती गई और वह अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानों के माध्यम से भारत की तत्कालीन राजनीति को प्रभावित करने लगी। इसके साथ ही अंग्रेजों ने चिकित्सा, शिक्षा, धर्म-प्रचार, अस्त्र-शस्त्र-निर्माण आदि में भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया।

उनके पास पश्चिम में बने उस समय के आधुनिकतम शस्त्रों से सज्जित एवं नई पद्धति से प्रशिक्षित और अनुशासित स्थल तथा जल सेना थी। साथ ही वे आपसी फूट से जर्जरित एतद्देशीय राजसत्ताओं की स्थिति से कूटनीतिक लाभ उठाने में भी दक्ष थे। उनकी योजना दूरगामी थी और वे उस पर बड़ी सतर्कता से आगे बढ़ते थे। अतः मराठों, सिक्खों, राजपूतों और मुगलों की दृष्टि में वे दमन के योग्य तब तक नहीं हुए जब तक वे दुर्दमनीय नहीं हो गये। जब उनकी शक्ति में पर्याप्त वृद्धि हो गई और उन्हें स्थानीय सहायता भी प्राप्त होने की स्थिति आ गई तब लोगों की दृष्टि उनकी ओर गई। तब तक इतना विलम्ब हो चुका था कि उनका कुछ बिगाड़ सकने की स्थिति में ये शक्तियाँ नहीं रह गई थीं। फिर तो प्रायः सभी छोटे-बड़े शासक अपनी पारिवारिक या आपसी लड़ाइयों में अंग्रेजों की सहायता के मुहताज हो चुके थे। फलतः एक के बाद एक सूबे या उनके कुछ भाग उनके हाथ में आते जा रहे थे। उनकी यह प्रगति दक्षिण, उत्तर और पूरब—इन तीनों दिशाओं में थी। वे एक नई शक्ति के रूप में भारतीय राजनीतिक मंच पर उदित हुए थे। उनकी व्यावसायिक प्रतिभा,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूटनीति, आर्थिक नियोजन, युद्ध कौशल, वैज्ञानिक प्रगति और सूझ-बूझ आदि तत्कालीन शासकों को हतप्रभ करने के सबल कारण थे।

सन् १७६४ ई० में क्लाइव के पुनः भारत लौटने और मीरकासिम के पराजय के साथ ही एक प्रकार से भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव पड़ गई थी। सन् १७८४ ई० तक अंग्रेज बिहार से आगे बढ़ कर अवध तक पहुँच गये थे। वे वारेन हेस्टिंग्स के नेतृत्व में दिल्ली के बादशाह के अवध-स्थित सूबेदार के संरक्षक बन गये थे। उनका एजेंट दिल्ली में भी नियुक्त हो गया था। उन्हें ३० हजार सिक्ख-सेना के सहयोग का भी आश्वासन प्राप्त हो चुका था। इस शक्ति के आधार पर वे मराठों की दुर्दमनीय शक्ति को नियन्त्रित कर सकने की क्षमता रखते थे। वे राजनीतिक तोड़-जोड़ और सामरिक दाँव-पेंच में निपुण थे। सन् १८०४–०५ ई० में मराठा नायक जसवन्तराव होलकर ने दिल्ली पर भयंकर आक्रमण किया था, लेकिन अंग्रेजों के सेनानायक कर्नल मान्सन, डेविड आक्टर लौनी तथा कर्नल बर्न ने दिल्ली और पूरे द्वाबा क्षेत्र में मराठों का सफल प्रतिरोध करके उन्हें भागने को विवश कर दिया। पंजाब और पश्चिमोत्तर भारत से भी अंग्रेजों ने मराठों को खदेड़ दिया। अब तक अंग्रेजों की शक्ति इतनी बढ़ चुकी थी कि मुगलों, मराठों, सिक्खों और राजपूत शक्तियों को विवश होकर सन्धियाँ करनी पड़ी थीं।

सन् १८१० ई० तक सरहिन्द और लाहौर सूबों में भी अग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। उनकी सेनाएँ सतलज के किनारे पहुँच कर वहीं जम गईं। महाराज रणजीत सिंह की गतिविधियाँ भी अंग्रेजों द्वारा बाधित कर दी गई थीं। सन् १८१४–१५ ई० में अंग्रेजों ने नेपाल के गुरखों के विरुद्ध भी अभियान छेड़ दिया और उन्हें सफलता मिली। इसी प्रकार मुलतान, जम्मू और कश्मीर पर भी अंग्रेजी सेना ने धावे मारने आरम्भ किये। उनकी शक्ति को देखते हुए प्रतापी रणजीत सिंह भी उनसे सन्धि करने को विवश थे। राजस्थान की प्रायः सभी राजपूत रियासतें सन् १८२५ ई० तक उनकी छत्र-छाया में आ गई थीं। सन् १८३६ ई० में अंग्रेजों ने सिन्ध में अपने व्यापारिक प्रतिष्ठान स्थापित किये क्योंकि उन्हीं के माध्यम से वे उस क्षेत्र की राजनीति पर अपना नियन्त्रण स्थापित करना चाहते थे। उनके प्रयत्न में महाराज रणजीत सिंह बाधक थे। अतः अंग्रेजों और उनके बीच युद्ध की सम्भावना हो चली थी, परन्तु जैसे-तैसे टल गई।

इस बीच अफगानिस्तान के विभिन्न फिरकों की आपसी फूट का लाभ उठा कर अंग्रेजी सेना वहाँ तक पहुँच गई। सन् १८३४ ई० में काबुल (अफगानिस्तान) का शासक दोस्त मुहम्मद सभी ओर से निराश होकर अंग्रेजों की शरण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आ गया था। अतः अंग्रेजों के राज्य का विस्तार अब काबुल, कंधार और जमरूद तक हो गया। सन् १८३६ ई० तक ईरान की ओर अंग्रेजी शासकों की आँखें उठ चुकी थीं।

अंग्रेज जहाँ भी पहुँचते थे वे अंग्रेजी माध्यम का एक विद्यालय, अस्पताल और चर्च अवश्य स्थापित करते थे। उनका रहन-सहन भी लोगों को प्रभावित करता था। लार्ड विलियम बेंटिक ने राजकीय पत्र-व्यवहार की भाषा के रूप में अंग्रेजी को ही मान्यता दी थी। अतः देशी राजे-रजवाड़ों को भी अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की आवश्यकता पड़ने लगी थी। फलतः कुछ लोगों के लिए अंग्रेजी सीखना अनिवार्य हो गया। सेना और शासन की संगठन-व्यवस्था में भी अंग्रेजों का अनुकरण किया जाने लगा। सारांशतः कहा जा सकता है कि अपनी नीति-कुशलता और दूरदर्शिता से सन् १८५० ई० तक वे अफगानिस्तान, नेपाल और कश्मीर सहित पूरे भारत के किसी न किसी रूप में शासक बन गये थे। बीच-बीच में उनकी गारण्टी या कृपा पर कुछ देशी रियासतें अवश्य बची हुई थीं परन्तु वे भी उनके एजेण्ट के रूप में ही थीं। इस प्रकार भारत का एक नया चित्र उभर चुका था और देश एक विदेशी सत्ता के अन्तर्गत पुनः परतन्त्र हो गया था। यहाँ तक कि अंग्रेजों के पाँव वर्मा, तिब्बत और चीन की ओर भी बढ़ गये थे और इनमें से प्रथम दो तो बृहत्तर भारत के नक्शे में आ भी गये थे। इनके साथ ही श्रीलंका और लक्ष दीप के अतिरिक्त अरबसागर, हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी के भारत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के अन्दर आने वाले द्वीपों पर भी अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया था। भारत के शासकों के आपसी कलह, सामन्तों की स्वार्थी-लोभी-विलासी प्रवृत्ति, बड़ी आसानी से भ्रष्ट आचरण की ओर उन्मुख हो सकने की सम्भावना और मूर्खता का चालाक अंग्रेजों ने सामयिक लाभ उठाकर इतनी बड़ी उपलब्धि प्राप्त कर ली।

इस विस्तृत ऐतिहासिक घटनाचक्र के विशाल रथ के दुर्दमनीय पहियों के नीचे पिस रही जनता को एकमात्र भगवान् का ही सहारा था। गद्दियों का परिवर्तन उनके जीवन में कोई प्रकाश नहीं लाता था। वे सदैव एक जैसे ही रहे और उनकी पीढ़ियाँ एक के बाद एक आती चली गईं। कोई भी शासन-व्यवस्था या शासक उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता था। करदाता और मजदूर के अतिरिक्त उनकी कोई हैसियत नहीं थी। ऐसी स्थिति में उन पर मराठों का शासन हो, या मुगलों का या फिर अंग्रेजों आदि का—इसका उनकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं था। जितने तूफान आते हैं, वे समुद्र के ऊपरी भाग को ही प्रभावित करते हैं, तल तक कोई नहीं पहुँचता। कभी कोई मगरमच्छ पहुँच भी गया तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना उदर भरकर पुनः वापस चला जाता है। वहाँ वही लोग रह जाते हैं जो पहले से ही रहते आये हैं।

सन् १८५७ ई० तक तो चरणदासी सम्प्रदाय अंग्रेजों के प्रत्यक्ष संपर्क में नहीं आया था परन्तु गदर हो जाने के समय यह सम्प्रदाय उनसे प्रभावित हुआ। दिल्ली-स्थित प्रधान गद्दी (गो० जुगतानन्द जी की गद्दी) के तत्कालीन महन्त घनश्यामदास जी को अंग्रेजों का विरोधी माना गया और उनके अस्थल में लूट तथा आगजनी हुई। वे गदर छिड़ने के साथ ही दिल्ली छोड़कर रिवाड़ी के पास मुसेदपुर नामक गाँव में रहने लगे थे। अस्थल की आगजनी ने सबसे बड़ी हानि यह पहुँचाई कि सन् १८०१ से १८५७ ई० तक के इस सम्प्रदाय के इतिहास को ही उसने अन्धकार में झोंक दिया। इस बीच के विविध मेलों तथा आयोजनों के अभिलेख अप्राप्त हैं, जिससे इस अवधि में महन्तों और उनके सम्बन्ध में अन्य ज्ञातव्य बातों का पता ही नहीं चलता। इसके साथ ही बहुत से ग्रन्थों की पाण्डु-लिपियाँ भी जल गईं या लूट ली गईं। इस गद्दी पर अंग्रेजों की कुदृष्टि बहुत दिनों तक बनी रही, जिससे महन्तान महन्त की यह गद्दी आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त विपन्न हो गई और अपने सम्प्रदाय के सुदूरस्थित थाँभों पर केन्द्र का नियंत्रण शिथिल हो गया। फलतः अनेक गोसाईं गद्दियाँ (विरक्त गद्दियाँ) गृहस्थ गद्दियों के रूप में परिवर्तित होकर अन्ततः समाप्त हो गईं। सन् १८६० से १९१० ई० के ५० वर्षों की अवधि में आधी से अधिक गद्दियाँ व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गईं। इनके महंतों ने विवाह करके गृहस्थ जीवन बिताना आरम्भ कर दिया। उनके बच्चे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके नये रंग-ढंग से रहने लगे। संपत्ति की कमी नहीं थी। अतः आधुनिक साज-सज्जा और साधनों को अपना लेने के मोह में पुरानी परम्पराएँ परित्यक्त हो गईं। ऐसा प्रायः अनेक साधना सम्प्रदायों के साथ हुआ।

इसके विपरीत अखैराम जी की पंजाब की गद्दियों ने उस गदर में अंग्रेजी की पर्याप्त सहायता की थी। इनमें माचन (नारनोल) रोड़ी (सिरसा) झंडूकी (भटिंडा) डेरा शार्दूलसिंह (फिरोजपुर) बालांवाली (भटिंडा) तखतमल (सिरसा) झींद, भूधढ़ (संगरूर) आदि की गद्दियाँ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। रोड़ी के तत्कालीन महंत जानकीदास ने सन् १८५७ ई० में अंग्रेजों की जो मदद की थी उसके उपलक्ष्य में अंग्रेजों की ओर से महंत जी को कई गावों की भेंट प्राप्त हुई थी। जानकीदास जी के शिष्य विशुद्धानंद जी चक सं० ६०, लायलपुर में रहा करते थे। अपने गुरु की भाँति इन्हें भी पंजाब की रियासतों और पंजाब तथा दिल्ली के अंग्रेज अधिकारियों का सम्मान प्राप्त था।

अंग्रेजों के शासनकाल में उनके सम्पर्क के कारण भारतीयों के जीवनमूल्यों में जो परिवर्तन आया और धार्मिकता में ह्रास हुआ उसका परिणाम अन्य सम्प्रदायों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भाँति चरणदासी सम्प्रदाय को भी झेलना पड़ा। धीरे-धीरे इसकी विरक्त गद्दियाँ गृहस्थ गद्दियों के रूप में परिवर्तित होकर सम्प्रदाय से पदच्युत होती गईं और उनसे संबद्ध सम्पत्ति व्यक्तिगत सम्पति होती गई। सन् १९१४ ई० के महायुद्ध ने तो एक प्रकार से इस संप्रदाय का सफाया ही कर दिया। धर्म और संपत्ति के संबंध में नूतन दृष्टिकोण के अभिनिवेश के कारण मठ-मंदिरों को व्यक्तिगत साधन एवं सम्पत्ति मानकर हथिया लेने में किसी प्रकार का भय नहीं रह गया। फलतः वर्तमान में इस सम्प्रदाय के एक सीमित क्षेत्र में सिमट जाने के मूल में अंग्रेज शासक और उनकी सांस्कृतिक देन ही कारणभूत हैं।

(ब) सामाजिक परिस्थियाँ और चरणदासी सम्प्रदाय —

ऐतिहासिक घटनाक्रम का समाज पर प्रभाव—राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। एक के पतनोन्मुख होने पर दूसरे का भी उसका अनुगामी होना अनिवार्य है। समाज की यह ह्रासोन्मुखी स्थिति औरंगजेब के शासनकाल से ही आरम्भ हो गई थी। मुगल पदाधिकारी एवं सामन्तवर्ग के लोग भ्रष्ट आचरण में लीन थे। सुरा और सुन्दरी के साहचर्य के प्रति बढ़ते व्यामोह ने इन्हें नैतिक दृष्टि से दुर्बल बना दिया था। जनता अन्धविश्वासग्रस्त थी और ज्योतिष, रमल, पण्डे-पुजारी, मुल्ला-मौलवी, ओझा, तान्त्रिक, साधु-फकीर आदि में विश्वास करती थी। कभी-कभी सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए नरबलि भी दी जाती थी। धर्म के नाम पर भी सामान्य जनता का भयंकर शोषण हो रहा था।

शासन और प्रशासन से सम्बद्ध वर्ग का घोर पतन हो गया था। वह जुआखोरी, सुरासेवन, कंचन-कामिनी, भोग-विलास, चाटुकारिता और छल-प्रपंच का केन्द्र बन गया था। जनता के शोषण और उत्पीड़न से एकत्रित धन विलासिता के ऊपर पानी की तरह बहाया जाता था। राजकीय कर्मचारी प्रायः घूसखोर हो गये थे। अकबर के शासनकाल से लेकर औरंगजेब (सन् १७०७ ई० तक) तक मुगल बादशाहों का शासन एक प्रकार से स्थिर था और उनकी कार्यपद्धति भी प्रायः एक जैसी थी। इस बीच की राजनीतिक स्थिरता ने जनता की स्थिति में भी प्रायः स्थिरता को बनाये रखा और उसे सुख-शान्ति का अपेक्षाकृत कुछ अधिक अनुभव हुआ, परन्तु औरंगजेब की मृत्यु के बाद बहुधा अल्पजीवी शासन स्थापित होते रहे और अस्थिरता का बोल-बाला रहा। वे प्रायः कठपुतली शासक थे, अतः सामन्तों को मनमानी करने की खुली छूट थी। औरंगजेब इस राजवंश का धूमकेतु होकर उत्पन्न हुआ था। हिन्दूधर्म के प्रति घृणा और उसकी कट्टर धार्मिकता उसे ले डूबी। उसने शासनारूढ़ होते ही अफगानों की परिपाटी पकड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली। वह इस्लाम धर्म का खलीफा बनना चाहता था। मन्दिरों को तोड़ना, हिन्दू संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करना और हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए बाध्य करना आदि आचार उसकी राजनीति के अंग-स्वरूप थे। फलतः सन् १६७९–८० ई० में एक वर्ष में ही अजमेर में ६६, चित्तौड़ में ६३ और उदयपुर में १२३ मन्दिर ध्वस्त किये गये। वाराणसी और मथुरा के सभी प्रसिद्ध मन्दिर तोड़ दिये गये या भ्रष्ट किये गये। इस प्रकार उसने अपने जीवनकाल में असंख्य मन्दिरों को विध्वंस किया। हिन्दुओं की धार्मिक स्वतन्त्रता का उसके द्वारा पूर्णरूपेण अपहरण करने का प्रयास किया गया। सिक्खों, निरंकारियों, नागाओं एवं हिन्दू संस्कृति के रक्षक मराठों और राजपूतों को सिर उठाने से रोकने का भरसक प्रयत्न किया गया।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् राजसिंहासन की प्राप्ति के लिए उसके पुत्रों में कुल मिलाकर सात बार लड़ाइयाँ हुईं। इसके उपरान्त हर नये बादशाह के गद्दी पर आने के पूर्व और पश्चात् गद्दी पर अधिकार के लिए सतत् युद्ध होते रहे। जाटों, सिक्खों, राजपूतों, मराठों और रुहेलों आदि के विद्रोहों को दबाने के लिये भी प्रायः युद्ध होते ही रहते थे, जिनमें अगणित धन-जन का विनाश होता था। शासन की अस्थिरता के कारण जनजीवन भी संत्रस्त, अरक्षित और आशंका-ग्रस्त रहा। सैनिकों की प्रवृत्ति लूट-पाट और विलास की ओर थी। अतः इनका शिकार सामान्य जनता ही होती थी। बीच-बीच में कुछ लोग दल बनाकर लूट-पाट आरम्भ कर देते थे, इनसे भी सामान्य जनता ही पीड़ित होती थी। पंजाब में सिक्ख, राजपूताने में राजपूतों के कुछ गिरोह और मालवा में मराठे संगठित रूप से लूट-मार कर रहे थे। यह उनकी राजनीति की एक शैली थी।

शासकों के निरन्तर युद्धरत रहने के कारण राजकोष रिक्त हो गया था और व्यापार तथा खेती की अवनति हो गई थी। जनता कई शासकों के चक्र में पिस रही थी। उसे यही नहीं पता चल पाता था कि वसूली के कितने अधिकारी हैं। जिससे ऊबकर बहुत से लोग घर-बार त्याग कर साधु जीवन बिताने को बाध्य हो जाते थे।

नई सड़कों का अभाव तथा पहले से बनी सड़कों के दुर्दशाग्रस्त होने के कारण आवागमन तथा सामानों के ले आने-ले जाने में बाधा थी। फलतः जनता को अनेक आवश्यक सामानों के अभाव में ही जीवन यापन करना पड़ता था। राजमार्गों पर एक प्रकार से लुटेरों का आधिपत्य स्थापित हो गया था।

बादशाह के अमीर-उमराव कारीगरों से बेगार' लेते थे और कोड़े भी फटकाते थे। कोई फरियाद सुनने वाला नहीं था। लोगों का रोजगार चौपट हो गया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपज का लगभग आधा भाग मालगुजारी में चला जाता था। जनता और मुख्य शासक के बीच सूबेदार, अधीनस्थ बड़े-छोटे जमीन्दार और राजकीय अहलदार आदि अनेक बिचौलिये जनता का शोषण कर रहे थे। औरंगजेब के पश्चात् हुए बादशाहों में न तो वीरता थी, न उन्हें युद्ध-कला और शासन-व्यवस्था का ही अनुभव था। वे नितांत अकर्मण्य, विलासी और अनुभव-विहीन थे। उनके शासन की बागडोर सामन्तों, अमीरों और दरबारियों के हाथ में थी। इन लोगों ने शासन प्रबंध को ठीक करने, प्रजा में शांति व्यवस्था बनाये रखने, उसकी सुख-समृद्धि पर ध्यान देने और उसके शोषण-उत्पीड़न को रोकने की दिशा में कोई ठोस प्रयत्न नहीं किया। उन्हें अपनी दलबंदियों, जोड़-तोड़ और षड्यंत्रकारी गतिविधियों से ही फुरसत नहीं थी। मराठे मुगल शासित प्रदेशों पर छापे मार कर चौथ और सरदेशमुखी वसूल करना जारी रखे हुए थे। फलतः प्रजा को कई लोगों के हाथों में कर चुकाना पड़ता था।

सामंत वर्ग में भी पठान, मुगल, अफगान, अरब, रूमी, हिन्दुस्तानी, ईरानी, तूरानी, शिया, सुन्नी, राजपूत, जाट, सिक्ख तथा अन्य हिन्दू आदि अनेक दल थे जो अपने प्राधान्य के लिए आपस में ही लड़ते-भिड़ते रहते थे। इस स्थिति का लाभ उठाकर मराठों ने एक बार पुनः भारत में हिन्दू राज्य स्थापित करने की आवाज बुलंद की। उन्होंने हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का संकल्प लेकर ही राजनीति के क्षेत्र में पदार्पण किया था। अपने इस प्रयत्न में वे राजपूतों, सिक्खों और जाटों को भी सम्मिलित करना चाहते थे। हिन्दुओं और उनकी संस्कृति को मिटाने का जो सुनियोजत प्रयत्न अफगानों के समय में आरम्भ हुआ था वह किसी न किसी रूप में औरंगजेब के शासनकाल तक बना रहा। परन्तु इस बीच उनमें भी शिया-सुन्नी-भेद की खाई गहरी होती गई। मुगलों का शियाओं के प्रति विद्वेष का भाव आरम्भ से ही था। अंग्रेज, पुर्तगाली और फ्रांसीसी भी अपने ईसाई मत के विस्तार में प्राणपण से जुट गये थे।

नादिरशाह का आक्रमण और उसका देश पर प्रभाव—सन् १९३९ ई० के नादिरशाह के विध्वंसकारी आक्रमण और ईरानी विजेता अहमदशाह अब्दाली के ८ आक्रमणों ने देश की शासन और अर्थ-व्यवस्था की कमर तोड़कर रख दी। इन लोगों ने लूट-पाट और कत्लेआम की पराकाष्ठा कर दी। इन आक्रामकों की घुड़सवार सेना साहसी, प्रशिक्षित, अनुशासनबद्ध और मरने-मारने के संकल्प से पूर्ण थी। उनके पास अस्त्र-शस्त्र अच्छे थे और उनकी तोपें भी अधिक शक्तिशाली थीं। भारतीय सेना हाथियों पर सवार होकर तलवारों से लड़ती थी, इसीलिए इसकी गतिशीलता और चोट अपेक्षाकृत बहुत कम थी। नादिरशाह ने दिल्ली की लूट और कत्ल बड़ी बेरहमी से कराई। इस कत्लेआम में कई हजार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर-नारी मारे गये और लूट में नादिरशाह को ६० लाख रुपये, कई सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ, एक करोड़ की स्वर्णनिर्मित सामग्री, ५० करोड़ के रत्न और तख्त ताऊस आदि बहुमूल्य पदार्थ प्राप्त हुए थे। डॉ० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार इस आक्रमण के समय दिल्ली में सरकारी तहखाने खोले गये। बेगमों की तलाशी ली गयी। उनके रुपये और गहने लूट लिये गये। नगर निवासियों को भी भारी क्षति उठानी पड़ी। उनसे लगभग २ करोड़ रुपये बलात् वसूले गये। रुपये वसूलने के पूर्व नामों की सूची बनाई गई, मकानों के फर्श खोल डाले गये। अनेक लोगों ने विष खाकर प्राणत्याग किये और बहुत से लोगों ने हथियारों से आत्महत्या कर ली। स्त्रियों ने भी बड़ी संख्या में आत्महत्या की। नादिरशाह ने स्वयं को शाहंशाह घोषित किया और दूसरे दिन मस्जिदों में अपने नाम का खुतबा पढ़वाया। उसने बादशाह मुहम्मदशाह को सपरिवार कैद करके उन्हें अपमानित किया। दिल्ली का शासन अस्त-व्यस्त हो गया और देहातों में अराजकता फैल गई।[1]

इस अतुल धनराशि के साथ नादिरशाह १३० मुनीम, ३०० शिल्पकार, २०० बढ़ई, १०० संगतराज, २०० लुहार और तमाम सुन्दरियों को भी अपने साथ ईरान ले गया। इस प्रकार ५७ दिनों तक दिल्ली में रहने के उपरान्त ईरान के लिए उसने प्रस्थान किया। सर्वत्र लूट मार मच गई। उसके रास्ते में पड़नेवाले गाँव और नगर उजड़ गये। कोसों तक खेतों में फसलें नहीं रह गईं। उसके साथ ही हरियाणा में भीषण दुर्भिक्ष भी पड़ गया। मराठों और सिक्खों ने इस स्थिति का लाभ उठाया और वे दूर-दूर तक आक्रमण करने लगे। बादशाह का अपने मुसाहिबों और नौकरों पर रहा-सहा नियंत्रण भी समाप्त हो गया।

नादिरशाह के आक्रमण की भविष्यवाणी भारत की राजधानी दिल्ली में उसके पैर रखने के ६ महीने पूर्व ही चरणदास जी ने लिखित रूप से मुहम्मदशाह के एक वजीर मुसद्दी खाँ नवाब के यहाँ भेज दी थी। इसमें नादिरशाह के आक्रमण की रूपरेखा इस प्रकार दी गई थी—

ईरान मुलक सों नादिरशाहा। छत्तरधारी अइहै नाहा॥
हिन्दुस्तान की ओरी झाँका। पहले लेहै काबुल ताका॥
फिर वह आय अटक के वारा। दल को साजे बहुत ही भारा॥
तहमाच खुली खाँ संग वजीरा। लाहौर शहर के पहुँचे तीरा॥
सूबेदार लड़न के काजे। निकसि नगर सों फौज ही साजे॥

बहुत बार लिख भेजिहै, दिल्ली सूँ न गुहार।
तब मिल जैहै साह से, ह्वाँ का सूबेदार॥

---

१. मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास : पृ० ५६२–६३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूबेदार को भी संग लेवे। सरहिंद की ओरी पग देवे ।।
दिल्ली आवन की मन माहीं। धीरे धीरे आवत जाहीं ।।
अब दिल्ली की लिख मो मीता। बाहशाह को हो बहु चिंता ।।
सब उमरावन को जो बुलावे। अपने साथ लेय कर धावे ।।
करनाल खेत में होय लड़ाई। मारे जायँ बक्सी दोउ भाई ।।
और नवाब दोय मिल जावें। छिपे छिपे ही भेद लगावें ।।
हारे बादशा पकड़ा जावे। जीते नादरशा सुख पावें ।।

गहकर नादरशाह ही, आवे दिल्ली माहिं।
तहसील कतल ह्याँ होयगी, क्योंही छूटे नाहिं ।।
दसमी फागुन सुदी को, दाखिल ह्वै है आय।
आठैं सुदी बैसाख को, वतन आपने जाय ।।
दोय मास रहै शहर में, ज्यादा रहै न कोय।
माल बहुत ले किले सों, कूच देश को होय ।।
मुहम्मदशाह को मुलक दे, फिर करके बादशाह।
नायब अपना थाप के, जैहै नादरशाह ।।[1]

यदि इस भविष्यवाणी पर ध्यान दिया गया होता तो तदनुसार घटित होकर भी इतना विनाश न होता।

सन् १७४८ ई० में मुहम्मदशाह के स्वर्गवास के उपरान्त अमीरों की दलबंदी ने पारस्परिक युद्ध का रूप धारण कर लिया और दिल्ली की गलियों में युद्ध होने लगा। सन् १७५० ई० में मराठों ने खांडेराव के नेतृत्व में जयपुर पर छापा मारा। सारे नगर में मराठों के प्रति विद्रोह फैल गया। फलतः, १२०० मराठे मौत के घाट उतार दिये गये। जोधपुर और बूंदी के राज्य गृहयुद्ध से जर्जर हो रहे थे। मुहम्मदशाह के बाद हुए बादशाहों की स्थिति दुर्गतिग्रस्त थी। राजपरिवार षड्यंत्रों, अनैतिक संबंधों और अनेक बुराइयों का केन्द्र था। बादशाह विलासी और अयोग्य थे। करों की वसूली नहीं हो पा रही थी, जिससे सैनिकों का कई महीनों का वेतन रुका पड़ा था। राजकोष बिलकुल रिक्त था।

अहमदशाह अब्दाली ने लाहौर और मुल्तान पर अधिकार कर लिया था। दिल्ली सल्तनत की सीमा दिन-प्रतिदिन घटती जा रही थी। नाम मात्र की बादशाहत बच रही थी। इन सब स्थितियों का सीधा प्रभाव प्रजा पर पड़ रहा था, जिसके रक्षक एकमात्र भगवान् थे।

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ८१-८३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक वातावरण और समाज—

यद्यपि आलोच्य कालावधि में (सं० १७५०-१९०० वि०) साधनाक्षेत्र में ज्ञानमार्ग, योगमार्ग और भक्तिमार्ग की साधनाएँ चल रही थीं परन्तु इनमें सर्वाधिक मुखर स्वर भक्तिमार्गियों का ही था। उन्होंने ज्ञान और योग की साधना को भक्तिसाधना का सहायक एवं अंगरूप मानकर अपनी भक्ति में उन्हें भी आत्मसात् कर लिया था। उस काल के ज्ञानमार्गी साधना-सम्प्रदायों में नानकपंथी या सिक्ख, कबीरपंथी, निरंजनी, रैदासी, दादूपंथी, दरियादासी, अघोरी, बाबरीपंथी, सतनामी, धरनीश्वरी, मलूकपंथी, पानपदासी, शिव-नारायणी, रामसनेही, नांगी, राधास्वामी और धामी आदि अनेक पंथ अपनी पूरी सज-धज के साथ जनता में अपनी विशिष्ट साधना-पद्धतियों का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। योग और भक्ति इन सबकी साधना में समाविष्ट थे। किसी पंथ या सम्प्रदायविशेष में ज्ञान की अधिकता थी, तो किसी में योग की अथवा भक्ति की। इनमें से शुद्ध ज्ञानमार्गी या योगमार्गी कोई नहीं था और हो भी नहीं सकता था।

(१) योगमार्गी साधना-पद्धति—योगपंथी साधकों में नाथपंथी या कनफटा योगियों का उल्लेख विशेष रूप से किया जाता है। योग के बिना तो कोई भी साधना-पद्धति नहीं चल पाती परन्तु ये योगी केवल ज्ञान और योग को ही प्रश्रय देते थे। विवेच्य कालखण्ड तक आते-आते समाज में इस प्रकार की साधना पूर्णतः बहिष्कृत हो गयी थी और जो थोड़े से योगमार्गी बचे भी रह गये थे, समाज में उनका कोई भी उल्लेखनीय प्रभाव नहीं था। यद्यपि मूलतः शैव और शाक्त ही योगमार्ग की साधना के पक्षपाती समझे जाते हैं परन्तु उत्तर मध्यकाल में भक्ति सभी प्रकार के साधना मार्गों में प्रविष्ट हो गई थी। अतः कोई भी शुद्ध योगमार्गी नहीं रह गया था।

(२) शैव और वैष्णव साधना-मार्ग तथा भक्ति का प्राधान्य—मध्यकालीन शैव और वैष्णव साधना मार्ग मुख्यतः भक्तिमार्गी थे या भक्ति की ओर उन्मुख थे। यहाँ तक कि नाथपंथी शैव मत भी कालान्तर में भक्ति की ओर झुक गया था। कश्मीरी शैवसिद्धान्त और दक्षिण भारत के वीर शैवमत तथा आलवार वैष्णवमत मूलतः भक्तिमार्ग के ही पोषक थे।

मध्यकाल के आरम्भ में आचार्य रामानुज ने जिस 'श्री सम्प्रदाय' का प्रवर्त्तन किया वह मुख्यतः भक्ति सम्प्रदाय था। उसके माध्यम से आचार्य प्रवर ने प्रथम बार भक्ति के दर्शन और शास्त्र का तर्कपूर्ण एवं दृढ़ आधार प्रस्तुत किया। तदनन्तर स्वामी मध्वाचार्य का मध्व या सनक सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी का विष्णुस्वामी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रद य, स्वामी निम्बार्काचार्य का निम्बार्क मत या हस संप्रदाय, श्री रामानन्द स्वामी का रामावत संप्रदाय, चैतन्य महाप्रभु का गौड़ीय संप्रदाय या चैतन्यमत, स्वामी वल्लभाचार्य का पुष्टिमत—आदि एक के बाद एक नवीन वैष्णव भक्ति-दर्शन और संप्रदाय प्रवर्तित हुए। इन सबने भक्तिवाद का अपने-अपने ढंग से प्रतिपादन किया और अपने मत के विशिष्ट सिद्धान्तों के प्रचार की व्यवस्था की। भक्ति के रसिक रूप को प्रधान मानकर मध्यकालीन वैष्णव भक्ति साधना के क्षेत्र में अनेक मत प्रचलित हुए, जिनमें राधावल्लभी, हरिव्यासी; गोकुलेश, सखी और हरिदासी आदि संप्रदाय विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी भक्ति का स्वरूप सरल एवं सरस है परन्तु इनका दार्शनिक सिद्धान्त सामान्यतया अत्यन्त जटिल एवं समझ के परे है। इस युग में रसिक साधना की व्याप्ति राम और कृष्ण दोनों भक्ति सप्रदायों में समान रूप से थी और उनके केन्द्र क्रमशः अयोध्या और वृन्दावन थे।

गुजरात का स्वामीनारायण संप्रदाय (उद्धवि संप्रदाय), आसाम का महापुरुषिया संप्रदाय और उत्कल का पंचसखामत भी भक्ति प्रधान वैष्णव मत ही हैं। महाराष्ट्र के महानुभाव और बंगाल के सहजिया वैष्णव मत में भी भक्ति का ही प्राधान्य है। आलोच्य चरणदासी या शुक संप्रदाय ज्ञान, योग और कर्म से संवर्द्धित वैष्णव भक्तिमार्ग है, जिसके आराध्य श्यामाश्यामयुगल हैं। परन्तु इस संप्रदाय के चरणदास जी, सहजोबाई जी और सुश्री दयाबाई आदि की रचनाओं में संतबानी का पुट देखकर विद्वान् भ्रमित हो जाते हैं और इस संप्रदाय को निर्गुण भक्तिधारा या ज्ञानाश्रयी भक्ति शाखा के अन्तर्गत रख देते हैं। सच्चाई तो यह है कि इस संप्रदाय की साधना-सम्बन्धी मान्यताएँ राधावल्लभी और हरिदासी मतों के अधिक निकट हैं।

इस युग का मुख्य स्वर भक्तिमूलक ही है। जिन संप्रदायों की गणना ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्तर्गत की जाती है, उनमें भी भक्ति का ही प्राधान्य दिखाई देता है। कबीर, दादू, रैदास, दरिया और मलूकदास आदि की रहस्यात्मक उक्तियाँ भी भक्ति के ही अन्तर्गत हैं। भगवद्विषयिणी रति ही भक्ति का मूलाधार है। इस अर्थ में अपने आराध्य के विरह और मिलन की अनुभूतिजनित उनकी उक्तियाँ भक्ति के ही एक स्वरूप की परिचायिका हैं।

(३) नाथपंथी सिद्धों की साधना—मध्यकालीन आध्यात्म साधना के क्षेत्र में भक्ति के निर्विवाद महत्व के मूल में तत्कालीन अन्य साधना संप्रदायों की कथनी-करनी में सामंजस्य का अभाव और उनमें परस्पर विरोधी बातों का होना ही है। इस दोष का अपवाद भक्तिमार्ग को छोड़कर अन्य कोई भी साधना मार्ग नहीं है। हम देखते हैं कि जिन मूल सिद्धान्तों के आधार पर विविध साधना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संप्रदाय प्रादुर्भूत हुए थे, कुछ ही अवधि के उपरांत इन संप्रदायों के अनुयायियों ने उन सिद्धान्तों के विकृत रूप को अपना लिया था और मूलस्वरूप को छोड़ दिया था। उदाहरण के रूप में कह सकते हैं कि नाथ संप्रदाय ने मूलतः आत्मज्ञान की आवश्यकता, मनोमारण, सूरातन की भावना, थोथे ज्ञान की निंदा, निर्गुण ब्रह्म का निरूपण, गुरु का परत्व या ईश्वरत्व, सत्कर्म का समर्थन और दुष्कर्म का निवारण, शिष्य-मंडली जुटाकर उनका शोषण करने का निषेध, कथनी-करनी के सामंजस्य पर जोर, योगाचारों का अभ्यास, शिव-शक्ति मिलन की रहस्यवादी बातें, एकांत निवास, शून्य में निरंजन की साधना, वाद-विवाद में न पड़ने की प्रवृत्ति, प्रवादी, प्रपंची और पाखंडी की घोर निंदा, मूर्तिपूजा-तीर्थाटन-व्रतोद्यापन और जाति-पाँति के भेद मानने वालों का विरोध, कायक्लेश का निषेध, नारी-निंदा, जीव-हिंसा-निषेध, सूक्ष्मवेद की बातें, वेद-पुराण को असत्य घोषित करना, घट-तीर्थ का उपदेश और अन्य मतों की कटु आलोचना आदि को अपने संप्रदाय के आचर-विचारमूलक सिद्धान्त के रूप में आधार माना था परन्तु आगे चलकर इन सभी मान्यताओं के विपरीत आचरण ही उसके विधेय कर्म या आचार-संहिता बन गये। इतना ही नहीं बल्कि किंचित् सिद्धान्त-भेद से उसके पचासों उपसंप्रदाय या उपपंथ चल पड़े। फिर वे एक दूसरे के खंडन-मंडन और आवश्यकता पड़ने पर संघर्ष तक के लिए तत्पर हो गये। अंततः नाथपंथियों में अपना स्वतंत्र पंथ प्रवर्तित करने में होड़ की प्रवृत्ति को निन्दास्पद मानते हुए १३वीं शती के नाथ-सिद्ध अजयपाल को कहना पड़ा—

मुंडे मुंडे भेष वितुंडे, ना बूझी सतगुरु वाँणी।
सुंनि सुंनि करि भूले पसुवा, आपा सुध न जाँणी ॥[1]

ब्रह्मचर्य और इन्द्रियनिग्रह पर जोर देने वाले पंथ के अनुयायी विषयी और आडंबरी हो गये थे।[2] इस प्रकार के दोष प्रायः सभी साधना संप्रदायों में आ चुके थे। एकमात्र भक्ति ही ऐसी साधना थी जिसमें आकर सभी गुण-दोष खप जाते हैं। जब साधक अपने समस्त कर्मों-सहित स्व को ही भगवान् को अर्पण कर देता है, तो फिर दोष कहाँ है? अतः युगानुसार नाथ पंथ में भी भक्ति और रहस्यवाद

---

१. नाथसिद्धों की बानियाँ : (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) पृ० ७।

२. बाकर कूकर किंगरी हाथ। वाली भोली तरुणी साथ ॥
दिनकर भिख्या रात्यूँ भोग। चरपट कहँ बिगौवैं जोग ॥
जटा विटंबन आँगैं छार। मोटी कंथा बहु बिस्तार ॥
विचित्र बानी अंगा चंगा। बटवा सीवैं बहु विधि रंगा ॥
—नाथसिद्धों की बानियाँ (चर्पटनाथ), पृ० २५–२६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के तत्व स्वीकृत हो गये। यही कारण है कि परवर्ती नाथ-सिद्धों की बानियों में हमें संत कवियों की भाँति रहस्यात्मक उक्तियाँ प्राप्त होती हैं। भक्ति के निकट पहुँचने का परिणाम यह हुआ कि नाथपंथियों को वैष्णव भक्ति संप्रदायों में सम्मिलित हो जाने में भी कोई बाधा नहीं रही। स्वयं चरणदास जी से ही प्रभावित होकर विद्यानाथ योगी सहित अनेक योगी उनके शिष्य तथा कृष्णभक्त हो गये थे, जब कि चरणदास जी भी एक प्रसिद्ध योग-साधक और सिद्ध योगी थे।

(४) बौद्ध मत की साधना—परिष्कारवादी और विशुद्ध आचारवादी बौद्धधर्म भी मध्यकाल तक आते-आते वज्रयान, सहजयान आदि रूपों में प्रकट हुआ। मद्य, मांस, मैथुन, मत्स्य आदि पंचमकारों का उन्मुक्त सेवन करने वालों का आचार-विचार कैसा होगा, यह कहने की बात नहीं है। अतः इनकी रहस्यात्मक साधना भी खाते-पीते, सुख से रमण करते हुए परलोक-प्राप्ति का प्रलोभन देने लगी—

खाअन्ते पीअन्ते सुहहिं रमन्ते। णित्त पुण्णु चक्कावि भरन्ते॥
अइस धम्म सिद्धह परलोकअह। णाह पाए दलीउ भवलोअह॥[1]

(५) जैनमत की साधना—जैनमत भी सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को मूलमंत्र मानकर चला था। उसमें इंद्रिय-निग्रह और मनो-नियंत्रण के लिए कठोर तप का भी विधान था। मूलतः यह एक निवृत्तिमार्गी संप्रदाय या धर्म था। इसने अपने प्रचार-प्रसार के लिए आहार, समय (शरण) भैषज्य और शास्त्रदान को मूलाधार बनाया। फलतः समाज का प्रायः हर वर्ग उनकी ओर आकर्षित हुआ और भारत में उनका धर्म पर्याप्त सम्मानित हुआ।

परन्तु मध्यकाल तक आते-आते अनीश्वरवादी जैन मत अनेक देवी-देवताओं की सज-धज के साथ पूजा करने के आडंबर में फँस गया। नगरनिवास से दूर रहने वाले जैनमुनि नगरसेठों की कोठियों में रहने लगे। भूत-प्रेत, जंतर-मंतर, धन-दौलत-संग्रह, मठ-मंदिर-निर्माण आदि में वे भी प्रवृत्त हुए। भोग-वासना और नारी से दूर रहने वाला यह श्रावकधर्म सुन्दरी नर्तकियों के मोहजाल में आबद्ध होने लगा। जैनों की आचारभ्रष्टता के संबंध में श्री जिनदत्तसूरि का यह कथन द्रष्टव्य है—

जीवणथ्थ जो नच्चइ दारी। सो लग्गइ सावयहं पियारी॥
तेहिं निमित्त सावय-सुयफुट्टहिं। जातिहिं दिवसहिं धम्महं फिट्टहिं॥
बहुअ लीय रायंध सपिच्छहिं। जिण मुहं-पंकउ विरला बंचहिं॥[2]

---

१. काव्यधारा : (राहुल सांकृत्यायन द्वारा संपादित) सरहपा : पृ० ७।
२. वही : (जिनदत्तसूरि) : पृ० ३५४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् यौवन से परिपूर्ण नाचती हुई नर्तकी श्रावकों को प्रिय लगती है। उसके लिये श्रावक शिर फोड़ने को तैयार रहते हैं और अपने धर्म को भी छोड़ सकते हैं। अधिकांश लोग रागांध हो गये हैं। वासनागत दोषों से कोई-कोई ही बचा हुआ है।

भक्तिकालीन आनंदघन, चिदानंद, ज्ञानसागर, कविसुंदर और बनारसीदास आदि कवियों के पदों में तो संत कवियों की रहस्यात्मक प्रेमानुभूति की अभिव्यक्तियों का पूरा-पूरा अनुगमन मिलता है। जैन कवि बनारसीदास की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

हिय आँगन में प्रेमतरु, सुरति डार गुण पात।
मगन रूप ह्वै लहलहै, बिना द्वंद्व दुख बात॥
... ...
मैं बिरहिन पिउ के अधीन। यों तलफों ज्यों जल बिन मीन॥
बाहर देखौं तो पिय दूर। घट देखौं घट में भरपूर॥[1]

(६) सूफी साधना—सूफियों के सुहरावर्दिया, चिश्तिया, कादिरिया, नक्शबंदिया आदि उपसंप्रदायों में परस्पर खींचा-तानी और एक-दूसरे पर छींटाकशी चलती ही रहती थी। मानव-प्रेम का संदेश देने वाला संप्रदाय भी कई भागों में विभक्त हो गया था। इनकी साधना की निम्नलिखित १४ अवस्थाएँ मुख्यतः भक्तिमार्ग की ही बातें हैं—(१) सत्यानुभूति के लिए तीव्र औत्सुक्य, (२) गुरु की खोज, प्राप्ति और उपदेशग्रहण, (३) आध्यात्मिक जागरण की अवस्था, (४) विवेक और वैराग्य की अवस्था, (५) आत्मपरिष्कार की अवस्था, (६) भावातिरेक की अवस्था, (७) आंशिक मिलनानुभूति की अवस्था, (८) विघ्न और उससे संघर्ष करने की अवस्था, (९) विरहावस्था, (१०) आत्म-समर्पण की अवस्था, (११) मिलन की पूर्वावस्था, (१२) मिलनावस्था, (१३) पूर्ण आत्म-समर्पण की अवस्था और (१४) तादात्म्यावस्था।[2]

इसी प्रकार भक्ति में समाहित ज्ञान, कर्म, उपासना आदि और सूफियों के (१) शरीयत (तौबा, जहद, रियाज, खौफ, कुफ्र और मुहब्बत आदि), (२) तरीकत (प्रज्ञोदय के पूर्व की स्थिति), (३) मारिफत (ज्ञानानुभूति) और (४) हकीकत (ज्ञानोदय की पूर्णता) में कोई उल्लेखनीय भेद नहीं है। भक्ति-साधना में स्वीकृत नाम-जप, भगवत्चिंतन, समाधि और संगीत या संकीर्तन

---

१. बनारसी विलास : पृ० १८०।
२. रहस्यवाद और हिन्दी कविता : (बाबू गुलाबराय और डॉ० शंभूनाथ पाण्डेय द्वारा संपादित), पृ० ७३–७४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूफियों में क्रमशः जिक्र, फिक्र, मुराबकह और समाअ के रूप में मान्य हैं। स्वर्ग और नरक के विषय में भक्ति क्षेत्र की मान्यता सूफियों में भी 'बिहिस्त' और 'दोजख' के रूप में स्वीकृत है। इतना ही नहीं बल्कि तीन लोक और १४ भुवनों की हिन्दू कल्पना के आधार पर ही सूफियों ने भी आल्मेनासूत (मानव लोक), आल्मे मलकूत (स्वर्ग लोक या देव लोक), आल्मे जबरूत (ऐश्वर्य लोक) और आल्मेहाहूत (माधुर्य लोक) आदि की कल्पना की है। प्रतीकात्मक रूप में ये जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था के समानार्थी हैं। इनकी साधना में मान्य अबूदिया, इश्क, जहद, मुवारिफ, हकीक और वस्ल क्रमशः योगियों द्वारा वर्णित मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, आज्ञा और विशुद्धि या सहस्रार चक्र के वाचक हैं। सूफियों की फना (मोक्ष) संबंधी मान्यता बौद्धों के निर्वाण के समकक्ष हैं। उनके एकेश्वरवाद का दार्शनिक सिद्धान्त भी बौद्ध शून्यवाद और शांकर अद्वैत का मिश्रित रूप है।[1] वे शुद्ध एकेश्वरवादी भी नहीं हैं, प्रत्युत विशिष्टताद्वैतवादी हैं, क्योंकि उनकी ब्रह्म की कल्पना प्रेम के रंग में रँगी हुई है।

तात्पर्य यह कि सूफी अभिव्यक्ति और मान्यता तथा हिन्दी के निर्गुण भक्ति-परंपरा की एतत्संबंधी मान्यताओं में किंचित् अन्तर के साथ अद्भुत साम्य है। केवल अवतार और सगुणोपासना की बात को छोड़ दें तो वैष्णव भक्ति और सूफी साधना में कोई विशेष अन्तर नहीं है। यही कारण है कि सूफियों की अभिव्यक्ति-शैली और विरहानुभूति की तीव्रता के अतिरंजित वर्णन की अनुकृति हमें हिन्दी के मध्यकालीन सन्त और भक्ति साहित्य में मिलती है। संभवतः यह युग की माँग के अनुरूप थी। इसी से हिन्दू, मुसलमान और ऊँच-नीच का भेदभाव मिट सकता था। ज्ञान, योग और भक्ति को त्रिवेणी के निकट आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपना जाति-वर्ण-धर्म खोकर 'हरिजन' हो सकता था। भक्त-भक्त में कोई अन्तर नहीं होता। वहाँ बस एक ही रङ्ग है, दूसरे का अस्तित्व ही नहीं है और वह रङ्ग है—साँवरे का श्याम रङ्ग। इसी को सूफी 'कमली वाले' कहकर स्मरण करते हैं। उनकी कमली का रंग भी श्याम ही है।

---

१. (अ) ना ओहि ठाँव न ओहि बिन ठाऊँ।
(ब) अलख अरूप अबरन सो कर्ता॥
(स) प्रगट गुपुत सो सरब बियापी॥
(द) वै सब कीन्ह जहाँ लगि कोई।
(य) हुत पहिले अरु अब है सोई। पुनि सो रहै रहै नहिं कोई॥
—पद्मावत (स्तुतिखण्ड)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भारतीय साधना के क्षेत्र में प्रेम के उदात्त स्वरूप की अभिव्यक्ति का श्रेय सूफियों को ही देते हैं, जो पूर्णतः मानने योग्य बात नहीं है। वे कहते हैं—"भारतीय प्रेमभाव का स्वरूप पहले शुद्ध मानवीय मात्र था और उसकी गति ईश्वरोन्मुखी नहीं थी, और न तो उसे आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचाने की कल्पना ही की जाती थी। सूफियों ने ही यहाँ सबसे पहले 'इश्क मजाजी' और 'इश्क हकीकी' की सात्विक एकता का आदर्श सबके सामने रखा। सूफियों ने ही प्रेम के आध्यात्मिक रूप को भारतीय साधना के समक्ष प्रस्तुत किया।"[1] आचार्य चतुर्वेदी ने संभवतः दक्षिण भारत के आलवार वैष्णव और वीरशैव मत आदि के कवियों की उक्तियों पर संभवतः ध्यान नहीं दिया, जिन्होंने ईसवी सन् से भी पूर्व या उसके आस-पास प्रेमाभक्ति की अनुभूतियों का वर्णन किया था। उनकी इन अभिव्यक्तियों को तथा परवर्ती भक्ति आन्दोलनों को, इसाई भक्ति-भावना की अनुकृति मानना भी तर्कसंगत नहीं है।[2]

एक ओर जहाँ सूफी हिन्दू और मुसलमास-दोनों धर्मों में सौजन्य और एकात्मभाव उत्पन्न करने का प्रयास कर रहे थे, वहीं औरंगजेब हिन्दुओं की धर्म-भावना पर प्रतिबन्ध लगा रहा था और उनकी धार्मिक भावना को लगातार ठेस पहुँचा रहा था। मलूकदास के शिष्य संत सुथरादास उसके इन कृत्यों का वर्णन इस प्रकार कर रहे हैं :—

कालरूप बादशाह हो बैठा। पूजन भाव छूटौ घर बैठा॥
वेद पुरान मना करवावैं। ब्राह्मण पूजा करन न पावैं॥
जहाँ लग स्वांगी स्वांग बनावै। बादशाह सब सुरति मिटावै॥
काजी मुल्ला की करै बड़ाई। हिन्दू को जजिया लगवाई॥[3]

---

१. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ : पृ० २८।

2. Bhakti Marg of Hindus is due to christian apostels and missionaries. St. Thomas in early century of christian era established settlements of syrian christians in the South India. Christian settlers made converts and the path of devotion took firm hold in Dravidians. The great founders of modern Vaishnavism rose in the south and their teaching spread later in the north of India. So modern Vaishnavism is due to St. Thomas and his followers.

—भक्तिरत्नावली—(श्रीविष्णुपुरीकृत)—भूमिका से उद्धृत।

३. मलूकदासजी की परिचयी (सुथरादासकृत) : पृ० १६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके द्वारा विध्वस्त काशी और मथुरा के प्रसिद्ध मंदिरों का उल्लेख सुथरादास जी इस प्रकार कर रहे हैं :—

काशी विश्वनाथ विस्तारा। कला न देखा सभी उजारा ॥
द्वारिकानाथ में तुरुक पठायो। रणछोर को स्थानै ढायौ ॥
बद्रीनाथ गोकुलै उजारा। जगन्नाथ को किया बिकारा ॥
... ...
नगरकोट की कला बिचारी। कला न देखी मढ़ी उजारी ॥
बहुत विकट मन माहिं बिचारा। परसुराम का देवल उजारा ॥[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोच्य संप्रदाय का प्रादुर्भाव बड़े ही कोलाहल-पूर्ण वातावरण में हुआ। हिन्दू संस्कृति की गर्दन पर इस्लाम और ईसाई मत की दुधारी तलवार से वार हो रहे थे। उसे बचाने की शक्ति किसी में भी नहीं रह गई थी। जो मराठे, राजपूत और सिक्ख उसके रक्षक हो सकते थे, वे स्वयं भी परस्पर विद्वेषजनित युद्धों में शक्तिहीन, असंगठित और अन्ततः पराधीन और विपत्तिग्रस्त हो गये थे। ऐसे समय में गुजरात के संत और धामी या प्रणामी संप्रदाय के प्रवर्त्तक संत प्राणनाथ तथा नवरङ्गस्वामी; काशी के कीनाराम बाबा (अघोर पंथ के प्रवर्त्तक), संत यारीसाहब (पूर्वी उत्तर प्रदेश के निवासी तथा बाबरी पथ के महात्मा); सतनामी संप्रदाय के स्वामी जगजीवनदास, बोधदास, खेमदास तोंबरदास, दीनदास; गरीबदासी पंथ के प्रवर्त्तक और रोहतक जिले के निवासी गरीबदास; बाबरी पंथ के भीखासाहब और गुलालसाहब, देवकीनंदन और वीरूसाहब, सतनामी, गिरिवरदास, सिध्यादास, बदलीदास तथा मुरली-दास, पलटूदास और उनके गुरु गोबिन्दसाहब; रामसनेही संप्रदाय के संत राम-चरणदास तथा चतुरदास जी; दादूपंथी संत चत्रदास, निश्चलदास, सुन्दरदास (छोटे और बड़े) तथा राघोदास; भीखासाहब के शिष्य गोबिन्दसाहब, धरनीश्वरी चैनराम; निरंजनी संप्रदाय के रामप्रसाद निरंजनी, भगवानदास, मनोहरदास, जगन्नाथदास, सेवादास तथा निपटदास, सतनामी विद्रोह के अग्रणी श्री जोगीदास, सीतारामीय संप्रदाय के प्रवर्त्तक बाबा झामदास, नारनील निवासी एवं नागी संप्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीडेढ़राज, पूना के पेशवावंशीय राजकुमार और बाजीराव पेशवा के बड़े भाई संत तुलसीसाहब (साहिब पंथ के प्रवर्त्तक), मारवाड़ के संत दरियासाहब, शहाबाद-बिहार के संत दरियादास (दरिया पंथ के प्रवर्त्तक), शिवनारायणी संप्रदाय के प्रवर्त्तक शिवनारायणजी तथा उनके गुरु दुखहरन साहब, लखनऊ के श्री दूलनदास बाबा, बाराबंकी के देवीदास, धरनीश्वरी संप्रदाय के प्रवर्त्तक बाबा धरनीदास, उनके शिष्य धर्मादास, जगजीवनसाहब के शिष्य

१. मलूकदास की परिचयी (सुथरादासकृत) : पृ० १५, १७ और १८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवलदास, पानप पंथ के प्रवर्त्तक संत पानपदास, बाबालाली संप्रदाय के प्रवर्त्तक संत बाबालाल, आयापंथी भगवानदास, काठियावाड़ के भोजोभगत, मलूकदासी बाबा रामचन्द्र, राधास्वामी मत के प्रवर्त्तक शिवदयाल जी और इसी प्रकार के सैकड़ों संत महात्मा धार्मिक और सामाजिक सौमनस्य की स्थापना और भारतीय संस्कृति की रक्षा में जुट गये थे। इनकी पहुँच समाज के प्रायः प्रत्येक वर्ग में तथा उत्तर भारत के कोने-कोने में थी। इनके संदेशों ने शोषण, उत्पीड़न तथा संत्रास-ग्रस्त जनता के हृदयों को अपने सांत्वनादायी उपचारों से जीवनदान दिया और इन्हीं परिस्थितियों के बीच आलोच्य परंपरा का विशाल-साहित्य भंडार हिन्दी के वाङ्मय को समर्पित हुआ।

निर्गुणधारा के संतों के अतिरिक्त अनेक कृष्णाश्रयी और रामभक्तिशाखा के भक्त कवियों ने भी अपना मधुर स्वर मुखरित किया। सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछाप के कवियों और मीराबाई के स्वर में स्वर मिलाते हुए आलोच्ययुगीन कृष्णभक्त कवियों, यथा छीहल, लालदास, गदाधरभट्ट, सूरदास, मदनमोहन, नरोत्तम-दास, हरिराय, घनानन्द, ठाकुर, बोधा आदि सहस्रों भक्त और शृंगारी कवियों ने कृष्ण के विविध रूपों और उनसे संबद्ध वृत्तों पर प्रबंधों या मुक्तकों के रूप में विपुल साहित्य का सृजन किया। इन कवियों में हिन्दू, मुसलमान और जैन—इन तीनों धर्मों के लोगों का समावेश है। रहीम, रसखान, मुबारक, ताज आलम, शेख, प्रीतम (अलीमुहिब्ब खाँ) आदि मुसलमान कृष्णभक्त कवियों या कृष्ण-संबंधी शृंगारपरक काव्य के रचयिताओं ने धर्म की संकुचित सीमाओं को तोड़कर कृष्णभक्ति की ओर अपनी अनुकरणीय प्रवृत्ति प्रदर्शित की। कृष्ण और रामभक्तों में अनेक राजपुरुष भी सम्मिलित थे। इस क्षेत्र में सभी जातियों, वर्गों, अवस्थाओं, क्षेत्रों और स्त्री-पुरुषों में अभेद था। यह धारा देश के कोने-कोने में व्याप्त थी।

भक्ति की इस अजस्र एवं देशव्यापी सुरसरि-प्रवाह में मध्व, रामावत, निंबार्क, वल्लभ, राधावल्लभीय, चैतन्य, हरिदासी आदि अनेक आचार्य-परंपराओं द्वारा अनुमोदित भक्ति-परंपरा के कवियों की वाणियों की छोटी-बड़ी कुल्याएँ आकर मिली थीं। इसे भी रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, रामानन्द, कृष्णदास पयहारी, कोल्हदास, निम्बार्क स्वामी, श्रीनिवासाचार्य, औदुम्बराचार्य, गौरमुखाचार्य तथा लक्ष्मण भट्ट आदि शिष्यों, हरिदास स्वामी, श्री वल्लभाचार्य तथा गो० विट्ठलनाथ, हितहरिवंश स्वामी और स्वयं चरणदास जी आदि आचार्यों ने अपने विशिष्ट भक्तिमूलक सिद्धान्तों के प्रतिपादन और संयोजन से परिपुष्ट किया था। इन संप्रदायों में असंख्य कवि हुए, जिन्होंने राम-कृष्ण के विविध जीवन-आयामों को अपनी विशिष्ट दृष्टि से चित्रित किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें भी चरणदासी संप्रदाय के ऊपर संत कबीरदास, गुरुनानक, दादूदयाल और निरंजनी संप्रदाय के संतों की ज्ञान-योग से संपुष्ट विचारधारा के साथ ही श्री हितहरिवंश, ध्रुवदास और हितवृन्दावनदास आदि के रसिक सम्प्रदायानुमोदित भक्तिमूलक मान्यताओं का प्रभाव सर्वाधिक है। चरणदास जी की भक्ति-पद्धति निर्गुण और सगुण—दोनों प्रकार की भक्ति पद्धतियों की मान्यताओं को अलग-अलग विभाजित करती-सी दिखाई देती है। तदनुसार उनके शिष्यों में भी स्वामी रामानन्द की भाँति सगुण और निर्गुण शिष्यों की दो भिन्न परम्पराएँ हैं। इनमें एक तीसरी परंपरा भी है जो दोनों के संपृक्त रूप को मानती प्रतीत होती है। इस प्रश्न पर हम आगे के अध्यायों में स्वतन्त्र रूप से प्रकाश डाल रहे हैं। अतः यहाँ इतना ही संकेत करना आवश्यक है कि आलोच्य संप्रदाय भक्ति-साधना की एक सशक्त कड़ी है। इतना ही नहीं बल्कि वह कृष्णभक्ति की रसिक साधना की ओर अत्यधिक उन्मुख दिखाई देती है। श्री शुकदेव मुनि और चरणदास जी के सहित उनके अनेक शिष्य-प्रशिष्यों और उनकी शिष्य परंपरा के परवर्ती कवियों तथा महंतों के सखी नाम इस बात की पुष्टि करते हैं। शुक संप्रदाय (चरणदासी संप्रदाय) के अधिकांश कवि राधाकृष्ण युगल के उपासक हैं। इनमें भी एक वर्ग ऐसे साधकों का रहा है और अब भी है जो निकुंज रस, वृन्दावन रस आदि रसिकोपासना की परिपाटी से संपुष्ट गोपीभाव या सखीभाव का ही उपासक है और जिसकी परमाराध्या श्री राधिका जी हैं।

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था और समाज—इस्लाम धर्म की प्रबल आँधी में भी हिन्दू संस्कृति सुरक्षित रह गई, इसका मुख्य श्रेय हिन्दुओं की पारम्परिक वर्ण-व्यवस्था और उनके धार्मिक विश्वासों को दिया जाना चाहिये। वर्ण-भेद आज अपने आप में चाहे जितना निन्दनीय माना जाय परन्तु इसी ने अपने अभेद्य कवच से हिन्दुत्व की रक्षा की। आलोच्य काल-खण्ड में जहाँ एक ओर वर्ण-व्यवस्था शक्तिशाली हुई, वहीं उसकी मूल धारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन भी हुए। अब जाति-भेद कर्मणा नहीं बल्कि जन्मना हो गया था। सबने एक-दूसरे वर्ण के कार्य-क्षेत्र में अबाध प्रवेश किया था। ब्राह्मण सेना में भर्ती होने, व्यापार करने और मजदूरी करने में हेठी नहीं मानते थे और क्षत्रिय पढ़ने-पढ़ाने, व्यापार करने, खेती करने और आवश्यकता पड़ने पर किसी भी वर्ण के लिए विहित कार्य करने में कोई बाधा नही मानते थे। शूद्र भी रुचि, योग्यता और अवसर के अनुसार ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के लिए परम्परानुमोदित कार्यों को अपना सकते थे। सेना में सभी जाति के लोग भर्ती होते थे और एक साथ ही खाते-पीते तथा रहते थे। छूआछूत का भाव स्वतः कम हो रहा था। फिर भी छोटी जातियों में ऊँची

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातियों के प्रति स्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष, विक्षोभ और विद्रोह का भाव था। वे वर्ण-व्यवस्था को ही मिटाने की माँग कर रहे थे।

वर्ण, धर्म और परम्परागत मान्यताओं के मूल्यों में हो रहे परिवर्तनों का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि राजस्थान के अनेक राजपूतों ने अपनी बहन-बेटियों का विवाह मुगल बादशाहों, उनके दरबारियों तथा प्रशासन के उच्च अधिकारियों से बिना किसी झिझक के किया और उनके जातीय सम्मान तथा उनकी सामाजिक स्थिति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। यही नहीं, बल्कि पूरे समाज में वर्णसंकरता का विस्तार होने लगा। इस युग में जाति-व्यवस्था इतनी लचीली हो गई थी कि शूद्र का काम करके भी ब्राह्मण ब्राह्मण ही रहता था। इससे आचार-भ्रष्टता को बढ़ावा मिला और ऊँची जातियाँ आचरण और नैतिकता की दृष्टि से भ्रष्ट हो गईं। फलतः इस युग में उदात्तता और आचरण की श्रेष्ठता व्यक्तिगत सम्पत्ति हो गई थी न कि सामूहिक या जातिगत। यही बात आचरण-भ्रष्टता के लिए भी कही जा सकती है। किसी भी जाति का व्यक्ति भ्रष्ट आचरण में प्रवृत्त हो सकता था। यह किसी जातिविशेष की विशेषता या पहचान नहीं रह गई थी।

चूँकि सेना में सभी जातियों (यहाँ तक कि आदिवासियों, वनवासियों और गिरिवासियों में) से कोई भी भर्ती होकर सैनिक बन सकता था और उस समय की युद्ध-पद्धति में लूटमार की विशेष छूट थी ही, अतः नवयुवती विवाहिताओं अथवा कुमारियों का अपहरण सामान्य बात थी। इससे वर्णसंकरता में वृद्धि ही होती थी। परन्तु इसके साथ ही तत्कालीन जाति-व्यवस्था में एक बड़ा विरोधाभास यह था कि समाज के सामान्य स्तर पर इसका कड़ाई से पालन करने की ओर ही अधिक आग्रह था। यही कारण है कि अनेक लोगों को धर्म-परिवर्तन करने के लिए बाध्य होना पड़ा। निम्न जातियों में भी यदि कोई अपनी विशेष उपलब्धियों के कारण प्रभावशाली हो गया तो ऊँची जातियों के लोग भी उसके समक्ष नतमस्तक होने में संकोच नहीं करते थे, परन्तु यह उस व्यक्ति के गुणों या उसकी स्थिति के कारण था न कि उसकी जाति आदि के कारण। प्रत्येक सभ्य समाज में गुणों का आदर होना ही चाहिए। देश के कुछ क्षेत्रों में उस समय अछूतों की छाया भी अस्पृश्य मानी जाती थी। उन्हें घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। उनकी समाज में बड़ी दुर्दशा थी। उनका सारा जीवन ही शोषण और उत्पीड़न का पात्र होने के लिए था। वे हिन्दू समाज की नींव के ऐसे पत्थर थे, जिन्हें सदैव भूमिगत ही रहना था। दुःख की बात तो यह है कि अछूत कहे जाने वाले स्वयं छूआछूत की भावना से ग्रस्त थे और आज भी हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातियों की संख्या में सतत् वृद्धि होती चली गई। किसी जातिविशेष का यदि कोई व्यक्ति सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक हो गया तो उसी के नाम पर सम्प्रदाय के स्थान पर एक उपजाति का भी प्रादुर्भाव हो जाता था। उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि रैदासी, सतनामी, कबीरपंथी, नानकपंथी आदि मत आरम्भ में सम्प्रदाय थे परन्तु आगे चलकर ये जाति के रूप में परिणत हो गये। जातियाँ चाहें जितनी हों, यह चिन्ता का कारण नहीं है परन्तु चिन्ता तब होती है जब मानवता और भाई-चारे को त्याग कर एक जाति दूसरी जाति के विनाश या उन्मूलन के लिए तत्पर हो जाती है।

तत्कालीन समाज और धर्म—सामान्य जनता असंख्य देवी-देवताओं की पूजा में निरत थी। भूत-प्रेत-पिशाचों-जिन्नों आदि का भी कोई पारावार नहीं था। ओझा, तान्त्रिक, मान्त्रिक और ज्योतिषियों की बन आई थी। योगी, कनफटे, अघोरी, कौल और कापालिक विरूप वेष धारण किये तथा जनता में भय का वातावरण बनाये हुए अपनी पूजा करा रहे थे। विपत्ति में पड़ा हुआ मनुष्य पीपल, बरगद, नीम, नदी, सरोवर, तुलसी, झाड़-झखाड़, छोटे-मोटे पत्थर से लेकर पहाड़ तक पूजने को तैयार रहता था। मिट्टी और गोबर के गणेश से लेकर हीरे-जवाहरात तक के देवी-देवता पूजे जा रहे थे। जहाँ मुसलमान हनुमान जी, गणेश जी और भूत-भवानी को प्रसाद चढ़ाकर दुआएँ माँगने में कोई हानि नहीं समझते थे, वहीं हिन्दू जिन्न, पीर, मजार और ताजियों को भी सिन्नी चढ़ाने में आत्म-सन्तोष का अनुभव करते थे। धर्मगत वैमनस्य निहित स्वार्थों की टकराहट थी और प्रपंच बुद्धि की उपज थी। सामान्य जनता को इनसे कुछ भी लेना-देना नहीं था, परन्तु हिंसा या प्रतिहिंसा का दण्ड उसे ही भोगना पड़ता था। बेचारा हिन्दू तो पशुओं, पक्षियों और कृमि-कीटाणुओं तक की पूजा करता रहता था। पता नहीं कौन उसकी सहायता कर दे? जिस समाज में सर्प, गरुण, हाथी, चूहा, बन्दर, गाय, वृषभ, मकर, मत्स्य, शेर, मयूर, शुक आदि भी देवता के रूप में पूजे जाते हों, वह मानव के साथ घृणा करे, यह बात समझ में नहीं आती। सामान्य जनता न हिन्दू थी, न मुसलमान; न जैन थी, न बौद्ध या शैव-वैष्णव। एक साधारण हिन्दू गृहस्थ तीर्थंकर, बुद्ध भगवान, शिव, विष्णु या उनके विविध अवतार और पीर-पैगम्बर आदि सबकी पूजा के लिए तत्पर था. चाहे उसका अपना कोई भी धर्म क्यों न हो।

जनता की इस धर्मभीरु भावना का ढोंगी साधु अनुचित लाभ उठाकर उसका शोषण करते थे। समाज में ऐसे साधुओं का क्या रंग-ढंग था और उन्हें किस दृष्टि से देखा जाता था, इसका एक चित्र श्री चरणदास के शिष्य जोगजीत जी के शब्दों में द्रष्टव्य है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनको कहो फकीर तुम, सो हैं ये कंगाल ।
घर घर ही माँगत फिरैं, कर्महीन बेहाल ।।

बुरे हाल कोई माँगत डोलैं । पराधीन दीन हो बोलैं ।।
कहैं कि टुकड़ा दीजो माई । भूखा हूँ तुमरी सरनाई ।।
पट झोली गह माँगन धावें । उदर काज बहु स्वांग बनावें ।।
कोई जान करम का मारा । कै कोई मान जुवे का हारा ।।
कोई जटा कोई मुड़िया नागे । कोई कपड़े रंग माँगन लागे ।।
द्रव्यहीन कै जग दुख पाया । कै कोई पाप देह दुख लाया ।।
कै कोई नारि बुरी तज आवे । काहू के तन रोग सतावे ।।
कोऊ लत लागे बौराये । होय निखट्टू माँगन आये ।।

पेट काज तन भेष धरि, माँग सु पालें देह ।
चिंता नहिं परलोक की, हरि सूँ नाहीं नेह ।।[1]

भारतीय संस्कृति की विशेषताएं—जिस ब्राह्मण धर्म की निन्दा ईसवी सन् से भी शताब्दियों पूर्व से होती चली आ रही है, उसकी विशेषताओं की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है । सर्वप्रथम तो सोचने की यही बात है कि इसमें वह कौन-सी विशेषता है कि लगभग २५ शताब्दियों से चतुर्दिक् से विरोध एवं विद्रोह के बावजूद भी उसका मूल अस्तित्व और स्वरूप अक्षुण्ण बना हुआ है ? यदि इस प्रश्न पर विचार किया जाय तो पायेंगे कि इस व्यवस्था की पाचन शक्ति और जीवनी शक्ति अद्भुत् है और इसमें आश्चर्यजनक लचीलापन है । अनादिकाल से अबतक इसके अन्दर या बाहर वैचारिक नवीनता के साथ जो भी दर्शन या जीवनदर्शन उभरा उसको उसने आत्मसात् कर लिया । उसने अपना कलेवर थोड़ा बदल दिया या उसमें कुछ घटा-बढ़ाकर वह स्वयं सुरक्षित बना रहा । उसने २४ अवतारों में माने जाने वाले मीन, कच्छप, वाराह, अश्व, मयूर आदि भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के आराध्य भगवत्-स्वरूपों को अपने महत्तम देवताओं की कोटि में स्थान दिया । क्या अन्तर पड़ता है, जैसे दस अवतार वैसे चौबीस ? उसी में जैनों के तीर्थंकर और बौद्धों के भगवान् बुद्ध भी अवतार बन गये । जो अभी अवतरित नहीं हुआ उस कल्कि को भी अवतार मान लिया गया ताकि किसी से अवतार के प्रश्न पर कोई झगड़ा न रहे । जो अवतार नहीं बन सके वे इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि के रूप में अवतारों के भाई बन गये । इस प्रकार हर जाति के या संस्कृति के देवताओं को जगह देने के लिए

१. लीलासागर : पृ० ६२ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं की संख्या ३६ कोटि मान ली गयी है। यदि इससे भी उनकी संख्या कभी बढ़ेगी तो यह संख्या ५६ कोटि या ८४ कोटि भी हो सकेगी।[1]

मुसलमानों और ईसाइयों को भी भारत में अपने विचारों के प्रसार के लिए इस ब्राह्मण धर्म को शस्त्र, धन और प्रभुता के बल से ही किंचित् सिमटने के लिए बाध्य करना पड़ा, तब कहीं उन्हें खड़े होने की जगह मिली। जिस एकेश्वरवाद को इस्लाम की देन माना जाता है, वह यहाँ वेदों और उपनिषदों में बहुत पहले से ही है। उसी का परिष्कृत रूप अद्वैतवाद है।[2]

ब्राह्मण धर्म की इन्हीं विशेषताओं को देखते हुए मैक्समूलर ने अबुल फजल के 'आईने अकबरी' के एक अंश को उद्धृत् किया है, जिसका आशय है कि हिन्दू प्रायः धार्मिक, मिलनसार, उदार, प्रसन्नमुख, न्यायप्रिय, आरामपसन्द, कुशल व्यापारी, सत्यनिष्ठ, कृतज्ञ और परम्परावादी होते हैं।[3] भारतीय संस्कृति का शरीर नगरों में रहता है लेकिन उसकी आत्मा, उसकी प्राणवत्ता ग्रामवासिनी है। यह वह आत्मा है जो न जलाने से जलती है, न गलाने से गलती है और पानी में रहकर भी न जो भींगती है। यह गीता में वर्णित जीवात्मा के स्वरूप का प्रतिरूप है। परिस्थितियों के अनुसार नगर का कलेवर थोड़ा बहुत सदैव बदलता रहता है लेकिन ग्रामीण संस्कृति ज्यों की त्यों बनी रहती है। सर चार्ल्स मेटकाफ का यह कथन ठीक ही है—

"Dynesty after Dynesty tumbles down, revolution succeeds revolution, Hindu, Pathan, Mogul, Marhatta, Sikh, English are all masters in turn, but the village communities remain the same."

---

1. "A certain Philosophical tolerance in the Brahmins has added to the teeming pantheon of India; local or tribal Gods have been received to the Hindus by adoption by interpretting them as aspects of Avatar of accepted deities. In the end nearly every God became phase, attribute or incarnation of another God. Untill all the divinities to adult Hindu minds merged into one. Polytheism became Pantheism, almost monotheism, almost monoism." Will Durant–Our Oriental Heritage–pp. 510-11.

2. Max Muller—India : What can it teach us. (London., 1919) p. 57.

3. G. S. Ghurye —Caste and Class in India—page-23.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं मैले-कुचैले वस्त्रधारी सीधे-सादे ग्रामीणों के बीच भारत की आत्मा बसती है। सारे भक्ति आन्दोलन यहीं शरण पाते हैं। यही लोग संतों, भक्तों और प्रत्येक प्रकार के साधकों के आश्रयदाता हैं। यहाँ का शरीर गन्दा दिखाई दे सकता है, लेकिन आत्मा स्वच्छ-निर्मल है। इनके यहाँ सभी देवी-देवताओं का आदर है। सभी प्रकार के साधु-महात्मा, उपासक, संत, भक्त, ज्योतिषी, कर्मकाण्डी, ओझा, तांत्रिक, योगी, वैरागी, अक्खड़, फक्कड़, नंगे-लुच्चे (नग्न साधु और लुंचित साधु), पीर-औलिया और फकीर शरण पाते हैं। यहीं से जाति-व्यवस्था अपनी शक्ति अर्जित करती है। परम्पराएँ यहीं पलती हैं। गाँव ही शहर में अपने सदस्यों को भेज-भेज कर वहाँ की आबादी और सामंजस्य-शक्ति में वृद्धि करते हैं। गाँव से नगर में गया हुआ व्यक्ति एक-दो पीढ़ी तक तो ग्राम्य संस्कृति को चलाता ही है। उसे पूरा शहरी बनने में कुछ समय लगता है, तब तक दूसरे लोग गाँव से निकल कर शहर में चले आते हैं। शहर से गाँव में जाकर बसने वालों की अपेक्षा गाँव से शहर में आने वालों का प्रतिशत कई गुना अधिक होता है।

चरणदास जी का समाज को उद्बोधन—उपर्युक्त स्थिति के आलोक में हम देखते हैं कि एक ही समाज के भिन्न-भिन्न विचारों के लोग अपने-अपने मतानुसार साधना-मार्ग अपनाने के लिये स्वतंत्र हैं। कोई किसी को रोकता नहीं है। बीच-बीच में कुछ ऐसे महात्माओं का प्रादुर्भाव अवश्य हो जाता है, जो गलत मार्ग पर चलने वालों को उनकी भूल बताकर ठीक मार्ग पर ले चलने का प्रयत्न करते हैं लेकिन इनमें से किसी का भी प्रयत्न चिरस्थायी सुधार का साधन नहीं बन पाता। जनता फिर आत्मसंतोष के लिए जो समझ में आता है, उसी पथ का अनुसरण करने लगती है। मूर्त्तिपूजा का विरोध न जाने कब से हो रहा है लेकिन मूर्त्ति, मंदिर, मठ पूजकों के विरोधी या उनकी शिष्य परंपरा के लोग कालान्तर में स्वयं ही इन सब प्रपंचों को अपना लेते हैं। इसका उदाहरण बौद्ध, जैन, कबीरपंथी, नानकपंथी आदि सभी हैं। कोई मूर्त्तिपूजा कर रहा है तो कोई गुरु के शब्दों की ही पूजा कर रहा है। मठ-मंदिर-मस्जिद-गिरजाघर—सबके सब मूर्त्तिपूजा के ही रूप हैं। फिर भी रास्ता दिखाने वालों का काम है, रास्ता दिखाना, चलने वाले उस पर चल-चल कर भटक सकते हैं। यहाँ चरणदास जी की उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

भाई भरमत फिरै लोई, जल और पाहन सेइ।
बात नहीं बूझै कोई, तिन को वह ध्यावै॥[1]

---

१. भक्तिसागर (शब्दवर्णन) : पृ० ४३२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा

अरे नर क्या भूतन की सेवा ।
दृष्टि न आवै मुख नहिं बोलै ना लेवा ना देवा ।।
जेहि कारन घी ज्योति जलावै बहु पकवान बनावै ।।
सो खावै तू अधिक चाव सूँ वह सपने नहिं खावै ।।
रात जगावै भोपा गावै झूठै मूड़ हिलावै ।।
कुटुंब सहित तोहि पैर पड़ावै मिथ्या वचन सुनावै ।।
तोहि भरोसे जनम गँवावै जीवत मरत न साथा ।।
बड़ भागन नर देही पाई खोवै अपने हाथा ।।[1]

इस प्रकार बाह्याचार-विजड़ित धर्म-भावना को शुद्ध भक्ति-भावना की ओर उन्मुख करने के लिए स्वामी चरणदास कृष्णांशरूप में अवतरित माने जाते हैं। उनका प्रभाव भी व्यापक रूप से पड़ा। उन्होंने संत कबीर की धक्कामार शैली में समाज को अपने शब्द की ठोकर से जगाने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने समाज के समझदारों को बताया--

सब जग मर्म भुलाना ऐसे ।
ऊँट की पूँछ से ऊँट बँध्यो ज्यों, भेंड़ चाल है जैसे ।
खर का शोक भूँस कूकुर की देखा देखी चाली ।।
तैसे कलुआ जाहिर भैरो सेढ़ मसानी काली ।।
राखैं भाव श्वान गर्दभ को उनको ल्याय जिमावैं ।।
ठेठ चमारन को सिर नावैं ऊँची जाति कहावैं ।।
दूध पूत पाथर सों माँगैं जाके मुख नहिं नासा ।।
लपसी पपड़ी ढेर करत हैं वह नहिं खावै मासा ।।
वाके आगे बकरा मारैं ताहि न हत्या जानैं ।।
लै लोहू माथे सो लावैं ऐसे मूढ़ अयानैं ।
कहैं कि हमरे बालक ज्यावौ बड़ी आयु बल दीजै ।।
उनके आगै विनती करतै अँसुवन हिरदै भीजैं ।।
भोपे भरड़े के पग लागैं साधु संत की निंदा ।
चेतन को तजि पाहन पूजैं ऐसा यह जग अन्धा ।।
सतसंगति की ओर न झाँकैं भक्ति करत सकुचावैं ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं क्यों न नरक को जावैं ।।[2]

---

१. भक्तिसागर (शब्दवर्णन) : पृ० ४५० ।
२. वही : पृ० ४४९-४५० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो स्थिति थी सामान्य गृहस्थों की। उस समय के अधिकांश साधुवेश-धारी वर्ग का आचार-विचार क्या था, इस पर भी चरणदास जी की दृष्टि गई है और उनकी कथनी-करनी में निहित विसंगतियों की उन्होंने जमकर आलोचना की है। ऐसे लोगों के लिए उनकी फटकार की एक बानगी द्रष्टव्य है—

अरे नर कहा कियो तुम ज्ञान।
गई न हिंसा कुबुधि बड़ाई राग द्वेष की आन॥
प्रभुताई को क्षण क्षण दौरैं प्रभु को ना क्षण एक।
अन्तर भोग जगत् के प्यारे बाहर साधू भेष॥
जैसे सिंह गऊ तन धारी कपट रूप प्रगटायो।
धोखा खाय के पशु आ निकसौ पंजा ताहि चलायो॥
सुन्दर रूप महा बगुले को एक टाँग जल ध्यान।
मन में आशा मीन गहन की कहाँ मिलैं भगवान्॥
गुरु शुकदेव बतायो मोको भीतर बाहर शुद्धि।
चरणदास वा हरिजन जानो ताकी है ब्रह्मबुद्धि॥[1]

जिन्होंने अपने भेष और आचरण में तादात्म्य स्थापित नहीं किया वे गृह-त्यागी होकर भी न इधर के रहे न उधर के। न तो उन्हें प्रेमभक्ति ही मिली और न तो गृहस्थी का सुख ही मिला।[2] ऐसे लोगों का बाना-धारण निरर्थक है।

चरणदास जी अपने उपदेशों में सबसे पहले इन पाखंडियों का ही विरोध करते थे और लोगों से कहते थे कि वे इनके बहकावे में न आवें—

चरणदास उपदेश कराई। भरम छुटा हरि भक्ति चलाई।
भूत वराही सेढ़ मसाने। कहैं इन सेवैं सोइ अयाने॥
जंत मंत्र अरु इष्ट जु नाना। मूंड़ हलावन झूठ बखाना॥
किमियागर जादूगर स्यानो। करो भजन कहें इन मत मानो॥[3]

चरणदास जी के इन उपदेशों के कारण पाखंडियों की रोटी-रोजी बंद हो जाने की स्थिति उत्पन्न हो गई, अतः सबने मिलकर दिल्ली दरबार के अमीरों और

---

१. भक्तिसागर : (शब्दवर्णन) पृ० ४५२।

२. जो नर इतके भये न उतके।
उतकी प्रेम भक्ति नहीं उपजी इत नहि नारी सुत के॥
घर सो निकसि कहा उन कीने घर घर भिक्षा माँगी।
बाना सिंह बाल मेढ़न की साधु भये अकि स्वाँगी॥
—वही : पृ० ४४७।

३. लीलासागर : पृ० २४८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरबारियों से उनकी निंदा की लेकिन कोई परिणाम न निकला। इस स्थिति का वर्णन लीलासागर में इस प्रकार है—

सब ही मिलकर मता कराई। हम महिमा, कहँ जाय सिराहीं ॥
तिन अरंभ हम जीविका पावैं। सो ये जग से सभी छुड़ावैं ॥
दिल्ली के दरबार पै, जित तित करी पुकार।
श्रीशुकदेव प्रताप से, सबने दिये झिड़कार ॥[1]

तत्कालीन समाज में व्याप्त अत्याचार, अनाचार, विषमता और अज्ञान-जनित आचार-विचार का एक शब्द चित्र स्वामी रामरूप के शब्दों में इस प्रकार द्रष्टव्य है—

काम क्रोध की ज्वाला भारी। तामें सुलगें नर अरु नारी ॥
लोभ काज इत उत को दौरे। गर्व करत नहिं लाजै बौरे ॥
हिंसा करैं दया नहिं जानें। जहाँ तहाँ झगरो ही ठानें ॥
महा अशौच और व्यभिचारी। झूठ वचन कहें सभा मँझारी ॥
महा अयोगी भक्ति बिन, इन्द्री वश नर नार।
जाने ना परलोक को, लोक भोग में खवार ॥
सत संगत के निकट न जावैं। सेढ़ मसानी भूत मनावैं ॥
निगुरे बेसुध तप नहिं साधें। जगत कामना को आराधें ॥
कथा कीरतन चित नहिं देई। सुपिने हरि को नाम न लेई ॥
कुकरम कर आयुर्दा खोवैं। नींद अविद्या में ही सोवैं ॥
जीव पड़े माया के फन्दे। किये आसुरी सब ही अन्धे ॥[2]

लोगों के इस प्रकार के आचरण को देखकर चरणदास का संतहृदय नवनीत के समान द्रवित हो जाता था और वे लोगों के अज्ञान को ही उनकी इन विपत्तियों और आचरणों का मूल मानकर उनका परिष्कार करने का प्रयास करते थे। जिसे जिस योग्य पाते थे, उसी प्रकार की साधना में उसे नियोजित करते थे।[3]

---

१. लीलासागर : पृ० २४८।

२. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ११२–११३।

३. भक्तराज सबसों हित राखें। काहू से कडुआ नहिं भाखें ॥
काहू भोग युक्ति दे तारा। काहू को दिया ज्ञान बिचारा ॥
प्रेम भक्ति काहू को दीनी। जैसा घर देखा सो चीन्हीं ॥
अरु शिख कई महन्त बनाये। देश देश को दिये चलाये ॥
चहुँ दिसि फैली भक्ति अति, यश भयो अधिक अपार।
रामरूप गिनती कहा, जीव दिये बहु तार ॥
—वही : पृ० १९७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी और उनका संप्रदाय—

चरणदासी संप्रदाय के महात्मागण आरंभ से ही चरणदास जी को विष्णु या श्रीकृष्ण के अवतार के रूप में मानते आये हैं। इनके प्रिय एवं वरिष्ठ शिष्य श्री रामरूप ने उन्हें अवतार बताते हुए उनके अवतरित होने के जो कारण बताये हैं उनमें दो कारण मुख्य हैं—(१) भक्ति का ह्रास और (२) समाज के आचारों-विचारों में व्याप्त भ्रष्टता। इस प्रसंग में उनका कथन यहाँ उद्धरणीय है—

द्वापर सब गया बीति कै, कलियुग बरता जाय।
विष्णु भक्ति बिगरन लगी, करे जु दरब उपाय॥
जहाँ लोभ तहाँ पाप है, जहाँ डिंभ छल झूठ।
धरम क्षीण होने लगा, सत्य चला जू रूठ॥
सबकी मति औरे भई, दृढ़ लागा अहंकार।
दया क्षमा तजि दीनता, प्रभुताई लइ धार॥
क्रोध लोभ धारण लगे, ग्रेही और अतीत।
बिसराये हरि कूँ फिरैं, चाल चलैं बिपरीत॥
जगन्नाथ चिंता करी, भक्त वछल करतार।
भक्ति सुधारूँ जगत में, रूप संत को धार॥
ठहराई निश्चय करो, प्रगट करूँ अप अंश।
दूसर कुल के मध्य ही, शोभन जी के वंश॥[1]

इस प्रकार शोभन जी की आठवीं पीढ़ी में चरणदास जी ने अवतार धारण किया।

श्री चरणदास ने लगभग २५ वर्षों तक तपस्या और योग-साधना करके ज्ञान और योग की सिद्धि प्राप्त की। उन्होंने अपने पवित्र आचार-विचार और दैवी संपत् विधायक गुणों से दूर-दूर तक अपनी कीर्तिलता का प्रसार किया। उनके ज्ञानोपदेशों, अष्टांगयोग की शिक्षाओं और नवधाभक्ति के आदर्शों की स्थापना के फलस्वरूप लाखों त्रितापदग्ध हृदयों को शान्ति की प्राप्ति हुई। उनके दिल्ली स्थित आश्रम की सुगन्ध उत्तर भारत में काबुल से लेकर मुर्शिदाबाद (बंगला) और हरिद्वार से लेकर जबलपुर तक फैल गई। उनके १०८ शिष्यों ने और सैकड़ों प्रशिष्यों ने उनके जीवनकाल में ही उनका संदेश प्रसारित करने के लिए अपने-अपने स्वतन्त्र आश्रमों या थाभों (गद्दियों) की स्थापना कर दी। उनके जीवन-काल में ही इन गद्दियों की संख्या ५०० के लगभग हो गई थी। चरणदास जी के गुरु श्री शुकदेव के नाम से प्रवर्त्तित श्री शुक संप्रदाय ने समाज के सभी वर्गों, वर्णों

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ३–४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्थितियों के लोगों को समान रूप से अपनी ओर आकर्षित किया। अनेक राजा-महाराजा, बादशाह-नवाब, सूबेदार, मनसबदार तथा दरबारों से सम्बद्ध मुसाहबों ने उनके आश्रम में आकर मस्तक झुकाया।

इस सम्प्रदाय ने क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या धनी, क्या निर्धन, क्या सवर्ण और क्या अछूत—सबको समान रूप से अपनाया। इसने नाथ-सिद्धों, नानकपंथियों, कनफटा योगियों, नागासाधुओं, सूफियों, मुल्लाओं, ज्ञानगर्वित पंडितों, शैवों, वैष्णवों, शाक्तों, नास्तिकों, चोरों, बटमारों, लुटेरों, किसानों, व्यापारियों, मल्लाहों, खटीकों, सैनिकों और राजपुरुषों आदि सभी वर्ण एवं वर्ग के लोगों को अपने शिष्य-मंडल में सम्मिलित किया। जिसने चरणदास जी की निन्दा की, उन्हें गाली दी या उनके ऊपर कोड़ों अथवा पत्थर के टुकड़ों से प्रहार किया, उनसे भी उन्होंने मधुर व्यवहार किया और उसका हृदय जीत लिया। जिसने अपने ज्ञान और अपनी सिद्धियों से उनको पराभूत करना चाहा, वे स्वयं उनसे पराजित होकर उनके शिष्य बन गये। ज्ञानी, पंडित, योगी, भक्त और रसिक साधना के अलमस्त महात्मा आदि सभी उनसे प्रभावित हुये थे।

आलोच्य चरणदासी सम्प्रदाय में विगत २२५ वर्षों के बीच हुए लगभग ३०० अच्छे कवि तो ज्ञात हैं परन्तु इतने ही अज्ञात भी हैं, जिनकी खोज अभी शेष है। उन कवियों की सैकड़ों रचनाएँ ऐसी हैं जो साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ को छोड़कर शेष को साम्प्रदायिक या धार्मिक साहित्य मानकर ललित साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता। इस विशाल वाङ्मय में से मात्र चतुर्थांश का ही इस पुस्तक में समावेश हो सका है। इसके मूल में इसको बहुत अधिक विस्तृत होने से बचाने का ही भाव मुख्य रूप से निहित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

संत चरणदास : जीवन और काव्यकृतित्व

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत चरणदास : एक महिमामंडित युगपुरुष—

चरणदास औतार यों लीता । कलि जीवन हित करन पुनीता ।।
कलियुग बिस्वा पाप अठारे । द्वै बिस्वा कहि पुन्य जु धारे ।।
नर नारिन में व्यापक दंभा । भक्ति जु हरि की करन अचंभा ।।
चरणदास सतयुग फैलाया । नर नारी बहु पतित तिराया ।।[1]

भक्तशिरोमणि श्री चरणदास जी के प्रबुद्ध शिष्य श्री जोगजीत जी के शब्दों में वे (चरणदास जी) एक युगपुरुष के रूप में उस समय अवतरित हुये थे जब कि हमारे देश में ऐसे महापुरुष के मार्गदर्शन की बड़ी आवश्यकता थी । उन्होंने न केवल सवर्ण और असवर्ण हिन्दू जातियों में समत्व और भातृत्व की भावना भरी बल्कि हिन्दू-मुसलमान और स्त्री-पुरुष सब में परस्पर अभेद दर्शन का आदर्श प्रस्तुत किया । वे १८वीं शती वि० के उत्तरार्द्ध और १९वीं शती वि० के पूर्वार्द्ध में अवतरित एक अद्भुत ज्ञान एवं सिद्धि-सम्पन्न लोकनायक थे । उनकी इस अलौकिकता को पहचान कर ही मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह, आलमगीर द्वितीय और शाहआलम द्वितीय उनके चरणों में झुके थे । यहाँ तक कि नादिरशाह जैसे भयंकर आक्रमणकारी ने भी उनके सामने घुटने टेक दिये थे ।[2] अहमदशाह अब्दाली द्वारा सन् १७५७ ई० (सं० १८०५ वि०) में आलमगीर द्वितीय के शासनकाल में जब दिल्ली में १ माह तक लूट-पाट और नर संहार का दौर चलाया था, उसमें भी उनका आश्रम सुरक्षित बच गया था क्योंकि चरणदास जी की सिद्धियों से उसके सैनिक भी अभिभूत हो गये थे ।[3] इसी प्रकार तत्कालीन अनेक नवाब और राजागण चरणदास जी की कृपा के आकांक्षी थे और उनसे आशीर्वाद पाकर प्रसन्न थे । इनमें पानीपत के नवाब साकर खाँ, जयपुर नरेश सवाई ईश्वरीसिंह तथा सवाई प्रतापसिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । उनकी विद्या और सिद्धि से अभिभूत होकर ही शामली के सिद्ध श्री विद्यानाथ योगी एवं कंधार के शास्त्रार्थ महारथी सूफी फकीर शाहमौला तक उनके समक्ष नतमस्तक होकर उनके शिष्य हो गये थे । आततायी लुटेरे रामधड़ल्ला और बाकर खाँ का शिष्य हो जाना भी कम आश्चर्यजनक नहीं है । इतना ही नहीं बल्कि उनके ज्ञान-प्रकाश के चकाचौंध से चमत्कृत होकर अनेक नानकपंथी, नाथपंथी योगी, निर्गुणपंथी संत, नागापंथी उद्दंड साधु, वैष्णव भक्त, तर्क-बलोन्मत्त वैदिक पंडित, शाक्त और धर्मान्धमुल्ला-

---

१. श्री जोगजीतकृत लीलासागर : पृ० २०५ ।
२. द्रष्टव्य—विषय-प्रवेश, पृ० १३–१४ ।
३. ,, ,, ,, पृ० १५–१६ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौलवी तक उनके शिष्य बने। प्रायः इन सबने अपने-अपने ढंग से उनकी सिद्धि और साधना की गहराई की परीक्षा ली और अन्ततः वे उनके समक्ष आत्मसर्पण को प्रेरित हुए।

प्राकट्य और बाल्यावस्था —

सामान्य बुद्धि से विचार करने पर चरणदास जी के दिव्य चरित्र उनमें निहित अलौकिक शक्तियों के प्रतिफल हैं, क्योंकि दिव्य जन्म और कर्म वाले महापुरुषों के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है। ऐसी अतिमानवीय शक्तियों के आगार श्री चरणदास का आरम्भिक नाम रणजीत था। वे भाद्रपद शुक्ल तृतीया, मंगलवार सं० १७६० वि० को सात घड़ी दिन चढ़ने पर, तुला राशि में मेवात प्रदेश के डेहरा नामक ग्राम में माता कुंजो देवी की कुक्षि से अवतरित हुए थे। उनके पिता का नाम मुरलीधर था। उनके पूर्व पुरुष दूसर भार्गववंशी श्री शोभन जी बड़े ही ज्ञानी, ध्यानी और कृष्ण-भक्त थे। कहते हैं कि उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष हुए भगवान् श्रीकृष्ण से उन्हें यह वरदान माँगा था कि हमारे कुल के सभी व्यक्ति कृष्णभक्त हों। बालक रणजीत के पिता श्री मुरलीधर श्री शोभन जी की सातवीं पीढ़ी में थे। उनकी वंश परम्परा रामरूप जी के 'गुरुभक्तिप्रकाश' के अनुसार इस प्रकार है— श्री शोभन जी, चतुरदास जी, गिरधरदास जी, लाहड़दास जी, जगनदास जी, प्रागदास जी, मुरलीधर जी। इस कुल-परंपरा की पीढ़ी-तालिका इस प्रकार है—

शोभन जी
|
चतुरदास जी
|
गिरधरदास जी
|
लाहड़दास जी
|
जगनदास जी
|
प्रागदास जी
|
मुरलीधर जी
|
रणजीत जी (चरणदास जी)

श्री मुरलीधर स्वभावतः एक वीतराग, ज्ञानी, ध्यानी और तपस्वी व्यक्ति थे। उनका घर-गृहस्थी से कोई लगाव नहीं था। वे समाधि और एकान्त साधना में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौलीन रहने वाले व्यक्ति थे। उनके पिता प्रागदास जी और माता यशोदा जी तथा परिवार के अन्य लोग उनके इस स्वभाव और विरक्त व्यवहार से बड़े चिंतित रहा करते थे। उनकी सुरक्षा के लिए उन्हें अंगरक्षकों की नियुक्ति करनी पड़ी थी, ताकि वे वन्य पशुओं आदि से उसकी रक्षा करें और शाम को सुरक्षित घर ले आवें। अन्ततः मुरलीधर जी को गृहस्थी में नियोजित करने के सभी प्रयत्न निष्फल हुए थे।

मुरलीधर जी के पिता प्रागदास जी और उनके पूर्व पुरुषों का उस क्षेत्र में बड़ा सम्मान था। प्रायः वे सभी कृष्ण-भक्त थे। कहते हैं कि शोभन जी ने अपनी तपस्या द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण से निम्नलिखित वचन प्राप्त किया था—

लेऊँ अंश अवतार जहाँ ही। भक्त रूप धर आऊँ यहाँ ही ॥
भवन तिहारे मैं ही आऊँ। कलियुग माहीं भक्ति चलाऊँ।
तौ कुल माँहीं भक्ति चलेगी। अठवीं पीढ़ी जाय फलेगी ॥[1]

फलतः उनकी आठवीं पीढ़ी में अवतरित बालक श्रीकृष्ण का अंशावतार माना गया। मुरलीधर जी की पत्नी श्रीमती कुंजो देवी बड़ी ही सुशीला, मंजुभाषिणी, सौभाग्यवती, पिता और श्वसुर पक्ष की प्यारी, सुभलक्षणा और सेवापरायणा थीं। उन्हें ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि यह भागवती शक्ति उनके माध्यम से बालक रणजीत के रूप में प्रादुर्भूत हुई।

बालक रणजीत में आरम्भ से ही अलौकिक लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे। ४ वर्ष की अवस्था से ही वे रामधुन का उच्चारण करने लगे थे और अपने साथियों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित करते थे। ऐसे ही भगवन्नाम संकीर्त्तन में एक बार जब वे रत थे, एक बालयोगी के रूप में व्यासपुत्र शुकदेव जी ने उन्हें दर्शन दिया और प्रसाद-रूप में मिठाई से भरा एक दोना पकड़ाते हुए कहा—

बोले बालक तू इस जग में, अति तारन तार कहायेगा।
जो नाम जपेगा नर तेरा, वह यम के द्वार न जायेगा ॥[2]

उस समय रणजीत की आयु ४ वर्ष १ माह और १८ दिन की थी। इस घटना के पूर्व और पश्चात् का उनका बाल्यजीवन बड़ा ही चमत्कारिक था। गुरुरूपी उस दैवी स्वरूप के दर्शन के पूर्व (अर्थात् ५ वर्ष की अवस्था के पहले) ही बालक रणजीत ने तिलक, छाप और कंठी धारण कर ली थी। इस छोटी आयु में माला फिराते और रामधुन करते देखकर लोगों को उनकी दिव्यता का आभास मिलने

१. लीलासागर : पृ० १०।
२. वही : पृ० २३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा था। जब वे छठें वर्ष में थे, उन्हें डहरा के एक पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा गया। संबद्ध अध्यापक ने उन्हें पढ़ाने का बड़ा प्रयास किया परन्तु वह सफल नहीं हुआ। जब गुरु ने पढ़ने में रुचि न लेने के कारण उन्हें प्रताड़ित किया तब यह उत्तर सुनकर वह अवाक् रह गया—

आल जाल तू कहा पढ़ावे। कृष्ण नाम लिख क्यों न सिखावे।
जो तुम हरि को भक्ति पढ़ाओ। तौ मोकू तुम फेर बुलावो॥[1]

उनके अध्यापक के उन्हें पढ़ाने के कार्य से विरत हो जाने के पश्चात् दो वर्षों तक उनको लिखने-पढ़ने से छुट्टी रही। इस बीच एक दिन उनके पिता मुरलीधर जी मोतीडूँगरी नामक अपने साधना-स्थल से सहसा लुप्त हो गये और बहुत ढूँढ़ने पर भी नहीं मिले।[2] यह कुंजो देवी की कठिन परीक्षा की अवधि थी। सं० १७६६ वि० के अगहन मास में उनके पति मुरलीधर जी निज धाम पधारे और उसके तीन माह उपरान्त उनके श्वसुर प्रागदास जी और सास जसोदा जी का भी स्वर्गवास हो गया। वे सर्वथा निराधार हो गईं। प्रागदास जी के दो अन्य भाइयों—श्यामदास जी और सुन्दरदास जी का भरा-पूरा परिवार था। वे लोग कुंजो देवी का बड़ा ध्यान रखते थे परन्तु उनके हृदय को शान्ति नहीं मिलती थी। उन्होंने कार्तिक पूर्णिमा के पर्व पर गंगा-स्नान का निश्चय किया। चचेरे श्वसुर से आदेश प्राप्त करके और उनकी व्यवस्था में उन्होंने दिल्ली के लिए पुत्र-सहित प्रस्थान किया। रास्ते में पड़ने वाले कोटकासम नामक स्थान में प्रागदास जी की बहन रामा की ससुराल थी। रामा से मिलकर, बालक रणजीत को उन्हीं के यहाँ छोड़कर कुंजो देवी दिल्ली पहुँचीं। वहाँ उनकी माता अंबिका देवी और उनके (कुंजोदेवी के) चाचा भिखारीदास जी के परिवार ने उनका खूब स्वागत सत्कार किया।

उनके चाचा मूलतः बहादुरपुर के निवासी थे परन्तु सपरिवार दिल्ली में ही निवास करने लगे थे और पर्याप्त सम्पन्न थे। उनके दो पुत्र थे, जो कुंजो देवी का बड़ा आदर करते थे। वहाँ से रथ पर अपनी माँ और सेवक-सेविकाओं के साथ वे स्नानार्थ गईं और पूर्णिमा पर्व को गंगा-स्नान और दानादि सम्पन्न करके दिल्ली वापस आ गईं। माता और परिवार के अन्य सदस्यों के आग्रह पर उन्होंने डहरा से अपना सारा सामान मँगवा लेने और रामा बूआ के यहाँ से रणजीत को बुला लेने का निश्चय किया। तदनुसार १० बन्दूकधारी सेवकों के साथ एक रथ डहरा

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १४।

२. इस दुर्घटना की पूर्व सूचना बालक रणजीत ने १० दिन पहले ही दे दी थी परन्तु लोगों ने उस पर विश्वास नहीं किया था।—वही : पृ० १६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजा गया। चचिया श्वसुर सुन्दरदास जी ने उनका सारा सामान दे दिया। रास्ते में कोटकासम में रुक कर रणजीत को ले आने का जब प्रश्न आया तो रामा बूआ के घर में कोहराम मच गया। लोगों ने बड़े ही कष्ट के साथ बालक को विदा दिया। बूआ और उनके घर वालों ने रणजीत की जो लीला अपने घर में देखी-सुनी थी, उसके आधार पर उन्हें विश्वास हो गया था कि रणजीत निश्चित ही किसी अवतार का स्वरूप है।

शीघ्र ही उनके इस विश्वास की संपुष्टि उस समय हुई, जब कोटकासम से रिवाड़ी होते हुए उक्त वाहन दिल्ली की ओर चला। रास्ते में पड़ने वाले घने जंगल में एक सिंह प्रकट हुआ, जिसने रणजीत के चरणों का स्पर्श किया और उन्हें बिना कोई क्षति पहुँचाये वापस लौट गया। आश्चर्यचकित साथियों को बालक रणजीत ने बताया कि यह एक शापग्रस्त महापुरुष था, जिसका अब मोक्ष हो गया। इस प्रकार वे नाना-मामा के परिवार में दिल्ली पहुँच गये और वहाँ सबके स्नेहभाजन बने रहे।

जब वे ८ वर्ष के थे, उनको पढ़ाने के लिए उनके नाना ने कादरबख्श नामक एक मौलवी को नियुक्त किया। तीन महीने तक पढ़ाने के बाद भी मौलवी उन्हें 'अलिफ', 'बे', 'पे' आदि प्रारम्भिक अक्षर भी नहीं पढ़ा सका। उसे जब पता चला कि उस छात्र को पढ़ाने की आवश्यकता ही नहीं है, वह पहले से ही सब पढ़ चुका है तो उसके ज्ञान की परीक्षा लेने का उसने निश्चय किया। उसने 'कुरान' की कुछ आयतों का अर्थ पूछा, जिसे रणजीत ने बड़ी आसानी और स्पष्टता से बता दिया। मुल्ला ने उन्हें सब प्रकार से योग्य समझकर पढ़ाने से छुट्टी ली। जोगजीत जी के कथनानुसार इस मुल्ला ने उन्हें ८ महीने तक पढ़ाया था। रामरूप जी ने तीन माह तक ही पढ़ने का उल्लेख किया है। इस बीच उन्होंने जितना पढ़ा था, उसका उल्लेख 'लीलासागर' में इस प्रकार है—

आठ महीने पढ़ते भये। खालक बारी सब पढ़ गये॥
अव्वल करीमा पढ़ने लागे। चौथाई पढ़ गये सुभागे॥
वहाँ से फेर पढ़न नहिं कीन्हा। माहिं किताब न मन को दीन्हा॥
हमें आज से पढ़ना नाहीं। जिकर न होय फिकर के माहीं॥
सुनि मुल्ला हैरत में आया। इस लड़के पर रब की छाया॥[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बालक रणजीत ने पढ़ने-लिखने में कोई रुचि नहीं दिखाई। इतना ही नहीं बल्कि उस मौलवी को भी अपने जन्मजात ज्ञान के बल पर उन्होंने चमत्कृत कर दिया।

---

१. लीलासागर : पृ० ४७–४८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस समय मुल्ला द्वारा उनकी शिक्षा का क्रम चल रहा था, एक दिन उनकी सगाई के लिए कहीं से भाँट, नाई और ब्राह्मण आये। नाना और माताजी की ओर से उन्हें विवाह के लिए तैयार करने का बड़ा प्रयास हुआ परन्तु निराशा ही उनके हाथ लगी। तर्क-बल से उन्हें समझा सकने में वे सफल नहीं हुए। अन्ततः भारी मन से उन्हें अपनी यह योजना छोड़ देनी पड़ी और उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि बालक रणजीत गृहस्थी के बन्धन में न बँधकर एक अतीत के रूप में भूले-भटके समाज को सही दिशा का निर्देश देने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। नारी और गृहस्थ जीवन के विरुद्ध दिये हुए उनके तर्क अकाट्य थे।

१० वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते उनमें भगवत्प्रेम अत्यन्त प्रगाढ़ रूप से प्रतिभासित होने लगा था। दिल्ली-निवास के समय साधु-सन्तों के सत्संग और मन्दिरों के उत्सवों में सम्मिलित होने के प्रचुर अवसर मिलने के फलस्वरूप भक्ति के प्रति उनकी उन्मुखता दृढ़तर होती गयी। उनमें विरक्ति का भाव भी स्पष्ट दिखाई देने लगा। उनके रंग-ढंग में विलक्षणता का आभास पाकर उनके नाना-नानी के परिकर एवं नाते-रिश्ते के लोग बड़ी चिन्ता में रहते थे। वे यह नहीं समझ पाते थे कि इस बालक को घर-गृहस्थी के घेरे में किस तरह ले जायें।

बालक रणजीत की बाल-लीला का बड़ा ही सुन्दर और विशद वर्णन श्रीजोगजीत और रामरूप जी ने अपनी काव्य कृतियों में किया है। इनमें से रामरूप जी ने प्रत्येक वर्ष की अवस्था का ब्यौरेवार चित्रण किया है। यथा बाल्यकाल के ६ठें वर्ष में शिक्षा का आरम्भ और शिक्षक का असफल होना; सातवें वर्ष में पिता के परलोकवास की भविष्यवाणी और उसका यथार्थ होना; आठवें वर्ष में माता और मातामह का सगाई के लिए उपक्रम और बालक रणजीत का इसे अस्वीकार करना; नवें वर्ष में उनका निर्द्वन्द्वभाव से बालक साधु के रूप में गलियों में निकलना;[1] दसवें वर्ष में बाग-बगीचों में अकेले जाकर ध्यान लगाना; ग्यारहवें वर्ष में प्रभु-मिलन के लिए उनमें विरहानुभूति की उत्पत्ति होना; बारहवें वर्ष में तीव्र विरह-वेदना के फलस्वरूप आत्मविस्मृति की स्थिति में पहुँचना;[2] इसी स्थिति में

---

१. सुन्दर माला कर में लीये। माथे ऊपर टीका दीये॥
भूखा देख दया उपजावें। घर में से लेदे दे आवें॥
साधु रूप को शीश नवावें। भक्ति रीति कछु कही न जावें॥
लड़कों में नहीं खेल मचावें। उलटी और भक्ति सिखलावें॥
—गुरुभक्ति प्रकाश : पृ० ४०।

२. लागा नेह देह सुधि नाहीं। खान-पान सबै बिसराहीं॥
कबहूँ नैनन सों जलधारा। उठे प्रेम नहिं जाय संभारा॥
श्याम मिलन की मन में आवे। घर बाहर कछु नाहिं सुहावे॥
—वही : पृ० ४२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ वर्ष और व्यतीत होना तथा १६वें वर्ष की अवस्था से ३ वर्ष तक सद्गुरु की खोज में व्याकुलता के साथ प्रयास करना आदि।

उनकी इस भाव-विह्वल दशा को देखकर उनके नाना-नानी बड़े चिंतित रहते थे। वे जहाँ भी जाते, एक-दो नौकर उनके साथ लगे रहते ताकि वे कहीं भटक न जायँ या घर ही न लौटें। उनकी इस स्थिति का श्री जोगजीत द्वारा प्रस्तुत एक शब्द चित्र इस प्रकार है—

प्रेम पीर उपजी हिय माहीं। बढ़ती चली सभी तन छाई॥
प्रेम पीर नहिं छिपे छिपावे। मुख द्वारे हो बाहर आवे॥
...भरे रहैं जल ही सूँ नैना। बिरह तपत से बोलैं बैना॥
जग सूँ भये रहैं बैरागी। नेह अगनि हिरदे में लागी॥
दिन नहिं भूख नींद निसि नाहीं। हरि का मिलन सोच मन माहीं॥
सूखे होठ बदन रहे पीरा। बिन दरसन मन धरे न धीरा॥[1]

हरि-मिलन के प्रति यह उत्कंठामय वेदना साधु-महात्माओं की सत्संगति से गुरु-मिलनोत्कंठा में परिवर्तित हो गई। रात-दिन गुरु की खोज चलती रही और दो वर्ष इसी स्थिति में व्यतीत हुए। उनकी इस समय की दशा इस प्रकार थी—

गुरु को विरह लगो दुखदाई। देखि दशा कहि लोग लुगाई॥
अति सुन्दर यह काको बाला। महा जु दुख करि फिरत बिहाला॥
चलते फिरते सोवते, सतगुरु ही को ध्यान।
जैसे मीना जल बिना, निसिदिन तलफत प्रान॥[2]

सद्गुरु की खोज—

१६ वर्ष की आयु से १९वें वर्ष की आयु तक तीन वर्षों की गुरु-सन्धान की अवधि को रणजीत ने बड़ी कठिनाई से व्यतीत किया। उनकी इस विकल मनोदशा की एक झलक रामरूप जी के शब्दों में द्रष्टव्य है :—

बढ़ी प्रेम अति अधिक अपारा। ज्यौं पावक में ईंधन डारा॥
अब तो चैन परै नहिं कैसे। जल बिन मछरी तरफै जैसे॥

× × ×

ऐसी बिरह अगिनि तन लागी। गई भूख अरु निद्रा भागी॥
सतगुरु कूँ ढूँढ़न ही लागे। ढूँढ़े बिरकत तपसी नागे॥
ढूँढ़े योगी अरु संन्यासी। ढूँढ़े सब मत पन्थ उदासी॥

---

१. लीलासागर : पृ० ७३।
२. वही : पृ० ७७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा दृष्टि न आवई, जहाँ नवावैं माथ ।
सत्गुरु करि चरनो लगें, शीश धरावैं हाथ ।।

× × ×

रौवत पलकैं सब उड़ गइयाँ । रोम रोम में सइयाँ सइयाँ ।।
दो दो मास रहे बन माहीं । होहिं व्यतीत रात दिन ह्वाँहीं ।।[1]

उनके नाना भिखारीदास जी स्वयं भी अच्छे साधक थे ।[2] उन्हें पूरा विश्वास हो चुका था कि यह बालक असाधारण व्यक्तित्व के साथ अवतरित हुआ है और इसके द्वारा महान् कार्य सम्पन्न होने वाले हैं । अतः माता कुंजो और नाना भिखारीदास की ओर से रणजीत को कोई बाधा नहीं पहुँचती थी । जो लोग इस रहस्य को नहीं जानते थे, वे उनके विषय में भाँति-भाँति के तर्क-वितर्क करते थे—

कोइ कहै तुम बैद बुलावो । या लड़के को ताहि दिखावो ।।
कोइ कहै कछु छाया जोई । ताते याकी यह गति होई ।।
कै बभूत जंतर को लावो । कै कोई स्याना बेगि बुलावो ।।
कहैं बाप याका था बौरा । जाका अंस भया यह छोरा ।।
तातें यह बौराय गया है । बौरे का बौरा ही भया है ।।[3]

अन्ततः गुरु की खोज में भटकते हुए एक दिन वे गंगा-यमुना के द्वाब में स्थित मोरना-तीसा नामक स्थान में पहुँचे, जो शुकतार (जिला-मुजफ्फर नगर) के पास स्थित है । जनश्रुति है कि यहीं पर द्वापर के अन्त में श्रीव्यास पुत्र शुकदेव जी ने गंगा के पवित्र तट पर राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत् की कथा सुनायी थी ।[4]

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ४४–४५ ।

२. नाना भी था हरिजन सूचा । एक पहर नित पूजा रूचा ।।
पूजा करि करते कछु दाना । बहुरि पहरते बागा बाना ।।
माँहि पालकी हो असवारा । जाते अपने ही दरबारा ।।
राय भिखारी दास कहावें । शोभा बड़ी जगत में पावें ।।
—लीलासागर : पृ० ७१ ।

३. वही : पृ० ७३–७४ ।

४. जहाँ शुकदेव कथा विस्तारी । परीक्षित हितभागोत उचारी ।।
ताहि सुनाय कियो भवपारा । या तें नाम जु श्री शुकतारा ।।
कृष्णभक्ति की देने वारी । फलदायक लायक शुभकारी ।।
अड़सठ तीरथ माँहि अनूपा । मो भाये बैकुंठ सरूपा ।।
तीरथ इष्ट हमारो सोई । श्री शुकतार कहावै जोई ।।
—वही : पृ० ७९–८० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ से कुछ ही दूरी पर एक टीला था। घूमते-फिरते वहाँ पहुँचने पर सहसा उन्हें एक वट-वृक्ष के नीचे एक दिव्यमूर्त्ति के दर्शन हुए। उसे देखते ही मानों उन्हें आश्वासन-सा मिला। उन्हें अनुभव हुआ कि अब उनकी गुरुसंबंधी खोज पूरी हो गयी। उस दिव्य स्वरूप को उन्होंने संक्षेप में अपना परिचय दिया और गुरु की खोज का इतिवृत्त सुनाया। फिर उनके समक्ष अपनेपन का पूर्ण समर्पण निवेदित करते हुए उन्होंने कहा—

"थाल किया दोउ हाथ का, धरा शीश तिह माहिं।
तुम चरणन पर वारिया, मैं कुछ रहा जु नाहिं॥"

× × × ×

"मैं नहिं मैं नहिं मैं नहिं स्वामी। तुमही तुम हो अन्तर्यामी॥"
ऐसा कहकर शीश नवाया। फिर तब ही बोले ऋषिराया॥[1]

मुनि ने रणजीत को स्मरण दिलाया कि उनकी बाल्यावस्था में उनके गाँव के पास बहने वाली वधूसरा नदी के तट पर वट-वृक्ष की छाया में उन्होंने ही उन्हें दो पेड़े प्रसाद रूप में दिये थे और उनके इस लोक में कृष्णांश रूप में आने के उद्देश्य को पूरा करने की दिशा में अग्रसर होने की सूचना दी थी। रणजीत के मानस पटल पर उस दिव्य मूर्ति की प्रतिच्छाया उस समय भी वर्तमान थी। मुनि के ऐसा कहते ही उनके समक्ष उस घटना का सारा चित्र प्रस्तुत हो गया और फिर तो आनंद का अंत ही नहीं था। उन्होंने साश्रु नेत्र एवं गद्गद् कंठ से स्वीकार किया—

बालपने जब दरशन दीनो। तिमिर भजाय जु चेतन कीनो॥
कृष्ण भक्ति हिरदे में जागी। निसदिन हरि ही रटना लागी॥
वट तर बैठ बचन तुम बोले। वैसेहि किरपा करी अबोले॥[2]

फिर तो गुरु-चेले की अध्यात्म-चर्चा पर विस्तृत गोष्ठी हुई, जिसमें ज्ञानी गुरु ने प्रबुद्ध शिष्य के समक्ष प्रायः सभी ज्ञातव्य विषयों पर प्रकाश डाला।

गुरु से दीक्षा प्राप्ति की यह घटना चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, सं० १७७९ वि० गुरुवार के दिन की है। उस समय श्री रणजीत की अवस्था लगभग १८½ वर्ष की थी। दीक्षा की औपचारिकता पूरी करने और गुरु-मंत्र देने के पश्चात् गुरु ने शिष्य का 'श्यामचरणदास' नामकरण किया। यह उनके लिए एक प्रकार से पुनर्जन्म के समान था। गुरु तो दीक्षा और दर्शन देकर अन्तर्द्धान हो गये परन्तु इस घटना ने उनकी जीवनधारा ही परिवर्तित कर दी। यद्यपि उनकी

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ४९।
२. लीलासागर : पृ० ८६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना पिछले १४ वर्षों से सतत् चल रही थी और वे दीक्षा प्राप्ति के पूर्व ही एक सिद्ध योगी के रूप में विख्यात हो गये थे परन्तु उनके मन को ऐसी संतुष्टि पहले कभी नहीं मिली थी, जैसी गुरुदर्शन के पश्चात् मिली। बिना गुरु के हरि और हरि का मार्ग मिलना संभव भी नहीं है।

व्यासपुत्र श्री शुकदेव मुनि गुरु-रूप में —

'गुरुभक्तिप्रकाश' और 'लीलासागर' सहित प्रायः सभी समसामयिक एवं परवर्ती साम्प्रदायिक ग्रंथों के कृतिकारों ने निस्सन्देह एवं निस्संकोच भाव से यह स्वीकार किया है कि चरणदास जी के गुरु भारतीय वाङ्मय के अमर महाकवि श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यास के चिर किशोर वय (षोडस् वर्षीय) पुत्र श्री शुकदेव मुनि ही हैं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इस संबंध में बहुत पहले से ही विद्वानों के बीच मतभेद रहा है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने इन शुकदेव मुनि को किसी बाबा शुकदेवदास के रूप में माना है, न कि पौराणिक शुकदेव के रूप में।[1] इसी प्रकार श्री एच० एच० विलसन ने इस शुकदेव को महर्षि व्यास का पुत्र न मानकर किसी अन्य व्यास का शिष्य माना है।[2] विलियम क्रुक्स के मतानुसार चरणदास जी बाबा सुखदेव नामक एक फकीर के शिष्य थे।[3] डा० रामकुमार वर्मा की भी मान्यता है कि चरणदास जी ने किसी सुखदेव नामक साधु से दीक्षा ली थी।[4] श्री शुकदेव मुनि को चरणदास जी के गुरुरूप में कुछ हिचक के साथ स्वीकार करने वालों में सर्वाधिक उल्लेखनीय विद्वान् डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल हैं।[5] डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने बहुत ही दबी जबान से यह स्वीकार किया है—चरनदास के

---

१. 'श्री शुकसंप्रदायप्रकाश' : श्री रूपमाधुरीशरण द्वारा संपादित : पृ० ५–६, पर उद्धृत अवतरण के आधार पर।

2. Assays and Lectures on the Religion of Hindus : Vol. I, p. 880.

3. "He became a desciple of Baba Sukh Deva, a religious Faquir of high religious attainment, at the age of ninteen at Shukra Tal near Muzaffarnagar who gave him the name of Charandas."
—Tribes and Castes of N. W. Provinces and Oudh : p.201.

४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : पृ० ४०५।

5. "He claims to have been initiated by Shukdeva, the celebrated sage to whom knowledge initiated when yet in the mother's womb and who is supposed to be immortal."
—The Nirgun School of Hindi Poetry : p. 266.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्गुरु व्यासपुत्र शुकदेव जी माने जाते हैं।[1] इस एक वाक्य के पश्चात् उन्होंने अन्य विद्वानों की एतत्संबंधी मान्यताओं को सूचीबद्ध किया है। अनुमानतः उक्त वाक्य का कथ्य ही उनकी अपनी मान्यता है।

अस्तु, गुरु से दीक्षा प्राप्त करके गुरु-वियोग से खिन्न मन के साथ वे दिल्ली वापस आये।[2] माँ से उन्होंने गुरु-मिलन का वृत्त सुनाया। माँ ने स्वयं पीले रंग में टोपी और चोला रंग कर उन्हें अपने हाथों से पहनाया। उस समय का उनका रूप जोगजीत जी के शब्दों में इस प्रकार है—

हँस कुंजो ने कर में लीया। पहिरन कारन सुत को दीया॥
टोपी अपने कर पहिराई। पहरा चोला खुशी मनाई॥
श्री तिलक माथे बन्यो, कंठी शोभा देत।
महावैष्णव रूप धरि, किया सभी हरि हेत॥[3]

वैष्णव-रूप में रहने का आदेश उन्हें गुरु से प्राप्त हुआ था। साथ ही वस्त्र, मत और साधनासिद्धांत के विषय में भी गुरु ने उन्हें कुछ निर्देश दिये थे, जिसका पालन उन्होंने आजीवन किया।[4]

उन्हें बार-बार गुरु के स्वरूप का स्मरण होता था। लगता था कि उनका वही रूप सर्वत्र उपस्थित है, जो उन्होंने शुकतार में धारण किया था। शुकदेव जी के उस रूप का वर्णन करते हुए रामरूप जी कहते हैं—

आसन पद्म महा दृढ़ कीये। बैठे नैनन के पट दीये॥
मन को हरि की ओर लगाये। ध्यान माँहि अस्थिर छक छाये॥

---

१. संत चरणदास : पृ० ४७।

२. चिंतामणि पा रंक जु खोया। कह हम हाल सो ऐसा हूया॥
ज्यों चंदा बिन रैन अँधेरी। बिनु दरसन गुरु यों गति मेरी॥
गुरू बिछोहा सहा न जाई। तन में पीड़ा बुधि बौराई॥
…ह्वां सू चले जु तन ढरकाये। जैसे ज्वारी द्रव्य हराये॥
वारंवार कलमली आवे। गुरू बिछोहा बहु तन तावे॥
—लीलासागर : पृ० १०४।

३. वही : पृ० १०८।

४. पीत बसन सब राखियो, माटी का रंग होय।
गहियो मत भागवत का, धर्म वैष्णों सोय॥
ऐसे गुरु आज्ञा दयी, शिष ने लीनी धार।
राम रूप जन दोउ पर, वारा बारम्बार॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ५६-५७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्याम गात लख मनमथ लाजे। चरन कमल दोउ अति छवि छाजे ॥
पिंडली जंघ कहा कहूँ शोभा। ता देखन कूँ मन रहै लोभा ॥
कमर पेट छाती अति सोहै। शोभा बरनि सकै कवि को है ॥
आजानु बाहु बिंब गोल विराजै। दोऊ हाथ घुटनों पर साजै ॥
मुख दुति गोल अधिक उजियारे। बड़े नैन सुंदर रतनारे ॥[1]

इस आकर्षक एवं दिव्य स्वरूप का चित्र जोगजीत जी के शब्दों में निम्नलिखित है, जो इस संप्रदाय में ध्यान के लिए भी स्वीकृत है—

नवयौवन अंग अंग छवि सोहै। मधुर शरीर साँवरो जो है ॥
शीश बावरी घूंघर वारी। सब तन पुष्ट महाछवि भारी ॥
दीरघ नैन दोऊ रतनारे। कृष्ण रूप रस मत्त खुमारे ॥
बदन चंद की शोभित कांति। रवि शशि मंद किरन लखि शांति ॥
वक्षस्थल उच्च कहा छवि गाऊँ। शोभा सिन्धु कहत थकि जाऊँ ॥
...नखशिख छवि शुकदेव की, कहत थके कवि कोट ॥[2]

श्री श्यामचरणदास की योगसाधना—

गुरु शुकदेव मुनि ने दीक्षा देने के उपरान्त उन्हें साधना के कुछ तत्व भी निर्दिष्ट किये थे, जिनका अभ्यास उनके लिए आवश्यक था। इनमें से कुछ इस प्रकार थे—

बहुरि प्राणायाम करि, जपिये फिर ओंकार।
पूरक सोलह नाम करि, चौंसठ कुंभक धार ॥

रेचक फिर बत्तीस उतारे। उलट पलट करि द्वादस बारे ॥
कृष्ण ध्यान ही बहुरि करीजै। तन मन सुरति जहाँ ले दीजै ॥
कंचन मन्दिर मन में धारो। रतन जड़ित के खंभ निहारो ॥
अद्भुत बिछे बिछौना तामें। अधिक सिंहासन दमके जामें ॥
रतनो जटित कांति अति ताकी। शोभा बरणि कहे कहा जाकी ॥
तापर श्री कृष्ण ही दरसें। शोभा सिंधु रूप में सरसें ॥
... ...

बहुरि बैठि छवि नैन निहारे। बार बार जावे बलिहारे ॥
जब लग इच्छा या विधि कीजै। आँख खोलि पुनि जाप करीजै ॥
... ...

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ४६।
२. लीलासागर : पृ० ८१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बैष्णो को यों चहिये । भोग लगे बिनु कछु नहिं खइये ।।
जल पीवे हरि नाम उचारे । करे आरती साँझ सकारे ।।
पहर रात सो ध्यान लगावे । चरण कमल में मन ठहरावे ।।[1]

प्राप्त प्रमाणों के अनुसार कहा जा सकता है कि चरणदास जी को ज्ञान, वैराग्य, योग और कर्मसमन्वित कृष्ण-भक्तिमार्ग का उपदेश गुरु से प्राप्त हुआ था। यही उनके द्वारा समर्थित भक्ति-साधना का मूल मंत्र था। इसका प्रथम सोपान योगाभ्यास और प्राणायाम को सिद्ध करना था। गुरु ने उन्हें योगसाधना के गूढ़ रहस्यों से भी अवगत करा दिया था। इस संबंध में उन्होंने जिन तत्वों पर प्रकाश डाला था वे इस प्रकार थे—

यम अरु नियम जु प्रत्याहारो । ध्यान धारना पंच अंग धारो ।।
आसन प्राणाया मसु जानो । अष्टम ले समाधि पहचानो ।।
औरों अंग बहुरि बतलाये । चौरासी आसन दिखलाये ।।
पाँचो मुद्रा भेद जु कहिया । चरणदास निश्चय करि लहिया ।।
छहो कर्म के अंग दिखाये । खोल खोल सब ही समझाये ।।
अष्टांग योग विधि सों कहि दीनौ । सांग उपांग सहित ही चीन्हौ ।।[2]

दिल्ली वापस आने के पश्चात् उन्होंने गुरु द्वारा उपदिष्ट अष्टांग योगसाधना का अभ्यास बड़ी निष्ठा के साथ आरम्भ किया। दिल्ली में बीरमदे के नाले के पास छीदी बस्ती के निकट उन्होंने उपयुक्त स्थान ढूंढ़कर एक गुफा का निर्माण किया और चूने से उसे पक्का बनवा दिया। उसके आगे एक छप्पर की छाया की भी व्यवस्था हो गयी। गुफा के मध्य एक गद्दी बिछवा दी गई। वहाँ सात पहर ध्यान में रहने के पश्चात् आठवें पहर गुफा में बैठकर सत्संग करना ही चरणदास जी की दिनचर्या हो गई। जब ध्यान और धारणा का अभ्यास परिपक्व हुआ तो लय की स्थिति उत्पन्न हुई। फिर तो दो-दो दिन तक उनका ध्यान नहीं टूटता था। फिर पाँच-पाँच दिन तक उनकी 'ताड़ी' (समाधि) लगी रहती थी और छठे दिन जब ध्यान भंग होता था, तब वे कुछ सामान्य-सा भोजन ग्रहण कर लेते थे। ध्यान की निरंतरता की यह अवधि धीरे-धीरे दस दिन, फिर १५-१५ दिन और फिर एक एक मास तक बढ़ गई।[3]

---

१. लीलासागर : पृ० ९०-९१।
२. वही : पृ० ९८।
३. इक इक पक्ष मास लौं चढ़िया । फिर ह्वाँ ते आगे को बढ़िया ।।
जब समाधि पूरी बनि आई । गिनती रही जहाँ नहीं काही ।।
—वही : पृ० १११।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी की समाधि-साधना के क्रम और विधान का वर्णन करते हुए उनके शिष्य जोगजीत जी कहते हैं—

मन मारा तन वश किया, तजे जगत के भोग ।
सतगुरु राखा शीश पर, तब बनि आया योग ।।
यम अरु नियम पहिले आराधे । चौरासी आसन फिर साधे ।।
प्राणायाम किया विधि सेती । प्रत्याहार सँभाला हेती ।।
और धारना का अंग धारा । शून्य ध्यान में मन को मारा ।।
आठवीं अंग समाधि लगाई । पाप पुण्य की व्याधि मिटाई ।।
छहू कर्म शुद्ध करि साधा । तन में कोई रही न बाधा ।।
पाँचो मुद्रा भी सधि आई । तीनों बंध सधी सुखदाई ।।
महाबंध साधा बल जोधा । पाँचो वायु लई परमोधा ।।
प्राण जो और अपान मिलाई । सुषमन मारग माहिं चलाई ।।
षट चक्कर को छेद करि. चढ़े गगन को धाय ।
परमानंद समाधि में, दसवें रहे समाय ।।[1]

इस प्रकार की कठोर साधना शीघ्र ही परिपक्व हो गयी । परमानन्द की प्राप्ति के साथ अनेक सिद्धियाँ भी उनके करतलगत हुईं परन्तु साधना का क्रम सतत् चलता रहा और क्रमशः लययोग, सुरति=शब्दयोग, हठयोग, सांख्ययोग, भक्तियोग, विहंगमयोग तथा पिपीलिकायोग आदि आठ प्रकार के योगों को भी उन्होंने सिद्ध किया । गुरु ने श्रीकृष्ण भक्ति को सर्वांशतः अपनाने के पूर्व अष्टांग योग की साधना का उपदेश दिया था और सबकी विधि भी उन्होंने बता दी थी । अष्टांगयोग-साधना का गुरु के द्वारा उपदिष्ट क्रम इस प्रकार था—

पहिले भक्तियोग बतलाया । सो सुनि के मन में ठहराया ।।
राजयोग की सब विधि जानी । शुकदेव कृपा सों सब पहिचानी ।।
सांख्य योग दीनो करि हेता । समझायो सब ही था जेता ।।
सुरतियोग हठयोग बखाना । चरणदास शिष ने सब जाना ।।[2]

अष्टांग योग को सिद्ध करने के आदेश के साथ ही गुरु ने नव दीक्षित शिष्य को ज्ञान, वैराग्य, मुक्ति और भक्ति के रहस्यों से भी अवगत कराया तथा साधना के कुछ गोपनीय तत्त्वों का बोध कराकर उन्होंने उन्हें सिद्धियों के मोहजाल से मुक्त रहने का भी आदेश दिया । इस प्रकार गुरु-शिष्य की यह गोष्ठी ५।। पहर तक चली थी, जिसमें १।। पहर अपराह्न में अवशिष्ट दिन के थे और शेष ४ पहर

---

१. लीलासागर : पृ० १११-११२ ।
२. वही : पृ० ९७ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्रि के थे। इस उपदेश-दान के क्रम में सारी रात व्यतीत हो गई और ब्राह्ममुहूर्त का समय आ गया। तब गलदश्रु नेत्रों और अवरुद्ध वाणी से उन्होंने गुरु को विदा दी तथा स्वयं वे पराजित-थकित जुआरी की भाँति दिल्ली वापस आकर साधनारत हुए। १२ वर्ष की अत्यन्त क्लिष्ट और कायक्लेशमयी साधना से उनका व्यक्तित्व पूर्णतः निखर गया था।[1] रामरूप जी के कथनानुसार तो उन्होंने परकायप्रवेश और अपने शरीर से अलग होना भी सिद्ध किया था।[2]

संत चरणदास : एक सिद्ध साधक के रूप में—

योग का सम्यक् अभ्यास कर लेने तथा सिद्धियों के स्वामी बन जाने के बाद उन्होंने दिल्ली के फतेहपुरी नामक स्थान में आश्रम बनाकर रहना आरंभ किया। यहाँ वे राजसी ठाट-बाट से रहने लगे। ३०-३२ सेवक उनकी सेवा में थे, जिनमें पहरेदार, चोबदार, रसोइया, नौबतखाने के लोग और अन्य प्रकार के नौकर-चाकर थे। इस संबंध में रामरूप जी और जोगजीत जी दोनों सांप्रदायिक इतिहासकारों का कहना है कि ऐसा करने के लिए गुरु ने ध्यान में उन्हें आदेश दिया था। इनका कथन इस दृष्टि से प्रामाणिक माना जा सकता है कि ये चरणदास जी के समकालीन थे तथा साधना की दृष्टि से भी आप्तसिद्धि थे। दोनों ने प्रायः एक ही तथ्य को अलग-अलग प्रकार से कहा है जो निम्नलिखित है—

(क) ध्यान माँहि गुरु आज्ञा दीनी। कोईक दिन रहो भाँति नवीनी॥
गद्दी साज राजविधि रहिये। उहीं रहो ज्यौं भूपन चहिये॥[3]

× × × ×

(ख) भक्तराज ऐसौं रहें, बीते निसि अरु भोर।
ऐसा आनंद वहाँ नहीं, जिनके लाख करोर॥[4]

यहाँ रहते हुए उन्होंने दान और सेवा-पूजा की धूम मचा दी। प्राप्त उल्लेखों के अनुसार एक बार एक कायस्थ को उसके पुत्र की शादी के लिए उन्होंने ४० स्वर्ण

---

१. भाँति भाँति साधन किये, सब ही देखन काज।
कलियुग में दुर्लभ हुआ, सो कीना महाराज॥
योग युक्ति द्वादस बरस, कीन्हीं चाव लगाय।
चरणदास बलवंत पर, जोगजीत बलि जाय॥
—लीलासागर : पृ० ११४।

२. परकाया परवेश विचारा। साधा तन सों होना न्यारा॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ६५।

३. वही : पृ० ६६।

४. लीलासागर : पृ० ११८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्राएँ सहायतार्थ दी थीं। साथ ही अपने आश्रम के सभी नौकर-चाकर भी उसकी सेवा में उन्होंने भेज दी थी। उस दिन मात्र ५ सेवक आश्रम में रह गये थे। आश्रम को सूना समझ कर ९ चोरों का एक दल उस रात्रि में वहाँ किसी प्रकार पहुँच गया। उन चोरों ने आश्रम को सूना पाकर बर्तनों, वस्त्रों तथा अन्य सामग्रियों के पाँच बड़े-बड़े गट्ठर बाँध लिए। उनमें से पाँच ने सामान उठाया और ४ उनकी रखवाली में रहे। जब चलने लगे तो वे सभी अंधे हो गये। उनको द्वार का रास्ता सूझ नहीं रहा था और वे भटक रहे थे। इस बीच चरणदास जी की नींद खुल गई। इस घटना का वर्णन करते हुए जोगजीत जी कहते हैं—

कही कि तुमको राह बताऊँ। दसवाँ बाँट जु में भी पाऊँ॥
···चरणदास है नाम हमारा। गुरु किरपा से करूँ उपकारा॥
चोरन कहि बकसो प्रभु मोरे। शरण पड़े पग लागें तोरे॥
सौंज लेउ नेत्र हमें दीजे। हमरी चूक माफ अब कीजे॥
महाराज मुख से कही, नैन दिया उजियार।
उसी समय सूझन लगा, दूर भया अंधियार॥[1]

चोरों ने वह सामान ले जाने से इनकार किया तो चरणदास जी ने ऐसा न करने के लिए उन्हें बहुत समझाया। चोरी के लिए आये चोरों को उन्होंने स्वयं बाँधकर सारा माल-खजाना दे दिया। इस प्रकार अपने आश्रम का सारा सामान चोरों को देकर स्वयं उन्हें शहर के बाहर तक पहुँचा आने की उनसे संबद्ध कथा बड़ी ही महिमाशालिनी है। इसी प्रकार ७ पुत्रियों के पिता एक खत्री की आठवीं सद्यःजात कन्या सन्तान को अपने आशीर्वाद से पुत्र के रूप में बदल कर उन्होंने सबको आश्चर्य-चकित कर दिया था।

भविष्यवाणियाँ और राजकीय शक्तियों से सम्मान की प्राप्ति—

१. नादिरशाह के आक्रमण सम्बन्धी भविष्यवाणी तथा उससे सम्मान-प्राप्ति—प्राप्त उल्लेखों के आधार पर उनके ज्ञात अनेक चमत्कारिक कार्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय घटना उनकी वह भविष्यवाणी है, जिसे उन्होंने नादिरशाह के दिल्ली पर आक्रमण के छः महीने पूर्व ही चेतावनी के रूप में लिखकर मुहम्मदशाह रँगीले के यहाँ भेज दी थी, परन्तु किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया था। इस भविष्यवाणी का उल्लेख जे० हेस्टिंग्स[2], एच० एच० विल्सन[3],

१. लीलासागर : पृ० १२७-२८।

2. Encyclopaedia of Religion & Ethics : Vol. 3, p. 365.

3. Assays and Lectures on the Religion of Hindus : Vol. I, p. 880. (1861)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डब्ल्यू० पावलेट[1], इ० डी० मैक्लेगन[2] और डब्ल्यू० क्रुक्स[3] ने भी किया है। इस भविष्यवाणी में नादिरशाह के सेनापतियों के नाम, आक्रमण के स्थानों के नाम, आक्रमण की तिथियों और पक्ष-विपक्ष के राजाओं की जीत-हार का स्पष्ट उल्लेख करते हुए दिल्ली पर आक्रमण और मुहम्मदशाह की पराजय का वृत्त भी उन्होंने लिखकर एक फर्द पर दे दिया था। दिल्ली को लूट कर दो माह रहने के उपरांत नादिरशाह के वापस जाने की बात भी भविष्यवाणी में सम्मिलित थी, जो पूर्णरूप से यथार्थ प्रमाणित हुई। इस ऐतिहासिक महत्व की भविष्यवाणी के सम्बन्ध में जो वृत्त 'लीलासागर' और 'गुरुभक्तिप्रकाश' में वर्णित है, वह इस प्रकार है—

"एक दिन जब चरणदास जी ध्यान में बैठे थे तो उन्हें कुछ भवितव्यता दिखाई पड़ी। प्रातःकाल होने पर उन्होंने उसे कागज पर लिपिबद्ध करा दिया। यह भविष्यवाणी विजेता नादिरशाह के भारत पर आक्रमण से संबद्ध थी। चरणदास जी की उक्त भविष्यवाणी के अनुसार नादिरशाह सर्वप्रथम अफगानिस्तान पर आक्रमण करेगा और काबुल-विजय के उपरान्त वह अटक को पार करता हुआ लाहौर पर धावा बोलेगा। लाहौर के सूबेदार (श्री जोगजीत ने उसका नाम जिकिरया खान लिखा है) उसका सामना करेगा। वह अपनी सहायता के लिए दिल्ली के तत्कालीन बादशाह तथा अन्य उच्चाधिकारियों से बार-बार निवेदन करेगा परन्तु उसे कोई सहायता नहीं मिलेगी। अंततः वह आक्रमणकारी से मिल जायगा। पुनः लाहौर के सूबेदार के साथ नादिरशाह सरहिन्द पर आक्रमण करेगा।[4] उसके वहाँ पहुँचते ही दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले को गहरी चिन्ता होगी। वह अपने अमीरों-उमरावों को जुटाकर और एक बड़ी सेना इकट्ठी कर उसका सामना करने के लिए आगे बढ़ेगा। कर्नाल में आक्रमणकारी सेना से उसकी मुठभेड़ होगी। इस युद्ध में बख्शी बन्धु (खान दौरान और उसके भाई) मारे जायेंगे। बादशाह के दोनों नवाब मित्र (अवध के नवाब शआदत खाँ बुरहान-उल-मुल्क और हैदराबाद-सहित दक्षिणी प्रान्तों के नवाब निजा-मुल-मुल्क) नादिरशाह से मिल जायँगे। ये दोनों अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति-हेतु और अपना

---

1. Gazettier of Ulwar : (1880). p. 214.
2. Punjab Census Report : (1891). p. 120.
3. Tribes and Castes of Northwest Provinces and Oudh : Vol.II, (1896). p. 203.

४. सूबा शहर लाहौर का, लड़े सामने होय ॥
दिल्ली को लिख-लिख रहे, कुमक न जावे कोय ॥
फेर शाह सों वह मिल जावे। नाम जिकिरिया खान कहावे ॥
—लीलासागर : पृ० १४१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्व बढ़ाने के लिए अलग-अलग अपने-अपने ढंग से नादिरशाह को मुहम्मदशाह की भेद की बातें बता देंगे। तात्पर्य यह कि ये दोनों गद्दारी करेंगे।[1] फलतः बादशाह की कर्नाल के युद्ध में पराजय होगी और वह पकड़ा जायगा। नादिरशाह विजेता के रूप में दिल्ली की ओर प्रस्थान करेगा।

दिल्ली में १॥ पहर तक कत्लेआम और लूट-पाट का बोलबाला रहेगा। इस प्रकार सं० १७९५ वि० दिल्ली वालों के लिए बहुत ही बुरा बीतेगा।[2]

---

१. बख्शी खान दौरा अरु भाई। मरें जूझ दोनों बलदाई।
दो अमीर मिलें वा ओरी। बातें गुप्त मिलावें चोरी।
लीलासागर : पृ० १४१।

२. इतिहास के ग्रंथों में इस आक्रमण का जो विवरण मिलता है, उसके अनुसार २९ मार्च सन् १७३८ ई० (सं० १७९५ वि०) को नादिरशाह की सेना ने कन्धार-विजय किया। सितबर मास में उसने अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पर अधिकार कर लिया। संभवतः उसी के कुछ पूर्व अर्थात् अगस्त सन् १७३८ ई० में चरणदास जी ने अपनी भविष्यवाणी मुहम्मदशाह के वजीर नवाब सदुद्दीन खाँ के माध्यम से बादशाह के यहाँ भेजा होगा। फिर दूसरे वजीर सआदत खाँ भी चरणदास जी से मिलकर इसकी पुष्टि कर गये थे।

२७ दिसंबर को नादिरशाह ने अटक पार किया और सिन्ध के सूबेदार को परास्त किया। २४ फरवरी सन् १७३९ ई० (सं० १७९५ वि०) को कर्नाल में शाही सेना और नादिरशाह में मुठभेड़ हुई। इसमें अवध के सूबेदार सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क घायल हुआ और बंदी बना लिया गया। खान दौरान बन्धु मारे गये। खान दौरान और उसके भाई बादशाह बहादुरशाह के मीरबख्शी थे। शआदत खाँ और निजामुलमुल्क (दोनों वजीर) ने पराजित बादशाह की ओर से नादिरशाह के समक्ष प्रस्ताव रखा कि वह २ करोड़ रुपये हर्जाने के रूप में लेकर वापस चला जाय। नादिरशाह इसके लिए तैयार भी हो गया था। मीरबख्शी के पद के लिए बुरहानुलमुल्क और निजामुलमुल्क में बड़ी प्रतिस्पर्धा थी। खान दौरान की मृत्यु से यह पद रिक्त हुआ था। अतः दोनों में इस बात की होड़ लग गई कि नादिरशाह को कौन कितना अधिक हर्जाना दिलाता है, ताकि वह लौट जाय और इस काम में जिसे सफलता मिली हो, वह मीरबख्शी हो जाय। इसी को उक्त भविष्यवाणी में नादिरशाह से दोनों वजीरों का मिल जाना कहा गया है।

सन् १७३९ ई० की २० मार्च को (सं० १७९५ वि०) विजेता नादिरशाह मुहम्मदशाह रंगीले के साथ दिल्ली नगर में प्रविष्ट हुआ। दूसरे दिन ईद तथा ईरानी नये साल का पर्व था। इस उपलक्ष्य में दिल्ली की हर मस्जिद में नादिरशाह के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्पश्चात् नादिरशाह लाल किले में आयेगा और फागुन शुक्ल पक्ष दशमी से बैसाख शुक्ल अष्टमी तक (अर्थात् ५८ दिन) वह वहीं रहेगा। प्रचुर धन, हाथी, घोड़े, मौलवी, कारीगर आदि को साथ लेकर तथा मुहम्मदशाह को राजगद्दी वापस देकर ईरान लौट जायगा।[1]

यद्यपि इस घटना का ब्यौरेवार विवरण अपने हस्ताक्षर से लिखित रूप में चरणदास जी ने बादशाह के यहाँ दिल्ली पर आक्रमण होने के छः माह पूर्व ही भेज दिया था और सआदत खाँ (वजीर) ने चरणदास जी से मिलकर इस लेख की प्रामाणिकता की पुष्टि भी करा लिया था लेकिन किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। बादशाह के दूसरे वजीर नवाब सऊदी खान (सैयदुद्दीन खाँ) भी इस भविष्यवाणी के सम्बन्ध में भली-भाँति जानते थे परन्तु उन्होंने इस पर विश्वास ही नहीं किया था। जब सभी बातें एक-एक करके सत्य प्रमाणित हो गईं तो उन्होंने इस घटना का

नाम का खुतबा पढ़ा गया। २२ मार्च को नगर में दंगा हो गया, जिसमें कुछ ईरानी मार डाले गये। २३ मार्च को नादिरशाह ने दिल्ली में कत्लेआम का आदेश दे दिया, जिसमें ३०००० नागरिक मौत के घाट उतार दिये गये। सायंकाल मुहम्मदशाह के अनुनय-विनय पर इसे बन्द करा दिया गया। इसके पश्चात् नादिरशाह ५८ दिनों तक (१६ मई, सन् १७३९ ई० तक) दिल्ली में रहा। इस प्रकार चरणदास जी की भविष्यवाणी ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्णतः मेल खाती है।

१. ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार अपने ५८ दिनों के दिल्ली निवास के उपरांत जब नादिरशाह वापस लौटा तो शाही खजाने के सारे जवाहरात और मयूर-सिंहासन (तख्ते ताऊस) अपने साथ लेता गया। उसने सभी दरबारियों से नजराने वसूल किये। अवध के नवाब बुरहानुलमुल्क से २० करोड़ रुपये की माँग की गई, जिसे पूरा कर सकने में अक्षम होने के कारण उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली। उसके स्थान पर नियुक्त सफदरजंग ने २ करोड़ रु० देकर अपनी जान बचाई। नादिरशाह ने जाने के पूर्व बादशाह को सतर्क किया कि वह दक्षिण के सूबेदार निजामुलमुल्क का विश्वास न करे। इस प्रकार दोनों वजीरों- -बुरहानुलमुल्क और निजामुलमुल्क को बादशाह को धोखा देने का फल मिल गया।

दिल्ली से जाते समय लगभग ५० करोड़ के जवाहरात, १० करोड़ रुपये नकद, एक हजार हाथी, सात हजार घोड़े, दस हजार ऊँट, १३० क्लर्क (लेखक), २०० संतराश, २०० बढ़ई और कई सौ दास-दासियाँ वह अपने देश ले गया।

—मुगलकालीन भारत : डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : पृ० ४८९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेख मुहम्मदशाह से किया और बादशाह ने नादिरशाह से कहा। नादिरशाह ने ऐसे फकीर से मिलने की इच्छा व्यक्त की और चरणदास जी को बुलाने के लिए सेवक भेजे गये। जब वे स्वयं नहीं गये तो तो गिरफ्तार करके किले में लाये गये। नादिरशाह ने उनसे कुछ चमत्कार दिखाने के लिए कहा। तत्क्षण ही उसके ताज की कलँगी लुप्त हो गयी। उसने इसे अपना अपमान समझा और उन्हें एक सामान्य जादूगर मानकर कैद कर लिया गया। वे अपनी चमत्कारिक शक्ति के माध्यम से जेल से निकलकर आश्रम में चले आये। उन्हें पुनः गिरफ्तार करने का आदेश दिया गया परन्तु सिपाही उनके आश्रम से जब खाली हाथ किले में लौटे तो वे स्वयं जेल में बन्द देखे गये। अन्त में नादिरशाह उनकी सिद्धियों का परिचय पाकर उनसे बड़ा प्रभावित हुआ और उन्हें मुक्त करते हुए उसने प्रतिज्ञा की कि आगे से वह किसी भगवद्भक्त की परीक्षा नहीं लेगा। इसके साथ ही उसने १०१ मुहरें और कुछ जागीर स्वीकार करने की प्रार्थना की, जिसे चरणदास जी ने स्वीकार नहीं किया।[1]

नादिरशाह के लौट जाने के कुछ समय बाद बादशाह मुहम्मदशाद उनके आश्रम में दर्शनार्थ आया और चार घड़ी तक सत्संग करने के बाद उनकी सेवा में बहुत सा भेंट अर्पण करके चला गया। आगे भी बादशाह, उसकी बेगमें, उसके वजीर और शाहजादे आदि समय-समय पर 'अस्थल' में जाते रहे और भेंट-श्रद्धादि निवेदित करके उनके आशीर्वाद से लाभान्वित होते रहे।

२. नवाब साकर खाँ से सम्मान की प्राप्ति—चरणदास जी के बढ़ते हुए सम्मान से प्रभावित होकर उनकी पानीपत की यात्रा में वहाँ के नवाब साकर खाँ ने भी ससम्मान उन्हें अपने किले में निमन्त्रित किया था। वहाँ भी चरणदास जी ने एक पानी से भरे घड़े को अशर्फियों से भरकर सबको चमत्कृत किया। इससे साकर खाँ उनसे बहुत प्रभावित हुआ।[2]

इसी यात्रा-क्रम में चरणदास जी कर्नाल के सूबेदार और झुंझुनू के (जागीरदार) शार्दूलसिंह शेखावत (सं० १७७०–१७९९ वि०) से भी भेंट हुई थी। यह लगभग ९ माह का प्रवास था।[3]

---

१. लीलासागर : पृ० १४८–१५८।

२. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १६४–१६५।

३. आश्रम की भीड़-भाड़ और जीवनधारा की एकरूपता से ऊब कर चरणदास जी ने कुछ दिनों तक पंजाब और उत्तरी राजस्थान की 'रामत' (यात्रा) की योजना बनाई। वहाँ के हिन्दू मुसाहबों के यहाँ वे ६ मास तक रहे। यह घटना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. जयपुरनरेश महाराज ईश्वरीसिंह से सम्मान-प्राप्ति—जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह के दो पुत्रों में राज्य के लिए कड़ी प्रतिद्वंद्विता थी। किसी कारण विशेष से बड़े राजकुमार और राजगद्दी के अधिकारी युवराज श्री ईश्वरीसिंह कैद कर लिये गये थे। उनका विश्वस्त सेवक सुखानन्द (खवास) चरणदास जी की सिद्धियों से परिचित था। उसने ईश्वरीसिंह जी से चरणदास जी के विषय में चर्चा की। उन्होंने बड़ी भक्ति-भावना से पत्र लिखकर संतप्रवर की सेवा में भेजा। उत्तर में चरणदास जी ने आशीर्वाद-सहित भविष्यवाणी की कि वे शीघ्र ही जयपुर के नरेश होंगे। दो माह के पश्चात् (सं० १८०० वि०में) जयसिंह जी का देहान्त हो गया और ईश्वरीसिंह को ही शासन का भार सौंपा गया। अपनी मनोकामना के पूर्ण हो जाने पर वे चरणदास जी के दर्शनार्थ तथा बादशाह मुहम्मदशाह से टीका लेने की रस्म पूरा करने के लिए दिल्ली पधारे परन्तु चरणदास जी ने उस समय उनसे भेंट नहीं की। कंठी, प्रसाद और राजतिलक का कुछ सामान उन्होंने प्रसाद के रूप में भेज दिया तथा जयपुर में ही उनसे मिलने का वचन दिया। जयपुरनरेश की इस

सं० १७९७ वि० के आस-पास की है। वहाँ वे ५ पहर ध्यान में और ३ पहर तक बाहर रहते थे। यात्रा में भी उनके दान की धारा अजस्र चलती रहती थी। लोगों को यह देख-सुनकर आश्चर्य होता कि—

काहू की पूजा नहिं लेवें। इतना दान कहाँ से देवें ॥
अरु अपना जो खरच चलावे। एतो द्रव्य कहाँ ते आवे ॥

उन्होंने वहाँ कई चमत्कार दिखाकर लोगों का मन जीत लिया। इसी क्रम में घूमते-फिरते वे पानीपत भी पहुँचे। वहाँ के नवाब साकर खाँ ने भी उन्हें अपने आवास पर निमंत्रित किया। नवाब ने उनसे निवेदन किया—

दस्तगैब तुम पै सुना, हमको देहु दिखाय।

चरणदास जी ने खाली मटके को रुपयों और मोहरों से भर दिया। सभी लोग खाली मटके को देखते ही रहे और दो घड़ी के बाद जब मटका खोला गया तो यह विचित्र दृश्य देखकर सभी चकित हो गये। —गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १६४–१६५।

२. शार्दूलसिंह शेखावत ने चरणदास जी को सं० १७९७ वि० में 'सुलतानसर' नामक गाँव दान में दिया था, जिसका चरणदासी साहित्य और अभिलेखों में उल्लेख नहीं मिलता।

द्रष्टव्य—शार्दूलसिंह जी शेखावत—लेखक—कुँवर देवीसिंह मंडावा
(भू० पू० संसद सदस्य)
प्रकाशक—शार्दूल एजुकेशन ट्रस्ट—झुंझुनू (राजस्थान), पृ० २२३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली यात्रा का वृत्त रामरूप जी ने 'गुरुभक्तिप्रकाश' में बड़े ही विस्तार से दिया है। तत्पश्चात् चरणदास जी की जयपुर-यात्रा का उनके द्वारा किये गये वर्णन के अनुसार महाराज ईश्वरीसिंह के दिल्ली से लौटने के १½ वर्ष बाद चरणदास जी के दो कृपापात्र सेवक एवं शिष्य श्री पूर्णचन्द्र और नन्दराम जी (हल्दिया) जयपुर आये। महाराज ईश्वरीसिंह ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया और उनसे चरणदास जी के जयपुर आगमन हेतु पत्र लिखवाया। स्वयं भी एक पत्र लिखा। इसके ६ माह बाद एक दिन जब राजा और रानी अपने महल में आसनासीन थे और आधी रात बीत चुकी थी, चरणदास जी वहाँ सहसा प्रकट हुए। उन दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कौन है और किस प्रकार यहाँ पहुँचा? चरणदास जी ने अपनी पहचान बताई। अन्ततः राजा ने पहचान लिया। तत्काल पूर्णचन्द, सुखानन्द और नन्दराम भी बुला लिए गये। श्री पूर्णचन्द्र को अपने प्रतिनिधि के रूप में दिल्ली में, सुखानन्द को अपने पास और नन्दराम को अपनी विशिष्ट राजकीय सेवा में रखने की बात चरणदास जी ने राजा से कही, जिसे उन्होंने शिरोधार्य किया। फिर कुछ उपदेश आदि देकर एक घड़ी रात शेष रहने पर वे वहाँ से अन्तर्द्धान हो गये। उनकी प्रातःक्रिया यथावत् दिल्ली में आरम्भ हो गई। रामरूप जी इस वृत्त के अन्त में कहते हैं—

राजा ओरी देखि के, बोले भक्ति ही राज।
ये तीनों हैं काम के, इनसौं लीजै काज॥
दिल्ली पूरनचन्द को, सुखानन्द को पास।
नन्दराम को दीजिए, नीकी खिदमत जास॥

× × × ×

महाराज को सहत है, ऐसी ऐसी बात।
वे ईश्वर सर्वज्ञ हैं, महिमा कही न जात॥[1]

ज्ञातव्य है कि श्री चरणदास को जयपुर आने के हेतु निमन्त्रित करने के साथ ही सवाई ईश्वरीसिंह ने पाँच गाँव और साठ हजार रुपये भेंट में देने की इच्छा व्यक्त की थी परन्तु इसे चरणदास जी ने स्वीकार नहीं किया था।[2]

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १६९–१७४।

२. एक साँड़िया ईस पठायो। पत्र सु लिख ता हाथ भिजायो॥
पाँच गाँव अरु साठ हजारा। साल पै साल करो भंडारा॥
चरणदास सो नाहिं रखाये। सो सब उलटे ही भिजवाये॥
—लीलासागर : पृ० २१०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. बादशाह आलमगीर द्वितीय से सम्मान-प्राप्ति—मुहम्मदशाह रँगीले (सं० १७७६-१८०५ वि०) के बाद दिल्ली की गद्दी पर उसका बेटा अहमदशाह सानी आसीन हुआ। उसका शासनकाल सं० १८०५ से १८११ वि० तक रहा। तत्पश्चात् आलमगीर द्वितीय (सं० १८११-१८२६ वि०) दिल्ली का बादशाह हुआ। उसने संत चरणदास के आश्रम में जाने की इच्छा अपने एक अमीर के माध्यम से प्रगट की परन्तु चरणदास जी ने यह कहते हुए उससे मिलने की स्वीकृति नहीं दी—

बाका राज नहीं थिर होना। और सिताबी ह्वैहै गौना ॥
थोड़ी उमर रही जग माहीं। ताते मिलिबे कूं चित नाहीं ॥
मौत छुरी की यह मरि जैहैं। बहुत दिना जीवन नहिं पैहैं ॥[1]

उनके आश्रम से निराश लौटकर बादशाह आलमगीर द्वितीय के वजीर ने बादशाह को केवल उनकी अस्वीकृति की ही सूचना दी, शेष बातें छिपा दीं। बादशाह के मन में मिलने की इच्छा और तीव्र हुई। वह बिना पूर्व सूचना के ही मिलने के लिए आ गया और भेंट के रूप में पाँच गाँव और कुछ रुपये स्वीकार करने का आग्रह किया। इस भेंट को अस्वीकार करते हुए कुछ समय तक वार्तालाप के बाद उन्होंने बादशाह को विदा किया।[2] दो वर्ष के बाद बादशाह का जीवन-दीप बुझ गया। प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार यह भेंट सं० १८१४ वि० में हुई होगी, क्योंकि उसके दो वर्ष बाद सं० १८१६ वि० में (२९ नवम्बर सन् १७५९ ई० को) उसके वजीर के षड्यंत्र से उसकी हत्या हो गई। बादशाह आलमगीर ने इस भेंट में बहादुरपुर (अलवर) के पास खासल नामक गाँव संत चरनदास के शिष्यों को दिया था। उन्होंने स्वयं उससे कुछ भी नहीं लिया। बादशाह प्रायः दर्शन के लिए आया करता था। एक उल्लेख के अनुसार वह कई बार आश्रम में आया था।

५. अलीगौहर (शाहआलम द्वितीय) से सम्मान-प्राप्ति—आलमगीर द्वितीय की मृत्यु के उपरांत शाहजहाँ तृतीय सन् १७५९ ई० में दिल्ली का बादशाह हुआ, जिसने आलमगीर के सारे कुटुंब को कैद कर लिया। उसका बेटा अलीगौहर उस समय पटना की ओर था। आलमगीर की विधवा बेगम अपने पुत्र के लिए

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १८६।

२. पाँच गाँव कुछ रुपये लाये। महाराज को भेंट चढ़ाये ॥
भक्तिराज कहि मैं नहिं लैहूँ। बेगि उठा नहिं फेंक चलैहूँ ॥
बादशाह नें आज्ञा दीनी। खोजे भेंट उठाय सु लीनी ॥
—वही : पृ० १८६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिंतित थी। उसने एक कासिद के हाथ चरणदास जी के यहाँ पत्र भेजकर अपना और आलमगीर का पूर्व परिचय देते हुए उन्हें अपने मन की बात सूचित की। उस पत्र की पीठ पर भक्तराज ने उसके बेटे के बादशाह होने की भविष्यवाणी लिखकर भेज दी। कुछेक महीनों के बाद मराठों ने शाहजहाँ तृतीय को दिल्ली की गद्दी से उतार दिया और अलीगौहर को 'शाहआलम द्वितीय' के नाम से गद्दी का मालिक बना दिया। बादशाह का पद पाने के बाद वह सकुटुंब दर्शन के लिए संत चरणदास के आश्रम में आया। उसकी भी भेंट चरणदास जी द्वारा स्वीकार नहीं की गई परन्तु उसने सहजोबाई जी तथा रामरूप जी के योग्यतम शिष्य सिद्धराम जी को कई गाँव भेंट में दिये थे, जिनका उल्लेख यथास्थान किया जायगा।

६. जयपुर के महाराज प्रतापसिंह से सम्मान-प्राप्ति—यह घटना सं० १८३९ वि० की अर्थात् चरणदास जी के स्वर्गारोहण के लगभग ८ माह पूर्व की है, जब श्री चरणदास जी का जयपुर के राजकुल द्वारा दूसरी बार सम्मान किया गया। बात यह हुई कि स्व० ईश्वरीसिंह के भतीजे (छोटे भाई श्री माधोसिंह के पुत्र) सवाई प्रतापसिंह जी के समक्ष एक दिन श्री चरणदास के अलौकिक व्यक्तित्व और अवतारी चरित्र की चर्चा चली।[1] उन्होंने उनके दर्शन की इच्छा व्यक्त की। उनके विश्वस्त मंत्री एवं चरणदास जी के भक्त राव खुशालीराम ने चरणदास जी के पौत्र शिष्य श्री अखैराम जी की सहायता से उन्हें बुलवाने की राय दी। उन दिनों चरणदास के शिष्य गुरु छौना जी के योग्यतम शिष्य श्री अखैराम जयपुर में ही रहते थे। स्वयं महाराज सवाई प्रतापसिंह ने और अखैराम जी ने अलग-अलग पत्र लिखकर दिल्ली भेजा। श्री चरणदास ने आमंत्रण की स्वीकृति भेज दी। कुछ दिनों के बाद वे जयपुर के लिए चले। उस समय सवाई महाराज प्रतापसिंह ने माचहड़ी (अलवर के पास स्थित) के राव राजा प्रतापसिंह (नरूका) पर आक्रमण किया था, क्योंकि वहाँ के राव से उनकी अनबन थी। चरणदास जी कई सहस्र शिष्यों और साधुओं के साथ वहाँ जा पहुँचे। वहाँ पधारने के पाँचवें दिन महाराज की चरणदास जी से भेंट हुई। बहुत देर तक सत्संग हुआ। वहीं

---

१. तेहि आगे चरचा चली भरी सभा दरबार में।
चरणदास अवतार हैं परगट अब संसार में॥
वेदव्यास के पुत्र मिले शुकदेव जु ज्ञानी।
तिनके शिष्य जु भये कहत है अनभै बानी॥
चेले कई हजार जगत् में सुयश छयो है।
चरणदास को नाम चहूँ दिसि प्रगट भयो है॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २१०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयपुर राज्य के अन्य सम्मानित व्यक्ति, यथा महंत गोविन्दानंद जी, जगन्नाथ भट्ट, रोडाराम खवास, खुश्यालीराम और दौलतराम (हल्दिया बन्धु और महाराज के परामर्शदाता एवं सेनानायक) आदि भी आ गये थे। महाराज प्रतापसिंह ने चरणदास जी से जयपुर में ही शेष जीवन पर्यन्त रहने की प्रार्थना की और अपनी सर्वप्रकारेण सेवा समर्पित करने का प्रस्ताव किया। चरणदास जी ने उनसे कुछ भी लेने से इनकार किया परन्तु महाराजा के संतोष के हेतु एक गाँव और २१ मुहरें भेंट में लेकर साधुओं के सेवार्थ अपने पौत्र शिष्य (गुरु छौना जी के शिष्य) श्री अखैराम को सौंप दिया। राजा से किसी प्रकार बिदा होकर वे माचहड़ी से जयपुर आये, क्योंकि वहाँ के अधिष्ठातृ देवता श्री गोविन्ददेव के दर्शन की उनकी बड़ी इच्छा थी। बड़े उत्सव तथा उत्साहपूर्वक उनका नगर में प्रवेश हुआ और दूसरे दिन उन्होंने गोविन्ददेव जी के दर्शन किये। वहाँ रामानन्दी सम्प्रदाय के आचार्यप्रवर और चाँदपोलस्थित राममंदिर के तत्कालीन महंत श्री बालानंद जी और गोविन्ददेव मंदिर के महंत गोविन्दानंद जी से उनका खूब सत्संग होता था। वे इस यात्रा में १० दिन माचहड़ी में और १० दिन तक जयपुर में रुके थे। दिल्ली से जयपुर तक जाने और वहाँ से वापस आने के सहित यह यात्रा लगभग तीन मास की थी। वह एक प्रकार से सम्प्रदाय-प्रचार संबंधी यात्रा थी। ज्ञातव्य है कि महाराज प्रतापसिंह से दान में प्राप्त कोलीवाड़ा नामक गाँव की आमदनी उस समय २००० सालाना थी। वर्तमान काल में यह गाँव अलवर जिले में है। जमींदारी उन्मूलन के पहले तक यह गाँव अखैराम जी की माचल और जयपुर की शिष्य परंपरा के महन्तों के अधिकार में रहा है।

संत चरणदास का विभिन्न स्थानों पर निवास और उनकी जीवन-चर्या—

७ वर्ष की आयु में बालक रणजीत के रूप में हमारे चरितनायक श्री चरणदास का अपने नाना राय भिखारीदास के यहाँ दिल्ली में आगमन हुआ था। तदनन्तर अस्थायी रूप से थोड़े-थोड़े दिनों के लिए भिन्न-भिन्न समयों पर उन्होंने गंगा-स्नानार्थ यात्रा, ब्रजप्रदेश की यात्रा, पानीपत, कर्नाल, नरसिंहपुर, शाहजहाँपुर, लखनऊ और जयपुर आदि स्थानों की अपनी यात्राओं में ही दिल्ली को छोड़ा। अन्यथा अपने ७९ वर्ष के जीवन-काल में उन्होंने जीवन के ७२ वर्ष दिल्ली में ही बिताया। इतना अवश्य है कि यहाँ भी वे एक स्थान पर ही न रहकर सुविधानुसार स्थान-परिवर्तन करते रहे। इस क्रम में उनके अस्थायी साधना केन्द्रों का विभिन्न साक्ष्यों से प्राप्त विवरण निम्नलिखित है—

१. **दिल्ली में बीरमदे की गुफा में साधक-रूप में निवास**—आयु के सातवें वर्ष से उन्नीसवें वर्ष तक (सं० १७६७–१७७९ वि० तक) अर्थात् १२ वर्षों की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवधि में (जैसा कि पहले बताया जा चुका है) वे दिल्ली में अपने नाना के यहाँ रहे। उन्नीस वर्ष की अवस्था में गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के उपरांत वे वीरमदे (ब्रह्मदेव ?) के नाले के पास एक गुफा में साधनालीन रहे। इस स्थान पर उन्होंने १२ वर्ष व्यतीत कर दिये और उनकी आयु अब ३ १वर्ष की हो गयी। अब तक वे योगजन्य सिद्धियों से युक्त हो चुके थे। एक दिन जब वे इस गुफा में नित्य की भाँति समाधि-लीनथे, किसी प्रकार इस गुफा की छप्पर में आग लग गई। धीरे-धीरे आग की लपटें गुफा में भी पहुँचने लगीं। लोग सहायतार्थ दौड़ पड़े। विभिन्न उपायों से आग बुझाई गई। किसी को विश्वास नहीं था कि चरणदास जी जीवित बच जायँगे। परन्तु अग्नि के शमनोपरान्त गुफा में जब लोगों ने जाकर देखा तो चरणदास जी वहाँ प्रसन्नमुद्रा में सकुशल एवं अग्नि से सर्वथा अप्रभावित समाधिरत हैं। गुफा-द्वार पर आग लग जाने की घटना के पश्चात् इस स्थान से उन्हें उच्चाटन हुआ और उन्होंने अन्यत्र रहने का निश्चय किया। यह उनकी कठोर योगसाधना की स्थली थी।

२. फतेहपुरी में राजसी ठाट के साथ निवास—संयोग से उन्हें दिल्ली के फतेहपुरी में ब्रह्मदेव के नाले के पास स्थित मस्जिद के निकट एक निवास-योग्य स्थान मिल गया। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर आश्रम का निर्माण कराया, जिसमें सभाकक्ष, भाण्डारगृह और रसोईघर आदि सुविधा के सभी स्थान थे। यहाँ आने पर गुरु के आदेश से कुछ दिनों तक वे राजसी ठाट-बाट से रहे।[1] अतः आश्रम में तदनुकूल व्यवस्था भी हुई। यहाँ राजा-रंक, शाह-अमीर और फकीर तथा नाना वर्ग-वर्ण के नर-नारियों की जमघट लगी रहती थी। आश्रम में सबका समान रूप से आदर-सम्मान था और सभी की मनोकामना यहाँ से पूरी हो रही थी। नृत्य, गान, वाद्य, भक्ति-ज्ञान-चर्चा, भाषण-प्रवचन, भजन-कीर्तन, पूजा आरती, कथा-वार्ता, अध्ययन-अध्यापन आदि का क्रम सारे दिन चलता रहता था। यहाँ तक कि 'अर्द्ध रात्रि लौ होय समाजा। कीर्त्तन चर्चा और न काजा॥' वाली स्थिति वहाँ थी। यह सब सद्गुरु श्री शुकदेव मुनि की देन थी—

---

१. बैठे हुए थे ध्यान में, सतगुरु कही सुनाय।
कोइक दिन रह भूप ज्यों, हमरी अज्ञा भाय॥
उसी भाय रहने लगे, बाँकी छबी बनाय।
कुरसी ऊपर भूप ज्यों, जोगजीत अधिकाय॥
—लीलासागर : पृ० ११७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठों सिद्धि दई शुकदेवा । संग रहत हैं कारण सेवा ।।
ठाढ़ी रहैं दोऊ कर जोरे । टहल करन से ना मुख मोरे ।।[1]

इतना वैभव होते हुए भी चरणदास जी कमल-पत्र की भाँति इन सबसे अलिप्त थे ।[2]

न केवल उनके आश्रम का वातावरण ही राजसी वैभव से सुसज्जित था बल्कि उनकी वेषभूषा भी बड़ी मोहक और भव्य थी । इस रूप-छटा का शब्दचित्र जोगजीत जी के शब्दों में द्रष्टव्य है—

कर पद मेहदी रचि रही, नख शोभा अधिकाय ।
चरण कमल दोउ रंग भरे, जोगजीत बलि जाय ।।

कंचन तोड़ा दहिने पाँही । बाँयें कँगना अति छवि छाई ।।
पीत बसन केसर रंग बोरे । नख शिख भूषण छवि कछु औरे ।।
इकपेंचा फेंटा सिर सोहै । कलँगी तुर्रा मो मन मोहे ।।
नीमा चुस्त पहरि अंग राजे । बड़े फेर का दामन साजे ।।
तामें तुकमा रतन जड़ा ही । मोतियन को गल हार पड़ाही ।।
सुन्दर चोटा अधिक बिराजे । शोभा सार पीठ पर साजै ।।
गोल भुजन पर सोहैं बाजू । नौ रतनन के सुन्दर साजू ।।
पोंछी रतन जड़ाऊ साजे । जहाँगीरी पहुँचन में राजे ।।
मेंहदी लाल लसत कर सुन्दर । नहुसत पीठ हथेरी मुन्दर ।।
श्याम बदन अरु मूछें बाँकी । पाप भजें जिन पाई झाँकी ।।

प्रेम भरे दृग जो बड़े, रचे उनमुनी लाय ।
छके श्याम शुक दरस में, होठ ललित मुसकाय ।।
भौंहैं तनी कमान ज्यौं, श्री जु बिराजे माथ ।
क्षमा लिये आनन्द विषे, जोगजीत के नाथ ।।[3]

चरणदास जी की यह प्रातःस्मरणीय एवं ध्यातव्य झाँकी उस समय की है,

---

१. लीलासागर : पृ० १२० ।

२. ये किये साज जु राज के, गुरु आज्ञा से जोय ।
तन सों दीखें भूप से, मन सौं लिप्त न होय ।।
—लीलासागर : पृ० १२० ।

३. वही : पृ० १२१–१२२ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब उनकी अवस्था ३४ वर्ष के आसपास थी।[1] यहाँ के निवास के क्रम में उनकी दयालुता के अनेक वृत्त तत्कालीन साम्प्रदायिक कवियों ने दिये हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—(१) अर्थाभाव से पीड़ित किसी कायस्थ शिष्य के पुत्र के विवाह-हेतु उसकी आवश्यकता के अनुसार ४० मोहरें देकर उसे कृतकृत्य करना। (२) आश्रम में चोरी के हेतु आये ९ चोरों को चोरी के कार्य में सहयोग देकर अपने ही आश्रम का धन चोरी करा देना। (३) पुत्रहीन किन्तु ७ पुत्रियों के पिता एक खत्री को अपने आशीर्वाद से जुड़वाँ बच्चों का पिता बना देना। (४) पानीपत के वणिक् श्री सिंहराज (जो तीन पुत्रियों के पिता थे) की चौथी सन्तान (जो कन्या थी) को अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार करके उसके लालन-पालन और विवाह का सब खर्च अपने ऊपर ले लेना और एक वर्ष के भीतर सिंहराज को उसके चिरवांछित एक पुत्र का पिता बनने का सुख प्रदान करना। (५) गंगा-स्नान के लिए की गई यात्रा में एक भयानक शेर को गुरुमन्त्र और कंठी प्रदान करना। (६) एक चमत्कारी सिद्ध को अपनी सिद्धियों से पराभूत करके अपना शिष्य बनने को प्रेरित करना। (७) दिल्ली में कहीं से उनकी सिद्धियों के परीक्षार्थ आये एक उद्दण्ड जादूगर का दिया हुआ विष पीकर और उसके जादू के प्रभाव को निष्प्रभावी करके उसे उपदेश देना। (८) नादिरशाह के आक्रमण का पूर्ववृत्त दिल्ली के बादशाह को लिखित रूप में देना तथा नादिरशाह एवं बादशाह मुहम्मद-शाह का उनके दर्शनार्थ आश्रम में आना आदि।

अन्ततः योगिराज चरणदास को इस स्थान से भी उच्चाटन होने लगा। यहाँ बहुत भीड़ होने लगी थी। इससे साधना और चित्त की शान्ति में बाधा उत्पन्न हो रही थी। अतः यहाँ की समस्त वस्तुएँ नौकरों और अकिंचनों में वितरित करके तथा नौकरों को छुट्टी देकर उन्होंने विरक्त वेश में वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया। इस समय उनकी आयु ३६ वर्ष की थी। फतेहपुरी में चरणदास का निवास ५ वर्षों का था। इसमें एक वर्ष का अज्ञातवास भी सम्मिलित है।

३. वृन्दावन की यात्रा की उपलब्धि—इस प्रकार हम देखते हैं कि इस अवस्था तक उनमें साधना, सिद्धि और आचार-विचारगत परिपक्वता आ गई थी। उन्होंने इस बीच ऐसे-ऐसे चमत्कारपूर्ण कार्य किये कि सहसा उनपर विश्वास करना कठिन हो जाता है। यहाँ तक कि वृन्दावन की यात्रा में भी पथ में मिले सात ठगों

---

१. चौंतीस वर्ष बपु ध्यान यह, परगट दियो सुनाय।
जोगजीत हिरदे धरे, जन्म मरण मिट जाय॥
—लीलासागर : पृ० १२२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीवृन्दावन धाम में रास-रंग का दर्शन

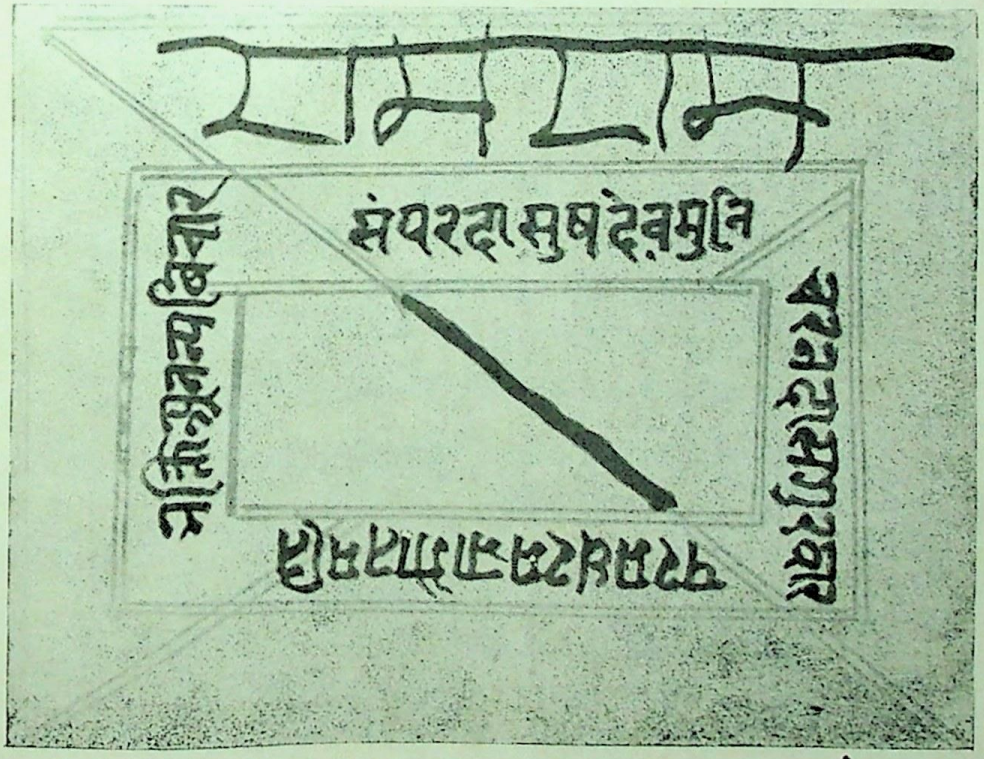

श्री स्वामी चरणदास का हस्ताक्षर (पृ० ९०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उन्होंने परिष्कार किया। कई शिष्य-सूचियों में 'समदे सात' के रूप में इन सातों शिष्यों को १०८ प्रमुख शिष्यों की सूची में गिना गया है। वृन्दावन के सेवा-कुंज में छिपकर भगवान श्रीकृष्ण की रासलीला की झाँकी का दर्शन एवं आनन्द प्राप्त कर पाना तो प्रायः असम्भव कार्य है परन्तु चरणदास जी ने यह भी प्राप्त किया।[1] इतना ही नहीं बल्कि श्रीकृष्ण से उलाहना के साथ यह आदेश भी उन्हें प्राप्त हुआ—

कृष्ण कुँवर तब यों कही, सुनो भक्त महाराज।
भेजा था जिस काम को, सो नहिं कीने काज।
योग ध्यान को छोड़कर, नौधा भक्ति सँभार।
यही करो अस्थापना, यही धारना धार॥[2]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि श्री श्यामचरण दास का प्रादुर्भाव जगत् में नवधा भक्ति के प्रचार-हेतु ही हुआ था। भगवान श्री कृष्ण ने दर्शन देकर उन्हें उनके कर्तव्य की ओर इङ्गित किया।

वृन्दावन के वंशीवट में एक बार पुनः शुकदेव जी के दर्शन हुए और उनसे आगे के कार्यक्रम का निर्देश भी मिला। गुरु-शिष्य का विस्तृत संवाद सम्पन्न होने के पश्चात् उन्हें वापस जाने का आदेश हुआ। गुरु का संकेत था, अतः दिल्ली जाकर इस बार भक्ति-प्रचार में रत होने का कार्यक्रम आरम्भ करने की बाध्यता थी।

४. घास की मण्डी (दिल्ली) का निवास—वृन्दावन से वापस आकर कुछ दिनों तक तो चरणदास जी अपने नाना के घर पर ही रहे, परन्तु जब वहाँ मन नहीं लगा तो दिल्ली के परीक्षित पुरा नामक मुहल्ले में स्थित ढूसरवाड़े के निकट घास की मण्डी नामक स्थान में वे आकर साधना में तल्लीन रहने लगे। रामरूप जी के शब्दों में उनका यहाँ का जीवनक्रम इस प्रकार था—

फेरि ध्यान में रहने लागे। सात पहर पट खुलें न जाके।
एक पहर दिन रहे जु जबहीं। बाहर आन विराजैं तबहीं॥

---

१. जब यह जानी अन्तर्यामी। आये संत हमारे धामी॥
उनको चलकर आदर कीजे। दरशन की निधि उनको दीजे॥
अर्ध रैन गये यही विचारी। युगल किशोर संग बहु नारी॥
आन अचानक परगट भये। भक्तिराज को दरसन दये॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ९४।

२. वही : पृ० ९५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतसंगति करके सुख लेवें। आरति पीछे फिर पट देवें ॥
दयावन्त दाता उपकारी। जिनके सम असतुति अरु गारी ॥
भूखा आवे भोजन ख्वावें। नाँगे को बस्तर पहिरावें ॥[1]

यहाँ भी उनका जीवन वैभवपूर्ण और संतत्व से युक्त था। उनके आचार-विचार का जो चित्र 'गुरुभक्तिप्रकाश' में प्रस्तुत किया गया है, तदनुसार दुःख का अपहरण करके इच्छित वस्तु-दान से सुख का प्रसार ही चरणदास जी की दिनचर्या थी।[2]

एक दिन उनके आश्रम में कहीं से घूमता-फिरता एक नानकपंथी आ पहुँचा। उसने देखा कि ये महात्मा किसी का भेंट भी स्वीकार नहीं करते, फिर इतनी सम्पदा कहाँ से आती है? उसने सन्देह और रोष में भरकर उन्हें चोर, डाकू, ठग, रसायनी आदि जो मन में आया, कह सुनाया। उसे यह बात समझ में नहीं आ रही थी—

गद्दी तकिये ये बने, यह तुम्हरा पहिराव।
रूपे की चौंरी ढुरे, ऊँचा सभी बनाव ॥
काहू से नहिं लेत हौ, उलटा करो जु दान।
जहाँ तहाँ कहें लोग ही, सुना जो अपने कान ॥
कै तुम कछू रसायनी, कै कुछ राखो सिद्धि।
कै तुम ठग छल करत हो, कित सों आवे रिद्धि ॥[3]

अन्ततः चरनदास जी ने उसकी शंका का अपनी सिद्धि के बल से समाधान कर दिया और उसे दक्षिणा देकर विदा किया। इस प्रकार घास की मण्डी में वे एक वर्ष तक रहे। यहीं दूसर भार्गव वंश में उत्पन्न नन्दराम जी उनके शिष्य हुए, जो चरणदास जी की शिष्य-दीक्षा के क्रम की प्रथम कड़ी माने जा सकते हैं।[4]

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १५६।

२. जो कोई आवे इच्छा धारी। कहे कि मेरी कन्या क्वारी ॥
वाको गुप्त द्रव्य दे डारें। अरु दुखिया को दुख निवारें ॥
तनकरि मनकरि दें सुख सबहीं। कड़ुवा बचन न बोले कबहीं ॥
जो जैसी आशा करि आवे। सो निराश कबहूँ नहिं जावे ॥

३. वही : पृ० १५७। वही : पृ० १५६।

४. चरनदास जी के शिष्य जसराम उपकारी ने 'भक्तबावनी' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि वृन्दावन से वापस इन्द्रप्रस्थ में आकर सर्वप्रथम उन्होंने पहाड़गंज में रहना आरम्भ किया। वहीं बानी-रचना और शिष्य-दीक्षा के कार्यक्रम का भी श्रीगणेश हुआ। —द्रष्टव्य : भक्तबावनी : पाण्डुलिपि, पत्र सं० २२१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. परीक्षितपुरा (दिल्ली) का निवास—भीड़-भाड़ और स्थान-संकोच के कारण घास की मण्डी में कुछ असुविधा हो रही थी, अतः चरणदास जी ने अपने सजातीय तथा प्रबुद्ध शिष्य नन्दराम जी से कोई अन्य स्थान ढूंढ़ने के लिए कहा। श्री नन्दराम के दादा हरिप्रसाद जी का एक बहुत बड़ा मकान परीक्षितपुरा में खाली पड़ा था। श्री नन्दराम उनको वहीं ले आये और उनके आने के पश्चात् यहाँ हरिप्रसाद जी अपनी पत्नी, ४ बेटों और एकमात्र बेटी सहजोबाई के साथ चरणदास के शिष्य बन गये।[1] ढूसरवंशोत्पन्न आत्माराम उनके पिता जीवनदास जी और उनकी पुत्री नूपीबाई आदि भी उनके शिष्य बने। देखते-देखते वहाँ उनके ३० बानाधारी शिष्यों की मंडली हो गई और सैकड़ों की संख्या में नर-नारी उनको गुरु के रूप में मानने लगे। यहाँ उनकी ख्याति बड़ी तीव्रगति से बढ़ रही थी। भीड़ से बचने के लिए उन्होंने पुनः एक बार स्थान-परिवर्तन करने का निश्चय किया।

६. गदनपुरे (दिल्ली) में निवास—यहाँ से गदनपुरा नामक स्थान में आने के बाद एक दंभी फकीर मुहम्मद बाकर द्वारा उनकी सिद्धियोंकी परीक्षा ली गयी और वह उनके समक्ष नतमस्तक हुआ। जामा मस्जिद के पास धर्मान्ध मुसलमानों ने उन पर आक्रमण किया परन्तु वे अप्रभावित रहे। फिर यहीं से पानीपत की

---

१. ढूसर भार्गववंशीय श्री हरिप्रसाद जी दिल्ली के बड़े सम्मानित एवं सम्पन्न सद्गृहस्थ थे। उनके चारों पुत्रों का नाम क्रमशः श्री राधाकृष्ण, गंगाविष्णु, दासकुँवर और हरिनारायण था। सहजोबाई उनकी एकमात्र कन्या और कनिष्ठतम सन्तान थीं। हरिप्रसाद जी रिश्ते में श्री चरणदास के फूफा थे। इस परिवार के शिष्यत्व ग्रहण के मूल में निम्न तथ्य निहित है, जो प्रामाणिक है और अनेक समकालीन कवियों द्वारा उल्लिखित भी है—

११–१२ वर्ष की अवस्था में बालिका सहजोबाई की शादी तय हुई और धूमधाम से बारात आयी। चरणदास जी ने इस विवाह के सम्पन्न न हो सकने की भविष्यवाणी पहले ही कर दी थी। अन्ततः विवाह के कुछ समय पूर्व ही सूचना मिली कि बारात में छोड़ी जानेवाली आतिशबाजी से भड़क कर वर को लिये-दिये घोड़ा अनियन्त्रित होकर भाग निकला और एक पेड़ से टकरा गया। इस टक्कर में दूल्हे को सांघातिक चोट लगी और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। विवाह का सारा रंग भङ्ग हो गया और सहजोबाई कुमारी ही रह गईं। इस घटना के विषाद के कारण और श्री चरणदास की आध्यात्मिक सिद्धियों से प्रभावित होकर यह पूरा परिवार उनके बानाधारी विरक्त शिष्य-समुदाय का अङ्ग बन गया। इनमें से सभी उच्चकोटि के कवि हुए, जिनमें सहजोबाई शिरमौर सिद्ध हुईं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा के लिए निकलने पर उन्होंने अनेक चमत्कार दिखाये। यहाँ उनका निवास एक वर्ष तक था। पानीपत के नवाब साकर खाँ को पानीपत की इसी यात्रा में उन्होंने अपनी सिद्धियों का परिचय देकर नतमस्तक किया था। मार्ग में मिले एक खूँखार डाकू सरदार को अपने चमत्कारों से प्रभावित करके उन्होंने रामधड़ल्ला नामक प्रिय शिष्य बना लिया। पानीपत से कुछ दिनों के लिए वे कर्नाल भी गये थे। पानीपत ओर कर्नाल में सैकड़ों लोग उनके शिष्य बने और हजारों गृहस्थ उनके आशीर्वाद से लाभान्वित हुए। उस समय उनकी आयु ३९-४० वर्ष के बीच थी।

७ पुनः घास की मण्डी (दिल्ली) में निवास— पानीपत और कर्नाल की यात्रा से लौटने के पश्चात् चरणदास जी गदनपुरे से पुनः घास की मंडी में चले गये और वहाँ १० वर्षों तक रहे। इसी बीच उन्होंने उनके दर्शनार्थ आये जयपुरनरेश श्री ईश्वरी सिंह से अपने आश्रम में मिलने से असमर्थता व्यक्त की और जयपुर जाकर उन्हें दर्शन देने का वचन दिया, जिसे उन्होंने यथा समय पूरा भी कर दिया। दूसरी बार जब वे घास की मण्डी में आये थे, उनकी आयु ४० वर्ष की थी। वे यहाँ इस बार १० वर्ष तक रहे। इस आश्रम के निवासकाल में ही उन्होंने अपनी माता कुंजो देवी को रासपरिकर-सहित श्रीकृष्ण के दर्शन कराकर उनकी मनोभिलाषा पूर्ण की थी। उनकी शाहजहाँपुर (रिवाड़ी के निकट का स्थान) की यात्रा और सहजोबाई जी को दिल्ली में दर्शन देने का वृत्त भी इस अवधि की ही घटना है। शाहजहाँपुर में घटित घटना कुछ ऐसी है, जिस पर सामान्यतया लोग विश्वास ही नहीं करेंगे परन्तु दिव्यशक्तियों से युक्त महापुरुषों के लिए सब कुछ संभव है। बात ऐसी हुई कि एक बार सहजोबाई जी ने दिल्ली-स्थित इस आश्रम में आर्त्तभाव से ध्यानस्थ मुद्रा में गुरु का स्मरण किया। उस समय गुरुदेव शाहजहाँपुर के नर-नारियों के मध्य बैठे उन्हें सत्संगति का लाभ प्रदान कर रहे थे। सहसा लोगों के बीच से ही वे वहाँ से लुप्त हो गये। इधर सहजोबाई ने जब आँखें खोलीं तो सामने चरण-दास जी खड़े दिखाई पड़े। उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और लड्डू लाकर जलपान कराया। उस समय अर्द्धरात्रि का समय था। फिर वे जल्दी से नीचे उतर कर अन्य साधुओं को जगा लाईं। जलपान करते समय ही चरणदास जी ने अपने एक हाथ का बाजूबंद उतार कर सहजोबाई को दे दिया था, जिसे उन्होंने अपने पास रख लिया था। जब अन्य शिष्य एवं साधु कोठे पर पहुँचे तो वहाँ कोई नहीं था। सबको बड़ा संभ्रम हुआ परन्तु सहजोबाई जी ने बाजूबंद दिखाकर विश्वास दिलाया कि गुरुदेव सचमुच आये थे। इस घटना की सूचना शाहजहाँपुर में स्थित भक्तों को तब मिली जब हरप्रसाद जी (सहजोबाई के पिता) ने इसके विषय में पत्र द्वारा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचित किया।[1]

यहाँ से एक वर्ष के लिए पुनः चरणदास जी हट गये और तेलीवाड़ा (पुराना शहर) में जाकर रहने लगे। यह स्थान-परिवर्तन भी सम्भवतः शान्ति की खोज से ही सम्बन्धित है। जब एक स्थान पर अधिक भीड़ होने लगती थी तो वे एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर चले जाते थे। शहतूत की एक सूखी लकड़ी को हरे-भरे वृक्ष के रूप में परिणत कर दो तर्कवादी पंडितों को पराभूत करने का वृत्त यहीं के निवास से संबद्ध है।

८. नयी बस्ती का निवास—अब तक चरणदास जी के साथ एक बड़ी शिष्य-मंडली हो गयी थी, इसलिए दिल्ली के नई बस्ती नामक स्थान में एक सुविधाजनक और सुन्दर आश्रम का निर्माण कराकर वहीं उन्होंने रहना आरम्भ किया। यहीं आलमगीर द्वितीय सं० १८१४ वि० में उनके दर्शनार्थ आया था। अहमदशाह दुर्रानी ने सं० १८१३ वि० में अपने चौथे आक्रमण में दिल्ली को तो जमकर लूटा लेकिन इस आश्रम को कोई क्षति नहीं पहुँचाई।[2] बादशाह आलमगीर के द्वितीय पुत्र अली-गौहर को भी बादशाह बनने का आशीर्वाद इसी आश्रम में मिला था। सं० १८१६ वि० में बादशाह हो जाने पर वह कृतज्ञता-ज्ञापन हेतु सं० १८१८ वि० में यहाँ स्वयं आया था। वैष्णव भक्त श्री नागरीदास को जगन्नाथ जी के रूप में और काँवरधारी ब्राह्मणों को वैजनाथ के रूप में दर्शन देने की घटना भी यहीं घटी थी।[3] यहाँ आने

---

१. लीलासागर—पृ० २१५-१६।

२. ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार दुर्रानी का दिल्ली पर यह आक्रमण २२ फरवरी सन् १७५८ (सं० १८१३ वि०) के दिन हुआ था। उसनेदिल्ली के प्रत्येक सरदार, अहलकार और नागरिक को कर देने को बाध्य किया। वह १ माह तक नगर में रहा। यह वसूली इतनी कड़ाई से हुई कि बहुत से लोग नगर से पलायित हो गये और बहुतों ने आत्महत्या कर ली। उसने अपने शाहजादा तिमूर की शादी आलमगीर द्वितीय की पुत्री से और अपना विवाह स्व० मुहम्मदशाह रँगीले की पुत्री से किया। सारे नगर में लूट और कत्ल का बोलबाला रहा। इसी क्रम में रुहेले (जोगजीत जी ने जिन्हें गिलची कहा है) चरणदास जी के आश्रम में भी आये थे। उन्होंने ५००० मुहरों की उनसे माँग की थी। असमर्थता व्यक्त करने पर उनके ऊपर उनके द्वारा तलवार से प्रहार किया गया परन्तु प्रभु की कृपा से रुहेलों के हाथ-पैर विजड़ित हो गये। इससे भयभीत एवं स्तंभित होकर उन सबने सन्त से गुस्ताखी के लिए माफी माँगी और कुछ शस्त्र आश्रम को समर्पित करके वापस चले गये।

३. जहाँ रात को सोवन कीन्हा। जगन्नाथ ह्वाँ दरसन दीना।
अब तुम उलटे दिल्ली जावो। ह्वाँ तुम दरसन मेरा पावो॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आठवें वर्ष में (सं० १८१८-१९ वि०में, जबकि वे ५८-५९ वर्ष के थे) माता कुंजो स्वर्गवासी हो गईं। यद्यपि मातृवियोग का क्लेश उन्हें अत्यधिक हुआ लेकिन अब वे पूर्णतः मुक्त भी हो गये। अब उनके समक्ष अपने सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार ही मुख्य लक्ष्य हो गया।

९. शुकदेवपुरा (नया शहर) का निवास—यह स्थान पुरानी दिल्ली में है। वस्तुतः आज की नयी दिल्ली (पुरानी दिल्ली) का ही नाम उस समय नया शहर था, क्योंकि मुगलों द्वारा नये ढंग से शहर को बसाया गया था। उन्होंने यहाँ फूल-पत्ते लगाकर दालान-सहित शुकदेव जी की चरणपादुका निर्मित कराई थी। संभवत वे ६१ वर्ष की अवस्था में यहाँ रहने के लिए आये थे। यहाँ रहते हुए उन्होंने मुहम्मद बाकर के मांस-भरे मटके को पेड़ों से भर कर मुसलमानों को चमत्कृत कर दिया था। मोहनलाल नामक एक वैश्य के तीन संतानहीन पुत्रों में से सबसे छोटे लड़के विष्णुदास की सेवा से प्रसन्न होकर अपने आशीर्वाद से उसे एक पुत्र-रत्न का पिता बनाया। उमराव मुसद्दी खाँ के बेकाबू हाथी को भी उन्होंने सिद्धि-बल से वशीभूत करके सबको चमत्कृत किया। अपने शिष्य श्री पूरण प्रताप (डीग वाले) को निष्कर्ज बनाया और इसी प्रकार के अनेक चमत्कारपूर्ण चरित्र उनके द्वारा प्रदर्शित किये गये। इसी में सहसा अभ्यागत १० हजार नागा साधुओं को अपनी सिद्धि के बल से अविलम्ब भोजन कराने का भी वृत्त सम्मिलित है। अब तक उनके कई बानाधारी शिष्यों ने अपने स्वतन्त्र थाँभे (स्थान) स्थापित कर लिये थे और कितने ही अच्छे साधक, सिद्ध और कवि रूप में विख्यात हो गये थे। उनके चमत्कारी व्यक्तित्व की गहरी छाप दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों पर पड़ रही थी। उन्होंने वृहत्तर दिल्ली नगर क्षेत्र में १० बार अपने आश्रमों का स्थान परिवर्तित किया और इस प्रकार वहाँ के सभी वर्गों, वर्णों और धर्मों के आस्थावान् एवं अनास्थावान्—अनेक प्रकार के लोगों का मार्गदर्शन किया। आज की पुरानी दिल्ली के चाँदनी चौक से संलग्न बल्लीमारान और हौजकाजी के बीच स्थित श्री चरणदास-मुहल्ला इसी शुकदेवपुरा का अपर नाम है। शुकदेव-पुरा का नामकरण भी श्री चरणदास द्वारा ही अपने गुरु के नाम पर किया गया था। यह पुरानी दिल्ली और नयी दिल्ली का सन्धिस्थल है। यहीं रहते हुए उन्होंने अपनी प्रसिद्ध जयपुर-यात्रा सं० १८३९ वि० के आरम्भ में सम्पन्न की थी, जो उनके सम्प्रदाय की संप्रदाय-प्रचार सम्बन्धी विजय-यात्रा के समान थी।

अंश आपना प्रगट कर, लिया संत औतार।
नाँव धरा चरणदास ही, रूप वैष्णव धार॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १८८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तप्रवर चरणदास का लोकविस्मयकारी चरित्र

१. सिद्ध को दीक्षा देना—उनके प्राप्त जीवनवृत्त के आधार पर हम देखते हैं कि विभिन्न समयों पर उनकी साधना सम्बन्धी सिद्धियों की परीक्षा लेनेके लिए अनेक बार भिन्न-भिन्न विचारधारा के व्यक्तियों द्वारा प्रयत्न हुए परन्तु वे सर्वदा खरे उतरे। इन परीक्षाओं के वृत्त के साथ उनके चमत्कारों का उद्घाटन भी होता है। इस क्रम में सर्वप्रथम एक अभिमानी सिद्ध का प्रसंग मिलता है, जो उन दिनों पुरानी (उस समय की) दिल्ली में कहीं से आकर रहने लगा था। वह कंठी, तिलक, माला आदि कुछ भी धारण नहीं करता था। पूछने पर वह राम को ही अपना गुरु और इष्ट बताता था। वह उस व्यक्ति को उसका गुरु बनने की चुनौती देता था जो कूयें के मुख के ऊपर बिछे चादर पर बैठे हुए उस सिद्ध को स्वयं भी उस पर बैठकर दीक्षा-मन्त्र दे। इस बात की चर्चा चरणदास जी तक पहुँची तो उन्होंने दीक्षा देने का निश्चय किया और उसी की शर्तों के अनुसार उसे दीक्षित भी किया।[1]

इसी प्रकार एक अन्य अहंकारी योगी को भी उन्होंने हतगर्व कर दिया था। उसने उन्हें विष पिलाकर उनकी परीक्षा ली थी। इस योगी का नागरिकों पर बहुत बड़ा आतंक था। वह अपनी कुछ सिद्धियों से लोगों को संत्रस्त करके अहंकार में चूर था परन्तु उसे भी चरणदास जी के चरणों में झुकना पड़ा।[2]

२. श्री आत्माराम को यम के दर्शन कराना—ढूसरवंशी नन्दराम जी चरणदास जी के प्रथम शिष्य माने जाते हैं। वृन्दावन की यात्रा से लौटने के बाद उनकी ही प्रेरणा से चरणदास जी परीक्षितपुरा निवासी हरिप्रसाद जी के यहाँ रहने लगे थे। वहाँ हरिप्रसाद जी के पुत्र और सहजोबाई के मँझले भाई दासकुँअर जी के एक ढूसरवंशीय मित्र आत्माराम जी भी आया करते थे। वे प्रायः चरणदास जी की हँसी उड़ाया करते थे। उपहास के रूप में ही एक दिन उन्होंने चरणदास

---

१. नाम जु ले सिद्ध बोलिया, तू भी अब यहाँ आव।
दीक्षा दे मोहिं शिष्य कर, कै झूठा हो जाव॥
महाराज जभी उठ धाये। बैठ चादर पर आसन लाये॥
कुंभक ऊरध पवन चलाये। इक गज सिद्धि से ऊपर धाये।
कभी आप चादर बैठावें। खैंच पवन कभी ऊपर धावें॥
यह गति जबही सिद्ध लखाई। उठि साष्टांग प्रणाम कराई॥
और अपना शिर आगे कीना। कंठी तिलक मंत्र जो लीना॥
—लीलासागर : पृ० १३५–१३८।

२. वही : पृ० २३९–४०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी से यमराज के दर्शन कराने की प्रार्थना की। संत चरणदास की कृपा से उन्हें यमराज के दर्शन आँख मूँदते ही हुये और फलस्वरूप वे दीक्षित होकर उनके शिष्य हो गये।[1] तब से चरणदास जी आत्माराम के घास की मंडी स्थित निवास-स्थान में भी कभी-कभी रहने के लिए आ जाते थे, जो ढूसरवाड़ा में था।

वहाँ रहते हुए उनकी दिनचर्या का एक चित्र द्रष्टव्य है—

जो कोई आवे इच्छा धारी। कहे कि मेरी कन्या क्वारी॥
वाको गुप्त द्रव्य दे डारें। अरु दुखिया को दुःख निवारें॥
तन करि मन करि दे सुख सबहीं। कड़ुवा बचन न बोले कबहीं॥
जो जैसी आशा करि आवे। सो निराश कबहूँ नहिं जावे॥[2]

३. नानकपंथी को शिष्य बनाना—एक नानकपंथी साधु ने चरणदास जी के ठाट-बाट को देखकर और उन्हें किसी से दान-दक्षिणा स्वीकार न करते देख बड़ा आश्चर्य और अविश्वास व्यक्त किया। उसने सोचा दान को स्वीकार न करने का उनका ढोंग एक दिखावा मात्र है। उसके विचार से ये कोई ठग या डाकू हो सकते हैं, नहीं तो इतना धन इनके पास कहाँ से आता है? उसके आश्चर्य का तब ठिकाना नहीं रहा जब कि भक्तराज ने उसके खाली तूँबे को मुहरों से भरा हुआ दिखाकर चमत्कृत कर दिया। अंततः उसे स्वीकार करना पड़ा कि ऐसा चमत्कार उसने जीवन में कभी भी नहीं देखा था। अंत में चरणदास जी ने उन अशर्फियों को कूयें में फेंक दिया और दो अशर्फियाँ भेंट में देकर आदरपूर्वक उस नानकपंथी को शिष्य बनाकर विदा किया।[3]

४. अन्य उल्लेखनीय चमत्कार—

(१) सहजोबाई जी (जो उनकी फुफेरी बहन थीं) की शादी में पड़ने वाली बाधा की भविष्यवाणी, जो सत्य प्रमाणित हुई और वे आजीवन क्वाँरी रहकर उनकी तीन प्रमुख गद्दियों में से एक की स्थापिका हुईं।

---

१. मूँदत ही दोउ नैन के, देखे यम बिकराल।
पग बेड़ी गल तौक ही, हार दिया ततकाल॥
खैंचन लागे जब डरा, खोलि दिये दृग दोय।
चरनों गिर ऐसे कही, मैं प्रभु जाना तोय॥
मेरे कंठी बाँधिये, सुनि हो परम दयाल।
मन्तर दे टीका करो, मोको करो निहाल॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १५४।

२. वही : पृ० १५६।
३. वही : पृ० १५७–५८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) अपनी शाहजहाँपुर की यात्रा के समय प्रत्यक्ष रूप में वहाँ रहते हुए भी सहजोबाई जी को दिल्ली में दर्शन देना।

(३) दिल्ली के बादशाह के एक मुसाहिब मंसूर अली खाँ के एक नौकर मुहम्मद बाकर और अन्य कुछ मुसलमानों द्वारा मुल्ला फाकर के बहकाने से उन्हें चिढ़ाने और उनकी परीक्षा लेने के लिए मटके में मांस भरकर लाना और यह कहना कि इसमें पेड़ा है। मटके का मुँह उघाड़ कर देखा गया तो उसमें पेड़ा ही था। इस प्रकार मांस से पूर्ण मटके को पेड़ों से भरे मटके के रूप में परिवर्तित कर देना।[1]

(४) जामा मस्जिद की सीढ़ियों के पास उनका एक सूफी से शास्त्रार्थ हुआ जिससे कुछ चिढ़े हुए मुसलमानों द्वारा उनकी हत्या के लिए तलवार से कई बार प्रहार किया गया परन्तु तलवार गर्दन पर न पड़ सकी और सभी वार खाली गये। रामरूप जी के शब्दों में—

तेग टूट दो टुकड़े भई। अचरज लीला जात न कही।[2]

(५) पानीपत की यात्रा के समय एक अभिमानी मुसलमान राँघण ने उनकी सिद्धियों के परीक्षार्थ अपने पानी से भरे हुए बँधने को बिना खोले अशर्फियों से भरने के लिए कहा। कुछ देर ध्यान में रहने के बाद उनके आदेश पर जब बँधना का मुँह खोलकर देखा गया तो उसमें अशर्फियाँ भरी हुई थीं। इसे देखकर उस स्थान पर उपस्थित पानीपत की जनता आश्चर्यचकित हो गई।[3]

(६) इसी यात्रा में उन्होंने पानीपत के नवाब साकर खाँ के महल में निमंत्रित होकर नवाब के आग्रह पर एक पानी से भरे घड़े को अशर्फियों से भरा हुआ दिखाकर सबको चमत्कृत कर दिया था। अंततः नवाब को स्वीकार करना पड़ा कि चरणदास जी पहुँचे हुए फकीर हैं।[4]

---

१. कही कि हमसों भई तकसीर। तुमको देखा साँचा पीर।
हमको मुल्ला ने बहकाये। हाड़ी मांहि मांस भरि लाये॥
तुम किरपा सों पेड़े भये। हम सब ही हैरत में गये।
गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १६१।

२. वही : पृ० १६३।

३. फेर कही या खोल दो, देखो क्या कुछ होय॥
जो खोले तो भर गया, करुवा सब ही दर्व।
देख भये हैरान ही, चरण परे वे सर्व॥
—वही : पृ० १६४।

४. फिर वाकूं कूयें डलवाया। साकर खाँ अचरज में आया॥
कही कि ये साँचे करतारा। इनका कोई न पावै पारा॥
—वही : पृ० १६६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) भविष्यवाणी और अपने आशीर्वाद से उन्होंने सवाई ईश्वरीसिंह को जयपुर का राज्य दिलाया। इसका विस्तृत वर्णन पहले ही किया जा चुका हैं।[1]

(८) माता कुंजोदेवी को गंगास्नान की बड़ी इच्छा थी। श्री चरणदास द्वारा योगबल से उन्हें गंगास्नान करा कर शीघ्र ही वापस ले आने का वृत्त अपने गुरु-भक्तिप्रकाश' में रामरूप जी ने स्पष्ट रूप से दिया है। यह कार्य मात्र एक दिन और एक रात्रि में ही पूरा हो गया था।[2]

(९) ५ वर्ष का एक बालक दौलतराम (राजाराम का पुत्र) दिल्ली के एक मकान के तिमंजिले से गिरा। घर वालों ने उसके प्राणरक्षार्थ चरणदास जी का ध्यान किया। लोग आश्चर्य से देखते रहे कि वह जमीन पर कुछ ऐसा गिरा मानों किसी मोटे गद्दे पर सोया हो। उसे तनिक भी चोट नहीं आई। बड़ा होने पर अभिभावकों की प्रेरणा से वह उनका शिष्य हो गया। उन दिनों चरणदास जी परीक्षितपुरा में रहते थे।[3]

(१०) उनकी सिद्धियों की परीक्षा के विचार से शामली के योगी विद्यानाथ ने उनसे आमले के पेड़ से मोहरों की वर्षा कराने की इच्छा व्यक्त की, जिसे तत्काल अनेक लोगों की उपस्थिति में उन्होंने कर दिखाया।[4]

(११) तेलीवाड़ा (दिल्ली) के एक शहतूत के सूखे पेड़ को हरा-भरा और फूल-फल से पूर्ण करके उन्होंने सबको चकित कर दिया था। इससे उनकी सिद्धियों की परीक्षा लेने आश्रम में आये दोनों स्मार्त ब्राह्मण अत्यधिक प्रभावित हुए, क्योंकि उनमें चरणदास जी की साधनागत सिद्धियों के प्रति अविश्वास था।[5]

(१२) जगन्नाथ जी के दर्शन की इच्छा से पुरी जाने के लिए निकले गुसाईं नागरीदास को रास्ते में ही जगन्नाथ जी के दर्शन कराकर उन्होंने उन्हें अपना

---

१. लीलासागर : पृ० २०७-२१०

२. माता सों आँखें मिचवाईं। गंगा ले गये ईश्वर ताईं॥
करि कर न्हान दान कछु दीना। फिर माँ बेटे भोजन कीन्हा॥
अर्द्धरात्रि न्हा नैन मुदाये। ज्यों करि गये वहीं फिर आये॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १७६-७७

३. बालक कही गिरा मैं जब ही। चरणदास ठाढ़े थे तब ही॥
दोऊ हाथ मोहिं लियो गहाई। ठाढ़ो करके गयो लुकाई॥
सुनकर धन-धन कह नर-नारी। चरणदास परताप अपारी॥
—लीलासागर : पृ० २४४।

४. वही : पृ० २४६-४७।

५. वही : पृ० २५५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य बना लिया। इस घटना का उल्लेख विस्तार से नागरीदास जी के परिचय के सन्दर्भ में किया जा रहा है।

(१३) दर्शनार्थ आये हुए आलमगीर द्वितीय को उन्होंने दर्शन नहीं दिया, साथ ही शीघ्र उसकी मृत्यु हो जाने की भविष्यवाणी भी की। उनकी वाणी शत-प्रतिशत यथार्थ प्रमाणित हुई। मृत्यु के समय उसका बेटा अलीगौहर पटना में था। उसकी पत्नी अपने बेटे के लिए राजगद्दी की भिक्षा माँगने चरणदास जी की सेवा में आई। इधर शाहजहाँ द्वितीय ने गद्दी पर कब्जा कर लिया था और अलीगौहर को कैद करने के प्रयत्न में था परन्तु सिद्ध साधक श्री चरणदास के आशीर्वाद से उसे अन्ततः गद्दी मिल ही गई और उसकी माँ को दिया हुआ चरणदास जी का वचन पूरा हो गया। राज्यप्राप्ति के पश्चात् अलीगौहर और उसका परिवार दर्शनार्थ आश्रम में प्रायः आता रहा।

अन्य चमत्कारपूर्ण कार्य और उनकी प्रामाणिकता का प्रश्न—

माँ को व्रजलीला का दर्शन घर बैठे करा देना; एक पागल हाथी को सद्गति प्रदान करना; पंजाब के एक साधु को पीपल के पत्ते पर राधा-कृष्ण के युगल रूप का दर्शन कराना; उज्जैन निवासी रतनलाल के मृत पुत्र को जीवित कर देना; वर्षा के अभाव को दूर करने के लिए किये गये यज्ञ के पश्चात् भी वर्षा न होने की सम्भावना से पीड़ित श्री गुरुमुखदास के निवेदन पर योगबल से वर्षा कराकर उनके यज्ञ को पूर्ण करना; पूरनप्रतापजी को प्रच्छन्न रूप से ऋण से मुक्त करना; हिम्मतगढ़ के खटिकों की डूबती हुई नौका की रक्षा करना; सहजानन्द को साँप के विष से बचाना, प्रेमगलतान जी की साँड़ के आक्रमण से रक्षा करना और मुक्तानन्द जी की पुकार पर घड़ियाल से उनकी रक्षा करना आदि अन्य ऐसे चमत्कारी कार्य श्री चरणदास जी ने किये कि जिनको सब प्रकार से अद्वितीय माना जा सकता है। प्रायः अधिकांश लोग उनके चमत्कारों से प्रभावित होकर ही उनके शिष्य बने। जो लोग स्वतः प्रेरित होकर शिष्य हुए थे, उन सबके साथ भी चरणदास जी के एकाधिक चमत्कारों की घटनाएँ जुड़ी हुई हैं।

इसी प्रकार पानीपत के एक वैश्य सिंहराज को पुत्र की प्राप्ति कराना, परीक्षा लेने के लिए आये हुए दस हजार नागा साधुओं को लड्डू-पेड़ों की दावत भरपेट बिना किसी पूर्व तैयारी के खिलाना, एक प्रसिद्ध जादूगर के मन्त्र और विष के प्रभाव को निरर्थक कर देना, बनारस के पण्डितों को दिल्ली में ही बैजनाथ जी के दर्शन करा देना आदि अन्य अनेक ऐसे कार्य हैं, जिनसे उनकी महिमा प्रकट होती है।

वैसे तो हर बड़े महात्मा के साथ ऐसी घटनाएँ जुट जाती हैं, परन्तु वे सर्वथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असत्य या अविश्वसनीय ही होती हैं, यह कहना ठीक नहीं है। जब ऐसे महात्माओं के शिष्य, अनुयायी या उनकी परवर्ती परम्परा के लोग उनका इतिवृत्त लिखते हैं तो प्रायः उनके सम्बन्ध में श्रद्धातिरेक के कारण अतिरंजना के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता परन्तु उनके वर्णन में यथार्थ का सर्वथा अभाव मानना भी उचित नहीं है।

जहाँ तक चरणदास जी के जीवन चरित्र-वर्णन का प्रश्न है, उनके दो अत्यन्त प्रबुद्ध, अधिकांशतः उनके साथ रहने वाले और अपने-आप में पहुँचे हुए साधक श्री रामरूप जी और जोगजीत जी की रचनाएँ ही मुख्य आधार हैं। इनके द्वारा रचित क्रमशः 'गुरुभक्तिप्रकाश' और 'लीलासागर' इतिहास की प्रामाणिकता, इतिवृत्त की यथार्थता और काव्यवत्ता की सुन्दर त्रिवेणी हैं। इनमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाएँ पूर्णतः प्रामाणिक हैं। चरणदास जी के जीवन-चरित्र को समसामयिक इतिहास से जोड़कर चित्रित करने के कारण इनका अतिरंजित-सा लगने वाला वर्णन भी यथार्थ से परे नहीं है। अतः कहा जा सकता है कि कुछ सामान्य चमत्कार-वर्णनों के अतिरिक्त अधिकांश बातें तथ्यमूलक तथा विश्वसनीय हैं।

स्वामी चरणदास जी असीम अलौकिक शक्तियों के आगार थे। यदि ऐसा न होता तो न केवल दिल्ली के ही वरन् उत्तर भारत के सुदूर स्थानों से आ-आकर एक से एक ज्ञानी-ध्यानी व्यक्ति उनके शिष्य न हुए होते। उनके १०८ विरक्त और पहुँचे हुए शिष्यों ने उनके जीवनकाल में ही स्वतन्त्र स्थानों का निर्माण किया और वे विधिवत् भक्तिप्रचार में लगे हुए थे। इनमें से ५२ स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण हुए। श्री जसराम उपगारी के साक्ष्यानुसार स्वामी जी के शिष्यों की संख्या ५००० थी, जिसमें सभी वर्गों, वर्णों, धर्मों और विश्वासों के लोग थे। सबको अपने-अपने ढंग से ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म-समन्वित उपासना के प्रचार की छूट थी। दिल्ली का आश्रम सबका केन्द्र था। वहीं से सम्प्रदाय का नियन्त्रण होता था।

सन्त चरणदास की जाति : विवाद के विन्दु और समाधान—

सन्त-महात्माओं की कोई जाति नहीं होती और न तो उनकी दृष्टि में जाति-पाँति का कोई भेद-भाव ही होता है, फिर भी लोकदृष्टया किसी भी व्यक्ति की जाति के सम्बन्ध में सामान्यतया जिज्ञासा होती ही है। वस्तुतः इस प्रश्न का उत्तर सामान्य जनमानस की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण है। आलोच्य श्री चरणदास की दिनचर्या और उनके रहन-सहन के बारे में उनके दो प्रमुख शिष्यों अर्थात् रामरूप और जोगजीत ने अपने ग्रन्थों में जो प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में चित्रण किया है, उससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उनका जीवन राजसी ठाट-बाट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का था। इस बात की पुष्टि उनके अनेक प्राप्त चित्रों से भी होती है। इस प्रकार ये समाज के सम्भ्रान्त वर्ग के प्रतिनिधि माने जा सकते हैं। उनके शिष्यों में उनकी स्वयं की जाति के लोगों की संख्या एक तिहाई के लगभग है। उनके अधिकांश विरक्त शिष्य ढूसर भार्गव या अन्य उच्च जातियों के थे। बानाधारी विरक्त शिष्यों में सवर्णों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। लेकिन इससे यह नहीं सोचना चाहिए कि चरणदास जी आभिजात्यवादी थे। उनके १०८ प्रमुख शिष्यों की सूची में रामभौला जैसे पठान मुसलमान तथा चरणरज एवं चरणधूर जैसे गूजर भी सम्मिलित हैं। उन्होंने अपने चमत्कारी व्यक्तित्व से रामधड़ल्ला जैसे लुटेरे को भी शिष्य बना लिया था और इसी प्रकार नागापंथी साधु मधुबनदास जी भी उनके शिष्य हो गये थे। उन्होंने शामली के दम्भी योगी विद्यानाथ को तथा सात राहजनों को भी अपनी शिष्यमण्डली में सम्मिलित किया था। उन्होंने नानकपंथी, कट्टर मुस्लिमवादी तथा चोर, ठग, डाकू, लड़ाकू, बहुरूपिया, जादूगर, कीमियागर, राजा-रंक-बादशाह और फकीर सबको अपनी सिद्धियों से प्रभावित किया था। उनकी उदार धार्मिक एवं जातीय दृष्टि की विशालता समाज के शोषित वर्ग को भी आकर्षित करने में सफल हुई थी और वे बड़ी संख्या में उनके शिष्य बनकर उनसे लाभान्वित हो सके थे। कहा जाता है कि दिल्ली के खटिकों, केवटों और कुछ मुसलमानों ने भी उन्हें अपना गुरु माना था। रसिक भक्ताचार्य श्री रामसखी को शिष्य रूप में अपनाकर उन्होंने दिल्ली के किंपुरुष वर्ग और कायस्थ जाति में भी बड़ा सम्मान अर्जित किया था।

उनमें नारी-पुरुष में भी कोई भेद-दृष्टि नहीं थी। यही कारण है कि उनके शिष्य वर्ग में सुश्री सहजोबाई, दयाबाई और तूपीबाई विशिष्ट सम्मान का भाजन बन सकीं। यदि उनमें धार्मिक संकीर्णता रही होती तो दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले, आलमगीर द्वितीय और शाहआलम द्वितीय (अलीगौहर) पानीपत के नवाब शाकरखाँ, दिल्ली के अनेक अमीर-उमराव, भयंकर आक्रमणकारी नादिरशाह, दिल्ली की बेगमें और अनेक सूफी, साधु, फकीर आदि उनके आश्रम में आकर उनका सम्मान न करते। वास्तविकता तो यह है कि नकी गणना पहुँचे हुए फकीरों में होने लगी थी। यही कारण है कि अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली में खुले आम लूट-पाट करने के बादजूद भी इनके आश्रम को अछूता छोड़ दिया। धार्मिक भेदभाव को अस्वीकार करते हुए उन्होंने कहा भी है—

मुसलमान हिन्दू मत जानो। जात खुदा की ही पहचानो॥[1]

अतः ऐसे महात्मा के विषय में जाति का प्रश्न उठाना श्रेयस्कर न होते हुए

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ९०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इसे विवादास्पद बना दिया गया। अतः इसी सन्दर्भ में तथ्यावलोकन मात्र की दृष्टि से चरणदास जी की जाति को यहाँ चर्चा का विषय बनाना आवश्यक प्रतीत होता है। चरनदासी सम्प्रदाय में आरम्भ से अबतक इस बात में कोई मत-भेद नहीं रहा है कि इनके पूर्वज ढूसर भार्गव थे। वस्तुतः भार्गव उपाधि भृगु ऋषि की परम्परा के ब्राह्मणों की है और ढूसर शब्द अलवर के निकट और डहरा-बहादुरपुर (अलवर से ५-६ मील उत्तर में स्थित) के आस-पास बहने वाली एक पहाड़ी नदी बधूसरा के निकटवर्ती भार्गवों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है।

इस सम्बन्ध में विवाद का सूत्रपात इस मान्यता के साथ हुआ कि ढूसर भार्गव ब्राह्मण न होकर वैश्य हैं। इसी आधार पर डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने चरणदास जी को ढूसर वैश्य कुलोत्पन्न माना है।[1] उन्होने अपने इस निष्कर्ष के प्रमाण-रूप में आचार्य क्षितिमोहन सेन[2], जेम्स हेस्टिंग्स[3], एच० एच० विल्सन[4], डब्ल्यू० क्रुक्स[5], डॉ० रामकुमार वर्मा[6] और प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के कथनों को उद्धृत किया है। श्री ब्रह्मचारी ने काफी यात्राएँ की हैं, अतः इनका कथन विदेशी लेखकों या लिखी-लिखाई बात को स्वीकार करके लिखने वालों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक मानी जायगी। वे लिखते हैं—"राजपूताने के मेवात देश में डेहरा नाम के एक ग्राम में ढूसर बनियों के बहुत से घर हैं—उन्हीं परिवारों में से एक परिवार में मुरलीधर नाम के एक भाग्यवान पुरुष हुए।"[7]

---

१. संत चरणदास : पृ० ३७।

2. "He came from a Bania Familly of Rewari and was known as Ranjit in his early life." Madieval Mysticism of India : P. 145.

3. "They belonged to Dhusar Trible of the Bania Caste." —Encyclopaedia of Religion and Ethics : Vol 3, P. 366.

4. "Another Vaishnava Sect was instituted by Charandas, a Merchant of Dhusar Tribe." Essays and Lectures on Religion of Hindus : Vol. I, P. 178. (1862)

5. A Vaishnava Sect which takes its name from its founder Charan Das of Dhusar Caste. T. & C. of N. W.P. & Oudh : Vol. II, P. 201.

६. इनके पिता का नाम मुरलीधर था, जो धूसर बनिया थे।—हिन्दी सा० आ० इति० : पृ० २८४।

७. भक्त चरितावली : भाग १, पृ० ३४२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'संतबानीसंग्रह' के सम्पादक के विचार से श्री चरणदास जी का जन्म राजपूताना के मेवात देश के डेहरा नामी गाँव में एक प्रसिद्ध ढूसर कुल में हुआ।[1]

यहाँ हम देखते हैं कि ढूसर कुल को वैश्य जाति या बनिया जाति के अन्तर्गत मानने वाले कतिपय ऐसे विशिष्ट विद्वान् हैं, जिनका विद्वत् समाज में आदर है और जिनका लेख प्रमाणसिद्ध माना जाता है।

इनसे अलग विद्वानों का एक वर्ग ऐसा भी है जो ढूसर जाति को ब्राह्मण या बनिया मानकर विवादग्रस्त नहीं होना चाहता, अतः इस प्रश्न पर मौन है। उदाहरण के रूप में 'सन्तबाणी' के सम्पादक का मत अभी उद्धृत किया जा चुका है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो भार्गव आस्पद को ब्राह्मण और वैश्य दोनों से भिन्न और स्वतन्त्र जाति के रूप में मानते हैं। रामरूप जी और श्री जोगजीत ने भी इनकी जाति के नाम के लिए केवल ढूसर शब्द ही लिखा है, ब्राह्मण या वैश्य जैसी कोई विशिष्ट और स्पष्ट जाति का उल्लेख इनमें से किसी ने भी नहीं किया है। इनलिए इस विषय में विवाद को स्थान मिला।[2] वस्तुतः इन दोनों ने ढूसर जाति का उल्लेख एक अलग जाति के रूप में किया है। इसी प्रकार आत्म-परिचय में स्वयं चरणदास जी का यह कथन भी इसी मत की पुष्टि करता है—

डेहरे मेरो जनम, नाम रणजीत बखानो।
मुरली को सुत जान, जात ढूसर पहिचानो॥[3]

परन्तु इन तीनों महापुरुषों ने यह भी तो कहीं नहीं कहा है कि ढूसर जाति वैश्यवर्ण के अन्तर्गत है? अतः डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित की यह मान्यता कि चरनदास जी का जन्म ढूसर वैश्य कुल में हुआ था, नितान्त आपत्तिजनक है।[4] इससे भी बड़ी आपत्ति की बात यह है कि वर्तमानकाल के चरणदासी महात्माओं में पर्याप्त प्रबुद्ध स्व० रूपमाधुरीशरण जी का यह कथन उद्धृत करके भी उन्होंने इसमें निहित तथ्य को मानने से अस्वीकार कर दिया है—"श्री श्यामचरणदासाचार्य जी भृगु वंश में प्रगट भये ताते भार्गव ब्राह्मण कहाये और ढूसर आपको इस वास्ते कहते हैं कि भृगु जी की स्त्री पुलोमा श्री च्यवन ऋषि की माता उसके नेत्रों से एक समय आँसुओं की धारा ऐसी चली कि उससे नदी बह चली। उस नदी का

---

१. चरनदास जी की बानी : भाग १, पृ० १।

२. मेवात देश में डेहरा गाऊँ। जहाँ जनम रनजीता नाऊँ॥
ढूसर जाति चिमन से भयऊ। अब दिल्ली में बासा लयऊ॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ४७।

३. भक्तिसागर (ज्ञानस्वरोदय का अन्तिम् छन्द) : पृ० १३०।

४. संत चरणदास : पृ० ३७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम बधूसरा कहा गया। उस बधूसरना नाम की नदी के किनारे रहने वालों का नाम बधूसरा भया। सो यही शब्द बिगड़ते-बिगड़ते ढूसर हो गया।"[1]

इस सम्प्रदाय के अधिकांश संत, महंत और विद्वान्, यथा—सहजोबाई की गद्दी (दिल्ली) के महंत स्व० गंगादास, रामरूप जी की गद्दी (दिल्ली) के महन्त प्रेमदास, वृंदावन (जुगलघाट) के महात्मा स्व० रूपमाधुरीशरण जी तथा जयपुर, रेवाड़ी, वृंदावन आदि स्थानों के अन्य चरणदासी महात्मागण इस बात से अत्यधिक रुष्ट रहे हैं कि डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित जैसे संत चरणदास पर डी० लिट्० की उपाधि के प्राप्तकर्त्ता को इतना भ्रामक तथ्य प्रस्तुत नहीं करना चाहिए था।

इस सम्प्रदाय के आचार्यगण चरणदास जी सहित सभी ढूसरों को भार्गव ब्राह्मण मानते हैं। इनकी मान्यता है कि च्यवन ऋषि के पुत्र भृगु ऋषि से चली हुई भार्गवों की यह परम्परा एक तेजस्वी ब्राह्मण कुल से अभिन्न है। इधर ५०–६० वर्षों से भार्गव विद्वानों ने अनेक सप्रमाण और तर्कपूर्ण लेखों के माध्यम से यह सिद्ध करने का सुसंगठित प्रयास किया है कि ढूसर भार्गव परम्परा ब्राह्मण परम्परा ही है। इन विद्वानों की मान्यता है कि च्यवन ऋषि ढूसी पहाड़ के निकट तपस्या करते थे, अतः उनकी संतान ढूसर कहलाई। चूँकि च्यवन ऋषि भृगु मुनि के पुत्र थे, अतः च्यवन ऋषि की वंश परम्परा को ढूसर भार्गव कहा जाता है।

संभवतः इन्हीं तथ्यों से अवगत और प्रभावित होने के कारण ही डा० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल,[2] भुवनेश्वर माधव,[3] और 'कल्याण' के योगांक[4] के सम्पादक ने इन्हें केवल ढूसर कुलोत्पन्न ही लिखकर छोड़ दिया है। परन्तु अब तक इस संबंध में इतना साहित्य प्रकाश में आ गया है कि उसके आधार पर कहा जा सकता है कि ढूसर भार्गव जाति से ब्राह्मण ही हैं। सन् १८८१ ई० के पंजाब की जनगणना की रिपोर्ट में और सन् १८९१ ई० के उत्तर प्रदेश (तत्कालीन यूनाइटेड प्राविंसेज) की जनगणना-रिपोर्ट में ढूसरों को मूलतः सरयूपारीण ब्राह्मण और वाराणसी का मूल निवासी माना गया है। इनके संपादकों ने बड़े परिश्रम से यह तथ्य संकलित किया है, इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है। साथ ही, चूँकि यह जातीय दुराग्रहों से मुक्त विदेशी विद्वानों की खोज पर आधारित है, अतः विश्वसनीय भी है। इन दोनों विद्वानों का कथन यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, जिनसे उपर्युक्त निष्कर्ष का समर्थन होता है।

---

१. वही : पृ० ३८ पर उद्धृत।

2. The Nirgun School of Hindi Poetry : P. 266.

३. संत साहित्य : पृ० १११–१२।

४. कल्याण का योगांक : पृ० ८१६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"The Headquarters of the Dhusar are at Rewari in Gurgaon. They take their name from Dhusi, a flat topped hill near Narnaul, Where their ancester Chiman performed his devotions. They are of Brahmanical origin, as is admitted by the Brahmins themselves. But they are no longer Brahmins any more than the agricultural Tagas; and like the latter they employ Brahmins to minister to them. Sherring States that the Dhusars have a tradition of origin in the neighbourhood of Benaras before migrating to Delhi that they excel as ministrels, and are exceedingly Strict Hindus of the Vaishnava Sect."

Report 1881, Punjab.

Denzil Charles Jelf Hebestson. p. 293.

"Large numbers which could only belong to the Dusar subdivision were tabulated as Dhusars. The Dhusar who claim a Brahmanical origin and according to Todd perform Brahmanical fuuctions in their origional home in Rajputana, have been shown as a separate caste Dhusar Bhargava. Dusar is a sub caste of Banias of low standing who persuit widow remarriage. They are a branch of Umaras descended from a 2nd wife hence the name Dusar. A second reason for confusion was introduced by many of the caste showing themselves as Brahmins whilst Bhargava is also a sub-castes of Survaria Brahmins."

—Report 1891, U.P.Mr. Baillie : P. 316.

संत चरणदास की शिक्षा-दीक्षा —

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, चरणदास ने अपने बाल्यकाय में किसी भी पाठशाला में जाकर या किसी अध्यापक से विधिवत् शिक्षा ग्रहण नहीं की थी। उनके अभिभावकों ने शिक्षा के लिए छठें वर्ष की आयु में उन्हें पाठशाला में भेजने की व्यवस्था की थी। बड़े प्रयास के बाद भी वहाँ का उपाध्याय उन्हें कुछ पढ़ा सकने में समर्थ नहीं हुआ। उलटे बालक रणजीत ही अध्यापक को यह कहकर शिक्षा देने लगे—

नन्ना मम्मा कहा सिखावो। नाम प्रभू का क्यों न पढ़ावो।
साँचे कहूँ तुम्हारे आगे। राम भजन बिनु मन नहिं लागे॥

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम नाम जो पढ़ो पढ़ावो। मो तारो अरु तुम तर जावो ॥[1]

अन्ततः अध्यापक महोदय ने इन्हें पढ़ाने में असमर्थता प्रकट की। घर के बड़े-बूढ़ों ने भी सोचा कि अभी नहीं पढ़ता तो कोई बात नहीं, बड़ा होने पर यह बालक अवश्य ही पढ़ेगा। दूसरे चटशाला में भेजने पर भी असफलता हाथ लगी। पुनः तीसरी बार दिल्ली में रणजीत के नाना श्री भिखारीदास जी ने पढ़ाने के लिए उन्हें एक मौलवी को सौंप दिया। मौलवी साहब उन्हीं के घर जाकर शिक्षा देने लगे। नाना-नानी और माता जी को कष्ट न हो, इसलिए खिन्न मन से वे पढ़ने के लिए बैठने तो लगे परन्तु पढ़ने में अपना मन उन्होंने नहीं लगाया। कुछ दिनों तक उस मौलवी से पढ़ने के उपरान्त वे मुल्ला कादरबख्श के मकतब में पढ़ने के निमित्त जाने लगे। आठ माह तक उनके पठन-पाठन का कार्यक्रम सुचारु रूप से चला और पढ़ाई में प्रगति भी अच्छी हुई। पूरी 'खालिकबारी' और 'अब्वल करीमा' का चौथाई भाग वे भली-भाँति पढ़ गये। फिर उनका मन पढ़ाई से उचट गया और मुल्ला के पूछने पर कि वे पढ़ क्यों नहीं रहे हैं ? उन्होने स्पष्ट और निर्भीक उत्तर दिया—

पढ़ूँ लिखूँ नहिं क्यों हूँ कैसे। समझ लेहु निहचे करि ऐसे ॥
भवन कुटुंब साजू नहीं, होना मोहिं फकीर।
हिरदे में नित ही रहे, राम मिलन की पीर ॥[2]

मुल्ला उनको क्या पढ़ाता, वे मुल्ला को ही सीख देने लगे। उसने समझ लिया कि यह कोई अलौकिक बालक है, अतः वह उन्हें पढ़ाने के प्रयास से विरत हुआ।[3]

किताबी और मकतबी पढ़ाई तो बस इतनी ही हुई, लेकिन उनकी वास्तविक शिक्षा तब आरंभ हुई जब उन्हें अवतारी या गैबी गुरु श्री शुकदेव मुनि मिल गये। उन्होंने उन्हें प्रत्यक्ष और स्वप्नावस्था में दर्शन दे-देकर कई बार कृतार्थ किया और योग, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म तथा अन्य अनेक प्रकार के विषयों का ज्ञान

---

१. लीलासागर : पृ० २६–२७।

२. वही : पृ० ४९।

३. तब बोले रणजीत सँभाले। देखे नहि दरवेश कमाले ॥
उनकी बात कहा तुम जानो। इल्म लुदन्नी ना पहिचानो ॥
जेते हुए पैगम्बर नीके। कब वे पढ़े इलम कब सीखे ॥
धुर से इल्म लुदन्नी लाये। स्वतः सिद्ध वे पढ़े पढ़ाये ॥
सुन बातें रणजीत की, मुल्ला मन हैरान।
क्या लड़का मासूम यह, कहै जु धुर की बात ॥
—वही : पृ० ५०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी सरलता और शीघ्रता से करा दिया, जैसे कोई अमृत का घूँट पिला दे। इस शिक्षा का सूत्रपात तो तभी हो गया था, जब बालक रणजीत की अवस्था ४ वर्ष और कुछ माह की थी। तब एक किशोर दिव्यमूर्त्ति के रूप में शुकदेव मुनि ने प्रकट होकर उनमें उच्चतम शिक्षा का बीजारोपण कर दिया था। १९ वर्ष की अवस्था तक ज्ञान-ध्यान का यह बिरवा विकसित, पल्लवित और पुष्पित होता रहा।

दूसरी बार शुकतार में गुरु ने दीक्षा-दान के पश्चात् उन्हें विस्तृत ज्ञान-दान किया। इस बार गुरु शुकदेव मुनि ने उन्हें प्राणायाम, समाधि, ध्यान, जप, भक्ति, वैराग्य, वैष्णवी साधनाओं की विशेषताएँ, साधना-सम्प्रदायों का इतिहास, पुराणों और श्रीमद्भागवत का मर्म, नवधा भक्ति, अष्टयाम उपासना, अष्टांग योग और प्रेमाभक्ति आदि नाना विषयों का मर्म समझाया। इस बार उन्हें ऐसी विद्या प्राप्त हुई जिसे योग्य गुरु के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। संयोग से श्री चरणदास के गुरु ऐसे ही सर्वज्ञ थे।

यों तो समय-समय पर चरणदास जी को उनके दर्शन होते ही रहते थे परन्तु गुरु के साथ गोष्ठी करने का तीसरा अमूल्य अवसर वृन्दावन के वंशीवट पर मिला। तब तक गुरु के आशीर्वाद से उन्हें समस्त परिकर-सहित श्रीकृष्ण के रास-विहार के दर्शन प्राप्त हो चुके थे। अब तक उनका योग सिद्ध हो गया था और भक्ति फलित भी हो चुकी थी। इस बार गुरु ने उन्हें उनकी जिज्ञासा शान्ति के लिए ब्रह्म के निर्गुण-सगुण स्वरूप के विषय में भी बड़े विस्तार से समझाया था।

इस दुर्लभ एवं अलौकिक शिक्षा-प्राप्ति के अतिरिक्त भी उनके बहुपठित होने के प्रमाण उनकी काव्य-कृतियों के अन्तर्साक्ष्य से प्राप्त होते हैं। उनके लीला विषयक ग्रन्थ—यथा 'दानलीला', 'कुरुक्षेत्र लीला', 'माखन चोरी लीला', 'चीरहरण लीला' और 'मटकी लीला' आदि उनके श्रीमद्भागवत के गहन अध्ययन के परिणाम हैं। इसी प्रकार 'योग सन्देहसागर', 'ज्ञानस्वरोदय' और 'अष्टांग योग' उनके योग शास्त्र सम्बन्धी विपुल साहित्य के अध्ययन के परिचायक हैं। 'उपनिषद्सार' नामक ग्रन्थ में अनेक उपनिषदों का तत्व समाहित है। 'ब्रह्मज्ञानसागर' उनके वेदान्त सम्बन्धी ग्रन्थों के अध्ययन का साररूप है। 'भक्तिपदार्थ', 'भक्तिसागर' और 'धर्म-जहाज' जैसी कृतियाँ भक्तिसम्बन्धी रचनाओं के अध्ययन-मनन से उद्भूत हैं। इसी प्रकार उनकी 'नासकेत लीला' और 'श्रीधर ब्राह्मण लीला' नामक ग्रन्थों की सामग्री विभिन्न पुराणों की कथाओं पर आधारित है। कहने का तात्पर्य यह कि श्री चरणदास के ज्ञान की प्रौढ़ता न केवल उनके अनुभवों की देन थी प्रत्युत उनके विस्तृत स्वाध्याय से भी परिपुष्ट हुई थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेश-भूषा, रहन-सहन और भगवद्भक्ति का उदय—

श्री चरणदास के अनेक समकालीन शिष्यों ने अपने गुरु की वेश-भूषा के संबंध में पर्याप्त प्रकाश डाला है। श्री रामरूप, जोगजीत जी, जसराम उपगारी और कई अन्य शिष्यों ने तो उनके बाल्य जीवन की वेश-भूषा का भी वर्णन किया है। तदनुसार अपनी बाल्यावस्था में जब वे दो वर्ष के थे—'कटि किंकिनी पग नूपुर उनके। बैठत उठत चलत छवि छलके'—वाले स्वरूप में थे। तीसरे वर्ष की अवस्था में 'सुन्दर रूप चरित्र लखि प्यार करें सब लोग', वाली स्थिति थी। जब वे चौथे वर्ष गये, 'तब तिलक छाप गल कंठी धारे' और 'माला लेकर फेरन लागे'। पाँचवें से आठवें वर्ष तक की अवस्था में संभवतः उनकी वही वेश-भूषा थी, जिसको उन्होंने चौथे वर्ष में ही धारण कर लिया था। इस बीच में उनमें विरक्ति का भाव और दृढ़ हुआ होगा। इसकी पुष्टि उनके प्रथम शिक्षक श्री पांडेय, द्वितीय शिक्षक चटशाला वाले उपाध्याय, तृतीय शिक्षक मौलवी कादरबख्श और माता, नाना आदि से हुए उनके संवादों से होती है।

उनमें बाल्यसुलभ चापल्य का यों तो प्रारंभ से ही अभाव था परन्तु आयु के पाँचवें वर्ष में हुये शुकदेव मुनि के प्रथम दर्शन ने उसे और कम कर दिया था। वे बच्चों में खेलने और बाललीला में रत रहने के स्थान पर अपने साथियों से भजन-कीर्त्तन कराते थे। आठवें वर्ष की अवस्था में ही उनमें लड़कपन का इतना अभाव था और उनका ज्ञान इतना परिपक्व था कि माता कुंजो को उन्हें राय देनी पड़ी—

सुरत होय सोइ खेलो खावो। लट्टू चकई पतंग उड़ावो॥
बालेपन के चरित दिखावो। हिरदै हरि की भक्ति दृढ़ावो॥[1]

माता कुंजो की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि उनका पुत्र चाहे भले आंतरिक रूप से हरि-भक्ति करे परन्तु प्रकट रूप में उसे बाल-लीला ही करनी चाहिए। माता की यह इच्छा सम्भवतः पूरी नहीं हुई, क्योंकि ९ वर्ष के बालक रणजीत का चरित्र बड़ा ही विचित्र था। वे तो माता-सहित अन्य स्त्री समाज को भी हरिभजन से जोड़ना चाहते थे। यहाँ तक कि घर के बाहर जो सेवक वर्ग था उसे भी इकट्ठा करके भक्ति-मार्ग में उन्होंने लगा दिया।[2] इससे सहज अनुमान हो सकता है

---

१. लीलासागर : पृ० ६८।

२. कबहूँ माता के ढिग जावें। नारी सिमटि सबै तहँ आवें॥
तिनकूँ हरि की भक्ति सुनावैं। उनके मुख हरि नाम जपावैं॥
बाहर जेते चाकर होई। लागे भक्ति करन सब कोई॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ४१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उनकी वेश-भूषा क्या रही होगी ? ग्यारहवें वर्ष की अवस्था में उन्होंने एकांत-वास, साधु-सत्संग, हरि के गुणानुवाद-गान और ठाकुरद्वारे-गमन की दिनचर्या अपना ली थी। १४ वर्ष की अवस्था तक उनकी यही स्थिति रही—'मस्तक टीका कर में माला। मुख सो जपै श्रीकृष्ण गुपाला।'[1] इस बीच की उनकी शारीरिक स्थिति का चित्र इस प्रकार है—

भरे रहैं जल ही सूँ नैना। बिरह तपत से बोलत बैना॥
जग सूँ भये रहैं बैरागी। नेह अगिनि हिरदे में लागी॥
दिन नहिं भूख नींद निशि नाहीं। हरि का मिलन सोच मन माहीं॥
सूखे होठ बदन रहे पीरा। बिना दरस मन धरै न धीरा॥
……कोई कहे तुम बैद बुलावो। या लडके को ताहि दिखावो॥
पावे रोग औषधी देवे। याही को नीका करि लेवे॥[2]

कुटुंब और जाति के लोग कहने लगे—इसका पिता जैसा बावला था, वैसा ही पुत्ररूप में यह भी होगा। सच है, 'जैसा पिता वैसा पुत्र'; इधर इनकी स्थिति यह कि रोते-रोते आँखों की बरौनियाँ तक झड़ गईं।' 'बोले मुख सों अकबक बानी'—वाली गति हो गयी थी। लोग-लुगाई उन्हें देखकर दयार्द्र हो जाते और आपस में बातें करते हुए कहते—

"अति सुन्दर यह काको बाला। महा जु दुख करि फिरत बिहाला॥"[3]

इस स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन उस समय आया जब वे १९ वर्ष के हुए और गुरु की उनकी खोज पूर्ण हुई। उस समय की उनकी वेश-भूषा की एक झलक इस प्रकार है—

टोपी अपने कर पहिराई। पहिरा चोला खुशी मनाई॥
श्री तिलक माथे बन्यो, कंठी शोभा देत।
महावैष्णव रूप धरि, किया सभी हरि हेत॥
श्री तिलक पीताम्बर बाना। जोगजीत तापर कुरबाना॥[5]

---

१. लीलासागर : पृ० ७०।
२. वही : पृ० ७३।
३. कुंटुब जाति ऐसे कहैं, भया पिता सम पूत।
बौरे का बौरा भया, हो गया सूत कुसूत॥
रोवत पलकें सब उड़गइयाँ। रोम रोम में सइयाँ सइयाँ॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ४५।
४. लीलासागर : पृ० ७७।
५. वही : पृ० १०९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पश्चात् एक गुफा में रहते हुए १४ वर्षों की सुदीर्घ अवधि तक उनकी योग-साधना का क्रम चला। इस बीच उनका वेश प्रायः वही रहा होगा।

जब वे ३३वें वर्ष में प्रविष्ट हुए तो गुरु से उन्हें राजसी ठाट-बाट का जीवन कुछ दिनों तक व्यतीत करने का आदेश हुआ। अतः उनका वेश अब बदल गया और स्थान भी गुफा से हटकर उन्हीं के द्वारा निर्मित फतेहपुरी के एक भव्य आश्रम में आ गया। उन्होंने गुरु के इस आदेश का पालन करने के लिए ही इस आश्रम का निर्माण कराया था—'गद्दी साज राज विधि रहिये। उहीं रहो ज्यों भूपन चहिये।' और वे 'वाही विधि रहने लगे, राज रीति की भाँति।'[1] इस रूप में रहते हुए भी उनकी आध्यात्मिक ऊँचाई कहीं से कम नहीं हुई। वस्तुतः यह राजयोग की साधना का ही एक उपक्रम था।

उनके इस भूप-रूप का वर्णन करने के पूर्व श्री जोगजीत ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि यह गुरु के आदेश के मात्र पालन-हेतु था न कि ऐसा करना उनके जीवन का वास्तविक उद्देश्य था। इसलिये वे पहले ही कह देते हैं—

ये किये साज जु राज के, गुरु आज्ञा से जोय।
तन सों दीखें भूप से, मन सों लिप्त न होय॥[2]

उनकी यह राजसी वेशभूषा उनके स्वाभाविक रूप से सुन्दर रूप के लिए 'चार चाँद लगाने वाली थी। उनके इस स्वरूप का श्री जोगजीत जी ने बड़ा ही विशद शब्दचित्र प्रस्तुत किया है। उसकी एक झलक इस प्रकार है—

बरनू ध्यान योग छवि तिनकी। बाँकी मूरति साँवली जिनकी॥
कुरसी ऊपर बैठे राजें। चरचा करें सिंघ ज्यों गाजें॥
कर पद मेंहदी रच रही, नख शोभा अधिकाय।
चरण कमल दोउ रंग भरे, जोगजीत बलि जाय॥

× × × ×

कंचन तोड़ा दहिने पाहीं। बायें कंगना अति छवि छाई॥
पीत बसन केसर रंग बोरे। नख सिख भूषन छवि कछु औरे॥[3]

इसी से मिलते-जुलते शब्दों में रामरूप जी ने भी चरणदास जी की इस अवस्था की बाँकी छटा की झाँकी प्रस्तुत की है।[4] इन दोनों महाकवियों का रूप-वर्णन शुक

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ६६।
२. लीलासागर : पृ० ११९।
३. वही : पृ० १२०–१२२।
४. सिंहासन पर बैठे सोहैं। छवि वरणै ऐसा कवि को है।
महँदी रचन कहीं नहिं जाई। मन लागो नख सुन्दरताई॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदाय (चरणदासी सम्प्रदाय) के अन्तर्गत ध्यान की मूर्त्ति या ध्यान के स्वरूप के रूप में स्वीकृत है। यह झाँकी चरणदास जी की ३४ वर्ष की अवस्था की है। उस समय आश्रम में एक ब्राह्मण रसोइया, दो द्वारपाल, चार कलावन्त गायक, १० प्यादे, एक मुसद्दी, एक मुसाहब, एक कहार, एक मसालची, एक नाई, एक आसबरदार, एक स्नान कराने वाला, एक पूजा की सामग्री इकट्ठी करने वाला, दो बाजार से खरीद-फरोख्त करने वाले और एक-एक क्रमशः आसन-बिछौना लगाने वाला, मोरछल लिये रहने वाला तथा पीकदान लेकर चलने वाला—इस प्रकार कुल ३० चाकर नियुक्त किये गये थे।

उस समय की दिनचर्या इस प्रकार थी—

एक पहर रात्रि के शेष रहने पर ही उठ जाना, नहा-धोकर पूजा में लग जाना, ब्राह्मणों को दक्षिणा देना, किसी नये अभ्यागत ब्राह्मण को प्रतिदिन ६० रुपये गुप्त दान में देना और इसके उपरांत दैनिक क्रियाओं से मुक्त होकर सुन्दर वस्त्र धारण करके कुर्सी पर विराजमान होना, उनका नित्य का नियम था। उनके दर्शनार्थ वहाँ आने वालों की एक झलक द्रष्टव्य है—

हाथी और पालकी बारे। हिन्दू तुरक भीड़ हो भारे॥
राव रंक दोऊ चल आवें। हित सों सबकी ओर लखावें॥
पै काहू की भेंट न राखैं। दुखी मिलै वाको कुछ नाखैं॥[1]

इस प्रकार एक पहर तक उनका दरबार लगता था, फिर वे अपने कक्ष में चले जाते थे। अपराह्न में एक पहर दिन से पुनः दरबार आरम्भ होता था, जो सायं-काल आरती होने के पूर्व तक चलता था। आरती के पश्चात् समाज जमता था

दहिने तोड़ा सोनाकेरा। बायें पग में कँगना गरा॥
पीरा फेंटा सिर पर राजे। तुर्रा कलँगी अधिक विराजे॥
पीरा नीमा तनके माहीं। घेरदार अतिही घुमराहीं॥
घुण्डी लगी जड़ाव बिसाला। बड़े बड़े मोतियन गलमाला॥
नौ रतनो के बाजू बाहूँ। दोउ कर पहुँची रतन जड़ाऊ॥
अँगुरी अँगुरी पहर अँगूठी। मेंहदी हाथों लगी अनूठी॥
प्रेम भरे नैना बड़े, बदन श्याम ही रंग।
बाँकी मूछैं सोहनी, हिय में हर्ष उमंग॥
मुसक्याते दीखें सदा, अधरन यही सुखभाय।
माथे टीका सिलमिली, रामरूप बलि जाय॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ६९।

१. वही : पृ० ६७–६८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें गवैये १॥ पहर रात्रि तक सुमधुर संगीत की धारा प्रवाहित करते थे। इस प्रकार—

आनन्द करैं गुरु का दीआ। धन ऐसे पुरुषों का जीआ॥
ऐसे रहैं सदा वह ठाईं। तन सो ह्वाँ परि मन हरि पाहीं॥
आठौ सिद्धि रहैं पग लागी। टहल करन कारन बड़ भागी॥
आठौं सिधि ठाढ़ी रहैं, जैसे खिदमतगार।
टहल करन के कारने, संग दई करतार॥[1]

इस रूप में उन्होंने ५ वर्ष तक व्यतीत किया था। तत्पश्चात् आश्रम की सारी संपत्ति नौकरों-चाकरों में बाँटकर, जनता के बीच लुटाकर, सेवकों को सवाई वेतन देकर मुक्त करके और सबको समझा-बुझाकर उन्होंने पुनः इस वैभव का त्याग कर दिया और एक अकिंचन योगी का रूप अपना लिया।

रामरूप जी ने तो नहीं लेकिन जोगजीत ने एक वृत्त दिया है, जिसके अनुसार राजसी ढंग से रहना आरम्भ करने के ५ वर्ष की अवधि के बीच ही एक बार उनके मन में कुछ ऐसा आया कि अब कुछ दिनों तक इस वैभव से दूर एक सेवक-रूप में गुप्तवास करना चाहिए। ऐसा विचार करके वे दिल्ली के निकटस्थ शाहदरा के सराय में आये और साधुवेश का त्याग कर एक नापित (नाई) के वेश में हो गये। वहाँ वे एक वर्ष तक रहे। इस बीच वे चंपी और चरणसेवा आदि करके दिन बिताते थे। धनी लोगों से सेवा के बदले कुछ भी न लेना और दरिद्रों को यथाशक्ति देना उनकी दिनचर्या थी। वे अनाथों की सेवा बड़े ही मनोयोग के साथ करते थे। एक बार किसी मुसाफिर का लोटा खो गया। उसने नापित वेशधारी चरणदास को एक लात मारकर अपना लोटा वापस माँगा। वे उसे एक सर्राफ की दुकान पर लोटा देने के लिए अपने साथ ले गये। जब उसने देखा कि सर्राफ उनके चरणों पर गिरकर अपनी श्रद्धा निवेदित कर रहा है, तो वह अपने किये पर पछताने लगा। बड़े आग्रहपूर्वक चरणदास जी ने उसे लोटे के लिए १॥ रुपये देकर बिदा किया।[2] इस रूप में उन्होंने १ वर्ष तक का समय व्यतीत किया था।

जोगजीत जी ने इसी क्रम में एक दूसरा वृत्त भी दिया है, जिसके अनुसार ७ महीनों के लिए वे मजदूर बनकर सेवावृत्ति में लगे थे। उन्होंने अपना कीमती कपड़ा

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ६८।

२. दाम मुसाफिर ले नहीं, उलट भयो आधीन।
जोरावर करके दिये, बरष दिना यों कीन॥
वर्ष दिन ऐसो कियो, चरित्र श्री महाराज।
फिर आये अस्थल विषै, जोगजीत सुखसाज॥
—लीलासागर : पृ० १६२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतार कर एक मजदूर को दे दिया और स्वयं उसका कपड़ा पहन कर पटपड़गंजामंडी दरारी में गये। वहाँ, उन्होंने एक व्यापारी के यहाँ दाल झाड़ने का काम स्वीकार कर लिया। वहाँ से जो मजदूरी मिलती थी उसे वे रंकों को दे देते थे और स्वयं दाल की चूनी खाकर दिन काटते थे। एक दिन उन्होंने लीला-प्रदर्शन के लिए बनियाँ के सामने ही कुछ दाल को एक पोटली में बाँध ली। बनिये ने उनकी पीठ पर एक लात जमा दी और उन्हें नौकरी से हटा दिया। पुनः बड़ा अनुनय-विनय करके वही काम उन्होंने करना आरंभ किया। एक दिन दाल झाड़ते हुए ही वे बनिये की ओर देखकर मुस्कराने लगे। उनके ऊपर जब वह क्रुद्ध हुआ तो उन्होंने बताया कि अभी कुछ देर में कुछ श्रेष्ठ जन उनसे मिलने के लिए आने वाले हैं। उस बनिये ने कहा कि क्या तुम चरणदास हो कि तुमसे मिलने के लिए बड़े-बड़े महापुरुष आवेंगे ?[1]

जब उस बनिये को पता चला कि जिस चरणदास का नाम लेकर वह उस नौकर को ताने मार रहा है, वह सचमुच चरणदास ही हैं तो वह आत्मग्लानि, पश्चात्ताप, भय और आशङ्का से रो पड़ा। अन्ततः चरणदास जी ने उसे क्षमा कर दिया।

इस प्रकार उन्होंने अनेक रूपों में अपने-आपको प्रस्तुत करके स्वयं तो अनुभव प्राप्त किया ही, साथ ही दूसरों के लिए भी अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। यह सब होते हुए भी अधिकांशतः उनकी वेषभूषा भव्य ही थी।[2] फतेहपुरी का स्थल लुटाकर जब वे वृन्दावन की यात्रा के लिए चले तो उनकी स्थिति क्या थी, इसका वर्णन इस प्रकार है—

पहर माँहि सब लुट गया, रहे लुटावन हार।
टोपी चोला ही रहा, जूता भी दिया डार॥
वा दिन तो वहाँ ही रहे, अस्थल ही के माँहि।
जोगजीत चोला बिछा, ओढ़न को कछु नाँहि॥[3]

जब यात्रा में चले तो वे 'मृगछाला टोपी अरु चोला। कर जु कमंडल छबी अमोला'—वाली स्थिति में थे। इस यात्रा में उन्हें सखीमंडल-सहित श्री राधा-कृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। तदनन्तर श्री शुकदेव मुनि के साथ गोष्ठी भी हुई। वापस

---

१. सुनि बनियाँ यों कहत हँसायो। तू कहा चरणदास हो आयो।
कहि शठ क्यों ना दाल झराये। दीवान चौधरी तब ही आये॥
—लीलासागर : पृ० १६३-१६४।

२. अति उमदा पोशाक सजावे। बैठे चरणदास छवि छावे॥
—वही : पृ० २५०।

३. वही : पृ० १६६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली आकर १३ वर्ष तक साधना रत रहने के पश्चात् उनके द्वारा संप्रदाय-विस्तार का कार्य आरम्भ हुआ। अब वे स्थान-स्थान पर उपदेश देने और शिष्य बनाने के कार्यक्रम में लग गये।[1] उनका रहन-सहन इस अवधि में बड़ा ही विस्मयकारी एवं विरोधाभासों से युक्त था। इस विषय में श्री जोगजीत जी कहते हैं—

कबहूँ रहत उपास ही, कबहूँ ऋद्धि सु ढेर।
कबहूँ नगन अंग गूदरी, कबहूँ वस्त्र सुखेर ॥[2]

चरणदास जी का अपरिग्रह—

अपने जीवनकाल में ही वे एक अवतारी पुरुष के रूप में सम्मानित होने लगे थे। वे स्वभावतः विरक्त थे। उन्हें मुक्ति तक ही आकांक्षा नहीं थी। वे परम ज्ञानी, भक्त, योगी, निरभिमानी, पूरे सिद्ध, सबसे कोमल व्यवहार करने वाले तथा आकर्षक व्यक्तित्व के त्रिकालज्ञ महात्मा थे। उनके लोकोपकार के कार्यों और चमत्कारों की गणना अत्यन्त विस्तृत है। ६० वर्ष की अवस्था तक उन्होंने किसी से भी कोई याचना नहीं की अथवा कोई भी दान स्वीकार नहीं किया।[3]

दान-ग्रहण भी यदि किसी का उन्होंने किया, तो सोच-समझ कर ही। रामरूप जी का इस सम्बन्ध में कथन है—'लेत विचार-विचार ही तामें मैल न होय।'[4] तदुपरान्त शिष्यों के आग्रह पर धर्म-प्रचार के निमित्त होने वाले व्यय की व्यवस्था के लिये वे प्राप्त दान का मात्र १० प्रतिशत ही स्वीकार करने लगे। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि दिल्ली के तत्कालीन बादशाहों, अमीर-उमरावों और राजस्थान के राजा-महाराजाओं ने बड़ी-बड़ी जागीरें स्वीकार करने

---

१. करन लगे उपदेश गुसाईं। दिल्ली के मधि जहाँ तहाँ ही ॥
या विधि हो उपदेश करावें। भव सागर से पार लगावें ॥
चरचा करि बहु शिष्य कराई। काहू को करें द्रव्य दिवाई ॥
काहू घर जा दरस दिखावें। परचा पाय शिष्य हो जावें ॥
वेद पुरान शास्त्र के अर्था। शिष्य करें समुझाय समर्था ॥
—लीलासागर : पृ० २०१–२०२।

२. वही : पृ० २०४।

३. साठ वर्ष की उमर तक, लई न पूजा भेंट।
कै कोई लावो बादशा, कै कोई लावो सेठ ॥
कै कोई लावो शिष्य ही, कै कोई लावो दास ॥
बस्तर हू लीना नहीं, रहे सदा निरवास ॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १९३।

४. वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उनसे आग्रह किया जिसे उन्होंने तृण के समान ठुकरा दिया। यहाँ तक कि जयपुर-नरेश सवाई ईश्वरीसिंह द्वारा प्रस्तावित निम्नलिखित दान को भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया—

पाँच गाँव अरु साठ हजारा। साल पै साल करो भंडारा॥
चरणदास सो नाहिं रखाये। सो सब उलटे ही भिजवाये॥[1]

परमक्रूर आक्रमणकारी नादिरशाह ने भी गाँव-परगना और स्वर्ण-मुद्राएँ स्वीकार करने का उनसे आग्रह किया था परन्तु उन्होंने न तो उस भेंट को स्वीकार ही किया और न तो उसे अपना आशीर्वाद ही दिया। जिसके चरणों पर अनेकानेक राजाओं तथा बादशाहों के मुकुट गिरे, उस नादिरशाह के निवेदन को एक निस्पृह भारतीय साधु ने ठुकरा दिया। यहाँ तक कि अपने शिष्यों को भी उनका यही आदेश था—

चरणदास यों बचन उचारो। रामत करन जो साधु सिधारो॥
काहू से कछु माँगनो नाहीं। राखो लोभ न मन के माहीं॥
बोलो सबसों शीतल बैना। सपने हू मद मान न मैना॥[2]

क्षमाशीलता—

वे इन आचरणों का मात्र उपदेश ही देते हों और स्वयं न करते रहे हों, ऐसी बात नहीं थी। वे स्वयं भी सबसे मधुर व्यवहार करते थे और सबमें राम के दर्शन करते थे।[3] जिन लोगों ने उनकी निन्दा की, उनका भी उन्होंने आदर ही किया। प्रतिहिंसा, प्रतिद्वन्द्विता, ईर्ष्या, किसी को किसी प्रकार से क्लेश पहुँचाने या हानि पहुँचाने, दिल दुखाने और नीचा दिखाने आदि की भावना उनमें लेशमात्र भी न थी। उनके इस स्वभाव से परिचित होने के बाद भी जयपुर के कुछ ईर्ष्यालु निन्दकों, एक नानकपंथी महात्मा, कुछ नागा साधुओं, उद्धत मुसलमानों तथा इसी प्रकार के अन्य व्यक्तियों द्वारा की गई उनकी निन्दाओं का तत्कालीन हिन्दूधर्म द्वेषी जनता तथा शासकों पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं हुआ। उलटे निन्दकों को ही अपमानित होना पड़ा। उन्होंने अपनी ओर से ऐसे आचरण-

---

१. लीलासागर : पृ० २११।

२. वही : पृ० २०२।

३. चरणदास सबसों मृदु बोलें। कटुक वचन मुख कबहूँ न खोलें॥
कहा नारि नर रंक अरु भूपा। सबको जाने राम स्वरूपा॥
—वही। पृ० २०३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्त्ताओं का कभी कोई भी प्रतिकार नहीं किया।[1]

'लीलासागर' में एक कथा इस प्रकार वर्णित है—एक बार एक साधु उनके आश्रम में आया, उसने उन्हें गाली दी और उन्होंने उसे हर बार क्षमा दान दी। जोगजीत जी ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

एक दिन एक मुगल जु पासा। बैठे करत जु बचन बिलासा॥
सुनि आधीन साधु इक आयो। गारी देतो मुख बतरायो॥
मारूँ सोटा पाँच घुमायो। उठे चरणदास प्रणाम करायो॥
महाराज जब निकटे आये। भग बाहर को जाय छिपाये॥
फिर गारी दई आय, चरणदास परणम करी।
पुनि आवे भग जाय, सात बार ऐसे करी॥

× × × ×

तब साधू चरणों ही परायो। धन्य धन्य कहि अति हरषायो॥[2]

उनके १०९ प्रमुख शिष्यों में से प्रायः सबके साथ उनके चमत्कारों की गाथाएँ संपृक्त हैं। इन चमत्कारिक चरित्रों का सांकेतिक उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है। ऐसे सभी चरित्रों का वर्णन यहाँ सम्भव भी नहीं है। उनका सारा जीवन ही चमत्कारमय था। उनके रहन-सहन और आचरण में सामान्य दृष्टि से अनेक विरोधाभासों को पाकर उनके सम्बन्ध में उनके समकालीन बहुत से लोग श्रद्धापूर्ण आश्चर्य से चमत्कृत होते रहते थे। उनका अलोकसामान्य व्यक्तित्व अत्यन्त प्रेरणादायी रहा है। इसी से अनेक लोगों को उनके विषय में भ्रम हो जाता था और उनमें से कई व्यक्तियों ने तो उन्हें झूठा, छली, प्रपंची, जादूगर, समाज को बहकाने वाला और बहुरूपिया तक कह दिया। उदाहरण के रूप में काशी के उस पंडित जी की कथा यहाँ प्रस्तुत की जा सकती है, जो बैजनाथ धाम से कांवर लेकर दिल्ली आया था और अपने साथियों सहित 'अस्थल' में आ गया था। उसने चरणदास जी से तर्क-वितर्क आरम्भ किया और कुढ़कर उनसे कहने लगा—

कहा कि झूठा धरम तुम्हारा। तुमने बहकाया संसारा॥

परन्तु चरणदास जी इस आरोप से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने उन ब्राह्मणों को पेड़ों का भोजन कराया और आराम से सोने के लिए उनकी

---

१. जहँ तहँ साधु पुकारिया, धन्य धन्य चरणदास।
साँचा यह अवतार है, रंच क्रोध नहि पास॥
—लीलासागर : पृ० २५१।

२. वही : पृ० २५२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था की। रात्रि में स्वयं बाबा बैजनाथ ने स्वप्न में प्रत्यक्ष होकर बताया कि चरणदास उन्हीं के स्वरूप हैं। अतः प्रातः उन लोगों ने उनका श्रद्धापूर्वक दर्शन-पूजन किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

चरणदास जी के शिष्यों ने उनकी क्षमाशीलता, विनम्रता और परदुःख-कातरता के अनेक उदाहरण अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किये हैं। इस प्रसंग में फागुण नामक द्विज, एक ब्राह्मण सिपाही, तीन साधु (जिनका अलग-अलग वृत्त दिया गया है), दो ब्राह्मण याचक और इसी प्रकार के अनेक उद्धत और गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग करने वाले लोगों की कथाएँ 'लीलासागर' और 'गुरुभक्तिप्रकाश' में मिलती हैं। इन सबने आरम्भ में चरणदास जी की उत्तेजक भाषा में निन्दा की थी, उन्हें गाली दी थी और इनमें से कई ने तो बेंत भी फटकार दिया था, परन्तु चरणदास जी ने उनका कोई प्रतिवाद तो किया ही नहीं प्रत्युत अपने विनम्र व्यवहार तथा आतिथ्य-सत्कार से पराभूत करके उन्हें नत-मस्तक कर दिया। इन विशेषताओं से संवलित श्री चरणदास एक सद्गुरु के रूप में सर्वथा उपयुक्त थे।[1] गालियों और कटूक्तियों द्वारा चरणदास जी को विचलित करने के प्रयास में विफल होने वाले अधिकांश व्यक्तियों को अंततः यह स्वीकार करना पड़ा—

> बहु नामी हम साधू हेरा। यों ही उनसे किया बखेरा।
> कुटिल बचन कोइ नाहिं सहाये। दी गारी अरु मारन धाये॥
> सो सतगुरु अब आस पुजाई। शरन परे लीजे अपनाई॥[2]

चरणदासजी—एक अवतारी शक्ति के रूप में—

मध्यकालीन साधना-सम्प्रदायों एवं पंथों के अनुयायियों में एक बात प्रायः व्यापक रूप से देखी जाती है कि अपने पंथ-प्रवर्त्तकों या संप्रदाय के आदि गुरुओं को अवतार सिद्ध करने की उनमें होड़ सी लगी हुई प्रतीत होती है। अतः शुक सम्प्रदाय (चरणदासी संप्रदाय) के विषय में भी यह कोई नई बात नहीं है। वेदव्यास, नारद, पाराशर, शुकदेव, याज्ञवल्क्य, शंकराचार्य, स्वामी रामानुज, मध्वादि आचार्यचतुष्टय, कबीर, नानक, तुलसीदास, संत तुलसीसाहब (हाथरस वाले) आदि की भाँति संत चरणदास भी अपने अनुयायियों के बीच अवतारी पुरुष माने गये हैं। इन्हें श्रीकृष्ण का अवतार माना गया है। उनके

---

१. काटन, खोदन, लीप, सिंच, भूमि वृक्ष सम जानि।
असतुति गारी सम गिनें, सो गुरु करे पिछानि॥
—लीलासागर : पृ० २५३।

२. वही : पृ० २५४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवत्व को सिद्ध करने के लिए उनकी जीवन गाथा में नागरीदास वैष्णव को दिल्ली में ही जगन्नाथ जी के दर्शन कराना, दो ब्राह्मणों को आश्रम में ही बैजनाथ जी के दर्शन करा देना, परमानंददास नामक राधावल्लभीय वैष्णव को श्रीकृष्ण के रूप में प्रत्यक्ष दर्शन देना; स्वामी रामरूप, जोगजीत, गुरुछौना जी, माता कुंजो देवी एवं जैकरन वैश्य को अपनी चमत्कारिक शक्ति से निज वृन्दावन धाम में श्यामा-श्याम के तथा उनके रास-विलास के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त कराना, अपने भक्तों को स्वर्ग-प्रवाही गंगाजल से स्नान कराना आदि अनेक अलौकिक एवं चमत्कारिक घटनाओं को जोड़ दिया गया है। सम्भव है, इनमें से कुछ यथार्थ भी हों पर कुछ का वर्णन तो काव्यरूढ़ि-परम्परा में ही प्रतीत होता है।

आगरा में जमुना में डूबती नाव को वहीं प्रकट होकर बचा लेना, दिल्ली के निगम बोध घाट पर जमुना में स्नान करते समय ग्राह द्वारा पकड़ लिये जाने पर ग्राह को गुप्ती से मारकर अपने शिष्य मुक्तानन्द की रक्षा करना, दिल्ली-निवासी ढूसरवंशीय आत्माराम (जिसे स्वर्ग-नर्क में विश्वास नहीं था) को उसके आग्रह पर नर्क के दर्शन करा देना, नादिरशाह के आगमन की भविष्यवाणी छः माह पूर्व ही कर देना, अपने चमत्कारों से नादिरशाह को चमत्कृत करना, पुत्र-विहीन एक खत्री परिवार की ३ माह की दो लड़कियों को लड़कों के रूप में परिवर्तित कर देना, अनेक योगियों, तान्त्रिकों-मांत्रिकों, तर्ककर्कश पंडितों, आक्रामक मुसलमानों आदि को सिद्धि-बल से पराभूत कर देना और अपने सेवकों तथा स्मरण करने वालों को हर प्रकार की आपत्ति से बचाकर उन्हें सन्मार्ग पर लगाना आदि उनके असंख्य ऐसे कार्य सांप्रदायिक साहित्य में उल्लिखित हैं, जो उन्हें एक अवतारी महापुरुष सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। चूँकि इनमें से अधिकांश घटनाएँ उनके समकालीन शिष्यों और उनके प्रति आदर भाव रखने वाले लोगों द्वारा वर्णित हैं, अतः सहसा उनमें अविश्वास करने का भी कोई कारण नहीं है। श्री रामरूप जी तो उनको प्रत्यक्ष अवतारी घोषित करते हुए कहते हैं—

> कुंजो लख सम देवकी, चरणदास हरि अंस।
> भक्ति फैलावन आइया, शोभन जी के बंस।।[1]

मानव प्राणियों के अतिरिक्त हिंस्र पशुओं और हाथी-घोड़े जैसे बली पशुओं पर भी चरणदास जी का समान रूप से प्रभाव सिद्ध करने वाले वृत्त उनके अलौकिकत्व को विश्वसनीयता के साथ प्रमाणित करने वाले हैं। दिल्ली के उमराव मुसब्बी खाँ के एक मदमत्त, अनियन्त्रित एवं जनता के लिए संत्रासकारी हाथी द्वारा उनके अस्थल में आकर उनका चरणस्पर्श करना, गुरुछौना जी के घोड़े द्वारा राम-राम

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १९४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उच्चारण करना, बाल्यावस्था में प्रथम दिल्ली यात्रा के समय एक सिंह द्वारा आकर उनका चरणस्पर्श करना और कुछ देर बाद प्राणत्याग करना, गंगास्नान के लिए की गयी शिष्यमण्डली सहित यात्रा में एक भयंकर सिंह को दीक्षा देना, कई बार अपने शिष्यों की रक्षा उन्मत्त साँड़ों, शूकरों, सर्पों, दुष्टजनों, राजपुरुषों, रोगों, तथा आधि-व्याधियों आदि से करना उनके इसी कोटि के कार्य हैं। इतना ही नहीं बल्कि उनके शिष्यों तक ने उनकी कृपा की याचना करके और उनसे प्राप्त सहायता के बल से अनेक चमत्कारोत्पादक कार्य कर दिखाया। जोगजीत जी तथा कई अन्य शिष्यों ने अवर्षण से हाहाकार करती प्रजा की रक्षा सिद्धिबल से वर्षा कराकर की थी तथा मृत बालकों, नर-नारियों, गाय और भैंस के बच्चों आदि को जीवित कर भारी यश का अर्जन किया था। सहसा आश्रम में पहुँचे और बुभुक्षित १० हजार नागा साधुओं को क्षण मात्र में भोजन करा देने की व्यवस्था मानवीय कार्य नहीं है।

शुक सम्प्रदाय के साहित्य में वर्णित चरणदास जी के जीवन वृत्त से यह भली-भाँति पता चलता है कि उन्होंने कई रंकों को अमीर और कई अमीरों को रंक बना दिया। महाराज ईश्वरीसिंह (जयपुर नरेश) और दिल्ली के बादशाह अलीगौहर इन्हीं के आशीर्वाद से गद्दी प्राप्त कर उनके आजीवन कृतज्ञ बने रहे। अनेक बार उन्होंने सामूहिक लोकोपकार के कार्य किये और जीवन भर दाता बने रहे। उन्होंने योगी, संन्यासी, वैष्णव साधु, फकीर, राजा, नापित (नाई) और मजदूर बनकर इन सबके जीवन के साक्षात् अनुभवों को प्राप्त किया। राजा और रंक दोनों के सुख-दुखों से वे भली भाँति परिचित थे। जनसाधारण, सांप्रदायिक साधुओं, तथा कठमुल्लों, ईर्ष्यालु अमीर-उमरावों, सलाहकारों-मंत्रियों, पशु-पक्षियों, योगियों-नागाओं-सिद्धों, चोरों, डाकुओं, बटमारों और समाज तथा व्यक्ति के व्यक्तिगत तथा सामूहिक शत्रुओं आदि सबके द्वारा समय-समय पर अपने विरुद्ध हुए उपद्रवों और आक्रमणों का उन्होंने सहज में ही निवारण कर दिया। इतना ही नहीं बल्कि उनके क्षमाशील, विनम्र और परोपकारी स्वभाव वाले व्यक्तित्व के समक्ष इन सबको नतमस्तक होना पड़ा। चरणदास जी की इन्हीं विशेषताओं ने उन्हें एक दिव्य पुरुष की कोटि में ला दिया था। यही कारण है कि जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह के यहाँ जब उनका उल्लेख आया तो उन्हें 'अवतार' कहकर उनका स्मरण किया गया।[1]

---

१. तेहि आगे चरचा चली, भरी सभा दरबार में।
चरणदास अवतार हैं, परगट अब संसार में॥
वेदव्यास के पुत्र, मिले शुकदेव सु ज्ञानी।
तिनके शिष्य जु भये, कहत हैं अनभै बानी॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने क्रोध, लोभ, प्रतिकार, विरोध, अविश्वास आदि को अपने निकट कभी भी फटकने नहीं दिया। वे सदैव अदीन, अयाचक, उन्मुक्त दाता, अपरिग्रही, असंग्रही और संयत बने रहे। उनके अपरिमित गुणों से पराभूत होकर तत्कालीन समाज के सभी प्रकार के समाज-विरोधी और धर्म-विरोधी तत्व उनके समक्ष घुटने टेकने को बाध्य हुए तथा सभी वर्ग के संस्कारी व्यक्ति उनसे प्रभावित एवं लाभान्वित हुए। उनके इन्हीं गुणों को उनके अवतारी होने के मूल में कारणभूत समझना चाहिए।

सन्त चरणदास के इसी महनीय रूप को ध्यान में रखते हुए उनके शिष्य बल्लभदास जी के प्रशिष्य (ब्रह्मदास जी के शिष्य) तथा लोकरी की गद्दी के महंत मलूकदास जी का यह कथन उनके विषय में सटीक और उपयुक्त है—

चरनदास चेतन पुरुष, बहुत चिताये जीव।
जनम जनम के बीछड़े, आनि मिलाये पीव॥
आनि मिलाये पीव, राह भूली दिखलाई।
ज्ञान ध्यान दे भक्ति, जोग की राह सिखाई॥
ब्रह्म सूं हो अवतार, उन किया भक्ति परकास।
बहुत जीव मुक्ता किये, ऐसे श्री चरणदास॥[1]

यही बात प्रकारान्तर से गोस्वामी जुगतानन्द के शिष्य श्री नवनदास भी कह रहे हैं—

कलियुग में परगट भये, रनजीता औतार।
तिमिर मध्य ज्यों रवि उदय, भक्ति करी विस्तार॥[2]

यह एक सर्वविदित भारतीय मान्यता है कि जब-जब इस देश में धर्म पर आपत्ति आयी है और जनता दुष्ट शक्तियों द्वारा पीड़ित की गयी है, उसकी आर्त्त पुकार पर कोई-न-कोई दैवी शक्ति अवतरित हुई है। इस तथ्य की पुष्टि जोगजीत जी ने स्वयं श्री शुकदेव मुनि से करायी है। यहाँ श्री शुकदेवमुनि अपने शिष्य श्याम-चरणदास को कृष्ण भगवान् का अवतार होने की याद दिलाते हुए कह रहे हैं—

पतित जीव उद्धारन काजे। भव सागर में आप विराजे॥
भक्ति बिगड़ती जबै निहारो। आन सँवारो धरि अवतारो॥
ऐसी बहुत बार तुम कीनों। भक्ति सँवारन को व्रत लीनो॥[3]

चेले कई हजार, जगत में सुयश छयो है।
चरणदास को नाम, चहूँ दिसि प्रगट भयो है॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २१०।

१. सर्व अंग सार गुटका (हस्तलिखित) बानी सं० ५।
२. नवनप्रकाश। छंद सं० ४ (हस्तलिखित)।
३. लीलासागर : पृ० ८७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री चरणदास एक अवतारी पुरुष हैं, इस बात को 'लीलासागर', 'गुरुभक्ति-प्रकाश', 'भक्त बावनी' (जसराम उपगारी कृत) तथा चरणदास जी के अनेक शिष्य-प्रशिष्य काव्य-रचयिताओं ने बार-बार कहा है। 'लीलासागर' और 'गुरु-भक्तिप्रकाश' में सन्त चरणदास के गुरु श्री शुकमुनि, उनके आराध्य श्रीकृष्ण जी और अनेक महापुरुषों द्वारा अनेक प्रसंगों में यह कहलाया गया है कि श्री रणजीत (श्री चरणदास) कृष्ण के साक्षात् अंशावतार हैं। रामरूप जी श्री शुकदेव जी के मुख से कहलाते हैं—

...ऐसा कहकर शीश नवाया। फिर तब ही बोले ऋषिराया ॥
कही कृष्ण अंश तुम, लिया भक्ति अवतार।
जीव उबारन आइया, ऐसे बहुतक बार ॥
जब जब पाप बढ़े जग माहीं। भक्ति बिगड़ और हो जाहीं ॥
तब तब तुम धरि धरि औतारा। भक्ति बीज को आनि सँवारा ॥[1]

संत चरणदास जी के वरिष्ठ शिष्य रामरूप जी ने स्वानुभव के आधार पर उन्हें 'ब्रह्मरूप' तक घोषित किया है।[2] स्वयं श्री कृष्ण भगवान् ने भी सेवाकुंज (वृन्दावन) में उन्हें दर्शन देने के पश्चात् उनके मनुष्य रूप में और विशेषतः साधु वेश में इस जगत् में अवतरित होने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है—

परमारथ के कारणे, करने को उपदेश।
भक्ति जगावन को दिया, तुम्हें साधु का वेश ॥
योग ध्यान को छाँड़ि कर, नवधा भक्ति सँभार।
यही करो अस्थापना, यही धारणा धार ॥[3]

चरणदासजी की क्रोधहीनता और विनम्रता उनके देवत्व-सिद्धि में अधिक सहायक हैं। उनके वरिष्ठ शिष्य रामरूप जी उनके सम्बन्ध में अवतार-कल्पना का मूलाधार इन्हीं गुणों को बता रहे हैं—

सभी जगत नर यों कहें, चरणदास अवतार।
जिनके गुस्सा गर्व ना, निर्मल सीतल बार ॥[4]

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ५०।

२. ब्रह्मरूप ही हो गये, ज्ञान दशा लई धारि।
जिनकी देही नूर की, कौन सकै तिन मारि ॥
—वही : पृ० १६२।

३. वही : पृ० ९५।

४. वही : पृ० २२०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजोबाई जी ने उन्हें संसार-सागर के केवट रूप में बताया है।[1] साथ ही उनकी उन विशेषताओं की उन्होंने प्रशंसा की है, जिनके फलस्वरूप अपने निकट आने वाले हर व्यक्ति को वे पारस, दीपक, चंदन तथा भृंग के समान समुन्नत, दीप्त, निर्दोष और आत्मरूप बना देते थे। उनकी मान्यता है कि सद्गुरु चरणदास जी की अन्तर्दृष्टि अद्भुत शक्तिसमन्वित है; फलतः अपने सम्पर्क में आने वाले की पात्रता और विशेषताओं आदि से वे बिना बताये ही परिचित हो जाते हैं। उनका यह अन्तर्यामित्व बड़ा ही लोकमंगलकारी है।[2]

उन्होंने कलियुग में सतयुग का विस्तार किया। इस मान्यता की पुष्टि जोगजीत जी भी इस प्रकार कर रहे हैं—

कलियुग केरे बीच में, सतयुग तुम विस्तार।
भृगुकुल में यौं दिपत है, चंद जु गगन मँझार॥[3]

चरणदास जी के जीवनवृत्त से हमें यह भी पता चलता है कि कई विष्णु-विग्रहों यथा वैद्यनाथ धाम के वैद्यनाथ भगवान्, जगन्नाथपुरी के जगन्नाथ जी तथा स्वयं कृष्ण भगवान् ने उन्हें यथावसर अपना प्रतिरूप बताया था। उनके शिष्य उनको भक्ति-जहाज के रूप में मानते थे तथा उनके चरित्रगान को मुक्ति-दाता समझते थे।[4]

---

१. ज्ञानयोग की नौका कीनी। चरणदास केवट को दीनी॥
बहुतक पापी जीव चढ़ाये। भवसागर से पार लगाये॥
अमृत बचन बोलि बैठावें। नर नारी लौं पतित तिरावैं॥
कलियुग में सतयुग विस्तारा। राम भक्ति का खोल दुवारा॥
सुन सुन के जिज्ञासु जो आवैं। उनके सब सन्देह मिटावैं॥
—सहजप्रकाश : पृ० ३।

२. लोहे को पारस ही लागे। कंचन करे बेर नहिं ताके॥
बिना लोभ दीपक सिख परसे। ह्वै दीपक तिनहूँ कूँ दरसै॥
सिख पलास चंदन करि डारे। मलयागिरि हो कारज सारे॥
कीट समान शिष्य जो आवे। भृंगी गुरु निज रूप बनावे॥
\+ \+ \+
ज्ञान भक्ति अरु योग का, घट लेवें पहिचान।
जैसी जाकी बुद्धि है, वैसा देवें ज्ञान॥—वही : पृ० ६-७।

३. लीलासागर : पृ० ३५०।

४. चरणदास महाराज, भयो अवतार कलू महीं।
तिन चरित्र सुखसाज, गावे सो लहे मुक्ति सुभ॥—वही : पृ० २३७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदासी सम्प्रदाय में यह मान्यता प्रायः सर्वस्वीकृत है कि चरणदास जी के पूर्वज श्री शोभन जी एक तपस्वी व्यक्ति थे और उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् श्री कृष्ण ने उन्हें वरदान देते हुए कहा था—

प्रसन्न होइ बोले गोपाला । भक्ति दई कुल कियौ निहाला ।।
तो कुल माहीं भक्ति चलेगी । अठवीं पीढ़ी जाय फलेगी ।।
लेऊँ अंश अवतार तहाँ ही । भक्त रूप धर आऊँ यहाँ ही ।।
भवन तिहारे मैं ही आऊँ । कलियुग माहीं भक्ति चलाऊँ ।।[1]

अतः स्पष्ट है कि अपने इस वचन का पालन करने के लिए ही श्रीकृष्णचंद्र ने रणजीत के रूप में अवतार धारण किया । उन्हें अवतारी मानकर ही चरणदास जी के शिष्यों और शिष्यों की परम्पराओं के महात्माओं ने उनके जन्म से देह-त्याग तक उनका लीलागान एक अवतारी महापुरुष के रूप में ही किया है । उनकी बाल-लीला का जो भी वर्णन इस सम्प्रदाय के साहित्य में मिलता है, वह उनके अलौकिक चरित्रों का ही उद्घाटन है । उन्हें सामान्य बालक मानकर उनके बाल सुलभ क्रीड़ाओं का उसमें वर्णन उपलब्ध नहीं होता । जन्म से ही उनका चरित्र चमत्कारों से पूर्ण चित्रित किया गया है । किशोरावस्था में उनका योग-साधक रूप अत्यन्त महनीय है । जब त्रिकालदर्शी मुनि श्री शुकदेव ही बार-बार यह घोषणा कर रहे हों, तो फिर अन्यथा कुछ सोचने का औचित्य क्या है—

"भवसागर के खेवट ह्वै हौ । बहु जग जीवन पार लगैहौ ।।
जाको मंतर देहुगे, सो पारायण होय ।
जन्म मरण वाके मिटे, यामें संश न कोय ।।"[2]

चरणदास जी के समकालीन अन्य सम्प्रदायों के महात्मागण—

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इनमें धार्मिक या साम्प्रदायिक संकीर्णता का नितान्त अभाव था । इनके प्रारम्भिक शिक्षकों में ब्राह्मण और मुल्ला दोनों थे । उन्होंने पुराण और कुरान—दोनों का समान आदरभाव से अध्ययन किया था । उनके आश्रम का द्वार हिन्दू, और मुसलमान दोनों के लिए खुला था । सभी संप्रदायों के साधु और गृहस्थ उनके दर्शन, सत्संग तथा आशीर्वाद से लाभान्वित होते थे । उनके समसामयिक ऐसे महात्मा जो उनके सम्पर्क में आये थे, उनमें से कुछेक ज्ञात नाम इस प्रकार हैं—

(१) बाबा मस्तनाथ-(नाथपंथी, अस्थल—भोर, जिला—रोहतक, रोहतक स्टेशन के पास) ।

---

१. लीलासागर : पृ० १० ।
२. वही : पृ० २३ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) गुमानीदास–(नाथपंथी, दुवाल, जिला–रोहतक)।

(३) महात्मा शंकरदास–(मेरठ, अनेक ग्रन्थों के रचयिता)।

(४) शीतलदास जी–बेनामी संप्रदाय के साधु, कहते हैं कि इन्हें भगवान् के दर्शन हुए थे; स्थान-अलवर)।

(५) भैरोदास–('भक्तमाल' नामक ग्रन्थ के रचयिता, स्थान—अंबाला)।

(६) नारायण स्वामी (वृन्दावन, ये आयु में चरणदास जी से छोटे थे)।

(७) शाह फखरुद्दीन–(फकीर, दिल्ली) ये चरणदास जी के इतने गहरे मित्र थे कि उनकी चिर समाधि का समाचार पाकर उन्होंने स्वयं भी समाधि ले ली थी।

(८) शाह वलीअल्ला मोहद्दस देहलवी–(इन्होंने कुरान का फारसी में तर्जुमा किया था। इनके बेटे शाह अब्दुल अजीज ने कुरान का उर्दू में तर्जुमा किया और देवबन्द में पाठशाला कायम किया)।

(९) हजरत मुहम्मद युनीस-(तिजारा–अलवर) इन्होंने फारसी में तत्कालीन संतों का वृत्त लिखा था, जिसमें उन्होंने चरणदास जी की बड़ी प्रशंसा की थी।

(१०) गरीबदास जी–(रोहतक, गरीबदासी संप्रदाय के प्रवर्त्तक)।

स्वर्गवास की पूर्व सूचना—

संत चरणदास जी के परलोकवास के समय के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। उन्होंने दो ऐसे शिष्यों को अपना और अपने शिष्यों का वृत्त लिखने के लिए नियोजित कर दिया था जो उनके परम विश्वस्त, प्रबुद्ध तथा प्रिय थे। श्री चरणदास का जीवन-परिचय देने में इन दोनों ने प्रायः एक-दूसरे का अनुकरण किया है और तथ्यों के सम्बन्ध में उनमें कोई भी मतान्तर नहीं है। अस्तु, स्वर्गवास के संबंध में भी किसी तर्क-वितर्क को स्थान नहीं है। चरणदास के तीनों शिष्यों–श्री रामरूप, जसराम उपकारी और जोगजीत ने अपने चरित काव्यों (क्रमशः 'गुरुभक्ति-प्रकाश', 'भक्तबावनी' और 'लीलासागर') में एतत्सम्बन्धी जो एक समान तथ्य दिये हैं, उसके अनुसार चरणदास जी ने अपने परलोकवास के १२ वर्ष पूर्व ही अपनी इहलीलात्याग-तिथि से इन तीनों सहित कुछ अन्य शिष्यों को अवगत करा दिया था।

इससे संबद्ध वृत्त के अनुसार आश्विन सुदी ८, बुधवार, सं० १८१८ वि० को शिष्यों के समक्ष ही एक काला नाग निकला और भक्तराज (चरणदास) की तीन परिक्रमा करके चुपचाप स्थिर रहा। फिर चरणदास जी से कुछ संकेत पाकर चला गया। श्री रामरूप तथा वहाँ उपस्थित विशिष्ट शिष्यों की जिज्ञासा पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी ने एकान्त में यह रहस्योद्घाटन किया कि वह एक देवदूत था, जो यह सन्देश देने आया था कि अब मुझे इस संसार में १२ वर्ष तक और रहना है।[1] उस समय उनकी आयु ६८ वर्ष के लगभग थी।

श्री चरणदास ने पुनः शिष्यों को मृत्युकाल के लगभग एक वर्ष पूर्व, तीन माह पूर्व और दो दिन पूर्व अपने देहत्याग के संबंध में पूर्वसूचना दी थी। सं० १८३९ वि० के भाद्रपद शुक्लपक्ष में जब से वे अपनी आयु के ८०वें वर्ष में प्रविष्ट हुए थे, तभी से अपना समय ध्यान में ही काटने लगे थे और बोलते भी बहुत कम थे।[2] स्वामी रामरूप के पूछने पर कि आप किस प्रकार प्राणत्याग करेंगे—चरणदास जी ने उन्हें बताया था—

हमको शक्ति अनन्त, सोई तुम आँखों देखी।
धारे रूप अनेक, किये परकाज विशेखी॥
चाहूँ होउँ अलोप, फेर ह्याँ दृष्टि न आऊँ।
चाहूँ देह समेत, नूर में नूर समाऊँ॥
मोहिं शक्ति उड़ जान की, पै अब ऐसे ना करूँ।
तन त्यागूँ सब देखते, योग सिद्ध कारज सरूँ॥

× × ×

सोई अब मैं करूँगो, मर्यादा की रीति।
दसवाँ द्वारा छेद कर, जैहों निज पुर मीत॥[3]

जिस समय रामरूप जी ने चरणदास जी से उपर्युक्त जिज्ञासा की थी, उस समय चरणदास जी का जीवन मात्र दो दिन और शेष था। इसकी सूचना उन्होंने स्वयं इस प्रकार दी—

दो दिन बीते जायँगे, परम धाम को तात।
दशम द्वार की गैल हो, चार घड़ी रहे रात॥

---

१. भक्तिराज ऐसे कही, तू मत कहियो काहि।
परमेश्वर का दूत था, गया जु मोहि चिताहि॥
बारह बरस मैं और हूँ, मृत्यु लोक के माँहि।
फिर जैहों ईश्वर निकट, जग में रहना नाहिं।'
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २०६।

२. अस्सीवाँ संबत लगा, जब सों यह अस्थाप।
ध्यान माँहि बहुते रहें, थोड़ा बोलें आप॥ वही : पृ० २२०।

३. वही : पृ० २३३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरस उन्यासी ह्याँ रहे, और महीने तीन।
परमारथ हित तन धरा, अब ह्वैहौं हरि लीन ॥
भक्ति सुधारन आइया, सर्गुण को तनु धारि।
सो सब कारज कर चुके, जीवन को उपकारि ॥[1]

जीवन-लीला का पटाक्षेप और उसका काल-निर्धारण—

इस प्रकार हम देखते हैं कि ७९ वर्ष और ३ माह की आयु में सूर्य के उत्तरायण होने पर, मिती मार्गशीर्ष (अगहन) शुक्ल सप्तमी, बुधवार सं० १८३९ वि० को भक्तराज ने अपने ऐहिक शरीर का त्याग कर दिया। यद्यपि श्री चरणदास के महाप्रयाण-काल के संबंध में इतने स्पष्ट और विश्वसनीय प्रमाण हैं कि इसके विषय में मतभेद और तर्क-वितर्क को कोई स्थान नहीं होना चाहिए, परन्तु इस संबंध में किन्हीं कारणों से मतभेद वर्तमान है, इसमें दो राय नहीं। इस विमति के मूल में 'गुरुभक्तिप्रकाश' और 'लीलासागर' के रचयिताओं की कतिपय उक्तियाँ कारणभूत हैं। 'गुरुभक्तिप्रकाश' में स्वामी रामरूप जी ने लिख दिया है—

बरस उन्यासी ह्याँ रहे, और महीने तीन।
परमारथ हित तन धरा, अब ह्वैहूँ हरि लीन ॥[2]

यह भविष्यवाणी शरीर-त्याग के दो दिन पूर्व की है। अतः सामान्यतया इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि भाद्रपद शुक्ल तृतीया, सं० १७६० वि० (चरणदास जी का जन्म काल) में ७९ वर्ष ३ माह जोड़ देने से यह यह तिथि अगहन सुदी ३ सं० १८३९ वि० आती है। इसी आधार पर डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने विश्वस्त भाव से इसी को निधन-काल माना है।[3] उनके ग्रन्थ में सं० १८३९ वि० के स्थान पर सं० १८३८ वि० ही छपा है, जो सम्भवतः प्रेस की भूल है।

जोगजीत जी ने इस तिथि का निर्देश इस प्रकार किया है—

"लगते अगहन निश्चय जानो। त्यागें तन दिल्ली अस्थानो ॥"[4]

इस कथन से तिथि का संकेत नहीं मिलता। केवल इतना ही पता चलता है कि अगहन मास की आरम्भिक तिथियों में चरणदास जी का स्वर्गवास हुआ था।

अतः इन्हीं दोनों उक्तियों की अपने ढंग से संगति बैठाते हुए सुश्री सहजोबाई जी की दिल्लीस्थित प्रधान गद्दी के स्वर्गीय महन्त गंगादासजीने 'श्यामचरणदास

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २३३।
२. वही।
३. संत चरणदास : पृ० ७२।
४. लीलासागर : पृ० ३४०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरितावली' नामक अपने काव्यात्मक चरित्र ग्रन्थ के पृ० १७५ पर श्री चरणदास जी की निधन-तिथि इस प्रकार दी है—

था अट्ठारह सै उन्तालिस, विक्रम संवत् अरु बुध का दिन ।
मगसर शुक्ला सातें तिथि थी, निज धाम पधारे जीवन धन ।।

इन्हीं के कथन को प्रमाण मानकर भार्गव समाज चरणदास जी का निधन-दिवस अगहन शुक्ल सप्तमी के दिन ही मनाता है । अब प्रश्न यह उठता है कि महंत जी की इस मान्यता का आधार क्या है ? सम्भवतः उन्होंने जोगजीत जी के कथन के इस अंश—'लगते अगहन निश्चय जानो'—के आधार पर यह तिथि निश्चित की हो । कई स्थानों पर महीने का आरम्भ शुक्ल पक्ष से माना जाता है । परन्तु 'लगते' का अर्थ सप्तमी ही है, यह कैसे मान लिया गया ?

संक्षेप में कहा जा सकता है कि चरणदास जी की इहलीला अगहन बदी सप्तमी को पूर्ण हुई थी । इसके समर्थन में जोगजीत जी द्वारा उल्लिखित इस अंश को उद्धृत किया जा सकता है—

"संवत् १८३९, शाके १७०४, मिती मार्गशीर्ष वदी सप्तमी बुधवार घटिका २० पल ५२ मघा नक्षत्र, घटिका २०, पल ५२ श्री सूर्योदय समये ब्राह्म मुहूर्ते तुला लग्न वर्तमाने श्री स्वामी श्यामचरणदास जी महाराज सर्वशुभ योगबल दशवें द्वारे ह्वै अमरलोक पधारे ।।" इस आधार पर पंचांग से संपुष्टि कराने पर यह तिथि अगहन बदी सप्तमी को ही आती है । अतः इसमें विवाद नहीं होना चाहिए ।

देह-त्याग के पूर्व ही उन्होंने श्री जोगजीत और रामरूप जी सहित अन्य शिष्यों को आदेश दिया था कि मैं जिस आसन से प्राण-त्याग करूँ, उसे उसी प्रकार दग्ध करना और उसके पूर्व विमान पर उसी प्रकार रखकर शवयात्रा निकालना । उनके जीवन के अन्तिम क्षणों का वृत्त जोगजीत जी के शब्दों में द्रष्टव्य है—

दो तिथि बीत तीसरी आई । आसन भुवि के मध्य सजाई ।।
कर संयम तापर बैठाये । दृढ़ कर आसन पद्म लगाये ।।
सबसों कही मत पास रहावो । शब्द सुनो तब मो ढिग आवो ।।
घड़ी चार जब रैन रहाई । दशम द्वार फट् शब्द कराई ।।
बाजे अनहद बजे घनेरे । सुन सुन साधु जु आये नेरे ।।
जै जै जै जैकार सुनायो । लखि मस्तक लहि देह तजायो ।।

अन्तिम दर्शन—

चूंकि अपने स्वर्गवास का समय उन्होंने पहले ही बता दिया था, इसलिए उनके देहत्याग के पूर्व ही उनके अधिकांश शिष्य और सेवक दूर-दूर से आकर

१. लीलासागर : पृ० ३५४ ।
२. वही : पृ० ३४५-४६ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुकदेवपुरा (दिल्ली) स्थित गुरुद्वारे में एकत्रित हो गये थे।[1] भक्तराज चरणदास जी के परमधाम पधारने का समाचार बिजली की भाँति सारे नगर में फैल गया। सभी वर्ग के लोग आश्रम में उमड़ पड़े। उस समय का वर्णन 'लीलासागर' में इस प्रकार है—

योगी संन्यासी बैरागी। सुन सुन आये बहु अनुरागी॥
पातशा पठाये बहुते साजा। गज निसांण पल्टन सह बाजा॥
छोटे-बड़े मुसद्दी आये। महाराज के नेह पगाये॥
शेख सय्यद मुल्लाने केते। आये लिये मुहब्बत हेते॥
माल पहिराय फूल बरसावें। अतर गुलाब गन्ध छिरकावें॥[2]

निष्प्राण हो जाने पर भी शरीर की कांति ज्यों की त्यों थी। सामान्य लोगों को यह विश्वास ही नहीं होता था कि चरणदास जी जीवित नहीं हैं। लोग नाना प्रकार के ऐसे तर्क देते थे, मानों अभी वे जीवित ही हैं—

बहु कहें इनके बदन ललाई। मरती बार होवे पियराई॥
कोई कहे पलकें होंठ हिलावें। भाल पसीने बूंद परावें॥
ज्ञानवंत बहु यों कहें, जिन पर प्रभू दयाल।
तिनको मरा न जानिये, बरसे नूर जमाल॥[3]

उनकी शवयात्रा इतनी भव्य थी कि देखने वाले यह सोच ही नहीं सकते थे कि यह उनकी कोई उत्सवजनित यात्रा नहीं है। उनके जीवन काल में उनके लिए इतनी बड़ी भीड़ कभी नहीं इकट्ठी हुई थी। कोठों, छतों और सड़कों पर नर-नारियों का अपार सागर उमड़ रहा था। यहाँ तक कि बादशाह शाह आलम द्वितीय ने भी सलेमगढ़ से अन्तिम दर्शन प्राप्त किया।

जीवत न सो उन ठाठ निहारे। चरणदास जो मरती बारे॥
लाखों नर दर्शन को आये। वे जीवत किन्हि ना यों धाये॥
भीर को कोऊ अंत न पारा। कोठन पर और मध्य बजारा॥
चढ़ सलेमगढ़ ऊपर आये। बादशाह कर दर्श सिधाये॥
बादशाह के लोग जु धाये। दूर दूर दल लोग कराये॥[4]

---

१. तो भी सन्तन गुप्त सुनाई। सुन सुन साधु सेवक सिकराई।
महाराज के दर्शन हेता। उमड़े हृदय अरु होय विचेता॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ३४४।

२. लीलासागर : पृ० ३४७।

३. वही।

४. वही : पृ० ३४८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु के स्वर्गवासी हो जाने पर उनके विशाल शिष्य समुदाय की मनोदशा का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन रामरूप जी द्वारा इस प्रकार किया गया है--

लखि विछोह महाराज का, पीड़ा भई अपार।
साधु महाव्याकुल भये, तन मन अधिक उदास।
सकल जगत् रूखा लगे, हिय को गयो हुलास॥
कोई इक जग तजि बन को गये। कोई इक त्यागी नांगे भये॥
कोई इक उनमत भये उदासा। जग भोगन की जिन्हें न आसा॥
कोई इक लगे ध्यान के माहीं। जगत् फाँस में आवैं नाहीं॥
कोई इक करन लगे उपदेशा। भक्ति फैलाई देशों देशा॥
कोई इक उत्तर दिसि को जाई। गुफा बनाय समाधि लगाई॥
कोई इक प्रेमी विरह वियोगा। बौरे ज्यों डोले मन सोगा॥
रामरूप कोई अचक रहे सो। महाराज सुन धाम गये जो॥[1]

कहते हैं कि जब चिता में आग लगाई गई, एक बावली स्त्री कहीं से प्रकट होकर चिता की परिक्रमा करके उसमें कूद पड़ी। उस समय चरणदास जी के मृत शरीर में थोड़ी गति हुई, एक हाथ ऊपर उठा और एक लकड़ी के साथ वह स्त्री भी चिता के बाहर फेंक दी गई। गिरते ही वह पुनः उठकर दौड़ी परन्तु वहाँ उपस्थित साधुओं ने उसे पकड़ लिया। जिन लोगों ने यह लीला देखी वे धन्य धन्य कर उठे। कुछ लोगों के मन में यह जिज्ञासा होने लगी कि उस बावली को शव द्वारा चिता के बाहर क्यों और किसने फेंक दिया? वहाँ के कुछ लोगों ने ऐसे संदेहग्रस्त लोगों को बताया कि यदि यह चिता में जल कर मर जाती तो इससे चरणदास जी के सम्बन्ध में कोई अपवाद खड़ा हो सकता था। बहुत से लोग यह भी कहने लगते कि चरणदास स्वयं तो स्वर्गीय हुए ही, अपनी एक शिष्या को भी ले गये।[2] कुछ ही दिनों में अधजली बावली स्त्री वैद्यों द्वारा औषधि से चंगी कर दी गई और स्वस्थ तन-मन के साथ वह वृन्दावन में रहकर सिद्ध साध्वी के रूप में सम्मानित हुई।

स्वर्गीय चरणदास जी के दाह-संस्कार के १७वें दिन सत्रहवीं का भंडारा उनके शुकदेवपुरा (वर्तमान चरणदास मार्ग, मुहल्ला दस्सान–दिल्ली) स्थित अस्थल में वृहत् रूप में आयोजित हुआ। यह भंडारा तीन दिन तक सतत् चलता रहा। इस बीच जो भी वहाँ पहुँचा, उसे भोजन दिया गया। भंडारे के अन्तिम दिन उनका चोंगा, टोपी और चित्र उनकी गद्दी पर स्थापित किये गये।

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २३५।
२. लीलासागर : पृ० ३४९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संप्रदाय में ऐसी मान्यता चली आ रही है कि चरणदास जी ने अपने जीवन-काल में ही अपने शिष्यों को आदेश दिया था कि उनके स्थान का न तो कोई महंत बनेगा और न तो इसके लिए कोई जागीर ली जायगी। अतः इस स्थान में पूजा, उत्सव, मरम्मत और सफाई के लिए तीनों गद्दियों से समान स्तर पर खर्च किया जाता है और महीने में १० दिन प्रत्येक गद्दी से क्रमशः सेवा-पूजा की जाती है। पूजा के लिए अलग से एक पुजारी नियुक्त है।

श्री जसराम उपगारी की 'भक्तबावनी' के अनुसार चरणदास जी के स्वर्गारोहण के समय उनके शिष्यों-प्रशिष्यों की संख्या ५००० के लगभग थी।[1] इनमें से ५२ शिष्यों ने अपनी स्वतन्त्र गद्दियाँ स्थापित की थीं, जिन्हें बड़ी गद्दी या 'बड़ा थाँभा' की संज्ञा दी जाती है। इनके अतिरिक्त ५६ छोटी गद्दियाँ भी थीं। सब मिलाकर १०८ शिष्यों की माला बनती है। इनमें भी ३ आचार्य गद्दियाँ थीं—(१) गद्दी श्री रामरूप जी (२) गद्दी सुश्री सहजोबाई जी और (३) गद्दी श्री जुगतानंद जी। यह क्रम गद्दियों की स्थापना के कालक्रमानुसार है। यदि इनमें संस्थापकों की आयु की दृष्टि से इनका वरिष्ठता-क्रम निर्धारित करें तो वह इस प्रकार होगा—(१) गद्दी सुश्री सहजोबाई, (२) गद्दी श्री रामरूप जी और (३) गद्दी गोसाईं जुगतानंद जी। यह तीसरी गद्दी ही आगे चलकर सर्वप्रधान गद्दी मानी गई जब कि प्रचार-प्रसार की दृष्टि से रामरूप जी की गद्दी का विस्तार-क्षेत्र सर्वाधिक था।

संत चरणदास का साहित्य—

कवि-जीवन का आरम्भ और रचनाओं का क्रम—चरणदास जी का चमत्कारी व्यक्तित्व साधना-क्षेत्र के ही समान काव्य-सर्जन के क्षेत्र में भी अद्भुत् एवं अद्वितीय है। उनमें काव्य-प्रतिभा आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक ज्ञान के साथ ही जन्मजात थी। उनके जीवन वृत्त से यह भलीभाँति सिद्ध है कि बाल्यावस्था में उन्हें पढ़ाने के निमित्त किये गये सभी उपाय असफल हुये थे। नाना के यहाँ दिल्ली आने पर उन्हें शिक्षा पाने के उद्देश्य से जिस मौलवी के यहाँ भेजा गया वह भी उन्हें कुछ ही महीनों तक पढ़ा पाया। इस पृष्ठभूमि में जब उनके साहित्य का हम अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि उसमें सभी वेदों, उपनिषदों और शास्त्रों

---

१. भेष भया जब पाँच हजारा। एक दिना यों बचन उचारा॥
हम या जग सूँ भये उदासा। अब निज धाम करेंगे वासा॥
यह षटमास पहल यों भाषी। दोय दिना आगे पुनि आषी॥
—भक्तबावनी (पांडुलिपि) पत्र सं० २२३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ज्ञान समाहित है। उनकी रचनाओं के नामकरण और उनमें समाविष्ट सामग्री को देखते हुए कहना पड़ता है कि उनका साहित्य भारतीय तत्व-दर्शन का एक बृहत् कोष है। इतनी अधिक ज्ञानराशि का संचय और उसकी काव्याभिव्यक्ति आश्चर्यजनक है और चरणदास जी के स्वाध्याय एवं जन्म-जन्मान्तर के संस्कारगत संचित ज्ञान का परिणाम है।

१९ वर्ष की अवस्था तक तो वे गुरु की खोज में ही विकल थे। आरंभ में वे स्वानुभूति एवं अन्तःप्रेरणा से ही योग-साधना में तत्पर थे। सं० १७७९ वि० में व्यास मुनि के पुत्र एवं श्रीमद्भागवत के व्याख्याता अमर तथा चिर किशोर शुकदेव मुनि उन्हें गुरु रूप में मिले। उनसे चरणदास जी को कायाकल्पकारी ज्ञान की प्राप्ति हुई। उन्हें योग, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के संबंध में ज्ञानी गुरु द्वारा प्रत्यक्ष मार्गदर्शन तथा उपदेश-लाभ का अवसर मिला। फतेहपुरी की गुफा में एकांतवास के समय अष्टांग योगाभ्यास के साथ कविता भी प्रस्फुटित हुई। २१ वर्ष की अवस्था में उन्होंने स्फुट-रचना आरंभ की।

अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति 'भक्तिसागर' की रचना के पूर्वाभ्यास के रूप में उन्होंने लगभग १५ हजार बानियों की रचना की थी, जिसमें से उनके द्वारा पाँच हजार गुरु के नाम पर गंगा में प्रवाहित कर दी गईं और अन्य पाँच हजार अग्नि को समर्पित हो गईं। शेष पाँच हजार शिष्यों को प्राप्त हुईं। इस प्रकार २१ वर्ष की अवस्था में चैत्र पूर्णिमा, सोमवार, सं० १७८१ वि० से उनके काव्य-सर्जन की शुभ यात्रा आरंभ हुई। बानियों के निर्माण की प्रक्रिया के संबंध में स्वयं कवि का निम्न कथन ही यहाँ प्रमाण-रूप में उद्धृत कर देना उचित होगा—

संवत् सत्रह सै इक्यासी। चैत सुदी तिथि पूरणमासी॥
शुक्लपक्ष दिन सोमहिवारा। रचौं ग्रंथ यों कियो विचारा॥
तबहीं सूं अस्थापन धरिया। कछु क बानी वा दिन करिया॥
ऐसेहि पाँच हजार बनाई। नाम गुरू के गंग बहाई॥
फिर भई बानी पाँच हजारा। हरि के नाम अगिनि में जारा॥
तीजे गुरु आज्ञा सों कीन्हीं। सो अपने साधुन को दीन्हीं॥[1]

अब यह शोध का विषय है कि शेष पाँच हजार बानियों में किन-किन ग्रंथों का समावेश है? क्या साधुओं को देने का तात्पर्य यह तो नहीं कि वे बानियाँ शिष्यों को गुरु-मंत्र या गुरु-प्रसाद के रूप में दी गईं? 'भक्तबावनी' के रचयिता जसराम उपगारी ने चरणदास जी के शिष्यों की संख्या ५००० ही बताई है।

---

१. भक्तिसागर : पृ० ४७८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी की प्राप्त २१ रचनाओं में सर्वप्रथम रचना कौन है और अन्य कृतियों का रचनाक्रम क्या है, इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। अधिकांश विद्वानों के विचार से 'भक्तिसागर' का रचनाकाल सं० १७८१ वि० है। यदि इसे स्वीकार कर लें तो यह भी मानना उचित होगा कि यही उनकी प्रथम कृति है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि उस समय तक चरणदास जी की अवस्था २१ वर्ष की ही थी। पूर्व उद्धृत पंक्तियों से यह ध्वनित होता है कि उपलब्ध बानियों और ग्रंथों के पूर्व ही १० हजार बानियों को गंगा और अग्नि को समर्पित किया जा चुका था। इतनी बानियों के निर्माण में कम से कम ५ वर्ष तो लगे ही होंगे। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सं० १७८१ वि० में कवि ने किसी ग्रंथ की रचना नहीं की बल्कि विधिवत् ग्रंथ-लेखन आरंभ करने के पूर्व काव्यरचना का अभ्यास मात्र किया था। इतना अवश्य है चरणदास जी ने बानियों की रचना का विधिवत् शुभारंभ इस वर्ष कर दिया था। जैसा कि इन्होंने स्वयं प्रकारान्तर से सूचित किया है, उनकी आरंभिक बानियाँ उपलब्ध नहीं हैं। इसका कारण उनका जल में प्रवाहित किया जाना, अग्नि को समर्पित किया जाना और साधुओं को दे दिया जाना बताया गया है।

उनके जीवन-चरित्र से पता चलता है कि सं० १७७९ वि० (गुरुदीक्षा के उपरांत) से सं० १७८१ वि० तक उन्होंने गुफा में रहते हुए कठोर योग-साधना की थी। ३६ वर्ष की आयु (सं० १७९६ वि०) में उन्होंने वृंदावन की प्रथम यात्रा की थी। उस समय उन्हें श्रीकृष्ण के रास-परिकर-सहित रासलीला के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे और गुरु श्री शुकदेव मुनि के साथ भी उनकी विस्तार से ज्ञानगोष्ठी हुई थी। उसी समय गुरु से उन्हें भक्तिप्रचार, ज्ञानोपदेश और काव्यसर्जन आदि के संबंध में आदेश मिला था।[1] अतः अब उन्हें योग-साधना में रत न होकर समाजोद्धार के कार्यक्रम में लगना था। इसलिए बानी-रचना का विधिवत् आरंभ उसी समय से मानना चाहिए जब से वे अपने साधुओं को दी जानेवाली बानियों की रचना में प्रवृत्त हुए थे। जहाँ तक साधुओं को ५००० बानियाँ दे देने की बात है, इसको तर्कबुद्धि के स्थान पर गहन श्रद्धा के आधार पर ही स्वीकार किया जाता रहा है। यहां यह प्रश्न उठता है कि जो बानियाँ अपने साधुओं को चरणदास जी ने दीं, वे क्या हुईं? इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं है। परन्तु पाण्डुलिपियों और स्फुट बानियों की खोज के क्रम में मुझे जयपुर

---

१. फिर कही इन्द्रप्रस्थ कूं जाओ। सब जीवन कूं भक्ति बताओ॥
आठो सिद्धि नवो निधि डारो। केवल भक्ति बताओ धारो॥
—भक्तबानी : पत्र सं० २२२, दोहा सं० १०७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित 'श्री सरसनिकुञ्ज' के पुस्तकालय में चरणदास जी की अब तक अज्ञात 'पाण्डव यज्ञ लीला' नामक एक कृति मिली है, जिसमें ५०–६० छंदों का समावेश है।[1] इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि ऐसी कुछ बानियाँ और मिल सकती हैं। 'भक्तिसागर' के अन्त में प्रकाशित दो छंद श्री जगदीश जी राठौर की खोज हैं। अतः आशा की जा सकती है कि कालान्तर में ऐसी पर्याप्त बानियाँ प्रकाश में आ जायँगी। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चरणदास जी का कविजीवन सं० १७८१ वि० में आरम्भ हो गया था और सं० १७९७ वि० तक वह अपरिपक्वावस्था या प्रारम्भिक अवस्था में ही था। यद्यपि इस बीच १५ हजार बानियों की रचना हो चुकी थी परन्तु उनका प्रकाश में आना कवि को किन्हीं कारणों से इष्ट नहीं था। अतः ५ हजार बानियाँ गंगा को और ५ हजार अग्नि को अर्पित कर दी गईं। पाँच हजार अवशिष्ट बानियों में सम्भव है कि अब तक प्राप्त 'लीला' शीर्षक कतिपय ग्रन्थों का समावेश रहा हो। इनमें से कुछ प्राप्त भी हो सकती हैं, उनकी खोज की जानी चाहिए।

वृन्दावन से वापस आकर चरणदास जी परीक्षितपुरा और घास की मण्डी में रहे थे। सहजोबाई जी के पिता हरिप्रसाद जी के स्थान पर (परीक्षितपुरा में) उनके काव्य-सर्जन और धर्मप्रचार का कार्य विधिवत् होने लगा था। इस प्रकार हम देखते हैं कि सं० १७९७ वि० में ३७ वर्ष की अवस्था में उन्होंने ग्रन्थरचना आरम्भ की होगी। इस तथ्य की पुष्टि चरणदास जी के शिष्य उपगारी जसराम की कृति 'भक्तबावनी' से होती है। इसमें काव्यरचना का जो क्रम दिया हुआ है, वह भी उचित प्रतीत होता है। उपकारी जी के अनुसार वृन्दावन से वापस आकर उन्होंने सर्वप्रथम 'व्रजचरित्र' की रचना की थी। तत्सम्बन्धी उनका कथन इस प्रकार है—

भक्तराज दण्डवत करि धाया। ले आग्याँ दिल्ली में आया॥
पहाड़गंज में करि अस्थाना। बानी बृज चरित्र बखाना॥
दूजे अमृत लोक पुनि गाया। जो कछु देखा बरनि सुनाया॥
और ग्रन्थ बहु बिस्तरे, भक्ति जोग अरु ग्यान।
सर्व अंग बरनन करे, पढ़ि सुनि होय कल्यान॥[2]

चरणदास जी के प्रिय एवं 'भक्तबावनी' के कर्त्ता शिष्य श्री जसराम का यह कथन सर्वथा तर्कसंगत है और शुक सम्प्रदाय में मान्य भी है। इसके अनुसार चरणदास जी का सर्वप्रथम ग्रन्थ 'व्रज चरित्र' है और तदनन्तर द्वितीय कृति के रूप

---

१. 'पांडव यज्ञलीला' का परिचय आगे यथास्थान दिया जायगा।
२. भक्तबावनी : पत्र सं० २२२, बानी सं० ११०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में 'अमरलोक (अमृत लोक) अखण्ड धाम वर्णन' नामक ग्रन्थ है।[1] इन दोनों में वर्णित विषयों का साक्षात्कार उन्हें वृन्दावन की यात्रा में हो गया था। वहाँ उन्हें रासलीला और अमरलोक—दोनों के दर्शन गुरुकृपा से प्राप्त हुए थे। अतः स्वाभाविक है कि सद्यःप्राप्त ज्ञान और अनुभूति का चित्रण तत्काल करना उन्होंने उचित माना होगा। सम्भवतः इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए बीसवीं शताब्दी में श्री शुकसम्प्रदाय के पुनरुद्धारक के रूप में सम्मानित श्री सरसमाधुरीशरण ने तेजकुमार प्रेस—लखनऊ (सन् १९६६ ई०) से प्रकाशित 'भक्तिसागर' के संस्करण में चरणदास जी की रचनाओं का जो क्रम निर्धारित किया है, उसके अनुसार भी 'व्रजचरित वर्णन' और 'अमरलोक-अखण्डधाम वर्णन' क्रमशः प्रथम और द्वितीय स्थान पर हैं। उनके द्वारा निर्धारित क्रम युक्तिसंगत है और उसमें संशोधन की सम्भावना अधिक नहीं है। इसी पृष्ठभूमि में इन रचनाओं का क्रम, वर्ण्य विषय, रचनाकाल और काव्यगत वैशिष्ट्य का मात्र उल्लेखपरक परिचय प्रस्तुत करना यहाँ प्रमुख उद्देश्य है। स्वामी चरणदास जी की उपलब्ध रचनाओं का क्रम एवं उनकी संज्ञा इस प्रकार है—

(१) व्रजचरित्र वर्णन।
(२) अमरलोक अखण्डधाम वर्णन।
(३) धर्मजहाज वर्णन।
(४) अष्टांग योग वर्णन।
(५) योग सन्देह सागर वर्णन।
(६) ज्ञानस्वरोदय वर्णन।
(७) पंचोपनिषद् अथर्वणवेद भाषा।
(८) भक्तिपदार्थ वर्णन।
(९) भक्तिसागर वर्णन।
(१०) मनविरक्तकरण गुटकासार वर्णन।
(११) जागरण माहात्म्य वर्णन।
(१२) दानलीला वर्णन।
(१३) माखनचोरी लीला वर्णन।
(१४) कालीनथन लीला वर्णन।

---

१. श्री चरणदास ने 'भक्तिसागर' नामक ग्रन्थ को छोड़कर अन्य किसी भी ग्रन्थ में रचना-काल का संकेत नहीं किया है, अतः अन्य ग्रन्थों के रचना-काल के निर्धारण एवं उनके रचना-क्रम को निश्चित करने में कतिपय वहिर्साक्ष्यों का ही आधार ग्रहण करना एकमात्र विकल्प है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५) मटकी लीला वर्णन तथा विरह निवेदन ।
(१६) श्रीधर ब्राह्मण लीला वर्णन ।
(१७) कुरुक्षेत्र लीला वर्णन ।
(१८) नासकेत लीला वर्णन ।
(१९) ब्रह्मज्ञानसागर वर्णन ।
(२०) शब्द वर्णन ।
(२१) कवित्त वर्णन ।

इन ग्रन्थों के क्रम को निर्धारित करने में मुख्यतः चरणदास जी के जीवन और विचारधारा से सम्बद्ध घटना-क्रम को ही मूलभूत आधार मानना पड़ेगा। डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित के कथनानुसार चरणदास जी पहले सगुण श्रीकृष्ण के भक्त थे। तदनन्तर योग के क्षेत्र में अवतरित होकर निर्गुण ब्रह्म के प्रतिपादक बने। ठीक अगली पंक्ति में उन्होंने परस्पर विरोधी तथ्य लिखकर इस कथन का खण्डन भी कर दिया है। वे कहते हैं "चरणदास जी के दिल्ली वाले मठ और गद्दी स्थल पर बने हुए मन्दिर में आज भी श्रीकृष्ण की वह मूर्ति स्थापित है जिसकी आराधना पहले कवि किया करता था। यह मूर्ति कवि द्वारा विरचित श्रीकृष्ण के चरित्र सम्बन्धित काव्यग्रन्थ व्रजचरित, चीरहरण लीला, कुरुक्षेत्र लीला आदि की प्रामाणिकता सिद्ध करने में सहायक है।"[1] इस प्रकार वे कहना चाहते हैं कि संतप्रवर आरम्भ में कृष्णभक्त थे परन्तु बाद में निर्गुणोपासक हो गये। लेकिन चरणदास जी का परवर्ती विचार उनके सम्प्रदाय में स्वीकृत नहीं हुआ। यह तथ्य कैसे विश्वसनीय है ?

यहाँ पुनः जसराम उपगारी का यह कथन हमारी सहायता करता है—"और ग्रन्थ बहु बिस्तरे, जोग भक्ति अरु ज्ञान।"[2] अतः यदि योग, भक्ति और ज्ञान को उनकी रचनाओं का क्रमिक वर्ण्य विषय मान लें तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं है; क्योंकि कवि के जीवन-वृत्त से भी इसकी पुष्टि होती है।[3] यदि इस क्रम के अनुसार उक्त रचनाओं का वर्गीकरण किया जाय तो वह इस प्रकार होगा—

---

१. चरनदास : पृ० ८७।

२. भक्तबावनी : पत्र सं० २२१, दोहा सं० ११०।

३. अपने 'ज्ञानस्वरोदय' नामक ग्रन्थ की इन अन्तिम पंक्तियों में चरणदास जी ने भी इसी क्रम की पुष्टि की है—

जोग जुक्ति हरि भक्ति करि, ब्रह्मज्ञान दृढ़ करि गह्यौ।
आतम तत्व विचारि के, अजपा में मन सनि रह्यौ॥

—भक्तिसागर (ज्ञानस्वरोदय) : पृ० १३०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) **योगपरक रचनाएं**—अष्टांगयोगवर्णन, योगसन्देह सागर और ज्ञान-स्वरोदय।

(२) (अ) **भक्तिपरक रचनाएँ**—भक्ति साधना के सिद्धान्तों का विवेचन करने वाली कृतियाँ; यथा—भक्तिसागर, और भक्तिपदार्थ वर्णन।

(ब) **लीलाविषयक रचनाएँ**—दानलीला, माखनचोरी लीला, मटकी लीला आदि लीलापरक ग्रन्थ तथा व्रजचरित।

(३) **ज्ञान और वैराग्यविषयक रचनाएँ**—पंचोपनिषद् सार, मनविरक्त-करण गुटका सार और ब्रह्मज्ञानसागर।

(४) **धर्माचरण सम्बन्धी तथा उपदेशमूलक रचनाएँ**—नासकेत लीला, धर्मजहाज, जागरण माहात्म्य, अमरलोक अखण्डधाम वर्णन और शब्द।

विभिन्न रचनाओं का परिचयात्मक विवेचन—

(१) **व्रजचरित्र**—व्रज-यात्रा से लौटने के उपरान्त कुछ दिनों तक दिल्ली में अपनी माता जी के यहाँ रहने के पश्चात् सन्त चरणदास नंदराम जी के यहाँ घास की मण्डी (दिल्ली) में रहने लगे थे। बीच-बीच में परीक्षितपुरा (दिल्ली) के निवासी तथा सहजोबाई के पिता श्री हरिप्रसाद जी की हवेली के एक प्रशांत भाग में रहने के लिए चले जाया करते थे। इसी अवधि में उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की थी। इस तथ्य की पुष्टि चरणदास जी से समकालीन उनके कई शिष्यों ने अपनी रचनाओं द्वारा की है। जसराम उपगारी के एतत्सम्बन्धी उल्लेख की चर्चा अभी की जा चुकी है। इसी क्रम में रामरूप जी का यह कथन भी उद्धृत कर देना उचित होगा—

भक्ति राज नीको समझ, जाय रहे वहि ठाँव।
हरिप्रसाद के कुटुंब सब, आकर पूजे पाँव॥

जैसी व्रज में लीला चीन्हीं। व्रज चरित्र की पोथी कीन्हीं॥
जो प्रभु ने निज धाम दिखायो। सो ह्याँ भाषा माहिं बनायो॥
दो पोथी बहु हित सों साजी। ग्रंथ बीच रहे शिरे बिराजी॥[1]

चरणदास जी के जीवन के घटनाक्रम से सिद्ध है कि इस ग्रंथ की रचना सं० १७९७ या १७९८ वि० में हुई थी। उस समय कवि की अवस्था ३७–३८ वर्ष की थी। 'अमरलोक अखण्ड धाम वर्णन' नामक दूसरा ग्रन्थ भी यहीं रहते हुए रचा गया था।

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ४१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ के नामकरण के अनुरूप ही इसका वर्ण्य-विषय भी है। इसमें कवि ने श्री राधा-कृष्ण के रासपरिकर-सहित उनके रास-विलास का जो अद्भुत दृश्य प्रत्यक्ष देखा था, उसका तथा व्रजभूमि की महत्ता का सुन्दर वर्णन किया है। व्रज-मण्डल के वर्णन का आधार कवि के कथनानुसार 'वाराह संहिता' का एतत्सम्बन्धी वृत्त है।[1] इस ग्रन्थ के माध्यम से कवि ने व्रजमण्डल, गोवर्द्धन-महिमा, व्रज के १२ वन, १२ उपवन, प्रसिद्ध स्थान, प्राकृतिक सौन्दर्य, अमरलोक के बीच वृन्दावन की स्थिति, श्री राधा और कृष्ण के रूपवर्णन-सहित रास-लीला की छटा आदि का मनमोहक चित्रण किया है। प्रारम्भिक रचना होने के कारण इसकी भाषा और अभिव्यक्ति में अपरिपक्वता का आभास होता है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना चौपाई-दोहा छन्दों में की है। अन्त में एक पद और दो कवित्त भी हैं।

(२) अमरलोक-अखण्डधाम-वर्णन—श्री चरणदास की काव्य-रचना के क्रम में यह द्वितीय ग्रन्थ है। इस तथ्य की पुष्टि रामरूप जी के पूर्व उद्धृत कथन से होती है।

इसके वर्ण्य विषय का उल्लेख करते हुए श्री सरसमाधुरीशरण भी यह स्वीकार करते हैं कि यह कवि की द्वितीय रचना है। वे कहते हैं—

> व्रजचरित तामें प्रथम, अमरलोक शुचि नाम।
> रासादिक लीला ललित, अरु महिमा निज धाम॥[2]

पूर्व चर्चित तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ का भी रचनाकाल सं० १७९७–९८ वि० है। 'व्रजचरित्र' और 'अमरलोक'—दोनों ग्रन्थों की रचना एक वर्ष के भीतर ही हुई थी। डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने इसे 'कुरुक्षेत्र लीला' के बाद की रचना मानकर इसका रचनाकाल सं० १८१२ वि० निश्चित किया है। उन्होंने इसके पक्ष में दो तर्क दिये हैं—(१) किसी अन्तर्साक्ष्य का अभाव और (२) कवि की निर्गुणपरक धारणा। इसमें प्रथम तर्क के सम्बन्ध में पहले ही बताया जा चुका है कि इसके द्वितीय ग्रन्थ होने के विषय में कई विश्वसनीय उल्लेख प्राप्त होते हैं और जहाँ तक दूसरी बात का प्रश्न है, निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप की चर्चा इसकी रचना के पूर्व कवि से उसके गुरु ने दो बार की थी और साथ ही कवि का स्वानुभूतिजनित ज्ञान भी इसमें सहायक था। अतः रचनाकाल का प्रश्न अब विवाद से परे है।

---

१. वाराह संहिता में जो गायो। सो मैं भाषा बीच बनायो॥
भक्तिसागर : पृ० ३।

२. वही : भूमिका : पृ० ३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रन्थ में अमरलोक नामक ऐसे लोक का चित्र उपस्थित किया गया है जो अवर्णनीय तेजपुंज से युक्त, निस्सीम, कल्पवृक्षों से युक्त, रत्नजटित मार्गों एवं राजप्रासादों से सज्जित और समस्त विकारों से हीन, अमर नर-नारियों से पूर्ण और दिव्य विभूतियों से संपन्न है। अमरलोक के अनिर्वचनीय रंगमहल में घटित नित्य किशोर कृष्ण एवं किशोरी राधा की रासलीला तथा दिव्य प्रेमलीला का सुन्दर वर्णन पाठकों को चमत्कृत करनेवाला है।

यह १९८ छन्दों की रचना है, जिसमें ५२ दोहे और शेष चौपाइयाँ हैं। यह सुन्दर तथा चित्रात्मक वर्णनों से युक्त एक प्रौढ़ कृति है। इसमें समाविष्ट अनेक वर्णनों में से श्री राधा-कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन, रासनृत्य का वर्णन तथा अमर-लोक की दिव्य एवं अनिर्वचनीय छटा का वर्णन इसके विशेष मोहक स्थल हैं। इस कृति पर 'गीता' का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

(३) धर्मजहाज—इसका पूरा नाम 'गुरु-चेले का संवाद धर्मजहाज वर्णन' है। यह १३९ दोहों-सहित लगभग ५०० पंक्तियों की रचना है, जो गुरु-शिष्य संवाद की शैली में रचित है। इसमें रचनाकाल कहीं भी निर्दिष्ट नहीं है परन्तु पारम्परिक मान्यता के अनुसार यह कवि की क्रमशः तृतीय काव्यकृति है। यदि हरिप्रसाद जी के स्थान पर इस ग्रन्थ की रचना हुई होती तो रामरूप जी, जोगजीत जी और श्री जसराम उपगारी में से किसी ने इसका उल्लेख अवश्य किया होता। इतना अवश्य है कि कवि ने अपना स्वतन्त्र सम्प्रदाय चलाने की मानसिक तैयारी के रूप में इस ग्रन्थ की रचना की होगी क्योंकि इसका वर्ण्य विषय सगुण साधना-मार्ग के प्रतिपादन से पूर्ण है। जैसा कि पहले ही एक स्थान पर इस तथ्य की ओर इंगित किया जा चुका है कि सम्प्रदाय-प्रवर्त्तन भी परीक्षितपुरा के निवास के समय ही हो गया था अतः उसको ध्यान में रखते हुए इस ग्रन्थ का रचना-काल सं० १८०० वि० के आस-पास माना जा सकता है। इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य बताते हुए कवि का कथन इस प्रकार है—

यह तो धर्म जहाज है, मैं तोहिं दई निहार।
भव सागर मो डारियो, चढ़ै सो उतरै पार॥
बादवान पुनि खेइयो, दीजो ताहि चलाय।
पानी पाप निकासियो, नेकहुँ ना भरि जाय॥
चढ़ि उतरै तो पार हो, पावै सुख का धाम।
आनन्द ही आनन्द लहै, करै तहाँ विश्राम॥[1]

---

१. भक्तिसागर : पृ० ५२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण्य विषय के रूप में इस ग्रन्थ में भाग्यवाद तथा वर्ण-व्यवस्था का समर्थन, सगुण साधना का प्रतिपादन, सत्कर्मों की स्वीकृति और दुष्कर्मों की निराकृति आदि से सम्बन्धित उपदेश समाविष्ट हैं। इसमें करणीय कर्मों के आचरण और अकरणीय कार्यों के त्याग का सन्देश दिया गया है। इस प्रकार यह धर्मजहाज के स्थान पर कर्मजहाज है।[1] संवाद-शैली के प्रयोग से इसमें पर्याप्त रोचकता और ज्ञानवर्द्धकता आ गई है। चौपाई और दोहा इसके मुख्य छन्द हैं। यह भाषा, अभिव्यक्ति और विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से एक प्रौढ़ रचना है, जो सर्वथा पठनीय और संस्कार-परिष्कारक है।

(४) अष्टांगयोग-वर्णन—धर्मजहाज की भाँति यह भी गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में रचित है। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, इसमें अष्टांग योग के सम्बन्ध में शास्त्रीय और स्वानुभूत ज्ञान की चर्चा है। योग-वर्णन के क्रम में कवि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, हठयोग, मुद्रा और बन्ध आदि योग के प्रमुख विषयों पर अलग-अलग तत्तद् अंगों (शीर्षकों) में विस्तार के साथ प्रकाश डाला है। इनमें से हर विषय का निरूपण इस ग्रन्थ में बड़ी गहराई के साथ किया गया है। इसका प्रमाण यह है कि कुम्भक के ८ प्रकारों, धारणा के षट् प्रकारों तथा ध्यान और मुद्रा के अनेकानेक प्रकारों का भी सम्यक् विवेचन इस ग्रन्थ में मिलता है। इस प्रकार यह योग-विद्या का एक आकर ग्रन्थ है। लेखक का योगसम्बन्धी ज्ञान इतना गहन है कि उसकी पकड़ से इस विषय की कोई भी बात छूटने नहीं पायी है। प्रत्येक शीर्षक के अन्तर्गत विवेचित सामग्री पूर्णतया स्पष्ट और स्वानुभूत है। इसका मुख्य कारण यह है कि चरणदास जी का योगशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान मात्र पुस्तकीय प्रमाण पर ही आधारित नहीं था वरन् उन्होंने अपने अनुभवजनित ज्ञान के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसलिये इसमें विवेचित विषयों की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता असन्दिग्ध है। कवि ने इस तथ्य की पुष्टि इन शब्दों में की है—

पोथी माही देखकर, करै जो कोई योग।
तन छीजै सिधि ना भवे, देही आवै रोग॥
देखि देखि गुरु सों करै, लै अज्ञा रहु संग।
सिद्धि होय साधन सबै, कछू न आवै भंग॥[2]

---

१. जो जैसी करणी करि लेवै। हरि तैसा ही बदला देवै॥
अपना किया आप ही पावै। परालब्ध वह नाम कहावै॥
घटै बढ़ै वह नेकु न क्यों ही। पावै वही जु करणी ज्यौं ही॥
—भक्तिसागर (धर्मजहाज वर्णन) : पृ० २८

२. वही : अष्टांग योग वर्णन : पृ० १०४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक इसके रचनाकाल का प्रश्न है, कवि ने स्वयं तो कोई तिथि दी नहीं है लेकिन इस ग्रन्थ के आरम्भ में कुछ ऐसी पंक्तियाँ हैं, जिनसे यह ध्वनित होता है कि वृन्दावन में श्री शुकदेव के साथ हुई ज्ञान-गोष्ठी के कुछ ही पश्चात् इसकी रचना आरम्भ हो गयी होगी। ये पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

व्यास पुत्र धनि धनि तुम्हीं, धनि धनि यह अस्थान।
मम आशा पूरी करी, धनि धनि वह भगवान्॥
तुम दरशन दुरलभ महा, भये जो मोको आज।
चरण लगो आपा दियो, चरणन लियो लगाय॥
बालपने दरसन दिये, तब ही सब कुछ दीन।
बीज जु बोया भक्ति का, अब भया भक्ति नवीन॥[1]

इस ग्रन्थ की अन्य उक्तियों से यह भी पता चलता है कि इसकी रचना के समय कवि एक योगसाधक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। इसलिए भी हम डॉ० दीक्षित के इस कथन का समर्थन नहीं कर सकते कि यह सं० १८४० वि० की रचना है। उन्होंने यह तिथि क्यों बताई जबकि उन्हें विदित था कि चरणदास जी की इहलीला सं० १८३९ वि० में ही समाप्त हो चुकी थी।

अतः हमें पुनः चरणदास जी के जीवन-क्रम की ओर जाना पड़ता है। अपने गदनपुरे के निवास के समय ही उन्होंने कर्नाल और पानीपत की यात्रा की थी। वहाँ से लौटने पर १० वर्ष तक वे पुनः घास की मंडी में रहे। अर्थात् सं० १८०० से १८१० वि० का काल उनका वहीं व्यतीत हुआ। इस बीच वे एक परिपक्व योगसाधक के रूप में निखर रहे थे और उनकी योगसंबंधी सिद्धि प्रख्यात हो चुकी थी। यह योगसंबंधी ग्रंथों की रचना का सर्वोत्तम अवसर था। इस प्रकार इस ग्रंथ का रचनाकाल सं० १८०५ वि० के आस-पास होना चाहिए।

यह ७७० पंक्तियों की एक बृहदाकार रचना है, जिसमें ३३३ दोहों का भी समावेश है। छंद के रूप में चौपाई और दोहे का प्रयोग मुख्य है। इसकी भाषा प्रौढ़ और अभिव्यक्ति स्पष्ट है।

(५) योगसन्देह सागर—यह भी इसी क्रम में रचित कृति है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। 'अष्टांग योग वर्णन' द्वारा कवि ने पाठकों और योगाभ्यासियों को योग का जो पाठ पढ़ाया था उसकी परीक्षा के लिए कवि ने मानों इस ग्रन्थ के रूप में एक बृहत् प्रश्नपत्र बना दिया हो। इसके माध्यम से अष्टांग योग की साधना में अपने को निष्णात या पारंगत मानने वाले साधकों की भी परीक्षा ली

---

१. भक्तिसागर : पृ० ५३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई है। यदि इसमें समाविष्ट सभी प्रश्नों या जिज्ञासाओं का समाधानपरक उत्तर उनके पास है तो वे योगी कहलाने के वास्तविक अधिकारी हैं।[1]

इस प्रकार यह एक अत्यन्त गूढ़ कृति है, जो योग के पण्डितों के लिए भी एक चुनौती के रूप में प्रस्तुत की गयी है। यह २४ दोहों, एक कवित्त और ७२ अर्द्धालियों की लघु रचना है। इसका रचनाकाल सं० १८०८ वि० के आस-पास है। इसकी प्रश्नावली का एक नमूना इस प्रकार है—

चंद्रकला कित छिपे बढ़े जब कितसों आवे ॥
बादर कित सों होय फटै जब कहाँ समावे ॥
दीप लोय बुझ जाय जात कित मोहिं बतावो ॥
रात दिना कित जाय ध्रुवा केहि ठौर लखावौ ॥
तन छूटे जी जाय कित आवत है किहि ठाय तें ॥[2]

इस प्रकार इस ग्रन्थ में प्रश्नों की झड़ी सी लगी हुयी है। अतः इसे योग शास्त्र से सम्बद्ध रहस्यों का एक समृद्ध भण्डार कहा जा सकता है।

(६) ज्ञान स्वरोदय—यह चरणदास जी की अत्यन्त लोकप्रिय और बहु चर्चित कृति है। आलोच्य शुक सम्प्रदाय में यह मान्यता प्रचलित है कि उन्हें स्वरोदय सिद्ध था, इसीलिए इनकी भविष्यवाणियाँ सटीक उतरती थीं। नादिर-शाह और अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमणविषयक भविष्यवाणियाँ तथा बादशाह शाह आलम द्वितीय (शाहजादा अलीगौहर) और जयपुर नरेश श्री ईश्वरीसिंह की राज्य-प्राप्ति सम्बन्धी भविष्यवाणियाँ पूर्णरूपेण यथार्थ घटित हुई थीं। इसी प्रकार अनेक बार अकाल, महामारी, लूट-विध्वंस और किसी व्यक्तिविशेष की मृत्यु-तिथि आदि के सम्बन्ध में भी उन्होंने बहुत पहले ही सूचित कर दिया था।

चरणदास जी की यह रचना उनके ज्योतिष-ज्ञान, तन्त्रविद्या, प्राणवायु की परख तथा प्राणायाम-साधना की सिद्धि का परिचायक है। इनके साथ ही गहन दार्शनिक तत्वों का विवेचन भी इसमें अनुस्यूत है। यह अपने आपमें एक पूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसका पूरा लाभ उठाने के लिए गम्भीर ज्ञान और सुदीर्घ अवधि की कठोर वायु-साधना परमावश्यक है। ऐसे दुरूह ज्ञान के विषय को

---

१. अर्थ बताओ पण्डिता, ज्ञानी गुणी महंत।
जो तुम पूरे साधु हो, भक्ता हरि के सन्त ॥
चरणदास पूछें अरथ, भेदी होय कहौ।
समझो तो चर्चा करो, नाही मौन गहौ ॥
—भक्तिसागर (योगसन्देह सागर) पृ० : १०५।

२. वही : पृ० १०६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल एवं सुस्पष्ट शैली में प्रस्तुत करके कवि ने ज्ञान तथा योग की साधना के क्षेत्र में एक स्वतन्त्र विषय ही जोड़ दिया है।

डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने इसका रचनाकाल सं० १८४३ वि० मानकर बड़ा अनर्थ किया है। सम्भवतः वे किसी पांडुलिपि के लिपिकाल को ही रचना-काल मान रहे हैं। चूँकि यह लघु ग्रन्थ योग की ही एक शाखा स्वरोदय-ज्ञान से सम्बन्धित है अतः उनकी योगसाधना के काल में ही इसकी रचना हुई होगी। इस प्रकार यह सं० १८१४ वि० के बाद की रचना नहीं हो सकती। वैसे भी संत चरणदास सं० १८३९ वि० के पश्चात् इहलोक में नहीं थे।

यह मुख्यतः दोहों में रचित है परन्तु इसमें बीच-बीच में चौपाई, कुण्डलिया और छप्पय छन्द भी हैं। इस प्रकार यह २२८ दोहों-सहित कुल २६७ छन्दों की पुस्तक है। इसके अन्त में कवि ने अपना परिचय एक छप्पय के माध्यम से दिया है। कवि द्वारा स्वपरिचय का उसके समस्त रचनाओं में यह एकमात्र उदाहरण है।

स्वरोदय की रचना पद्धति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

गर्भवती के गर्भ को, जो कोई पूछे आय।
बालक होय कि बालकी, जीवै कै मरि जाय॥
पृच्छा बालक होन की, जो कोउ पूछै तोहिं।
बायें कहिये छोकरी, दहिने बेटा होहिं॥
दहिने स्वर के चलत ही, जो वह पूछै आइ।
वाकी बावों स्वर चलै, बालक हो मरि जाय॥
···वाहू को दाहिनी चले, लरिका होय सुख चैन॥[1]

(७) **पंचोपनिषद् अथर्वणवेद-भाषा**—इसका एक नाम पंचोपनिषद् सार भी है। इसमें जिन ५ उपनिषदों का सारांश अलग-अलग शीर्षकों के साथ पद्यबद्ध शैली में प्रस्तुत किया गया है, उनके नाम हैं—(१) हंसनादोपनिषद्, (२) सर्वोपनिषद्, (३) तत्वयोगोपनिषद्, (४) योगशिखोपनिषद् और (५) तेजबिन्दूपनिषद्। (१) हंसनादोपनिषद् के प्रतिपाद्य हैं—अद्वैतसिद्धान्त, हंस और सोहं का स्वरूप, अजपाजप, प्रणव की महत्ता, अनाहतनाद-श्रवण-विधि, दश प्रकार के नादों का स्वरूप एवं उनकी पहचान आदि। (२) सर्वोपनिषद् में बन्धन-मुक्ति, विद्या-अविद्या, जाग्रत-स्वप्न-तुरीयावस्थाएँ, पंचकोष, जीव-आत्मा-ब्रह्म का स्वरूप एवं उनका परस्पर संबंध आदि विषयों की चर्चा है। (३) तत्वयोगोपनिषद्—इसमें परब्रह्म की सर्वव्यापकता, प्रणव की श्रेष्ठता, इसके जप की विधियाँ और उसका प्रभाव आदि वर्णित हैं। (४) योगशिखोपनिषद्—इस अत्यंत लघु आकारी ग्रंथ में शरीर

१. भक्तिसागर : ज्ञानस्वरोदय वर्णन : पृ० १२२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में स्थित नौ द्वार, पंचदेवता, नाड़ियों तथा ज्योतिर्मण्डलों आदि का वर्णन है। (५) तेजबिन्दूपनिषद्—इन्द्रियाँ और उनकी प्रबलता, जीवात्मा की अवस्थाएँ, ब्रह्म की अखंडता और गुण-वर्ण-जाति-नाम-विहीनता आदि इसके मुख्य विषय हैं।

ये सभी उपनिषद् तत्तद् नाम के उपनिषदों के सारांश मात्र हैं। इनमें मुख्यतया दोहा और अष्टपदी छन्द अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। उपनिषदों का अध्ययन करते समय कवि के मन में विचार आया होगा कि इनका संक्षेप बोल-चाल की भाषा में प्रस्तुत कर देना जनहित के लिए आवश्यक है, सम्भवतः इसीलिए कवि ने अपनी रचनाओं के क्रम में इनका अनुवाद भी प्रस्तुत कर दिया। इस बात की पुष्टि कवि के इस कथन से भी होती है—

संस्कृत था कूप सम, भाषा नीर निकास।
प्याऊ जिज्ञासून को, तिनकी भग्रै पियास॥
वेदहि की उपनिषद्, जु मैं भाषा करी।
जो कुछ था वहि माँहि, सोइ वैसे धरी॥[1]

इस प्रकार जनसाधारण परन्तु जिज्ञासु व्यक्तियों की ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने के हेतु कवि ने इन ग्रन्थों की रचना की है। इनके रचनाकाल के विषय में रचयिता मौन है। डॉ० दीक्षित ने इनका रचनाकाल सं० १८४४ वि० निर्धारित किया है।[2] जब १८३९ के पश्चात् चरणदास जी जीवित ही नहीं थे तो फिर काव्य रचना करने का प्रश्न कहाँ उठता है? यहाँ इस बात को ध्यान में रखना होगा कि इन उपनिषदों की रचना योग से ज्ञान की ओर आने की पृष्ठभूमि के रूप में है।

चरणदास जी आरम्भ में योगसाधक थे परन्तु गुरु के आदेश से उन्हें भक्ति-प्रचार के लिए प्रस्तुत होना है। भक्ति की भूमि पर आने के पूर्व ज्ञान का आधार ग्रहण करना अनिवार्य है। अतः यह रचना 'ज्ञानस्वरोदय' की प्रस्तुति के पश्चात ही अस्तित्व में आई होगी। इस प्रकार इसका रचनाकाल सं० १८१५ वि० और १८२० वि० के बीच में अनुमित होता है। इस समय तक चरणदास जी को योग के साथ ही ज्ञान के क्षेत्र में भी परिपक्वता प्राप्त हो गयी थी। उनके आश्रमों में (उन्होंने इस बीच कई स्थान बदले थे) प्रायः हर वर्ग, वर्ण और धर्म के जिज्ञासु, योगाभ्यासी, तर्क-कर्कश-ज्ञानी, गुणी, महंत, मुल्ला और अहम्मन्य पण्डित उनसे सत्संग अथवा वाद-विवाद करके उनके ज्ञान की परीक्षा लेने आते थे। इन परिस्थितियों ने भी उनके लिए वेदों, पुराणों और उपनिषदों तथा कुरान आदि के

---

१. भक्तिसागर (हंसनादोपनिषद्) : पृ० १३२।
२. चरनदास : पृ० ११९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन की अनिवार्यता सिद्ध होगी। उन्होंने संभवतः इन ग्रंथों की रचना करने के पूर्व उपनिषदों में कथित रहस्यों का स्वयं साक्षात्कार किया और तब उनको अपनी कृतियों में मूर्त्तरूप दिया। अतः वे अनुवाद मात्र नहीं हैं। यही कारण है कि इन उपनिषदों की भाषा में बहुत अच्छा प्रवाह है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

जबसूं गुरु किरपा करी, दर्शन दीन्हों मोय।
रोम रोम में वै रमे, चरणदास नहिं कोय॥
जाति वरण कुल मन गया, गया देह अभिमान।
अपने मुख से कह कहौं, जग ही करै बखान॥
रहे गुरू शुकदेव जी, मैं मैं गई नसाय।
मैं तैं तैं मैं वही है, नखसिख रहो समाय॥

उक्त पाँचों उपनिषदों की छंद-संख्या क्रमशः ३६, ३४, १२, १७ और १५ है। इस प्रकार संपूर्ण पंचोपनिषद् ग्रंथ' कुल ११४ छंदों की रचना है।

(८) भक्तिपदार्थ वर्णन—चरणदास जी का यह ग्रंथ भक्ति के स्वरूप-विवेचन और उसके साधक तथा बाधक तत्वों के निदर्शन की दिशा में एक प्रशंसनीय प्रयास है। इसके वर्ण्यविषय के रूप में भक्ति की महत्ता, साधुसंतों की महिमा, ब्रह्म का स्वरूप-निरूपण, नवधाभक्ति-विवेचन, नामहिमा, सुरति, पति-भक्ति, नारी का यथार्थ रूप, पंडित, शील, दया, सत्य आदि भक्ति के साधक तथा षड्-विकार जैसे बाधक आचरणों आदि के वर्णन विशेष उल्लेखनीय हैं। यह ग्रंथ अनेक अंगों में विभाजित है। इस ग्रंथ की विशेषता इसी बात से जानी जा सकती है कि प्रत्येक पृष्ठ पर प्रकाशित लगभग २४ पंक्तियों सहित यह ९५ पृष्ठों की रचना है। वर्ण्यविषय, प्रतिपादन-शैली और भाषा-प्रयोग की दृष्टि से यह कृति चरणदास जी की उत्कृष्ट कोटि की रचनाओं में गिनी जाती है। भक्तिशास्त्र के संबंध में इसे एक आकर ग्रंथ माना जा सकता है।

भक्ति-साधना संबंधी कोई भी ऐसी बात नहीं है, जो इसमें छूट गयी हो। इस प्रकार यह ग्रन्थ कवि के गहन अध्ययन और उनकी सहानुभूति की पूर्ण परिपक्वता का परिचायक है। गूढ़ विषयों को स्पष्ट और ग्राह्य बनाने के लिए इसमें अन्तर्कथाओं, दृष्टांतों और प्रतीकों का भरपूर प्रयोग किया गया है।

श्री चरणदास ने इस पुस्तक की रचना उस समय की थी, जब उन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। अपनी इस स्थिति की ओर संकेत करते हुए वे स्वयं कहते हैं—

---

१. भक्तिसागर : पृ० १६२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किछूकाम के थे नहीं, कोऊ न कौड़ी देह ।।
गुरु शुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह ।
को है, कोई न जानता, गिनती में नहि नाँव ।।
गुरु शुकदेव कृपा करी, पूजन लागे पाँव ।
सीधी पलक न देखते, छूते नाहीं छाँहि ।।
गुरु शुकदेव कृपा करी, चरणोदक ले जाँहि ।
ढूसर के बालक हुते, भक्ति बिना कंगाल ।।
गुरु शुकदेव दया करी, हरि धन किये निहाल ।।[1]

चरणदास जी के जीवन-चरित्र के विषय में ज्ञात तथ्यों के आधार पर विदित होता है कि सं० १८२१ वि० में, ६१ वर्ष की अवस्था में वे दिल्ली के शुकदेवपुरा नामक स्थान पर आये थे । यहाँ आने के साथ ही उन्होंने सगुण साधना और वैधी उपासना के सारे साधनों को जुटाना आरम्भ कर दिया था । इतना ही नहीं बल्कि वृंदावन में उस समय प्रचलित राधा-कृष्ण युगल के रसोपासना की पद्धति भी उनके द्वारा अपना ली गई थी । राधावल्लभीय साधना-मार्गानुमोदित अनेक उत्सवों एवं पर्वों के आयोजन भी उनके मन्दिर में विधिवत और सोल्लास मनाये जाने लगे थे । इसी क्रम में उन्होंने जगन्नाथ जी, वैद्यनाथ जी (वैजनाथ जी) और श्री कृष्ण आदि आराध्य देवविग्रहों के रूप में कई भक्तों को स्वयं दर्शन भी दिया या योगबल से दर्शन कराया । कई लोगों को वृंदावन निजधाम की विभूति और उसमें होने वाली नित्यलीला का दर्शन करा कर भी उन्होंने उन्हें कृतकृत्य किया था । अतः कहा जा सकता है कि 'भक्तिपदार्थ' नामक कृति उनकी भक्तिमूलक मान्यताओं तथा साधनात्मक उपलब्धियों का प्रतिफल है ।[2]

इस कृति के माध्यम से अपनी भक्तिसाधना-पद्धति का शास्त्रीय पक्ष प्रस्तुत करके उन्होंने अपने सम्प्रदाय को मधुरा भक्ति की ओर ले जाने का एक दृढ़ और व्यापक आधार प्रस्तुत किया है ।[3]

---

१. भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० १६२ ।

२. शून्य शहर हम बसत हैं, अनहद है कुल देव ।
अजपा गोत बिचारि ले, चरणदास यहि भेव ।।
भक्तिपदारथ उदय सूं, होय सभी कल्याण ।
पढ़ै सुनै सेवन करै, पावै पद निरवाण ।।
—वही : पृ० २५७ ।

३. प्रेम पगावन ज्ञान दे, योग जितावन हार ।
चरणदास की बीनती, सुनियो बारंबार ।। —वही : पृ० १६२ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पृष्ठभूमि में इस ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १८२१ से १८२४ वि० के बीच स्थिर होता है। इसकी रचना लगभग ३२५ छन्दों में समाविष्ट है। इन छन्दों में दोहा-चौपाई की मुख्यता के साथ ही अष्टपदी छन्द, सवैया, कवित्त, सोरठा, कुण्डलिया और गीतबद्ध पदों का भी उपयोग किया गया है। इस ग्रन्थ के रूप में चरणदास जी का हिन्दी साहित्य को महनीय योगदान है।

(९) **मनविरक्तकरण गुटका-सार**— डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने इसे भक्तराज चरणदास की अन्तिम रचना मानकर उनके ग्रन्थों की सूची में इसे अन्त में स्थान दिया है। उनके विचार से इसका रचनाकाल सं० १८१७ वि० के लगभग है। इस तिथि को उनके कवि-जीवन का समाप्तिकाल मानना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है, क्योंकि इसके पश्चात् भी १९ वर्षों का उनका जीवन शेष था। रचना की भाषा, शैली और काव्यकला की प्रौढ़ता इसे रचना-श्रृंखला की अंतिम कड़ी सिद्ध नहीं करती। दीक्षित जी ने इसका नाम 'मनविकृतकरणसार' दिया है। इस नामकरण का आधार क्या है, यह समझ के परे है। मैंने कई पांडुलिपियाँ देखी हैं और प्रकाशित 'भक्तिसागर' भी प्रमाण है कि इसका नाम 'मनविरक्तकरण' है न कि 'मनविकृतकरण'।[1] संतप्रवर चरणदास मन को विकृत करने के उद्देश्य से कोई रचना क्यों करेंगे? वस्तुतः इस ग्रन्थ की रचना करके कवि ने साधना के क्षेत्र में गुरु-पद की असीम व्याप्ति और वैराग्य की आवश्यकता का निरूपण किया है। इसका आधार 'श्रीमद्भागवत्' के एकादश स्कंध का वह वृत्त है, जिसके अनुसार दत्तात्रेय मुनि ने पृथ्वी, पवन, आकाश, नीर तथा अग्नि जैसे पंचतत्वों; चंद्र-सूर्य जैसे प्रकृति के विराट् तत्वों और अजगर, पतंग, मधुमक्षिका, मृग आदि जीवों के रूप में २४ गुरुओं के आचार-व्यवहार से ज्ञान ग्रहण करके उन्हें गुरु के स्थान पर अधिष्ठित किया था।[2] कथात्मक शैली में वर्णित यह वृत्त ज्ञान-संग्रही और सार-

---

१. मन विरक्त के करन को, कीन्हों गुटका सार।
पढ़ै सुनै चित में धरै, भवसागर हो पार॥
—भक्तिसागर (मनविरक्तकरण गुटका) : पृ० २९७।

२. पृथ्वी पवन अकास है, नीर अग्नि शशि भान।
कपोत गुरू अजगर लिखो, और सिंधु को जान॥
और सिंधु को जान, पतंगा भौंरा कहिये।
माखी हाथी मृगा मीन, अरु पिंगला लहिये॥
चील्ह बाल कन्या कहूँ, तीर बनावन हार।
साँप माकरी भृङ्ग जो, चौबीसों उरधार।
—वही : पृ० २९६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रही वृत्ति को साधक के लिए सर्वाधिक काम्य सिद्ध करता है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि हमारे द्वारा उपेक्षित अथवा मानव समाज के लिए संत्रासकारक मछली, चील्ह और अजगर जैसे जीव भी हमें कुछ न कुछ सिखाते ही हैं। फिर ज्ञानी मनुष्य का तो कहना ही क्या है ? यदि हम अपने में गुणों की परख करने की शक्ति का विकास कर लें तो हमारा जीवन उत्कर्षमय हो सकता है।

इसकी रचना दोहा, कुण्डलिया और अष्टपदी छन्दों में हुई है। यह सम्पूर्णतः अनूदित कृति न होकर भावानुवाद मात्र है। १०२ छन्दों की यह रचना ज्ञान और वैराग्यमूलक विचारों से ओत-प्रोत है। मुमुक्षुओं के साथ ही जिज्ञासुओं के लिए भी यह अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है।

(१०) ब्रह्मज्ञानसागर—यह चरणदास जी की संतबानी पद्धति की सर्वश्रेष्ठ रचना है। यद्यपि यह २५२ छन्दों का एक लघु ग्रन्थ है परन्तु कवि की ज्ञानमार्ग की साधनामूलक मान्यताओं के निदर्शन में पूर्णरूप से समर्थ है। इस रचना के माध्यम से कवि ब्रह्मज्ञानी संत कवियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित होने में सक्षम है। इसमें मानव-शरीर, भौतिक साधनों और सामाजिक संबंधों की निस्सारता का आरम्भ में ही परिचय देते हुए ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मुक्ति, वैराग्य आदि ज्ञानमार्ग के आधारभूत तत्वों की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करना कवि का उद्देश्य प्रतीत होता है। इसमें दिग्भ्रांत और अज्ञानजनित प्रपंचों में फँसे मनुष्य के लिए चेतावनियों के कोड़े लगाकर सन्मार्ग पर लाने का कवि का प्रयास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कवि की यह रचना अष्टांगयोग की सिद्धि, वेदों एवं उपनिषदों के गहन अध्ययन, श्री कृष्ण के रासपरिकर, अमरलोक के प्रत्यक्ष दर्शन और परम ज्ञानी गुरु शुकदेव मुनि के साथ हुई अनेकानेक ज्ञानगोष्ठियों की परिणति है। इसका हर वाक्य अपने आप में सूत्र है और विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखता है। ब्रह्मज्ञान की महत्ता को उजागर करती हुई कवि की निम्नलिखित उक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

ब्रह्म ज्ञान बिन मिटै न दोई। ब्रह्मज्ञान बिन मुक्ति न होई॥
जोग जग्य तप नाना भोगा। ब्रह्मज्ञान बिन सबही रोगा॥
कलह कलपना मन में दोष। ब्रह्मज्ञान बिन ना संतोष॥
तिमिर अविद्या सबही भागे। ब्रह्मज्ञान में जो तू जागे॥
गीता अरु वेदान्त बतावै। सामबेद भी यों ही गावै॥
ब्रह्मज्ञान में निश्चय आवै। जीवनमुक्ता सोई कहावै॥[1]

इस ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १८१४ से १८१८ वि० के बीच माना जाता है।

---

१. भक्तिसागर (ब्रह्मज्ञानसागर) : पृ० ३१४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजोबाई जी ने इस ग्रन्थ का उल्लेख सं० १८१८ वि० में रचित अपनी एक बानी में की है। सं० १८८९ वि० में थियोसोफिकल सोसाइटी—लाहौर से चरणदास जी के 'ब्रह्मज्ञान सागर' और सहजोबाई द्वारा संकलित 'ब्रह्मविद्यासागर' (सं० १८९० वि० में) का प्रकाशन हो चुका है। ज्ञातव्य है कि 'ब्रह्मविद्यासागर' इस संप्रदाय के तत्कालीन अनेक कवियों की बानियों का संग्रह है।

भाषा, अभिव्यक्ति, विषयप्रतिपादन और विवेच्य सामग्री आदि की दृष्टि से यह एक प्रौढ़ कृति है। जिज्ञासुओं, ज्ञानपिपासुओं, संतसाहित्य के अध्येताओं और ज्ञान-भक्तिमयी साधनामार्ग के साधकों के लिए यह अमृत की घूँट तुल्य है। इसकी फलश्रुति कवि ने इस प्रकार दी है—

ब्रह्मज्ञान पोथी कही, चरणदास निर्वार।
समझै जीवन्मुक्त हो, लहै भेद ततसार ॥[1]

(११) शब्द— चरणदास जी के द्वारा विभिन्न समयों पर, विभिन्न विषयों से संबद्ध स्फुट गेय पदों को हम उनकी कविप्रतिभा की महती देन मान सकते हैं। ये पद शास्त्रीय, अर्द्धशास्त्रीय और बहुप्रचलित लोकगीतपरक शताधिक रागों में निबद्ध हैं। इनमें अलंकारों, काव्यगुणों और अभिव्यक्ति-कौशल की विशेषताओं का सर्वत्र अभिनिवेश मिलता है। इन शब्दों की रचना किसी सुनिश्चित कालावधि में हुई हो, ऐसी बात नहीं है। इनमें कवि के योग, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और तत्वचिंतन की अनुभूतियाँ अनुस्यूत हैं। अतः इनमें विषय-वैविध्य के साथ-साथ साधना-सिद्धान्तगत मान्यताओं में भी विविधता दिखाई देती है। कहीं-कहीं परस्पर विरोधी बातें भी मिलेंगी। यहाँ संख्या १ से १० तक विवेचित ग्रंथों के विचार-विन्दु इन्हीं बानियों में निहित हैं।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने अपने 'संत चरणदास' नामक शोधप्रबंध में इस ग्रंथ का परिचय ही नहीं दिया है। जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्य है, उसे उन्होंने पूरी तरह से छोड़ दिया है। 'भक्ति-सागर' के प्रकाशित संस्करण में इन बानियों की संख्या नहीं दी हुई है परन्तु गो० जुगतानंद के शिष्य रामचेरा जी द्वारा सं० १८७२ वि० में तैयार की गई पाण्डुलिपि में चरणदास जी के शब्दों को दो वर्गों में विभाजित करके लिखा गया है। इनमें से पदों या शब्दों की संख्या ३११ अंकित की गई है और 'कवित्त' शीर्षक के अन्तर्गत ६० बानियाँ समाविष्ट हैं। इस प्रकार शब्दों की कुल संख्या ३७१ है। आशा है कि इनकी संख्या में कुछ और वृद्धि होगी क्योंकि चरणदास जी के कुछ ग्रंथ तथा उनकी स्फुट बानियाँ अभी भी अप्राप्य हैं।

---

१. भक्तिसागर (ब्रह्मज्ञानसागर) : पृ० ३१६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन बानियों में मंगलाचरण, आरती, प्रभाती तथा कतिपय आख्यानों से पूर्ण कई-कई पृष्ठों के भी शब्द हैं। इन शब्दों की रचना प्रायः सभी प्रसिद्ध राग-रागिनियों में हुई है, जो कवि के संगीतशास्त्रज्ञ होने का भी परिचायक है। इन पदों में रागवैविध्य और विषयवैविध्य के साथ ही कथन-शैली और भाषा-शैली में भी बड़ी विविधता है। भाषा में पंजाबी, राजस्थानी, स्थानीय खड़ीबोली, उर्दू-फारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के कहीं-कहीं शुद्ध प्रयोग हैं, तो कहीं-कहीं मिश्रित। इनमें कहीं सन्तों और नाथपंथी सिद्धों की लट्ठमार भाषा मिलती है तो कहीं सूफियों की सारगर्भित रहस्यानुभूतिपूर्ण लोकभाषा। व्यासपद्धति की पंडिताऊ भाषा भी अनेक पदों में प्रयुक्त है। तात्पर्य यह है कि कवि का शास्त्रीय तथा व्यावहारिक ज्ञान, भाषा-ज्ञान तथा स्वानुभूतिजनित अभिव्यक्ति आदि सभी चमत्कृत करने वाले हैं। भाषा पर उनका यह असाधारण अधिकार अपने आप में आश्चर्यजनक है।

पदों के बीच-बीच में आई हुई उलटवासियाँ पाठक के सामने अर्थग्रहण की चुनौती-सी देती रहती हैं। फिर भी उनमें उतना अर्थगोपन नहीं है, जितना संत कबीर और दादू की इस प्रकार की बानियों में हम पाते हैं। चरणदास जी की एक उलटवाँसी इस प्रकार है—

कोई जानै संत सुजान उलटे भेद कूँ।
वृक्ष चढ़ो माली के ऊपर धरती चढ़ौ अकास।
नारि पुरुष विपरीत भये हैं देखत आवै हास॥
बैल चढ़ो शंकर के ऊपर हंस ब्रह्म के शीश।
सिंह चढ़ो देवी के ऊपर गुरु ही की बखशीस॥
नाव चढ़ी केवट के ऊपर सुत की गोदी माय।
जो तू भेदी अमरनगर को तौं तू अर्थ बताय॥
चरणदास शुकदेव सहाई अब कह करिहै काल।
बाँबी उलटि सर्प में बैठी जब सूँ भये निहाल॥[1]

इन बानियों में सगुण-निर्गुण, ब्रह्म, जीवात्मा, माया, जीवजगत्-संबंध, जीवात्मा-परमात्मा-संबंध, ब्रह्म-माया-संबंध, राधा-कृष्ण का यशगान, राधा-कृष्ण की लीला, रास-विलास, विविध पर्वों और ऋतुओं के अनुकूल पद-सर्जन, योग संबंधी अनुभूतियाँ, ज्ञान-वैराग्य विषयक तत्व, भक्ति के विविध प्रकार, उपकरण और भक्तिसूचक उद्गार, प्रेम-मिलन और विरह की स्थिति का चित्रण, चेतावनी, साधना मार्ग के रिपुओं, बाधकों और साधकों का निरूपण आदि न जाने कितने

१. भक्तिसागर : (शब्दविचार) : पृ० ४६५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय समाविष्ट हैं। वस्तुतः ये शब्द कवि के कविकर्म के निचोड़ के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। साथ ही ये श्री चरणदास के ज्ञान, अनुभव और काव्यकौशल के सुन्दर प्रमाण भी हैं।

चरणदास जी की उर्दूदानी का एक उदाहरण इस गजल के माध्यम से द्रष्टव्य है—

मुझे श्याम से मिलने की आरजू है।
शबोरोज दिल में यही जुस्तजू है॥
नहीं भाती हैं मुझको बातें किसी की।
सुनी जब से उस पार की गुफ्तगू है॥
नहीं मुझको मतलब जहाँ में किसी से।
चुभा जब से दिल में सनम खूबरू है॥
जो आशिक है उसका नहीं उससे गाफिल।
तड़पता अजल से खड़ा रूबरू है॥
शराबे मुहब्बत पिई जिसने यारों।
हुवा जग में दोनों वही सुर्खरू है॥[1]

इसी क्रम में एक उर्दू शब्द की कुछ ऐसी पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं जिनमें चरणदास जी एक सूफी फकीर के रूप में प्रतीत हो रहे हैं—

मुरशद मेरा दिल दरियाई दिल के अन्दर खोजा।
तिसके अन्दर सत्तर काबा मक्का तीसों रोजा॥
चौदह तबक औलिया जिसमें भेद न होय जुदाई।
सहस्र कमाल नमाज में ठाढ़े दर्शन जहाँ खुदाई॥[2]

इससे सर्वथा अलग भाषा का प्रयोग उनके संस्कृत-हिन्दी मिश्रित भाषा में रचित स्तोत्रों—विशेषतः 'श्री शुकदेव अष्टक' आदि में देखने को मिलता है—

षोडश वर्ष किशोर मूरति श्यामबरण दिगम्बरम्।
घूँघर वारे केस झलकैं शुकमुनि चरण प्रणम्यहम्॥
पद्म आसन उदर त्रिबली चरण पंकज शोभितम्।
आजानु भुज मुसकात मुख सों शुक मुनि चरण प्रणम्यहम्॥[3]

कवित्त, सवैया, कुण्डलिया, झूलना, रेखता, माँझ, गजल और श्लोकों की भाषा में स्वभावतः (और छंद-वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी) अनेकरूपता मिलना

---

१. भक्तिसागर : (फुटकल पद) पृ० ५५५।
२. वही।
३. वही : पृ० ५५६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित ही है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि शब्दों के माध्यय से भी श्री चरणदास ने अपने बहुआयामी काव्यकौशल, भाषाज्ञान और आध्यात्मिक अनुभूति की ऊँचाई आदि का बहुत अच्छा परिचय दिया है।

(१२) भक्तिसागर—डॉ० दीक्षित ने संत चरणदास के साहित्यरचना-क्रम में इसे उनकी तीसरी कृति माना है। इस ग्रंथ के अन्त में कवि ने अपनी काव्य-रचना का कार्यक्रम आरंभ करने की सूचना भी दी है। परन्तु यही इस ग्रंथ की भी रचना-तिथि है, इसे सिद्ध करने के लिए कवि की तिथिसूचक पंक्तियों के अर्थ में पर्याप्त खींच-तान करनी पड़ेगी।[1] इस सम्प्रदाय के बहुत से आचार्य और स्वयं डॉ० दीक्षित भी सं० १७८१ को ही इसका रचनाकाल मानते हैं। यदि उक्त कथन को इस ग्रंथ के रचनाकाल का सूचक मान लें तो यही कवि की सर्वप्रथम कृति माननी पड़ेगी। इसी के नाम पर ही कवि की सभी २१ रचनाओं का संग्रह प्रकाशित भी हुआ है। इससे इसका इस संप्रदाय में महत्व सिद्ध होता है। इतना होने पर भी 'भक्तिसागर' नामक प्रकाशित संग्रह में इसका क्रम ११वाँ है। मैंने इसकी ७–८ पांडुलिपियाँ देखी हैं। प्रायः सबमें यह इसी क्रम पर लिपिबद्ध है। इन पांडुलिपियों के कई लिपिकर्त्ता यथा रामरूप जी, अजमादास जी और रामचेरा जी चरणदास जी के समकालीन ही थे। इन पांडुलिपियों में से अधिकांश का लिपिकाल सं० १८३८ वि० से सं० १८८० वि० के बीच है। अतः उपर्युक्त आधारों पर यह मानना चाहिए कि इसका भी रचनाकाल सं० १८२० वि० के आस-पास ही है। अन्यथा 'ब्रजचरित्र' और 'अमरलोक अखंडधाम'—इन दोनों कृतियों से पहले इस ग्रंथ का उल्लेख अवश्य मिलता।[2]

---

१. संवत सत्रह सै इक्यासी। चैत्रसुदी तिथि पूरणमासी॥
शुक्ल पक्ष दिन सोमहि वारा। रचौं ग्रंथ यों कियो विचारा॥
तबही सूँ अस्थापन धरिया। कछु इक बानी वा दिन करिया॥
ऐसे ही पाँच हजार बनाई। नाम गुरू के गंग बहाई॥
फिर भई बानी पाँच हजारा। हरि के नाम अगिनि में जारा॥
तीजे गुरु आज्ञा सो कीन्हीं। सो अपने साधुन कहँ दीनी॥
अद्भुत् ग्रंथ महासुखदाई। ताकी शोभा कही न जाई॥
तामें ज्ञान योग बैरागा। प्रेमभक्ति जामें अनुरागा॥
निर्गुण सर्गुण सबही कहिया। फिर गुरु चरण कमल में रहिया॥
—भक्तिसागर : पृ० ४७८।

२. द्रष्टव्य—इस अध्याय का 'ब्रजचरित्र' सम्बन्धी प्रसंग।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान चरणदासी आचार्य इसे एक अपूर्व संयोग मानते हैं कि चैत्र शुक्ल पक्ष सं० १६३१ वि० के प्रति एक सौ पचास वर्ष पश्चात् एक अनुपम काव्य कृति का सर्जन हुआ। उदाहरणार्थ, चैत्र शुक्ल ९ सं० १६३१ वि० को 'रामचरितमानस' का प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार चैत्र शुक्ल १५ सं० १७८१ वि० को 'भक्तिसागर' और चैत्र शुक्ल १, सं० १९३१ वि० को महर्षि दयानंद के 'सत्यार्थ-प्रकाश' की रचना हुई। परन्तु यह बात तो तब खरी उतरेगी, जब सं० १७८१ को 'भक्तिसागर' का रचना-वर्ष माना जाय, जो तथ्यों के आलोक में प्रामाणिक नहीं ठहरता।

इसके 'भक्तिसागर' नामकरण से सहज ही अनुमान होता है कि इसमें भक्ति-विषयक चर्चा होगी। परन्तु इसे पढ़ने पर हम पाते हैं कि इसमें योग से सम्बद्ध तत्वों की ही अधिक चर्चा है। इसके अन्तिम भाग में श्रीकृष्ण और राम की महत्ता का वर्णन अवश्य है। सब मिलाकर इसे अष्टांग योग के अन्तर्गत भक्ति-योग-प्रधान रचना मान सकते हैं। १९वीं शती विक्रमी के प्रथम दशक में ही चरणदास जी के शिष्यों में श्री रामसखी नामक एक भक्तिरसाचार्य ने राधा-कृष्ण की शृङ्गारिक युगलोपासना की दिल्ली में धूम मचा दी थी। यह गुरु की प्रेरणा के बिना सम्भव नहीं था। अतः मेरे विचार से 'भक्तिसागर' के अन्तर्गत समाविष्ट पद्यों का काल-विस्तार सं० १७८१ वि० से सं० १८२० वि० तक हो सकता है। सम्भव है कि इस अवधि के बीच रचित स्फुट रचनाओं को 'भक्तिसागर' के नाम से कवि ने आगे चलकर संकलित एवं प्रचारित कर दिया हो।

इस ग्रंथ में एक ऐसा भी कवित्त है जिसमें कवि ने नादिरशाह को अत्याचार से विरत करने के लिए भगवान् से प्रार्थना की है। नादिरशाह द्वारा दिल्ली में कत्ले आम और लूट-पाट कराने की घटना सं० १७९५-९६ वि० (सन् १७३९ ई०) की है अतः मानना चाहिये कि यह ग्रंथ उसके पूर्व का नहीं हो सकता। इस प्रकार सं० १७८१ वि० में इसकी रचना की मान्यता भी खंडित हो जाती है। यह कवित्त द्रष्टव्य है—

सबही दुख पावैं बेर बेर पछतावैं
अब तोहिं को ध्यावैं दुख सभी काट दीजिए।
अन्न के दुखारी सब भये हैं भिखारी
सृष्टि काहे को बिसारी प्रभु बेगि ही पसीजिए॥
भक्त गुणागार करि देखो है विचार
अब ना करो अबार बंदी छोड़ जो कहीजिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली की अर्ज चरणदास कहैं लर्ज
स्याह नादर को बर्ज अर्ज मेरी सुन लीजिए ।।[1]

किसी ज्ञानगर्वोन्मत्त एवं धर्मान्ध कठमुल्ला से हुज्जत हो जाने पर चरणदास जी उसको उपदेश देते हुए उसी की भाषा में कह रहे हैं—

मनदानिस्वतम् हिज्रने, दीगर वस्ल न कोय ।
चरणदास गफलत उठे, वाहिद वाहिद होय ।।
हिज्र वस्ल दोनों नहीं, नहिं दरिया नहिं मौज ।
चरणदास जर्रा नहीं, जो कर देखा खोज ।।
दरिया वाहिद लामकाँ, बाजत अनहत बीन ।
सकल चरण फरजन्दना, नाहीं संग ताबीन ।।
दीद शुनीद तहाँ नहीं, तहाँ न काल न हाल ।
जौहर जिसम इसम नहीं, चरणदास नहिं काल ।।[2]

तात्पर्य यह कि इस कृति के अंत में उल्लिखित सं० १७८१ वि० को 'भक्तिसागर' का रचनाकाल स्वीकार करने में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न होने की संभावना है। इसमें संगृहीत बानियों का यदि भाषाप्रयोग, अभिव्यक्ति-सौष्ठव और छंद-विधान की दृष्टि से ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि इतनी प्रौढ़ रचना कवि की आरंभिक कृति कदापि नहीं हो सकती। कवि के रचना-कौशल के विकास क्रम को देखते हुए भी यह कहना असंगत न होगा कि यह उस समय की रचना है जब कवि को काव्यसर्जन के क्षेत्र में पूर्णतः निपुणता प्राप्त हो गई थी। अतः सं० १७८१ वि० को इस ग्रंथ के रचना-काल के रूप में न मानकर संत चरणदास की काव्यरचना-प्रक्रिया के शुभारंभ-काल का संकेतात्मक उल्लेख मात्र मानना चाहिए।

यद्यपि यह एक लघुकाय ग्रंथ है परन्तु साधना मार्ग के पथिक साधक के लिए विहित समस्त अनिवार्य आचार-विचारों का संक्षिप्त सदुपदेश इसमें उपलब्ध है। चौपाई, दोहा, छप्पय, सवैया और कवित्त इसके मुख्य छंद हैं। इस कृति का चरणदास जी की शिष्य परंपरा में कितना सम्मान था इसे केवल इसी तर्क से समझना आसान होगा कि इनके छोटे-बड़े २१ ग्रंथों का संकलन इसी ग्रंथ के अभिधान पर हुआ अर्थात् संपूर्ण संकलित पांडुलिपि का नाम 'भक्तिसागर' ही रखा गया।

---

१. भक्तिसागर : पृ० ८६।
२. वही : पृ० ४७७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी के सगुण साधना और लीलोपासनामूलक आख्यान ग्रंथ—

(१) जागरण माहात्म्य—यह १०४ छंदों की आख्यानमूल एक लघु रचना है। इसमें एकादशीव्रत के उपरान्त रात्रि-जागरण की विधि और उसके महत्व को प्रतिपादित करने वाला आख्यान वर्णित है। इसके वक्ता युधिष्ठिर हैं और श्रोता श्रीकृष्ण। यह मूलरूप से 'पद्मपुराण' के उत्तर खण्ड के ३८वें अध्याय में वर्णित वृत्त के आधार पर रचित है। चौपाई-दोहे की पद्धति की इस रचना में कोई उल्लेखनीय काव्य वैशिष्ट्य नहीं है, फिर भी इसे आरंभिक रचना मानना भ्रांतिमूलक है। इसकी रचना का उद्देश्य अपने संप्रदाय के अनुयायियों को एकादशी जागरण और उसमें कीर्त्तन करने के माहात्म्य से परिचित कराना है।[1] संप्रदाय-प्रवर्त्तन और उसके प्रसार का इतिवृत्त देते हुए हमने सिद्ध किया है कि शुक-संप्रदाय ने सं० १८१५ वि० के आस-पास ही दिल्ली में एक व्यापक आधार प्राप्त कर लिया था। अतः काव्य की दृष्टि से प्रौढ़ न होते हुए भी यह सं० १८२४–२५ वि० के आस-पास की कृति है। इसका उद्देश्य वस्तुपरक है न कि काव्यपरक। अपने उद्देश्य में यह रचना अवश्य सफल कही जायगी।

(२) दानलीला—श्रीकृष्ण का गोपियों से दधि की याचना और उनसे उत्तर-प्रत्युत्तर का श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित प्रसिद्ध वृत्त ही इसका मूलाधार है यह मात्र ४६ दोहों की रचना है। कृष्ण-भक्तों के लिए यह बड़ी ही सुखद नाटकीय घटनाओं और सुन्दर संवादों से युक्त एक स्पृहणीय कृति है।

(३) माखनचोरी लीला—इसे स्वतन्त्र ग्रंथ की संज्ञा देना उचित नहीं है। यह मात्र २० दोहों की रचना है। माखन चोरी–लीला से संबद्ध घटना पर आधारित तथा स्वतन्त्र शीर्षक से युक्त यह एक लीला-वर्णन है। कृष्ण का माखन-चोरी के निमित्त एक ग्वालिन के घर में प्रविष्ट होना, गोपी द्वारा उनका पकड़ा जाना और यशोदा जी के सामने उन्हें ले जाकर गोपियों का कृष्ण की अनेक हरकतों के सम्बन्ध में उलाहना देना इसमें वर्णित है।[2] दानलीला और माखन

---

१. जे कलिजुग में कीरतन करें। पावें सुख भवसागर तरें॥
सुगम रीति यह तोहिं बताई। सुन राजा तेरे हित गाई॥
—भक्तिसागर : पृ० ४८५।

२. एक कहै गहि चीर हार हिये तें मेरी झटको।
एक कहै दधि माठ चाट धरती पर पटको॥
एक कहे मोहिं घेर के, दान लगावे आय।
तेरो मोहन ढीठ है, बरज यशोदा माय॥
—वही : पृ० ४९०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोरी लीला जैसी लघु रचनाएँ सं० १८२५ वि० के आस-पास की हो सकती हैं। इन दोनों का आधार श्रीमद्भागवत् ही है।

(४) कालीनथन लीला—माँझ नामक छन्द में रचित ८८ पंक्तियों की यह लघु रचना श्रीकृष्ण के कालियनाग को नाथने या परास्त करने की प्रसिद्ध लीला से सम्बद्ध है। कवि द्वारा इसकी रचना अपने सम्प्रदाय के कृष्ण भक्तों के पठनार्थ हुई है। श्रीमद्भागवत् को पढ़कर समझ पाना जनसाधारण के लिए कठिन समझकर उसके दशम् स्कन्ध की कथा विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत श्री चरणदास ने प्रस्तुत करके असंख्य भक्तों का हित-साधन किया है। इसके पाठ करने से होने वाले फल की ओर निर्देश करते हुए कवि का कथन है—

यह हरिकथा यथामति गाई, जो सुन के मन लावे।
विषधर को भय नाहीं व्यापै, अन्त परम पद पावे॥

विषधर के भय से मुक्त होना और परमपद पाना किसे काम्य न होगा? इसमें नारियों के पातिव्रत्य को दृढ़ करने के लिए भी संदेश निहित है, जो इस प्रकार है—

जो पति कोढ़ी अंध होय, तो नारी ईश्वर जानें।
चरणदास पतिवर्त्ता सोई, नारी पिय मन मानें॥[1]

(५) मटकी लीला—मात्र २८ पंक्तियों (सात चतुष्पदियों) की इस रचना में कोई नवीनता नहीं है। श्रीकृष्ण की मुरली की तान सुनकर गोपियों का लोकलाज को त्यागकर उनके पास पहुँचना, उनकी मटकी से दही मक्खन खाकर नटखट नटनागर का उन्हें फोड़ डालना और गोपियों का उनके विरुद्ध यशोदा से उलाहना देने का पुराणप्रसिद्ध वृत्त इसका वर्ण्य विषय है। यह भी लीला ग्रंथों की ही परम्परा की रचना है। इसका भी रचनाकाल सं० १८२५ वि० के आस-पास ही होना चाहिए। इसी से संलग्न 'गोपी विरह निवेदन' शीर्षक एक छोटा-सा विरह-काव्य भी है, जो राग हेली, बिलावल, सोरठ और भैरवी आदि में निबद्ध कुछ छोटे-बड़े पदों में रचित है। 'मटकी लीला' की प्रथम पंक्ति मटकी शब्द से समाप्त होती है और अंत तक 'चट चौपट मटकी पटकी' का तुक मिलता चलता है।[2]

---

१. भक्तिसागर : (कालीनथन लीला वर्णन) : पृ० ४९५।

२. पीरो फेंटा तुर्रा थिरकत नाक बुलाक अधर मटकी।
मन्द मन्द मुसकात कन्हैया कुंडल चपला सी झटकी॥
सब तन कछें सजें आभूषण कटि ऊपर जुलफें लटकी।
चरणदास देखत मन व्याकुल चट चौपट मटकी पटकी॥
—वही (मटकी लीला) : पृ० ४९६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) श्रीधर ब्राह्मण लीला—इसे स्वतन्त्र ग्रंथ की संज्ञा नहीं दी जा सकती। मात्र एक पद में (जो केवल २७ पंक्तियों का है) कंस द्वारा बालक कृष्ण को मार डालने के उद्देश्य से प्रेषित एक श्रीधर नामक ब्राह्मण की इसमें कथा है, जिसे अन्ततः श्रीकृष्ण ने जिह्वाविहीन करके छोड़ दिया था। इसी से संलग्न चरणदास जी का यह प्रसिद्ध पद भी है—

मुकुट पर वारो रे नागर नन्दा।
सब सखियन में यों हरि राजैं ज्यों तारन में चंदा ॥[1]

(७) कुरुक्षेत्र लीला—यह अपने आप में एक स्वतन्त्र खण्डकाव्य है। इसमें कवि ने उच्चकोटि के काव्यकौशल का परिचय दिया है। यह चरित्र काव्य लगभग ११०० पंक्तियों की रचना है, जिसमें सूर्यग्रहण के अवसर पर श्रीकृष्ण का सदल-बल कुरुक्षेत्र में आकर नन्द-यशोदा-सहित, वृन्दावन से आये हुए गोप-गोपियों के समुदाय से परस्पर मिलन का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। इस वृत्त का आधार श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध के अध्याय सं० ८२–८३ की कथा है। श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ व्रज के निवासियों की उत्सुकता से भी अधिक वहाँ की गायों का औत्सुक्यवर्णन बड़ा ही मार्मिक है। यशोदा से मिलने के बाद माता-पुत्र का साश्रु आनन्दातिरेक, राधा-चंद्रावली आदि गोपियों से कृष्ण का सलज्ज मिलन, रास की व्यापक योजना, पशुजगत् का आनन्दकिलोल, सत्यभामा और रुक्मिणी के प्रयास से मानिनी राधा का मानभंग और श्रीकृष्ण से मिलन, रुक्मिणी द्वारा राधा जी का शृंगार, संयोग और केलिवर्णन, द्रौपदी के समक्ष कृष्ण की आठों पटरानियों और १६ सहस्र अन्य पत्नियों का अपने-अपने विवाह का वृत्त-वर्णन इस खण्ड काव्य के पूर्वार्द्ध की कथा से सम्बद्ध प्रमुख घटनाएँ हैं।

इसके द्वितीयार्द्ध में नारद, वेदव्यास, विश्वामित्र, गौतम, परशुराम आदि ऋषियों का श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आना, उनके द्वारा स्तोत्रगान, ब्रह्म और उसकी माया की महत्ता का गान, निष्काम भक्ति, कर्म और योग का महत्व, श्री वसुदेव द्वारा यज्ञोत्सव का आयोजन, कृष्ण के द्वारिकागमन के समय की मनःस्थिति की अभिव्यक्ति, व्रजवासियों की अकुलाहट, नन्द-यशोदा का वसुदेव-देवकी से मार्मिक निवेदन, राधा का द्वारिका जाने का आग्रह, महारानी सत्यभामा द्वारा उनके प्रेम की प्रशंसा आदि 'श्रीमद्भागवत्' के दशम स्कन्ध के अध्याय सं० ८४–८५ की कथा पर आधारित वृत्त समाविष्ट हैं।[2]

---

१. भक्तिसागर : पृ० ५०४।

२. चरणदास के इष्ट कृष्ण गोपाल हैं।
दुखहरन सुख करन सुदीनदयाल हैं ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी की जितनी भी लीलावर्णपरक रचनाएँ हैं, उन सब में यह सर्वोत्तम रचना है। इसमें कवि ने मार्मिक स्थलों को पहचान कर उनका यथोचित वर्णन किया है। इस ग्रंथ की भाषा, अभिव्यक्ति तथा छंद-विधान आदि प्रौढ़ एवं निर्दोष हैं। प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर इसका रचनाकाल सं० १८३० वि० के आस-पास माना जा सकता है। कुरुक्षेत्र-कथा-वर्णन के माध्यम से इस ग्रंथ का मुख्य प्रतिपाद्य है—प्रेमाभक्ति का निरूपण। इस तथ्य को इस ग्रंथ की निम्न पंक्तियाँ स्पष्टता से ध्वनित कर रही हैं—

जो बाँचे चितलाय कोई सरवन करै।
भक्ति परापत होय हिये आनन्द भरै॥
प्रेम भक्ति के भाय यह लीला गाइया।
चरन कमल चित लाय परम सुख पाइया॥[1]

यह पूरी रचना 'अष्टपदी' छंद में है। इसमें दोहे केवल ३ हैं। इसके कथ्य में १६ कथा-प्रसंग समाहित हैं। श्रीकृष्ण-लीला-प्रेमियों के लिए यह बड़ी ही स्पृहणीय रचना है। इसका कथाप्रवाह अत्यन्त सुरुचिपूर्ण है। इसके बीच-बीच में गुंफित ज्ञान-चर्चा और भी बोधप्रद है।

(८) नासकेत लीला वर्णन—उद्दालक ऋषि और उनके पुत्र श्री नासकेत मुनि विषयक प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान इस प्रबन्ध काव्य का वर्ण्य-विषय है। यह लगभग २००० पंक्तियों की रचना है जो 'भक्तिसागर' नामक प्रकाशित संग्रह-ग्रंथ के ९० पृष्ठों में समाहित है। यह अपने आप में उच्चकोटि का एक स्वतन्त्र एवं बृहत् खण्डकाव्य है। इसकी कथा के वक्ता वैशम्पायन मुनि और श्रोता नागराज जनमेजय हैं। कथा के केन्द्र में उद्दालक ऋषि हैं, जिन्होंने सुदीर्घकाल तक कठोर तपस्या करने के पश्चात् पुत्र-प्राप्ति की कामना से ब्रह्मा तक पहुँच कर उनसे आश्वासन प्राप्त किया था। नारी-चिन्ता से व्याकुल उद्दालक का गंगा-स्नानार्थ आई रघुवंशी राजकुमारी चंद्रावती को देखकर कामोत्तेजना से वीर्यत्याग करके कमल पत्र पर गंगा में प्रवाहित कर देना; संयोगवशात् उत्कंठा के कारण चंद्रावती का उस पत्र को उठा लेना और गर्भ धारण करना; उसकी इस स्थिति का ज्ञान होने पर निर्दोष चंद्रावती का उसके पिता-माता द्वारा घर से निष्कासन; असहाय रूप में याज्ञवल्क्य मुनि के आश्रम में चंद्रावती का काल-यापन; यथासमय छींक के

दसम स्कंध विच यह कथा सब गाई है।
राजा परीक्षित कूँ शुकदेव सुनाई है॥
—भक्तिसागर : (कुरुक्षेत्र) : पृ० ५११।

२. वही : पृ० ५५४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माध्यम से नासिका द्वारा एक तेजस्वी बालक का जन्म धारण करना; १ वर्ष के बालक नासकेत से चिढ़कर माता द्वारा पुत्र को गंगा में प्रवाहित किया जाना; उद्दालक ऋषि द्वारा उस बालक की प्राप्ति; कालान्तर में पुत्र-प्रेम से विह्वल चंद्रावती द्वारा पुत्र की खोज करते-करते महर्षि उद्दालक के आश्रम में आगमन; उद्दालक के समझाने पर चंद्रावती के पिता द्वारा उसका मुनि से विधिवत् विवाह होना; दोनों का सुखपूर्वक गृहस्थ जीवन का निर्वाह; एक दिन नासकेत से चिढ़कर उसे नरक-दर्शन का पिता द्वारा शाप दिया जाना और अंततः नासकेत मुनि का नरक और स्वर्ग लोक से लौटकर वहाँ के दृश्यों का मार्मिक वर्णन करना—संक्षेप में यही इस प्रबन्ध काव्य का वर्ण्य वृत्त है।

इस कथानक को कवि ने १८ अध्यायों में विभक्त किया है। इस प्रबन्ध काव्य के तत्तद् अध्यायों का शीर्षक भी दिया गया है। इसकी कथा बड़ी ही रोचक है और साथ ही उपदेशप्रद भी है।[1] कथा से सम्बद्ध चरित्रों का इसमें बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। इसका लगभग आधा भाग स्वर्ग और नर्क के स्वरूप-परिचय से ही पूर्ण है। विष्णु-भक्ति का महत्व, कर्मानुसार जीव-योनि की प्राप्ति तथा स्वकर्मानुसार शुभाशुभ फलों की उपलब्धि आदि का निरूपण इस विस्तृत कथा के प्रमुख अंग हैं। इसके साथ ही पाप-पुण्यमय कर्मों का निर्धारण भी कवि का उद्देश्य है—

नर नारी सुनि लीजिए, अद्भुत् कथा सुजान।
पाप पुण्य की ओर सूँ, जो कोई होय अजान॥[2]

कर्मानुसार पाप-पुण्य फल की प्राप्ति के विषय में चरणदास जी का यह कथन चेतावनीमूलक है।

धरम राय जब पकड़ बुलावै। पाप पुण्य का न्याय चुकावै॥
पापी पठवै नरक मझारी। पुण्यी पठवै स्वर्ग मँझारी॥[3]

डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने इसका रचनाकाल सं० १७८३ वि० बताया है।[4] इस प्रकार वे इसे आरंभिक रचनाओं में मानते हैं। यद्यपि 'भक्तिसागर' के संकलन-क्रम में इसको सबसे अन्त में रखा गया है परन्तु भाषा और अभिव्यक्ति में

---

१. कथा जु अधिक सुहावनी, सुनकर उपजै चाव।
दयां धरम हिये आ बसै, भाजैं सबै कुभाव॥
—भक्तिसागर : पृ० ६४५।

२. वही : पृ० ५५८।
३. वही : पृ० ६४४।
४. चरणदास : पृ० १४१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रौढ़ता के अभाव को देखते हुए यह सं० १८१९-२० वि० के बाद की रचना नहीं प्रतीत होती। दोहा और चौपाई इस रचना के मुख्य छन्द हैं।

(९) पाण्डव यज्ञ लीला—यह २३ छन्दों की एक बड़ी ही सुन्दर रचना है। सरसकुंज जयपुर में सुरक्षित इसकी पांडुलिपि में कुल सात पृष्ठ हैं। पांडुलिपि कहीं से भी खंडित या त्रुटित नहीं है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ पर ८ पंक्तियों का समावेश है। जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, इसमें पाण्डवों द्वारा किये गये यज्ञ से सम्बन्धित पौराणिक आख्यान काव्यबद्ध पद्धति से वर्णित है। यद्यपि कवि ने स्वयं रचना-तिथि का संकेत कहीं नहीं किया है परन्तु अन्तसाक्ष्यों के आधार पर इसे सं० १७९० वि० के आस-पास की रचना मान सकते हैं। इसमें पाण्डवों द्वारा किये गये यज्ञ में 'पचान' नामक शंख के न बजने के फलस्वरूप यज्ञ की पूर्णाहुति न होने और भगवान् कृष्ण के परामर्शानुसार एक शूद्र विष्णुभक्त को विधिवत् भोजनादि से सत्कार करने पर बज जाने का वृत्त वर्णित है।[1] इस रचना के माध्यम से कवि ने जाति-वर्ण की उच्चता की अपेक्षा भक्ति और भक्त की महत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। एक प्रकार से इस रचना की मूल ध्वनि इस प्रकार है—

"चार बरन में हरिजन ऊँचे। मन से सूधे तन से सूँचे॥"

संत चरणदास का कवि-कौशल—

हिन्दी के अन्य संत और भक्त कवियों की भांति चरणदास जी की दृष्टि में भी कविता का अर्थ उस छन्दमय और रागबद्ध अभिव्यक्ति-माध्यम से है, जिसकी सहायता से वे अपनी ज्ञानानुभूतियों से अपने समकालीन समाज के दिग्भ्रान्त एवं मोह-जाल में आबद्ध जनसाधारण को श्रेयस्कर मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे सकते थे। इस प्रकार कविता उनकी दृष्टि में साध्य नहीं बल्कि साधन मात्र थी। यही कारण है कि लोकमंगल के व्रती इन कवियों की दृष्टि कविता की साज-सज्जा या उसके सुन्दर एवं सुगठित रूप की ओर न होकर केवल अपनी लक्ष्यसिद्धि की ओर ही अधिक थी। संत चरणदास भी इसके अपवाद नहीं थे।

उनके विपुल साहित्य को उसके वर्ण्य-विषय की दृष्टि से वर्गीकृत करने पर हम पाते हैं कि उनकी रचनाएँ चार प्रकार की हैं—(१) चरित्र या लीलापरक, (२) कथानकपरक, (३) आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयों से सम्बद्ध और (४) स्फुट। प्रथम कोटि की रचनाओं में ब्रजचरित्र, माखनचोरी लीला, दान-लीला, मटकी लीला और श्रीधर ब्राह्मण लीला आदि हैं। द्वितीय कोटि में धर्म-जहाज, जागरण-माहात्म्य, कुरुक्षेत्र लीला और नासकेत लीला के नाम गिनाये जा

---

१. यह कृति 'भक्तिसागर' नामक संग्रह में संगृहीत नहीं है और पूर्णतः अज्ञात है। इसके मिल जाने से चरणदास जी की रचनाओं की संख्या अब २२ हो गई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। आध्यात्मिक और दार्शनिक रचनाओं की कोटि में भक्ति सागर, मन-विरक्तकरण, पंचोपनिषद् सार, ब्रह्मज्ञानसागर और भक्ति पदार्थ का समावेश किया जा सकता है। चतुर्थ श्रेणी में चरणदास के पदों और कवित्तों की गणना की जा सकती है। इन पदों में सद्गुरु, नाम, भक्ति, योग, ज्ञान, वैराग्य, क्षमा, दया, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सन्तोष, दैन्य, विश्वास, सत्यप्रियता, औदार्य और श्रद्धा आदि को आचार-विचार के लिए विधेय या स्वीकार्य तथा कनक, कामिनी, कुसंग, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, अहंकार, अभक्ष्य-भक्षण, मदिरा-पान, द्यूत, छल-प्रपंच, असत्याचरण, हिंसा, कदाचार आदि का त्याग मुख्य वर्ण्य-विषय के रूप में समाविष्ट हैं।

चरित्र-वर्णन सम्बन्धी ग्रंथों में कृष्ण का चरित्र ही मुख्य रूप से काव्य-रचना का केन्द्र बिन्दु है, जिसका आधार 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध घटनाक्रम है। कवि ने इन वर्णनों के माध्यम से भक्तों में कृष्ण भक्ति का उद्रेक और पोषण करना चाहा है। इसी प्रकार कथानकपरक रचनाओं में कथाओं के माध्यम से सदाचरण और सदाचारों का प्रसार तथा दुराचरण एवं दुष्प्रवृत्तियों के निरोध का उद्देश्य स्पष्ट है।

दार्शनिक काव्य विषयक रचनाओं में कवि ने विविध दार्शनिक वादों, योग, ज्ञान, कर्म एवं भक्ति आदि विषयों का सुन्दर विवेचन किया है। ये ग्रंथ कवि की विद्वत्ता और विज्ञता के परिचायक हैं। बुद्धिवादियों के लिए इनमें चिंतन की प्रचुर सामग्री है। कवि ने विवेच्य विषय को अच्छी तरह पचाकर उसे अत्यन्त प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत किया है और यथास्थान उपयुक्त दृष्टान्त और अन्तर्कथाओं का भी आश्रय लिया है।

चरणदास जी की रचनाओं में वर्ण्य विषय का पर्याप्त वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और कर्म के क्षेत्र की कोई भी बात अछूती नहीं छोड़ी है। इसके साथ ही लोकनीति और चेतावनीमूलक रचनाओं में उनका समाज सुधारक रूप मुखर है। इनको पढ़ने से ऐसा लगता है कि मानों उन्होंने धर्म और समाज के सुधार का व्रत ही ले रखा हो। उनका 'ज्ञानस्वरोदय' अनेक शास्त्रों के ज्ञान का प्रतिफल है। उनकी रचनाओं में वेद, उपनिषद्, पुराण और दार्शनिक चिन्तनपरक साहित्य का अशेष निचोड़ वर्तमान है। सूफियों, नाथ-पंथियों और संतकवियों की अभिव्यक्ति शैलियों की बानगी उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर देखने को मिलती है। उनकी बानियाँ कहीं सधुक्कड़ी बानी के समानान्तर चलती हैं तो कहीं उनमें सूर-तुलसी आदि भावुक भक्त कवियों की रचनाओं की झलक मिलती है। उनके साहित्य में दास्य, सख्य और मधुर भाव की भक्ति सम्बन्धी उक्तियाँ अत्यन्त आकर्षक और प्रभावशाली हैं। इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार चरणदास जी की सारसंग्रही तथा मधुसंचयी वृत्ति लोकमंगल की भावना से अनुरागित होकर एक उत्कृष्ट कोटि के साहित्य रचयिता के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित करती है।

उनके साहित्य में कहीं विरह-दशा की मार्मिक व्यथा का चित्र है, तो कहीं अद्भुतरसात्मक वर्णन है। उनकी 'नासकेतलीला' में नरक का वर्णन घृणोत्पादक होने के कारण वीभत्स रस का सुन्दर उदाहरण है। 'कुरुक्षेत्रलीला' में श्रीकृष्ण से वियुक्त जीवों की करुण स्थिति का जीवन्त चित्रण कवि ने किया है। लीलापरक ग्रंथों में श्रीकृष्ण की अटपटी हरकतों के माध्यम से कवि ने हास्यरस का सृजन किया है। शान्तरस का तो कहना ही क्या, यह कवि की रचना का सर्वव्यापी रस है।

चरणदास जी ने अपनी रचनाओं में संवाद के माध्यम से पाठकों और जिज्ञासुओं के प्रायः सभी साधनामूलक एवं व्यावहारिक ज्ञान सम्बन्धी जिज्ञासाओं का सटीक समाधान दिया है। दुरूह से दुरूह विषय को भी दृष्टान्तों द्वारा रोचक और ग्राह्य बनाते हुए बड़ी सुगमता से उसे हृदयंगम करा देने में कवि समर्थ सिद्ध हुआ है। कथानक के क्रम में भावुकतापूर्ण स्थलों के आने पर उन्हें भलीभाँति पहचान कर उन्होंने उनके साथ पूर्णतया न्याय किया है।

कवि ने अलंकारों का सायास प्रयोग नहीं किया है फिर भी उनकी रचनाओं में प्रायः सभी प्रचलित तथा ज्ञात अलंकारों के प्रयोग मिलेंगे। यही बात छंदों के लिए भी कही जा सकती है। इनके पदों में सैकड़ों राग-रागिनियों का प्रयोग दिखाई देता है। भाषा-प्रयोग में भी बड़ा वैविध्य है। दिल्ली के आस-पास प्रचलित भाषाओं के अतिरिक्त अवधी, संस्कृत और पंजाबी का सुन्दर प्रयोग चरणदास जी को एक सिद्धहस्त कवि तथा बहुभाषाविद् मानने को विवश कर देता है। उनका फारसी और अरबी का ज्ञान भी कम चमत्कृत करनेवाला नहीं है। इस प्रकार वे हमें एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

चरणदास जी की शिष्य परम्परा का साहित्यिक योगदान—

भक्तराज श्री चरणदास ने स्वयं तो २२ (संभव है, यह संख्या और अधिक हो) कृतियों का सृजन किया ही, अपने अनेक शिष्यों, प्रशिष्यों और उनकी शिष्य परंपराओं को भी उन्होंने काव्य-सृजन की प्रेरणा दी। उनके अधिकांश कवि-शिष्यों ने काव्य-रचना के क्षेत्र में उन्हीं को आदर्श माना। इन कवियों ने अपनी प्रबन्धात्मक कृतियों के मूल स्रोत के रूप में 'श्रीमद्भागत', 'स्कन्दपुराण' और 'पद्मपुराण' आदि कतिपय पुराणों को ही अपनाया। उनकी स्फुट बानियों में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त कवियों की शैली की निर्गुण बानियाँ भी हैं और सगुण साधकों की भाँति लीलागान का भी समावेश है। कुछ रचनाएँ साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के विवेचनार्थ एवं प्रचारार्थ भी रचित हैं, जिनमें श्री रामरूप जी का 'मुक्तिमार्ग', जुगतानन्द जी का 'भक्तिप्रबोध', सहजोबाई जी का 'सहजप्रकाश', रामसखी जी कृत 'भक्ति-रसमंजरी', जसराम उपकारी की 'भक्तबावनी', आतमराम इकंगी का सातिक शुभ लक्षण', गुरुछौना जी कृत 'षट्रूपमुक्ति' और स्वामी सिद्धराम जी कृत 'भक्ति सिद्धान्त ग्रंथ' विशेष उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त चरणदास जी के शिष्य कवियों में दयाबाई, नूपीबाई, जोगजीत जी, हरिनारायण जी, मुक्तानन्द परमार्थी, प्रेमगलतान, माधोदास, नागरीदास, नन्दराम, दाताराम, भगवानदास, सबगतराम (प्रथम), हुलासदास, रामदास (प्रथम), भजनानंद जी, दासकुँअर, पूरनप्रताप जी और हरिप्रसाद जी आदि की रचनाएँ प्राप्त हैं, जो गुणात्मक तथा संख्यात्मक—दोनों दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन सबका और इनकी शिष्य-परम्परा में हुए कवियों का परिचय आगे के अध्यायों में यथास्थान द्रष्टव्य है।

चरणदास जी के समकालीन जिन प्रशिष्यों का साहित्य उपलब्ध है, उनमें बेगमदास जी, हीरादास जी, गंगादास, अखैराम जी, रामुदास और मोहनदास जी (सभी गुरुछौना जी के शिष्य), लच्छीराम जी, भानदास जी, जैदास जी (आतमराम इकंगी के शिष्य), अगमदास निर्मोही, कर्त्तानन्द जी (सहजोबाई के शिष्य), ज्ञानानंद निर्वाणी (त्यागीराम के शिष्य), स्वामी सिद्धराम, ब्रह्मनिवास, अजपादास एवं निर्भेराम (सभी स्वामी रामरूप जी के शिष्य), श्री वृन्दावनदास, श्री नवनदास, श्री विषनानन्द (गो० जुगतानंद के शिष्य) और विष्णुदास (श्री ठंडीराम के शिष्य) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इनकी परवर्ती शिष्य-शाखा के कवियों में गुरुसरनदास, मानदास, जैदास, सेवादास, माधोदास, लालदास और केवलदास (आत्माराम इंकगी की शिष्य परम्परा के कवि), गुरुछौना जी की परम्परा के चैतराम. खुशालाबाई, बाबा मोहनदास और चेतनदास, अजपादास के शिष्य श्री मोहननिवास, रामरूप जी की परम्परा के कृपानिवास, ब्रह्मनिवास, मनमोहनदास, राधकादास, ज्ञानबाई, आनन्दराम, हरनारायणदास, सरसमाधुरीशरण और रूपमाधुरीशरण आदि का साहित्य को अमूल्य योगदान प्राप्त है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोच्य श्री शुकसम्प्रदाय के आद्याचार्य एवं परम वैष्णव श्री चरणदास के पचासों शिष्यों ने तथा इन शिष्यों की शिष्य-प्रशिष्य परम्परा के सैकड़ों महात्माओं ने सहस्रों की संख्या में छोटे-बड़े ग्रंथों की रचना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है। यदि उनकी समस्त बानियों का संग्रह किया जाय तो इनकी संख्या ५० हजार के आस-पास होगी। इस प्रकार भारतीय संस्कृति तथा आध्यात्मिक चिन्तन-परम्परा के साथ ही हिन्दी साहित्य को भी इस सम्प्रदाय की अमूल्य, उल्लेखनीय और महनीय देन प्राप्त हुई है। इस सम्प्रदाय का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। इस निधि में से जितना अंश १५–१६ वर्षों के मेरे सतत् प्रयास के कारण जानकारी में आ सका है, उसका परिचय-विवेचन तत्तद् कवि के परिचय के साथ संलग्न है। साथ ही एक अलग अध्याय में इस सम्प्रदाय की साहित्यिक उपलब्धियों का एक तटस्थ मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा रहा है।

संप्रदाय-प्रवर्त्तन और उसका विस्तार—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, चरणदास जी के शिष्यों की संख्या बहुत अधिक थी। अनेक समकालीन और परवर्ती साक्ष्यों के आधार पर केवल उनके बानाधारी शिष्यों की ही संख्या ४००० से ५००० के बीच थी। गृहस्थ शिष्यों की तो कोई गणना ही नहीं है। चरणदास जी के जीवनकाल में ही उनके ५२ शिष्यों ने अपनी साधनागत उपलब्धियों के फलस्वरूप उत्तर भारत के मुख्य-मुख्य नगरों और तीर्थस्थानों में अपने स्वतन्त्र प्रचार-केन्द्र स्थापित कर लिये थे।[1] अतः इन शिष्यों के माध्यम से भी विरक्त और गृहस्थ शिष्यों तथा दीक्षितों की संख्या सतत् बढ़ रही थी। इन केन्द्रों में दिल्ली और निकटवर्ती क्षेत्रों के बीसों प्रचार-केन्द्रों के अतिरिक्त वृन्दावन, जयपुर, शुकतार (मुजफ्फरनगर), सोरों (शूकर-क्षेत्र), अलवर, बिठूर, चित्रकूट, पटियाला, झींद, कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, चित्रकूट और पटना के केन्द्र विशेष सक्रिय थे। साथ ही इन ५२ प्रारम्भिक केन्द्र-संस्थापकों को विशेष महत्व प्रदान करते हुए उनके सम्प्रदाय में उनके थाँमों या केन्द्रों को 'बड़ी गद्दी' की सम्मानित संज्ञा प्रदान की गयी थी।

चरणदास जी ने इन बड़े केन्द्रों के आदि संस्थापकों में से प्रत्येक के साथ अपने कई-कई शिष्यों को सहयोगी के रूप में भेज दिया था। कालान्तर में इनमें से भी कई महात्माओं ने अपने स्वतन्त्र स्थान बना लिये। प्रायः सभी प्रसिद्ध राजधानियों में गद्दियाँ स्थापित हुई थीं।[2] इस प्रकार इस सम्प्रदाय में ५२ 'बड़ी

---

१. सब दिसि साधू गये विचक्षण। पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण॥
नैरित वायव अग्नि ईसाना। गाँव शहर सब कीन पयाना॥
सात पुरी अरु सातो धामा। जा साधुन कीनो बिसरामा॥
जंबू दीप के तीरथ जेते। सब मधि साधू पहुँचे ते ते॥
—लीलासागर : पृ० २०२।

२. नामी शहर भुवालन केरे। साधुन जाय किये जहाँ डेरे॥
—वही : पृ० २०२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्दियों' और ५६ या ५७ 'छोटी गद्दियों' को विशेष मान्यता प्राप्त हुई है। सम्भव है कि आरम्भ में कुछ समय तक एक या एकाधिक छोटी गद्दी किसी विशिष्ट बड़ी गद्दी (बड़े थाँमे) के आधीन रही हो, लेकिन कुछ समय पश्चात् ये भी स्वतन्त्र गद्दियाँ हो गईं। यह उल्लेख बराबर मिलता है और आज के भी चरणदासी महात्मा इससे अवगत हैं कि चरणदास जी के स्वर्गवास के समय तक ५२ बड़ी गद्दियाँ और ५६ छोटी गद्दियाँ स्थापित हो गई थीं। इस प्रकार उस समय प्रमुख थाँमों की संख्या १०८ थी। इन सभी केन्द्रों के माध्यम से चरणदास जी के ४ से ५ हजार तक विरक्त शिष्य उनका सन्देश जनता में पहुँचा रहे थे। यद्यपि इस संप्रदाय में यह एक सर्वज्ञात मान्यता है, फिर भी इस सम्बन्ध में अनेक उलझनें हैं, जिनके सम्बन्ध में इदमित्थम् कह पाना आज भी कठिन है। ये प्रश्न हैं—

(१) बड़ी और छोटी गद्दी का निर्धारण किस आधार पर हो ?

(२) बड़ी गद्दियाँ कहाँ-कहाँ थीं और छोटी गद्दियाँ कहाँ थीं तथा उनके संस्थापक कौन थे ?

(३) कौन सी गद्दी कब स्थापित हुई और उसकी शिष्य-परम्परा किस प्रकार चली ?

(४) क्या कोई ऐसी सूची उपलब्ध है, जिससे पता चले कि ५२ शिष्यों में कौन-कौन थे और १०८ या १०९ प्रमुख शिष्यों में से शेष ५६ या ५७ कौन-कौन छोटी गद्दियों के संस्थापक थे ?

इन प्रश्नों का उत्तर देना सरल काम नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि पहले तो इस सम्बन्ध में कोई ऐसी सूची ही नहीं है, जिसमें १०८ शिष्यों में से सभी के नाम सम्मिलित हों और दूसरी बात यह कि इन नामों में से कितने बड़े थाँमे से सम्बद्ध हैं और कितने छोटे—इसका भी निर्धारण संप्रति सम्भव नहीं है। चरणदास जी के जिन शिष्यों ने उनका जीवनचरित लिखा है या उनका तथा उनके शिष्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है, वे भी इस प्रश्न पर मौन हैं। जोगजीत जी, रामरूप जी, गुरुछौना जी, सहजोबाई जी और उपकारी जसराम जी आदि में से किसी ने भी १०८ शिष्यों की सूची नहीं दी है। इनमें से सर्वाधिक सहायक कृति है—जोगजीत जी का 'लीलासागर।' इसमें श्री चरणदास के लगभग ९० शिष्यों के वृत्त का समावेश है, जिसमें से कुछ का मात्र उल्लेखात्मक और कुछ का विशेष परिचय दिया गया है। अतः यही एक मात्र आधारभूत कृति है, जिसके साक्ष्य पर हम इस संप्रदाय का तात्कालिक वृत्त जान सकते हैं। परन्तु इसमें भी उन ५२ शिष्यों की सूची नहीं दी गयी है, जिन्हें बड़ी गद्दियों का संस्थापक माना जाता है। यहाँ तक कि अन्य प्रमाणों से सिद्ध कतिपय पर्याप्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सक्रिय गद्दियों के संस्थापकों का 'लीलासागर' में नामोल्लेख तक नहीं है—जैसे ब्रह्मप्रकाश जी और छीतरमल जी। जब कि इन लोगों के प्रचार केन्द्रों ने संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

इस चर्चा को यहीं छोड़कर यहाँ तीन अन्य समस्याओं पर पहले विचार करना आवश्यक है—(१) चरणदास जी द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव-काल, उसका नामकरण और दिल्ली की गद्दी के उत्तराधिकारी का निर्धारण आदि के सम्बन्ध में विचार (२) बड़ी और छोटी गद्दियों के संस्थापकों के नाम-सहित एक प्रामाणिक सूची का निर्माण तथा (३) इन गद्दियों द्वारा सम्प्रदाय और साहित्य को दिये गये योगदान का मूल्यांकन। इनमें से अन्तिम प्रश्न का उत्तर इस प्रबन्ध के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्यायों में स्वतन्त्र रूप से दिया जायगा, क्योंकि इनके लिए पर्याप्त विस्तार अपेक्षित है।

(१) संप्रदाय-प्रवर्त्तन का काल-निर्धारण—डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने अपने शोधप्रबन्ध 'संत चरनदास' में इस सम्बन्ध में विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि चरणदास जी ने शिष्य-निर्माण-प्रक्रिया का शुभारम्भ अपनी ३५ वर्ष की अवस्था से अर्थात् सं० १७९५ वि० से प्रारंभ किया। इसके लिए उन्होंने तर्क यह दिया है कि नादिरशाह के दिल्ली पर आक्रमण (सं० १७९६ वि०) के पूर्व चरणदास जी ने एक सिद्ध योगी को अपनी सिद्धियों से पराभूत करके अपना सर्वप्रथम शिष्य बनाया था। अपनी इस मान्यता की पुष्टि के लिए उन्होंने श्री रामरूप के 'गुरुभक्तिप्रकाश' से एतत्सम्बन्धी एक विस्तृत प्रसंग उद्धृत किया है। उक्त वृत्त की जिन पंक्तियों के आधार पर उस योगी को दीक्षा देने का अर्थ दीक्षित जी ने ग्रहण किया है, वे इस प्रकार हैं—

वाही सिद्ध को लेके साथा। अस्थल आये फुल्लत नाथा॥
फिर वा सिद्ध को रुखसत कीन्हा। टोपी सेली चोला दीना॥
ऐसे सतगुरु पर उपकारी। सुखी रहें अस्थान मँझारी॥[1]

मात्र इसी वर्णन के आधार पर उस सिद्ध को उनका प्रथम शिष्य मानना और यहीं से सम्प्रदाय का आरंभ मानना तर्कसंगत नहीं है। प्रथम तो यह कि केवल टोपी, सेली और चोला भेंट या विदाई के रूप में देना शिष्य बनाना नहीं है, दूसरे यह कि केवल एक शिष्य बनाकर ही कोई संप्रदाय का प्रवर्त्तन नहीं करता। योग-सिद्धि और ज्ञान-परीक्षा में पराभूत एक योगी को विदा करते समय विदायी में इन वस्तुओं के अतिरिक्त दिया ही क्या जा सकता है? एक-दो शिष्य तो हर साधु बना लेता है। इसीलिए संप्रदाय-प्रवर्त्तन का काल यह नहीं हो सकता।

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ८१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना तो निश्चित है कि वह योगी उनका प्रथम शिष्य नहीं था और न तो उन्होंने उसे दीक्षा ही दी थी। तबतक उन्हें अपने गुरु से संप्रदाय चलाने का आदेश भी नहीं मिला था। डॉ० दीक्षित के कथन का आंशिक समर्थन 'लीला-सागर' से भी होता है, जिसे उन्होंने अपने शोधकार्य के समय तक पढ़ा या देखा ही नहीं था। उसकी निम्न पंक्तियाँ उनके मत का समर्थन करती प्रतीत होती हैं—

संग लाये वा शिष्य कर, अपना बाना दीन।
एक मास ढ़िग राख कर, उपदेश्यो परवीन ॥[1]

इस उद्धरण से केवल इसी बात की पुष्टि होती है कि चरणदास जी और उस योगी में चमत्कार-प्रदर्शन की जो होड़ थी और जिसमें पराजित होने पर उसे शिष्य बनने की शर्त थी, मात्र उसकी औपचारिक पूर्त्ति हुई। अभी तक अपना अलग संप्रदाय चलाने की कल्पना ने उनमें मूर्त्तरूप नहीं धारण किया था।

प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि नन्दराम जी उनके प्रथम शिष्य थे वे परीक्षितपुरा के ढूसरवंशीय एक किशोर जिज्ञासु थे। उनकी प्रेरणा से चरणदास जी दिल्ली के प्रतिष्ठित नागरिक एवं अपने संबंधी श्री हरिप्रसाद भार्गव के यहाँ रहने के लिए गये। वहाँ वे कुछ समय तक रहकर साधना और भक्ति-प्रचार में रत हुए थे।[2] इसी बीच आतमराम इकंगी, नूपीबाई, सहजोबाई, सहजोबाई के चार भाई और पिता-माता, आतमराम के पिता जीवनदास जी आदि लगभग ३० शिष्यों ने उनसे दीक्षा ली। इनमें से अधिकांश ढूसर ही थे।[3]

---

१. लीलासागर : पृ० १३८।

२. नंदराम बोले सुख साजे। आये ये दर्शन के काजे ॥
हरिप्रसाद ये ददा हमारे। चारो इनके पुत्र जु लारे ॥
भक्तराज उत ओर निहारे। हरिप्रसाद कर जोर उचारे ॥
महाराज मोघरहिं बिराजो। सब नित दर्शन दो सुख साजे ॥
दो दैलान चौबारे कहिये। मन माने जामें तुम रहिये ॥
× × ×
जाय कोठरी माँहि विराजे। निश्चल ध्यान करन के काजे ॥
—वही : पृ० १९२–९३।

३. चरणदास जी के १०८ प्रमुख बानाधारी शिष्यों में से ढूसरवंशीय शिष्यों की संख्या ३५ के लगभग है, जिसमें प्रेमदास ब्रह्मचारी, हरिप्रसाद, नन्दराम, सुखदास, दासकुँअर, हरिनारायण, नारायणदास, आत्माराम, नूपीबाई, सहजोबाई, प्रेमघन, नंदलाल, जुगलदास, महादास, सेवकदास,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः यहीं से उनके द्वारा प्रवर्तित श्री शुकसंप्रदाय का शुभारंभ मानना चाहिए। इसके पूर्व उन्हें उनकी वृन्दावन की यात्रा के समय उनके आराध्य श्रीकृष्ण भगवान् और गुरुदेव श्री शुकमुनि से कृष्ण-भक्ति का विधिवत् प्रचार-प्रसार करने का आदेश भी मिल चुका था।[1]

चरणदास जी के जीवन–घटना–क्रम को देखते हुए कहा जा सकता है कि जिस समय नन्दराम उनके शिष्य बने थे उस समय उनकी आयु ३६–३७ वर्ष के मध्य में थी। १९ वर्ष की अवस्था में उन्हें गुरु-दीक्षा प्राप्त हुई थी। ३१ वर्ष की आयु तक उन्होंने गुफा में योग साधना की और ५ वर्ष तक फतेहपुरी में राज-वैभव के साथ वे साधनारत रहे। जिस समय उन्होंने इस वैभव का त्याग किया और वृन्दावन में भगवान् कृष्ण और गुरु शुकदेव मुनि के दर्शन हुए तथा उन दोनों के साथ उनकी गोष्ठी हुई, उस समय उनकी अवस्था ३६ वर्ष से कुछ ऊपर थी। वृन्दावन से लौटकर वे परीक्षितपुरा में रहने लगे। वहीं नन्दराम जी उनके शिष्य बने। उसके कुछ ही समय पश्चात् अर्थात् सं० १७९७–९८ वि० में कई शिष्यों ने उनसे दीक्षा ली और विधिवत् उनका संप्रदाय चल निकला।[2] ज्यों-ज्यों शिष्यों

निरंजनदास, अतीतराम जयदेव, गरीबदास, हरिकृष्णदास, जीवनदास, दयाबाई और गंगाविष्णुदास आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार विशिष्ट शिष्य सूची के १०८ शिष्यों में लगभग ⅓ तो दूसरे ही हैं।

१. तब बोले सुकदेव गुसाईं। धीरज दे अपने जन ताईं॥
…जेहि हित तुम औतार लिया है। अबतक सो नहिं काज किया है॥
जीव उबारन को तुम आये। भक्ति नाव सो नाहिं चढ़ाये॥
भक्ति चलावो जगत में, जग के जीव उबार।
बैठि भजन की नाव में, भव जल उतरैं पार॥
…अब तुम इन्द्रप्रस्थ को जावो। उपदेशन को करो उपावो॥
—लीलासागर : पृ० १८९–९०।

२. जैसी जाको चाह जो होई। चरणहि दास बतावें सोई॥
भक्ति योग अरु ज्ञान बतावें। ध्यान जाप की विधि समझावें॥
बाहर गाँव शहर के आवें। सुनि सुनि ज्ञान शिष्य हो जावें॥
ऐसे शिष्य हजारन हूए। तिनके ताप मिटे मन दूये॥
राव रंक अरु शाह अमीरा। आवें जावें सुखद गंभीरा॥
साधुन कही जो आज्ञा पावें। रामत करने बाहिर जावें॥
चरणदास यों बचन उचारो। रामत करन जो साधु सिधारो॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और साधुओं का समुदाय बढ़ता गया, दिल्ली में उनके आश्रम का स्थान-परिवर्तन भी होता गया। इस प्रकार घास की मंडी, तेलीवाड़ा (पुराना शहर) नई बस्ती आदि से आश्रम का केन्द्र बदलते-बदलते अन्ततः अपनी ६१ वर्ष की अवस्था में दिल्ली के शुकदेवपुरा में उपयुक्त स्थान और सुविधा पाकर उन्होंने स्थायी आश्रम बनाने का उपक्रम किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सं० १८२१ से १८३९ वि० के बीच सम्प्रदाय के गठन, उसके साधना एवं उपासना के सिद्धान्तों का निरूपण और प्रचार-प्रसार का सुनियोजित कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस बीच विरक्त शिष्यों की संख्या सहस्रों में पहुँच चुकी थी।[1]

सम्प्रदाय-प्रचार हेतु की गई यात्राएँ—

एक बार अपने विशिष्ट सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हो जाने पर उसके लोकमंगलकारी सन्देशों को प्रचारित-प्रसारित करने एवं शिष्य-समुदाय का सम्यक् संगठन करने के उद्देश्य से चरणदास जी ने अपने जीवनकाल के अन्तिम दशक (सं० १८३०–३९ वि०) में शिष्यमण्डली-सहित कई बार 'रामत' का कार्यक्रम सम्पन्न किया। यह एक प्रकार से सम्प्रदाय-प्रचार की ही यात्रा थी, जिसका अनुकूल परिणाम भी हुआ। ऐसी यात्राओं की योजना कितनी बार कार्यान्वित हुई इसका पूरा विवरण तो दे पाना कठिन है परन्तु प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इनकी संख्या १५ से २० के बीच बताई जा सकती है। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए जिन स्थानों की यात्रा चरणदास जी और उनकी साधुमण्डली ने की, उनमें कुछ का नामोल्लेख इस प्रकार कर सकते हैं—

(१) दिल्ली से वृन्दावन की दो यात्राएँ, (२) शाहजहाँपुर (तहसील—रिवाड़ी, जिला—महेन्द्रगढ़ का एक गाँव) की यात्रा, जिसमें तत्कालीन गुडगाँव जनपद का व्यापक जनसम्पर्क भी सम्मिलित है, (३) हापुड़ होते हुए गढ़मुक्तेश्वर

काहू से कछु माँगनो नाहीं। राखो लोभ न मन के माहीं ॥
करि उपदेश परमारथ हेतु। दो बताय हरि शरण जु सेतु ॥
बोलो सबसों शीतल बैना। सपने हूँ मद मान न मैना ॥
बहुबिधि कर समझाइया, साधुन की जो रीति।
हरषि चले साधू जना, हिय पद पंकज प्रीति ॥
सब दिसि साधू गये विचक्षण। पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण ॥ आदि।
—लीलासागर : पृ० २०१–२०३।

१. चेले कई हजार, जगत में सुयश छयो है।
चरणदास को नाम, चहूँ दिसि प्रगट भयो है ॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २१०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में गंगा-स्नान हेतु की गई अनेक यात्राएँ, (४) श्री विद्यानाथ योगी को शिष्य बनाने के पश्चात् उनके शामली (मुजफ्फरनगर) स्थित आश्रम की सदल-बल यात्रा तथा (५) दिल्ली से कर्नाल, कर्नाल से नरसिंहगढ़, पुनः वहाँ से कर्नाल, कर्नाल से पानीपत और पानीपत से वापस दिल्ली की यात्रा। पंजाब में सम्प्रदाय-प्रसार की दृष्टि से ये यात्राएँ बहुत उपयोगी रहीं। इन में तीन मास का समय लगा था। फलतः जब दिल्ली में उन्होंने अपने निवास का स्थान बदलकर साबुन की मण्डी (नई बस्ती) में नया आश्रम बनाया तब तो शिष्यों की संख्या बहुत बढ़ गई।[1]

(६) सन्त चरणदास की उज्जैन-यात्रा भी बड़ी सफल रही। वहाँ भी उन्होंने बड़ी संख्या में शिष्य-समुदाय बनाया।[2] (७) उनकी लखनऊ की दो यात्राओं में अनेक लोग शिष्य बने और कई प्रचार-केन्द्र स्थापित हुए। इस तथ्य की पुष्टि जोगजीत जी की इन पंक्तियों से हो रही है—

शिष्य किये ता ठाँव विशेषा। कण्ठी तिलक दिये उपदेशा ॥[3]

(८) **मथुरा की यात्रा**—इसमें चरणदास जी ने मथुरा के निकट जैसिंह-पुरा नामक स्थान में दो दिन रहकर ज्ञानोपदेश दिया था और कई शिष्यों को दीक्षित किया था। (९) तीसा (मुजफ्फरनगर) की यात्रा में उन्होंने अवर्षण-ग्रस्त प्रजा के लिए वर्षा का दान देकर बड़ी संख्या में लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया था। उस समय उनके शिष्य गुरुमुखदास वहीं रहते थे।[4]

(१०) सिलसिली (जिला मुजफ्फरनगर) स्थित अपने शिष्य भगवानदास जी के आश्रम की यात्रा। यहाँ वे कई दिन तक रहे थे और वहाँ अनेक लोग उनके शिष्य बने।[5]

(११) मुडोला (तह०—साँपला, जि०—रोहतक) स्थित अपने शिष्य त्यागीराम जी के आश्रम की यात्रा, जिसके फलस्वरूप रोहतक जनपद में सर्वाधिक गद्दियाँ स्थापित हुईं।

---

१. साबुन मण्डी आन, चरणदास अस्थल किया।
नई बस्ती में जान, बहुत भेख तासों बढ़्यो ॥—लीलासागर : पृ० २४९।

२. बहुत शिष्य तहाँ किये गुसाईं। सबके मन की आस पुराई ॥
—वही : पृ० २६८।

३. वही : पृ० २७१।

४. वही : पृ० २७३।

५. बहु नर आय शिष्य हो जावें। कल्प वृक्ष ज्यों आस पुजावें ॥
—वही : पृ० २७६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) काँधला (जिला—मुजफ्फरनगर) स्थित अपने शिष्य सहजानन्द के स्थान की यात्रा में उन्होंने सर्प-विष के कारण मृत सहजानन्द जी को पुनः जीवित करके आस-पास के लोगों को चमत्कृत कर दिया था।

(१३) जयपुर नगर की दो यात्राएँ, जिनमें श्री चरणदास के प्रति क्रमशः सवाई ईश्वरीसिंह जी तथा सवाई प्रतापसिंह जी द्वारा प्रभूत आदर और सेवा का भाव निवेदित किया गया। जयपुर की दूसरी यात्रा तो तीन मास की अवधि की थी और इसमें असंख्य लोग उनसे प्रभावित हुए थे। यह यात्रा अपने स्वर्गवास से कुछ ही मास पूर्व उन्होंने सम्पन्न की थी।

(१४) खुर्जा नगर स्थित जोगजीत के स्थान की यात्रा में उनके उपदेशों से नगर के बड़ी संख्या में नर-नारी भक्ति-पथ की ओर आकृष्ट हुए थे। इसका वर्णन करते हुए 'लीलासागर' के रचयिता एवं एक सिद्ध साधक जोगजीत जी का कथन इस प्रकार है—

सकल नगर में बड़ा उमाहा। नर नारिन दर्शन का लाहा॥
दिन महँ रहे पुरुषन का मेला। नगर गाँव के आवें रेला॥
रैन होय तिरियन की बारी। गावत आवें मंगलचारी॥
न्योतन को सेवक झगरावें। ज्यों त्यों करि इक की ठहरावें॥
महाराज लखि लखि घबरावें। कूच करन की रोज उपावें॥[1]

श्री चरणदास की यह यात्रा उनके परमधाम पधारने के ८ माह पूर्व अर्थात् वैशाख मास सं० १८३९ वि० में सम्पन्न हुई थी।

श्री जोगजीत जी ने 'लीलासागर' में चैत्र-वैशाख मास सं० १८३९ वि० में चरणदास जी द्वारा कई हजार साधुओं और भक्तों के साथ की गई संप्रदाय-प्रचार की दृष्टि से दिग्विजय-यात्रा के समकक्ष जयपुर की 'रामत' का उल्लेख तक नहीं किया है। यह कुछ समझ में आने वाली बात नहीं है। इसी प्रकार खुर्जा की यात्रा के पूर्व उनके मथुरा-गमन का वृत्त भी उन्होंने नहीं दिया है। इसी सन्दर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि रामरूप जी ने चरणदास जी की खुर्जा यात्रा का उल्लेख नहीं किया है परन्तु उन्होंने मथुरा की उनकी दो दिन की यात्रा का वृत्त विस्तार से दिया है। इस यात्रा में चरणदास जी ने अनेक शिष्य बनाये थे और वहाँ के ब्राह्मणों को पर्याप्त दान-दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया था।[2] स्वामी रामरूप जी के कथनानुसार

---

१. लीलासागर : पृ० ३३९।
२. अरु ह्वाँ के बासी बहुत, दरसन कीने आय।
जो पहले सिख साधु थे, सबने पूजे पाँय॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी ने अपना एक शरीर दिल्ली में ही रखा था, जिससे वहाँ के लोगों को उनकी यात्रा का पता ही नहीं चला था और दूसरा शरीर धारण करके वे मथुरा में शिष्यों तथा भक्तों की दो दिन तक मनोकामना पूर्ण करते रहे। वे कहते हैं—

दिल्ली के दिल्ली में रहे। धार रूप ह्वाँ परगट भये ॥
दर्शन दिये किये भरपूरा। वा मन के सब दुख भये दूरा ॥
× × × ×
रहे वहाँ जो दोय दिन। लीला करि भये गोप ॥
दिल्ली किनहुँ न जानिया। रही जु बात अलोप ॥[1]

सं० १८३८ वि० के चैत्रमास में चरणदास जी ने डहरा और मथुरा-वृन्दावन की एक समारोहपूर्ण यात्रा भी की थी। इस तथ्य की पुष्टि वृन्दावन के पण्डा की बही से होती है। इस यात्रा में डहरा से लौटकर उन्होंने ८४ कोस ब्रज की यात्रा की थी और उसी समय उन्होंने रामकृष्ण और श्रीकृष्ण नामक दो भाइयों को कामावन में पहुँच कर अपना और अपने सम्प्रदाय का पण्डा (तीर्थ पुरोहित) बनाया था। दूसरी ओर जोगजीत जी ने इसका उल्लेख ही नहीं किया है। इस पण्डा परिवार के वर्तमान वंशजों में से एक श्री गोपाल पण्डा की बही में चरणदास जी की मुहर के साथ यह अनुज्ञापत्र अब भी है। इसमें जो मुहर लगी है, उसमें उर्दू में 'चरणदास आधीन पै दया करो शुकदेव' अंकित है। यह नियुक्ति सं० १८३८ वि०, मिती चैत्र सुदी १०, बुधवार की है।

अंततः यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि सं० १८३६ वि० से सं० १८३९ वि० के बीच उन्होने दिल्ली से लगभग २०० कोस तक चतुर्दिक व्यापक यात्राएँ की थीं। उनके शिष्यों ने भी यत्र-तत्र रामत करते हुए अपने प्रचार केन्द्र स्थापित किये थे। यहाँ तक कि देश के सुदूर अंचलों यथा पुरी (उत्कल), मुर्शीदाबाद (पूर्वी बंगाल), पटना, काशी, उज्जैन, जयपुर, कनखल (हरिद्वार), भटिंडा (पंजाब), जबलपुर और कंधार (अफगानिस्तान) आदि स्थानों में भी उनके शिष्य पहुँच कर प्रतिष्ठित हो गये तथा अपने प्रचार-केन्द्रों से उन लोगों ने अपने गुरु का संदेश

नये शिष्य बहुते भये, मन्तर कण्ठी लीन।
चरणों की शरणा लिया, हित कर पूजा कीन ॥
महाराज दूजे दिना, न्हान किया विश्रांत ॥
ह्वाँ के बिप्रन को दिया, दान जु बहुती भाँति ॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २०९।

१. वही : पृ० २०९–२१०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारित करना आरंभ किया। प्रयाग, लखनऊ, चित्रकूट, आगरा, खुर्जा, मथुरा, वृन्दावन, भरतपुर, अलवर, रोहतक, झींद, गुड़गाँव, बृहत्तर दिल्ली, गाजियाबाद, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सोरों (एटा), शाहजहाँपुर (उ० प्र०), बिजनौर और बिठूर के प्रचार-केन्द्र कई दशकों तक पर्याप्त सक्रिय रहे। दिल्ली के मुख्य केन्द्र से निकट होने के कारण ये और भी प्रभावशाली स्थान बने। प्रसिद्धि है कि उनके जिस शिष्य ने जहाँ रहते हुए उनका आह्वान किया वे वहाँ-वहाँ अविलम्ब प्रकट हुए, चाहे वह स्थान तीर्थ हो, नगर हो या गाँव।[1]

संत चरणदास का यह अलौकिक व्यक्तित्व उनके शिष्य-प्रशिष्यों का ऐसा संबल था, जिसकी सहायता से वे वन-उपवन, गिरिप्रांतर और नगर-ग्राम सर्वत्र निश्चितता के साथ अपने गुरु का संदेश प्रचारित कर सके थे। इस प्रकार उनके जीवन-काल में ही उनके विरक्त तथा गृहस्थ शिष्यों, अनुयायियों और उनके प्रति श्रद्धा-पूजा-भाव रखनेवालों की संख्या लाखों में पहुँच गई थी।

दिल्ली की मुख्य गद्दी के महंत-पद का विवाद और उसकी परिणति —

भविष्यद्रष्टा चरणदास जी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में या इससे पूर्व किसी को अपना उत्तराधिकारी न बना गये हों, यह बात कुछ समझ में नहीं आती। जो महात्मा नादिरशाह के आक्रमण की ब्यौरेवार भविष्यवाणी छह मास पूर्व साधिकार हस्ताक्षर सहित लिखकर बादशाह की सेवा में भेज दे, वह अपने देह-त्याग के उपरान्त उत्तराधिकार पद-प्राप्ति के लिए पहले से ही कोई व्यवस्था न कर जाय, यह कैसे माना जा सकता है?

इतना तो निश्चित ही है कि चरणदास जी के ५००० विरक्त शिष्यों में गुसाईं जुगतानंद, स्वामी रामरूप और सुश्री सहजोबाई--ये तीन चरणदास जी के योग्यतम तथा परम प्रभावशाली शिष्य थे। गुरुदेव इन्हीं तीनों में से किसी एक को अपना उत्तराधिकारी बना सकते थे। इनमें भी सहजोबाई एक स्त्री सन्त थीं और साथ ही चरणदास जी की फुफेरी बहन भी थीं। उन्हें उत्तराधिकारी बनाने में उन्हें पक्षपात-दोष का भागी होना पड़ सकता था। अब रहे रामरूप जी और गुसाईं जुगतानंद जी। इनमें से रामरूप जी केवल नाम के ही 'गुरुभक्तानंद' नहीं थे, बल्कि गुरु के सच्चे सेवक और विश्वासपात्र भी थे। उनकी सर्वतोमुखी योग्यता उन्हें सब प्रकार से एक योग्य उत्तराधिकारी-पद के उपयुक्त बनाती थी। वे चरणदास जी के दीवान (मन्त्री), आश्रम के व्यवस्थापक, गुरुभाइयों में सम्मान्य,

---

१. जहँ जहँ चेलन दूर जु ध्याये। होय प्रगट तिन्हों दर्शन द्याये।
तीरथ पुर अरु गाँवन वासा। बहु वपु धार रमे चरणदासा॥
—लीलासागर : पृ० ३३५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु की बानियों के लिपिकर्त्ता तथा उच्चकोटि के कवि के रूप में विख्यात थे। उन्हें 'स्वामी' की उपाधि गुरु द्वारा पहले ही प्राप्त थी। अपने स्वर्गवास की पूर्व सूचना भी १२ वर्ष पहले, पुनः १ वर्ष पहले और फिर दो दिन पूर्व गुरु ने केवल उन्हीं को दी थी। उनके विरक्त गुरुभाई और गुरु की गृहस्थ शिष्य-मण्डली उन्हें गुरु के उत्तराधिकारी के रूप में सम्मान देती थी।

जोगजीत जी ने 'लीलासागर' में उन्हें ही 'शुक संप्रदाय' का प्रवर्त्तक बताया है।[1] यदि उनका यह कथन ठीक है तो यह कहा जा सकता है कि चरणदास जी ने स्वयं कोई संप्रदाय नहीं चलाया और न तो अपनी गद्दी ही उन्होंने स्थापित की। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि उनके जीवन-काल में ही रामरूप जी ने एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय चला दिया था और वे उसके प्रवर्त्तक के रूप में एक स्वतंत्र गद्दी के महंत भी मान लिये गये थे। उन्होंने ८२ अन्य शिष्य गद्दियाँ स्थापित करके अपनी गद्दियों के विस्तार की परंपरा भी चला दी थी।

'लीलासागर' के साक्ष्यानुसार रामरूप जी ने स्वप्न में शुकमुनि का यह आदेश पाया था कि मेरी मूर्त्ति जंगल में एक पहाड़ी गुफा में है, उसे लाकर विधिवत् स्थापित करके उपासना की व्यवस्था करो। रामरूप जी ने इस आदेश का पालन किया और उन्होंने दिल्ली में श्री शुकमुनि की छतरी, चरणपादुका और प्रतिमा की ससमारोह स्थापना कराके श्री जुगलबिहारीलाल का एक सुन्दर जगमोहन (बरामदा) सहित स्थान निर्मित कराया।[2] मन्दिर-निर्माण की दिशा में नवप्रवर्तित शुकसंप्रदाय का यह प्रथम अभियान था। अतः निष्कर्ष-रूप में कहा जा सकता है कि स्वामी रामरूप एक संप्रदाय प्रवर्त्तक, मंदिरनिर्माता और अपने गुरु के प्रबल उत्तराधिकारी के रूप में अपने व्यक्तित्व-निर्माण में सतर्कता से संलग्न थे।

परन्तु जहाँ एक ओर जोगजीत जी स्वामी रामरूप जी के इतने भव्य व्यक्तित्व का चित्र उपस्थित कर रहे हैं, वहीं 'लीलासागर' के अन्तिम अंश में यह भी लिख

---

१. स्वामी रामरूप रंग भीने। शिष्य सेवक अनगिन निज कीने॥
किये बियासी गुणी महंता। साधुन को कछु पार न अंता॥
जग में हरी भक्ति फैलाई। शुकमुनि संप्रदाय प्रकटाई॥
—लीलासागर : पृ० २२२।

२. दिल्ली आ छतरी बना, पधराये करि प्यार।
सेवा होवे नित जहाँ, दर्श करें नर नार॥
जुगल बिहारी लाल के, जगमोहन अस्थान।
जोगजीत राजे जहाँ, मूरति शुक भगवान॥
—वही : पृ० २२३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते हैं कि अपने स्वर्गवास के दो दिन पूर्व ही भक्तप्रवर चरणदास ने खुर्जा के अपने आश्रम में सोये हुए श्री जोगजीत को अपने देह-त्याग की पूर्व सूचना स्वप्न में दी और यह भी बता दिया—

गुप्त सु तो सेती कहूँ, अप ही की उच्चार।
जुगतानंद ही को दिया, अपनो में अधिकार॥
निजस्वरूप सों अब मिलें, या तन सेती नाहि।
रहियो बहु आनंद सों, श्री शुक चरणन माहिं॥[1]

इस प्रकार जोगजीत जी ने एक ऐसा रहस्योद्घाटन किया, जो गो० जुगतानंद को उत्तराधिकारी घोषित किये जाने से संबद्ध है। इसमें जोगजीत जी का उद्देश्य क्या है, यह तर्क का विषय है। इसमें कई सम्भावनाएँ निहित हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) चूँकि रामरूप जी ने 'शुकसम्प्रदाय' को गुरु के जीवन काल में ही विधिवत प्रचारित करने का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया था और वे एक विशिष्ट सम्प्रदाय के आचार्य-रूप में महंत बन ही गये थे, अतः गुरु ने उनको अपनी गद्दी का भावी उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया।

(२) सम्भव है, चरणदास जी अपनी इहलीला-समाप्ति के पूर्व किसी बात से उनसे रुष्ट रहे हों। परन्तु यदि ऐसी बात रही होती तो हर बार अपने स्वर्गारोहण की पूर्व सूचना उन्हें ही क्यों देते? साथ ही उनकी रुष्टता का कारण और प्रमाण भी उपलब्ध नहीं है। अतः इसे भी कारण-रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(३) सिद्धि, योग्यता और पात्रता में गो० जुगतानन्द भी रामरूप जी से कम नहीं थे, अतः सम्भव है कि गुरु ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में उन्हें ही चुना हो। यह भी सम्भावना हो सकती है कि चरणदास जी के शिष्यों में रामरूप जी और जुगतानंद जी को लेकर दलबन्दी हो गई हो और सम्प्रदाय के इतिहासकार तथा एक प्रभावशाली महंत होने के कारण जोगजीत जी को जुगतानंद जी ने अपने पक्ष में मिला लिया हो। ज्ञातव्य है कि 'लीलासागर' में रामरूप जी की जितनी प्रशंसा है, उतनी गो० जुगतानंद की नहीं है। अतः गो० जुगतानन्द के पक्ष-समर्थन संबंधी जोगजीत जी का दृष्टिकोण किसी विशेष कारण की संभावना से युक्त है।[2]

---

१. लीलासागर : पृ० ३४६।

२. गोसाईं श्री महाराज जी, जुगतानन्द महन्त।
भक्तराज चरनदास सम, मानें सब मिलि सन्त॥
—वही : पृ० ३५२॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सम्प्रदाय के दिल्ली स्थित तीनों आचार्य गद्दियों के वर्तमान महन्त अपनी ही गद्दी को सर्वप्रमुख गद्दी की परम्परा में होने की बात कहते हैं परन्तु जयपुर, वृन्दावन तथा दिल्ली के अधिकांश वर्तमान चरणदासी विद्वान् इस मान्यता के समर्थक हैं कि गुसाईं जुगतानन्द की गद्दी ही 'सदर गद्दी' है और इसी गद्दी के महन्त की उपाधि 'महन्तान् महन्त' की है। इस तथ्य की पुष्टि सन् १९४५ ई० में रामरूप जी की गद्दी के तत्कालीन महन्त श्री भोलादास द्वारा मेरठ के न्यायालय में प्रस्तुत एक वाद के निर्णय में उल्लिखित कुछ तथ्यों से भी होती है। माननीय न्यायाधीश ने अपने निर्णय के चौबीसवें पृष्ठ पर गुसाईं जुगतानंद की गद्दी के उस समय के महन्त गुलाबदास जी के बयान का एक अंश उद्धृत किया है, जिसमें गो० जुगतानन्द को चरणदास की गद्दी का विधिवत् नियुक्त महन्त बताया गया है।[1]

प्राप्त तथ्यों के अनुसार चरणदास जी के परलोकवास के समय से ही प्रधान महन्त-पद के लिए रामरूप जी, गो० जुगतानन्द और सहजोबाई जी के समर्थकों में विवाद छिड़ गया था। ये तीनों ही वरिष्ठ शिष्य उक्त पद के दावेदार थे। उस प्रश्न को लेकर चरणदास जी के शिष्य-प्रशिष्यों में भी तीन दल हो गये थे। जब आपसी वार्ता और पंचायत से इस विवाद का निपटारा न हो सका तो गो० जुगतानन्द और रामरूप जी की ओर से निर्णय हेतु यह विवाद सं० १८४० वि० में (चरणदास जी की मृत्यु के एक वर्ष बाद) तत्कालीन मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय के न्यायालय में गया था। वहाँ यह सिद्ध हुआ कि चरणदास जी किसी को भी गद्दी नहीं दे गये। रामरूप जी के शिष्य स्वामी सिद्धराम जी के बयान से यह ज्ञात होता है कि चरणदास जी की मृत्यु के एक वर्ष बाद जब उनकी बरसी का मेला आयोजित किया गया था तो उसमें एकत्रित हुए चरणदासी महात्माओं ने सहजोबाई जी, रामरूप जी और गो० जुगतानन्द—तीनों को महन्त के रूप में मान्य किया था और इन तीनों शिष्यों को १०-१० दिन के क्रम से 'अस्थल' (चरणदास जी द्वारा निर्मित मंदिर एवं स्थान) की सेवा का भार सौंप दिया था। ८ वर्ष तक तो कोई गड़बड़ी नहीं हुई परन्तु जब सं० १८४८ वि० में रामरूप जी के स्थान पर उनके शिष्य सिद्धराम जी को महन्त-पद पर अभिषिक्त किया गया तो उक्त विवाद पुनः छिड़ा। अतः दोनों पक्षों को पुनः अदालत की शरण में जाना पड़ा।

---

1. Charandas ji had 52 Chelas, out of whom Shri Yukta Nand was made 'Gaddinashin' of the Gaddi of Charandas by later and so he was the biggest chela and he was called 'Shri Mahant' and he who succeeds to the Gaddi of Yuktanandji is called 'Shri Mahant'.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महन्त गंगादास जी (अभी ५–६ वर्ष पूर्व स्वर्गवासी, महंत सहजोबाई जी की गद्दी–दिल्ली) का कथन है कि उस समय अदालत ने सुश्री सहजोबाई जी को ही चरणदास जी की गद्दी की अंतरिम व्यवस्थापिका नियुक्त कर दिया था। कुछ समय बाद सहजोबाई जी ने उसी अदालत में इस आशय का एक आवेदन पत्र दिया कि गु० जुगतानन्द 'अस्थल' में अशांति उत्पन्न कर रहे हैं। फलतः अदालत ने निर्णय दिया कि इन तीनों शिष्यों को १०-१० दिन के लिए 'अस्थल' की पूजा-उपासना का भार उठाना पड़ेगा और इन तीनों को अपना अलग-अलग स्थान बनाकर रहना होगा। मुख्य स्थल में इनमें से कोई भी नहीं रहेगा।

स्व० महंत गंगादास जी के अनुसार सहजोबाई जी इन दोनों से आयु में ज्येष्ठ थीं। अतः रामरूप जी और गु० जुगतानन्द द्वारा जब अपनी-अपनी अलग गद्दी बना ली गई तो सहजोबाई जी ने ही उन्हें कंठी देकर महंत बनाया था। सुश्री सहजोबाई ने भी गुरु के जीवन-काल में ही अपना अलग स्थान बना लिया था और वे विवाद में पड़ना नहीं चाहती थीं। चरणदास के शिष्यों में सहजोबाई ही ऐसी थीं, जिन्हें मुगल बादशाह आलमगीर द्वितीय ने सं० १८१६ वि० में सर्वप्रथम जागीर दी थी। स्वामी जुगतानन्द और रामरूप जी को उसके शाहजादे बादशाह शाह आलम द्वितीय ने चरणदास जी की मृत्यु के उपरांत (सं० १८३९ वि० के पश्चात्) जागीर दी। अन्ततः निष्कर्ष रूप में महंत गंगादास के विचार से तीनों गद्दियों के महंत समकक्ष हैं। उनमें श्रेष्ठ और कनिष्ठ का कोई भेद नहीं है। यदि ऐसा कुछ होता भी है तो वह आयु की ज्येष्ठता के कारण होता है। अर्थात् इन तीन गद्दियों के समकालीन महंतों में जो अधिक आयु का होता है, वही ज्येष्ठ या श्रेष्ठ माना जाता है। यदि इन तीनों वरिष्ठ गद्दियों में आपसी तालमेल, सौहार्द और एक दूसरे के प्रति समादर का भाव स्थिर रूप से बना रहता तो यह सम्प्रदाय के लिए एक वरदान के समान होता।

सम्प्रदाय का नामकरण और उसकी शिष्य परंपरा का वैशिष्ट्य —

चरणदास जी द्वारा प्रवर्त्तित सम्प्रदाय 'शुक सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है परन्तु हिन्दी साहित्य और विशेषतः संत साहित्य के इतिहासकारों ने भ्रमवश इसे 'चरणदासी सम्प्रदाय' कहना आरम्भ कर दिया अतः आज साहित्य के क्षेत्र में यही नाम प्रचलित है। इसके 'शुक सम्प्रदाय' नामकरण के मूल में अपने गुरु को ही सम्प्रदाय-स्थापना का श्रेय देने की चरणदास जी की भावना मुख्य रूप से निहित दिखाई देती है। इसके अन्य नामों में चरणदासीय, शुक-चरणदासीय और श्यामचरणदासीय सम्प्रदाय आदि नाम भी मिलते हैं।

मूलतः यह उत्तर भारत का एक जाग्रत वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के बानाधारी महात्मा मस्तक पर पीला तिलक, गले में तुलसी की माला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पीला वस्त्र धारण करते हैं। इस सम्प्रदाय को निर्गुण सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखने की भारी भूल डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पं० परशुराम चतुर्वेदी और डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित आदि अनेक विद्वानों ने की है। वास्तविकता यह है कि इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण के युगलरूप की उपासना मान्य है। इतना ही नहीं बल्कि इसमें सखी परिवार-सेवित राधा-कृष्ण उपास्य के रूप में स्वीकृत हैं। इस सम्प्रदाय में पुरुषोत्तम तत्व को परमतत्व माना गया है। इसमें अवतारवाद पूर्णरूपेण मान्य है। श्रीमद्भागवत् इसका आधारभूत ग्रन्थ है और यह शुद्ध वैष्णव सम्प्रदाय है। इसकी पुष्टि इन पंक्तियों से भली-भाँति हो रही है—

विष्णु पंथ जो निगम उचारा। सोई मारग महाराज सँवारा॥
श्री शुकदेव सम्प्रदा कहिये। परमधर्म भागवत जु लहिये॥
राधाकृष्ण का इष्ट सँभारा। ज्ञान सु तो वेदान्त विचारा॥
चरणदास को द्वारा नीको। सर्वधर्म शिरोमणि टीको॥[1]

यद्यपि वैधी उपासना की सेवा-पूजा के विधि-विधान से सम्पुष्ट सखी भावोपपन्न भक्तिमार्ग इस सम्प्रदाय का मुख्य साधना-मार्ग है और इसमें षोडसोपचार-सहित अष्टयाम पूजा का विधान है, तथापि सखी सम्प्रदाय में स्वीकृत विचारधारा की ओर इस सम्प्रदाय का अपेक्षाकृत अधिक झुकाव परिलक्षित होता है। इसकी साधना सम्बन्धी विशिष्टताओं का विवेचन एक स्वतन्त्र अध्याय के माध्यम से आगे चलकर किया जा रहा है।

शुक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक चरणदास जी के शिष्य बड़े ही प्रवीण, विचक्षण, उद्योगी, अच्छे साधक, यशस्वी, सिद्ध, सर्वजनहितायरत और समद्रष्टा महात्मा थे। जिन चरणदास जी की इतनी बड़ी महिमा है, उनके साधुओं का भी महत्व कम नहीं था। जोगजीत जी इस विषय की चर्चा करते हुए कहते हैं—

चरणदास जस बरणूँ कैसे। जिनके शिष्य सन्त जु ऐसे॥
बहु दिसि जानो बादर छाये। चरचा प्रेम सुधा बरसाये॥
सहस्रन साधु सेवक परबीना। विश्व विदित अयाच अदीना॥
बोलें बचन परम सुखदाई। सुने जु तिन सब तपत मिटाई॥
चरनदास सतगुरु परतापा। भये साधु तिहु मेटन तापा॥[2]

चरनदास जी किसी को शिष्य बनाने के पूर्व उसकी निष्ठा की अच्छी जाँच-परख कर लेते थे। इस तथ्य की पुष्टि 'लीलासागर' और 'गुरुभक्तिप्रकाश' दोनों कृतियों से होती है। यही कारण है कि सिद्धि, साधना और आचार-विचार की ऊँची से ऊँची कसौटियों पर उनके शिष्य खरे उतरते थे। वे योग्य गुरु के योग्य

१. लीलासागर : पृ० २०१।
२. वही : पृ० २०३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य प्रमाणित होते थे। उनके इन गुणों का सर्वाधिक प्रामाणिक विवरण चरणदास जी के वरिष्ठ शिष्य श्री रामरूप ने इस प्रकार दिया है—

एक सों एक सरस गुरु भाई। तिनकी महिमा कही न जाई॥
योग भक्ति अरु ज्ञान में सूरे। बैरागी त्यागी अति पूरे॥
यती सती संतोषी दाता। जिनका गुरु ही सों इक नाता॥
दयावंत सब सब कोई जाने। तिलक सिलसिली पीले बाने॥
सबहीं सुन्दर चाल अनूपा। सभी हो रहे गुरु के रूपा॥
रहनी गहनी अधिक सुहावें। तिन सों अधिक जीव सुख पावें॥
अरु उनहीं से उनके चेले। सो भी साध मते में खेले॥[1]

जिस गुरु के ऐसे शिष्य होंगे, उसी का सम्प्रदाय व्यापक और चिरस्थायी हो सकता है। यही कारण है कि अपने प्रवर्त्तन-काल से आज तक २०० वर्ष से अधिक समय बीत जाने और अनेक व्याघातों के बावजूद भी यह एक जीवन्त साधना सम्प्रदाय बना हुआ है। इस सम्प्रदाय के स्थायित्व के मूल में इसके अनुयायियों के चरित्र-बल के साथ ही परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार अपने आपको ढालने की इसकी आत्मनिहित क्षमता भी है। यह एक तंग दिल रूढ़िवादी और प्रगतिविरोधी सम्प्रदाय नहीं है। इसके महंतों और साधुओं ने इस देश की समकालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक धारा के साथ चलकर अपनी प्रासंगिकता और प्रगतिशीलता का अनेकशः परिचय दिया है।[2]

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २३९–२४०।

२. अनेक प्रामाणिक सूत्रों से पता चलता है कि इस सम्प्रदाय के तत्कालीन महंतों ने सन् १८५७ ई० (सं० १९१४–१५ वि०) के विद्रोह में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया था। जहाँ लखनऊ, आगरा, चित्रकूट और कानपुर के महात्माओं ने विद्रोहियों का साथ दिया था, वहीं अखैराम जी के पंजाब और हरियाणा-स्थित थाँभों से सम्बद्ध महात्माओं ने अंग्रेजों की सहायता की थी, जिसके फलस्वरूप उन्हें अंग्रेजों से बड़ी-बड़ी जागीरें मिली थीं। तात्पर्य यह कि यह सम्प्रदाय निष्क्रिय नहीं था। गो० जुगतानंद जी की दिल्ली में स्थित आचार्य गद्दी को उस समय अंग्रेजों के विरुद्ध माना गया था और कहते हैं कि उनके अस्थल में आगजनी भी हुई थी। उन दिनों महंत घनश्यामदास जी यह स्थान छोड़कर गामड़ी और अन्य स्थानों पर रहने को बाध्य हुए थे। इसी अस्त-व्यस्तता में सं० १८४० वि० से सं० १९१५ वि० के बीच के अधिकांश अभिलेख नष्ट हो गये और उन्हीं के साथ इस सम्प्रदाय का इस अवधि का इतिहास भी अपने अन्धकार-युग में आ गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

चरणदासी संप्रदाय (शुक संप्रदाय) : प्रमुख मान्यताएँ एवं प्रचार-प्रसार

(क) संप्रदाय के प्रवर्त्तन का उद्देश्य ।

(ख) क्या चरणदासी संप्रदाय निर्गुण संप्रदाय है ?

(ग) चरणदासी संप्रदाय की प्रमुख कार्य-पद्धतियाँ ।

(घ) संप्रदाय में उपासना संबंधी आचरण की विधि-निषेध-संहिता ।

(ङ) संप्रदाय का प्रसार-क्षेत्र, प्रचार-केन्द्रों तथा केन्द्र-स्थापकों की सूची और संप्रदाय की वर्तमान स्थिति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) सम्प्रदाय-प्रवर्त्तन का उद्देश्य—

अपने समसामयिक परिवेश को चित्रित करते हुए चरणदास जी के वरिष्ठ शिष्य और 'गुरुभक्तिप्रकाश' के रचयिता श्री रामरूप का कथन है कि द्वापर के पश्चात् कलियुग के आने पर समाज में भक्ति का ह्रास होने लगा और धर्म की अपेक्षा अर्थ का महत्व बढ़ गया। लोभ की प्रबलता हो जाने के कारण दम्भ, छल, असत्याचरण आदि भी सबल हो गये। धर्म और सत्य लुप्त होने लगे। दया, क्षमा और विनम्रता जैसे गुणों के स्थान पर अहंकार, मतवाद और प्रभुत्व की आकांक्षा आदि का प्राधान्य हो गया। जो थोड़े-बहुत लोग भक्ति के क्षेत्र में आये भी, वे संसारी ही बने रहे और उनके कथा-कीर्तन के मूल में भी लोभ ही अनुप्राणित रहा। गृहस्थ और विरक्त दोनों के आचरण परस्पर विपरीत हो गये।[1]

उस युग में जनता की रुचि सत्संगति की ओर न होकर भूत-प्रेतों और श्मसानों की साधना करने वालों में अधिक थी। यदि यत्किंचित् साधना अवशिष्ट थी तो वह सांसारिक उपलब्धियों के उद्देश्य से ही थी। कुकर्म करते हुए लोग अपनी आयु खो रहे थे। निद्रा और अविद्या सबके सिर पर सवार थी। सारे जीव माया के जाल में पड़े छटपटा रहे थे। राजे-महाराजे आपस में लड़ने-भिड़ने को ही अपना कर्त्तव्य समझ रहे थे। इस प्रकार शक्ति और साधन का विनाश करके भी वे अन्ततः लक्ष्य-सिद्धि में निष्फल ही रहते थे। आसुरी कर्मों और विचारों को अपनाने के कारण जनता छल, कपट, द्वन्द्व और विनाशकारी कार्यों में ही अधिक संलग्न थी। अन्ततः समाज में व्याप्त राजस और तामस गुणों के प्राधान्य की ओर इंगित करते हुए श्री रामरूप कहते हैं—

राजस तामस रूप धर, लियो जीव को घेर।
धन मद ने बहरे किये, सुनें न गुरु की टेर॥[2]

तत्कालीन जनसामान्य का उक्त स्वरूप बड़ा ही शोचनीय था। समाज के इस रूप का चित्र इन पंक्तियों में और भी स्पष्ट है—

जग जंजाल मोह का जाला। कुल नाते अरु सुन्दर बाला॥
सुत पुत्री अरु सब परिवारा। ममता धरा शीश पर भारा॥
राखें द्रव्य दान करें नाहीं। तृष्णा आशा रख मन माहीं॥
काम क्रोध की ज्वाला भारी। तामें सुलगें नर अरु नारी॥

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ३–४।
२. वही : पृ० ११३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोभ काज इत उत को दौरैं। गर्व करत नहिं लाजैं बौरे ॥
हिंसा करैं दया दया नहिं जानें। जहाँ तहाँ झगरो ही ठानें ॥
महा अशौच और व्यभिचारी। झूठ वचन कहें सभा मँझारी ॥

महा अयोगी भक्ति बिन, इन्द्री वश नर नार।
जानें ना परलोक को, लोक भोग में ख्वार ॥[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तत्कालीन समाज में चतुर्दिक् वर्ग-संघर्ष तथा राज्य-लिप्सा आदि से प्रादुर्भूत विप्लव मूलक स्थिति, विद्रोह, रक्तपात, कदाचार, प्रतिहिंसा, शोषण, अविश्वास, भ्रष्टाचार, पाखण्ड, प्रतिशोध, असद्व्यवहार, धार्मिक कट्टरता, अन्धविश्वास, मिथ्या महत्वाकांक्षा, पथभ्रष्टता, अशिक्षा, अभक्ष्य-भक्षण एवं अपेय-पान का वातावरण व्याप्त था। भौतिकता की प्रबलता से आक्रांत जन-मानस की धर्म एवं भक्ति-विमुखता चिन्तनीय थी। परम्परागत सामाजिक, पारिवारिक तथा नैतिक मान्यताओं और मूल्यों में व्यापक ह्रास हुआ था। भयंकर उत्पीड़न, अशांति और अस्थिरता के वातावरण से जनमानस संत्रस्त एवं विजड़ित था।

इस स्थिति से मानव समाज की रक्षा के लिए इन्द्रिय निग्रह त्याग, करुणा, क्षमा, मैत्रीभाव, प्रेम, परोपकार, अहिंसा, सत्य तथा दैवी सम्पत्ति वाले आचरणों के प्रचार हेतु चरणदास जी के प्रयास का व्यापक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उनके उपदेशों, आचारों और विचारों का दिल्ली के आस-पास और फिर दूर-दूर की जनता पर ऐसा व्यापक प्रभाव पड़ा कि लोग स्वयं आकर उनके शरणागत होने और उनके उपदेशों से शांतिलाभ करने लगे। कुछ ही समय में शिष्यों की संख्या कई हजार हो गई, जिनमें विरक्त-गृहस्थ, सवर्ण-असवर्ण, नारी-पुरुष, बालक-वृद्ध-युवा आदि प्रायः सभी वर्गों के लोग थे।[2] इस प्रकार उनका एक अलग सम्प्रदाय ही चल निकला। आवश्यकतानुसार इस सम्प्रदाय विशेष की आचार-विचारमूलक संहिता भी उन्हें निर्मित करनी पड़ी। इस प्रकार इस संप्रदाय की अपनी विशिष्ट साधना-पद्धति भी स्थिर हो गई, जिसकी चर्चा हम यथास्थान करेंगे।

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ११२।

२. एक दृष्टि सब ओर निहारे। सब सों प्यार करें इक सारे ॥
राव रंक दोऊ चलि आवैं। हित सों सबको ओर लखावैं ॥
हाथी और पालकी वारे। हिन्दू तुरक भीड़ हो भारे ॥
जो कोई दुष्ट कहै इन आगे। ताकी चित दै सुनने लागे ॥
सब विधि वाकी करैं सहाई। तन मन सों सबके सुखदायी ॥
—वही : पृ० ६७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि चरणदास जी के जीवन-काल में ही उनके विरक्त शिष्यों की संख्या ५००० हो चुकी थी। इस बात की ओर उनके शिष्य जसराम उपकारी ने अपनी 'भक्तबावनी' में संकेत किया है।[1] गृहस्थ शिष्यों की संख्या तो लाखों में पहुँच गई थी। इस तथ्य की पुष्टि रूप-माधुरीशरण के इस कथन से होती है— "श्री महाराज के लाखों स्त्री-पुरुष शिष्य भये उसमें ५२ तो बड़े ही सिद्ध और महाराज के परम कृपापात्र भये जिनको श्री महाराज ने सभी नामी शहरों में पीला चोला, टोपी, बाना देके महन्त स्थापित करके किसी के साथ सौ संत, किसी के साथ दो सौ संत देके भक्ति प्रचार करने को भेजे।"[2]

(ख) क्या चरणदासी सम्प्रदाय निर्गुण सम्प्रदाय है ?

सर जार्ज ग्रियर्सन,[3] जेम्स हेस्टिंग्ज,[4] श्री एच० एच० विल्सन,[5] और विलियम क्रुक्स[6] जैसे विदेशी तथा डॉ० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल,[7] श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी,[8] डॉ० रामकुमार वर्मा,[9] पं० भुनेश्वर मिश्र माधव,[10] पूज्यपाद श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी[11] और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी[12] जैसे एतद्देशीय विद्वानों ने चरणदासी सम्प्रदाय को प्रायः निर्गुणोपासक सम्प्रदाय ही माना है। इसी मत का अनुकरण हिन्दी

---

१. भेष भया जब पाँच हजारा। एक दिना यों बचन उचारा ॥
हम या जग सूँ भये उदासा। अब निज धाम करेंगे बासा ॥
—भक्तबावनी (हस्तलिखित प्रति) : पत्र सं० २२३।

२. गुरु महिमा : पृ० ३०।

३. श्री शुक सम्प्रदाय प्रकाश (सं० श्री रूपमाधुरीशरण) में उद्धृत : पृ० २–६।

४. दि इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स : भाग ३, पृ० ३३५–३६६।

५. ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स आफ नार्थ वेस्ट प्राविंसेज एण्ड अवध : भाग २, पृ० २००–२०२।

६. एसेज़ एण्ड लैक्चर्स आन दि रिलिजन : भाग १, पृ० ८८०।

७. दि निर्गुन स्कूल आफ हिन्दी पोएट्री : पृ० २६५–२७०।

८. हिन्दी के कवि और काव्य : पृ० २०२–२०४।

९. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (चतुर्थ सं०) : पृ० २८४–८५।

१०. संत साहित्य : पृ० ११०–११३।

११. भक्त चरितावली : भाग १, पृ० ३४०–३४२।

१२. उत्तरी भारत की संत परम्परा (द्वितीय सं०) : पृ० ७१९–२८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्येतिहास के अधिकांश लेखकों ने भी किया है। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य इतिहास-ग्रन्थ के रूप में ख्यात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में चरणदास जी का उल्लेख ही नहीं है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यह व्यापक मान्यता है कि यह एक निर्गुण सम्प्रदाय है, जो कबीर की विचार-परम्परा की परवर्ती कड़ी के रूप में है।

यदि इन विद्वानों के कथनों की समीक्षा की जाय तो ऐसा अनुभव होता है कि इन लोगों ने 'गतानुगतिको लोकः' की मान्यता को ही चरितार्थ किया है। यद्यपि इनमें से अधिकांश दबी जबान से यह स्वीकार करते प्रतीत होते हैं कि इस सम्प्रदाय की मान्यताएँ निर्गुणोन्मुखी वैष्णव साधना या निंबार्कमतोन्मुखी रागानुगी साधना का पुट लिए हुये हैं परन्तु चूँकि पहले के किसी विद्वान् ने इस सम्प्रदाय को निर्गुण साधना-मार्ग के अन्तर्गत मान लिया तो फिर उससे अलग कोई बात कैसे कही जाय, चाहे वह कितनी ही यथार्थमूलक क्यों न हो? साथ ही उनकी शिष्य-परंपरा के साहित्य का अध्ययन करना पड़ता और अपने मत के समर्थन में तर्क एवं उदाहरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता पड़ती; इतना श्रम कौन करे?

यहाँ तक कि श्री चरणदास के विषय में प्रथम स्वतन्त्र ग्रन्थ के रचयिता डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित की दृष्टि भी इस सम्बन्ध में सच्चाई का दर्शन न कर सकी और उन्होंने इस सम्प्रदाय को कबीर की परम्परा के निर्गुण सम्प्रदाय से अभिन्न बताया। उनका यह कथन शुक सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्यों की दृष्टि में बहुत ही आपत्तिजनक माना गया है—

"संत कबीर की परंपरा में अनेक संतों का अविर्भाव हुआ, जिन्होंने समय-समय पर अवतरित होकर जनता को कुछ हेर-फेर के साथ कबीर के निर्गुण परब्रह्म का संदेश सुनाया। इन संतों में अठारहवीं शताब्दी के संत कवि चरनदास भी उल्लेखनीय हैं।"[1] इसी क्रम में उन्होंने यह निष्कर्ष भी निकाला है कि अपनी साधना के विकासावस्था और आरम्भिक वर्षों में वे सगुण ब्रह्म के उपासक थे।[2] इतना ही नहीं बल्कि चरणदास के ब्रह्म के स्वरूप को डॉ० दीक्षित एकेश्वर ब्रह्म

---

१. चरणदास के निर्गुण, निराकार, निर्विकार परब्रह्म के विषय में सविस्तार विचार करने से पूर्व देश में निर्गुण उपासना के विकास का अत्यन्त संक्षेप में अध्ययन कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है ताकि हम समझ सकें कि कबीरदास से प्रभावित होते हुए भी चरणदास ने कहाँ तक प्राचीन चिन्तन परम्परा तथा वैदिक मत को ग्रहण करके निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दिया है।

—चरनदास : पृ० २७५।

२. वही : पृ० २७६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताया है, जो कबीर के ब्रह्मविषयक विचारों से प्रभावित है। उनकी मान्यता है कि चरणदास ने भी ब्रह्म में गुण की भावना नहीं की है। उनका ब्रह्म गुणातीत है। सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी वह सबसे परे है। चरणदास ने बारम्बार "निराकार नहिं ना आकारा" लिखकर उसी बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है, जिसे कबीर ने 'पिंड, ब्रह्माण्ड छाँड़ि जे कहिये, कहै कबीर हरि सोई'—कहकर अपने हृदय के भार को हल्का किया था।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० दीक्षित कबीर की विचारधारा से चरणदास जी को पूर्णतः प्रभावित मानते हैं और यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यह सम्प्रदाय एक निर्गुणमतावलम्बी साधना-सम्प्रदाय है। परन्तु यह मान्यता निम्न तथ्यों के आलोक में स्वतः निर्मूल सिद्ध हो जाती है—

(१) श्री चरणदास और उनके शिष्य-प्रशिष्यों का साहित्य अधिकांशतः राधा-कृष्ण-युगल की लीला के गान से ही परिपूर्ण है।

(२) श्री रामसखी, स्वामी रामरूप, गो० जुगतानंद, गुरुछौना जी, आतमराम इकंगी और जसराम उपकारी प्रभृति चरणदास के कवि शिष्यों ने राधा-कृष्ण को उपास्य, सम्प्रदाय का नाम 'शुक संप्रदाय' और 'श्रीमद्भागवत' को अपना आधारभूत ग्रन्थ अनेकशः घोषित किया है।

(३) इस सम्प्रदाय के सभी मन्दिरों में राधा-कृष्ण की ही मूर्त्तियाँ स्थापित हैं और उनमें षोडशोपचार विधि से अष्टयाम पूजा-पद्धति प्रचलित है। उनकी वेश-भूषा वैष्णवों की है, साधना निंबार्कमत और सखी सम्प्रदाय की साधना के समान है तथा वे निर्विवाद भाव से वैधी पूजा-उपासना के पोषक हैं। इस संप्रदाय के अनुयायी अन्य सगुण साधकों की भाँति एकादशी व्रत. कीर्त्तन, पूर्णिमा-प्रतिपदा आदि के व्रतोपचारों का पालन और वैष्णव मतों में मान्य सभी पर्वों, उत्सवों, तीर्थों आदि को मान्यता प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि विभिन्न वैष्णव मतों के आचार्यों के प्रति आदर-भाव प्रदर्शित करने के लिए उनकी जयन्तियाँ भी मनाते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह एक विशुद्ध सगुण वैष्णव साधना संप्रदाय है। इस संप्रदाय का यह घोषित साधना-सिद्धान्त है, जिसके संबंध में किसी प्रकार का मतभेद कभी नहीं रहा—

विष्णु पंथ जो निगम उचारा। सोइ मारग महाराज सँवारा॥
श्री शुकदेव संप्रदा कहिये। परम धर्म भागवत जु लहिये॥
राधाकृष्ण का इष्ट सँभारा। ज्ञान सु तो बेदांत उचारा॥

---

१ चरणदास : पृ० २८४–२८५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास को द्वारा नीको। सर्वधर्म शिरोमणि टीको ॥
वैष्णव रूप जु बहुत सुधारो। श्री तिलक मस्तक पर धारो ॥[1]

× × × ×

श्री शुकदेव संप्रदा जानो। चरणदास द्वारा पहिचानो ॥[2]

सम्प्रदाय-प्रवर्त्तन और आचार्य (प्रवर्त्तक)—

यह समासान्त शब्द ३ शब्दों के योग से बना है—(१) सम् (अव्यव) (२) प्र (उपसर्ग) (३) दाय (दा धातु का रूपान्तरण)। सम् का अर्थ है सम्यक् प्रकार से, 'प्र' का अर्थ है प्रकर्ष रूप से और 'दाय' का अर्थ है जो दिया जाय। अतः इस पूरे शब्द का अर्थ हुआ—वह वस्तु, ज्ञान या सिद्धान्त, जो सम्यक् प्रकार से और प्रकर्ष रूप से दिया जाय।

इसके व्याकरणिक या संघटनात्मक अर्थ के अतिरिक्त इसका जो लोक प्रचलित अर्थ है वह इस प्रकार है—वह भगवत्संबंधी सिद्धान्त या उपदेश जो स्वयं भगवान् द्वारा उपदिष्ट होकर गुरु-परम्परा के द्वारा अथवा किसी प्रचारक आचार्य के द्वारा समाज विशेष में विख्यात एवं प्रचारित हुआ हो।

इस प्रकार किसी संप्रदाय के प्रवर्त्तन के दो मूल आधार स्पष्ट रूप से होते हैं—(१) प्रवर्त्तक आचार्य (२) प्रचारक आचार्य। भारतीय परंपरा में प्रत्येक संप्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य के रूप में किसी न किसी रूप में दैवी विभूतियाँ ही मानी गयी हैं। अधिकांश वैष्णव मतों में प्रवर्तक आचार्य का पद स्वयं नारायण, श्री कृष्ण, महर्षि व्यास या शुकदेव मुनि को ही दिया गया है। प्रवर्त्तक आचार्य उस संप्रदाय विशेष के सिद्धांतों का निर्णय मात्र करते हैं और शास्त्रों के आधार पर उसकी पुष्टि करते हैं परन्तु प्रचारक आचार्य उस सिद्धांत को देशकालोचित रूप में संस्कारित करके उसे व्यापक रूप से प्रचारित करने का काम करते हैं।

आलोच्य संप्रदाय के भी प्रकटकर्ता या आविष्कर्त्ता श्रीमन्नारायण या श्रीकृष्ण ही माने गये हैं। अतः वे ही इसके मूल या प्रवर्तक आचार्य हैं। इस संप्रदाय की मान्यता के अनुसार श्रीमन्नारायण के सिद्धान्तों को ही गुरु-परंपरा से श्री शुकदेव ने प्राप्त किया, जिसे उन्होंने अपने शिष्य चरणदास के माध्यम से समाज में प्रचारित कराया। इसीलिए इस संप्रदाय का नाम 'शुक-संप्रदाय' हुआ। श्री शुकदेव मुनि केवल 'शुकसंप्रदाय' के ही आद्य प्रचारक नहीं हैं बल्कि कुछ अन्य संप्रदायों के भी प्रचारक माने जाते हैं।

---

१. लीलासागर : पृ० २०१।
२. वही : पृ० ३५०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ धर्म, पंथ और संप्रदाय के तात्विक अर्थ एवं उनके अन्तर का स्पष्टीकरण आवश्यक है। सामान्यतया इन तीनों अभिधानों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है, जो नितांत भ्रामक है। इन तीनों के स्वरूपगत अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

(१) **धर्म**—धर्म एक प्रकार से व्यापक नियमों का सूचक शब्द है। यह किसी व्यक्ति या समाज-विशेष की नैसर्गिक वृत्ति से लेकर उसके लिए विहित समस्त आचार-विचारों का बोधक है। साथ ही ईश्वर, परलोक, पुनर्जन्म, कर्म और कर्म-भोग आदि बातें भी उसमें निहित होती हैं। एक धर्म में अनेक संप्रदाय और एक संप्रदाय में अनेक पंथ संभावित हैं। अतः धर्म संप्रदाय से और संप्रदाय पंथ से अपेक्षाकृत अधिक व्यापक अर्थ में गृहीत होता है। जैसे कि हिन्दू धर्म एक धर्म है परन्तु शैव वैष्णव, शाक्त और जैन आदि उसके अंतर्गत विशिष्ट धर्म न होकर संप्रदाय ही माने जाते हैं। फिर उनके अंतर्गत भी अनेक पंथ और उपपंथ हैं।

(२) **संप्रदाय**—एक ही धर्म में कुछ विशिष्ट परंपराओं का प्रादुर्भाव करके जब कुछ लोग अपने मूल स्रोत से कुछ भिन्न प्रतीत होने वाले गुट या गुटों का निर्माण कर लेते हैं तो उक्त धर्म के अंतर्गत उसे या उन्हें विशिष्ट संप्रदाय की संज्ञा प्राप्त हो जाती है और फिर इसी क्रम में कुछ लोग कतिपय अन्य विभिन्नताओं के साथ उस संप्रदाय विशेष के अन्तर्गत अपना अलग गुट बना लेते हैं तो वे तत्तिद्विशिष्ट पंथ के अनुयायी कहे जाते हैं।

पंथ—

पंथ शब्द का अर्थ मुख्यतया मार्ग के अर्थ से अभिन्न माना जाता है। इसी अर्थ में गोस्वामी तुलसीदास ने 'जिमि कुपंथ पग धरत खगेसा' वाली अर्द्धाली में कुपंथ शब्द का प्रयोग किया है। पंथ मुख्यतः सम्प्रदाय विशेष से ही उद्भूत होते हैं। अतः व्यापकता की दृष्टि से सम्प्रदाय पंथ से अधिक व्यापक होता है। प्रायः सम्प्रदायों के कालान्तर में दोषपूर्ण या रूढ़िग्रस्त हो जाने पर उनके कुछ प्रगतिशील अनुयायी संशोधन की दृष्टि से अपना एक अलग गुट बनाते हैं, जो पंथ हो जाता है, जैसे कबीरपंथ, दादू पंथ, रैदासी पंथ, मलूक पंथ और पलटू पंथ आदि।

चरणदासी सम्प्रदाय कोई सम्प्रदाय है या पंथ—

यहाँ एक बात स्पष्ट रूप से समझ ली जानी चाहिए कि किसी सामाजिक व्यक्ति द्वारा चलाया गया विशिष्ट साधना-मार्ग पंथ ही हो सकता है, संप्रदाय नहीं। संप्रदायों के प्रवर्त्तक प्रायः लोकोत्तर चरित्र के व्यक्तित्व ही हो सकते हैं। इस दृष्टि से जहाँ कबीर, दादू, दरिया और गरीबदास आदि को 'पंथ' का प्रवर्त्तक मात्र माना जा सकता है, वहीं आलोच्य साधना-परंपरा एक संप्रदाय है, क्योंकि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी इसके प्रवर्त्तक न होकर, प्रचारक आचार्य मात्र हैं। इसके प्रवर्त्तक तो व्यासपुत्र शुकदेव मुनि हैं। इसी से इस संप्रदाय की मूल संज्ञा 'शुक सम्प्रदाय' है, न कि 'चरणदासी संप्रदाय'।

संप्रदाय या पंथविशेष का नामकरण—

किसी पंथ या सम्प्रदाय की स्थापना के लिए कतिपय नियम और उपनियम बनाये जाते हैं। 'विनय पिटक' में भगवान् बुद्ध ने भी अपने संघ के लिए अनेक नियमों का निर्माण किया था। ये नियम पहले से ही प्रचलित आचार-विचार संबंधी नियमों के न्यूनाधिक संशोधित संस्करण होते हैं और इनका अनुगमन अनुयायियों के लिए अनिवार्य जैसा होता है। इन नियमों के प्रवर्त्तक और नियामक उस संप्रदाय या पंथ विशेष के आरम्भ कर्त्ता कहे जाते हैं और प्रायः उक्त साधना-मार्ग का नामकरण भी उन्हीं के नाम पर हो जाता है।

भारतीय साधना-सम्प्रदायों की कुल-परम्परा या तो 'नाद-कुल' के अनुसार चलती है या 'बिन्दु-कुल' के अनुसार। प्रथम में गुरु-शिष्य परंपरा मान्य है और दूसरी में पिता-पुत्र परंपरा। अधिकांशतः देखा यह जाता है कि संप्रदायों की आरंभिक परंपरा तो नाद-कुल की होती है परन्तु आगे चलकर वह बिन्दु परंपरा में परिवर्तित हो जाती है। आलोच्य संप्रदाय के लिए यह स्थिति विपरीत दिशा की ओर है। इसका आरंभ बिन्दु-कुल से हुआ है, (यद्यपि यह बिन्दु-कुल भी एक प्रकार से दैवी परंपरा के ही विधान से है, इसलिए मानवीय बिन्दु परंपरा से भिन्न है) परंतु चरणदास जी तक पहुँचकर यह संप्रदाय नाद-परंपरा में परिवर्तित हो गया है।

जिस प्रकार पिता पुत्र का जन्मदाता होता है, उसी प्रकार गुरु भी शिष्य का पुनर्जन्मदाता होता है। इस अर्थ में वह पितातुल्य ही सम्माननीय होता है। पिता स्थूल शरीर का जन्मदाता होता है, जब कि गुरु सूक्ष्म शरीर का जन्मदाता है। गुरु अपने मंत्र, दीक्षा और संस्कारदान से शिष्य को एक नया जन्म देता है।

आलोच्यसम्प्रदाय की चाहे बिन्दु-कुल परम्परा का वंश-वृक्ष देखें, चाहे नाद-कुलपरम्परा का, दोनों में यह एक बात समान रूप से पायेंगे कि इनके आद्य संस्थापक श्रीमन्नारायण ही हैं और प्रचारक आचार्य के रूप में अन्तिम छोर पर शुकदेव मुनि हैं, जो चरणदास के गुरु हैं।[1] दोनों में ब्रह्मा और वेदव्यास भी किसी न किसी रूप में वर्तमान हैं। दोनों परम्पराएँ इस प्रकार मिलती हैं—

---

१. ऐसी माया संग ले, भयो पुरुष अभिराम।
ईश्वर नारायण वही, ताही को परणाम॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) बिन्दु-कुल का वंश-वृक्ष

श्रीमन्नारायण (कृष्ण)
|
श्री ब्रह्मा
|
श्री वशिष्ठ
|
श्री शक्ति
|
श्री पाराशर
|
श्री वेदव्यास
|
श्री शुकदेव मुनि
|
श्री चरणदास (नादपुत्र)

(२) नाद-कुल का वंश-वृक्ष

श्रीमन्नारायण (कृष्ण)
|
श्री ब्रह्मा
|
श्री नारद
|
श्री वेदव्यास
|
श्री शुकदेव
|
श्री चरणदास

नाद-कुल की इस परम्परा की पुष्टि संत चरणदास के परमप्रिय शिष्य श्री रामसखी जी की 'भक्तिरसमंजरी' के इस कथन से भी हो रही है—

नारायण विधि को दियो, रसनिकुंज सुख मूल।
ब्रह्मा नारद को दियो, यह धन गोप्य अतूल ॥ १ ॥
श्री नारद पुनि व्यास को, व्यास जु पुनि शुकदेव।
श्री शुक मोको कृपा कर, दियो रस अगम अभेव ॥ २ ॥[२]

जिनसों ब्रह्मा जू भये, उपजावन जगदीश।
परदक्षिण तिनकी करूँ, चरणन राखूँ शीश ॥
जिनके श्रीवशिष्ठ मुनि, बोधरूप आनंद।
तिनके श्री शक्ति तनय, नमो नमो सुख सिंध ॥
पाराशर तिनकी कला, तपसी अति निष्काम।
रामरूप जन करत है, बारंबार प्रणाम ॥
वेदव्यास तिनसो भये, सो ईश्वर अवतार।
तीन कांड परगट किये, प्रणमों बारंबार ॥
जिनके श्री शुकदेव हैं, जानत सब संसार।
सो मेरे मन में बसो, उनहीं के आधार ॥
जिनके चरणहिं दास हैं, नादपुत्र ही जान।
तिनकी सतसंगति किये, मिटै तिमिर अज्ञान ॥

—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १।

२. श्री रामसखी कृत भक्तिरसमंजरी : पत्र सं० १।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन दोनों परम्पराओं में श्री शुकदेव मुनि के वर्तमान होने का प्रमाण हमें स्पष्ट रूप से मिलता है और चरणदास जी के जीवन-वृत्त से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री शुकदेव मुनि ही उनके गुरु थे, अतः उन्होंने जिस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार आजीवन किया वह गुरु के द्वारा प्रवर्त्तित सम्प्रदाय ही था।[1] इसीलिए उक्त संप्रदाय का नामकरण चरणदास जी ने 'शुक सम्प्रदाय' किया था।[2]

यह भी सम्भव है कि गुरु के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा प्रमाणित करने के लिए विनम्रतावश उन्होंने अपने सम्प्रदाय का नाम 'शुक सम्प्रदाय' रखा हो, जिसे आगे चलकर चरणदास के शिष्यों ने 'शुक चरणदास सम्प्रदाय' भी कहना आरम्भ कर दिया हो। वर्तमान काल में शुक सम्प्रदायेतर लोग इसे 'चरणदासी सम्प्रदाय' के नाम से ही जानते हैं और उसका मूल नाम इस सम्प्रदाय के बाहर प्रायः लुप्त हो चला है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने तो 'शुक सम्प्रदाय' का नामोल्लेख तक नहीं किया है। इस सम्प्रदाय के लिए 'चरणदासी सम्प्रदाय' नाम अवश्य प्रयुक्त मिलता है।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी भी अपनी गुरु-परम्परा का वंश-वृक्ष इस सम्प्रदाय के नाद-कुल परम्परा के अनुसार ही मानते हैं। इनके भी आद्याचार्य श्री शुकदेव ही हैं। इसी प्रकार रामानुज सम्प्रदाय, निम्बार्क

---

१. अपये 'ब्रजचरित्र' नामक ग्रंथ में स्वयं चरणदास ने भी इस परम्परा का संकेत इन शब्दों में किया है—

नारदमुनि अरु व्यास जू, करिये कृपा दयाल।
अक्षर भूलों जो कहीं, कहो मोहिं तत्काल॥
श्री शुकदेव दयाल जू, मम मस्तक पर ईश।
ब्रज चरित्र मैं कहत हूँ, तुमहिं नवाऊँ शीश॥

—भक्तिसागर : पृ० २।

२. सम्प्रदाय शुकदेव की, आचारज रणजीत।
द्वारे निकसे अनेक ही, भक्ति प्रकट कर दीत॥
जै जै श्री शुकदेव, सम्प्रदा तासु कहाई।
भगवत धर्म बखान, जगत में भक्ति चलाई॥
शिष्य कियो रणजीत, सर्वगति ईश अचारज।
भये अभय बहु जीव, सबन के सारे कारज॥
यह सम्प्रदाय पाँचवीं, द्वारे हैं बहु भाँति ही।
रामरूप लागो सरण, जब मन आई शांति ही॥

—मुक्तिमार्ग, श्री रामरूपकृत : पृ० २९८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदाय, मध्वमत और वल्लभमत आदि मध्यकालीन वैष्णव उपसम्प्रदायों में शुकदेव को ही अपने सम्प्रदाय या मत का प्रवर्त्तक सिद्ध करने की एक होड़ सी हम पाते हैं। इसके मूल में सम्भवतः श्रीमदभागवत् को ही अपना मूलाधार सिद्धान्त ग्रंथ घोषित करने का भाव है। व्यास जी द्वारा रचित इस कृति के आदि उद्गाता श्री शुकदेव मुनि ही माने जाते हैं, अतः उन्हें ही आचार्य मानने की ओर वैष्णव समुदाय का आग्रह अधिक दिखाई देता है।[1]

श्री सरसमाधुरीशरण ने श्री शुकदेव मुनि को ही अपने सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक मानने के पक्ष में जो तर्क दिया है, वह वस्तुतः अपने-आपमें कोई नवीन बात न होकर अपने पूर्ववर्ती गुरुओं और आचार्यों द्वारा कथित तथ्यों की ही संपुष्टि है। उनका कथन है—"श्री शुकमुनिराज जिनकी कथा स्वयं वेदव्यास ने 'महाभारत' के शान्तिपर्व के मोक्षधर्म (अध्याय सं० ३२४) में वर्णन की है, उन्होंने अपने पिता वेदव्यास से श्रीमद्भागवत् का अध्ययन कर उसे राजा परीक्षित को सुनाकर मोक्ष पद पर पहुँचाया। ये शुकमुनि अयोनिज (अरणीसंभूत) प्रगट हुए हैं और द्वापर में ही इनका प्राकट्य हुआ है। इन्होंने ही कृपा करके श्री श्यामचरणदासाचार्य को दर्शन देकर विधिवत् गुरुदीक्षा प्रदान कर उनसे अपने शुक सम्प्रदाय का प्रकट प्रवर्त्तन कराया और उन्होंने (चरणदास ने) भी गुरु कृपा से शुक सम्प्रदाय को संसार में संस्थापित किया।"[2] स्वामी रामरूप और रसिकाचार्य श्री रामसखी-दोनों ने शुक सम्प्रदाय को 'पंचम वैष्णव सम्प्रदाय' बताया है। रामसखी जी कहते हैं—

---

१. (क) **विष्णुस्वामीमत तथा वल्लभमत की आचार्य परम्परा**—श्री पुरुषोत्तम—नारद कृष्णद्वैपायन व्यास—शुकदेव—विष्णुस्वामी—नंद द्राविड़—विल्वमंगल—श्री वल्लभाचार्य। (शांडिल्य संहिता १, श्लोक-संख्या-१६)

(ख) **रामानन्दी वैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा**—श्री रामचंद्र जी—श्री जानकी—श्री हनुमान् जी—श्री ब्रह्मा जी—श्री वशिष्ठ जी—श्री पाराशर जी—श्री वेदव्यास—श्री शुकदेव मुनि—श्री पुरुषोत्तमाचार्य—श्री गंगाधराचार्य—श्री सदाचार्य—श्री रामेश्वराचार्य—श्री द्वारानंद जी—श्री देवानंद—श्री श्यामानंद—श्री श्रुतानंद—श्री चिदानंद—श्री पूर्णानंद—श्री श्रियानंद—श्री हरियानंद—श्री राघवानंद—श्री रामानंद—श्री अनंतानंद—कृष्णदास पयहारी। (श्री हनुमत संहिता, अध्याय ५)।

(ग) **अद्वैत सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा**—श्री मन्नारायण—ब्रह्माजी—वशिष्ठ जी—श्री शक्ति—पाराशर जी—वेदव्यास जी—शुकमुनि—गौडपाद—गोविंदयोगी—श्रीशंकराचार्य। (श्री शंकर दिग्विजय भाषा, २५८-६०)।

२. श्री शुकसम्प्रदायसिद्धान्त चन्द्रिका : पृ० ११।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार संप्रदा वैष्णवी, इनहीं के आधार।
कहि सुन श्रीमद्भागवत, उतरें भव जल पार॥[1]

इसी प्रकार स्वामी रामरूप भी अपने सम्प्रदाय को पंचम वैष्णव सम्प्रदाय कह रहे हैं—यह सम्प्रदाय पाँचवीं, द्वारे हैं बहु भाँति ही।[2]

इस सम्प्रदाय के नामकरण और भेदक लक्षणों के लिए जोगजीत जी की यह उक्ति सर्वथा उपयुक्त है—

श्री शुकदेव संप्रदा कहिये। परम धर्म भागवत सु लहिये॥
राधाकृष्ण का इष्ट सँभारा। ज्ञान सु तो वेदान्त विचारा॥
चरणदास को द्वारा नीको। सर्व धर्म शिरोमणि टीको॥[3]

अतः निष्कर्ष यह है कि इस सम्प्रदाय का नाम 'शुक सम्प्रदाय' है और चरणदास जी का दिल्ली स्थित साधना-स्थल इस सम्प्रदाय का प्रधान गुरुपीठ (गुरुद्वारा) है।[4]

इस सम्प्रदाय के समस्त आचार-विचारों से सम्बद्ध मान्यताओं के लिए मान्य ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत्' है। उसी महापुराण को आधार मानकर शुक सम्प्रदाय (चरणदासी सम्प्रदाय) ने अपनी विविध धारणाएँ और आचार-संहिता स्थिर की हैं। इस बात को 'लीलासागर' ने स्पष्ट रूप से इन शब्दों में व्यक्त किया है—

महापुराण धर्म तुम गहियो। श्रीमद्भागवत विचारत रहियो॥
यही जु मत तुम नीके लीजो। मेरी आज्ञा में मन दीजो॥[5]

इस सम्प्रदाय के साहित्य का अध्ययन करनेपर यह तथ्य स्वयं स्पष्ट हो जाता है कि इसके कवियों द्वारा रचित अधिकांश प्रबन्ध काव्यों के कथानक श्रीमद्भागवत् से ही लिये गये हैं।

आचार्य और उनका अतिमानवीय स्वरूप—

शुक सम्प्रदाय में दो प्रकार के आचार्यों की मान्यता है—(१) मूल आचार्य—श्री शुकदेव जी, (२) प्रवर्त्तक आचार्य—श्री श्यामचरणदासाचार्य। ये दोनों कृष्ण

---

१. भक्तिरसमंजरी : दोहा सं० १८७ (पाण्डुलिपि)।
२. मुक्तिमार्ग : पृ० २९८।
३. लीलासागर : पृ० २०१।
४. सम्प्रदाय शुकदेव मुनि, चरणदास गुरुद्वार।
परम धर्म भागवत मत, भक्ति अनन्य विचार॥
—मुक्तिमार्ग : पृ० २९८।
५. लीलासागर : पृ० ९६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अवतार माने गये हैं। 'गीता' के निम्नलिखित श्लोक की संगति बैठाते हुए श्रीकृष्ण का आचार्य के रूप में अवतरित होने के तर्क की पुष्टि भली प्रकार से हो जाती है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानं अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥[1]

अधिकांश मध्यकालीन वैष्णव परंपराओं में यह मान्यता प्रचलित रही है कि श्री वेदव्यास, नारद, सनकादि चतुः कुमार, मनु, याज्ञवल्क्य और पाराशर आदि श्रीकृष्ण के अंशावतार या कलावतार हैं। इसी प्रकार स्मार्त संप्रदाय के प्रवर्त्तक शंकराचार्य जी शिव के अवतार माने गये हैं। श्री रामानुजाचार्य और माधवाचार्य को क्रमशः शेष और श्रीकृष्ण का अवतार माना जाता है। निंबार्काचार्य और चैतन्य महाप्रभु भी क्रमशः सुदर्शनावतार तथा श्रीकृष्ण के आवेशावतार बताये जाते हैं। श्री हितहरिवंश को वंशी का अवतार माना गया है। इसी प्रकार चरणदासजी को भी श्रीकृष्ण का अवतार मानने की मान्यता शुक संप्रदाय में प्रचलित है।[2]

वैष्णव साधना-संप्रदायों में श्री कृष्णद्वैपायन व्यास या परामर्श व्यास तथा शुकदेव का जितना अधिक गुणगान किया गया है उतना किसी भी एक महर्षि या आर्षकाव्य के प्रणेता का नहीं किया गया है। इसका मुख्य कारण उनके द्वारा रचित और व्याख्यायित श्रीमद्भागवत् जैसी संहिता है जिसे 'परमहंस संहिता' मानने की प्रथा है। प्रसिद्ध है कि श्रीमद्भागवत् महापुराण पर ५२ प्रसिद्ध आचार्यों की टीकाएँ हैं, जिन्होंने अपने-अपने स्वतन्त्र मतों का प्रवर्त्तन किया और अपने विशिष्ट साधना-सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी उसी संहिता से किया। इसीलिए इन सभी में श्री शुकदेवाचार्य को प्रवर्त्तक आचार्य और श्रीमद्भागवत् को आधारभूत ग्रंथ माना गया है। ऐसे श्री शुकदेव की वन्दना चरणदास जी की वरिष्ठ शिष्या सहजोबाई जी इस प्रकार कर रही हैं—

---

१. श्रीमद्भागवद्गीता : अध्याय ४।७–८।

२. (क) अंश हमारी यों करि जानो। वह मैं ही हूँ निश्चय मानो ॥
भक्ति हेतु अवतार धरो ही। परकासन के काज करो ही ॥
—लीलासागर : पृ० १७० (श्रीकृष्ण का वचन राधिका के प्रति)

(ख) चरणदास औतार की लीला अगम अपार। —वही : पृ० ३३५।

(ग) चरनदास अवतार यों लीता। कलि जीवन हित करन पुनीता ॥
—वही : पृ० २०४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमो नमो शुकदेव गुसाईं। परगट करी भक्ति जग माहीं ।।
श्रीमद्भागवत भानु परकासा। पढ़ सुन कटें तिमिर के फाँसा ।।
ज्ञान योग की नौका कीनी। चरणदास केवट को दीनी ।।
बहुतक पापी जीव चढ़ाये। भवसागर से पार लगाये ।।[1]

आचार्य के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि जो स्वयं उस विशिष्ट धर्म का आचरण करे, शिष्यों से आचरण करावे एवं शास्त्र के सिद्धान्तों का संचय करे, वही आचार्य है। शास्त्र का तत्वज्ञ होने के कारण, चराचर में समदृष्टि रखने के कारण तथा यम-नियमादि योग के अंगों को सिद्ध कर लेने के कारण ही कोई व्यक्ति आचार्य-पद का अधिकारी होता है।[2]

श्रीमद्भागवत् और शुक संप्रदाय—इस संप्रदाय का गुरुग्रंथ श्रीमद्भागवत् ही है। व्यास मुनि द्वारा रचित इस महापुराण के प्रथम उद्गाता, मुख्य वक्ता, सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी एवं शीर्षस्थ भक्त श्री शुकदेव मुनि चरणदास के साक्षात् गुरु हैं। गुरु का ग्रंथ गुरुवत पूजनीय होता ही है। जिस प्रकार शुक संप्रदाय में 'भक्तिसागर' को सब प्रकार से तथा सर्वोपरि पठनीय और मननीय माना गया है, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत् भी इस संप्रदाय में सम्मानार्ह है। वस्तुतः यह संप्रदाय अपने सिद्धांतों के प्रामाण्य के लिए इस महापुराण ही पर आधारित है। इस तथ्य का समर्थन रामरूप जी की इन पंक्तियों से हो रहा है—

जै जै श्री शुकदेव, सम्प्रदा तासु कहाई।
भागवत धर्म बखान, जगत में भक्ति चलाई ।।
शिष्य कियो रणजीत, सर्वगति ईश अचारज।
भये अभय बहु जीव, सबन के सारे कारज ।।[3]

शुक सम्प्रदाय मूलतः क्या है?

अन्ततः हम कह सकते हैं कि शुक संप्रदाय के नामकरण के मूल में शुकदेव मुनि का नाम वर्तमान है। इसके आद्याचार्य चरणदास जी हैं। यह संप्रदाय श्रीमद्भागवत् को आदर्श मानकर चलने वाला संप्रदाय है। इसकी साधना नवधा

---

१ सहज प्रकाश (सहजोबाईकृत) : पृ० ४।

२. स्वयमाचरेत शिष्यानाचारे स्थापयत्यपि।
आचिनोतिहिशास्त्रार्थमाचार्यस्तेन कथ्यते ।।
आम्नायतत्वविज्ञानाच्चराचर समानतः।
प्रमादि योगसिद्धत्वादाचार्यस्तेन कथ्यते ।।
—शुक संप्रदाय सिद्धान्त चंद्रिका के पृ० ४३ के आधार पर।

३. मुक्तिमार्ग। पृ० २९८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिपरक है। राधा-कृष्ण का युगलस्वरूप इस संप्रदाय का उपास्य है। यद्यपि विष्णु के अन्य अवतारों के प्रति भी इस संप्रदाय के अनुयायियों में श्रद्धा-भावना है परन्तु उनमें भी उनकी दृष्टि से राधा-कृष्ण सर्वोपरि हैं। आलोच्य संप्रदाय के महात्मागण और गृहस्थजन वृंदावन को पवित्रतम धाम मानते हैं, क्योंकि वही उनके उपास्य देव श्री राधिका तथा श्रीकृष्ण युगल की लीलाभूमि है।

यद्यपि मुक्तियाँ चार प्रकार की हैं, परन्तु इस संप्रदाय में सामीप्य मुक्ति को ही काम्य माना गया है। सभी नदियों में गंगा पवित्रतम मानी गयी हैं, जब कि इस संप्रदाय के मुख्य गुरुद्वारे—चाहे दिल्ली के हों या वृन्दावन के—यमुना तट पर ही स्थित हैं। इसीलिए इनके सर्वाधिक थाँमे कुरुक्षेत्र और गंगातट के कई अन्य स्थानों यथा कानपुर और इलाहाबाद आदि में स्थापित हुए थे। सभी व्रतों में एकादशी को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

यद्यपि वैष्णव-साधना के सभी आचार-विचार इन्हें मान्य हैं तथापि इस संप्रदाय में क्षमा, शील, संतोष और दया पर अधिक बल दिया गया है, क्योंकि इनके बिना संतत्व के गुणों का निखार ही संभव नहीं है। अतः इन आचारों के संबंध में प्रायः सभी चरणदासी कवियों ने अपनी रचनाओं में पर्याप्त बल दिया है। वस्तुतः ये ही भारतीय साधना के मूल आचार हैं, जिनको छोड़कर कोई भी संप्रदाय चल नहीं सकता। अपने साधना संप्रदाय और सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए ये सभी बातें श्रीरामरूप जी ने एक ही क्रम में इस प्रकार गिना दी हैं—

संप्रदाय शुकदेव मुनि, चरणदास गुरुद्वार।
परमधर्म भागवत मत, भक्ति अनन्य विचार॥
राधा-कृष्ण उपास, धरम भागवत हमारो।
निज वृन्दावन धाम, मुक्ति सामीप निहारो॥
गंगा तीरथ जान, व्रत ग्यारस को धारो।
क्षमा शील संतोष, दया नित हृदय विचारो॥[1]

(ग) चरणदासी सम्प्रदाय की प्रमुख कार्य-पद्धतियाँ—

(१) दीक्षा-संस्कार विधि—दीक्षा संस्कार का मुख्य चिह्न माला और तिलक है। जिस प्रकार जनेऊ द्विजत्व का लक्षण है, उसी प्रकार माला-तिलकादि वैष्णवों का प्रमुख लक्षण है। इनके बिना भजन, ध्यान, उपासना आदि का अधिकार नहीं माना जाता। दीक्षित शिष्य को सर्वप्रथम इन छहों आचरणों का पालन आवश्यक बताया गया है--

१. मुक्तिमार्ग : पृ० १६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) गुरु के उपदेशों के अनुकूल आचरण।

(२) प्रतिकूल या उनके द्वारा निषिद्ध कार्यों में रुचि न रखना।

(३) गुरु और आराध्य में पूर्ण विश्वास।

(४) गुरु और आराध्य द्वारा अपने उद्धार पाने में आस्था।

(५) तन, मन और धर्म आदि सर्वस्व गुरु को समर्पित कर देना।

(६) अपने मन में अपने को महाअधम, साधनहीन, कर्महीन। कार्पण्यदोषयुक्त आदि स्वीकार करके इन दोषों को दूर करने के लिए गुरु-कृपा की अनिवार्यता को स्वीकार करना।

दीक्षा प्रकारान्तर से साधक का पुनर्जन्म है। अतः इसके लिए भी वैसा ही समारोह आयोजित करने का विधान हैं, जैसे जन्मोत्सव मनाया जाता है। यह एक विशेष आनन्दपूर्ण अवसर होता है। अतः दीक्षा-हेतु आयोजित समारोह में शरणागत (दीक्षार्थी) से अनुकूल संकल्पों की स्वीकृति और प्रतिकूल आचार-विचार के त्याग का संकल्प कराया जाता है। दीक्षा-कर्म का प्रारम्भ क्षौर से होता है। क्षौर के पश्चात् स्नान करके नव वस्त्र-धारण करने के उपरांत शिष्य गुरु के समक्ष उपस्थित होता है। गुरु शिष्य के गले में तुलसी की माला धारण कराता है। कण्ठी धारण कराने के पश्चात् गुरु शिष्य के सिर पर स्वच्छ श्वेत वस्त्र डालकर गुरुमन्त्र-दान की क्रिया सम्पन्न करता है। मन्त्र देने के पूर्व ही शिष्य को वचनबद्ध करा लिया जाता है कि दीक्षोपरांत वह मद्य, मांस, कंचन और कामिनी आदि साधना विरोधी तत्त्वों से दूर रहेगा।

तत्पश्चात् गुरु केसर और चंदन का श्री तिलक दीक्षार्थी के मस्तक पर लगा देते हैं और पीला चोला तथा पीली टोपी आदि पहनाकर दीक्षोत्सव समाप्ति की घोषणा करते हैं। तदनन्तर शिष्य गुरु के चरणों पर नतमस्तक होकर तथा आत्म-समर्पण करके उनसे दया की कामना करता है। गुरु का आशीर्वाद पाकर दीक्षार्थी पूर्णदीक्षित शिष्य बन जाता है। इसके बाद वह अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार दीनों के सहायतार्थ तथा संप्रदाय के प्रचारार्थ कुछ द्रव्य-दक्षिणा भेंट करता है। इस अवसर पर एकत्रित भेष (साधु) और अन्य निमंत्रित गृहस्थ समाज में कड़ाह-प्रसाद वितरित किया जाता है तथा अर्द्धरात्रि तक कीर्त्तन एवं जागरण होता है।

(२) पंच संस्कार—आलोच्य संप्रदाय में भी अन्य वैष्णव संप्रदायों की भाँति तिलक, माला, मुद्रा, नाम और मंत्र—ये पंचसंस्कार अनिवार्य माने गये हैं। ये सभी संस्कार दीक्षा के समय सम्पन्न होते हैं। इनके बिना कोई सच्चा वैष्णव हो ही नहीं सकता। प्रायः सभी वैष्णव साधना संप्रदायों में निम्न पाँचों तत्त्वों की अनिवार्यता स्वीकार की गई है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिलक छाप अरु नाम पुनि, माला मंत्र जु पाँच ।
संस्कार जब गुरु करें, तबही हरिजन साँच ।।

इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

धाम छाप मस्तक तिलक, हरिसंबंधी नाम ।
तुलसी कंठी कंठ में, गुरु बाँधें अभिराम ।।
करैं मंत्र उपदेश जो, ताहि सुनावे कान ।
संस्कार ये पाँच हैं, लीजे रसिक पिछान ।।

तिलक—

चिह्न चन्द्रिका नाम प्रिय, श्री तिलक विच भाल ।[1]

तिलक के आकार के सम्बन्ध में पद्मपुराण (उत्तरखण्ड के ३०वें अध्याय) के एक श्लोक के आधार पर रामसखी जी की उक्ति इस प्रकार है—

पीत श्री मस्तक विषे, वंश पत्रिका बाहु ।
तुलसीदल अंग अंग में, ताम्बूल हिरदे माहु ।।
यहि आत्रित सों दीजिये, द्वादश अंगन बीच ।
भोग प्रसादी पाइये, होय न पुनि पुनि मीच ।।[2]

अर्थात् मस्तक पर का ऊर्ध्वपुंड ज्योति के आकार का पीतवर्ण के गोपीचंदन या ब्रज-रज का तिलक राधिका जी का रूप माना गया है। इसी का अपर नाम श्री तिलक भी है। कहते हैं कि श्री शुकदेवमुनि ने ऐसा ही तिलक चरणदास के मस्तक पर दिया था।[3] ऐसा ही तिलक वैष्णवों में मान्य है।

'श्री शुक संप्रदाय सिद्धांत चंद्रिका' में अपने संप्रदाय के तिलक से संबद्ध मान्यता की पुष्टि के लिए श्री सरसमाधुरीशरण ने 'पद्मपुराण' के उत्तरखण्ड से दो श्लोक उद्धृत किये हैं, जो इस प्रकार हैं—

ललाटे ज्योतिषाकारं बाहुभ्यां वंश पत्रकम् ।
हृदये कमलाकारं अन्यत्र तुलसीदलम् ।।

तथा

वर्तिदीपाकृतिवापि वेणुपत्राकृति तथा ।
पद्मस्य मुकुलाकारं तथैव कुमुदस्य च ।।[4]

---

१. भक्तिरसमंजरी (हस्तलिखित प्रति) : पत्र सं० २० ।
२. वही : पत्र सं० २१ ।
३. माथे तिलक ज्योति ही रेखा । सुन्दर धरा वैष्णव भेषा ।
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ६२ ।
४. शु० सं० सि० चं० पृ० ७२ और ७५ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री शुकमुनि महाराज ने चरणदास जी को शिष्य बनाते समय जो तिलक लगाया था उसका वर्णन करते हुए श्री रामरूप कहते हैं—

"माथे तिलक सिलमिली कीया। श्री जोति रेखा कहि दिया ॥"[1]

इसी तथ्य का समर्थन श्री जोगजीत चरणदास जी की गुरु-दीक्षा के प्रसंग में इस प्रकार कर रहे हैं—

भाल जु श्री टीका कर दीया। ज्योति सिलमिली नाम जु लीया ॥[2]

इसी प्रकार वैष्णवों का लक्षण बताते हुए श्री शुकदेव मुनि अपने नवदीक्षित शिष्य श्री श्यामचरणदास से कहते हैं—

पीरे वस्तर माटी रंगा। सोई वैष्णो पहिरे अंगा ॥
श्री तिलक मस्तक पर राजे। तुलसी की गल माल बिराजे ॥[3]

मुद्रा—गोपीचंदन में डुबाकर शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्न ललाट, बाहु, हृदय आदि पर लगाने को बड़ा ही पुण्यमय आचार वैष्णव शास्त्रों में बताया गया है; अतः इस संप्रदाय में भी ऐसी ही मुद्रा स्वीकृत है। इसके लिए 'स्कन्दपुराण' के मार्गशीर्ष माहात्म्य का यह श्लोक इस संप्रदाय में उद्धृत किया जाता है, जो तिलक और मुद्रा–दोनों का विधान एक साथ देता है—

गोपीचन्दन मृत्स्नयालिखितो यस्य विग्रहः।
शंख चक्र गदा पद्म देहे तस्य वसाम्यहम् ॥[4]

माला—आलोच्य संप्रदाय में अन्य वैष्णव संप्रदायों की भाँति ही तुलसी की माला का बड़ा महत्व बताया गया है।[5] चरणदासी संप्रदाय में तुलसी की माला धारण करने का विधान स्वीकृत है। यह बात इस सम्प्रदाय के साहित्य में अनेकशः वर्णित है। 'श्री तिलक मस्तक पर राजे, तुलसी की गल माल विराजे' कहकर जहाँ जोगजीत जी से इस विधान की ओर संकेत किया है, वहीं रामसखी जी ने भी इसका समर्थन इन शब्दों में किया है—

गुरुद्वारो चरणदास को, पीत वसन अविराम।
तुलसी कंठी ग्रीवा जुगल, माल ललित छवि धाम ॥[6]

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ५२।
२. लीलासागर : पृ० ८९।
३. वही : पृ० ९५।
४. स्कंदपुराण—द्वितीयोभागः, मार्गशीर्ष माहात्म्य—अध्याय ३।५३॥
५. तुलसी माला, चरणामृत एवं शालिग्राम माहात्म्य-वर्णन के लिए द्रष्टव्य पद्मपुराण (शालिग्राम माहात्म्य) : उत्तरखण्ड, अध्याय सं० १२९।
६. भक्तिरस मंजरी—पत्र सं० २०, दोहा सं० २५३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र—जिस प्रकार बीज में वृक्ष या वनस्पति का अस्तित्व होता है, उसी प्रकार मन्त्र में तत्तद् देवता का सूक्ष्म रूप से निवास होता है। अतः विशिष्ट मन्त्र का जप करना भगवन्नामस्मरण में सर्वोत्तम उपाय है। मन्त्र का प्रभाव अवश्यंभावी होता है और उससे सम्बद्ध देवता का साक्षात्कार सम्भव होता है। आलोच्य सम्प्रदाय में दीक्षा के समय दिया जाने वाला मन्त्र 'चूड़ामणि मन्त्र' के नाम से श्री जोगजीत द्वारा अभिहित किया गया है।[1]

नामकरण—दीक्षा के समय गुरु द्वारा शिष्य का नया नामकरण किया जाता है। शिष्य रणजीत को जैसे गुरु शुकदेव मुनि द्वारा श्यामचरण दास बना दिया गया।

सम्प्रदाय में वृंदावन का महत्व—चरणदासी सम्प्रदाय में वृन्दावन की बड़ी महिमा गायी गयी है। वृन्दावन का एक अन्य नाम गोपालपुरी भी है और ऐसी मान्यता है कि वहाँ श्रीकृष्ण का गोप-गोपी परिकर के साथ स्थायी निवास है।

यों तो वैष्णवों के सभी परम्परागत मान्य तीर्थस्थान इस सम्प्रदाय में भी आदृत हैं और उनकी यात्रा का विधान स्वीकृत है, तथापि इसमें वृन्दावन का महत्व सर्वाधिक है क्योंकि शुक सम्प्रदाय के आदि प्रादुर्भावक श्री शुकमुनि और इस सम्प्रदाय के आराध्य देव श्री राधा और कृष्ण जी की लीला और कर्मभूमि यहीं रही है। वृन्दावन सभी वैष्णवों की साधनाभूमि के रूप में भी प्रख्यात है। इस पावन भूमि की महिमा का गान श्री चरणदास ने इस प्रकार किया है—

> चिंता मेटन भूमि बखानी। रणजीत मीत जहँ दुर्ग बिनानी॥
> कमलापति को चक्र सुदर्शन। चरणदास ताको करै वंदन॥

---

१. इस सम्प्रदाय में दीक्षोत्सव के अवसर पर गुरु द्वारा शिष्य को दिया जाने वाला मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ पारब्रह्म परमेश्वरं निरंजनं निराकारं तत्वस्वरूपाय अनन्ताय क्लीं कृष्णाय नमः।' बच्चों, स्त्रियों तथा गृहस्थों के लिए इससे भिन्न मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ कृष्णाय गोपीजन वल्लभाय।' उपर्युक्त मन्त्र का शुद्ध रूप इस प्रकार है—'ॐ परब्रह्मणे परमेश्वराय निरंजनाय निराकाराय तत्वस्वरूपाय अनन्ताय क्लीं कृष्णाय नमः।'

युगलोपासना का साकार मन्त्र है—'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा।'

निराकार मन्त्र—'ॐ परब्रह्मणे परमेश्वराय निरंजनाय निराकाराय तत्वस्वरूपाय अनन्ताय क्लीं कृष्णाय नमः।'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाकी महिमा सबने गाई। जहाँ कृष्ण नित गऊ चराई॥
खरिक बनाय धेनु जहँ राखी। अजहूँ चिह्न देत हैं साखी॥[1]

इस वृन्दावन में १२ वनों और ५२ उपवनों का अस्तित्व माना गया है। कृष्ण-भक्तों की मान्यता है कि श्रीकृष्ण यहाँ सदा निवास करते हैं। वे यहाँ के सभी वनों में यथारुचि विचरते रहते हैं। यहाँ स्थान-स्थान पर अदृश्य सुन्दर मन्दिर हैं, जिनमें उनकी नित्यलीला होती रहती है। यह रहस्य कोई ऐसा भाग्यशाली भक्त ही जानता है, जिसपर गुरु और भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा हो जाती है।[2] यहाँ के १२ उपवनों के नाम इस प्रकार हैं—(१) कदम्ब वन (२) मंडन वन (३) नंदीसुर वन (४) नंद वन (५) मंगलानंद वन (६) संकेत वन (७) सुगंध वन (८) अखंड वन (९) वत्सहरन वन (१०) मोहन वन (११) केती (केसी ?) वन (१२) दधिग्राम वन। इसी प्रकार १२ वन भी हैं, जिसके नाम इस प्रकार हैं—(१) भद्र वन (२) श्रीवन (३) भांडीर वन (४) लोह वन (५) महावन (६) तालर वन (७) खिद्दर वन (८) बहुला वन (९) कुमुद वन (१०) कामा वन (११) वृन्दावन और (१२) मधुवन। इन १२ वनों में वृन्दावन का महत्व सर्वाधिक है। अतः इसे ही महात्माओं ने तपस्या भूमि के रूप में चुना है। स्वामी चरणदास के अनुसार बलि और रावण जैसे असुर वीरों ने भी यहीं तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी। सप्तर्षि और ध्रुव की तपस्या-स्थली भी वृन्दावन ही है।[3] सभी तीर्थों और वनों में वृन्दावन का महत्व सर्वाधिक है—

वृन्दावन सबसों बड़ो, जैसे दूध में घीव।
सब धर्मन हरिभक्ति ज्यों, जैसे पिंड में जीव॥[4]

चरणदास जी ने तो 'ब्रजचरित्र वर्णन' नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ ही इसके माहात्म्य-प्रतिपादन-हेतु रचा है। इसमें उन्होंने एक प्रत्यक्षदर्शी की अनुभूतियों का शब्द-चित्र प्रस्तुत करके इस तीर्थसम्राट् का बड़ा यशगान किया है। उन्होंने नित्य वृंदावन में हो रही नित्य युगल-लीला का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। साथ ही प्रकट वृंदावन की प्राकृतिक छटा को भी उन्होंने सुन्दर ढङ्ग से चित्रित किया है।

---

१. भक्तिसागर (ब्रज चरित्र वर्णन ग्रंथ) : पृ० २–६।

२. जगत दृष्टि से रहें अलोपा। मिलिहैं ताहि ध्यान जिन रोपा॥
मथुरा मंडल परगट नाहीं। परगट है सो मथुरा नाहीं॥
... ...दिव्य दृष्टि बिन दृष्टि न आवे॥
—वही (ब्रज चरित्र वर्णन ग्रंथ) : पृ० ३।

३. वही : पृ० ५।

४. वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थों की यात्रा की भी कुछ विशिष्ट औपचारिकताएँ होती हैं, जिनका पालन इस सम्प्रदाय में भी विहित हैं। किसी भी तीर्थ में जाकर स्नान करना तो अनिवार्य है ही, साथ ही नंगे पैर मंत्र के जप का विधान है। स्नान एवं नाम-जप के उपरांत वैष्णव को उस तीर्थ के प्रधान देवता का पूजन अवश्य करना चाहिए। स्नान का विशिष्ट नियम यह है कि जलाशय या नदी से घड़े में जल लेकर कुछ दूर हटकर स्नान करना चाहिए ताकि उस जलाशय या नदी का पानी अस्वच्छ न हो। तात्पर्य यह कि नदी या जलाशय में प्रविष्ट होकर स्नान करना नियम-विरुद्ध है। गीले कपड़ों का जल भी दूर हटकर निचोड़ना चाहिए और गीले वस्त्रों से ही घर जाना चाहिए।

वृंदावन में ९ कुञ्जों की भी कल्पना की गई है। इन कुञ्जों के नाम इस प्रकार हैं—(१) रंगमहल या मंगला कुञ्ज (२) श्रृंगार कुञ्ज (३) फूल कुञ्ज (४) प्रमोद कुञ्ज (५) हिण्डोल कुञ्ज (६) आनंद कुञ्ज (७) सेवा कुञ्ज (८) प्रेमप्रकाश निकुञ्ज और (९) शयन कुञ्ज। इनके नामों से ही स्पष्ट है कि ये कुञ्ज भगवान् श्रीकृष्ण की तत्तद् लीला से सम्बद्ध विशिष्ट स्थान हैं।[1]

शुक सम्प्रदाय के वर्तमान मन्दिरों के स्थान—

सम्प्रदाय की स्थापना के काल से अब तक कितने मन्दिर इस सम्प्रदाय के महंतों, साधुओं और गृहस्थों ने बनवाये, इसका पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है और न तो इसे प्राप्त करना सम्भव ही है; फिर भी इस समय तक जितने मंदिर शेष हैं, उनके स्थानों की एक सूची यहाँ दी जा रही है, जो इस प्रकार है—

(१) दिल्ली के मुहल्ला वल्लीमारान में चार मंदिर हैं, जो क्रमशः चरणदास जी के प्रधान तपःस्थल, सुश्री सहजोबाई, रामरूप जी और गो० जुगतानंद जी के स्थानों में निर्मित हुए हैं।

(२) आगरा	बालूगंज में।
(३) जयपुर	मोती कटले में।
(४) ,,	पान दरीबा में।
(५) ,,	बारह गनगौर में।
(६) अलवर	बहादुरपुर में।
(७) ,,	डहरे में।
(८) पटना	मोती बाजार में।
(९) मुंगेर	चौक में।
(१०) जगन्नाथपुरी	पुरी (उत्कल) में।

१. श्री शुक सम्प्रदाय सिद्धांत चंद्रिका : पृ० १९२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) चरखारी	गङ्गामंदिर के पास।
(१२) जबलपुर	गढ़ा में।
(१३) होशंगाबाद	बालागंज में।
(१४) नागपुर	देवास में।
(१५) उज्जैन	थावरा मुहल्ला में।
(१६) बाँदीकुई	गोपालपुरा में।
(१७) लखनऊ	रस्तोगी टोला में।
(१८) सीतामढ़ी	सीतामढ़ी (बिहार) में।
(१९) कानपुर	(बिहारी जी का मंदिर) पुराना चौक।
(२०) अयोध्या	विभीषण कुण्ड में।
(२१) फतेहपुर	बिठूर में।
(२२) ,,	शिवराजपुर में।
(२३) ,,	तिलसेली में।
(२४) इलाहाबाद	कर्मा में।
(२५) सहारनपुर	देवबंद में (देववन ?)
(२६) ,,	कनखल में।
(२७) पटियाला	संगरूर में।
(२८) ,,	झंडूकी में।
(२९) ,,	सुनाम में।
(३०) हिसार	रोडी में।
(३१) फिरोजपुर	फिरोजपुर (खाश) में।
(३२) मेरठ	गामड़ी में।
(३३) रोहतक	कोटकासम में।
(३४) सहारनपुर	रुड़की में।
(३५) रेवाड़ी	रेवाड़ी (खाश) में।
(३६) वृंदावन	जुगलघाट पर।
(३७) मथुरा	जन्मस्थान मंदिर के पास।
(३८) जगाधरी	जगाधरी खाश।
(३९) बरेली	बीसलपुर में।
(४०) ,, (खाश)	बरेली नगर में।
(४१) मुरादाबाद	धनौरा मंडी में।
(४२) बिजनौर	असगरीपुर में।
(४३) ,,	अमरीखदान में।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४४) नैनीताल	महावतपुर में।
(४५) ,,	जटपुरा में।
(४६) बरेली	पलथा में।
(४७) खुर्जा	लोहाई मण्डो में।
(४८) हाथरस	(लालदास का स्थान) ठठेरों का मुहल्ला।
(४९) इंदौर	इंदौर (खाश) में।
(५०) अलवर	माचल में।
(५१) ,,	शाहपुर में।

स्व० रूपमाधुरीशरण जी ने अपने ग्रंथ 'श्री चरणावत वैष्णव सदाचार' में उक्त ५१ मंदिरों का नामोल्लेख किया है। सम्भव है कि कुछ अन्य स्थानों पर भी मंदिर हों परंतु उन्हें पता न हो। अनुमानतः मंदिरों की संख्या अब भी १०० के आस-पास होनी चाहिए। स्वर्गीय रूपमाधुरीशरण के कथनानुसार चरणदासी संतों के १४०० स्थान थे, परंतु अब बहुत से स्थान लुप्त हो गये। इसी प्रक्रिया में मंदिरों की संख्या भी घट गई।[1]

इन मंदिरों के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय में ४ गुरुद्वारे हैं, जहाँ की यात्रा-पूजा और परिक्रमा का बड़ा महत्व माना जाता है। ये स्थान इस प्रकार हैं—

(१) **इन्द्रप्रस्थ**—यह इस सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री चरणदास की साधना और समाधिस्थली है। यहाँ श्री चरणदास के मानसी ध्यान का बड़ा पुण्य माना जाता है।

(२) **डहरा**—श्री चरणदास जी की जन्मभूमि होने के कारण इसका बड़ा महत्व है।

(३) **शुकतार**—यह मुजफ्फरपुर जनपद का एक बड़ा तीर्थ माना जाता है। गंगा के तट पर स्थित होने के कारण यहाँ की यात्रा पुण्यप्रद समझी जाती है। यहीं पर श्री श्यामचरणदास को श्री शुकमुनि से प्रत्यक्ष दीक्षा प्राप्त हुई थी।

(४) **वृन्दावन**—यहाँ के वंशीवट और सेवाकुंज पुराण-प्रसिद्ध तो हैं ही, साथ ही ये स्थान चरणदास जी की जीवन की घटनाओं से भी जुड़े हुए हैं। इन स्थानों पर उन्हें प्रिया-प्रीतम के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे और श्री शुकदेव मुनि ने प्रकट होकर उन्हें उपदेश तथा मार्गदर्शन दिया था।

नित्यनियमविधि—आलोच्य संप्रदाय में गृहस्थों और विरक्तों के लिए जो दिनचर्या निश्चित की गयी है, तदनुसार अन्य दैनंदिन कार्यों के अतिरिक्त कुछ समय निकाल कर 'श्रीशुकाष्टक', 'श्रीचरणदासाष्टक', चरणदास जी कृत 'अमरलोक-

१. श्री चरणावत वैष्णव सदाचार : पृ० १५–१७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखंडधाम-वर्णन' और 'ब्रजचरित्र' आदि का पाठ करना चाहिये। साथ ही सायंकाल तथा प्रातःकाल युगल-विहार की आरती का गान करना चाहिए।[1]

दैनिक विधि-विधान के आरंभ का समय रात्रि का अंतिम प्रहर अथवा पौ फटने से कुछ पूर्व का ही है। तब से लेकर रात्रि के आरंभिक ३–४ घण्टों तक की दिनचर्या का विस्तृत विधि-निषेध-नियमावली निर्मित है। इस क्रम में शौच-विधि तथा स्नानविधि से आरंभ करके अष्टयाम-साधना की पूरी-पूरी आचार-संहिता निश्चित है। इस प्रकार का आचरण एक सामान्य गृहस्थ से तो किसी प्रकार हो ही नहीं सकता। संभवतः विरक्त महात्माओं को ही ध्यान में रखकर इतनी विस्तृत नियमावली बनायी गयी है।[2]

संप्रदाय में मान्य आचार-विधि के अनुसार शौच-स्नानादि से निवृत्त होने के उपरांत आराध्यार्चन में लीन हो जाना चाहिए। सर्वप्रथम राधा-गोविन्द के मंदिर में प्रवेश के पूर्व दण्डवत, स्तुति और शंखनाद द्वारा युगल सरकार को जगा लेना चाहिये। तत्पश्चात् उनके विग्रह से बासी माला-फूल आदि उतारकर शंख में जल भरकर प्रिया-प्रीतम को स्नान कराना चाहिए। पाँच या सात बार उनके अंग को प्रक्षालित करने के बाद सिंहासन पर पधराना चाहिए। इसी प्रकार सात-आठ बार भोग चढ़ाने का भी विधान है। इन भोगों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—मंगल भोग, कलेऊ, शृंगार भोग, राज भोग, उत्थापन भोग, संध्याभोग और शयनभोग। भोग धरते समय शंख में जल भरकर मंत्र के साथ भोज्य सामग्री का प्रोक्षण कर लेना चाहिए और हर एक सामग्री पर तुलसी-दल रख देना चाहिए। भोजन कराने का भाव भोग लगाते समय सदैव करना चाहिए। तदुपरांत आचमन और पान का बीड़ा आदि देने की विधि संपन्न करना चाहिये।

आरती करने का विधान यह बताया गया है कि यदि बत्ती हो तो उनकी संख्या ५, ७ या ९ होनी चाहिए। दो से कम तो किसी भी स्थिति में न हो। कपूर द्वारा भी आरती की जा सकती है। विग्रह के किस अंग की कितनी बार आरती की जाय इसे भी निश्चित कर दिया गया है, जैसे दो बार चरणों की, एक बार नाभि की, दो बार वक्षःस्थल की, दो बार मुखारविंद की और ७ बार सर्वांग

---

१. श्री शुक संप्रदाय सिद्धांत चन्द्रिका (सरसमाधुरीशरण कृत) : पृ० ८६।

२. जागे ना पिछले पहर, करै न हरि मुख जाप।
पौह फटे सोवत रहै, ताको लागत पाप॥
जन्म छुटै मरना छुटै, आवागमन छुट जाय।
एक पहर की रात सों, बैठा हो गुण गाय॥
—भक्तिसागर (भक्ति पदार्थ) : पृ० २५०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आदि। आरती के पश्चात् पुष्पवृष्टि, शंख से आरती, स्तुति-गान, दण्डवत-प्रणिपात आदि का विधान है।

द्वितीय प्रहर में राजभोग अर्पित करना चाहिए और आरती के पश्चात् शयन करा देना चाहिए। दो घड़ी दिन रहने पर ठाकुर जी को जगा देना चाहिए। यदि गर्मी के दिन हों तो स्नान कराना चाहिए, अन्यथा मुखादि का प्रक्षालन ही पर्याप्त है। फलादिक का भोग, आरती, कीर्त्तन-गान आदि के पश्चात् सायंकाल मिष्ठान्न का भोग लगाना चाहिए। स्तुति आदि के बाद रात्रि में ९–१० बजे पुनः युगल के विग्रह को शयन करा देना चाहिए।

द्वादशी के दिन तुलसी का पत्र तोड़ने का निषेध है। इसी प्रकार नास्तिकों से बात न करने का और व्यर्थ समय न खोने की विशेष चेतावनी दी गयी है। साधक को यथालाभ संतुष्ट रहना श्रेयस्कर माना गया है। उसे अधिक द्रव्यार्जन की चिंता में व्यस्त नहीं रहना चाहिए, इससे भजन-पूजन में अंतराय उत्पन्न होता है।

रामसखी जी ने अष्टयाम-पूजा पद्धति का अपनी 'भक्तिरसमंजरी' में बार-बार माहात्म्य-गान किया है और व्यर्थ समय नष्ट न करके उसी में तल्लीन रहने की राय दी है। इस प्रकार की उपासना से यदि कुछ समय बच जाय तो सत्संग में उसका उपयोग करने की उन्होंने राय दी है। अष्टयाम पूजा पद्धति पर शुकसंप्रदाय की साधना-पद्धति के प्रसंग में विस्तृत प्रकाश डाला जायगा। यहाँ संक्षेप में इस संप्रदाय के अनुयायियों के लिए आचार-संबंधी विधि-निषेधों की एक सूची मात्र प्रस्तुत की जा रही है, जो इस प्रकार है—

(घ) वैष्णवों के लिए विहित विधि-निषेध-संहिता—

(१) गुरु-निष्ठ एवं आज्ञावर्ती होना।
(२) साधु और सेवापरायण होना।
(३) सम्प्रदाय के सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त करना।
(४) कण्ठी, तिलक और मुद्रा में निष्ठा रखना।
(५) परस्त्री और परधन-निषेध को स्वीकार करना।
(६) हरि और गुरु के जन्मोत्सव मनाने में रुचि रखना।
(७) जाति-विजाति-परीक्षा जानना और करना।
(८) सजाति का संग एवं विजाति का संग त्याग करना।
(९) गुरु मंत्र में निष्ठा और अन्य मंत्र-त्याग।
(१०) गुरुवाणी का नित्य पाठ।
(११) सद्शास्त्र, गीता तथा भागवत् का अध्येता होना।
(१२) विश्वासघात और मिथ्यावाद-परित्याग।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३) अन्नवस्त्रादि का यथाशक्ति दान ।
(१४) नित्य-नियमों को पूरा किये बिना अन्न-जल-त्याग ।
(१५) भोग लगाये बिना भोजन ग्रहण न करना ।
(१६) ब्रजवासी लोगों में और ब्रजरज में प्रीति ।
(१७) ब्रजवास की उत्कण्ठा ।
(१८) युगलनाम का नित्य संकीर्त्तन ।
(१९) परनिंदा, परद्रोह-परित्याग ।
(२०) हरि और गुरु-भक्तों का सम्मान ।
(२१) निरभिमान होना और अतिथि का आदर करना ।
(२२) यथालाभ संतोष और भगवदिच्छा में प्रसन्न चित्त ।
(२३) जगत को अनित्य और हरि-गुरु को नित्य मानना ।
(२४) असत्य भाषण का परित्याग ।
(२५) भंग-तम्बाकू आदि दुर्व्यसन का त्याग ।
(२६) दया, क्षमा, शील और संतोष धारण करना ।
(२७) दुर्वचन और दुराग्रह-परित्याग ।
(२८) तन-मन-वचन से परोपकार-निष्ठा ।
(२९) कपट-छल-अभिमान का त्याग ।
(३०) अपना नाम और रूप वैष्णवों के समान रखना ।
(३१) गुरु-निर्दिष्ट प्रगटपूजा और मानसी पूजा में रत रहना ।
(३२) मान-बड़ाई की भावना का परित्याग करना ।
(३३) वैष्णवी दीक्षा ग्रहण करना ।
(३४) अनन्यता का व्रत धारण करना ।
(३५) कथनी और करनी में समता या सामंजस्य धारण करना ।
(३६) नामपराधों और सेवापराधों का त्याग ।[1]
(३७) हरिचरणामृत का नित्य ग्रहण ।
(३८) श्री इष्टदेव के दर्शन का नियम ।
(३९) संप्रदाय में विहित व्रतों एवं उपवासों का सम्यक् पालन ।[2]

---

१. सेवापराधों की सूची आगे द्रष्टव्य है ।

२. 'लीलासागर' में जोगजीत जी ने वैष्णवों के ३९ लक्षणों की ओर संकेत किया है । संभवतः ये लक्षण ही कर्त्तव्य के रूप में भी मान्य हैं । निम्न पंक्तियाँ इसी सन्दर्भ से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं—

टोपी चोला बाना धारो ।
पीरी माटी रंग सुधारो ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत् सेवापराध-सूची—

सगुणोपासक वैष्णव साधना-सिद्धांतों में एक बात प्रायः सर्वस्वीकृत है कि वैष्णवों का आचार-विचार जनसामान्य से भिन्न होना चाहिये। गुरु, संत और शास्त्रसमागम के परिणामस्वरूप उसे साधनासम्बन्धी शास्त्र-विहित एवं लोकमान्य विधि-निषेधों का सम्यक् ज्ञान होना अपेक्षित है। साधक के आचार-विचार के निर्धारण में लोक और शस्त्र दोनों का योगदान होता है। इस प्रकार विहित आचार-संहिता के विरुद्ध किया गया कोई भी आचरण सेवापराध की श्रेणी में आता है। तदनुसार ऐसे अपराधों की एक सामान्य तालिका इस प्रकार हो सकती है—

(१) भगवान् को एक देव विशेष मानना।
(२) शास्त्रों को सामान्य ग्रंथ की कोटि में समझना।
(३) वैष्णवों में जाति-पांति का अन्तर मानना।
(४) गुरु को समान्य मनुष्य की भाँति समझना।
(५) प्रतिमा में शिला बुद्धि।
(६) प्रसाद को समान्य भोजन समझना।
(७) चरणोदक को जल मानना।
(८) तुलसी को साधारण वनस्पति समझना।
(९) गाय को पशु मानना।
(१०) श्रीमद्भागवत् और गीता को साधारण ग्रंथ समझना।
(११) भगवत्लीला को मनुष्य के कृत्य मानना।
(१२) गोपीजनों में परकीया बुद्धि।
(१३) रासलीला में काम बुद्धि।
(१४) महोत्सवों में छूआछूत की भेद-बुद्धि।
(१५) नास्तिकता का अवलंबन।
(१६) संदेहपूर्वक धर्माचरण।
(१७) धर्म में आलस्य एवं अश्रद्धा।
(१८) वैष्णव साधक का बाह्य चरित्र मात्र देखना।
(१९) महात्माओं के चरित्र का दोष मात्र दर्शन।
(२०) अहंकार का पोषण करना।

माथे श्री तिलक ही नीका।
करो रूप तुम वैष्णव ही का॥
उनतालीसों लक्षण ही धारो।
नीके अपना इष्ट सँभारो॥—लीलासागर : पृ० ९६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२१) देवता या शास्त्र की निंदा करना।
(२२) भगवत् विग्रह के समक्ष पीठ करके बैठना।
(२३) नीले रंग का जूता, माला, छड़ी और सूती कपड़े धारण करना।
(२४) मलमूत्र-त्याग करने के उपरांत और दंतधावन के बिना मन्दिर में प्रविष्ट होना।
(२५) तांबूल और तम्बाकू आदि मादक द्रव्यों का सेवन।
(२६) उच्चस्वर में हँसना।
(२७) स्त्रियों को घूरना तथा अन्य कुचेष्टाएँ करना।
(२८) अनावश्यक एवं निराधार क्रोध करना।
(२९) दुर्गन्धित भोज्य सामग्री का उपभोग।
(३०) मैले वस्त्र धारण करना।
(३०) अधिक चटपटे और जिह्वालोलुपतावर्द्धक पदार्थों का सेवन।
(३२) किसी का अपमान या हिंसा करना।
(३३) घर आये अभ्यागत या संत का सत्कार न करना।
(३४) सेवा, धर्माचरण या पांडित्य का अहंकार करना अथवा इन्हें अपने किये का फल मानना।
(३५) नास्तिकों, लंपटों और हिंसकों आदि का साथ करना।
(३६) विपत्ति को परमेश्वर की देन मानना।
(३७) धर्म के बल पर पाप कर्म करना।
(३८) स्त्री-पुत्र-भृत्य-दीनजन और संत की उपेक्षा करना।
(३९) इष्टदेव की शपथ खाना।
(४०) भगवत् धर्म या नाम बेचकर धन कमाना।
(४१) अन्य देवी देवताओं से आशा करना।
(४२) धर्मशास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करना।
(४३) बिना ज्ञान के ज्ञानीपन का अभिमान करना या स्वांग रचना।
(४४) संप्रदाय-भेद से वैष्णवों को ऊँच-नीच मानकर भेद-भाव करना।
(४५) भगवान के चित्र, मूर्त्ति और नाम आदि की अवज्ञा।
(४६) तर्क-वितर्क द्वारा आस्तिकों की भावना को छिपाने की चेष्टा करना।
(४७) श्री राधा और कृष्ण के युगल स्वरूप में भेद-बुद्धि।
(४८) मंत्र को साधारण नाम समझना।
(४९) किसी अन्य व्यक्ति या तत्व को भगवान के समान मानना।
(५०) श्रद्धाविहीन को नामोपदेश देना आदि।[1]

---

१. द्रष्टव्य : श्री शुकदेव सम्प्रदाय सिद्धान्त चन्द्रिका : पृ० १५७–५८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकादशी व्रत—वैष्णव सम्प्रदायों में एकादशी के व्रत का बड़ा माहात्म्य वर्णित है। ब्रह्माण्डपुराण, पद्मपुराण और स्कन्दपुराण में इसके माहात्म्य और विधि-विधान का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। इस व्रत की भूमिका दो दिन पूर्व अर्थात् नवमी तिथि से ही आरम्भ हो जाती है। इस तिथि से ही विशिष्ट नियमों का पालन आरम्भ कर देने का विधान बना हुआ है।[1] जिस दिन एकादशी होती है उस दिन निर्जल रहना अधिक अच्छा माना गया है। इस व्रत के विधानानुसार उस दिन सूर्य के निकलने से दो घण्टे पूर्व ही जगना चाहिए और कायशुद्धि के पश्चात् द्वार बन्द करके गुरु मन्त्र का जप और भगवान् का ध्यान करते हुए दिन भर का आसन लगाना चाहिए। साथ ही सभी ज्ञानेन्द्रियों को तत्तद् विषयों से खींचकर केन्द्रीभूत कर देना चाहिए। इस व्रत के दूसरे दिन अर्थात् द्वादशी को भी विशिष्ट नियमों के पालन का विधान है। इस प्रकार एकादशी-व्रत एक दिन का नहीं बल्कि तीन दिनों का है—

दशमी की रात्रि में निम्न दश पदार्थों को भोजन में सम्मिलित नहीं करना चाहिए—

> कास्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा ।।
> शाकं मधु परान्नञ्च पुनर्भोजन मैथुने ।
> विष्णु भक्तो नरो वाऽपि दशम्यां दश वर्जयेत् ।।[2]

एकादशी—इस तिथि के व्रताचरण में निम्न कार्य वर्जित हैं—

> ताम्बूलं दन्तकाष्ठञ्च दिवाशयन मैथुने ।
> द्यूतक्रीडा निशि स्वापः पतितैः सह भाषणम् ।।
> एकादश्यां दशैतानि विष्णु भक्तस्तु वर्जयेत् ।।[3]

इसी प्रकार द्वादशी के दिन के आहार और आचार-विचार भी सुनिश्चित कर दिये गये हैं। तात्पर्य यह कि एकादशी के उपवास का नियम एकादशी से एक दिन पूर्व और एक दिन पश्चात् तक के लिए निर्धारित है।

चरनदास जी के शिष्य गुरुछौना जी ने इस व्रत का विधान इस प्रकार बताया है—

---

१. नवमी को नियमपूर्वक रहकर दशमी को एक बार भोजन ग्रहण करके एकादशी को निराहार रहना चाहिए। उस दिन निरन्तर भजन में लीन रहना चाहिए।

२. स्कन्दपुराण : द्वितीय खण्ड, मार्गशीर्ष माहात्म्य वर्णन, अध्याय सं० १२।

३. वही, श्लोक सं० २७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्यारस व्रत बताऊँ नीका। सबही व्रत शिरोमणि टीका ॥
निर्जल करे नीर नहिं परसे। पौह फटे जब सूरज दरसे ॥
एक पहर के तड़के जागे। जबही सुमिरन करने लागे ॥
करे विचार शुद्ध कर काया। जाकर बैठे भवन मँझाया ॥
कोठे के पट देकर राखे। नर नारी सों वचन न भाखे ॥
कर आवाहन आसन मारे। व्रत करे वैराग्य ही धारे ॥
जप गुरु मंत्र और हरि ध्याना। जाको नेक नहीं बिसराना ॥
व्रत करें त्योहार सा, नाना रस के स्वाद।
भोग करें तप ना करें, सब करनी बरबाद ॥[1]

वर्ष में २४ एकादशियाँ होती हैं। इस संप्रदाय में उनके व्रत और विधिवत् नियमों के पालन पर बहुत जोर दिया गया है। एकादशी को केवल उपवास ही नहीं करना है बल्कि गाना, बजाना, नृत्य, रास, दीप, नैवेद्य, धूप, पुष्प, आरती, चंदन, फल, अर्घ्य और दान आदि के साथ इन्द्रियसंयम, निद्रारहित काल-यापन; हर्षयुक्त, क्रियायुक्त, और उत्साहयुक्त कालक्षेप करते हुए यह व्रत करने का विधान है। इस प्रकार किया गया एकादशी-व्रत १० इन्द्रियों के साथ ११वीं इन्द्रिय अर्थात् मन को भी शुद्ध करने वाला होता है। इसका माहात्म्य बताते हुए श्री सरसमाधुरी-शरण कहते हैं—

दश इन्द्री मन ग्यारहवाँ, शुद्ध करै तत्काल।
व्रत एकादशी करत है, सरस भक्ति कलिकाल ॥
होत शुद्ध उपवास तें, मन इन्द्री अरु प्रान।
या हित व्रत एकादशी, करैं सु संत सुजान ॥[2]

संप्रदाय के व्रतोत्सव—यों तो इस संप्रदाय में मान्य व्रतोत्सवों एवं जयंतियों की संख्या बहुत बड़ी है, लेकिन इनमें भी सबसे बड़ा उत्सव, जिसे वार्षिकोत्सव की संज्ञा दी जाती है, प्रत्येक वर्ष वसंत पंचमी को मनाया जाता है। संप्रदाय के मंदिरों में उस दिन विशिष्ट शृंगार और पूजन होता है। भजन मण्डलियाँ भजन-कीर्त्तन करती हैं और कहीं-कहीं शोभा यात्रा भी निकाली जाती है। पूर्वाह्न ११ बजे से वेदोक्त मंत्रों के द्वारा हवन-यज्ञ प्रारम्भ होता है। हवन के उपरांत चरणदास जी और शुकदेव मुनि के चित्रों की पूजा और आरती सम्पन्न होती है। रात्रि में भंडारे का आयोजन होता है और सायंकाल महात्माओं के प्रवचनादि आयोजित होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः वर्षभर व्रत और उत्सवों के आयोजन का विधान देखने को मिलता है, जिनकी एक सूची यहाँ प्रस्तुत करना उचित होगा—

---

१ षट्रूपमुक्ति (पांडुलिपि) : दोहा सं० १४०१–०३।
२. शुकसंप्रदाय सिद्धांत चंद्रिका : पृ० १४९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) चैत्र शुक्ल पक्ष—	श्री श्यामचरणदास का दीक्षोत्सव, जमुना जन्मोत्सव और कामदा एकादशी व्रत।
(२) वैशाख कृष्ण पक्ष—	वरूथिनी एकादशी व्रत, अमावस्या को श्री शुकमुनि का जन्मोत्सव।
(३) वैशाख शुक्ल पक्ष—	अक्षय तृतीया, गंगा सप्तमी, जानकी नवमी, मोहिनी एकादशी और नृसिंह जन्मोत्सव।
(४) ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष—	अपरा एकादशी, स्वामी रामरूप जी की परमधाम यात्रा के उपलक्ष्य में उत्सव।
(५) ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष—	निर्जला एकादशी।
(६) आषाढ़ कृष्ण पक्ष—	योगिनी एकादशी व्रत।
(७) आषाढ़ शुक्ल पक्ष—	रथयात्रा महोत्सव, देवशयनी एकादशी व्रत और व्यासपूजोत्सव।
(८) श्रावण कृष्ण पक्ष—	कामिका एकादशी व्रत।
(९) श्रावण शुक्ल पक्ष—	पद्मा एकादशी व्रत, रक्षा बन्धन।
(१०) भाद्रपद कृष्ण पक्ष—	श्रीकृष्ण जन्मोत्सव और अजा एकादशी व्रत।
(११) भाद्रपद शुक्ल पक्ष—	तृतीया तिथि को श्री श्यामचरणदास का जन्मोत्सव, अष्टमी को राधा जन्मोत्सव, जल झूलनी एकादशी व्रत और बावन द्वादशी।
(१२) आश्विन कृष्ण पक्ष—	इन्दिरा एकादशी व्रत।
(१३) आश्विन शुक्ल पक्ष—	विजया दशमी, पापाकुंशा एकादशी व्रत, पूर्णिमा को डहरे में श्री शुकमुनि तथा श्याम चरणदास के दर्शन तथा रासोत्सव।
(१४) कार्तिक कृष्ण पक्ष—	रमा एकादशी व्रत, चतुर्दशी को रूप चतुर्दशी और अमावस्या को दीपमालिका।
(१५) कार्तिक शुक्ल पक्ष—	प्रतिपदा को गोवर्द्धन पूजा और अन्नकूट का उत्सव, गोपाष्टमी और देवप्रबोधिनी एकादशी।
(१६) मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष—	श्री श्यामचरणदास महाराज का परमधाम-यात्रामहोत्सव और वैतरणी एकादशी व्रत।
(१७) मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष—	मोक्षदा एकादशी व्रत, व्यंजन द्वादशी तथा नारद जयन्ती।
(१८) पौषकृष्ण पक्ष—	सफला एकादशी व्रत।
(१९) पौष शुक्ल पक्ष—	पुत्रदा एकादशी व्रत।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२०) माघ कृष्ण पक्ष—	षट्तिला एकादशी व्रत।
(२१) माघ शुक्ल पक्ष—	बसन्त पंचमी महोत्सव और जया एकादशी।
(२२) फाल्गुन कृष्ण पक्ष—	विजया एकादशी व्रत।
(२३) फाल्गुन शुक्ल पक्ष—	आमलकी एकादशी व्रत, फागोत्सव (एकादशी से पूर्णिमा तक) होलिका-दीपन और होलिकोत्सव।
(२४) चैत्र कृष्ण पक्ष—	कमला एकादशी।[1]

इनके अतिरिक्त प्रत्येक पक्षांत की तिथि अर्थात् अमावस्या और पूर्णिमा को रात्रिजागरण के आयोजनों के साथ-साथ इस संप्रदाय के विभिन्न थाँभों और शिष्य गद्दियों की परम्परा में हुए महन्तों के जन्मोत्सव और परमधामोत्सव भी धूम-धाम से मनाये जाते हैं। इस प्रकार सालभर कुछ न कुछ होता रहता है। यह सक्रियता धार्मिकों की संतुष्टि और संलग्नता के लिए तो आवश्यक है ही, साथ ही किसी संप्रदाय विशेष की जागृति का भी प्रतीक है। ऐसे आयोजनों में होने वाले सत्संग, संगीत, वाद्य, शृंगार, पूजा, स्तुति, मंत्रपाठ और अन्य प्रकार के धार्मिक क्रियाकलाप जनमानस पर एक स्वस्थ छाप छोड़ते हैं और मनस्तोष के जनक होते हैं।

पंचदेवोपासना का निषेध—

विष्णु, शिव, सूर्य, देवी और गणेश—इन पाँचों देवताओं की समान रूप से तथा आवश्यक रूप में पूजा करना चरणदासी संप्रदाय में निषिद्ध है। यह स्मार्तों की उपासना है, जिसमें इन पाँचों देवताओं की पूजा-अर्चा का विधान है। इस संप्रदाय के आधुनिककालीन आचार्य पं० शिवदयालु गौड़ (सरसमाधुरीशरण) के कथनानुसार इस संप्रदाय के अनुयायियों के लिए शिव इसलिये पूज्य नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने विष्णु भगवान् की आज्ञा से तामसगुणवर्द्धक साधनापद्धति के ग्रंथों की रचना की थी। ये ग्रंथ प्रवृत्तिमूलक हैं। जहाँतक सूर्य का प्रश्न है, ये कालाधीन हैं। इनका स्वरूप सतत् परिवर्तनशील है। इन्हें राहु भी ग्रस्त कर लेता है, अतः ऐसे देवता के पूजन से कोई लाभ नहीं। देवियाँ भगवत् प्राप्ति में प्रतिबंधिका हैं। ये मायास्वरूपिणी हैं, अत माया की पूजा क्या करना? गणेश जी पार्वती जी के अंग के मैल से उत्पन्न हुए हैं। पार्वती जी स्वयं भी मृत्युरूपा तथा भय से संयुक्त हैं अतः इनकी भी पूजा उचित नहीं।[2]

---

१. सरसकुंज : दरीबा पान, जयपुर से प्रकाशित 'व्रतोत्सव दीपिका' नामक परिपत्र के आधार पर।

२. शुकसंप्रदाय सिद्धांत चंद्रिका : पृ० १६७–१६८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोच्य संप्रदाय में विष्णु की अनन्याभक्ति ही स्वीकृत है। इनके अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की उपासना का स्पष्ट रूप से निषेध किया गया है। इस संप्रदाय में विष्णु के सभी अवतारों, विशेषतः राम और कृष्ण के स्वरूप की उपासना पर अधिक बल दिया गया है। इन दोनों में भी कृष्ण के लीला पुरुषोत्तम रूप की ओर इस संप्रदाय के अनुयायियों और आचार्यों का झुकाव विशेष दिखाई देता है। इसी संदर्भ में श्री कृष्ण की नित्यलीलासहचरी श्री राधा जी तथा उनका सखी समुदाय भी पूजनीय हैं।

महंत बनाने की विधि—

प्रायः महंत अपने उत्तराधिकारी के पक्ष में अपनी जीवितावस्था में ही एक उत्तराधिकार प्रस्ताव (विल) बनाकर अपने संप्रदाय के महंतों, साधुओं और कतिपय अन्य समकालीन संप्रदायों के महात्माओं के हस्ताक्षर करा लेते हैं और उसे पंजीकृत करा देते हैं। उनके शरीरान्त के पश्चात् उनकी १७वीं के बाद उस गद्दी पर उत्तराधिकारी की नियुक्ति होती है, जिसे 'गद्दीनशीनी' कहते हैं। इस आयोजन में स्वर्गवासी गुरु की गद्दी बिछा दी जाती है और महंत होने वाला शिष्य उस पर बैठा दिया जाता है। उस गद्दी के अनुयायी उसके मस्तक पर तिलक लगाकर भेंट आदि चढ़ाते हैं। उस समय उसका सिर एक चादर से ढँका रहता है और चँवर तथा मोर्छल डुलाए जाते हैं। यह तिलकोत्सव श्रीमहंत (महन्तान् महन्त) करते हैं। उनकी अनुपस्थिति में कोई अन्य वरिष्ठ महन्त तिलक करता है।

उत्तराधिकारी की नियुक्ति के लिए 'भेख' (उस सम्प्रदाय के महन्तों और महात्माओं) की स्वीकृति अनिवार्य है। बिना उनके हस्ताक्षर के कोई भी 'विल' वैध नहीं होता। यदि ऐसी स्थिति आये कि ऐसा कोई पंजीकृत प्रस्ताव पहले से तैयार न हो जिस पर 'भेख' के हस्ताक्षर हों और गुरु का शरीरान्त हो गया हो तो 'भेख' को अधिकार है कि वह चाहे जिसे महन्त नियुक्त कर सकता है। यदि महन्त का कोई चेला वर्तमान है और जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से सक्षम एवं सामान्य व्यक्तित्व का है, तो भेख प्रायः उसे ही महन्त बनाता है। यदि ऐसी स्थिति नहीं है तो किसी भी गद्दी से सम्बद्ध चरणदासी शिष्य को गद्दीनशीन किया जा सकता है।

इसके लिए इस सम्प्रदाय में शिष्य की जाति बाधक नहीं है। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में से कोई भी हो सकता है।

भारत में धार्मिक गद्दियाँ तीन प्रकार की हैं—(१) मौरूसी, (२) पंचायती और (३) हाकिमी। इस सम्प्रदाय की अधिकतर गद्दियाँ मौरूसी ही हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री शुक सम्प्रदाय का प्रचार और प्रसार—

जैसा कि पहले ही संकेत कर चुके हैं, स्वामी चरणदास के जीवनकाल में ही उनके अनेक शिष्यों ने अपने स्वतन्त्र स्थान (थाँभे) निर्मित कर लिए थे।[1] उनके परलोकवास के उपरान्त लगभग ५० वर्षों तक गद्दी-मठ-मन्दिर की स्थापना और प्रचार-प्रसार की यह प्रक्रिया बड़ी तेजी से चली। इस बीच न केवल उनके १०८ प्रमुख शिष्यों की गद्दियाँ स्थापित हो चुकी थीं, वरन् उनके पौत्र और प्रपौत्र शिष्यों ने भी थाँभों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि कर दी थी। स्थान-निर्माताओं और उनकी शिष्यपरम्परा का विवरण आगे यथास्थान दिया जा रहा है। इसे मुख्यतः गद्दी-नशीनी अथवा मृतक संस्कार (सत्रहवीं) सम्बन्धी मेलों में उपस्थित महन्तों के कालक्रम को ध्यान में रखते हुए तथा दिल्ली, वृन्दावन एवं जयपुर के सर्वाधिक सक्रिय स्थानों के वर्तमान नियामकों के अनुभव और उनके यहाँ उपलब्ध अनेक पुरानी बहियों, सूचियों और अभिलेखों की सहायता से तैयार किया गया है।

गद्दियों की शिष्य-परम्परा का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते समय प्रायः यथास्थान अनुमान को ही स्थान देना पड़ा है अतः इसके शत-प्रतिशत प्रामाणिक होने का दावा तो नहीं किया जा सकता परन्तु इतना अवश्य है कि इसकी प्रामाणिकता यथासम्भव विश्वसनीय है। जनश्रुति है कि स्वामी चरणदास के शिष्य प्रशिष्यों ने लगभग ४००० स्थानों का निर्माण किया था। इस सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य यह स्वीकार करते हैं कि सं० १९०० वि० तक इस परम्परा के लगभग १५०० स्थान थे परन्तु उन सबका लेखा-जोखा उनके पास नहीं है। सम्भव है कि दिल्ली की आचार्य गद्दियों के प्रारम्भिक महंतों यथा सहजोबाई, रामरूप और जुगतानंद जी के देह-त्याग के पश्चात् इन केन्द्रीय गद्दियों पर आने वाले महन्तों का दूरस्थ कतिपय छोटी-बड़ी गद्दियों से सम्बन्ध शिथिल हो गया हो या सम्पर्कसूत्र दुर्बल हो गया हो। इसके मूल में सन् १८५७ ई० के विद्रोह को भी कारणभूत माना जा सकता है। यद्यपि इस संख्या को सही सिद्ध करने का सम्प्रति कोई प्रामाणिक साक्ष्य नहीं है परन्तु सहसा उसे अस्वीकार करने का भी कोई कारण नहीं है। वास्तविकता यह है कि इस समय नाम और पतों के सहित उल्लिखित थाँभों की प्रामाणिक संख्या २५० से अधिक उपलब्ध नहीं है। इसमें ५२ बड़े थाँभे भी सम्मिलित हैं।

---

१. जहाँ कहीं इस सम्प्रदाय का कोई महात्मा अपना आश्रम या प्रचार-केन्द्र स्थापित कर लेता है और उसकी शिष्य-परम्परा भी वहाँ महन्त के रूप में चल पड़ती है, उसे इस सम्प्रदाय में थाँभा, अस्थान, स्थान, अस्थल और गद्दी की संज्ञा दी जाती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान-निर्माताओं में सर्वाधिक व्यापक प्रयत्न रामरूप जी का माना जा सकता है, जिसकी शिष्य-परम्परा ने गुरु के जीवनकाल में ही (अत्यन्त अल्पावधिमें) ८० से अधिक स्थानों का निर्माण किया था। इस क्रम में गोसाईं जुगतानन्द का स्थान दूसरा और सहजोबाई जी का स्थान तीसरा सिद्ध होता है। चरणदास जी के अन्य प्रमुख शिष्यों में इस दृष्टि से क्रमशः गुरुछौना जी, ब्रह्मस्वरूप जी, जोगजीत जी और श्री श्यामसरन बड़भागी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ज्ञात थाँभों में से आधे से अधिक इन्हीं सात महात्माओं और उनकी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा द्वारा स्थापित किये गये थे। यदि विभिन्न मेलों में उपस्थित होने वाले थाँभों की सक्रियता का लेखा-जोखा तैयार करें तो यह पायेंगे कि महन्त ब्रह्मस्वरूप के अधिकांश थाँभे प्रायः सभी मेलों में उपस्थित हुए हैं। अपने सम्प्रदाय के प्रचार में योगदान की दृष्टि से उनका और उनके स्थानों (थाँभों) का महत्व अत्यधिक है।

ऐसे थाँभे जो, स्थापित होकर भी अधिक दिन तक न चल सके, उनके संबंध में विशेष विवरण अप्राप्य होने के कारण जितनी सामग्री उपलब्ध हो सकी है, उसके आगे जा पाना सम्भव नहीं हुआ है। मेलों की बहियों में कुछ ऐसे स्थानों का भी नाम मिलता है जिनके स्थापकों या उनकी शिष्य-परम्पराओं का ठीक से पता ही नहीं चल पाता; अतः इन्हें सन्दिग्ध स्थानों की श्रेणी में परिगणित किया गया है। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं, जिनका नामोल्लेख केवल एक या दो बार ही हुआ है और उनका पता भी नहीं दिया गया है। साथ ही कुछ ऐसे स्थानों का नाम भी यत्र-तत्र उल्लिखित मिलता है जो केवल जागीर में मिले स्थान के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उन्हें थाँभे की संज्ञा ही नहीं दी जा सकती। उदाहरण के रूप में सहजोबाई जी की गद्दियों की सूची में मांदीपुर, बंथला, दहीरपुर, जहाँगीरपुर आदि के नाम भी गिनाये जाते हैं जब कि ये स्थान उन्हें मिली हुई माफी की जागीरों के हैं, जो दिल्ली के मुगल बादशाहों द्वारा सुश्री सहजोबाई के मन्दिर के रख-रखाव के लिए प्रदत्त हैं। इसी प्रकार स्वामी रामरूप जी के स्थानों की सूची में परिगणित सवाद, बनी और मुरादनगर आदि जागीर के स्थान मात्र हैं। यदि इन्हें थाँभों की बृहत् सूची से घटा दिया जाय तो इनकी संख्या और भी कम हो जायगी।

दिल्ली की तीनों आचार्य गद्दियों का सम्प्रदाय पर प्रभाव —

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दिल्ली की तीनों गद्दियों के बीच बनते-बिगड़ते सम्बन्धों के अनुसार ही उनके नियन्त्रण वाले अन्य थाँभे भी परिचालित एवं प्रभावित होते थे। श्री चरणदास के शिष्यों द्वारा स्थापित अन्य छोटे-बड़े थाँभे भी अपनी-अपनी रुचि से इन तीन बड़ी गद्दियों में से किसी न किसी पक्ष में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गये थे। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस दृष्टि से मुख्यतः दो ही पक्ष थे। प्रारम्भिक बड़ी गद्दियों में से अधिकांश या तो महन्त जुगतानन्द के पक्ष में थे या श्री रामरूप की ओर थे। दिल्ली की प्रधान गद्दी के महन्त-पद की प्राप्ति की होड़ में सुश्री सहजोबाई विवाद में पड़ने वाली प्रत्याशी नहीं थीं। अधिकांशतः वे अपनी विशिष्ट परिस्थिति के कारण सदा महन्त पद से उदासीन ही बनी रहीं। फलतः उक्त दोनों पक्षों के ऐसे गुरुभाइयों या उनके शिष्यों का समर्थन उन्हें मिलता रहा, जो उनकी साधनात्मक उपलब्धियों के कारण उनके प्रति आदर-भाव रखते थे। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि श्री जुगतानन्द और रामरूप जी के बीच श्री चरणदास के उत्तराधिकार-पद के विवाद में वे समाधान के रूप में थीं, परन्तु परिस्थितिवशात् उनका उचित उपयोग न हो सका।

ज्ञातव्य है कि दिल्ली की उक्त तीनों गद्दियों द्वारा अपने-अपने पक्ष के विभिन्न स्थानों पर स्थित बड़े और छोटे थाँभों का नियन्त्रण, परिचालन, संयोजन आदि होता रहता था। साथ ही उनके द्वारा अपने अधीनस्थ या प्रभाव में रहे थाँभों के विविध आयोजनों का लेखा-जोखा भी रखा जाता था। खेद की बात है कि चरणदासी सम्प्रदाय के सन् १८१० से १८६० ई० की अवधि के बीच के लगभग ५० वर्षों के अभिलेख सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह के समय गो० जुगतानन्द के अस्थल में हुई आगजनी के कारण अग्नि को समर्पित हो गये। फलतः इस काल-खण्ड के बीच उनकी 'महन्तान् महन्त' गद्दी से नियन्त्रित सैकड़ों छोटे-बड़े स्थानों पर आयोजित हुए सत्रहवीं या गद्दीनशीनी के मेलों के विषय में हमें कोई भी व्यवस्थित जानकारी नहीं मिल पाती। अतः कुछ गद्दियों की शिष्य-परम्परा को स्थिर करने के लिए हमें अन्य साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। जहाँ कोई साधन या सूत्र हाथ नहीं लगता, वहाँ अनुमान की शरण में जाना पड़ता है। दिल्ली की ये तीनों प्रधान गद्दियाँ अपने यहाँ अपने से सम्बन्धित बड़ी या छोटी गद्दियों में हुए आयोजनों का लेखा-जोखा सुरक्षित रखे हुए हैं। कौन-सा आयोजन कब, कहाँ और किस उपलक्ष्य में आयोजित हुआ तथा उसमें कहाँ से कौन महन्त कितने साधुओं के साथ उपस्थित हुआ; उसे कितनी दक्षिणा दी गई तथा इस आयोजन के सम्बन्ध में अन्य क्या विशेषता रही—इन सबका विवरण मेलों की बहियों में यथास्थान दिया गया है। इनमें विविध समयों में तत्तद् गद्दियों पर रहे महन्तों के नाम-पते भी उल्लिखित हैं।[1]

---

१. बहियों में उल्लिखित अनेक पते अब बदल गये हैं। विगत १००–१२५ वर्षों के बीच जनपदों की भौगोलिक सीमाओं में परिवर्तन, प्रान्तों के पुनर्विभाजन या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन अभिलेखों की सहायता से विभिन्न गद्दियों की शिष्य परम्पराओं को स्थिर करने में बड़ी सहायता मिली है। इसके साथ ही इस सम्प्रदाय की कब क्या स्थिति रही है, इसका भी पता चल जाता है। उसी आधार पर एक सांकेतिक लेखा-जोखा यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जो संत चरणदास के इस सम्प्रदाय के विस्तार की स्थिति स्पष्ट करेगा।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि चरणदासी गद्दियों द्वारा विभिन्न कारणों से आयोजित विविध मेलों और सामूहिक आयोजनों के दिल्ली की सदर गद्दी में सुरक्षित विवरणों तथा बहियों में सं० १९१९ वि० और उसके बाद के ही आयोजनों के विवरण मिलते हैं। जब कि सं० १८३९ वि० में ही युगावतार चरणदास जी का स्वर्गवास हुआ था। प्राप्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि उनके जीवन-काल में ही उनके शिष्यों ने दूर-दूर तक पहुँच कर अपने स्वतन्त्र स्थान बना लिये थे। यद्यपि सम्प्रदाय के प्रवर्त्तन का प्रादुर्भाव-काल क्या था, इसके विषय में स्पष्ट रूप से कोई उल्लेख नहीं मिलता, तो भी यह माना जा सकता है कि चरणदास जी की शिष्य-गद्दियों की स्थापना का प्रारम्भ सं० १८२० वि० के आस-पास तक आरम्भ हो चुका था। इतना ही नहीं बल्कि कुछ गद्दियों पर उनके जीवन काल में ही उनके प्रशिष्य या नाती शिष्य तक महन्त रूप में अधिष्ठित हो चुके थे। ऐसे स्थानों में जयपुर, पानीपत, कर्नाल, शुकतार, सोरों, लखनऊ और वृन्दावन के नाम लिये जा सकते हैं। सं० १८७० वि० तक की शिष्य-प्रशिष्य परम्परा का कुछ ज्ञान स्वामी रामरूप जी के 'गुरुभक्ति प्रकाश' और 'मुक्तिमार्ग', श्री जोगजीत के 'लीलासागर' तथा कतिपय अन्य उल्लेखों से प्राप्त होता है, परन्तु सं० १८७० से १९१९ वि० के बीच के लगभग ५० वर्षों के अन्तराल में इस सम्प्रदाय की गति-विधियों का जो भी अभिलेख रहा होगा, वह लुप्त है। इसका कारण सन् १८५७ ई० के गदर को ही माना जाता है।

इन मेलों के सम्बन्ध में प्राप्त अभिलेखों से इस सम्प्रदाय के विस्तार और संकोच पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इससे यह भी पता चलता है कि दिल्ली की तीनों प्रमुख गद्दियों में से किन्हीं दो में बराबर सम्बन्ध बनते-बिगड़ते रहे हैं।

पुनर्गठन तथा नये नामकरण के फलस्वरूप अनेक प्राचीन स्थानों की वर्तमान स्थिति का पता लगाना कठिन काम हो गया है। विगत ३०–३५ वर्षों में जिलों की सीमाओं का भी पुनर्गठन हो गया तथा डाकखानों, तहसीलों और थानों के नामों और स्थानों में परिवर्तन हो गया, अतः इन बहियों के पते अब पूर्णतया प्रासंगिक नहीं रहे। उनमें से कुछ स्थानों के नये पतों की खोज अनिवार्य हो गई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई दशाब्दियों तक सहजोबाई जी की गद्दी के सम्बन्ध कभी जुगतानन्द की गद्दी से अच्छे रहे तो कभी रामरूप जी की गद्दी से। इतना स्पष्ट है कि इनमें इतनी कटुता थी कि इन दोनों आचार्य गद्दियों से उनकी गद्दी का सम्बन्ध लम्बे समय तक सुधर नहीं सकता था। सं० १९२६ वि० में आयोजित पलथा के मेले में, सं० १९४२ वि० के दिल्ली के मेले में, सं० १९५२ वि० के माचल के मेले में, सं० १९६५ वि० के दिल्ली के मेले में और सं० १९६८ वि० के माचल के दूसरी बार के मेले में ५२ बड़ी गद्दियों के महन्तों की उपस्थिति उल्लिखित है। इसके आधार पर यह अनुमान लगाना सहज है कि किस अवधि के बीच, सभी गद्दियों में आपसी सौमनस्य था। ज्ञातव्य है कि सं० १९५० वि० के पश्चात् के आयोजनों में यदि २० भी बड़ी गद्दियाँ सम्मिलित हुईं, तो इन अभिलेखों में किसी अज्ञात कारण से बड़ी गद्दियों की संख्या ५२ लिख दी गई है। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि शायद ही कोई ऐसा आयोजन हुआ हो, जिसमें सभी बड़ी गद्दियाँ सम्मिलित हुई हों।

चरणदास जी के १०८ शिष्यों की सूची का निर्धारण—

बड़ी गद्दियों के संस्थापक शिष्यों की सूची 'लीलासागर', 'गुरुभक्ति प्रकाश', 'मुक्तिमार्ग', 'नव सन्तमाल' तथा अन्य साम्प्रदायिक कृतियों में भिन्न-भिन्न है, जिनका सम्यक् परीक्षण करने के पश्चात् एक प्रामाणिक सूची देने का प्रयास यहाँ किया जा रहा है। जहाँ तक छोटी गद्दियों का प्रश्न है, इनकी सूची बड़ी कठिनाई से बन पायी है, क्योंकि १०८ शिष्यों की जो माला उल्लिखित है, उनमें से अनेक ऐसे हैं जिन्होंने अपना कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं बनाया। इनमें से कुछ तो दिल्ली के अपने गुरुद्वारे में ही रह गये और कुछ अपने गुरुभाइयों के साथ रहते रहे। कुछ ऐसे भी शिष्य हैं, जो उक्त १०८ की माला से बाहर हैं, फिर भी जिन्होंने अपने स्वतन्त्र स्थान बनाये थे। इनका नामोल्लेख यथास्थान किया जायगा।

'नव सन्तमाल' के रचयिता स्व० रूपमाधुरीशरण जी (वृन्दावन) ने ५२ शिष्यों की सूची के नाम पर कुल ८२ शिष्यों की सूची दी है। स्पष्ट है कि छोटे थाँभों के संस्थापक अन्य ५६ शिष्यों में से कुछ के नाम देकर उन्होंने १०८ शिष्यों की सम्प्रदायानुमोदित सूची तैयार करने का प्रयत्न किया है, लेकिन उन्हें केवल ८२ नाम ही मिल पाये हैं। वैसे तो इस सूची में परिगणित नामों की संख्या ८४ है परन्तु इसमें मुक्तानन्द और निरमलदास का नाम दो बार आ गया है। अतः उनकी सूची में नामों की संख्या ८२ ही रह जाती है। इसी प्रकार रामकरन जी का नाम इसमें सामकरन जी अंकित है, जो भ्रान्तिजनित हो सकता है। इस सूची में बड़ी गद्दियों के संस्थापकों में से गुरुप्रसाद, छीतरमल, दाताराम,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरमदास, परमदास, ब्रह्मप्रकाश, हरभजनदास, माधुरीदास और सुखरामदास (प्रथम) के नाम उल्लिखित नहीं हैं। इसी प्रकार छोटे थाँभों के जनखुसाल, गरीबदास, टीकमदास, नारायणदास, प्रेमसनेही, प्रेमहुलास, बलरामदास, बावलदास, मुरली-मनोहर, माधवदास, महाराम, मँगनीराम, माणिकदास, मदनमोहन, लटकनदास, शोभानन्द, सुखरामदास (द्वितीय), साधुराम (द्वितीय), सागरदास, हँसमुखदास, हरिनारायण, भजनानन्द, हरिप्रसाद और हुलासदास आदि के नाम सम्मिलित नहीं हैं।[1]

चरणदास जी के शिष्य गोस्वामी जुगतानन्द जी के एक शिष्य रामचेरा जी ने भी चरणदास के १०९ शिष्यों की एक सूची १४ दोहों में प्रस्तुत की है। इसी प्रकार उन्होंने गो० जुगतानन्द जी के १२४ शिष्यों की सूची १५ दोहों में और रामरूप जी के ८२ शिष्यों की सूची ११ दोहों में दी है। चूँकि वे गो० जुगतानन्द जी के वरिष्ठ शिष्य थे, सदैव उन्हीं के अस्थल में रहते थे और आजीवन इस सम्प्रदाय के ग्रन्थों के प्रसिद्ध प्रतिलिपिकार रहे, अतः उनकी सूची सर्वाधिक विश्वसनीय मानी जायगी। उस सूची के अनुसार चरणदास जी के शिष्यों की नामावली इस प्रकार है—

१. जुक्तानन्द।
२. सहजोबाई।
३. आतमराम।
४. गुरुछौना जी।
५. हँसमुखदास।
६. गुरुमुखदास।
७. भगवानदास।
८. त्यागीराम।
९. पूर्णप्रताप।
१०. रामधड़ला।
११. श्यामसरनदास (बड़भागी)
१२. नन्ददास।
१३. रामसखी।
१४. घनश्यामदास।
१५. पण्डित बालगोपाल।
१६. रामप्रताप।
१७. जसराम (उपकारी)।
१८. गुरुप्रसाद।
१९. मस्तराम (सुखबिलास)।
२०. सबगतिराम (१, २)।
२१. हरिबिलास।
२२. सहजानन्द।
२३. जैरामदास।
२४. दाताराम।
२५. प्रेमगलतान।
२६ रामरूप (गुरुभक्तानन्द)।
२७. श्यामरूप (श्यामदास)।
२८. मुक्तानन्द।
२९. परमदास (प्रेमदास)।
३०. परमसनेही।
३१. ठण्डीराम।
३२. बलरामदास।

---

१. द्रष्टव्य : नव सन्तमाल : पृ० १८–२०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३३. बल्लभदास ।
३४. गोपालदास ।
३५. नागरीदास ।
३६. चरनधूर ।
३७. साधूराम ।
३८. चरणरज ।
३९. चरणखाक ।
४०. निर्मलदास ।
४१. हरिदास (१) ।
४२. ,, (२) ।
४३. रामदास (१) ।
४४. ,, (२) ।
४५. हरिसेवकदास ।
४६. रामहेत । +
४७. सुखरामदास (१) ।
४८. ,, (२) ।
४९. रामकरन ।
५०. अमरदास ।
५१. निगमदास (अगमदास) ।
५२. हरिसरूप ।
५३. आसानन्द ।
५४. रामसनातन ।
५५. मधुबनदास (नागा) ।
५६. परमानन्ददास ।
५७. लालदास ।
५८. मुरलीमनोहर ।
५९. धर्मदास ।
६०. मुरलीबिहारी ।
६१. रामगलतान ।
६२. गुरुसेवकदास ।
६३. प्रेमदास (ब्रह्मचारी) ।
६४. प्रेमहुलासदास । +
६५. हरिनारायण ।
६६. दासकुँअर ।
६७. नन्दराम ।
६८. नन्दलाल ।
६९. नारायणदास ।
७०. जुगलदास ।
७१. प्रेमघन ।
७२. मयादास ।
७३. हरदेवदास ।
७४. गिरधरदास ।
७५. माधोदास (मध्यादास) । +
७६. महादास ।
७७. लटकनदास । +
७८. मँगनीराम । +
७९. हुलासदास । +
८०. शोभानन्द । +
८१. पुसालदास । +
८२. बावलदास । +
८३. मानिकदास । +
८४. जोगजीत ।
८५. सेवकदास (राम) ।
८६. निरंजनदास । +
८७. जैदेवदास ।
८८. गरीबदास ।
८९. हरिकृष्णदास ।
९०. साधुरामदास ।
९१. हरिभक्तदास ।
९२. हरिप्रसाद ।

रामचेरा जी की सूची में चरणदास जी के १०२ शिष्यों के नाम हैं और

+ लीलासागर में उल्लिखित नहीं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७ समदे (लुटेरे) सम्मिलित करके यह सूची १०९ तक पहुँचा दी गयी है। ये सात डाकू चरणदास जी और उनके दल को उस समय लूटने आये थे जब वे पानीपत से करनाल जा रहे थे। अन्ततः वे चरणदास जी के दीक्षित शिष्य बन गये थे।[1] परन्तु शिष्य बनने के पश्चात् पुनः इन लोगों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अनुमानतः रामचेरा जी को जब १०२ से अधिक नाम नहीं मिले तो उन्होंने सात लुटेरों को जोड़कर १०९ की संख्या पूरी कर दी। परन्तु कठिनाई यहीं समाप्त नहीं हो जाती। उनकी सूची में उल्लिखित अमरा, जगचेत, चचा, दरवाय ही दास, भक्त ही दास—ऐसे नाम हैं, जो अस्पष्ट हैं और प्रामाणिक सूची में ऐसे नाम नहीं हैं। यदि अमरा अमरदास हैं तो इनका नाम सूची में पहले ही आ चुका है और यदि यह अमरा ही है तो ऐसा कोई नाम नहीं मिलता। भक्त ही दास को हरिभक्तदास माना जा सकता है। फिर भी जगचेत, चचा दरवाय ही दास आदि जैसे नामों की संगति बैठाना असम्भव है।

इस सूची में उल्लिखित गति के लिए भी यही बात कही जा सकती है। श्यामरूप, हीरा, लालदास और गिरधर के नाम दो-दो बार उल्लिखित हैं, जब कि इन नामों के दो व्यक्तियों को इस सूची में नहीं होना चाहिए। इस प्रकार देखा जाय तो इस सूची में १०२ के स्थान पर ९३ नाम ही ठीक ढंग से उल्लिखित हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि ७ समदों (लुटेरों) को इस सूची में सम्मिलित करना न तो उचित है और न तो आवश्यक ही।

जोगजीत जी के 'लीलासागर' में सब मिलाकर ९२ शिष्यों का वृत्त वर्णित है अथवा नामोल्लेख है। लीलासागर में समाविष्ट केवल ७५ नाम ही रामचेरा जी की सूची में है। शेष नाम उससे भिन्न हैं। रामचेरा जी की सूची के जो नाम 'लीलासागर' में नहीं हैं—वे इस प्रकार हैं–१.बलरामदास, २. साधुराम प्रथम, ३. साधुराम द्वितीय, ४. राम हेत, ५. अमरदास, ६. प्रेमहुलासदास, ७. माधोदास, ८. लटकनदास, ९. मँगनी राम, १०. शोभानन्द, ११. षुसालदास, १२. बाबल दास, १३. मानिकदास।

---

१. सत असवार जु धाड़ी आवें। शरन तुम्हारी लोग सुनावें॥
आगे गये चरनदास गुसाईं। पलट जाव तुम लूटो नाहीं॥
कहि लूटी तो मारे जावो। इक तिन में से लूटन धावो॥
उलटि घोड़े से भूमि गिरायो। टूटी बाँह लूट जस पायो॥
उतर सभी चरणों परे, नाथ शरण कहि राख।
महा कुटिलता हम करी, चरणदास तब भाख॥
—लीलासागर : पृ० २४७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार लीलासागर में उल्लिखित निम्नलिखित नाम रामचेरा जी की सूची में नहीं हैं—१. दयाबाई, २. नूपीबाई, ३. विद्यानाथ, ४. डंडौतीराम, ५. जीवन दास, ६. नंदराम द्वितीय, ७. चरण सहाय, ८. श्यामदास, ९. अतीतराम, १०. सागरदास और ११. राममौला।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचेरा जी, जोगजीत जी और रूपमाधुरीशरण जी द्वारा प्रस्तुत सूचियों में से कोई भी ऐसी सूची नही है, जिसमें सभी १०८ नाम वर्तमान हों। यदि रामचेरा जी की ९३ नामों की सूची में 'लीलासागर' में उल्लिखित परन्तु रामचेरा जी की सूची से छूटे हुए उक्त ११ नामों को और जोड़ दें, तो यह संख्या ९३ + ११ = १०४ तक पहुँच जाती है। विभिन्न सूचियों को देखने से और उनकी समीक्षा करने से इन १०४ नामों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी हैं जो या तो इन तीनों में नहीं हैं या 'नवसंतमाल' में हैं और शेष दो सूचियों में नहीं हैं। ये नाम इस प्रकार हैं—१. ब्रह्मप्रकाश, २. छीतरमल, ३. हरभजनदास और ४. मधुरीदास या मध्यादास। ये सभी बड़े थाँभों के संस्थापक हैं। इनमें से प्रथम दो के नाम किसी सूची में नहीं हैं, जब कि क्रमशः शाहपुरा एवं घनौरा के उनके थाँभे सर्वाधिक सक्रिय थाँभों में से रहे हैं और मेलों की बहियों में इन्हें बड़ा थाँभा माना गया है। इनमें भी ब्रह्मप्रकाश जी के असगरीपुर, जटपुरा, धामपुर, मंदपुर आदि १ दर्जन छोटे थाँभों का इस सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान रहा है। फिर भी उक्त सूचियों में इनके नामों का न होना आश्चर्यजनक है। शेष दो चरणदास जी के परम प्रसिद्ध शिष्य थे, जिनके स्थान क्रमशः रजधान (कानपुर) और भुसावल (भरतपुर राज्य) में थे।

बड़ी और छोटी गद्दी के भेदक लक्षण—

अब प्रश्न उठता है कि कैसे जाना जाय कि किस शिष्य की गद्दी बड़ी गद्दी (बड़ा थाँभा) है ? इस प्रश्न का उत्तर महंत गंगादासजी की 'श्री श्यामचरण दास चरितावली' से भी नहीं मिलता। इसमें बावन शिष्यों की जो नामावली ९ दोहों के माध्यम से दी गयी है उनमें से सहजोबाई जी के पिता श्री हरिप्रसाद और चारो भाई बड़ी गद्दियों के संस्थापक नहीं थे। चूँकि महंत जी सहजोबाई जी की गद्दी के महंत थे, अतः उन्होंने उनके चारों भाइयों और पिता का नाम भी इन ५२ शिष्यों की सूची में जोड़ दिया। इन ५ नामों को घटाकर यह सूची मात्र ४७ नामों की रह जाती है, जिसमें पाँच अन्य नाम भी छूट गये हैं।[1]

बड़ी और छोटी गद्दी का निर्धारण सम्भवतः चरणदास जी के स्वर्गवास के उपरान्त (सं० १८३९ वि० के पश्चात्) हुआ था। सम्भव है कि उसके निर्धारण की

१. श्री श्यामचणदास चरितावली (प्रकाशित) : पृ० १७८–७९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रक्रिया सं० १८४० और १८५० के बीच सम्पन्न हुई ही। तब तक उन शिष्यों ने भी स्वतन्त्र स्थान बना लिया होगा, जो अपने गुरु के जीवन काल में उन्हीं के सान्निध्य में रहते थे।

अब हमारे समक्ष सर्वाधिक विश्वसनीय सूत्र के रूप में किसी महंत के स्वर्गवास के उपलक्ष्य में आयोजित 'सत्रहवी' के मेले या किसी नये महंत की गद्दीनशीनी के समारोह के लेखे-जोखे वाली बही, आमद-खर्च का रोजनामचा या अन्य अभिलेख ही आधारभूत सामग्री के रूप में प्रस्तुत होते हैं। मान्य प्रथा के अनुसार मेलों में पंचायती संस्थाओं और बड़े-छोटे थाँभे के महंतों को विदाई या भेंट के रूप में एक निश्चित रकम दी जाती थी। उदाहरण के रूप में वृन्दावन के व्यास घेरा, कनखल की धर्मशाला, डेहरा में श्रीचरणदास की छतरी, गढ़मुक्तेश्वर में गंगाजी, निशान, चँवर और नगाड़ा आदि को पंचायती स्थान या वस्तु मानकर इन्हें भेंट देने का विधान था।

इसी प्रकार मेले में बड़े थाँभे के उपस्थित महन्त को दो या चार रुपये भेंट में देने और उसके साथ आये छोटे थाँभे के महन्तों या साधुओं में से प्रत्येक को उसकी आधी रकम देने का नियम था। यदि कोई छोटा थाँभा किसी बड़े थाँभे से संबद्ध नहीं है, या स्वतन्त्र है तो भी उस बड़े थाँभे को आधी रकम अर्थात् १ या दो रुपये प्रति साधु की दर से दिया जाता था। अन्य सम्प्रदायों या पंथों के अभ्यागत साधुओं को भी १।) देने की प्रथा थी। साथ ही प्रत्येक मेले के विवरण में यह उल्लेख किया जाता था कि कितने बड़े थाँभे और कितने छोटे थाँभे उपस्थित हुए। कई मेलों में ५२ बड़े थाँभों की उपस्थिति उल्लिखित है। इस सम्प्रदाय में संकीर्णता का अभाव था। मेलों में उपस्थित साधुओं और गृहस्थों में जाति और धर्म का भेद-भाव नहीं रखा जाता था और सबके साथ समान व्यवहार होता था। इस सम्प्रदाय के महंत प्रायः अन्य समकालीन सम्प्रदायों यथा दादू, निरंजनी, सिख, गरीबदासी आदि सम्प्रदायों के आयोजनों में सम्मिलित होते थे और इन सम्प्रदायों के अनुयायियों एवं साधुओं को आमंत्रित भी करते थे। प्राप्त अभिलेखों से पता चलता है कि सं० १९६५ में गो० जुगतानन्द की गद्दी के तत्कालीन महंत बासुदेव दास जी ने अपने शिष्य एवं उत्तराधिकारी श्री वसंतदास की गद्दीनशीनी के मेले में कई अन्य सम्प्रदायों के महात्माओं को निमंत्रित किया था, जिनमें ज्ञानदास (भुड़काके) कबीरपंथी, शंकरानन्द गरीबदासी, महंत बालकदास (हैदरकुली हवेली के कबीर पंथी महन्त और सुखदास के चेले), महंत रामजी दास कबीरपंथी (सीताराम बाजार–दिल्ली के) और सुखलालदास कबीरपंथी आदि उल्लेखनीय हैं।

आगे इस सम्प्रदाय के मेलों का जो वृत्त दिया गया है, वह गो० जुगतानन्द की गद्दी में सुरक्षित ३ बहियों और १ रजिस्टर के आधार पर तैयार किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे ही कई प्रामाणिक साक्ष्यों द्वारा पुष्टि के पश्चात् ५२ बड़े और ५७ छोटे थाँभों के संस्थापकों के नामों और उनसे सम्बद्ध थाँभों की जो सूची तैयार हुई है, वह आगे दी जा रही है। ज्ञातव्य है कि कुछ थाँभे जो प्रारम्भ में बड़े थाँभे के रूप में मान्य थे, कालान्तर में गृहस्थ गद्दी के रूप में परिवर्तित होते ही अथवा किसी कारणविशेष से ह्रासोन्मुख होते ही छोटे थाँभे के रूप में मान लिये गये। अस्तु, विभिन्न साक्ष्यों और सूत्रों से प्राप्त सामग्री के सम्यक् परीक्षोपरान्त शुक-सम्प्रदाय में परम्परागत रूप से मान्य एवं अनेकशः उल्लिखित बावन बड़ी गद्दियों के संस्थापकों एवं उनके प्रमुख केन्द्रों की एक प्रामाणिक सूची बनाने का प्रयत्न किया गया है। यह सूची शतप्रतिशत प्रामाणिक ही है, इसका दावा न करते हुए भी इसे यथासम्भव विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया गया है।

(अ) बड़े थाँभों और उनके संस्थापकों की सूची—

संस्थापक का नाम	स्थान
१. डंडौतीराम जी	बहादुरपुर—डहरा (अलवर)।
२. गो० जुगतानन्द जी (श्री महन्त) आचार्य गद्दी	दिल्ली (मुहल्ला दस्सान)।
३. रामरूप जी (गुरु भक्तानन्द) आचार्य गद्दी	,, ,,
४. सुश्री सहजोबाई (आचार्य गद्दी)	,, ,,
५. गुरुछौना जी	माचल (अलवर)।
६. रामप्रताप जी	रिवाड़ी (सदर बाजार)।
७. ब्रह्मप्रकाश जी	धनौरा (मुरादाबाद)।
८. छीतरमल जी	शाहपुरा (अलवर)।
९. श्री सबगतराम (१)	मेरठ (पाड़ामल का बांड़ा)।
१०. हरिसेवक जी	अलवर (ढोली का कूँआ)।
११. श्री भगवानदास	आगरा (बालूगंज)।
१२. श्री हरीदास (१)	डूडाहेड़ा (गुड़गाँव)।
१३. बल्लभदास जी	रोहतक (बाजार)।
१४. धरमदास जी	बेरी (रोहतक)।
१५. श्री जोगजीत	कुरुक्षेत्र।
१६. श्री प्रेमगलतान	बदेह (मुजफ्फरनगर)।
१७. श्री श्यामसरन बड़भागी	बिठूर (कानपुर)।
१८. नन्दलाल जी	रहलियावास (राल्हियावास, रिवाड़ी)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९. श्री जसराम उपगारी	खरक (रोहतक)।
२०. श्री परमसनेही (प्रेमसनेही)	पलया (बरेली)।
२१. हरभजनदास जी	रजधान (कानपुर)।
२२. श्री मधरीदास या मथुरादास	भुसावल (भरतपुर राज्य)।
२३. श्री आतमराम इकंगी	जयपुर (आतमकुंज, बद्रीविशाल की डूँगरी)।
२४. ठंडीराम जी	अजराड़ा (मेरठ)।
२५. त्यागीराम जी	मुँडौला (रोहतक)।
२६. जैदेवदास जी	कोयल (अलीगढ़)।
२७. गुरुप्रसाद जी	लखनऊ (चौक बाजार)।
२८. हरिदेवदास जी	धाराहेड़ी (मुजफ्फरनगर)।
२९. पूरनप्रताप जी	डीग (भरतपुर राज्य)।
३०. चरनधूर जी	चोरमऊ (मेरठ)।
३१. सुखरामदास (१)	करीरीवास (अलवर)।
३२. घनश्यामदास ००	प्रयाग (मुट्ठीगंज)।
३३. दाताराम जी	लुजीड़ा (नारनौल, जिला महेन्द्रगढ़)।
३४. श्री सहजानन्द जी	काँधला (मुजफ्फरनगर)।
३५. परमदास जी	मुर्शीदाबाद (बंगाल)।
३६. श्री चरणरज	चिरचिटा और चोरमऊ (मेरठ)।
३७. दयाबाई जी	रवेल (कानपुर)।
३८. श्यामरूप जी	जुगलघाट (वृन्दावन)।
३९. नागरीदास गुसाईं	कामावन (वृन्दावन)।
४०. जीवनदास जी	बाभनौली (बड़ोत-मेरठ)।
४१. भजनानन्द जी	चित्रकूट।
४२. श्रीरामधड़ल्ला	नौरसपुर (नारनौल, जिला महेन्द्रगढ़)।
४३. श्री निर्मलदास	कानपुर (चौक)।
४४. बालगुपाल ००	प्रयाग (कीटगंज)।
४५. श्री साधुराम (१)	जयपुर (प्रियादास जी का मकान)।
४६. रामसखी जी	चीरेखान (दिल्ली)।
४७. नन्दराम जी	परीक्षितपुरा (दिल्ली)।
४८. निगमदास जी	पटना (बिहार)।

०० ये दोनों गृहस्थ गद्दियाँ थीं। इन्हें सन्त चरणदास से इसके लिए अनुमति प्राप्त थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४९. श्री विद्यानाथ योगी — शामली (मेरठ)।
५०. श्री मुक्तानन्द परमार्थी — ठाकुरगंज (लखनऊ)।
५१. गुरुमुखदास जी — हैदरपुर (बिजनौर)।
५२. श्री सुखविलास मस्तराम — फतेहगंज (लखनऊ)।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, शुकसम्प्रदाय में परमभागवत श्री चरणदास की प्रमुख शिष्य गद्दियों की संख्या १०८ या १०९ मानी गई है। इनमें बड़ी गद्दियों की संख्या ५२ मानी जाती है और शेष को छोटी गद्दी या छोटा थाँभा कहा गया है। गद्दियों की संख्या के सम्बन्ध में इस परम्परागत मान्यता के बावजूद एक भी पूर्ण सूची इस सम्प्रदाय के साहित्य में उपलब्ध नहीं हुई है। जिन प्राप्त सूचियों की चर्चा अभी की गई है उनमें भी कई कठिनाइयाँ हैं। एक सूची में जिन स्थानों और उनके संस्थापकों का नाम बड़ी गद्दी की सूची में उल्लिखित है, दूसरी सूची में उनमें से कुछ के नाम छोटी गद्दियों में अथवा छोटी गद्दियों के नाम बड़ी गद्दी के रूप में वर्णित हैं। अतः सभी सूचियों के सम्यक् परीक्षण के उपरान्त ५७ छोटी गद्दियों के स्थानों और उनके संस्थापकों के नामों की जो सूची बन पाई है, वह निम्नवत् है—

(ब) छोटे थाँभों से सम्बद्ध शिष्यगण और उनके स्थान—

क्रम सं०	शिष्यनाम	स्थान का नाम
१.	श्री अमरदास	दिल्ली में ही कोई स्वतन्त्र स्थान।
२.	अतीतराम जी	जयपुर।
३.	श्री आसानन्द	सिढ़ाना (जिला—रोहतक)।
४.	श्री कुँअरदास	दिल्ली के आस-पास का कोई स्थान।
५.	(जन) घुसालदास	दिल्ली।
६.	श्री गंगाविष्णुदास	,,
७.	गुरुसेवक जी	,,
८.	गिरधरदास जी	,,
९.	गरीबदास जी	उज्जैन।
१०.	श्री गोपालदास	दिल्ली।
११.	चरणखाक जी	चोरमऊ (मेरठ)।
१२.	जैरामदास जी	स्यापुर या शाहपुर (काशी)।
१३.	श्री जुगलदास	दिल्ली (गुरुचरणों में)।
१४.	टीकमदास जी	,, ,, ।
५१.	दौलतराम जी	परीक्षितपुरा (दिल्ली)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६.	श्री श्यामानिरंजन	दिल्ली (गुरु चरणों में) ।
१७.	नारायणदास जी	दिल्ली ।
१८.	श्री नन्ददास	लखनऊ ।
१९.	सुश्री नूपीबाई	दिल्ली क्षेत्र का कोई स्थान ।
२०.	श्री परमानन्ददास	रोहतक (बीरबल की गढ़ी) ।
२१.	प्रेमदास ब्रह्मचारी	वृन्दावन ।
२२.	प्रेमघन जी	बृहत्तर दिल्ली का कोई स्थान ।
२३.	प्रेमसनेही जी	मुर्शीदाबाद, बंगाल ।
२४.	बलरामदास जी	दिल्ली (गुरु चरणों में) ।
२५.	भय्यादास	सम्भवतः दिल्ली में ।
२६.	मधुवनदास (नागा)	दिल्ली ।
२७.	मुरलीमनोहर जी	हाथरस ।
२८.	मुरलीबिहारी जी	लखनऊ ।
२९.	श्री माधवदास (मध्यादास)	कीकरवास (वृन्दावन) ।
३०.	श्री महादास या महाराम	अज्ञात ।
३१.	मँगनीराम जी	दिल्ली ।
३२.	माणिकदास जी	दिल्ली (गुरु चरणों में) ।
३३.	श्री मनमोहन या मदनमोहन	दिल्ली ।
३४.	श्री रामहेत	सुलहेड़ा (बृहत्तर दिल्ली) ।
३५.	रामकरन जी	लुहारी या लहर, तह० देवा, जिला झाँसी ।
३६.	श्री रामदास—१	खेड़ी (जिला-मेरठ) ।
३७.	श्री रामदास—२	दिल्ली ।
३८.	श्री राममौला	कंधार ।
३९.	रामसनातन जी	दिल्ली ।
४०.	श्री राधाकृष्णदास	दिल्ली ।
४१.	लालदास जी	हाथरस तथा लखनऊ ।
४२.	रामगलतान जी	दिल्ली ।
४३.	शोभानन्द जी	दिल्ली ।
४४.	श्री सुखरामदास (द्वितीय)	छपरौली (मुजफ्फरनगर) ।
४५.	,, सबगतिराम (द्वितीय)	दिल्ली ।
४६.	,, साधुराम (द्वितीय)	जयपुर ।
४७.	सेवकदास जी	दिल्ली ।
४८.	सागरदास जी	ब्राह्मणी खेड़ा-दिल्ली ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४९.	श्री हँसमुखदास	फतेहगंज-लखनऊ (बड़े थाँभे के अन्तर्गत)।
५०.	हरिनारायण जी	दिल्ली।
५१.	हरिविलास जी	दिल्ली।
५२.	श्री हरिप्रसाद	दिल्ली।
५३.	हरिस्वरूप जी	,, ।
५४.	हरिकृष्ण जी	अलवर।
५५.	हरीदास (द्वितीय)	अलीगढ़ तथा लखनऊ।
५६.	श्री हुलासदास	दिल्ली।
५७.	हरिभक्त जी	कामावन (वृन्दावन)।

थाँभों की संख्या तथा उनके स्थानों का निर्धारण—

आलोच्य सम्प्रदाय में एक मान्यता यह भी प्रचलित है कि यद्यपि बड़े थाँभों की संख्या तो ज्यों की त्यों (अर्थात् ५२) ही बनी रही परन्तु छोटे थाँभों की संख्या बढ़ती रही और सं० १८४० से १९५० वि० के बीच यह ५६ से बढ़कर सहस्राधिक हो गई थी। यह तथ्य विभिन्न मेलों की बहियों में भी उल्लिखित है परन्तु तत्तद् मेलों में उपस्थित बड़े और छोटे थाँभों की संख्या की गणना करने पर यह मान्यता कुछ भिन्न रूप में प्रकट होती है। यथार्थतः कोई भी ऐसा मेला नहीं आयोजित हुआ, जिसमें उपस्थित हुए बड़े थाँभों की वास्तविक संख्या ३०–३५ से अधिक रही हो और छोटे थाँभों की संख्या ८० से ऊपर बढ़ी हो।[1] यहाँ तक कि बड़े और छोटे थाँभों की सम्मिलित संख्या भी उक्त मान्यता को प्रमाणित करने में सफल नहीं हो पाती। तथापि इस विश्वास का सम्यक् परीक्षण करने की आवश्यकता का अनुभव करते हुए सं० १९१९ से २०२३ वि० तक के मेलों की बहियों में उपस्थित थाँभों के नामों की सूची तैयार करके उक्त संख्या के निकट पहुँचने का प्रयास किया गया है।

---

१. इस सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि गुरुप्रसाद (लखनऊ–चौक), हरिदेवदास (धाराहेड़ी), पूरनप्रताप (डीग), सहजानन्द (काँधला), परमदास (मुर्शिदाबाद), दयाबाई (कानपुर), नागरीदास (कामावन, वृन्दावन), जीवनदास (बाभनौली), राममौला (कंधार), रामधड़ल्ला (नौरसपुर), साधुराम (१) (जयपुर), रामसखी (दिल्ली), नन्दराम (दिल्ली), विद्यानाथ योगी (शामली), मुक्तानन्द परमार्थी (लखनऊ) और कुँअरदास (दिल्ली) के बड़े थाँभों का कोई वृत्त नहीं मिलता। सम्भवतः योग्य शिष्यों के अभाव में अथवा शिष्यों में परस्पर विवादों के कारण इनकी शिष्य-परम्परा आगे नहीं बढ़ी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समस्या यहीं तक आकर समाप्त नहीं होती। सं० १९६८ वि० में डहरा-बहादुरपुर (अलवर) के महंत बनवारीदास जी की सत्रहवीं के उपलक्ष्य में आयोजित मेले में ५२ बड़ी गद्दियों और २२५ छोटी गद्दियों की उपस्थिति का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त सं० १९७८ वि०, ज्येष्ठ कृष्ण-२ को गो० जुगतानन्द की शिष्य परम्परा के स्वर्गीय महन्त गो० बसन्तदासजी की सत्रहवीं का एक विराट मेला दिल्ली में उनके शिष्य गुलाबदास जी ने आयोजित किया था, जिसमें सभी बड़े थाँभों के अतिरिक्त ५५२ छोटे थाँभों के उपस्थित होने का उल्लेख मिलता है। परन्तु डहरा-बहादुरपुर वाले और दिल्ली वाले उक्त मेलों से सम्बद्ध बहियों से ये उल्लेख प्रमाणित नहीं होते। एक मान्यता के अनुसार चरणदासी स्थानों की संख्या १४०० तक बताई जाती है, परन्तु इसकी यथार्थता को प्रमाणित करने का कोई आधार नहीं प्राप्त होता।

इस संप्रदाय की गद्दियों का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत था। यद्यपि इनकी पूर्वी सीमा बंगाल के मुर्शीदाबाद तक, दक्षिणी सीमा इन्दौर तक, पश्चिमी सीमा कन्धार और उत्तरी सीमा रुड़की एवं हरिद्वार तक पहुँचती है परन्तु इनका केन्द्र-बिन्दु दिल्ली के आस-पास के जिले ही थे। इनमें भी सर्वाधिक थाँभे हरियाणा प्रान्त के रोहतक, गुड़गाँव और कर्नाल जिलों में, पंजाब के भटिंडा, पटियाला और संगरूर जिलों में, राजस्थान के जयपुर और अलवर जिलों में तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश के दिल्ली के पड़ोसी जिलों में यथा मेरठ, मथुरा एवं मुजफ्फरनगर आदि में स्थित थे। स्वयं बृहत्तर दिल्ली-क्षेत्र में भी पचासेक स्थान निर्मित हुए थे और उनमें से अनेक अब भी मौजूद हैं।

उत्तरप्रदेश के विशिष्ट तीर्थ एवं नगर, यथा वृन्दावन, चित्रकूट, मथुरा, प्रयाग, लखनऊ, कानपुर और आगरा इस सम्प्रदाय के लिए विभिन्न कारणों से विशेष आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। अकेले लखनऊ में ही इसके राजनीतिक महत्व के कारण कुल १६ स्थान निर्मित हुए थे। बिहार प्रान्त के पटना, झरिया और मुंगेर के थाँभे वैद्यनाथ धाम के प्रभावस्वरूप स्थापित हुए थे। इसी प्रकार उत्कल प्रदेश के पुरी और भुवनेश्वर के स्थान भी तीर्थों के आकर्षण के कारण ही निर्मित हुए थे। इन्दौर, उज्जैन, चरखारी और ग्वालियर की भूतपूर्व रियासतों के शासक वर्ग में भी इस सम्प्रदाय के कुछ महात्माओं का बड़ा आदर था। यही कारण है कि इन स्थानों में भी इस सम्प्रदाय की अनेक गद्दियाँ स्थापित हुई थीं। ग्वालियर की महारानी बाला बाई सीतोदे ने तो स्वामी वृंदावनदास के लिए वृन्दावन में मन्दिर और आश्रम का निर्माण ही करा दिया था, जो आज भी ग्वालियर वालों की कुंज के नाम से विख्यात है। इसके साथ ही उन्होंने (महारानी ने) संवत्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८६९ वि० में अपनी वृन्दावन यात्रा के अवसर पर पोरी नामक एक गाँव भी दान में श्री वृन्दावनदास को दिया था।

मेलों के आधार पर इस सम्प्रदाय के विस्तार का आकलन—

(१) सं० १९१९ वि० के मेले का स्थान ज्ञात नहीं है। अभिलेखों के अनुसार इसमें ४० बड़े थाँभों के महन्त उपस्थित हुए थे। इसके पूर्व के मेलों का वृत्त अप्राप्त है।

(२) सं० १९२६ वि० में पलथा में म० सेवादास द्वारा मेले का आयोजन किया था, जिसमें ५२ बड़ी गद्दियों और १७२ छोटी गद्दियों से महात्मागण सम्मिलित हुए थे। बड़ी गद्दियों से सम्बन्धित छोटी गद्दियों से आये महन्तों को उन्हीं के साथ गिनाया गया है, जैसे बलियाणा के साथ ३२ महन्त और रहलियावास के साथ २४ आदि।

(३) सं० १९३० वि० के फाल्गुन शुक्ल ४, शुक्रवार को सहजोबाई जी की मुख्य गद्दी के श्री परमेश्वरी दास या मुकुंददास ने यह मेला आयोजित किया था। इसमें महन्त जुगतानन्द के थाँभे के १६९ साधु, बुंदेलखंड के ७१, रोहतक, रिवाड़ी, शाहपुर, बलियाणा और रहलियावास में से प्रत्येक के लगभग २५-२५ साधु सम्मिलित हुए थे। महन्त बलदेवशरण के दिल्ली स्थित थाँभे से ४५ साधु आये थे। इन सभी साधुओं को अधीनस्थ छोटे स्थानों के महन्त के रूप में मानना चाहिए। अनुमानतः ७०० साधु इस आयोजन में उपस्थित थे।

इसमें स्वामी रामरूप जी की परम्परा के थाँभे के लोगों का सम्मिलित न होना आश्चर्यजनक है। सम्भव है कि उन दिनों सहजोबाई जी और गोसाईं जुगतानन्द की गद्दी में मेल-जोल होने और रामरूप जी की गद्दियों में वैमनस्य होने के कारण ऐसा हुआ हो। प्राप्त सूचनाओं के अनुसार बीच-बीच में इन तीनों के सम्बन्ध सुधरते और बिगड़ते रहे हैं। इनमें कभी-कभी मुकदमेबाजी भी हो जाती थी और शुकसम्प्रदाय से सम्बन्धित साधुओं एवं अनुयायियों के बीच प्रायः तीन वर्ग हो जाया करते थे।

(४) सं० १९४२ वि० में गोसाईं जुगतानन्द की गद्दी के महन्त श्री घनश्यामदास की सत्रहवीं हुई थी। उसमें भी ५२ बड़ी गद्दियों और १७२ छोटी गद्दियों के उपस्थित होने का उल्लेख मिलता है। इसी वर्ष गो० जुगतानन्द की शिष्य परम्परा के संगरूर-गद्दी के महन्त द्वारकादास जी की सत्रहवीं का भी मेला आयोजित हुआ था, लेकिन उसमें २० ही बड़ी गद्दियों के महन्त सम्मिलित हुए थे। इससे अनुमान होता है कि स्वामी रामरूप की गद्दी के पक्षवालों ने इसका बहिष्कार किया होगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) सं० १९५२ वि० में माचल के महन्त सेवादास द्वारा आयोजित मेले में ५२ बड़ी गद्दियों और १६१ छोटी गद्दियों से सम्बद्ध महात्मा आये थे। माचल की गद्दी के महन्त दिल्ली की तीनों गद्दियों के प्रति सम्मान की भावना रखते थे। अतः वहाँ के आयोजनों में तीनों आचार्य गद्दियाँ सम्मिलित हुई थीं।

(६) सं० १९६५ वि० में श्री जुगतानन्द की सदर गद्दी के तत्कालीन महन्त श्री वासुदेवदास जी ने अपने शिष्य वसन्तदास जी की गद्दीनशीनी का मेला आयोजित किया था। इसमें अनेक कबीरपन्थी महात्मा सम्मिलित हुए थे। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस सम्प्रदाय में साम्प्रदायिक सहिष्णुता का विस्तार हो रहा था।

(७) सं० १९६८ वि० में दो मेले हुए थे, जिनमें प्रथम के आयोजक माचल के महन्त जमुनादास जी ने अपनी गद्दीनशीनी और अपने स्वर्गीय गुरु सेवादास जी की सत्रहवीं के उपलक्ष्य में एक मेला आयोजित किया था और दूसरा डहरा-बहादुर के महन्त बनवारीदास की सत्रहवीं के उपलक्ष्य में आयोजित था। डहरा वाले आयोजन में ५२ बड़ी गद्दियों के अतिरिक्त २२५ छोटी गद्दियों का सम्मिलित होना इस तथ्य की पुष्टि करता है कि छोटी गद्दियों की संख्या बढ़ी ही थी, कम नहीं हुई थी। दूसरे शब्दों में इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार कम नहीं हुआ था और उनमें आपसी सौहार्द बना हुआ था।

(८) सं० १९७० वि० में दो उल्लेखनीय मेले हुए थे। प्रथम मेला दिल्ली में गो० जुगतानन्द जी की परम्परा के बसन्तदास जी की गद्दीनशीनी के अवसर पर हुआ था और द्वितीय मेला स्वामी चरणदास के शिष्य प्रेमगलतान जी की परम्परा के महन्त कन्हैयादास (बदेह-मुजफ्फरनगर) की सत्रहवीं के उपलक्ष्य में हुआ था। इनमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं दिखाई देती।

(९) सं० १९७८ वि० की ज्येष्ठ बदी २ को गो० बसन्तदास जी की सत्रहवीं का एक विराट् मेला उनके शिष्य महन्त गुलाबदास जी ने आयोजित किया था। कहा जाता है कि इसमें सभी बड़े थाँभों के अतिरिक्त ५५२ छोटे थाँभों ने भाग लिया था।[1] यद्यपि सम्बद्ध बही में यह संख्या अंकित की गई है, परन्तु उसमें उल्लिखित स्थानों के आधार पर यह तथ्य प्रमाणित नहीं होता।

---

१. सम्भव है पास-पड़ोस से सम्मिलित हुए अन्य सम्प्रदायों या साधनामार्गों के स्थान भी इसी गणना में अन्तर्भुक्त हों। चरणदासी सम्प्रदाय के छोटे थाँभों की संख्या प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उस समय २०० से अधिक नहीं थी। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि बड़ी गद्दी भी गृहस्थ गद्दी हो गई तो उसे छोटी गद्दी के रूप में ही गिना जाता था। इसी से यह संख्या २०० तक पहुँची है। मूलतः छोटी गद्दियों की संख्या १७० के आस-पास ही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) इसी प्रकार के कुछ अन्य मेलों का भी विवरण प्राप्त होता है, जिनसे उस सम्प्रदाय की परवर्ती स्थिति अर्थात् सं० १९८० से २०३० वि० के बीच की स्थिति का पता चलता है। उनमें भी सं० १९७६ वि० के रोहतक के मेले, सं० १९८३ वि० के रोड़ी के मेले और सं० २०२३ वि० के महन्त प्रवीणदास जी की गद्दीनशीनी के दिल्ली के मेलों को विशेष उल्लेखनीय कहा जा सकता है।

थाँभों की संख्या के ह्रास के कारणों पर विचार—

उन मेलों के विवरणों से यह स्पष्टतया परिलक्षित होता है कि सं० १९७८ वि० तक छोटे-मोटे स्थानों, ठिकानों और थाँभों की संख्या में सतत् वृद्धि होती रही है। परन्तु इसके पश्चात् विरक्त गद्दियों के गृहस्थ गद्दियों में परिणत होने की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि दिल्ली-स्थित केन्द्रीय गद्दियों का उन पर से नियन्त्रण शिथिल होता गया। अंशतः इसका श्रेय प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् परिवर्तित हुए जीवनमूल्यों, स्वदेशी असहयोग आन्दोलनों, आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज के प्रभावों तथा परम्परामूलक धार्मिक चिन्तनों एवं आचार-विचारों में अनास्था की प्रवृत्ति को ही दिया जाना चाहिए।

सन् १९४७ ई० (सं० २०१५ वि०) से आरम्भ हुए स्वातन्त्र्योत्तर काल में लागू किये गये जमींदारी उन्मूलन और भूमि-परिसीमन (लैंड सीलिंग) कानूनों के कारण भी केन्द्रीय गद्दियों की पकड़ ढीली पड़ गई और महन्तों ने देखा कि गृहस्थ होकर ही मन्दिर या थाँभे की सम्पत्ति सुरक्षित रखी जा सकती है या हस्तगत की जा सकती है, अतः उन्होंने साधु-बाना उतार कर फेंक देना ही श्रेयस्कर समझा। अनेक महन्तों ने स्वयं तो लोकलाज का भार ढोया लेकिन अपने पुत्रों (औरस या अनौरस) या गद्दी के उत्तराधिकारी शिष्यों को विरक्त बाने में नहीं आने दिया। आज अधिकांशतः यही स्थिति है।

साम्प्रदायिक अभिलेखों में स्थानों (थाँभों) का नामोल्लेख उनके पूरे पते के साथ नहीं किया गया है। यदि विभिन्न प्रकार की अस्त-व्यस्त सामग्री को सँजोकर किसी प्रकार उन स्थानों का पता ज्ञात भी किया जाय तो कठिनाई यह है कि विगत एक शताब्दी में प्रान्तों और जिलों के पुनर्गठन के कारण उनमें निर्दिष्ट जिले या प्रान्तों के नाम में अन्तर आ गया है। उसे सुधारकर लिखने में भारी परिश्रम करना पड़ा है। यहाँ इस सम्प्रदाय की गद्दियों के स्थानों की ऐसी सूची दी जा रही है, जो उनके सम्बन्ध में अधिकाधिक यथार्थमूलक स्थिति की जानकारी पर आधारित है। इन थाँभों या स्थानों को प्रदेश और जिलों की कोटि में विभाजित करके यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे इनकी भौगोलिक स्थिति का ज्ञान हो सकेगा। सम्भव है कि जनपदों और प्रान्तों के नवीन पुनर्गठन के कारण इन केन्द्रों की स्थिति का अंकन त्रुटिपूर्ण हो परन्तु इससे कोई विशेष हानि नहीं होगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) उत्तर प्रदेश—

स्थान	जनपद
१. कोयल	अलीगढ़ ।
२. बालूगंज	आगरा शहर ।
३. बेलनगंज	,, ।
४. मोतीकटरा (१)	,, ।
५. मोतीकटरा (२)	,, ।
६. मुट्ठीगंज	इलाहाबाद ।
७. कीटगंग	,, ।
८. झूँसी	,, ।
९. परमौरा	एटा ।
१०. सोरों	,, ।
११. मानगंज	कानपुर ।
१२. बिठूर	,, ।
१३. शिवराजपुर	,, ।
१४. लोहाई बाजार	कानपुर शहर ।
१५. चौक बाजार	,, ।
१६. अजराड़ा	गाजियाबाद ।
१७. खरखौदा	,, ।
१८. दादरी	,, ।
१९. लहर	झाँसी ।
२०. लुहारी (देवगढ़)	,, ।
२१. रसूलाबाद	फतहपुर ।
२२. बिन्दकी	,, ।
२३. स्वराज्यपुर	,, ।
२४. पलथा (बड़ा थाँभा)	बरेली ।
,, (छोटा थाँभा)	,, ।
२५. चित्रकूट	बाँदा ।
२६. तेरही तिंदुआरी	,, ।
२७. खुर्जा	बुलन्दशहर ।
२८. दरियापुर	,, ।
२९. कामावन	मथुरा ।
३०. कीकरवास	,, ।
३१. ग्वालियरवालों की कुंज	वृन्दावन ।
३२. जुगलघाट	,, ।
३३. बाग बुंदेला	,, ।
३४. सरसकुंज	,, ।
३५. सिरिसियाघाट	,, ।
३६. सेवा कुंज	,, ।
३७. काँधला	मुजफ्फरनगर ।
३८. छपरौली	,, ।
३९. धाराहेड़ी	,, ।
४०. बदेह	,, ।
४१. सिलसिली	,, ।
४२. बुड़ाना	मुजफ्फरनगर (संत हजूरी का स्थान ।
४३. गनौरा	मुरादाबाद ।
४४, धनौरा ।	,, ।
४५. जसौरा ।	,, ।
४६. अनाज की मंडी—मेरठबाजार ।	
४७. गामड़ी	मेरठ ।
४८. चिरचिटा	,, ।
४९. चोरमऊ	,, ।
५०. पतला (निवाड़ी)	,, ।
५१. पाड़ामल का बाड़ा	,, ।
५२. मिसरगढ़	,, ।
५३. मुरादनगर	,, ।
५४. बाभनौली	,, ।
५५. शामली	मुजफ्फरनगर ।
५६. मिलावली	मैनपुरी ।
५७. हिम्मतपुर	,, ।
५८. डालीगंज	लखनऊ बाजार ।
५९. रस्तोगी टोला	,, ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६०. सब्जीमण्डी लखनऊ बाजार।
६१. ठाकुरगंज ,, ।
६२. चौक बाजार ,, ।
६३. नगरिया का मुहल्ला ,, ।
६४. फतेहगंज ,, ।
६५. शिवपुर(स्यापुर) वाराणसी।
६६. असगरीपुर बिजनौर।
६७. खदाना ,, ।
६८. गधेली ,, ।
६९. जटपुरा ,, ।
७०. धामपुर ,, ।
७१. नहटोर ,, ।
७२. मोडिया (मंडावर) बिजनौर।
७३. हलदौर ,, ।
७४. हेजरपुर ,, ।
७५. मुहल्ला चौकसी—शाहजहाँपुर।
७६. जौरासी सहारनपुर।
७७. मन्दपुर (रुड़की) ,, ।
७८. रुड़की ,, ।
७९. रायपुर हमीरपुर।
८०. चरखारी ,, ।
(गंगा मन्दिर के पास)
८१. ठठेरों का मुहल्ला—हाथरस शहर।

(२) हरियाणा—

स्थान	जनपद
१. खोजलपुर	अंबाला।
२. जगाधारी	,, ।
३. न्यौरी	करनाल।
४. कठुवा	करनाल।
५. धनमौली	,, ।
६. पानीपत	,, ।
७. बनी (बंदीपुर)	,, ।
८. कुरुक्षेत्र शहर	कुरुक्षेत्र।
९. खरक	,, ।
१०. थानेश्वर	,, ।
११. सवाद	,, ।
१२. कान्हौरी	गुड़गाँव।
१३. नूह	,, ।
१४. पटौदी	,, ।
१५. पलवल	,, ।
१६. फर्रूखनगर (१)	,, ।
१७. ,, (२)	,, ।
१८. लोकरी	,, ।
१९. विलासपुर	गुड़गाँव।
२०. झींद (खास)	झींद।
२१. बीबीपुरा	,, ।
२२. माँगी	,, ।
२३. बिगोवा	,, ।
२४. सानखाश	,, ।
२५. चरखीदादरी	भिवानी।
२६. भिवानी (खाश)	भिवानी।
२७. जीतपुरा	महेन्द्रगढ़।
२८. पंडितपुरा	,, ।
२९. नारनौल (खाश)	,, ।
३०. मुसैदपुर	,, ।
३१. भोहड़ा (बहोड़ा)	,, ।
३२. रायपुर	,, ।
३३. रिवाड़ी (नई बस्ती)	,, ।
३४. रिवाड़ी (सराय)	,, ।
३५. रिवाड़ी (सदर)	,, ।
३६. राल्हियावास	,, ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३७. लुजीड़ा महेन्द्रगढ़ ।
३८. शाहजहाँपुर (१) ,, ।
३९. शाहजहाँपुर (२) ,, ।
४०. असौधा रोहतक ।
४१. ईषड़हेड़ी (ईसेपुर) ,, ।
४२. ककरोई ,, ।
४३. कुलताना ,, ।
४४. कौसली ,, ।
४५. छापर ,, ।
४६. डूडाहेड़ा ,, ।
४७. दहकौरा ,, ।
४८. दिसावर खेड़ी ,, ।
४९. दुजाना ,, ।
५०. नाहड़ ,, ।
५१. नौरसपुर ,, ।
५२. पटौदा ,, ।
५३. फतेहपुरी रोहतक ।
५४. वहू ,, ।
५५. बलियाणा (१) ,, ।
५६. बलियाणा (२) ,, ।
५७. बीरबल की गढ़ी रोहतक ।
५८. बेरी (खाश) ,, ।
५९. मुडेला ,, ।
६०. मुस्तफाबाद ,, ।
६१. रोहतक (खाश) ,, ।
६२. लुकसर ,, ।
६३. वापरौली ,, ।
६४. साँपला (गढ़ी) ,, ।
६५. साप्रा (छाप्रा) ,, ।
६६. सौलधा ,, ।
६७. हसनगढ़ ,, ।
६८. कालाँवाली सिरसा ।
६९. तपतमल ,, ।
७०. रौड़ी ,, ।
७१. सिरसा (खाश) ,, ।
७२. बुढ़ाना सोनीपत ।
७३. (गढ़ी) सिढ़ाना ,, ।
७४. थुराना (हाँसी) हिसार ।
७५. हिम्मतपुर ,, ।

(३) पंजाब—

१. नांगल अंबाला ।
२. कोसली पटियाला ।
३. पटियाला (नगर) पटियाला ।
४. डेरा शार्दूलसिंह (मोंगा) फरीदकोट ।
५. फीरोजपुर शहर फीरोजपुर ।
६. संगतपुरा ,, ।
७. झंडूकी भटिंडा ।
८. ठीकरी ,, ।
९. वालाँवाली ,, ।
१०. गधेली रोपड़ (रूपनगर) ।
११. अलाल संगरूर ।
१२. कानूनगो का मुहल्ला संगरूर नगर ।
१३. भूधड़(बरनाला)संगरूर ।
१४. भदेचे(मालेरकोटला),, ।
१५. महायो ,, ।
१६. मांगी ,, ।
१७. मुकुटपुर ,, ।
१८. सावदा ,, ।
१९. सुनाम ,, ।
२०. डेरावली फरीदकोट ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) राजस्थान—

१. अलवर नगर (ढोली का कुँआ) अलवर ।
२. ,, (दिल्ली दरवाजा) ,, ।
३. करीरीवास ,, ।
४. डहरा ,, ।
५. शाहपुरा ,, ।
६. देहलावास ,, ।
७. पृथ्वीपुरा ,, ।
८. बहादुरपुर ,, ।
९. माचल ,, ।
१०. रावड़की ,, ।
११. हरसौरा ,, ।
१२. जिन्दौली ,, ।
१३. रहलावास (१) ,, ।
१४. रहलावास (२) ,, ।
१५. भुसावल भरतपुर ।
१६. डीघ ,, ।
१७. जयपुर (पान का दरीबा) जयपुर ।
१८. जयपुर (मोती कटला) ,, ।
१९. जयपुर (बद्रीविशाल की डूँगरी) ,, ।
२०. जयपुर (बारह गनगौर) ,, ।
२१. प्रागपुरा-पावटा ,, ।
२२. रामवँगला ,, ।

(५) दिल्ली नगर तथा बृहत्तर दिल्ली—

१. मुहल्ला बल्लीमारान (सहजोबाई जी की गद्दी) दिल्ली ।
२. ,, ,, (रामरूप जी की गद्दी) ,, ।
३. ,, ,, (जुगतानन्द जी की गद्दी) ,, ।
४. ,, पुराना किला (दिल्ली नगर) ,, ।
५. ,, चीरेखान ,, ,, ।
६. ,, परीक्षितपुरा ,, ,, ।
७. ,, जाजमपुरियान ,, ,, ।
८. ,, सीताराम बाजार ,, ,, ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९. ,, जयसिंहपुरा ,, दिल्ली ।
१०. ,, कायस्थों की गली ,, ,, ।
११. नरेला बृहत्तर दिल्ली ।
१२. मित्तराउ ,, ।
१३. ब्राह्मणी खेड़ा ,, ।
१४. बाकर गढ़ ,, ।
१५. तिहाड़ ,, ।
१६. हिरनकी ,, ।
१७. बहरामपुर ,, ।
१८. बादली ,, ।
१९. ठासा ,, ।
२०. दहीरपुर ,, ।
२१. खेड़ीकला ,, ।

(६) मध्य प्रदेश—

१. उज्जैन नगर (थावरा मुहल्ला) उज्जैन ।
२. ग्वालियर (खाश) ग्वालियर ।
३. कलहोली ,, ।
४. बहरगवाँ ,, ।
५. बालागंज होशंगाबाद ।
६. गढ़ा जबलपुर ।
७. देवास इन्दौर ।
८. जलगाँव (खाश) जलगाँव ।
९. नागपुर (खाश) नागपुर ।

(७) बिहार—

१. ठठेरी बाजार (पटना शहर) पटना ।
२. सुमेरपुर ,, ।
३. बड़ा पलथा धनबाद ।
४. चौक (मुँगेर नगर) मुँगेर ।

(८) उत्कल पुरी ।

(९) अफगानिस्तान कंधार ।

(१०) बंगाल— मुर्शीदाबाद ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार इन ज्ञात छोटी बड़ी गद्दियों (थाँभों) का कुल योग प्रान्तों के क्रम से इस प्रकार है—

१. उत्तर प्रदेश	८१	थाँभे ।
२. हरियाणा	८५	,, ।
३. पंजाब	२०	,, ।
४. राजस्थान	२२	,, ।
५. बृहत्तर दिल्ली	२१	,, ।
६. मध्यप्रदेश	९	,, ।
७. अन्य	२२	,, ।
योग—	२५०	।

सं० २०३० वि० के बीच स्थानों या थाँभों की कुल संख्या अनुमानतः ८०–१०० के मध्य रही होगी। विगत ५० वर्षों में विरक्त से गृहस्थ गद्दी के रूप में परिवर्तित स्थानों में से ३०–३५ ऐसी गद्दियाँ इस समय भी हैं, जिनका सम्पर्क अपने सम्प्रदाय से सक्रिय रूप से बना हुआ है। इस प्रकार अभी भी ५० के लगभग गद्दियाँ इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत शेष हैं, परन्तु इनकी संख्या तीव्र गति से घट रही है। स्वर्गीय सरमाधुरीशरण (जयपुर), स्व० महन्त गंगादास (दिल्ली), स्व० रूपमाधुरीशरण (वृन्दावन), सन्त हरीदास (नईबस्ती-रेवाड़ी), सेवादास जी (डहरा), श्री अलवेली माधुरीशरण (जयपुर), श्री पूर्णदास जी (बहादुरपुर), श्री सहदेवदास (रोड़ी), श्री प्रेमस्वरूप ब्रह्मचारी (वृन्दावन) तथा सरमाधुरी जी की शिष्य परम्परा के अनेक शिष्यों तथा भार्गव समुदाय के अनेक लोगों ने वर्तमान काल में इस सम्प्रदाय को पुनर्जीवित करने का स्तुत्य प्रयास किया है, जिसके परिणामस्वरूप इसमें नई चेतना के लक्षण प्रकट हो रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय

आचार्य गद्दियों के संस्थापक : उनका सम्प्रदाय और साहित्य को योगदान

१. सुश्री सहजोबाई।

२. स्वामी रामरूप 'गुरु भक्तानन्द'।

३. गोस्वामी जुगतानन्द।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. सहजोबाई और उनकी शिष्य-परम्परा का सम्प्रदाय तथा साहित्य को योगदान—

सहजोबाई जी के १० शिष्यों और दो शिष्याओं का नामोल्लेख; उनकी आचार्य गद्दी की शिष्य-परम्परा; प्रमुख शिष्यों तथा प्रशिष्यों का परिचय; बाई जी की शिष्य-परम्परा की गद्दियों का वंशानुक्रम एवं परिचय; इस परम्परा के कवियों का साहित्यिक योगदान—(सहजोबाई, कर्तानन्द, अगमदास और गंगादास आदि)।

२. स्वामी रामरूप और उनकी शिष्य-परम्परा का सम्प्रदाय तथा साहित्य को योगदान—

स्वामी रामरूप : व्यक्तित्व-परिचय; साम्प्रदायिक देन; ८२ शिष्यों की सूची; साधना का स्वरूप; आचार्य गद्दी की शिष्य-परम्परा—स्वामी सिद्धराम, मनूकदास, कोकिलाबाई, मलनीबाई, ठाकुरदास, निर्भयराम, जयरामदास, अजयादास और मुक्तिनिवास आदि शिष्यों-प्रशिष्यों का सम्प्रदाय के प्रसार में योगदान—इस परम्परा के अन्यान्य ज्ञात और अल्पज्ञात गद्दियों का परिचय। साहित्यकारों का परिचयात्मक विवेचन (रामरूप जी, सिद्धराम जी, कोकिलाबाई, निर्भैराम जी, मनमोहनदास जी, श्री सरसमाधुरीशरण, रूपमाधुरीशरण, मनूकदास, हरिदास जी आदि)।

३. गोसाईं जुगतानन्द और उनकी शिष्य-परम्परा का सम्प्रदाय तथा साहित्य को योगदान—

व्यक्तित्व परिचय; सम्प्रदाय-विस्तार के लिए किये गये प्रयासों का लेखा-जोखा; १२२ शिष्यों की सूची; दिल्ली की गद्दी की शिष्य-परम्परा; सम्बन्धित अन्य शिष्य गद्दियों की शिष्य-परम्परा—भोहड़ा, करीरीवास, गामड़ी, रोहतक, मुसेदपुर, संगरूर, पटियाला और ग्वालियर आदि; गो० जुगतानन्द की शिष्य परम्परा का साहित्य—(गो० जुगतानन्द, वृन्दावनदास, नवनदास और विषनानन्द जी आदि)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा कि द्वितीय अध्याय में बताया जा चुका है, आलोच्य सम्प्रदाय में यह मान्यता संत चरणदास जी के जीवन-काल से ही चली आ रही है कि उनके प्रमुख शिष्यों की संख्या १०८ या १०९ थी, जिनमें दिल्ली की तीन आचार्य गद्दियों सहित ५२ शिष्य गद्दियों को बड़ी गद्दी (बड़ा थाँभा) और उनके संस्थापकों को वरिष्ठ शिष्य के रूप में विशेष आदर का पात्र समझा गया था और शेष ५६ या ५७ गद्दियों को छोटी गद्दी (छोटा थाँभा) की मान्यता थी और तदनुरूप ही उनके संस्थापक शिष्यों को अपने सम्प्रदाय में किंचित् कनिष्ठ (हीन नहीं) माना जाता था। इन गद्दियों के संस्थापकों में बड़े-छोटे का भाव नहीं था और आयु, विद्या तथा साधनागत उपलब्धियों के आधार पर उन्हें अपने सम्प्रदाय में यथायोग्य न्यूनाधिक सम्मानार्ह समझा जाता था।

इस सम्प्रदाय की अधिकांश शिष्य-शाखा और गद्दी की परम्पराएँ इन्हीं १०८ शिष्यों के साथ चलती हैं। इनमें भी कुछ की परंपरा उनके जीवन के ही साथ समाप्त हो गई और कुछ की एक-दो पीढ़ियों तक चली। शेष में से अनेक अब भी किसी-न-किसी रूप में चल रही हैं और इनमें से कुछ का अपने संप्रदाय, समकालीन क्षेत्रीय समाज और साहित्य को यथेष्ठ प्रतिदान भी प्राप्त हुआ है। अतः इस अध्याय-सहित आगे के दो अन्य अध्यायों में इन्हीं के साहित्यिक योगदान का आकलन, मूल्यांकन और परम्परागत शिष्य-परम्परा का इतिहासपरक लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। इन अध्यायों में विवेच्य को मुख्यतः दो भागों में विभाजित करके वस्तु-संकलन किया गया है—(१) तत्तद् शिष्य द्वारा स्थापित गद्दी या गद्दियों की महन्त परंपरा और उनका साम्प्रदायिक योगदान और (२) संबद्ध शिष्य-परंम्परा का साहित्य-सर्जन। जहाँ इन परंपराओं के संतों, भक्तों और अनुयायियों के साहित्य का प्रश्न है, ९० प्रतिशत सामग्री पाण्डुलिपियों के आधार पर संकलित है। ये पाण्डुलिपियाँ इस संप्रदाय के कतिपय प्रमुख प्रचार केन्द्रों में सुरक्षित हैं। इस अध्याय की सामग्री के प्रस्तुतीकरण में संप्रदाय के योगदान को क्रमशः प्रथम स्थान और साहित्य-सर्जन को द्वितीय स्थान दिया गया है। साहित्य संबंधी सामग्री को भी अपेक्षाकृत सूचनात्मक ही रखा गया है। साहित्य के गहन विवेचन से इस पुस्तक के कलेवर में अप्रत्याशित वृद्धि की संभावना बड़ी ही संत्रासदायक है। प्रायः यही पद्धति आगे के अध्यायों में भी रहेगी।

स्वामी चरणदास के १०८ शिष्यों से संबद्ध मात्र सूचानात्मक सामग्री ही इतनी अधिक हो गई है कि उसे बिना ३ अध्यायों में विभाजित किये विविध अध्यायों का संतुलन ही ठीक नहीं हो पा रहा है। फलतः इस तृतीय अध्याय में मात्र आचार्य गद्दियों के संस्थापकों से संबंधित वृत्त ही समाविष्ट है। ये तीन वरिष्ठतम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य हैं— (१) सुश्री सहजोबाई, (२) स्वामी रामरूप जी 'गुरुभक्तानन्द' और (३) गोसाईं जुगतानंद जी। शेष बड़ी-छोटी गद्दियों से संबद्ध महात्माओं एवं कवियों से संबंधित सामग्री का समावेश चतुर्थ और पंचम अध्याय में किया गया है।

इन तीन आचार्य गद्दियों के संस्थापकों के क्रम-निर्धारण के सम्बन्ध में यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इनके प्रथम-द्वितीय और तृतीय स्थान पर रखने के मूल में मात्र इनकी आयु की वरिष्ठता, शिष्यत्व ग्रहण करने या दीक्षा प्राप्त करने का समय तथा साधनागत उपलब्धियों आदि को ही आधारभूत माना गया है। क्योंकि अन्य दृष्टियों से तो "को बड़ छोट कहत अपराधू"—वाली ही स्थिति है।

१. सुश्री सहजोबाई और उनकी शिष्य परम्परा का सम्प्रदाय और साहित्य को योगदान—

श्री श्यामचरण दास के तीन प्रमुख शिष्यों और दिल्ली की तीन आचार्य गद्दियों के संस्थापकों में सुश्री सहजोबाई भी एक हैं। वे चरणदास की बूआ सुश्री नूपीबाई की कन्या थीं अर्थात् चरणदास जी की फुफेरी बहन थीं।[1] इस प्रकार इनमें भाई-बहन का सम्बन्ध था। ये दिल्ली के नहर शहादत खाँ के निकट परीक्षितपुरा नामक मुहल्ले के एक संभ्रान्त ढूसर भार्गव नागरिक श्री हरिप्रसाद जी की कन्या थीं। इनके पिता, माँ नूपी देवी[2] तथा चारों बड़े भाई-श्री राधाकृष्ण, गंगाविष्णु, दासकुँअर एवं हरिनारायण—चरणदास जी के शिष्य हो गये थे। सभी पहुँचे हुए साधक और काव्य-रचयिता थे। अपने पिता-माता की कनिष्ठा संतान होने के नाते ये चारों भाइयों और अभिभावकों का प्रेमभाजन थीं। इनका जन्म-काल श्रावण शुक्ल पंचमी सं० १७८२ वि० है। इनके पिता चरणदासजी के फूफा थे, अतः उनके दिल्ली-निवास के समय स्वभावतः उनका सम्पर्क उनके परिवार से प्रगाढ़ था। सहजोबाई का शुक संप्रदाय में दीक्षित होना भी एक भाग्य-विहित घटना ही थी। उनकी शादी ११ वर्ष की आयु में ही हो रही थी। सौभाग्यवती स्त्रियाँ इस अवसर पर उनका शृंगार कर रही थीं, तभी चरणदास जी भी आ पहुँचे। उन्होंने उन्हें लक्षित करके कहा—

---

१. संतप्रवर चरणदास के पिता मुरलीधर जी की बूआ रामा देवी कोटकासम में ब्याही गई थीं। उनकी बेटी नूपीबाई सहजोबाई की माँ तथा मुरलीधर जी की बहन हुईं। इस प्रकार वे चरणदास की बूआ थीं तथा मुरलीधर जी सहजोबाई के मामा थे। फलतः सहजोबाई जी चरणदास जी की फुफेरी बहन हुईं।

२. ये नूपीदेवी आतमराम इकंगी की पुत्री एवं चरणदास की शिष्या नूपीबाई से भिन्न हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुदाए शीस ।
मरना है रहना नहीं, जाना बिस्वे बीस ।।[1]

इतना सुनते ही उनके सुषुप्त संस्कार जागृत हो गए । उन्होंने विवाह करने से इनकार कर दिया । तभी दैववशात् ऐसी घटना घटी कि जब बारात गाजे-बाजे के साथ कन्यागृह की ओर आ रही थी, अतिशबाजी के धमाके से चौंककर घोड़ा वर को लिए हुए ही भाग निकला । एक वृक्ष से टकरा जाने के कारण वर घायल होकर मृत हो गया । यह दुःखद समाचार सहजो के संकल्प को और भी दृढ़ करने वाला प्रमाणित हुआ । उनके पिता ने भी कालकर्म-गति के संकेत को समझकर चरणदास जी से सपरिवार दीक्षा ग्रहण कर ली । इस तरह पूरा परिवार विरक्त हो गया ।

विवाह तो नहीं हो सका परन्तु जोगजीत जी की एक पंक्ति से ऐसी ध्वनि निकलती है कि सहजोबाई जी का सम्बन्ध श्वसुर पक्ष से बना रहा । वहाँ भी उन्होंने भक्ति का प्रचार किया—

तिहुँ कुल दीपक सहजोबाई, सासुर पीहर भक्ति बढ़ाई ।[2]

उनके स्वभाव और साधक-रूप की प्रशंसा करते हुए जोगजीत जी कहते हैं—

दया क्षमा की मूरत मानो, ज्ञान ध्यान परिपूरण जानो ।
साधुन की ऐसी सुखदाई, मानो भक्ति रूप धरि आई ।।
प्रेम लगन तामें अधिकाई, करमा अरु मीरा मनु आई ।।[3]

उनकी अनन्य गुरुभक्ति की भी स्वामी रामरूप जी तथा जोगजीत जी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है । उन्हें अष्टयोग और नवधाभक्ति में पूर्ण नैपुण्य प्राप्त था । क्रमशः अभ्यास से उन्हें ५ वर्ष तक की अखण्ड समाधि लगाने की शक्ति मिल गई थी, जिसके फलस्वरूप उनमें त्रिकालज्ञता आ गई थी । उन्होंने इसका संकेत स्वयं किया है—

सहजो गुरु दीपक दियो, रोम-रोम उजियार ।
तीन लोक द्रष्टा भई, मिटो भरम अँधियार ।।[4]

---

१. इस घटना का वर्णन इनके गुरुभाई एवं समकालीन जोगजीत जी तथा रामरूप जी ने तो नहीं किया है परन्तु परवर्ती कई कवियों ने इस घटना का इसी रूप में वर्णन किया है । द्रष्टव्य : सहजप्रकाश की भूमिका : पृ० क ।

२. लीलासागर : पृ० २२६ ।

३. वही ।

४. सहजप्रकाश : पृ० २९ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुश्री सहजोबाई के गुरुभाई तथा समकालीन श्री रामरूप जी के 'गुरुभक्तिप्रकाश' में एक प्रसंग इस प्रकार वर्णित है—एक बार चरणदास जी अपनी साधुमण्डली के साथ रिवाड़ी के पास शाहजहाँपुर में कुछ दिन आकर टिक गए। वहाँ उस समय रामरूप जी, रामप्रताप भार्गव और सहजोबाई के थाँभे थे। इधर दिल्ली में गुरु-दर्शन के लिए सहजोबाई अन्न-जल छोड़कर बैठी थीं। वहाँ साधु-मण्डली में सत्संग हो रहा था, तभी उन सबके बीच से डेढ़ पहर रात को लुप्त होकर चरणदास जी ने दिल्ली में सहजोबाई को दर्शन दिया। वहाँ उन्होंने जलपान किया और निशानी के रूप में अपने हाथ का कंगन उन्हें देकर वे पुनः अपने स्थान पर उपस्थित हो गए। जब लोगों ने कंगन न होने के विषय में पूछा तो उन्होंने सारा भेद बताया।[1]

इसी प्रकार सहजोबाई की बात पर दिल्ली में भी किसी को विश्वास नहीं आता था, परन्तु उस कंगन को देखकर लोगों को विश्वास करना ही पड़ा। अन्य लोग दर्शन न पा सकने के कारण दुःखी हुए। उनके जीवनवृत्त और कृतित्व पर डॉ० चतुर्भुज सहाय के 'गुरुभक्ता सहजोबाई' नामक ग्रन्थ में अच्छा प्रकाश डाला गया है।[2] लेखक ने उनके नाम के साथ 'गुरुभक्ता' का विशेषण ही जोड़ दिया है।

उनकी सिद्धियों से प्रभावित होकर तत्कालीन सम्राट् शाहआलम द्वितीय ने सं० १८२३ वि० में उन्हें बंथला नामक एक गाँव (तह० गाजियाबाद, जिला गाजियाबाद) और ११०० स्वर्ण मुद्राएँ भेंट में दी थीं। सन्त चरणदास के परलोकवास के १६ वर्ष पूर्व ही यह भेंट उन्हें मिली थी, जो उनके शिष्यों को प्राप्त जागीरों में से सर्वप्रथम जागीर मानी जाती है।

इसके अनन्तर उन्हें मुगल बादशाहों से देहली क्षेत्र के भोरगढ़, बादली, भलसुवा, जहाँगीरपुर और माँदीपुर—इन पाँच गाँवों की आंशिक जागीर भी प्राप्त हुई थी, जो अब तक चली आ रही है।[2]

इनका 'सहजप्रकाश' इनकी १८ वर्ष की अवस्था में ही रचा गया था। इसका रचनाकाल सं० १८०० वि० है। इसी से पता चलता है कि उनके संस्कार कितने प्रबल थे। चरणदास जी के जीवनकाल में ही उन्होंने अपना अलग स्थान बना लिया था। जेम्स हेस्टिंग्स ने भी इन्हें चरणदास जी के शिष्यों में सर्वाधिक सम्मान्य बताया है।[3]

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १७७।
(यह पुस्तक साधना प्रेस, मथुरा से प्रकाशित हुई है।)

२. सहजप्रकाश : भूमिका : पृ० ८ : सं०—महन्त गंगादास—दिल्ली।

३. जेम्स हेस्टिंग्स ने सहजोबाई का परिचय इस प्रकार दिया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके ९ शिष्य एवं तीन शिष्याएँ उनके जीवनकाल में ही यथास्थान केन्द्र बनाकर मत-प्रचार में निरत थे। सं० १८६२ वि० में ८० वर्ष की अवस्था में माघ शुक्ला पंचमी को (जिस दिन वसन्तोत्सव मनाया जाता है) उन्होंने देह-त्याग किया। उन्होंने आजीवन साधकधर्म का ही निर्वाह किया। इस तथ्य को उनके गुरुभाई जोगजीत जी इस प्रकार प्रमाणित कर रहे हैं—

जैसे रण में सूरा जूझै, ऐसे गुरुमत में आरूझै।
गुरु की भक्ति करन को लाहा, जीवन जग से प्रेम निबाहा ॥

चरणदास की शिष्य दृढ़, सहजोबाई जान।
ताकी दृढ़ गुरु भक्ति पर, जोगजीत कुर्बान ॥[1]

सहजोबाई के अनेक शिष्यों में प्रमुख १० शिष्यों के नाम 'सहजप्रकाश' में इस प्रकार मिलते हैं—(१) श्यामविलास, (२) कर्तानन्द, (३) अगमदास निर्मोही, (४) गुरुनिवास, (५) रामप्रसाद, (६) सन्त हजूरी, (७) हरनामदास, (८) रघुनाथ सनेही, (९) लक्ष्मीबाई और (१०) सुमतिबाई।[2]

ज्ञातव्य है कि महन्त गंगादास ने 'सहजप्रकाश' की भूमिका में यद्यपि १० ही प्रमुख शिष्यों के नामों का उल्लेख किया है लेकिन अन्य सूत्रों से यह संख्या १२ मिलती है अतः इसमें सुश्री मलनीबाई और हरजीदास के नामों को भी जोड़ लेना चाहिए।

'श्री चरणावत वैष्णव सदाचार' के रचयिता श्री रूपमाधुरीशरण ने सहजोबाई के १० शिष्यों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं—(१) मलनीबाई, (२) गुरुनिवास, (३) हरजीदास, (४) रामप्रसाद, (५) रामधनदास (६) सन्त हजूरी, (७) कर्तानन्द, (८) निर्मोही भगवानदास, (९) हरनामदास और (१०) श्यामविलास।[3]

"Charandas has several female disciples, of whom the most celebrated were Sahajo Bai and Daya Bai. These two were poetesses and their hymns, overflowing with devotional faith, are much admired. Both like Charandas ware born at Dahara and belonged to the Dhusar Caste."
—Encyclopaedia of Religion and Ethics. Vol. 3, page. 365.

१. लीलासागर : पृ० २२७।

२. सहजप्रकाश : भूमिका : पृ०-ठ।

३. श्री चरणावत वैष्णव सदाचार : पृ० २७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट है कि श्री रूपमाधुरीशरण ने अगमदास निर्मोही का ही नाम भगवानदास निर्मोही लिखा है। इनकी सूची में श्री रघुनाथ सनेही, सुमतीबाई और लक्ष्मीबाई के नाम नहीं हैं। मलनीबाई का नाम 'सहजप्रकाश' वाली सूची में नहीं है जब कि इस परम्परा की बादली वाली गद्दी के महंत पद पर सर्वप्रथम वे ही अभिषिक्त हुई थीं। इसी प्रकार इस सूची में रामधनदास का नाम भी नहीं है। यहाँ यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मलनीबाई सहजोबाई जी की शिष्या अवश्य थीं।

सहजोबाई जी की गद्दी के उत्तराधिकार के लिए विवाद—

प्राप्त प्रामाणिक सूत्रों के आधार पर कहा जा सकता है कि चरणदास के परलोकवास के उपरान्त उनकी प्रधान गद्दी के महंत-पद के लिए जितना विवाद स्वामी रामरूप, जुगतानंद जी और सहजोबाई जी में छिड़ा था उससे बढ़कर विवाद सहजोबाई जी के स्वर्गवास के उपरान्त उनके प्रमुख शिष्यों में उत्तराधिकार पद के लिए हुआ। सं० १८६२ वि० में उनके देहत्याग के पश्चात् महंत-पद के लिए शिष्यों में ऐसी प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हुई कि सं० १८७२ वि० से लेकर सं० १९२७ वि० तक अर्थात् ५४ वर्षों तक कोई भी व्यक्ति उनकी गद्दी का अधिकारी नहीं बन पाया। संत सहजोबाई के अनुयायियों की पंचायत ने प्रधान गद्दी की व्यवस्था सँभालने के लिए चार व्यक्तियों की एक समिति बना दी थी, जिसके निम्नलिखित सदस्य थे—(१) गुरुनिवास, (२) श्यामविलास (शाम्बलीदास)[1], (३) हरनामदास और (४) रघुनाथ सनेही। सम्भवतः इन चारों गुरुभाइयों में भी सौमनस्य का अभाव था। फलतः धोखाधड़ी और अमानत में खयानत के जुर्म में ७ जून सन् १८१२ ई० (सं० १८६९ वि०) को श्री श्यामविलास की १४ वर्ष की सजा हो गई थी। सं० १९१२ वि० में सहजोबाई जी के मन्दिर की सारी सम्पत्ति पुनः जिन ४ प्रतिनिधियों के संघ की देखरेख में दे दी गई, उनके नाम हैं—(१) गोपालदास, (२) रघुबरदास, (३) मुरलीदास और (४) गोविंददास। इन लोगों ने एक महंत नियुक्त किया था, जो सम्पत्ति की व्यवस्था और पूजा-पाठ आदि सम्पन्न कराता था। महन्त को अधिकार दिया गया था कि वह अपने योग्य चेलों में से किसी को भी अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सकता है, अपने साधुओं को लेकर वह मेलों में उपस्थित हो और उसकी अनुपस्थिति में अन्य कोई व्यक्ति उसका स्थानापन्न न बने।

---

१. मुकदमे के अभिलेखों में गुरुनिवास के पश्चात् दूसरा नाम शाम्बलीदास का दिया हुआ है। चूँकि बाई जी के शिष्यों में इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं था, अतः लिखावट की भूल मानना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय उक्त समिति ने श्री परमेश्वरीदास को महन्त-पद की मान्यता दी थी। उन्होंने अपने चेले मुकुन्ददास को कुछ सम्पत्ति दे दी थी, जिसके विरुद्ध उनके एक अन्य शिष्य जमुनादास तथा कुछ अन्य लोगों ने दिल्ली के जिलान्यायाधीश की अदालत में मुकदमा दायर कर दिया और परमेश्वरीदास द्वारा दी गई भेंट निरस्त कर दी गई। इस निर्णय का आधार यह था कि मंदिर और उसकी सम्पत्ति किसी एक व्यक्ति की निजी सम्पत्ति नहीं है।

सं० १९३० वि० में श्री परमेश्वरीदास ने अपने एक अन्य शिष्य ईश्वरीदास को अपने अनुयायियों के समर्थन से प्रधान चेला (उत्तराधिकारी) नियुक्त किया परन्तु वह अपने गुरु के देहांत के पूर्व ही परलोकगत हो गया। अन्ततः श्री मुकुन्ददास ही उक्त पद पर नियुक्त किये गये परन्तु उस परम्परा के एक अन्य अनुयायी श्री प्रेमदास ने अनेक प्रकार की गड़बड़ियाँ करने का आरोप लगाकर श्री मुकुन्ददास को महन्त पद से हटाने की माँग की और वे हटा भी दिये गये। श्री जमुनादास महन्त पद के लिए चुने गये परन्तु कुछ ही समय बाद मुकुन्ददास ने जमुनादास के चुनाव के विरुद्ध न्यायालय में प्रतिवाद किया और अपने पक्ष में १२ सहजोपंथियों से इस आशय का बयान भी दिलवा दिया कि श्री जमुनादास ने बलपूर्वक गद्दी पर अधिकार जमा लिया है और वे दुश्चरित्र हैं। अपने बचाव के लिए जमुनादास जी ने २४ अन्य साधुओं (जिनमें चरणदासी, सहजोबाई तथा कबीरपंथी परम्परा के थे) से बयान दिलाया कि उन्हें उनकी (जमुनादास की) नियुक्ति में कोई आपत्ति नहीं है।[1]

तात्पर्य यह कि सुश्री सहजोबाई की गद्दी उनके जीवनकाल से ही विवादास्पद बनी हुई थी और लगभग ८०–८५ वर्ष तक इसी रूप में चलती रही। फलतः उनकी शिष्य-परम्परा द्वारा स्थापित गद्दियों पर केन्द्रीय नियंत्रण बड़ा ही कमजोर रहा और उनका योगदान सम्प्रदाय के प्रसार में उतना नहीं हो सका, जितना स्वामी रामरूप और गो० जुगतानंद की गद्दियों का रहा।

जैसा कि अभी बताया जा चुका है, सहजोबाई जी की मुख्य गद्दी की परम्परा

---

1. In the Court of Mr. Cliford, District Judge–Delhi Suit No. 1 of 1888.
Mukunddas, Chela of Parmeshwari Das Sadhu of Charandasi Sect of Delhi.

Versus.

Jamunadas, Chela of Parmeshwaridas Sadhu of Charandasi Sect of Delhi–Defendent. (Claim of Possession)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भ से ही वाद-विवादों में उलझी हुई थी फिर भी उत्तराधिकारपद पर क्रमशः आने का शिष्य-परम्परानुसार क्रम इस प्रकार है—

दिल्ली की मुख्य गद्दी

सहजोबाई (सं० १७८२–१८६२ वि०)

श्यामविलास[1] (सं० १८६२–१८७८ वि०)

परमेश्वरीदास (सं० १८७८–१९३० वि०)

मुकुन्ददास – जमुनादास[2] (सं० १९३०–३४ वि० बारी-बारी से)

रामजीदास[3] (सं० १९३४–१९८१ वि०)

---

१. श्यामविलास जी के शिष्यों में हरीदास, विश्वम्भरदास, रघुनाथदास, देवमुरारी, रामसुखदास, जानकीदास, हनुमानदास, लक्ष्मणदास, जमुनादास (परमेश्वरीदास के बाद हुए महन्त के अतिरिक्त) और रामसरनदास विशेष उल्लेखनीय हैं। ज्ञातव्य है कि सं० १८७२ वि० से सं० १८७८ वि० तक की अवधि में इनका महन्त पद विवादग्रस्त था अतः इस अवधि में ये नाम मात्र को महंत थे। इस बीच मुख्यतः ४ सदस्यों की एक समिति ही गद्दी की देख-भाल के लिए नियुक्त थी। इसी प्रकार परमेश्वरीदास भी सं० १८७८ से १९२८ वि० तक नाममात्र के ही महन्त थे क्योंकि इस बीच भी उक्त ४ सदस्यों का ट्रस्ट मंदिर और संपत्ति के लिए उत्तरदायी था।

यद्यपि श्यामविलास जी ने स्वयं कोई साहित्य सर्जन नहीं किया था परंतु उनकी रुचि विद्याव्यसनी थी। उन्होंने नाभादास के 'भक्तमाल' की टीका-सहित प्रति की प्रतिलिपि तैयार की थी। उनके शिष्य श्री देवमुरारी ने 'विचारमाल' नामक एक सुन्दर ग्रंथ की रचना की थी, जिसके लिपि-कर्त्ता श्यामविलास जी के एक अन्य प्रशिष्य श्री जमुनादास (जो आगे चलकर आचार्य गद्दी के महंत हुए) जी हैं।

२. महंत जमुनादास की रुचि साहित्यिक थी। यद्यपि इनकी कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती लेकिन उन्होंने संत सहजोबाई के शिष्य कर्मानंद के 'माघमाहात्म्य' और श्यामविलास जी के एक अन्य शिष्य देवमुरारी के 'विचारमाल' की प्रतिलिपि की थी। वे स्वयं श्री परमेश्वरीदास जी के ही शिष्य थे।

३. संभवतः इस परंपरा का कोई भी महंत सं० १९६५ वि० के पूर्व किसी भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगादास (सन् १९१२ ई० से २२ दिसंबर सन् १९७८ ई० तक)
|
घनश्यामदास[1] (८ जनवरी सन् १९७९ ई०)

महन्त गंगादास—

इस परम्परा के महन्त गंगादास एक प्रबुद्ध और कर्मठ महन्त रहे हैं। ये स्वभाव से बड़े ही विनम्र, साधुसेवी, कवि, साहित्यानुरागी, त्यागी और संतत्व के सभी आवश्यक गुणों से युक्त थे। इनके इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर इनके बड़े गुरुभाई जानकीदास जी ने इनके पक्ष में परम्परागत गद्दी का अधिकार छोड़ दिया था। यह महंत गंगादास के ही प्रयास का फल है कि सहजोबाई जी का मुख्य स्थान सं० २०१५ वि० में १ लाख रुपयों की लागत से 'वैकुण्ठलोक' के नाम से एक भव्य भवन के रूप में परिवर्तित हो सका। २७ फरवरी सन् १९३८ ई० को मेरठ डिवीजन के कमिश्नर श्री पी० डब्ल्यू० मार्स के स्वागतार्थ हजरत मखदूम सिराजुद्दीन शाह साहब के उर्स के समय अपने वक्तव्य में हाजीसाहब बदरुद्दीन अहमदख्वाजा हसन निजामी अनवर चिस्ती साहब ने महन्त गंगादास जी के विषय में कहा था—

'आप फिक्रो औ रूहानियत बाबा चरणदास जी के जानसीन हैं।' तात्पर्य यह है कि महन्त जी केवल अँगूठाछाप और आडंबरी महात्मा नहीं थे, बल्कि उनमें परम्परा और आधुनिकता-बोध का सुन्दर सामंजस्य था।

महंत गंगादास का जन्म अग्रवाल वैश्यकुल में फाल्गुन शु० २, सं० १९६८ वि० तदनुसार ३० मार्च, सन् १९१२ ई० को दिल्ली में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री खिल्लूमल तथा माता का नाम श्रीमती चमेलीदेवी था। इनके

साम्प्रदायिक या सामुदायिक आयोजन में सम्मिलित नहीं हुआ, क्योंकि सभी विवादास्पद रहे। सं० १९६५ वि० से महंत रामजीदास ने इस परंपरा का आरंभ किया। वे सं० १९७८ वि० तक के सभी मेलों में अपने नियंत्रण के ९–१० महंतों के नाम सम्मिलित होते रहे।

१. महंत गंगादास जी के निधन के पश्चात् दि० ८ जनवरी सन् १९७९ ई० को उनके शिष्य श्रीघनश्यामदास महंत पद पर अभिषिक्त हुए। इनका जन्म १८ फरवरी सन् १९४९ ई० को हुआ था। ये महंत गंगादास के सन् १९६४ ई० में शरणागत हुए थे। इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से बी० काम० की परीक्षा उत्तीर्ण की है। इनका भी महंतपद विवादास्पद हो गया है। चरणदासी श्री जीवनदास ने इनके विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर रखा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता-पिता की इनसे पूर्व की ५ संतानें मृत हो चुकी थीं। सहजोबाई जी के स्थान (गद्दी) के तत्कालीन महंत श्री रामजीदास के आशीर्वाद से उनका यह बालक जीवित रहा। माता-पिता ने बचपन में ही इस बालक को महन्त रामजीदास को सौंप दिया। इनका प्रारम्भिक लालन-पालन इनकी नानी मेवा देवी ने किया। गुरु ने इनकी शिक्षा की अच्छी व्यवस्था की। ११ नवम्बर सन् १९२३ ई० को ११ वर्ष की अवस्था में ही गुरु की छाया इन पर से हट गई और महंत पद का भार वहन करने की उनके लिए बाध्यता हो गई। इनका स्वर्गवास सन् १९७८ ई० में हुआ। महंत गंगादास समय-समय पर कहानियाँ, लेख और कविताएँ आदि माधुरी, सरस्वती जैसी पत्रिकाओं और अनेक दैनिक पत्रों में प्रकाशित कराते रहते थे। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। ये ठाट-बाट से रहा करते थे। मुहल्ला दस्सान (दिल्ली) स्थित सहजोबाई जी की प्रमुख गद्दी के भवन को इन्होंने १ लाख रुपया खर्च करके बड़े ही आलीशान भवन के रूप में और आधुनिक साज-सज्जा से युक्त बनवाया था। इनके इसी राजसी रहन-सहन से चिढ़कर सन् १९४१ ई० में मेरठ के जिला जज के यहाँ गो० हरचंद गिरि और स्वामी चेतनदास ने इन्हें महन्त पद से हटाने के लिए एक वाद प्रस्तुत किया था। अन्ततः महंत गंगादास की विजय हुई। ये शुक सम्प्रदाय के लिए प्राचीनता और आधुनिकता के सुन्दर तथा समयोपयोगी सामंजस्य-सेतु थे। इनकी २५० दोहों की एक सतसई (गंगा सतसई) अधूरी ही रह गई। शृंगार-प्रधान होने के कारण इसे बीच में ही रोक देने की उनके लिए बाध्यता थी। उनके द्वारा रचित 'चरणदास चरितावली' (प्रकाशित) में १५०० पद्यों का समावेश है। उनके खड़ीबोली में रचित ४०० पद्यों का अभी तक प्रकाशन नहीं हो सका है। इन पद्यों की बानगी द्रष्टव्य है—

क्यों कर मैं तुम्हें भुला दूँ, यह शक्ति नहीं है मुझमें—
जब हृदय तुम्हें दे बैठा, तब बाकी क्या इस तन में ॥
इस नाशवान काया का, एक-एक अणु है तेरा।
मैं तो सर्वस्व गँवाकर, बन बैठा तेरा चेरा ॥

इनके प्रेमी हृदय की तड़पन आँसुओं को सम्बोधित इन पंक्तियों में कितनी व्यथा के साथ अभिव्यक्त हुई है—

ऐ मन मानस के मोती, क्यों इधर उधर गिरते हो।
बिन हृदय पारखी के तुम, मारे मारे फिरते हो ॥
भावुक मराल यदि तुमको, इकक्षण भी जो लख पाता।
नहिं ऐसे गिरने देता, आदर से कंठ लगाता ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

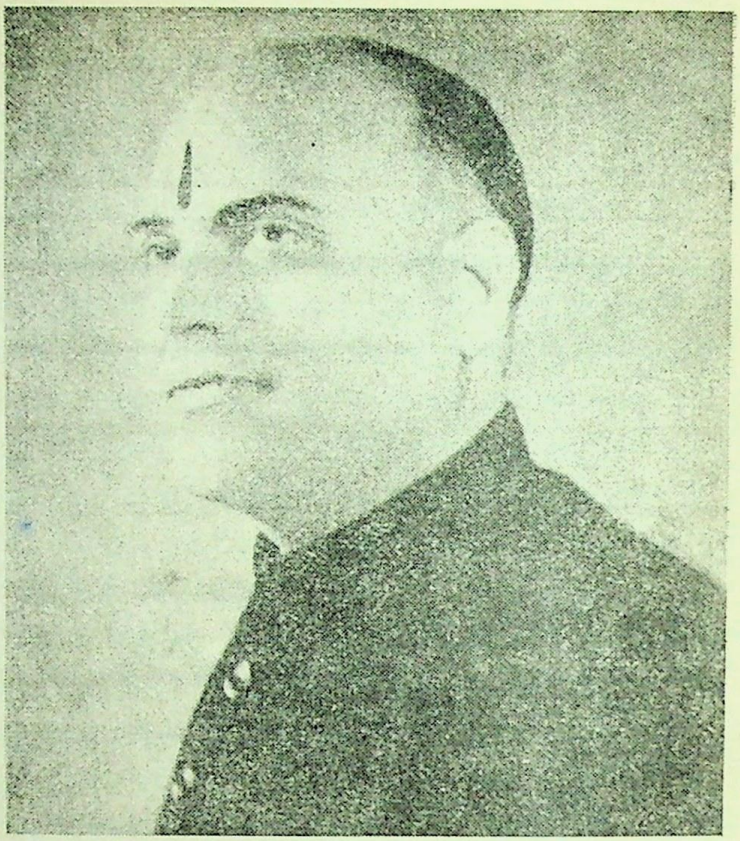

यहन्त गंगादास वैकुंठलोक, दिल्ली

महंत श्री रामजीदास
(स्व० महन्त श्री गंगादास के गुरु)

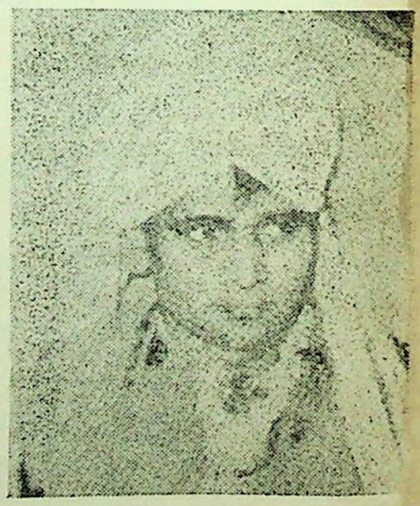

महंत श्री घनश्यामदास
(शिष्य श्री गंगादास)

(पृ० २५५ ।)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रूप जाल में फँसकर, बगुले को हंसा जाना।
अंधे के आगे रोकर, है आँसू व्यर्थ बहाना ॥[1]

शुक सम्प्रदाय के वर्तमान पुनरुद्धार में आपका योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण है। श्री सरसमाधुरीशरण के बाद अपने सम्प्रदाय की बहुमुखी उन्नति और उसके पुनर्जागरण में आपने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सहजोबाई जी की शिष्य परम्परा द्वारा स्थापित थाँभों को व्यवस्थित करने का आपका प्रयास भी सराहनीय है। साथ ही अपने सम्प्रदाय के विपुल साहित्य का पता लगाकर, उसका संग्रह करके और कुछ को प्रकाशित कराकर हिन्दी साहित्य का उन्होंने बड़ा उल्लेखनीय उपकार किया है।

सुश्री सहजोबाई के अन्य शिष्यों और उनके थाँभों का परिचय—

(१) श्री अगमदास और उनकी दिल्ली की गद्दी—इनका व्यक्तिगत परिचय उपलब्ध नहीं है। इनके नाम के साथ 'निर्मोही' उपाधि जुड़ी हुई है, जो इस बात का परिचायक है कि वे पूर्णरूपेण विरक्त महात्मा थे। ये अनेक ग्रंथों के रचयिता हैं। इनके साहित्यिक कृतित्व का परिचय यथास्थान दिया जायगा। इनके शिष्यों में निरलंभी मोहनदास (मोहन निवास)[2] और श्याममनोहर भी साहित्यकार थे। इनके सं० १८६० वि० तक जीवित रहने का प्रमाण मिलता है। इनके अन्य शिष्यों में द्वारकादास, प्रेमप्रकाश, ज्ञानदास, भजनदास, गंगादास, फतेसिंह, सीताचरण, ध्यानसरूप, कान्हड़दास, टीकमदास, नारायणदास, अर्जुनदास, मोहननिवास और बंसीदास विशेष उल्लेखनीय हैं। लाड़ोबाई और कुन्दनबाई नामक इनकी दो शिष्याओं के भी नाम मिलते हैं। इनके द्वारा सं० १८५१ वि० में प्रतिलिपि की हुई 'भक्तिसागर' की पाण्डुलिपि प्राप्त है। इससे भी पता चलता है कि ये उस समय तक वर्तमान थे।

इन्होंने दिल्ली के गली जाजमपुरियान बाजार के सिरकीवालान मुहल्ले में अपना स्थान बनाया था। इनकी शिष्य परंपरा के अन्तिम शिष्य हनुमानदास सं० १९८० वि० तक वर्तमान थे। यहाँ की शिष्य परम्परा इस प्रकार है—निर्मोही अगमदास (सं० १८६० वि० तक वर्तमान)—श्याममनोहर सं० १८६०–१९०० वि०)—साधु हनुमानदास (सं० १९००-१९८० वि०)—। इसके पश्चात् यह स्थान मुख्य गद्दी के आधीन हो गया।

---

१. सहजप्रकाश : भूमिका : पृ० थ–द।

२. निरलम्भी मोहनदास जी की 'ज्ञानबत्तीसी' नामक रचना गामड़ी के प्राचीन पुस्तक-संग्रहालय में वर्तमान है। ये बहुत अच्छे कवि बताये जाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) कर्तानन्द जी और उनकी नरेला की गद्दी—बृहत्तर दिल्ली के नरेला नामक स्थान में (दिल्ली से लगभग २५ किलोमीटर दूर) कर्तानन्द जी अपना स्थान बनाकर धर्मप्रचार करते थे। अपने अंतिम समय में सहजोबाई जी के शिष्य हरजीदास भी यहीं रहा करते थे। उनका (हरजीदास जी का) निधन सं० १८४० वि० में यहीं पर हुआ था। कर्त्तानन्द जी बाई जी के योग्यतम शिष्यों में से थे और सं० १८४० वि० से ही साहित्य-रचना में रत थे। सं० १९२० वि० तक इनके जीवित रहने का पता चलता है। इनके ५० से अधिक विरक्त शिष्यों में गोवरधनदास, नरसिंहदास, सुखबीरदास, भगवानदास, भगीरथदास, रघुनाथ सनेही, श्यामदास, लालदास, बलदेवदास और लक्ष्मीबाई के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी नरेला की गद्दी की परम्परा इस प्रकार मिलती है—

कर्तानन्द (सं० १८३५–१९२० ई० तक वर्तमान)—भगवानदास (सन् १९२०–१९९९ ई०)—(तत्पश्चात् दिल्ली की प्रमुख गद्दी के महन्त के आधीन)।

महन्त भगवानदास दिल्ली की प्रमुख गद्दी के महन्त जमुनादास के शिष्य थे। सं० १९९९ वि० में वहाँ एक मेला भी हुआ जो मं० भगवानदास की देख-रेख में हुआ था। नरेला में सं० २००२ वि० में महन्त गंगादास जी ने अपनी मातामही सुश्री मेवाबाई की स्मृति में ५० हजार रुपये की लागत से श्री श्यामचरण दास का एक भव्य मन्दिर निर्मित कराया। कुछ समय पूर्व तक यह स्थान बाबा बृजमोहनदास नामक एक विरक्त महात्मा की देख-रेख में था।

(३) मलनीबाई और उनका बादली का थाँभा—सुश्री मलनीबाई का नाम सहजोबाई जी के प्रमुख शिष्याओं में लिया जाता है। बाई जी ने शाहआलम द्वितीय से प्राप्त बादली गाँव की आंशिक जागीरकी देख-रेख के लिए इन्हें ही नियुक्त किया था। इससे इनकी कार्यक्षमता प्रमाणितहोती है। वैसे वे किसी पुरुष शिष्य के माध्यम से भी यह काम करा सकती थीं परन्तु इन पर संभवतः उनका विश्वास अधिक था, इसीलिए वे वहाँ के महन्त पद पर भी बैठा दी गई थीं। इनकी दो शिष्याएँ (१) गंगाबाई और (२) नलनी बाई इन्हें व्यवस्था-कार्य में सहायता पहुँचाती थीं। इनके शिष्यों में भजनदास, बिसरामदास, बालकदास, गुरुनिवास, नन्दगोपाल, निर्भयगोपाल, भक्तगोपाल, सन्तगोपाल, मुरलीदास और गंगाप्रसाद आदि को विशेष उल्लेखनीय और प्रबुद्ध माना जाता है।

बादली भी बृहत्तर दिल्ली की सीमा में ही नगर से लगभग १५ किलोमीटर दूर स्थित है। यहाँ की शिष्य-परंपरा का व्यवस्थित क्रम प्राप्त नहीं होता। इतना अवश्य ज्ञात है कि सं० २०१५ वि० तक यहाँ की स्वतंत्र व्यवस्था चल रही थी। प्रधान गद्दी के महन्त रामजीदास के शिष्य जानकीदास यहाँ सं० २०१५ वि० तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान थे। वे वर्तमान महन्त गंगादास के मामा थे। अब यहाँ की व्यवस्था भी दिल्ली की प्रधान गद्दी से ही हो रही है।

(४) श्री गुरुनिवास और माँदीपुर का थाँभा—माँदीपुर बृहत्तर दिल्ली का एक स्थान है। यहाँ सहजोबाई जी के शिष्य श्री गुरुनिवास अपना आश्रम बनाकर रहते थे और शाहआलम द्वारा बाई जी को मिली भूसंपति की देख-रेख करते थे। कहा जाता है कि इनका एक थाँभा रिवाड़ी और दूसरा गुरुवनी में भी था। चूँकि बाई जी की शिष्य परंपरा की गद्दियों ने लगभग १०० वर्ष तक किसी भी साम्प्रदायिक मेले-ठेले में भाग नहीं लिया इसलिए इनकी शिष्य-परम्परा के पूरे विकास का लेखा-जोखा भी प्राप्त नहीं होता। इनके एक शिष्य श्री पूरननिवास ने सं० १८६८ वि० में विष्णुदास हरिवल्लभकृत 'श्रीमद्भागवत्' के दोहों में किये गये अनुवाद की प्रतिलिपि की थी। सं० २०१७ वि० में महन्त गंगादास जी ने १० हजार रुपये की लागत से स्वर्गीय महन्त रामजीदास की स्मृति में यहाँ एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया था। साथ ही २०००) की लागत से उनके द्वारा एक प्याऊ की व्यवस्था भी की गई है जो बराबर चलती रहती है। संप्रति यह स्थान दिल्ली की मुख्य गद्दी के नियंत्रण में है।

(५) श्री रामप्रसाद और शाहजहाँपुर का थाँभा—सहजोबाई जी की परम्परा की अधिकांश गद्दियाँ दिल्ली के आस-पास ही स्थापित हुई थीं। केवल यही थाँभा ऐसा था जो कि दिल्ली से पर्याप्त दूर स्थित था। यहाँ के मुहल्ला चौंकसी में हनुमान मंदिर अब भी वर्तमान है, जिसमें रामप्रसाद जी ने राधा-कृष्ण की युगल मूर्त्ति स्थापित कराई है। इस मंदिर के नाम २००-२५० बीघे जमीन मिली हुई थी, जो शाहजहाँपुर जिले के तिलहर[1] और सीतापुर जिले के एलगाँवाँ नामक गाँवों में थी। इन स्थानों की अधिकांश जमीनें जमीन्दारी उन्मूलन में चली गईं। यहाँ के मन्दिर की पूजा-अर्चा के लिए दिल्ली के स्व० महंत श्री गंगादास की ओर से पुजारी नियुक्त है। यहाँ की सम्पत्ति सम्भवतः अवध के तत्कालीन शासकों से इन्हें मिली होगी। इससे सिद्ध होता है कि ये प्रभावशाली महात्मा थे। रामप्रसाद जी की इस गद्दी की शिष्य-परम्परा विश्वसनीय रूप से प्राप्त नहीं है। एक शिष्य-परम्परा-सूची प्राप्त हुई है, जिसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है तथापि यहाँ दी जा रही है। जो इस प्रकार है—रामप्रसाद—हरविलास—जमुनादास—धर्मदास—लच्छनदास—गुरुचरनदास—माधोदास—हरीदास। इनमें से कौन किस समय तक महंतपद पर रहा, इसका पता नहीं चलता। रामप्रसाद जी ने

---

१. तिलहर—यह शाहजहाँपुर से कोई १० मील दूर शाहजहाँपुर-बरेली मार्ग का एक रेलवे स्टेशन है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-रचना भी की थी जिसका अल्पांश ही प्राप्त है। इस गद्दी के महंत मेलों में उपस्थित होते रहते थे।

(६) लक्ष्मीबाई और सोरों का थाँभा—सोरों (शूकर क्षेत्र) एटा जिले का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। यहाँ बाई जी की शिष्या लक्ष्मीबाई स्थान बनाकर रहा करती थीं। उनके दो स्थान और भी थे, जो क्रमशः पलथा (तह० आँवला, जला बरेली) और हाथरस नगर में थे। ये दोनों स्थान सोरों के अधीन थे। इनकी शिष्य-परम्परा अज्ञात है। सम्भवतः इनका एक स्थान अलीगढ़ के कोयल[1] नामक स्थान में भी था, जो हाथरस के पास ही है।

(७) वंथला का स्थान (थाँभा)—गाजियाबाद जिले में स्थित यह गाँव सं० १८२३ में सुश्री सहजोबाई को तत्कालीन मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय से मंदिर की व्यवस्था के लिए मिला था। सम्भवतः यहाँ कोई स्वतंत्र थाँभा नहीं था। दिल्ली की प्रमुख गद्दी पर आने के पूर्व श्यामविलास जी यहीं रहकर व्यवस्था का काम देखते थे। अपने गुरु रामजीदास की स्मृति में स्वर्गीय महन्त गंगादास ने यहाँ २० बीघे का कलमी आम का एक बगीचा और एक सुन्दर कूप निर्मित कराया है।

(८) संत हजूरी और बुढ़ाना का थाँभा—मुजफ्फरनगर के बुढ़ाना नामक स्थान में संत हजूरी जी (बाई जी के शिष्य) आश्रम बनाकर धर्मप्रचार करते थे। मेरठ की अनाज की मंडी नामक मुहल्ले में भी इनका एक स्थान था। ये बड़े ही प्रभावशाली और कर्मठ महात्मा थे। इनकी शिष्य-परम्परा के लोग घूम-फिर कर दोनों स्थानों पर रहा करते थे। इनके शिष्य संतनिवास और रामनिवास विशेष उल्लेखनीय हैं। सं० १९५२ वि० के बाद की यहाँ की शिष्य-परम्परा अप्राप्त है।

इन स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थान यथा जहाँगीरपुर (दिल्ली क्षेत्र का एक स्थान) और दहीरपुर या धीरपुर (वर्तमान निरंकार कालोनी, दिल्ली) का केवल जागीर या सम्पत्ति मात्र का स्तर है। इन्हें थाँभा नहीं माना जा सकता। आगरा (मोती कटरा), गुरुबनी (पंजाब) और रिवाड़ी में बताये जाने वाले थाँभों का सम्प्रति कोई पता नहीं चलता। वस्तुतः इन स्थानों पर व्यवस्थित थाँभा स्थापित नहीं हो पाया था।

सहजोबाई जी के अन्य प्रमुख शिष्यों में रामधन, हरजीदास, रघुनाथसनेही, हरनामदास और सुमतिबाई के स्थानों का पता नहीं चलता। सं० १८७२ वि० में जिन चार व्यक्तियों की समिति मंदिर की देखरेख के लिए बनी थी उसके दो

---

१. कोयल के थाँभे का वृत्त जैदेवदास के संदर्भ में द्रष्टव्य है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदस्य हरनामदास और रघुनाथसनेही थे। अतः निश्चित है कि ये लोग दिल्ली में ही बने रहे या आसपास के थाँभों पर घूम फिर कर और मंदिर की जागीरों की व्यवस्था में लगे रहकर स्वतन्त्र स्थान न बना सके। फिर भी उनके कुछ निजी शिष्यों के नाम मिलते हैं।

रामधन के भी कुछ शिष्यों के नाम मिलते हैं जब कि 'सहजप्रकाश' में सहजोबाई जी के १० प्रमुख शिष्यों की सूची में उनका नाम नहीं है। कुछ अभिलेखों को देखने से ऐसा पता चलता है कि इनके शिष्यों में जानकीदास, गंगादास, भजनदास, रतनदास, गोपालजीदास और किशनदास मुख्य थे। श्री रामधन भी कहीं के महन्त रहे होंगे पर कहाँ के थे, इसका पता नहीं चलता।

यद्यपि हरनामदास मुख्यतः दिल्ली में ही रहे परन्तु उन्होंने स्वतन्त्र रूप से भी कुछ शिष्य बनाये, जो सहजोबाई के विचारों का घूम-फिर कर प्रचार करते थे। इनमें सूरदास, पूरननिवास, बैकुण्ठदास, बालकदास, ठाकुरदास, राघकादास, सन्तदास, सुखदेवदास, हरविलास, गोपालदास, रामकिशन, गोविन्ददास, विष्णुदास और ठाकुरदास का नाम विशेष रूप से गिनाया जाता है।

सहजोबाई जी का साहित्य —

हिन्दी के विशाल सन्त काव्य निर्माताओं में शुक सम्प्रदाय के केवल तीन ही कवियों की गणना सन्तकवि के रूप में की जाती है। शेष को हिन्दी साहित्य का इतिहासकार और विद्यार्थी या तो जानता ही नहीं और यदि कुछ कवियों के विषय में उसे यत्किंचित ज्ञान भी है तो उन्हें वह फुटकल कवियों के रूप में ही स्थान देता है। यहाँ तक कि श्री रामरूप, गो० जुगतानन्द, गुरुछौना जी, रामसखी जी तथा अन्य अनेक कवियों की स्थिति अभी तक यही है। इन कवियों में भी सन्त चरणदास और सहजोबाई अग्रगण्य हैं। श्री अखैराम भी अच्छे कवि के रूप में समझे जाते हैं।

सुश्री सहजोबाई की कविता पारिवारिक विरासत के रूप में मिली थी। उनके पिता हरप्रसाद जी तथा उनके चारो भाई—रामकृष्ण जी, गंगाविष्णु जी, दासकुँवर जी तथा हरिनारायण जी—उच्चकोटि के कवि थे। यह संयोग की ही बात है कि हरप्रसाद जी स्वयं तथा सहजोबाई सहित उनकी पाँचों सन्तानें प्रशस्त कवि होने के साथ ही सन्त चरणदास जी जैसे एक ही गुरु के दीक्षित शिष्य थे। चूँकि यहाँ हम सहजोबाई एवं उनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा पर ही विचार कर रहे हैं और उनके पिता तथा चारों भाई चरणदास जी के शिष्य थे अतः उनके व्यक्तित्व और साहित्य पर अन्यत्र यथास्थान प्रकाश डाला जायगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि सहजोबाई जी के नाम पर ग्रन्थों की संख्या अधिक नहीं है परन्तु कवि-रूप में उनके यश को स्थिर करने में उनका 'सहजप्रकाश' ही पर्याप्त है। इनकी बानियों का पहला संग्रह सन् १८९७ ई० में तत्वज्ञान सभा पुस्तकालय—लाहौर से 'ब्रह्मविद्यासागर' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उस संग्रह में हरप्रसाद जी, गंगाविष्णुदास, दासकुँअर तथा हरिनारायण जी की बानियाँ भी सम्मिलित थीं। यह संग्रह मूल रूप में सं० १८१९ वि० में तैयार किया गया था, जिसकी पाण्डु-लिपि सुश्री सहजोबाई की दिल्ली-स्थित आचार्य गद्दी के महन्त श्री गंगादास के पुस्तकालय में देखने को मिली थी। इनकी बानी वेलवेडियर प्रेस-प्रयाग से भी सन् १९०८ ई० में छप चुकी है।

(१) सहजप्रकाश—'सहजप्रकाश' की रचना सहजोबाई जी ने सं० १ ०० वि० के फाल्गुन शुक्ल अष्टमी बुधवार को पूरी कर ली थी। उस समय वे १८ वर्ष की थीं। इतनी अल्पावस्था में इतनी उच्चकोटि की बानियों की रचना आश्चर्यजनक है। इसकी रचना का मुख्य उद्देय उनके कथनानुसार गुरु के प्रति आदरभाव व्यक्त करना मात्र है परन्तु इसके साथ ही इसमें अन्य प्रकार के भी विचार सम्मिलित होते गये और एक स्वतन्त्र ग्रंथ ही अस्तित्व में आ गया।[1] उनका यह कथन इस तथ्य से भी प्रमाणित हो जाता है कि इस ग्रंथ का लगभग आधा कलेवर गुरु, शिष्य और सज्जन-सत्संग सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति से ही पूर्ण है। लगभग इतना ही विस्तार 'वैराग्य उपजावन को अंग' का भी है। इन्हीं दोनों के बीच सहजोबाई की गुरुभक्ति, गुरुमहिमा, शिष्य की अर्हता, सज्जन-प्रशंसा, दुष्टजन-निन्दा और संसार से विरक्ति उत्पन्न करने वाली उक्तियाँ समाविष्ट हैं। ब्रह्म के अगुण-सगुण रूप का निरूपण, ज्ञानभक्ति-योग की भक्ति साधना के क्षेत्र में उपयोगिता का मूल्यांकन, जीवात्मा और मुक्ति का स्वरूप आदि विषयों पर सहजोबाई जी के विचार इस ग्रंथ के उत्तरखण्ड में अभिव्यक्त हुए हैं। यहाँ एक उल्लेखनीय बात यह है कि इस संग्रह में वे सगुण-साधिका या शुकसंप्रदाय-पोषित राधा-कृष्ण युगलो-पासिका के रूप में मात्र कुछ ही पदों में दिखाई देती हैं। उनका 'सहजप्रकाश' उन्हें कबीर, दादू, रैदास और गुरुनानक जैसे संतों की कोटि में रखने वाला सिद्ध हुआ है। मात्र अंतर इतना ही है कि उन्होंने पुनर्जन्मवाद, स्वर्ग-नरकवाद और श्रीकृष्ण में ब्रह्मत्व आदि का वैसा निषेध नहीं किया है, जैसा उक्त संतों के काव्य में मिलता है।[2]

---

१. गुरु अस्तुति के करन को, उपज्यौ हिये हुलास।
होते होते हो गई, पोथी सहज प्रकाश॥
—सहजप्रकाश : पृ० ९६।

२. नेति नेति कहि वेद पुकारे। सो अधरन पर मुरली धारे॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० २०१९ वि० में महंत गंगादास जी द्वारा सम्पादित एवं दिल्ली से प्रकाशित 'सहजप्रकाश' में उनके द्वारा स्वतन्त्र रूप से रचित दो लघु ग्रन्थों का भी समावेश है, जिनके नाम हैं—(१) सोलह तिथि निर्णय और (२) सातवार। इन दोनों की पाण्डुलिपियाँ नागरीप्रचारिणी सभा-काशी, महंत प्रेमदास जी (गद्दी रामरूप जी, दिल्ली) तथा महंत गंगादास जी (दिल्ली) के यहाँ प्राप्त हैं। इन स्थानों पर सहजोबाई जी के कुछ फुटकल पद भी हैं।

'सहजप्रकाश' में महंत गंगादास (सम्पादक) ने 'सोलहतिथि' और 'सातवार' के साथ बाई के ३९ पदों को भी स्थान दिया है। फिर भी इनकी कुछ स्फुट बानियाँ अभी अप्रकाशित रूप में पड़ी हुई हैं।

गुरु को हरि से भी श्रेष्ठ बताते हुए सहजोबाई जी का तर्क है कि हरि ने मानव प्राणी के साथ पाँच चोर लगा दिया, गुरु ने उनसे साधक को मुक्त कराया; हरि ने उसे कुटुम्ब के जंजाल में फँसा दिया, गुरु ने ज्ञान देकर उसकी ममता की बेड़ियाँ काट दीं; हरि ने रोग-भोग में उलझाया, योगी गुरु ने उससे भी छुड़ाया; हरि ने कर्म और भ्रम के जाल में फँसाया, गुरु ने आत्मरूप का दर्शन कराकर उससे भी मुक्ति दिलाई। इतना ही नहीं बल्कि—"हरि ने मोसूँ आप छिपायो, गुरु दीपक दे ताहि दिखायो।" इसलिये उनका निश्चय है कि—

चरणदास तन मन सब वारूँ। गुरु न तजूँ हरि को तज डारूँ॥
राम तजूँ पर गुरु न बिसारूँ। गुरु के सम हरि को न निहारूँ॥
हरि ने जन्म दिया जग माहीं। गुरु ने आवागमन छुड़ाई॥[1]

गुरु पूरा या पहुँचा हुआ हो पर शिष्य में ही खोट हो तो गुरु क्या करेगा? इसलिये शिष्य को भी पूर्ण समर्पण भाव से गुरु की सेवा में जाना चाहिए। उन्होंने शिष्यों की तीन कोटियाँ बताई हैं—

सिख माटी सिख पाथरा, सिख लकड़ी सम जोय।
सहजो गुरु पारस मिले, कैसे कंचन होय॥[2]

सहजप्रकाश के एक दोहे में क्रम से बालक के गर्भ में आने से लेकर मृत्युपर्यन्त

जाकूँ ब्रह्मादिक मुनि ध्यावें। ताहि पूत कह नंद बुलावें॥
शिव सनकादिक अंत न पावै। सो सखियन संग रास रचावै॥
निराकार निर्भय निर्वाणा। कारन संत धरे तन नाना॥
—सहजप्रकाश : पृ० ९३।

१. वही : पृ० ८–१०।
२. वही : पृ० ३३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने वाले कष्टों की ओर ध्यान दिलाया गया है। बालक, किशोर, युवा और वृद्धावस्था में क्या शारीरिक और मानसिक कष्ट सबको झेलने पड़ते हैं, उनका इतना सजीव चित्रण कवयित्री ने इस कृति में किया है कि उसके पढ़ने और मनन करने वाले के मन में वैराग्य की ओर स्वतः आकर्षण बढ़ जाता है। गर्भस्थ शिशु और मरणोपरान्त होने वाली यम-यातना का इन्होंने इतना भयावह चित्र खींचा है कि ध्यान से इसे पढ़ने पर कुछ समय के लिए जीवन के प्रति मोह प्रायः समाप्त ही हो जाता है। अकालमृत्यु यथा शस्त्र से, कुपथ्य के कारण बिगड़े रोग से, विष खा लेने से, अग्निदाह से, जल में डूबने से, प्रेतबाधा या साँप के काटने से, महल के नीचे दब जाने से, ठगों द्वारा फाँसी लगाकर मार डाले जाने से और पशुओं द्वारा मारे जाने आदि से होनेवाली मृत्यु के बाद कुम्भीपाक आदि नर्कों में प्रेत की जो दुर्दशा होती है, उसका ऐसा चित्र इस कृति में प्रस्तुत किया गया है कि वह अत्यन्त सन्त्रासदायक हो गया है। मरणोपरान्त फिर मनुष्य की काया कब मिलेगी, इसे कौन जाने? इसके पहले ९ लाख जलजीवों की, १० लाख पक्षियों की, ११ लाख कृमिकीटों की, २० लाख स्थावरों की, ३० लाख पशुओं की और ४ लाख मानव देहियों की अर्थात् कुल ८४ लाख योनियों की मंजिल तय करनी पड़ेगी तब कहीं सुन्दर-स्वस्थ एवं भजनानन्दी मानव शरीर की प्राप्ति सम्भव होगी। इसी प्रकार सम्बन्धों की स्वार्थपरता भी वैराग्यमूलक ही है।[1] सहजोबाई ने आडम्बरी साधक को साधु नहीं माना है। उनके विचार से साधु का लक्षण इस प्रकार है—

जो सोवे तो शून्य में, जो जागे हरिनाम।
जो बोले तो हरि कथा, भक्ति करे निष्काम॥
तीनों बन्ध लगाय कर, अनहद सुनै टकोर।
सहजो सुन्न समाधि में, नहीं साँझ नहिं भोर॥[2]

अतः कवयित्री के विचार से जगत् की अनित्यता और सामाजिक सम्बन्धों के छलपूर्ण व्यवहार को देखते हुए हरि से ही प्रेम करना अधिक उपयोगी है। जब तक हम ऐसा नहीं करते अपनी कल्याण-कामना के प्रति आशावान कैसे हो सकते हैं? यहाँ सहजोबाई जी का यह सन्देश ध्यान देने योग्य है—

---

१. दरद बटाय सके नहीं, मुए न चाले साथ।
सहजो क्यों करि आपने, सब नाते बरबाद॥
सहजो धन मागे कुटुंब, गाड़ा धरा बताव।
जो कुछ है सो दे हमें, फिर पाछे मरिजाव॥
—सहजप्रकाश : पृ० ४६।

२. वही : पृ० ४२ तथा ४४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे हुए सो जा चुके, तू भी रहै न कोय।
सहजो पर को क्या झुरे, आपन ही को रोय ॥[1]

× × ×

मोह मिरग काया बसै, कैसे उपजै खेत।
जो बोवै सोई फरै, लगै न हरि सों हेत ॥[2]

अतः मोह-ममता, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि त्याग कर भगवन्नाम का ऐसा स्मरण करना चाहिए कि वह प्रदर्शन की वस्तु न बन जाय।

राम नाम यों लीजिए, जाने सुमिरनहार।
सहजो कै करतार ही, जाने ना संसार ॥[3]

सहजो के भगवान् निर्गुणात्मक सगुण ब्रह्म हैं। वे आवश्यकता पड़ने पर अवतार भी धारण कर लेते हैं, इसलिए वे निर्गुण-सगुण को अलग-अलग नहीं मानती हैं। उनके विचार से दोनों एक ही तत्व के दो स्वरूप हैं—

निराकार आकार सब, निरगुन अरु गुणवन्त।
है नाहीं सूँ रहित है, सहजो वह भगवन्त ॥

× × ×

निर्गुण से सर्गुण भयो, सन्त उधारनहार।
सहजो की डंडोत है, ताको बारम्बार ॥

× × ×

निर्गुण सर्गुण भेद न दोई। आदि अन्त मधि एकहि होई ॥[4]

यह आश्चर्य की बात है कि सहजोबाई 'सहजप्रकाश' में कृष्णोपासिका होने की झलक तक नहीं देती हैं। इस दृष्टि से वे अपने गुरु और उनके सम्प्रदाय की मान्यताओं से कुछ अलग दिखाई देती हैं। उन्हें इस बात का खेद है कि कृष्ण को नन्द का पुत्र और वंशी के बजाने वाले कहकर लोग उनके ब्रह्मत्व का विस्मरण कर देते हैं।[5] यह तो सन्त कबीर की शैली की उक्ति हो गई, जिसमें राम

---

१. सहजप्रकाश : पृ० ५१।
२. वही : पृ० ८१।
३. वही : पृ० ७९।
४. वही : पृ० ९१।
५. नेति नेति कहि वेद पुकारे। सो अधरन पर मुरली धारे।
जाकूँ ब्रह्मादिक मुनि ध्यावैं। ताहि पूत कहि नन्द बुलावैं ॥
—वही : पृ० ९३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दशरथसुत कहे जाने के लिए दुःख व्यक्त किया गया है। उन्होंने इसीलिए अपनी साखियों में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन प्रायः नहीं किया है। परन्तु 'सहजप्रकाश' में संकलित अनेक पदों में श्री राधा-कृष्ण का लीलागान भी मिलता है।

(२) सोलह तिथि—उनके १६ तिथि नामक ग्रन्थ में १६ कुण्डलियों का समावेश है। अमावस्या से आरम्भ करके पूर्णिमा तक १६ तिथियाँ होती हैं। प्रत्येक तिथि के नाम से उनके द्वारा एक बोधात्मक कुण्डलिया रचित है। इस कृति का मुख्य उद्देश्य ज्ञानोपदेश देना है। छंदों की सानुप्रासिकता बड़ी ही मधुर बन पड़ी है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

एकम्— पड़वा पानी का सा बुलबुला, यह तन ऐसा होय।
पीय मिलन की ठानिये, रहिये ना पड़ि सोय॥
रहिये ना पड़ि सोय बहुरि नहीं मानुस देही,
आपन ही कूँ खोज मिलै जब राम सनेही॥
हरि को भूले जो फिरें सहजो जीवन छार।
सुखिया तब ही होयगा सुमिरेगा करतार॥[1]

(३) सातवार—इसमें मंगल से आरम्भ करके सोमवार तक के सातों दिनों के लिए ७ कुण्डलियों द्वारा ज्ञानोपदेश प्रस्तुत किया गया है। इन कुण्डलियों का आरम्भ भी वार या दिन के आदि शब्द से ही हुआ है, यथा—

मंगल माली राम है, जाका यह सब बाग।
निसि दिन ताही से रहे, वाही सेती लाग॥

× × ×

बुध वाड़ी में फल घने, जो पै देवै बाड़।
रखवाली के बिन किये, पाँचों करै उजाड़॥[2]

सभी कुण्डलियों की अन्तिम पंक्ति 'चरणदास कहे सहजिया' से आरंभ होती है।

(४) शब्द—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'सहजप्रकाश' में साखियों के अतिरिक्त सहजोबाई जी के ३९ पदों का भी समावेश है। यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, बल्कि कवयित्री द्वारा समय-समय पर रचे गये स्फुट पदों का संग्रह मात्र है। ये पद राग गौरी, सोरठ, मल्हार, बिलावल, काफी, आसावरी, बसन्त, धनाश्री, होली, ललित आदि में रचित हैं। अधिकांश पद निर्गुण सन्त कवियों की शैली में हैं। जैसे—'बाबा कायानगर बसाओ। ज्ञान दृष्टि से घर में देखो सुरत निरत मन लाओ॥'

---

१. सहजप्रकाश : पृ० ९७।
२. वही : पृ० १०४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा—

मिलि गाओ साधो यह बसन्त, है अविगत लीला अगम पन्थ ।
जहाँ नाम पदारथ है इकंग, नहिं पइहै दूजा और रंग ।।[1]

इसके आरम्भ के कुछ पद गुरु की जन्म-लीला बधाई के रूप में रचित हैं। अपवाद के रूप में इनका एक पद ऐसा भी है, जिसमें श्रीकृष्ण के नृत्य करते हुए रूप का चित्र अंकित है, जो इस प्रकार है—

मुकुट लटक अटकी मन माहीं,
नृत्यत नटवर मदन मनोहर
कुण्डल झलक अलक बिथुराई ।
नाक बुलाक हलत मुक्ताहल ।
होंठ मटक गति भौंह चलाई ।
ठुमुक ठुमुक पग धरत धरनि पर,
बाँह उठाइ करत चतुराई ।
झुनुक झुनुक नूपुर झनकारत,
ताताथेई रिझत रिझाई ।
चरणदास सहजो हिय अन्तर,
भवन करो नित शुक मुनि राई ।।[2]

इनका भाषा के ऊपर अद्भुत अधिकार है। इनकी काव्य-भाषा की प्रांजलता और प्रवाहमयता प्रशंसनीय है। छंदों में भर्ती के शब्दों अथवा निरर्थक शब्द-प्रयोगों और मात्रा-दोषों का सर्वथा अभाव है। साखियों की भाषा मुख्यतः खड़ी-बोली है। पदों में विषयानुसार ब्रजभाषा, खड़ीबोली और मिश्रभाषा का प्रयोग किया गया है। उर्दू-फारसी के चलते शब्दों से इन्हें कोई परहेज नहीं था और उनमें अलंकारों के प्रति कोई मोह भी नहीं था। वे आवश्यकतानुसार स्वतः आते गये हैं, इसीलिए उनकी उक्तियाँ अत्यंत हृदयग्राही हो गयी हैं। उनकी बानियों में स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिलता है।

उनके गद्य में मध्यकालीन सानुप्रासिक और तुकान्त शैली का बहुत सुन्दर प्रयोग मिलता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

द्वादश प्रकार के संत वचन—

मधुरी बोली[1], चटपटी बोली[2], अमृत बोली[3]।
शीतल सुगंध बोली[4], सरल बोली[5], कोमल बोली[6] ।।

---

१. सहजप्रकाशः पद सं० १३ और १८ ।
२. वही : पृ० ११२–११३ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विघ्न विदारक बोली[७], भर्म निवारण बोली[८]।
शुद्ध सुख सज्जन बोली[९], भक्ति दृढ़ावन बोली[१०] ।।
स्थिर बोली[११], साँची बोली[१२] ।।[१]

इसी प्रकार द्वादश प्रकार के 'दुष्ट-वचन' भी गद्य में ही प्रस्तुत किये गये हैं। यद्यपि इनकी बानियाँ परिमाण में अपने अन्य गुरुभाइयों की अपेक्षा कम ही हैं, तथापि गुणात्मकता और प्रभावशीलता में इनका स्थान सर्वोपरि माना जाता है। उन्होंने अपनी साधनामूलक एवं काव्यजनित उपलब्धियों के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य के परवर्ती संत एवं भक्ति साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। उनके पिता तथा चारों भाइयों और उनकी शिष्य परम्परा में हुए कई कवियों ने हिन्दी साहित्य की गौरव-अभिवृद्धि में उल्लेखनीय योगदान दिया है। सहजोबाई जी की साधनागत उपलब्धियों तथा काव्यरचना-कुशलता की ओर इंगित करते हुए वर्तमान काल के शुकसंप्रदायाचार्य श्री सरसमाधुरीशरणजी का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है—

नमो नमो श्री सहजोबाई।
स्वतः सिद्ध सखि रूप अनूपम बानी 'सहजप्रकाश' बनाई ।।
गुरु महिमा प्रेमा परामक्ति अरु अनन्यता की रीति दिखाई।
रसिकन मन मानी अरु रसखानी परम अलौकिक लीला गाई ।।
गुरु भक्ती में परम सिरोमनि चरणदास स्वामी मन भाई।
सरसमाधुरीशरण जान निज करुणाकर लीजिअ अपनाई ।।[२]

२. अगमदास और उनका साहित्य—सुश्री सहजोबाई के शिष्य श्री अगमदास जी का 'बानी' शीर्षक एक लघु ग्रन्थ दिल्ली के महंत गंगादास और जयपुर के सरसकुंज के ग्रन्थागार में देखने को मिली थी। दिल्ली के ही महंत प्रेमदास के यहाँ भी जिल्द सं० ४० में अगमदास की कुछ बानियाँ संगृहीत हैं, जिनका शीर्षक 'कवित्त' है। 'बानी' में १० पद और १० कवित्त संगृहीत हैं। इन बानियों का मुख्य विषय चेतावनी, उपदेश और लीला-वर्णन है। इनकी भाषा खड़ीबोली है, जिसमें सरलता, सरसता और प्रवाह मुख्य विशेषता के रूप में है। इनके दो चेतावनीपूर्ण कवित्त इस प्रकार हैं—

जगत है सराय इक रैन का बसेरा तामें,
एरे अयान तूँ गाफिल मत होवे रे।
पंथ डर भारी तोकों चलना अनारी,
अब चेत ले सबारी क्यूँ मोह नींद सोवै रे ।।

---

१. सहजप्रकाश : पृ० ३५।
२. शुकसंप्रदाय वाणीप्रकाश : श्री जगदीश राठौड़ की पाण्डुलिपि से साभार।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच बटमारे मन लूटैं मतवारे मिल,
साध संग प्यारे चलो औसर मत खोवै रे।
वेग करौ सामो अगमदास जप नामो,
ज्यों पहुँचौ हरिधामो अब निर्भै पद पावै रे।।

× × ×

बोलत है टेढ़ बैन अँकड़ो रहै दिन रैन,
मूँछन मरोर चलै बौरा भयो मान सूँ।
देह को सिंगार करै कुटिलता हिये धरै,
चीते की सी घात चित स्वारथ पहचान सूँ।।
आपन कौं अधिक देखे औरन को न्यून पेखे,
साधुन की निंदा करे विमुख गुरु ज्ञान सूँ।
हरि कूँ नहिं नाम लेवै भूतन कूँ बहुत सेवै,
अगमदास निकसै नाहिं ऐसे नरक खानि सूँ।।[1]

यद्यपि इनकी 'बानी' के प्रायः सभी पद्य ज्ञान, वैराग्य, योग और चेतावनी आदि विषयक हैं परन्तु इनमें से कुछ पद कृष्ण और राधा के सौन्दर्य-वर्णन और लीला-वर्णन से भी संबद्ध हैं। इनके दो पदों में राधा-कृष्ण और गोप-गोपियों के समवेत होली खेलने का विस्तृत चित्रण है। श्री कृष्ण की बाँकी शोभा का एक शब्द-चित्र द्रष्टव्य है—

वह छवि अँटकी मेरे मन में।
नील सरोज श्याम अति सुन्दर कोटि इन्दु द्युति उदित बदन में।।
मोर मुकुट सिर ऊपर सोहे मकराकृत कुण्डल सरवन में।
नाक बुलाक अलक घुँघरारी कर मुरली राजत अधरन में।।
दृग विसाल अरुण कजरारे चित चोरे बाँकी चितवन में।
भाल तिलक गल में बनमाला सुभग पीतपट खुभी जु तन में।।
नख सिख भूषन सजे हैं आली सुन्दर भेष बनावे बन में।
सम शोभा बरनूँ क्या प्यारे की सीमा सुन्दरता की नाहिं मदन में।।
अगमदास नन्द-नन्दन ऊपर सरबस वारों कर दरशन में।।[2]

अगमदास जी का एक बानी संग्रह वृन्दावन के बाबा मुकुन्द शरण जी के

---

१. पाण्डुलिपि के आधार पर उद्धृत।

२. यह पद श्री रूपमाधुरी जी द्वारा संकलित एवं प्रकाशित 'श्रीचरनावत वैष्णव वर्षोत्सव' के पृ० १०६ पर संगृहीत है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ के पृ० ६८, ७१ और १०७ पर भी अगमदास जी के कुछ लीलागान संबंधी पदों का संग्रह है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ है। इस संग्रह में ७० दोहे-चौपाइयों का एक स्वतंत्र अंग है, जिसका शीर्षक 'गुरु महिमा का अंग' है। इसके उत्तरार्द्ध में 'बारहखड़ी' (अ से ऋ तक) नामक १२ कुण्डलियों का एक स्वतंत्र शीर्षक से युक्त लघु रचना संगृहीत है। 'बारह-मासिया' नामक एक अन्य स्वतंत्र कृति में विरह भाव से युक्त १२ पद समाविष्ट हैं। इस संग्रह में इनका एक गजल भी प्राप्त है, जो इस प्रकार है—

कठिन है इश्क प्यारे का, हो जैसे खांड़ा दुधारे का।
जहाँ नहिं काम कायर का, अड़े कोई सूरमां बाँके॥
फँसे नहिं जगत के धंधे, लगन की डोर से बँधे।
भये हैं कृष्ण के बदे, गये दरबार के नाँके॥
महर कर गुरू बतलावे, प्रेम का पंथ तब पावे।
जो तन मन लोभ छिटकावे, अगमदासा हो उस ठाँके॥[1]

इस संग्रह में इन रचनाओं का लिपिकाल सं० १८५० वि० अंकित है। संभवतः यही इसका रचना काल भी है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि कवि का काव्यसृजन-काल सं० १८५० वि० के आस पास है।

श्रीमद्भागवत भाषा—

चौपाई और दोहे में श्रीमद्भागवत के प्रथम और द्वितीय स्कंध के अगमदास जी द्वारा किये गये अनुवाद की पाण्डुलिपि मुझे महंत प्रेमदासजी के पुस्तकागार में देखने को मिली थी। इसमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है। इसके प्रतिलिपि कर्त्ता निर्मोही जी के शिष्य श्री श्याममनोहर जी हैं। इस ग्रन्थ के प्रथम स्कंध में १९ और द्वितीय में १० अध्याय हैं। आरंभ और अंत की इसकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

आरंभ—हे नृप प्रश्न श्रेष्ठ है भारी, सकल लोक को मंगल कारी।
ज्ञान के सम्मित है पुनि, सुनिबे के लायक तातें सुनि॥

अंत—श्री प्रियादास रस रास की, पाय कृपा रस जानि।
अगम कियो निपढ़ें-सुगम, दुतिय स्कंध या जानि॥

वहीं श्याम मनोहर जी की निवेदनपरक उक्ति भी द्रष्टव्य है—

श्री निर्मोही अगमदास को, ध्यान हृदय में धारि।
तिनकी किरपा सों लिख्यो, दुतिये स्कंध सँवारि॥
सहजोबाई प्रथम गुरु, अगमदास गुरु देव।
श्याम मनोहर दीन कूँ, देहु भक्ति को भेव॥

इस ग्रन्थ के आदि या अन्त में रचनाकाल और लिपिकाल का निर्देश नहीं है।

---

१. शुकसंप्रदाय वाणीप्रकाश (पाडुलिपि) : पृ० १५४–५५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगमदास निर्मोही के एक शिष्य श्री मोहनदास की 'ज्ञानपचीसी' नामक रचना की हस्तलिखित प्रति श्री सरसकुंज-जयपुर में है। इसकी दूसरी प्रति 'बानी' शीर्षक से दिल्ली के महंत गंगादास के यहाँ देखने को मिली थी।

३. कर्त्तानन्द जी का साहित्य—सुश्री सहजोबाई के वरिष्ठ एवं गुरुभक्त शिष्य श्री कर्तानन्द जी संस्कृत के अच्छे विद्वान् और कथावाचक थे। खड़ी बोली और ब्रजभाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था। एकादशी माहात्म्य (र० का० सं० १८३२) इनकी प्रथम कृति है। अब तक कर्तानन्दजी की ४ कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—(१) एकादशी माहात्म्य, (२) माघ माहात्म्य, (३) वैसाख माहात्म्य (भाषा) और (४) भूगोल पुराण। इनमें से प्रथम तीनों को प्रबंध काव्य की श्रेणी में समझना चाहिये। इन्होंने 'एकादशी माहात्म्य' में गुरु के प्रति इन शब्दों में आभार व्यक्त करते हुए अपनी गुरुभक्ति निवेदित की है—

सतगुरु सहजो जानिये, कर्तानंद के ईश।
उनके चरणों में सदा, वारूँ तनमन शीश॥
तुम चरणन की कृपा तें, पाया सब कुछ ज्ञान।
कर्तानन्द अधीन था, मूरख निपट अजान॥

१. माघ माहात्म्य सार—इस कृति में 'पद्मपुराण' के उत्तर खण्ड के २४-२५वें अध्याय से सूत और व्यास जी तथा वशिष्ठ-दिलीप-संवाद की कथा ली गयी है। इसका रचनाकाल भाद्रपद सुदी ७ शुक्रवार सं० १८४३ है और लिपिकाल सं० १८६६। इसके लिपिकर्त्ता परमेश्वरी दास जी के शिष्य जमुनादास जी हैं। इसका विस्तार ६ × ८" है और इसकी पत्र संख्या ५२ तथा पृष्ठ संख्या १०४ है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ पर १७ पंक्तियाँ लिखी गई हैं। पूरा ग्रंथ १० अध्यायों में विभक्त है। इसका मुख्य छंद चौपाई और दोहा है। प्रतिलिपिकर्त्ता की असावधानी के कारण ह्रस्व-दीर्घ मात्रा-दोष के साथ ही कहीं-कहीं अक्षरों और शब्दों के छूट जाने से छंदभंग हुआ दिखाई देता है। यह मूलकृति का पंक्तिशः अनुवाद न होकर भावानुवाद मात्र है। इसमें प्रकृतिवर्णन एवं घटनाओं का वर्णन तो रोचक है ही, साथ ही सुन्दर स्वतंत्र कथाओं का भी समावेश है। दिलीप की कथा इसका मुख्य कथ्य है। इसकी भाषा परिष्कृत एवं उत्प्रेक्षा तथा दृष्टान्त अलंकारों से भरपूर है। इसका एक वर्णन इस प्रकार है—

दोहा—तीरथ विमल बिलोक तप, पादप सघन निहारि।
जलज पुंज विकसे जहाँ, गुंजत मधुकर कारि॥ १।१४॥
चौ०—कँवल पत्र तहँ दीख सुहाये, मरकत मणि सम कहि कवि गाये।
नीर अगाध मक्ष रहें जैसे, साध मनोरथ रहै जु तैसे॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहरन के जो विलास विचारा, मानो दूसर सिंधु अपारा।
तिन्हके मध्य ग्राह बहु रहई, दुष्टन के मन जिमि कवि कहई ॥
कहूँ सिवार छाय जल रहेंऊ, किरपन के मंदिर सम कहेऊ ॥
नाना खग मृग जे बन केरे, जल बिन जे दुख भये घनेरे ॥
सुषी भये ते खग मृग कैसे, सूर उदै नासै तिम जैसे ॥
दो०—सर देखत नृप के मन, आनंद बढ़ो अपार।
जिमि चातक घन निरखिकरि, करतानंद विचार ॥ १–९६ ॥

उन्होंने इस ग्रंथ के आरम्भ में शुकदेव जी और चरण दास जी के साथ ही अपने सिद्ध गुरु सहजोबाई जी की बड़े ही श्रद्धापूर्वक स्तुति की है। उन्हें मीराबाई और करमाबाई के समकक्ष बताते हुए अपने ज्ञान का स्रोत उन्हें ही बताया है।[1] इसका कथा प्रवाह प्रशंसनीय है। इसकी एक पांडुलिपि महंत गंगादास के यहाँ, दूसरी श्री प्रेमस्वरूप ब्रह्मचारी (वृंदावन) तथा तीसरी श्री रूपमाधुरी जी (वृन्दावन) के यहाँ उपलब्ध है। इस प्रकार इसकी तीन पाण्डुलिपियाँ ज्ञात हैं। कवि कर्त्तानन्द की रचना शैली पर 'रामचरितमानस' का प्रभाव दिखायी देता है।

२. **एकादशी माहात्म्य कथा**—इसका कथानक भी 'पद्मपुराण' उत्तर खण्ड, अध्याय ३९ से ६४ तक में समाविष्ट कथा-भाग से लिया गया है। इसमें ५ × ६" विस्तार के ११९ पत्र अथवा २३८ पृष्ठ हैं। यह पांडुलिपि स्व० महंत गंगादास जी के पुस्तक भंडार में सुरक्षित है। यह ग्रंथ मुख्यतः चौपाई-दोहा छंद में रचित है। चौपाइयाँ नीली स्याही से और दोहे लाल स्याही से लिखे गये हैं। इसमें भी वक्ता-श्रोता क्रमशः शंकर-पार्वती और शौनक तथा कृष्ण-अर्जुन या धर्मराज-कृष्ण आदि हैं। इनके संवाद के रूप में पौराणिक पद्धति से कथानक को प्रस्तुत किया गया है। कितनी अर्द्धालियों के बाद एक दोहा आएगा, इसका क्रम निश्चित् नहीं है। इसमें पूर्ण विराम चिह्न लाल स्याही से अंकित किये गये हैं। एक वर्ष में कुल २४ एकादशियाँ होती हैं। मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की एकादशी से कथा का आरम्भ हुआ है। आरम्भ में एक कथा है और उसके अन्त में विस्तार से कोई विशिष्ट उपदेश दिया गया है। इसमें एकादशी के व्रती के लिए आचार-विचार और खान-पान का विधान इस प्रकार बताया गया है—

दसमी को जल गरम नहावै, भूल तेल कहुँ गात न लावै।
एक वार ही भोजन करे, जगत काम मनसूँ परिहरे ॥

---

१. मीरा करमा से अधिक, सहजो मम गुरु जान।
उनकी कृपा कटाक्ष तैं, पाया मैंने ज्ञान ॥
—माघ माहात्म्य (पाण्डुलिपि) : पृ० २।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैंगन, चना न मसुरी खावै, हींग अचार के निकट न जावै ।।
फूल न सूँघे गंध न लावे, इस्त्री से नहिं सेव करावे ।
काम क्रोध मोह लोभ न कीजै, परनिंदा मन सूँ तज दीजै ।।

२४ एकादशियों में से प्रायः सबके विशिष्ट नाम भी दिये गये हैं, जैसे अगहन वदी एकादशी को बोधिन्या, अगहन सुदी एकादशी को मोक्षिणी, पौष कृष्ण एकादशी को सुफला और शुक्लपक्ष की एकादशी को पुत्रदायिनी आदि ।

इस व्रत की फलश्रुति इस प्रकार है—

कनकदान भूमि के दिये, सो फल होय एकादशी किए ।
या व्रत कूँ जु करै नर नारी, मनोकामना पावै सारी ।।
कन्या अति सुन्दर बर पावैं, बंझा गोदी पुत्र खिलावैं ।।

इस ग्रंथ की तीन पांडुलिपियाँ प्राप्त हैं, जिनमें से प्रथम दिल्ली में और अन्य दो वृन्दावन में हैं । इसका रचना-काल माघसुदी ९, सं० १८३२ वि० है ।

३. वैसाख माहात्म्य इसकी पाण्डुलिपि वृंदावन के स्व० महन्त रूपमाधुरी जी के यहाँ सुरक्षित है । यह स्कन्ध पुराण के वैशाख माहात्म्य की पद्यबद्ध भावात्मक टीका है । इसके श्रोता-वक्ता सूत, अम्बरीष और नारद हैं । इसका रचना-काल पाण्डुलिपि में अंकित नहीं है । अनुमानतः यह सं० १९४० वि० के आस-पास की रचना है । प्राप्त पाण्डुलिपि का लिपिकाल सं० १९०० वि० है । मुख्यतः चौपाई, दोहा और सोरठा छंदों में इस ग्रंथ की रचना की गई है । इसकी भाषा खड़ीबोली मिश्रित व्रजभाषा है । पूरा ग्रंथ २४ अध्यायों में विभक्त है । अंत में बद्रिकाश्रम की प्रशस्ति है । भाषाप्रयोग पंडिताऊ है । इसमें पुराणों की भाँति प्रलोभन और भय की अतिशयोक्तिपूर्ण पद्धति अपनायी गयी है । जो विधि-विहित ढंग से आचरण करे वह नानाप्रकार की अनुकूल फलश्रुतियों से पूर्ण हो और जो न करे वह नरक आदि में जाकर नाना प्रकार के कष्ट भोगे । इस रचना में सूचित विधि से पूरे मास तक व्रतोपवास आदि करने का फल खूब बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है । इसकी इस शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

स्नान निमित एक पैड़ हूँ, वैसाख मास में जाय ।
करतानंद असमेध जज्ञ, दसहजार फल पाय ।।

अर्थात् वैशाख-स्नान के निमित्त एक कदम चलने वाला भी एक अश्वमेध का फल प्राप्त कर लेता है । यह है इस माह के स्नान का फल ! इसके आरंभ में श्री शुकदेव, चरणदास जी और सहजोबाई जी की स्तुति की गयी है । अन्त में पाठकों को पुस्तक को लिखने और इसकी पूजा करने का निर्देश देते हुए कवि ने अपने गुरु के प्रति निम्न शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित की है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक लिखि घर धरै, पूजे जो मन लाय।
भुक्ति मुक्ति पावै सदा, कहै करतानंद गाय ॥
सहजो के परताप सूँ, बरनौं यह इतिहास।
करतानंद के हिये में, कीने आप प्रकाश ॥

४. **भूगोल पुराण**—इसकी चौथी रचना भूगोलपुराण या भोगलपुराण के नाम से मिलती है। इसका रचनाकाल अज्ञात है। इसकी पांडुलिपि दिली के महंत प्रेमदास के पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसका लिपिकाल सं० १८७४ वि० है। इसके लिपिकर्त्ता श्यामविलास जी के प्रशिष्य महन्त जमुनादास जी हैं। यह भी 'पद्मपुराण' और 'स्कन्धपुराण' के भूगोल वाले अंश का भावानुवाद है। यह गद्य और पद्य दोनों में रचित है। कलियुग-वर्णन इसका मुख्य कथ्य है। इसमें शिव और पार्वती के संवाद की शैली में पृथ्वी के आकार और इस पर हुए सृष्टि-क्रम का वर्णन किया गया है। यह मात्र १० पन्नों का ग्रंथ है। मध्यकालीन गद्य-रचना का इसमें बहुत अच्छा स्वरूप देखने को मिलता है।

४. **रामप्रसाद जी**—जैसा कि पहले ही सूचित किया जा चुका है, ये भी सहजोबाई जी के प्रिय एवं विद्वान् शिष्यों में से एक थे। इनकी कृतियाँ अभी तक अनुपलब्ध हैं। इनके २०–२५ फुटकल पद प्राप्त होते हैं, उनमें से नमूने के रूप में निम्न पद द्रष्टव्य है—

(राग भीमपलासी)

बाँसुरी बैरनि दुख दिया रे।
बाट परी अरु गैल न छाँड़ै जारत नित्य हिया रे ॥
देह थकित मन बस नहिं मेरे ना जानूँ यह काह किया रे।
सूख गयो सिगरो मुख पिय को अधरन रसहिं पिया रे ॥
रामप्रसाद हा हा हठ माँड़ो नहिं मैं याको कहा जु लिया रे ॥

५ **रामजीदास**—ये स्व० महन्त गंगादास जी के गुरु तथा जमुनादास जी के शिष्य थे। गंगादास जी ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ये भी अच्छी कविता कर लेते थे। गुरु के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्होंने निम्न पद में अपना दैन्य भाव व्यक्त किया है—

सतगुरु मैं तुम पर बलिहारी।
चौरासी में भटकत भटकत आयो सरन तिहारी ॥
जानि अनाथ सरन मोहि लीनो मेटे सकल बिकारी।
नहिं विद्या नहिं तपबल मुझमें हौं अति मूढ़ अनारी ॥
निज चरणों में बासा देकर भव बाधा सब टारी।
जमुनादास गुरु किरपा की रामजीदास भिखारी ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. श्री जानकीदास—ये महन्त रामजीदास के शिष्य तथा महन्त गंगादास के मामा थे। जानकीदास तथा गंगादास—दोनों के गुरु रामजीदास थे। इस प्रकार ये गुरुभाई भी हुए। श्री जानकीदास भी अच्छे कवि थे। इनकी बानियाँ स्व० महन्त गंगादास जी के संग्रह में संगृहीत हैं। इनमें से गुरुमहिमा-मान से सम्बन्धित एक पद इस प्रकार है—

गुरु बिन कौन उतारे पार।
तीक्षन बहु सागर लहरों से कैसे हो निस्तार॥
काम क्रोध मद लोभ आदि जहँ रहे मगर मुख फार।
हो निस्तारा इनसूँ कैसे गुरु ही एक अधार॥
डूबत सो मोहिं आन उबारचो सतगुरु परम उदार।
रामजीदास गुरू चरनन पर दास जानकी वार॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि सहजोबाई जी की शिष्य-परम्परा ने भी उनका अनुगमन करते हुए काव्य की रचना-धारा को अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित किया। इस परम्परा के अन्य कवियों की भी बानियाँ प्राप्त हैं लेकिन स्थानाभाव के कारण उनका परिचय देना यहाँ सम्भव नहीं है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. स्वामी रामरूप जी : उनकी शिष्य-परम्परा और उसका साहित्य —

इनका जन्म सं० १८०१ वि० में इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के जयसिंह पुरा नामक मुहल्ले के एक गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता महाराम जी शाही सेना में नौकरी करते थे। पुत्र का तीन माह तक पालन-पोषण करने के बाद माँ परलोकगत हो गई। बालक की देख-रेख धाय का काम करनेवाली एक ब्राह्मणी की सहायता से की जाने लगी। कुछ ही समय के पश्चात् पं० महाराज दिल्ली के बाहर पूर्व दिशा की ओर शाही सेवक के रूप में नौकरी के लिए चले गए। दो वर्ष तक तो उनका समाचार मिलता रहा परन्तु इसके बाद धात्री को उनसे मिलने वाली वृत्ति बन्द हो गई और उनके जीवित रहने का कोई प्रमाण भी अवशिष्ट नहीं रहा। धात्री-दंपत्ति दिल्ली के निकट स्थित ईसेपुर गाँव के निवासी थे। इन लोगों ने उस बालक को अपने गाँव में लाकर १० वर्ष की अवस्था तक उसका पालन पुत्रवत् किया, लेकिन उसके बाद संयोगवश वे दोनों ही चल बसे। धाय के एक वैष्णव-बन्धु ने उस अनाथ बालक को स्वयं उसके आग्रह पर चरनदास की सेवा में उनके आश्रम में पहुँचा दिया। यह घटना सं० १८११ वि० की है।

भविष्यद्रष्टा गुरु ने बालक के उज्ज्वल भविष्य और प्रखर मेधाशक्ति से प्रभावित होकर सं० १८११ वि० में दीक्षित करके उसे विधिवत् योग, भक्ति और ज्ञानमार्ग की शिक्षा प्रदान की तथा अपने ग्रंथों की प्रतिलिपि का काम सौंपा।[1] आगे चलकर गुरुदेव ने उन्हें 'स्वामी' की पदवी दी और अपना दीवान बना लिया। इस वृत्त का उल्लेख श्री जोगजीत (रामरूप जी के गुरुभाई एवं मित्र) ने इस प्रकार किया है—

पुस्तकालय ग्रंथ की, शोधन सेवा दीन।
चतुर शिरोमणि जानकर, श्री गुरु परम प्रवीन ॥
ग्रंथ सहस्रों शोध करि, रखें सदा तैयार।
जोगजीत बाँटें सदा, भक्तन को करि प्यार ॥

× × +

---

१. अठारह सै अरु ग्यारवें, संवत् की यह बात।
रामरूप भये वैष्णव, छाँड़ि मोह जग जात ॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २३७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु भक्तानंद नाम उजागर। गुरुमुख धर्म गँभीर सुसागर ॥
श्री गुरु कृपा पात्र अति प्यारा। रहे नहीं गुरु से छिन न्यारा ॥

× × ×

पदवी स्वामी की दई, अपने किये दिवान।
प्रेमभक्ति अति ही करे, साँची भक्ति पिछान ॥[२]

इस तथ्य की पुष्टि स्वयं रामरूप जी ने भी इस प्रकार की है—

अपना मंत्री ही किया, दिया निकट विश्राम।
गुरु भक्तानंद नाम रखि, दिया ग्रंथ का काम ॥[३]

शिष्य को सब प्रकार से योग्य जानकर गुरु उनसे पर्याप्त प्रसन्न थे। उनकी अविचल गुरुभक्ति के कारण ही वे 'गुरुभक्तानन्द' के नाम से विख्यात थे। गुरु के द्वारा दीक्षा के समय किये गये नामकरण (रामरूप) की सार्थकता क्रमशः प्रमाणित होती जा रही थी। रामरूप जी सचमुच राम के नाम एवं रूप में लवलीन हो गये थे और खुद को खो चुके थे। गुरु के आदेश से धर्मप्रचारार्थ उन्होंने पर्याप्त भ्रमण किया। दिल्ली वापस आने पर उन्होंने एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया और उसमें श्री राधा तथा रसिक बिहारी जी की युगल मूर्त्ति स्थापित करके वे नवधा भक्ति का पालन करने और कराने में सतत् लगे रहे।[४] इनके आचार-विचार की शुद्धता से गुरुदेव उनपर अत्यंत कृपालु थे। यहाँ तक कि अपनी इहलीला-समाप्ति की पूर्वसूचना उन्होंने प्रथम बार १२ वर्ष पूर्व और दूसरी

---

२. लीलासागर : पृ० २१९।

३. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २३९।

४. दिल्ली आ छतरी बना, पधराये करि प्यार।
सेवा होवे नित जहाँ, दर्श करें नर-नार ॥
—लीलासागर : पृ० २२३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार मृत्यु के दो माह पूर्व केवल उन्हें ही दी थी। इस कथन की पुष्टि 'गुरुभक्ति-प्रकाश' और 'लीलासागर', दोनों ग्रंथों से होती है। उनकी दो काव्य-कृतियों का नामोल्लेख जोगजीत जी ने किया है, जिनके नाम 'गुरुभक्तिप्रकाश' और 'मुक्तिमार्ग' हैं। सम्भवतः अन्य रचनाएँ 'लीलासागर' की रचना के पश्चात् अस्तित्व में आयी हैं।[1]

श्री रामरूप के शिष्यों की संख्या बहुत बड़ी थी। उनके ८२ बानाधारी विरक्त शिष्यों ने विभिन्न स्थलों पर अपने प्रचार-केन्द्र स्थापित किये थे।[2] श्री जोगजीत ने रामरूपजी को ही शुकसम्प्रदाय का प्रवर्त्तक माना है।[3] उनके शिष्यों में सिद्धराम, रामकृपाल, अजपादास और सतवादीराम जी विशेष उल्लेखनीय हैं। ऐसा उल्लेख मिलता है कि उनके ये सभी ८२ शिष्य किसी न किसी थाँभे के महंत थे। उनके गृहस्थ शिष्य-शिष्याओं की भी संख्या कम नहीं थी। स्वामी रामरूप के उन शिष्यों की नामावली यहाँ द्रष्टव्य है, जिनकी गणना उनके ८२ विरक्त और महन्त शिष्यों में की जाती है। इनमें से अधिकांश महात्माओं का वृत्त अज्ञात है। जिनके व्यक्तित्व और थाँभों का वृत्त प्राप्त हो सका है, उनका परिचय देने का यहाँ प्रयास किया गया है। इन नामों में से अधिकांश हरिसम्बन्धी नाम ही हो सकते हैं, क्योंकि दीक्षोपरांत नया नाम देने की इस सम्प्रदाय में प्रथा थी। यद्यपि ८२ शिष्यों की नामावली पूर्णरूप से किसी भी चरणदासी रचना या अभिलेख में प्राप्त नहीं है परन्तु विभिन्न सूत्रों से प्रामाणिक आधार पर जो सूची बन सकती है, वह इस प्रकार है—

स्वामी रामरूप जी के शिष्य

१. महन्त सिद्धराम (दिल्ली, आचार्य गद्दी)
२. ,, प्रेमपूरण जी।
३. ,, मथुरादास जी।
४. ,, रामदास जी।
५. महन्त ब्रह्मनिवास।
६. ,, ज्ञानस्वरूप।
७. ,, व्यापकदास।
८. ,, सुखनिवास।
९. ,, दुखभंजनदास।

---

१. लीलासागर : पृ० २२२।

२. स्वामी रामरूप रँग भीने। शिष्य सेवक अनगिन निज कीने॥
किये बियासी गुणी महंता। साधुन को कछु पार न अन्ता॥
—लीलासागर : पृ० २२२।

३. जग में हरी भक्ति फैलाई। शुक मुनि सम्प्रदाय प्रगटाई॥
—वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०. महन्त रूपदासजी ।
११. ,, रूपानन्द जी ।
१२. ,, भगतगोपाल ।
१३. ,, जयरामदास ।
१४. ,, दीवाराम ।
१५. ,, विवेकदास ।
१६. ,, ज्ञानकिसन ।
१७. ,, परमानंद जी ।
१८. ,, सुमिरानंद ।
१९. ,, मोहनदास जी ।
२०. ,, रामनिवास ।
२१. ,, सनेहीदास ।
२२. ,, दयाराम जी ।
२३. ,, रामधनदास ।
२४. ,, सुखराम जी ।
२५. ,, अलखप्रताप ।
२६. ,, बनखंडीदास ।
२७. ,, रामजीदास ।
२८. ,, संतोसनेही (संतोषशील)
२९. ,, संतसरूप ।
३०. ,, सेवादास जी ।
३१. ,, हरिदयाल ।
३२. ,, हरषराम ।
३३. ,, ग्यानदास ।
३४. ,, मुक्तिनिवास ।
३५. ,, टीकाराम ।
३६. ,, संपतराम जी ।
३७. ,, मोतीराम जी ।
३८. महन्त निरभयराम ।
३९. ,, जीवनराम ।
४०. ,, अजपादास ।
४१. ,, ऋषभदास ।
४२. ,, सुखनंदन (म० सुखनंद)
४३. ,, चेतनराम (चैनराम) ।
४४. ,, छिगनसरूप ।
४५. ,, मधुरदास ।
४६. ,, भगवानदास ।
४७. ,, सतवादीराम ।
४८. ,, श्यामकृपाल ।
४९. ,, भजनदास ।
५०. ,, युगलदास ।
५१. ,, सुरतानन्द ।
५२. ,, विशालदास ।
५३. ,, रामरटा जी ।
५४. ,, मस्तराम जी ।
५५. ,, मुक्तिराम जी (मुकुटराम) ।
५६. ,, श्रीदास (शिवदास) ।
५७. ,, नवलदास ।
५८. ,, रामरला जी ।
५९. ,, विष्नुदास ।
६०. ,, म० गोविन्दराम[1] ।
६१. ,, रामरिझावन ।
६२. ,, मीतदास ।
६३. ,, संतसरन ।
५४. ,, जयरामदास ।
६५. ,, रामकृपाल ।

---

१. सं० १८४२ वि० में लिपिबद्ध स्वामी चरणदास की कृति 'भक्तिसागर' की एक प्रति उन्हें भेंट की गई थी जो इस समय चरणदास जी के तपःस्थल के पुस्तकालय में प्राप्त है। इससे सिद्ध होता है कि ये अच्छे और स्वाध्यायी महात्मा थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६६. महन्त साहबरंग ।
६७. ,, रामसनेही ।
६८. ,, शीतलदास ।
६९. ,, मुक्तदास (मुकुटदास) ।
७०. ,, अमरदास ।
७१. ,, हरनामदास ।
७२. , श्यामदास ।
७३. ,, समरतानंद ।
७४. ,, विनानदास ।[1]
७५. महन्त बुलाकीदास (बालकदास) ।
७६. ,, समीपदास ।
७७. ,, मँगनीराम ।
७८. ,, निगाराम ।
७९. ,, बुधिराम ।
८०. ,, तिरखाराम ।
८१. ,, संतराम जी ।
८२. ,, संगतराम ।

उक्त ८२ शिष्यों में से रामरूप जी द्वारा अपने उत्तराधिकारी स्वामी सिद्धराम जी के पक्ष में सं० १८४१ वि० में किये गये वसीयतनामे (विल) पर कुल ४६ शिष्यों के तथा कुछ अन्य लोगों के हस्ताक्षर हैं ।[2]

१, इसके शिष्य स्वामी हरिदास ने श्री ज्ञानानंद निर्वाणी के ३०० पृष्ठों के 'चौरासी अवतार कथा' को लिपिबद्ध किया था ।

२. स्वामी रामरूप जी के उन शिष्यों की सूची, जिन्होने वसीयतनामे (बिल) पर हस्ताक्षर किये हैं —

१. महन्त सिद्धराम जी ।
२. ,, ब्रह्मनिबास जी ।
३. ,, ज्ञानस्वरूप जी ।
४. ,, व्यापकदास जी ।
५. ,, सुखनिवास जी ।
६. ,, दुखभंजनदास जी ।
७. ,, रूपदास जी ।
८. ,, रूपानंद जी ।
९. ,, भगतगोपाल जी ।
१०. ,, जयजयरामदासजी ।
११. ,, ज्ञानकिसन जी ।
१२. ,, स्मरनानंद जी ।
१३. ,, मोहनदास जी ।
१४. ,, सनेहीदास जी ।
१५. ,, रामधनदास जी ।
१६. ,, सुखराम जी ।
१७. महन्त बनखंडीदास जी ।
१८. ,, रामजीदास ।
१९. ,, संतसरूप जी ।
२०. ,, सेवादास जी ।
२१. ,, मुक्तिनिवास जी ।
२२. ,, टीकाराम जी ।
२३. ,, निर्भयराम जी ।
२४. ,, अजपादास जी ।
२५. ,, सुखनन्दन जी ।
२६. ,, चैनरामजी ।
२७. ,, भगवानदास जी ।
२८. ,, सतवादीराम जी ।
२९. ,, जुगलदासजी ।
३०. ,, विशालदास जी ।
३१. ,, रामरटा जी ।
३२. ,, मुकुटराम (मुक्तिराम) जी ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमत् स्वामी रामरूपजी का शिष्य-वंशवृक्ष

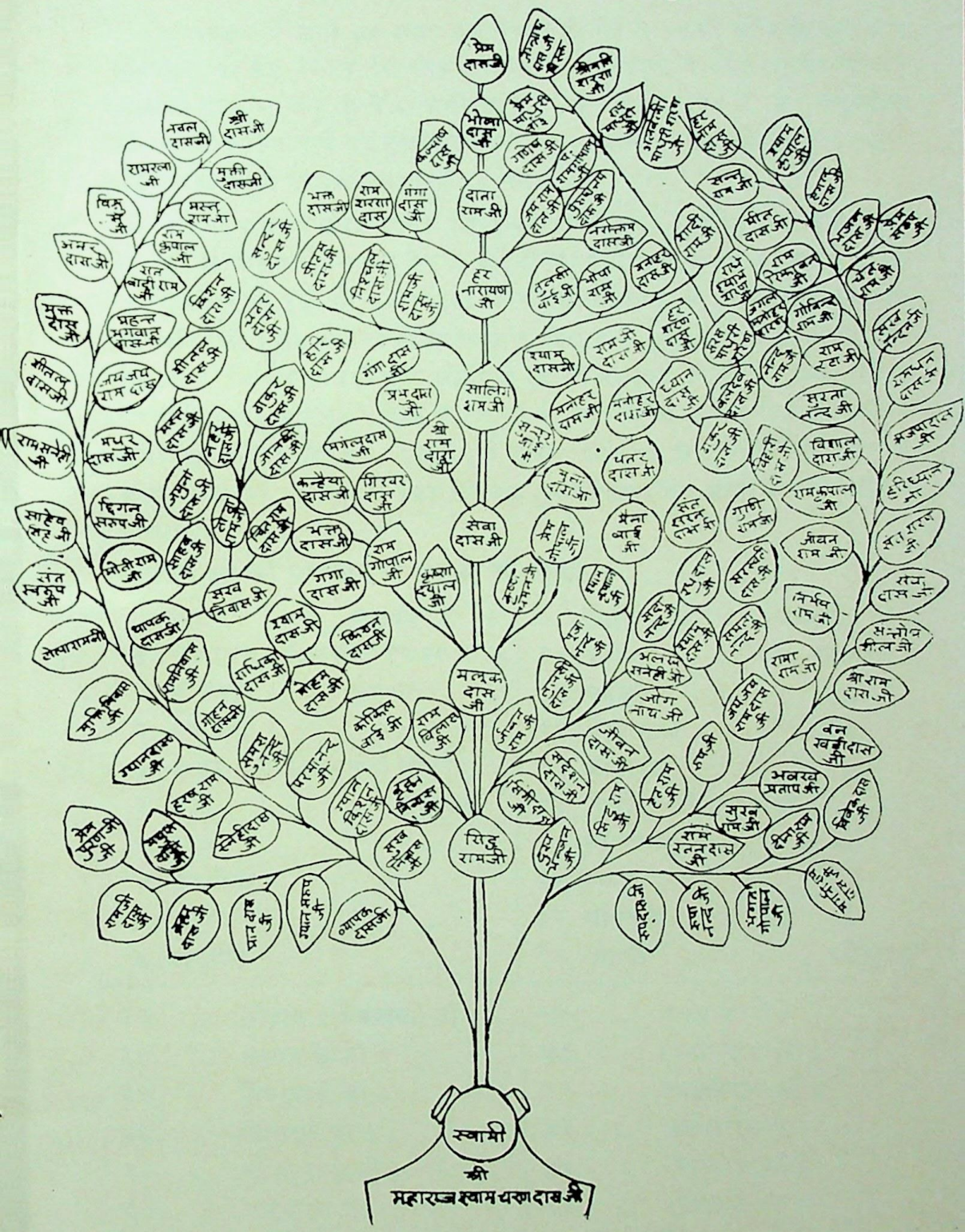

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भवतः ये सभी उस समय तक महन्त हो गये थे। इनमें श्री समीपदास और संगतराम तो सं० १९२७ वि० तक वर्तमान थे। सम्भवतः ये लोग रामरूप जी की मृत्यु के समय अल्पायु ही थे। समीपदास ने सं० १८९७ वि० में म० मलूकदास जी के भी वसीयतनामें पर हस्ताक्षर किया था। स्वामी रामरूप के सम्भवतः अन्य शिष्य उस समय तक वर्तमान नहीं रह गये थे।

स्वामी रामरूप तथा उनकी शिष्य-परम्परा द्वारा स्थापित ७३ गद्दियों का तो उल्लेख मिलता है परन्तु शेष ९ गद्दियों का पता नहीं चलता। सम्भव है कि वे दिल्ली में ही रही हों। ये गद्दियाँ दिल्ली के आस-पास के जिलों में ही मुख्यरूप से केन्द्रित थीं। कुछ गद्दियाँ मध्यप्रदेश और बिहार के सुदूर अंचलों में भी स्थापित हुई थीं। विभिन्न साधनों और स्रोतों से स्वामी रामरूप के शिष्यों अथवा शिष्य परम्परा द्वारा स्थापित गद्दियों के स्थानों का जो उल्लेख प्रमाण-सिद्ध है, उनकी सूची यहाँ दी जा रही है। इनकी पूर्ण सूचना इस गद्दी के दिल्ली-स्थित वर्तमान प्रधान केन्द्र को भी नहीं है, फिर भी यह सूची अधिकाधिक प्रामाणिक साक्ष्यों पर आधारित है—

रामरूप जी की परम्परा के स्थानों की सूची—

स्थान	जनपद	स्थान	जनपद
१. पंडितपुरा	तत्कालीन अलवर राज्य	१०. बनी	करनाल
२. खोजलपुर	अंबाला	११. सवाद	,,
३. जगाधरी	,,	१२. झींद खाश	झींद
४. आगरा नगर (वेलनगंज)	आगरा	१३. बीबीपुरा	,,
५. इन्द्री	करनाल	१४. बिगोवा (सिद्धराम जी की जन्मभूमि)	,,
६. कठुवा	,,	१५. स्यालु	,,
७. धनमौली	,,	१६. सानखाश	,,
८. न्यौरी	,,	१७. महायो	पटियाला
९. पानीपत	,,		

३३.	,,	श्रीदास (शिवदास) जी।	४०.	,,	मुक्तदास जी।
३४.	,,	नवलदास जी।	४१.	,,	हरनामदास जी।
३५.	,,	विश्नुदास जी।	४२.	,,	बुलाकीदास जी।
३६.	,,	संतसरन जी।	४३.	,,	मगनीरामजी।
३७.	,,	रामकृपाल जी।	४४.	,,	निगाराम जी।
३८.	,,	साहबरंग जी।	४५.	,,	बुधिराम जी।
३९.	,,	रामसनेही जी।	४६.	,,	तिरखाराम जी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८. माँगी	पटियाला	४७. पुरानाकिला	बृहत्तर दिल्ली
१९. मुकुटपुर	,,	४८. बाकरगढ़	,,
२०. चरखी दादरी	भिवानी	४९. बादली	,,
२१. वृन्दावन (जुगलघाट)	मथुरा	५०. मितराऊ	,,
२२. वृन्दावन (सरसकुंज)	,,	५१. मुहल्ला बलीमारान	,,
२३. शाहजहाँपुर	महेन्द्रगढ़	५२. बहरामपुर	,,
२४. बुड़ाना	मुजफ्फरनगर	५३. बाभनौली (ब्राह्मणीखेड़ा)	,,
२५. पतला-निवाड़ी	मेरठ	५४. सीताराम बाजार	,,
२६. मुरादनगर	,,	५५. हिरनकी	,,
२७. असौधा	रोहतक	५६. सहारनपुर (खाश)	सहारनपुर
२८. ईसेपुर	,,	५७. सुनाम	संगरूर
२९. ककरोई	,,	५८. गढ़ी सिड़ाना	सोनीपत
३०. कौलाना (कुलचाणाँ)	,,	५९. मुडेला	,,
३१. गढ़ीसाँपला	,,	६०. भिवानी	हिसार
३२. छापर	,,	६१. पटना (सुमेरपुर)	पटना
३३. दहकौरा	,,	६२. मुंगेर (नगर)	मुंगेर
३४. नाहड़	,,	६३. साप्रा (छापर)	अम्बाला
३५. पटौदा	,,	६४. मिलावली	मैनपुरी
३६. फतेहपुरी	,,	६५. मिसरगढ़	मेरठ
३७. बलिआणा	,,	६६. जयपुर (पान का दरीबा)	जयपुर
३८. रोहतक (खाश)	,,	६७. देवास	इन्दौर (रियासत)
३९. लुक्सर	,,	६८. जलगाँव	मध्यप्रदेश
४०. बेरी	,,	६९. नारनौल (खाश)	महेन्द्रगढ़
४१. सौलधा	,,	७०. परमौरा	एटा
४२. जयसिंहपुरा	बृहत्तर दिल्ली	७१. पटौदी	गुड़गाँव
४३. ढासा	,,	७२. थुराना	नारनौल
४४. तिहाड़	,,	७३. राहिल्यावास	रिवाड़ी
४५. धीरपुर	,,	७४. दुजाना	रोहतक
४६. नरेला	,,	७५. मडेला (छोटा और बड़ा)	बृहत्तर दिल्ली

इस परंपरा के महात्मागण अपने स्थानों की संख्या ७० से ८२ के बीच बताते हैं।[1] अनेकानेक उपलब्ध सूत्रों का परीक्षण करने के पश्चात् भी यह संख्या ७५ से

१. चरणावत वैष्णव सदाचार (रूपमाधुरीशरण) : पृ० २५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर नहीं पहुँची। इनमें भी सबका परिचय नहीं मिलता। यहाँ पर यह भी संकेत कर देना उचित होगा कि इस सूची के कुछ स्थान रामरूप जी के गुरुभाइयों या उनकी शिष्य परम्परा के हैं, जिन्हें कालान्तर में कतिपय कारणों से स्वामी रामरूप जी की शिष्य-प्रशिष्य परंपरा की सुव्यवस्थित शृंखला की कड़ी के रूप में जुटना पड़ा था। कुछ गद्दियों पर योग्य उत्तराधिकारियों का अभाव रहा तो कुछ में उस गद्दी से सम्बन्धित व्यक्तियों में मनमुटाव के कारण अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी और अन्ततः वे स्थान या तो रामरूप जी की परम्परा की निकटवर्ती गद्दियों से जुड़ गये या उनकी केन्द्रीय गद्दी की व्यवस्था के अन्तर्गत आ गये।

ऊपर उल्लिखित ७५ थाँभों के स्थानों में से भी मात्र ४०–४५ का ही वृत्त प्राप्त होता है, जो आगे दिया जा रहा है।

(अ) इनमें से जिन स्थानों का परिचय प्राप्त है, वे निम्नलिखित हैं—

(१) दहकौरा (२) मुहल्ला बल्लीमारान—दिल्ली (३) जयसिंहपुरा-दिल्ली, (कोकिलाबाई जी का स्थान) (४) आगरा (बेलनगंज) (५) लुकसर (६) जयपुर (७) परमौरा (८) पुराना किला—दिल्ली (९) शाहजहाँपुर (१०) मुंगेर (११) थुराना (१२) सीताराम बाजार—दिल्ली (१३) मित्राऊ (१५) सौलधा (१६) मिसरगढ़ (मेरठ) (१७) जुगलघाट—वृंदावन (१८) ईसेपुर (१९) मीलावाली और (२०) बलियाणा।

(ब) रामरूप जी के अधिकांश शिष्यों का परिचय प्राप्त नहीं होता। इनमें से जिनका थोड़ा बहुत भी वृत्त प्राप्त होता है, उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) सिद्धराम (२) रामकृपाल (३) जयरामदास (४) निरभय राम (५) अजबादास (६) व्यापकदास (७) सुखनिवास (८) बुलाकीदास (९) मुक्तराम (१०) सतवादी राम (११) ब्रह्मनिवास (१२) मुक्तिनिवास (१३) ज्ञानस्वरूप (१४) रामनिवास (१५) नवलदास और (१६) देवादास।

स्वामी जी यद्यपि ४६ वर्ष तक ही जीवित रहे परन्तु उन्होंने शुक-सम्प्रदाय को भलीभाँति स्थापित और सशक्त बना दिया था। अपने परलोकवास का पूर्वाभास पाकर सं० १८४७ वि० में स्वामी रामरूप ने अपने सर्वाधिक प्रिय एवं योग्यतम शिष्य श्री सिद्धराम के पक्ष में वसीयतनामा लिख दिया था और उसमें अपने सभी शिष्यों और श्रद्धालुजनों को आदेश दिया था कि वे लोग उनके बाद स्वामी सिद्धराम को उनका स्थानापन्न मानकर उन्हीं की भाँति सम्मान करें।[1]

---

१. "...और सिद्धराम जी कूं मेरी जगह मानियौ। डंडौत पूजा करके और टहल करके रामरूप करिकै जानियौ और सिद्धराम कहै सो कीजौ। इनके हुकुम में रहियो।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्प्रदादियक चिह्न के रूप में वे जरद मिट्टी के रंग का पीला चोला धारण करें तथा श्रीतिलक के नीचे आसन दें। जब आपस में दण्डवत प्रणाम करें तो 'सत सत्त करता' का उच्चारण करें और प्रत्येक बसन्त पंचमी को गुरुद्वारे (दिल्ली स्थित प्रधान गद्दी) में मेले के लिए एकत्रित हों। इस वसीयतनामे पर ८० महात्माओं के हस्ताक्षर हैं, जिनमें से अधिकाँश उनके शिष्य हैं।

तिलक △
आसन ↓

इस पर हस्ताक्षर करने वाले शिष्यों में उस समय तक केवल ब्रह्मनिवास, सुखानन्द, अजपादास, जैजैराम, निगाराम, निर्भैदास, रामकृपाल, बालकदास (बुलाकीदास), व्यापकदास, सुखनिवास, सतवादीराम और दुखभंजनदास का उल्लेख महन्त के रूप में हुआ है। शेष ६६ शिष्यों में कुछ ऐसे भी हस्ताक्षरकर्त्ता हैं, जिनका नाम रामरूप जी के ८२ शिष्यों की प्राप्त सूची में नहीं मिलता, जैसे—भक्तस्वरूप, ठाकुरदास (रामकृपाल के शिष्य ?), सुजानदास, सुनीतराम, पुरीदास, रामरतनदास, निकारादास, प्रेमनिवास, अलखप्रताप और माँगीराम। इनमें से कुछ तो निश्चय ही अन्य चरनदासी महात्माओं के शिष्य हैं।[1]

रामरूप जी के जिन शिष्यों ने सं० १८७८ वि० में अपने शिष्य मलूकदास के पक्ष में लिखित सिद्धराम जी के वसीयतनामे पर हस्ताक्षर किया है, वे निम्नलिखित हैं—(१) सनेहीदास (२) विसालदास (३) रामदास (४) माखनदास (५) रामनिवास और (६) म० शिवदास।

रामरूप जी के एक मात्र शिष्य, जिन्होंने सं० १८९७ वि० में महंत मलूकदास जी द्वारा अपने शिष्य सेवादास जी के पक्ष में लिखित वसीयतनामे पर हस्ताक्षर किया है वे हैं—श्री समीपदास। इससे अनुमान होता है कि उस समय तक उनके अन्य शिष्य या तो जीवित नहीं रह गये थे अथवा उस समय किसी कारण से दिल्ली में उपस्थित नहीं हो सके थे। यहाँ तक कि श्री समीपदास ने सं० १९२७

---

१. वसीयतनामे का आरम्भिक अंश इस प्रकार है—"लिषंत महंत महाराज स्वामी रामरूप जो चेला श्री महाराज स्वामी चरणदास का है—हमारे जो कोई शिष्य चेले हैं कंठीबंद तिनको हमारी यह आज्ञा है जरद मिट्टी के रंग का पीला बाना रखना। २, श्री तिलक के नीचे आसन देना श्री महाराज चरणदास की भी यही आज्ञा थी। ३, जो कोई शिष्य सेवक डंडौत प्रणाम करे तो उसकूँ सत सत्त करता उच्चारना और गुरुद्वारे में वसंत पंचमी में मेले कूँ आवना।"

तदुपरान्त रामरूप जी के ८० चेलों के नाम हैं और अन्त में पुनः आज्ञा है—और सिद्धराम जी कूँ मेरी जगह मानियो—आदि, सं० १८४७ वि०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि० में अपने उत्तराधिकारी श्री शालिगराम के पक्ष में लिखित सेवादास जी के वसीयतनामे पर भी हस्ताक्षर किया था। इस वसीयतनामे पर रामरूप जी के एक अन्य शिष्य श्री संगतराम के भी हस्ताक्षर हैं। इससे अनुमान होता है कि ये दोनों महात्मा शतायु थे। यहाँ भी ध्यान देने योग्य बात है कि चरणदासी अभिलेखों में स्वामी रामरूप के कुछ शिष्य, यथा—भगवानदास और सुमिरनानंद भी महन्त के रूप में उल्लिखित हैं। इनकी दो या तीन पीढ़ियों तक की शिष्य-परम्परा का भी पता चलता है परन्तु यह ज्ञात नहीं हो सका कि इनका थाँभा कहाँ था। भगवानदास के शिष्य भगीरथदास और सुमिरानंद के शिष्य हर्षानन्द ने भी सं० १८७८ वि० के वसीयतनामे पर हस्ताक्षर किया है।

रामरूप जी के वे शिष्य जिनके थाँभों का वृत्त अज्ञात है—प्रेमपूरण, रूपदास, रूपानंद, भक्तगोपाल, दीवाराम, विवेकदास, ज्ञानकिसन, परमानंद, सुमिरनानंद, मोहनदास, सनेहीदास, दयाराम, रामधनदास, सुखाराम, अलखप्रताप, बनखंडीदास, रामजीदास, संतोष सनेही, संत सरूप, सेवादास, हरिदयाल, हरषराम, ग्यानदास, टीकाराम, मोतीराम, जीवनदास, ऋषभदास, चेतनराम (चैनराम), मधुरराम, भजनदास, सुरतानंद, रामरटा, नवलदास, विष्णुदास, रामरिझावन, संतसरन, रामसनेही, हरनामदास, समरतानंद, मुक्तदास, मँगनीराम, संतराम, संपतराम, छिगनस्वरूप, युगलदास, बिसालदास, मस्तराम, रामरला, गोविन्दराम, मीतदास, जयरामदास, साहबरंग, शीतलदास, अमरदास, ध्यानदास, विनानदास और तिरषाराम। सम्भव है कि इनमें से अनेक महात्मा स्वतन्त्र स्थान न बनाकर अपनी आचार्य गद्दी या गुरुभाइयों की गद्दियों के आश्रित रहकर ही कालक्षेप करते रहे हों।

स्वामी रामरूप जी के लिए कहा जाता है कि उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन हुए थे।[1] इस सन्दर्भ में उनका यह पद भी उद्धृत किया जाता है।

गजल—

हुइ घर आशिकाँ शादी, सनम का लख नजारा है।
कमल दल खिल गए सारे, नजर आई बहारा है।
कभी की इंतजारी थी, विरह की पुर खुमारी थी।

---

१. लगन लगा श्रीकृष्ण सों, छवि में दिये छकाय।
प्रेम दिवाने कर दिये, विरह विथा गई छाय॥
ऐसी गति लखि सतगुरु, शिष्य पर हुए कृपाल।
दरस कराये दयाकर, श्री बंकबिहारी लाल॥

—मुक्तिमार्ग : पृ० ४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निहायत बेकरारी थी, दया कर गम निवारा है ॥ २ ॥
दरस कर सुख हुवा भारी, तपत जो मिट गई सारी ।
किया जब सर्व बलिहारी, दुई दुख दूर डारा है ॥ ३ ॥
दिया मुरशद ने जो यह सुख, कहीं ढूंढ़ा न पाया दुख ।
लखा महबूब को सनमुख, हुआ आनन्द अपारा है ॥ ४ ॥
नसी कुल्फत जिगर दूरा, बसी उलफत हिये पूरा ।
समाया नूर में नूरा, सोई रामरूप प्यारा है ॥ ५ ॥[1]

संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में योगदान—

स्वामी रामरूप जी १५ वर्ष तक गुरु की सेवा में ही रहे । तदुपरांत २६ वर्ष की अवस्था में उन्हें 'रामरूप' नाम देकर गुरुदेव ने धर्मप्रचारार्थ घूमने-फिरने की (रामत की) आज्ञा दे दी । अपनी यात्राओं में उन्होंने अनेक नर-नारियों को शिष्य बनाया और अपने चमत्कारों द्वारा लोगों को चमत्कृत किया । वे एक सिद्ध महापुरुष थे । शुक संप्रदाय को व्यवस्थित रूप से चलाने में उनका योगदान सर्वाधिक है । उनकी अनेक सिद्धियों का वृत्तान्त तत्संप्रदाय के विविध ग्रंथों में मिलता है ।

चरनदासी संप्रदाय के गठन और साधनाजन्य सिद्धान्तों की व्याख्या तथा उसके परिपालन की व्यवस्था आदि का भार जितना उन्होंने उठाया, शुक संप्रदाय के अन्य किसी तत्कालीन आचार्य ने उतना योगदान नहीं किया । ऐसा लिखो समय हमने रामसखी जी, सहजोबाई जी और गुसाईं जुगतानन्द जी को विस्मृत नहीं किया है । स्वामी रामरूप जी के ज्येष्ठ शिष्य श्री सिद्धराम जी ने अपने गुरु के इस कार्य को और भी अधिक विशद बनाया ।[2]

श्री चरणदास की इहलीला मार्गशीर्ष कृष्ण सप्तमी, बुधवार, सं० १८३९ वि० को समाप्त हुई थी । यथार्थतः सम्प्रदाय गठन का व्यवस्थित कार्यक्रम उसके पश्चात् ही आरम्भ हुआ होगा, परन्तु तब तक निश्चित ही चरनदास जी के अनेक शिष्यों ने स्वतंत्र स्थानों का निर्माण कर लिया था । ऐसे अनेक शिष्यों के स्थानों पर उनके सदल-बल जाने और रुककर धर्म-प्रचार करने का वृत्त उनके जीवन-

---

१. मुक्तिमार्ग : पृ० ८ ।

२. गुरु भक्तानंद निकट बुलाये । परम प्यार कर वचन सुनाये ।
शिष्य शाखा कर धर्म चलावो । हरी भक्ति जग में फैलावो ॥
मंदिर रचि सेवा पधराओ । नवधा भक्ती करो कराओ ॥
—मुक्तिमार्ग: पृ० ९ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित में मिलता है। फिर भी उस सम्प्रदाय के विशिष्ट आचार-विचारों की सुनिश्चित व्यवस्था करने और उनको आचरण-संहिता का रूप देने में रामरूप जी का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यद्यपि रामरूप जी का जीवन अल्पायु था और वे ४६ वर्ष की अवस्था में ही परलोकवासी हो गये परन्तु सं० १८३९ और १८४७ वि० के बीच उन्होंने अपने संप्रदाय का गठन और नियमन बड़ी ही कुशलतापूर्वक किया।

रामरूप जी की साधना का स्वरूप—

स्वामी रामरूप जी श्री कृष्ण और राधा के युगलरूप के सगुणोपासक भक्त थे। उनकी साधना का प्रारम्भ अविचल गुरु-सेवा से हुआ था। उन्होंने अपने गुरु की ही अष्टयाम सेवा से कृष्णभक्ति का श्रीगणेश किया था। गुरु-कृपा से ही उन्हें युगलोपासना में इतनी जल्दी सफलता मिली थी। इस सन्दर्भ में श्री सरसमाधुरी शरण की स्वामी रामरूप कृत 'मुक्तिमार्ग' की भूमिका में समाविष्ट उक्ति इस प्रकार है—

अष्टयाम सेवा गुरु लीना। स्वामी रामरूप रंग भीना॥

× × ×

गुरु सेवा कर सिद्धि सु पाई। गुरु समान गुन प्रगटे आई॥[1]

गुरु ने प्रसन्न होकर उन्हें संतशिरोमणि की उपाधि भी प्रदान की थी—

स्वामी रामहिं रूप तुम, हो निज मेरे रूप।
मैंने तुमको कर दिये, सब संतन के भूप॥[2]

स्वामी रामरूप की भक्ति के संबंध में एक उद्धरण पर्याप्त होगा—

नौधा भक्ति भाव रंग बरसै। प्रेमानन्द हिये में सरसै॥
पराभक्ति प्रगटे उर आई। हरि कवि नैनन रहै समाई॥[3]

अवसान—उन्होंने भी अपने गुरु चरणदास की ही भाँति अपनी मृत्यु की पूर्व सूचना कई वर्ष पहले अपने शिष्यों को दे दी थी। इस संबंध में श्री सरसमाधुरी-शरण की उक्ति इस प्रकार है—

कई वर्ष पहिले कह्यो, परम धाम निज जान।
त्रिकालज्ञ ज्ञाता गुनी, श्री स्वामी सुखदान॥[4]

---

१. मुक्तिमार्ग : पृ० ११–१२।
२. वही : पृ० १५।
३. वही : पृ० १८।
४. वही : पृ० ४०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्येष्ठ सुदी १२, बुधवार, सं० १८४७ वि० को छियालीस वर्ष की अवस्था में बेरी ग्राम (रोहतक) में योगयुक्ति की रीति से समाधिस्थ होकर उन्होंने इहलीला समाप्त की।

गुरु के देहत्याग के पश्चात् बेरी (जिला-रोहतक) में गुरु की स्मृति को बनाये रखने के लिए रामरूप जी के उत्तराधिकारी शिष्य स्वामी सिद्धराम जी ने स्थायी छतरी और चरणपादुका स्थापित कर दी है, जो आज भी है।

(१) स्वामी रामरूप की दिल्ली की आचार्य गद्दी की शिष्य-परम्परा—

स्वामी रामरूप जी—(सं० १८०१–१८४७ वि०, ज्येष्ठ सुदी १२, बुधवार)।
|
स्वामी सिद्धराम जी—(सं० १८४७–१८७८ वि०, ३१ वर्ष गद्दी पर रहे)।
|
श्री मलूकदास जी—(सं० १८७८–१८९७ वि०)
|
सेवादास जी—(सं० १८९७–१९२७ वि०)
|
श्री शालिगराम—(सं० १९२७–१९५७ वि०)
|
श्री हरिनारायण और दाताराम—(सं० १९५७–१९६० वि०), दोनों सगे भाई एवं गुरुभाई थे तथा पहले हरिनारायण जी फिर दाताराम जी गद्दी पर आये।
|
भोलादास जी[1]—(सं० १९६०–१९९५ वि०)
|
प्रेमदास जी[2]—(सं० १९९२ से वर्तमान)

स्वामी रामरूप जी का साहित्य को योगदान—

रामरूप जी शुक-सम्प्रदाय के आद्याचार्यों में से प्रमुख तो हैं ही, साथ ही इस सम्प्रदाय के साहित्यकारों में भी उनका शीर्षस्थान है। इनके सम्प्रदाय में उन्हें वाल्मीकि और श्री जोगजीत को व्यास के विशेषण से अलंकृत किया जाता है। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की ऐसी मान्यता है कि रामरूप जी का 'गुरुभक्तिप्रकाश' और जोगजीत का 'लीलासागर' इस परम्परा के दो पुराण हैं।

---

१. ये दाताराम जी के शिष्य थे और इनके बाद गद्दी पर आये।

२. वर्तमान महन्त श्री प्रेमदास जी सुन्दर व्यक्तित्व वाले, व्यवहार कुशल तथा सन्तसेवी व्यक्ति हैं। ये अपने दिल्ली-स्थित प्रधान स्थल को सुव्यवस्थित करने में लगे हैं। इनके पास परम्परागत महात्माओं की बानियों का अच्छा संग्रह है और अपने सम्प्रदाय के सम्बन्ध में इनकी स्वयं की जानकारी भी अच्छी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री स्वामी रामरूपजी (पृ० २८६)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, रामरूप जी तीन बृहत्काय काव्य-ग्रंथों के रचयिता हैं। कालक्रम से ये हैं—(१) गुरुभक्तिप्रकाश (२) मुक्तिमार्ग और (३) जैमिनि अश्वमेध कथा। इनमें से गुरुभक्तिप्रकाश का रचनाकाल सं० १८२६–१८२८ वि०, है। मुक्तिमार्ग का रचनाकाल (समाप्तिकाल) ज्येष्ठ शुक्ल १२, शुक्रवार सं० १८२९ वि० है। ये दोनों रचनाएँ प्रकाशित हो गई हैं। इनकी अब तक अप्रकाशित जैमिनि अश्वमेध कथा का रचनाकाल (समाप्तिकाल) गुरुवार, कार्तिक कृष्ण ८, सं० १८४५ वि० है।

(१) **गुरुभक्तिप्रकाश**—कुल दश प्रकाशों में विभक्त यह काव्य कवि की प्रथम कथात्मक या प्रबन्धात्मक कृति है, जिसकी रचना उन्होंने २५ वर्ष की आयु में आषाढ़ सुदी ३, गुरुवार सं० १८२६ वि० में आरम्भ की थी। कहा जाता है कि इसके षष्ठ विश्राम तक की ही रचना रामरूप जी की है। इसके सप्तम से दशम विश्राम तक के रचयिता रामरूप जी के शिष्य अजपादास जी बताये जाते हैं। इस रचना को रामरूप जी ने पूरा क्यों नहीं किया, यह समझ में न आनेवाली बात है। इसके षष्ठ विश्राम की संज्ञा 'गुरु-चेले की गोष्ठी' है, जो स्वयं में एक स्वतन्त्र रचना प्रतीत होती है। इस गोष्ठी के माध्यम से गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में भक्ति, ज्ञान और योग सम्बन्धी अनेक जिज्ञासाओं और उनके तर्कपूर्ण समाधानों का समावेश किया गया है। यह इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा प्रकाश है जिसमें ४२७ दोहों का समावेश हुआ है। सम्भवतः इसे इस ग्रन्थ के परिशिष्ट रूप में रचा गया था परन्तु यहाँ तक चरण- दास जी और उनके शिष्यों का वृत्त अधूरा ही रह गया था। हो सकता है, इसे पूरा करने के लिए रामरूप जी ने अपने प्रिय तथा योग्य शिष्य श्री अजपादास को सौंप दिया हो। वस्तुतः इन्हीं अन्तिम तीन विश्रामों में चरणदास जी के चमत्कारों और शिष्यों से सम्बद्ध वर्णनों का समावेश है। ग्रंथ के अन्त में श्री रामरूप जी का जीवनवृत्त भी समाविष्ट है। ग्रन्थ की रचना दो व्यक्तियों द्वारा हुई है, इसके विषय में यदि पूर्व जानकारी न हो तो इस तथ्य की पुष्टि भाषा या काव्य-शैली के आधार पर होनी सम्भव नहीं है। रामरूप जी और श्री अजपादास की रचना-पद्धति में अद्भुत मेल दिखाई देता है। इसके पंचम विश्राम तक आठ चौपाइयों के बाद एक या दो दोहा रखने के नियम का पालन किया गया है। षष्ठ विश्राम अर्थात् गुरु चेले की गोष्ठी केवल दोहों में रचित है। आगे के तीन विश्रामों में किसी निश्चित छंदक्रम का पालन नहीं किया गया है। यद्यपि इनमें भी दोहा और चौपाई—इन्हीं दोनों शब्दों का प्रयोग है परन्तु उनमें किसी सुनिश्चित क्रम का ध्यान नहीं रखा गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सम्प्रदाय के कतिपय आचार्य इसे चरित्रप्रधान महाकाव्य मानते हैं और इसके नियमित पाठ को दिनचर्या का आवश्यक अंग घोषित करते हैं परन्तु विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से यह महाकाव्य नहीं ठहरता। इसका काव्य-सौष्ठव मुख्यतः विरह या प्रेमदशा-वर्णन, रूप-वर्णन और नीति-वर्णन में दिखाई देता है। इन सन्दर्भों में कवि की भाषा-पटुता सर्वथा प्रशंसनीय है।

इसमें छंदविधान और भाषा प्रयोग सम्बन्धी त्रुटियाँ बहुत ही कम हैं। प्रसंग-वश चरणदास जी के अनेक शिष्यों का आख्यान भी इसमें आ गया है। यह सर्व-प्रथम सन् १९०५ ई० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। दूसरी बार इसका प्रकाशन सन् १९५० में श्री श्यामचरणदास प्रकाशन कार्यालय दिल्ली से हुआ। इसका तीसरा संस्करण भी प्रकाशित हो गया है।

(२) मुक्तिमार्ग—यह रामरूप जी के चिन्तन और सर्जन प्रतिभा एवं पटुता का प्रमाण है। इसकी समाप्ति का काल ज्येष्ठ शुक्ल १२, शुक्रवार सम्वत् १८२९ वि० है। यह भी एक प्रकाशित रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति जो मेरे पास है वह मूलप्रति की तात्कालिक लिपि है। इसका लिपिकाल सम्वत् १८४६ वि० है तथा इसके लिपिकर्ता श्री काशीदास हैं। इसका प्रकाशन प्रथम बार मुंशी नवलकिशोर प्रेस; लखनऊ से सन् १९१६ ई० में हुआ था। इसकी विस्तृत भूमिका श्री सरसमाधुरीशरण ने लिखी है। सम्पादन भी उन्हीं का है। इसका नवीनतम संस्करण चरणदासीय प्रकाशक ट्रस्ट, जयपुर से सन् १९७२ ई० में प्रकाशित हुआ था।

इसमें स्पष्टतः दो भाग हैं। १. साखी और २. पद और लघु कथाएँ आदि। इसका पूर्वार्द्ध मुख्यतः दोहों में रचित है तथा बीच-बीच में कुछ कुण्डलियों एवं अरिल्लों का भी समावेश है। परम्परानुसार यह 'अंगों' में विभक्त है। कबीर, दादू और पलटूदास आदि सन्तों का कवि पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। रचना प्रौढ़ है। उत्तरार्द्ध में विभिन्न रागों में निबद्ध पद हैं। इसके 'अंग' इतने विस्तृत हैं कि वे अपने आप में एक लघु ग्रन्थ हैं। इसके प्रथमार्द्ध के अंगों की संज्ञा इस प्रकार है—गुरु को अंग, हरिस्मरण को अंग, अजपा गायत्री को अंग, सूरातन को अंग, विरह को अंग, पतिव्रता को अंग, सतगुरु कृपा को अंग (यह नवीन नामकरण है), वैराग्य चितावणी को अंग तथा भक्तिज्ञान को अंग। इसके बाद इसका रचनाकाल दे दिया गया है। अतः आगे की रचना को परिशिष्ट रूप में समझना चाहिये, किन्तु आगे कुछ और अंग हैं, जैसे—साधु समझावन को अंग, आमिष निवारण को अंग आदि। अनुमानतः ये रामरूप जी की परवर्ती बानियों के संकलित अंश हैं।

द्वितीयार्द्ध को इस ग्रंथ का परिशिष्टांश मानना चाहिये क्योंकि इसमें संकलित रचनाएँ कथात्मक एवम् सम्वादात्मक हैं, केवल 'बारहमासा' इसका अपवाद है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी विशेषता यह है कि यह निर्गुण बारहमासा तो है ही साथ ही क्वार से आरम्भ होकर भाद्रपद तक चलता है, जब कि अधिकांश बारहमासे आषाढ़ से आरम्भ होते हैं। इसमें सकलित 'शुक जन्म-लीला' महाभारत के शान्तिपर्व के मोक्ष धर्म प्रसंग का चौपाई-दोहों में भावानुवाद है। यह सर्वथा स्वतन्त्र कृति हैं। यह गुरु-शिष्य संवाद शैली में रचित है। इसमें क्रमशः पुत्र-प्राप्ति हेतु व्यास जी का शंकर-पार्वती से तपस्योपरान्त वरदान प्राप्त करना, श्री शुकदेव के जन्म और तपस्या का वृत्त, मोक्ष के लिए जनक द्वारा उपदेश ग्रहण करना, तपस्या हेतु हिमालय में प्रस्थान और व्यास जी द्वारा पुत्र को उपदेश देना आदि पुराण प्रसिद्ध कथा वर्णित है। 'साधु समझावन को अंग' में स्वामी रामरूप ने एक वर्ष पूर्व ही अपनी मृत्यु की सूचना दे दी है। यह भी एक स्वतन्त्र रचना है, जो सं० १८४६ वि० में रची गयी है और बाद में इस ग्रंथ में सम्मिलित कर ली गयी है। इसी तरह 'आमिष निवारण को अंग' में महाभारत के दानपर्व की कथा ली गयी है और भीष्म-युधिष्ठिर-संवाद के माध्यम से जीव-हिंसानिषेध का निरूपण किया गया है।

इस ग्रन्थ के अन्त में एक स्वतन्त्र लघु रचना के रूप में समाविष्ट 'पड़िवा माहात्म्य पाप मोचन सार'—श्रीमद्भागवत् के अष्टम् स्कन्ध के १८वें अध्याय की कथा पर आधारित है। इसमें कवि ने प्रत्येक मास की प्रतिपदा के व्रत का माहात्म्य वर्णित किया है। यह गुरु-शिष्य-संवाद शैली में रचित है। दोहा, अष्टपदी, चौपाई आदि इसके प्रमुख छन्द हैं। यह एक बृहत्काय ग्रन्थ है और रामरूप जी के कवित्व शक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसकी पृष्ठ: संख्या ३११ से ३४५ के बीच रामरूप जी के वरिष्ठ शिष्य स्वामी सिद्धराम जी की भी वाणी संकलित है।

इसका 'वैराग्य चितावणी को अंग' आकार में विस्तृत है। इसमें सांसारिक नश्वरता और पारिवारिक सम्बन्धों की स्वार्थपरायणता का चित्र प्रस्तुत कर विरति का भाव जगाने का प्रयास किया गया है। इसी क्रम में सुरति-निरति का विवेचन दोहा-चौपाई में विस्तार से किया गया है। कवि ने अनेक पुराणों और श्रीमद्भागवत् का सम्यक् अध्ययन किया था। साथ ही उन्होंने संतों की बानियों को भी अच्छी तरह हृदयंगम किया था, इसीलिए उनके विषय विवेचन में ज्ञान की गम्भीरता की झलक सर्वत्र मिलती है। उनके विरहवर्णन का अधिकांश भाव संत कबीर की बानियों से ग्रहण किया गया है। जो मनोभाव और अनुभूति आदि कबीर में ठीक से अभिव्यक्त नहीं हुए हैं, उन्हें भी स्वामी रामरूप जी ने बड़ी सफाई के साथ कह दिया है। अपनी अटपटी और सांकेतिक भाषा के कारण कबीर जहाँ भावों को स्पष्ट नहीं कर पाते उन अनुभूतियों को रामरूप जी भली-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति स्पष्ट कर देते हैं। कबीर की अनुकृति के स्वरूप को समझने के लिए मुक्ति-मार्ग का यह उदाहरण द्रष्टव्य है—

कह संदेशो पीव को, मन अंदेश न जाय।
कै प्रीतम का दरस द्यो, कै मोहिं लेइ बुलाय ॥
सकौं न तुम्हें बुलाय मैं, मों आवन गम नाहिं।
रामरूप यों ही तपै, जीव विरह के माँहि ॥
तन जलाय कोयला करूँ, पाती लिखूँ पुकार।
हाड़ों की लेखनि करूँ, यो ही डारूँ वार ॥[1]

'हरिस्मरण को अंग' में उन्होंने अजामिल, शबरी, गणिका, ध्रुव, प्रह्लाद, गजराज, द्रौपदी आदि के कथा प्रसंगों में परस्पर संवादों को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। इन भक्तों से सम्बद्ध कथाओं को इन प्रसंगों में बड़े विस्तार से समाविष्ट किया गया है। उन्होंने भी अन्य सन्तों की भाँति गुरु और नाम की महिमा का गान किया है।[2] तुलसी और कबीर की भाँति भक्तों के लिए वे भी गृही या त्यागी होने का बन्धन नहीं मानते। उनके विचार से भक्त चाहे जहाँ भी रहे, उसे भगवत्स्मरण में लीन रहना चाहिए—

भावे बन पर्वत बसो, भावे साजो गेह।
रामरूप दोऊ एक से, जाको हरि सूं नेह ॥[3]

रामरूप जी ने धर्म के इन १२ आचार्यों को धर्माचरण-सिद्धान्त के लिए प्रमाण माना है और उनके आदेशों के पालन को ही उत्तम आचार कहा है, क्योंकि इन सभी ने भागवतधर्म की स्वतन्त्र रूप से व्याख्या की है—(१) विधि, (२) नारद,

---

१. मुक्तिमार्ग : विरह को अंग : दोहा सं० २०–२२।

२. जल माया मन दूध है, मिले परस्पर काय।
रामरूप गुरु हंस ने, लीन्हों पय निरताय ॥—गुरु को अंग-६६।

× × ×

टीका चारों वेद का, सद् शास्त्रन का सार।
रामरूप सो नाम है, पाप निवारन हार ॥
—हरिस्मरण को अंग-१५।

× × ×

सतगुरु की आज्ञा चलै, कोटि तपस्या जान।
रक्षक लोक प्रलोक के, इनहीं को पहचान ॥
—भक्ति ज्ञान को अंग-१२।

३. हरिस्मरण को अंग-११८ :

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) सनकादि, (४) शिव, (५) मनु, (६) प्रह्लाद, (७) कपिल, (८) जनक, (९) भीष्म, (१०) धर्मराज, (११) बलि और (१२) श्री शुकदेव मुनि।

.....धर्म जु जानत बारह साधु।[1]

अजपा गायत्री के प्रसंग में इन्होंने अरिल्ल छन्दों का प्रयोग किया है, जिस पर सन्त पलटूदास के अरिल्लों की छाप दृष्टिगत होती है। उदाहरण के लिए नीचे का छन्द द्रष्टव्य है—

अजपा याकों नाम, आपहिं जप होयरे।
कर माला मुख जीभ, हलै ना कोय रे॥
ब्रह्मा सिन्धु जो आप, तासु की लहर है।
अरे हाँ रामरूप धरि ध्यान, मिटे जम कहर है॥[2]

'साधु-महिमा को अंग' में जैदेव, त्रिलोचन, लालाचारज, सेन, नरसी, धना, सम्मन आदि के त्याग और उनकी सिद्धियों का वर्णन किया गया है क्योंकि ये सभी रामरूप जी की दृष्टि में सच्चे सन्त थे, जिनका लक्षण इस प्रकार है—

पाँव पसारे चाह तजि, लीने हाथ सिकोड़ि।
रामरूप निरभै रहै, साधू जग मुख मोड़ि॥[3]

'सूरातन को अंग' पारम्परिक रूप से साधक को शूरमा और सती को आदर्श मानकर एकनिष्ठ और दृढ़ भाव से साधना करने की प्रेरणा देता है। मुक्तिमार्ग' का 'विरह को अंग' हमें बार-बार रैदास, कबीर आदि संतकवियों की याद दिलाता है। आत्मारूपी विरहिणी की तड़पन की अभिव्यक्ति संतों की विरहिणी से किसी भी प्रकार कम नहीं है—

रैनि विहावै तरफ ते, देखत सब दिन जाय।
रामरूप विरहन दुखी, कुंजहिं ज्यों कुरलाय॥

× × ×

कासूँ कहूँ संदेसड़ा, अपने मन की पीर।
बाट निहारत दृग थके, सूकत चल्यो सरीर॥

× × ×

कह संदेसो पीव को, मन अंदेश न जाय।
कै प्रीतम आ दरस द्यौ, कै मोहिं लेहु बुलाय॥

---

१. वही : पृ० २२६।
२. हरिस्मरण : अजपा गायत्री को अंग : दोहा सं० १७।
३. साधु महिमा को अंग : ११८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकौ न तुमहि बुलाय मैं, मो आवन गम नाहिं ।
रामरूप यों ही तपै, जीव विरह के माँहि ।।

भक्तवर रामरूप जी के राम सर्व समर्थ हैं । उनके प्रति साधक रूपी प्रेयसी का पातिव्रत्य धर्म निभाना भक्त का कर्त्तव्य है । कवि को विश्वास है—

जो कीने तो राम जी, जो देवै तो राम ।
पात न हिलै हुक्म बिन, राम करै सब काम ।।[1]

जीवात्मा अज, अविनाशी, स्थिर, पवित्र और शिव है । वह शरीर के भीतर होने तक इन्द्रियों में आसक्त होकर अपने आपको भूला रहता है तथा अपने को काया मान लेता है ।[2]

'वैराग्य चितावणी को अंग' में कवि ने सांसारिक नश्वरता और पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्धों की स्वार्थपरायणता का चित्र उरेह कर विरक्ति का भाव जगाने के लिए दोहा-चौपाई में बड़े विस्तार से तथा तर्कपूर्ण ढंग से अपनी बातें प्रस्तुत की हैं । अपने आप में यह एक स्वतंत्र कृति प्रतीत होती है ।[3]

इनके स्फुट पद विविध रागों, यथा—राग विलावल, राग मल्हार, राग कान्हरा, राग असावरी, रामकली, राग धनाश्री, राग सौरठ, राग कड़खा, राग झिझोटी, केदारा, राग काफी, राग चर्चरी, राग गौरी, राग मंगला, राग बसन्त, और राग टोना आदि में निबद्ध हैं । इससे उनकी संगीतशास्त्र-पटुता एवं गान-निपुणता का परिचय मिलता है ।

(३) जैमिनीअश्वमेध कथा—महाभारत के अश्वमेध पर्व से जैमिनि अश्वमेध प्रसंग का पद्यवद्ध अनुवाद करके कवि ने इसे एक स्वतन्त्र प्रवन्ध काव्य का रूप दिया है । इस रचना का समाप्तिकाल-कार्तिक कृष्ण ८, गुरुवार, सं० १८४५ वि० है । यह एक वीररस प्रधान रचना है, जिसमें अनेक युद्धों का वर्णन

---

१. साधु महिमा : पतिव्रता को अंग : ५५ ।

२. जीव न उपजत मरत है, अज अविनाशी येह ।
जनमै मरै पुरान हो, घटै बढ़ै सो देह ।।
× × ×
आप देह के मध्य हो भूल गया निज अंग ।
मानी काया आपकूँ, मिल इंद्रिन के संग ।।
—मुक्तिमार्ग, नवधाभक्ति को अंग : ३५, ३७ ।

३. कुटुंब मित्र तेरे सब वैरी ।
जग में सुरति फँसावे तेरी ।
—वही, वैराग्य-चितावणी को अंग-१५ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाविष्ट है। शान्तरस के काव्य रचयिता रामरूप जी ने इस ग्रन्थ के माध्यम से सिद्ध कर दिया है कि इनकी रचना-प्रतिभा बहुमुखी है। इस प्रबन्ध काव्य की मूलकथा संवाद-रूप में प्रस्तुत की गई है। मुख्य संवाद जनमेजय और जैमिनि ऋषि के बीच है और प्रधान कथ्य युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ है। कथाक्रम में सुधन्वा, सुरथ, बभ्रुवाहन और वृषकेतु द्वारा किये गये भयंकर युद्धों का जीवन्त वर्णन भी समाविष्ट है। यद्यपि इसका प्रधान रस वीररस है फिर भी बीभत्स, रौद्र, शृंगार तथा शांत आदि अंगीरसों का इसमें बड़ा ही मंजुल सामंजस्य है। इसमें कथा के अतिरिक्त अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ रामरूप जी भक्त कवि की अपेक्षा निर्गुनिया सन्त कवि अधिक प्रतीत होते हैं। कथा तो एक आवरण मात्र है, वस्तुतः कवि की साधनामूलक अनुभूतियाँ कथानकों के माध्यम से इस कृति में अधिक स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त हो सकी हैं।

यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। यद्यपि इसमें चौपाई और दोहे ही प्रमुख छन्द हैं परन्तु इन दोनों में भी केवल अन्त्यानुप्रास ही ठीक मिलता है, जब कि बीच-बीच में मात्राएँ पर्याप्त परिमाण में न्यूनाधिक हैं। इसके संवाद बड़े ही चातुर्यपूर्ण और संक्षिप्त हैं। दिल्ली की भाषा का इसमें इतना प्रभाव दिखाई देता है कि भीम भी युधिष्ठिर से तू, तैं या तेरा जैसे सर्वनाम का प्रयोग करते हैं। 'चन्द्रहासोपाख्यान' और 'लवकुशोपाख्यान'—ये दो उपाख्यान इस ग्रंथ के स्वतन्त्र अंश या परिशिष्ट-रूप हैं। ये दोनों उपाख्यान बड़े विस्तार से वर्णित हैं। कवि ने 'जैमिनि अश्वमेध कथा' की रचना में बड़े ही धैर्य और श्रम का परिचय दिया है। यह २८५ पत्रों का ग्रंथ है, जो ८" × ६" आकार के कागज पर लिखा गया है। इसकी प्राप्त पाण्डुलिपि श्री काशीदास द्वारा सं० १८४६ वि० में तैयार की गई है।

भाषा-प्रयोग —

इनके भाषा-प्रयोग को देखते हुए ऐसा लगता है कि साखियों और स्फुट पदों की भाषा बड़ी सशक्त और सक्षम है जब कि कथात्मक प्रसंगों में (उसके अनूदित स्वरूप के कारण) भाषा का कोई उल्लेखनीय चमत्कार नहीं दिखाई देता। सब मिलाकर इनकी भाषा भी कबीर की भाँति सधुक्कड़ी ही है। इनकी खड़ीबोली का रूप कड़खों और रेखतों में देखा जा सकता है—

(१) कड़खा— मैं एक निरंजन ध्याऊँगा।
लाभ होय के सर्वस जावो, और न शीश नवाऊँगा॥
एक ही आस एक बिश्वासा एक ही सूँ लौ लगाऊँगा।
एक ही साहिब सिरजनहारा ताके गुण मैं गाऊँगा॥[1]

१. मुक्तिमार्ग : पृ० २१७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) रेखता— अरे सुन प्रेमियो यारो इश्क के खेत कूँ मारो।
कि अपना शीश ह्याँ डारो, यही महबूब का पाना ॥

× × ×

सजन तुम क्यों कमर बाँधी मेरा दिल कत्ल करने कूँ।
तेरी बाँकी अदा से ही हुवा बेहाल मरने कूँ ॥[1]

कहीं-कहीं इनमें भी अनुप्रासिक प्रयोग के आधार पर चमत्कार की वृत्ति दिखाई पड़ती है—

साधो सुन्न वेसुन्न, बेसुन्न ही सुन्न है।
सुन्न बिनु नाहीं, कछु और दूजा ॥
होत झिलमिल तहाँ, सुन्न का नूर है।
सुन्न के चाँदने, सुन्न सूझा ॥[2]

कहीं-कहीं पादपूर्ति के लिए इन्हें अनावश्यक पदों या शब्दों का भी प्रयोग करना पड़ा है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

अष्टपदी—सबके आतम रूप जोगेसर ईस हो।
आदि देव नारायण बिसवे वीस हो ॥
नील ही मणि सा सोहत अंग है।
पीतांबर तन माहिं विराजत संग है ॥
पुरुसन के बरदायक सब फल देत ही।
ब्रह्मादिक सब देव पूजैं या हेत ही ॥[3]

इसी प्रकार जैमिनि अश्वमेध में भी 'ही' का अनावश्यक प्रयोग अनेकशः मिलता है—

भीष्म पितामह स्वरग गया ही, ताते युधिष्ठिर दुखित भया ही ॥[4]

यद्यपि यह ग्रंथ दोहों और चौपाइयों में रचित है और अन्त्यानुप्रास भी ठीक-ठीक मिलते हैं, परन्तु बीच में व्यर्थ के पदों की भरमार है। ऐसा लगता है कि अनुवाद की ओर ध्यान होने और छन्द रचना में तन्मयता के अभाव के कारण ही ऐसा हुआ है। इस प्रकार ग्रंथारम्भ करने के पूर्व कवि की सुकविता रचने की घोषणा निरर्थक सिद्ध होती दिखाई देती है—

---

१. वही : पृ० २३७।
२. मुक्तिमार्ग (प्रथम संस्करण) : पृ० २८३।
३. वही : पृ० १९३।
४. प्रथम अध्याय : पृ० ९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतम ईश्वर ब्रह्म अरु, गुरु कूं करि परनाम।
रचै सुकविता ग्रंथ जो, पूरन हो सब काम ॥
—जैमिनि अश्वमेध कथा : १।३।३ ।

दिल्ली की प्रचलित भाषा के प्रयोग का साक्ष्य इन पंक्तियों में प्रस्तुत हुआ है—

है पुत्तर इस लोक मंझाई। थिरथिर कीरत अरु बड़आई ॥

× × ×

वृषकेत ये बात करैथा, दिष्ट उसी मग और धरैथा ॥[1]

वीरवर्मा के ब्रभुवाहन के साथ हुए युद्ध के वर्णन प्रसंग में वीररसात्मक भाषा का प्रयोग द्रष्टव्य है—

केसी केसा मुक्कम मुक्का, नषा नषी अरु बुड़मबुड़क्का ॥[2]

रामरूप जी की रचना में भाषाप्रयोग सम्बन्धी पर्याप्त वैविध्य है, इस तथ्य को उपर्युक्त उदाहरणों के माध्यम से देखा जा सकता है। इनकी भाषा में पूरबीपन भी यत्र-तत्र देखने को मिलता है। उदाहरण के रूप में निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

ठाढ़े भये भई चौघड़ियाँ, लखी मुनी की आँख उघड़ियाँ ॥

तथा

देह नगरिया वीच ही जैसे क्रोध अरु काम।[3]

स्वामी रामरूप ऐसे तुक्कड़ों से चिढ़ते थे जो थोड़ा हेर-फेर करके दूसरों के पद अपने नाम पर प्रचारित कर देते हैं। इस व्यवहार की निन्दा करते हुए उनका कथन है—

तुक अक्षर को काटिकर, शब्द बनावन हार।
सौ तो कहिये आपनी, महतारी को जार ॥
महतारी को जार, और की साख चुरावै।
शब्द किसी का होय, आपना भोग लगावै ॥
होय रचा पद औरका, धरै और का नाँव।
रामरूप हैं चोर वे, बसै जमपुरी गाँव ॥[4]

---

१. जैमिनी अश्वमेध : ३।१९।
२. वही : ४५।१३।
३. वही : पृ० ४६ तथा पृ० २९२–८।
४. वही : पृ० १०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) स्वामी सिद्धराम का सम्प्रदाय-गठन में योगदान—ये स्वामी रामरूप जी के उत्तराधिकारी एवं वरिष्ठतम शिष्य थे। ये जाति के जाट और बिगोवा नामक स्थान के निवासी थे। श्री सिद्धराम जी ने सं० १८४८ वि० में शाह निजामुद्दीन की अदालत में गुसाईं जुगतानंद के विरुद्ध मुकदमा दायर किया था। जिसमें उन्होंने आरोप लगाया था कि गो० जुगतानन्द ने फर्जी रूप से एक वसीयतनामा अपने नाम तैयार कराया है और मुझे 'अस्थल' और (चरणदास जी का समाधिस्थल तथा मन्दिर) और गद्दी से महरूम करने का उपाय कर रहे हैं। यह मुकदमा एक माह तक चला और फैसला हुआ कि 'अस्थल' तो बाई जी (सहजोबाई जी) के कब्जे और देख-रेख में रहेगा और दोनों महंत अपनी रिहाइश (निवास) का अलग प्रबन्ध कर लें। दोनों पक्षों ने इस बात को स्वीकार किया। कतिपय विशिष्ट कारणों से सुश्री सहजोबाई ने भी अपना स्वतन्त्र स्थान बना लिया और वहाँ से अलग रहने लगीं।

सिद्धराम जी अपने गुरु की मृत्यु के एक मास पूर्व ही महन्त पद पर अभिषिक्त हो गए थे। ये उच्च कोटि के महात्मा थे। चरणदास जी के जीवनकाल में ही ये रामरूप जी के शिष्य हो गए थे। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। इनकी सिद्धियों से प्रभावित होकर दिल्ली के बादशाह शाहआलम द्वितीय ने ११९३ हिजरी में (सं० १८२९ वि० में) इन्हें ५ गाँवों की जागीर (माफी) दी थी।[1] संत चरणदास के मुख्य स्थान का आधिपत्य ग्रहण कर लेने के कारण गुसाईं जुगतानंद को इनसे अपमानित होना पड़ा था और दोनों गद्दियों का वैमनस्य बहुत दिनों तक बना रहा। ये बड़े ही तेजस्वी महात्मा थे। इन्होंने कई बार चारों धामों की यात्रा की थी। वृन्दावन-निवास उन्हें प्रिय था। सं० १८७८ वि० में अपने जीवन-काल में ही उन्होंने अपने प्रिय शिष्य श्री मलूकदास को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। उसी वर्ष वे परलोकगत भी हो गए। उन्होंने अपने अधिकारकाल में स्वामी रामरूप के शिष्यों द्वारा स्थापित थाँमों और स्थानों का भ्रमण करके उन्हें भलीभाँति प्रोत्साहित, संगठित, सुनियोजित और पुनर्जागृत किया। उनके गुरुभाइयों ने उनके समय तक ७० स्थानों पर अपनी गद्दियाँ स्थापित कर ली थीं।

ये सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने दूर-दूर तक सन्तमण्डली के साथ रामत (भ्रमण) करके बड़ा यश अर्जित किया था। इनके विषय में सरसमाधुरीशरण जी का यह कथन सर्वथा उचित है—

रिद्धि सिद्धि ठाढ़ी रहैं, सिद्धराज दरबार।
रामरूप स्वामी कृपा, करैं सन्त सतकार॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धराम नामी भये, दशहुँ दिशा चहुँओर।
दिल्ली में सोभा भई, सब सन्तन सिरमौर ।।[1]

सिद्ध साधक होने के साथ ही ये एक उच्च कोटि के कवि और विद्वान् भी थे। उनके 'शब्दबावनी' नामक ग्रन्थ में शुकसम्प्रदाय में स्वीकृत ज्ञान, वैराग्य, प्रेमा-भक्ति और वेदान्त आदि सम्बन्धी सिद्धान्तों की पद्यबद्ध व्याख्या की गयी है। इन्होंने 'भक्ति-सिद्धान्त' नामक अपनी द्वितीय कृति में ज्ञानमार्ग का प्रतिपादन किया है।

स्वामी सिद्धराम का साहित्य—

(१) भक्तिसिद्धान्त—इनका 'भक्तिसिद्धान्त ग्रंथ' ५४२ पृष्ठों का एक बृहत्काय ग्रन्थ है। इसके शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह भक्ति सिद्धान्त वर्णन सम्बन्धी रचना है। इसमें अनेक भक्ति कथाएँ गुम्फित हैं। इसका रचनाकाल चैत्रबदी ११, सं० १८७० वि० है। इस ग्रन्थ की प्राप्त पाण्डुलिपि के लिपिकर्त्ता उनके शिष्य मलूकदासजी हैं। इसमें अध्यायों या सर्गों का नाम 'मंजिल' दिया गया है और उप अध्यायों की संज्ञा 'हुलास' (उल्लास) है। यह ग्रन्थ कुल ७ मंजिलों में विभक्त है। अन्तिम तीन मंजिलों की रचना का काल सं० १८७४ वि० दिया गया है। ग्रन्थ-रचना में मुख्यतः चौपाई दोहोंवाली पद्धति को ही अपनाया गया है। इसमें सात चौपाइयों के पश्चात् एक दोहे का क्रम है। इस कृति में यत्र-तत्र गद्यमय अंश भी मिलते हैं। प्रत्येक मंजिल के आरम्भ की गद्यमयी भूमिका श्री मलूकदास द्वारा लिखित है, जो इस ग्रन्थ के लिपिकर्ता हैं।

इस ग्रंथ की एक विशेषता यह भी है कि इसके प्रत्येक हुलास में सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा, कुसंगति-निवारण, परस्त्रीगमन-निषेध आदि के विषय में उपदेश देने के पश्चात् दृष्टान्त रूप में कोई न कोई विशिष्ट कथा दी गयी है। प्रत्येक कथा को कवि ने व्यास-पद्धति से विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। ये कथाएँ मुख्यतः अजामिल, युधिष्ठिर, द्रोपदी-चीरहरण, गणिका, जड़भरत, रहूगण, करमाबाई, भीलनी, धन्ना जाट, हिरण्यकशिपु आदि से सम्बद्ध हैं। इन कथाओं के बीच-बीच में गुरु शिष्य या अन्य पात्रों के संवाद के व्याज से विस्तार के साथ ज्ञानचर्चा की गई है। अकेले अजामिल की कथा ही ८० पत्रों (१६० पृष्ठों में) में और १५ हुलासों में समाप्त हुई है। इसी प्रकार जड़भरत और रहूगण की कथा में १८ हुलास और १०० पत्र (२०० पृष्ठ) खप गये हैं। इन कथाओं में प्रबन्धात्मकता का स्थान अत्यन्त गौण है। केवल दृष्टान्त के रूप में ही इनका उपयोग हुआ है।

---

१. मुक्तिमार्ग : पृ० ४५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे लेखक की अद्भुत कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है। इन्होंने इन सब कथाओं को बोधप्रद और रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। इसकी सातवीं मंजिल में तुरीया और समाधि आदि अवस्थाओं का विस्तार से निरूपण है लेकिन कोई कथा नहीं है।

व्यासपद्धति की कथनशैली का इनकी अभिव्यक्ति शैली और भाषा पर बड़ा प्रभाव है। इन्होंने अपनी बात समझाने के लिये उदाहरणों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। योग, ज्ञान और भक्ति में भक्ति का स्थान निरूपित करते हुए कवि का कथन है—

जोग ग्यान दो पहिया जानो। भक्ति जास में धुर पहिचानो ॥
है परसिद्ध जगत के माहीं। पहिया अधर चलत है नाहीं ॥
गरन गरन पहिया जब चलै। बाका धुर तब नैक न हलै ॥
उसी भाँति या भक्ति कूँ जानो। चलत दोउ याही सो मानो ॥

इस ग्रंथ का कुछ अंश गद्य में भी लिखित है। हिन्दी गद्य के विकास की कड़ियों की खोज के क्रम में इस कृति के गद्य का स्वरूप बड़ी उपयोगी सामग्री प्रदान करेगा। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

एक ब्रह्म सभ मैं देषिये। अपने माँहि या वैसें ही देषिये। लष चौरासी जोन मैं सब मैं है। सूरज चींटी आदि लैकरि व्यापक होय रह्यो है। वह समरूप है यह भर्म उठि जाय। जैसे पाले में पानी। पानी में पाला। अैसे समुझें। जैसे सोने में गहनो। गहने में सोना। ऐसैं प्रतीत करै। जैसे पानी में बरतन। बरतनौं सैं माटी। जैसे षाँड़ में खेलौने खेलौने में षाँड़।···ऐसी मिल ता विध विचार लीजै ॥

(२) शब्द बावनी—इसमें दोहा, चौपाई, छन्द, कुण्डलिया, कवित्त, सोरठा, झूलना आदि के अतिरिक्त अनेक राग-रागिनियों में निबिद्ध पदों में नाम, लीला, अगुण, सगुण आदि नाना विषयों से सम्बद्ध स्फुट पद समाविष्ट हैं। इनका वर्ण्य भी प्रायः वही है, जो सभी सन्तों भक्तों की वाणी में मिलता है। स्वामी सिद्धराम के विरह-वर्णन में करुणा की भावना बड़ी गहरी तथा मार्मिक है—

मैं विरहन भई बावरी, प्रीतम बिन सजनी।
मग जोवत सब द्यौस बितायो, बीत चली रजनी ॥
लोक लाज कुल संका नाहीं, तिण ज्यों तोड़ि भजाई।
हिरदय करक नींद नहिं आवै, कब मिलिहैं सुखदाई ॥[1]

---

१. शब्द बावनी : छन्द सं० २५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं कि सबसे पहले इन्होंने ही स्वामी चरणदास को ईश्वर का पर्याय माना था, जो आगे चलकर शुकसम्प्रदाय में एक मान्यता के रूप में स्वीकृत हो गया।

आदि पुरुष परमात्मा, चरनदास महराज।
सिद्धराम कहें मनुष तन, धरा प्रमारथ काज॥

× × ×

चरनदास पूरन ब्रह्म, सब घट रहे समाय॥
भक्ति चलावन सिद्धराम, जग में प्रकटे आय॥[1]

इस प्रकार अपने गुरु श्री रामरूप का भी इन्होंने भगवान् के रूप में स्मरण किया है। आरम्भ में इसकी ३९ साखियों (दोहों) में ज्ञानोपदेश है। इनके शब्दों (पदों) की संख्या ५४ है। इनकी निम्न निर्गुण होली में उपदेश और चेतावनी का स्वर मुखरित है—

होरी खेलिए सखी सन्त संगति में आय।
नरतनु फागुन बहुरि न पावे, सो यह बीत्यो जाय॥
मोह नींद सूँ जागि सुहागिन, अपनो पीव रिझाय॥[2]

इस ग्रंथ में समाविष्ट पदों की भाषा सधुक्कड़ी ही है और विषय भी प्रायः वही हैं, जो अन्य सन्तों की वाणियों में मिलते हैं। इनकी ज्ञान-वैराग्यमूलक वाणी का एक नमूना यहाँ प्रस्तुत है—

अब जग क्या करेगा मैं तो चरनदास का पोता।
ऊँचे संग ऊँचा ही हुआ लिया ब्रह्म में गोता॥
ज्ञान मान परकास भया जब गया तिमिर जो होता।
अनभै शब्द सुनाय जगाया जनम जनम का सोता॥
देत सैन बन्धन सूँ छूटा ज्यों पिंजरे का तोता।
निर्भै भये अमर पद पाया गया नरक दुख भोथा॥
रामरूप गुरुदेव दया सूँ तजा भर्म कुल थोथा।
सिद्धराम सोई अब हूवा आदि निरंजन जो था॥[3]

'शब्द बावनी' के अतिरिक्त इनके ५४ पदों का एक संग्रह और प्राप्त है, जिसे स्वामी सिद्धराम ने जयपुर के बाबा जोगमाया जी को स्वयं भेंट में दी थी। यह संग्रह सरसकुंज—जयपुर में जिल्द सं० ३४२ में सुरक्षित है।

---

१. मुक्तिमार्ग : पृ० ३२५।
२. वही : पृ० ३३६।
३. वही : पृ० ३५८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धराम जी का शिष्य-मण्डल—इनके प्रमुख शिष्यों में जीवनदास, सुदर्शनदास, संगीदास, जीवनराम, पूजानंद, अमरसिंह (दास:), अलखसनेही, तुलसीदास (वेरी के महंत), रामकृपाल, रतनदास, सदानन्द, चतुरदास, कन्हैयादास, गिरिवरदास, जोगनाथ, ब्रह्मदास (बलियाणा के प्रथम महंत), रामविलास और मलूकदास के अतिरिक्त तीन देवियाँ—मैनाबाई, कोकिलाबाई उपनाम बीबादास और ज्ञानबाई विशेष प्रसिद्ध हैं।[1] इनमें भी श्री मलूकदास, मैनाबाई, कोकिलाबाई और गिरिवरदास काव्यरचना और सम्प्रदायविस्तार की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। सुश्री ज्ञानबाई की कुछ बानियाँ प्रेमदास जी की गुटका सं० ५० में संकलित हैं। इससे अनुमान होता है कि ये भी कवयित्री थीं।[2] स्वामी जी के शिष्य अलखसनेही जी भी प्रकृत्या कवि थे। इनके कुछ पद प्राप्त हैं। इन्होंने पौषवदी १०, सं० १८६४ वि० को रामरूप जी के 'जैमिनिपुराण' की प्रतिलिपि पूर्ण की थी। इसी प्रकार सिद्धराम जी के एक अन्य शिष्य रतनदास जी के शिष्य प्रेमदास जी ने सं० १८९१ वि० में सिद्धराम जी के 'भक्तिसिद्धान्त' ग्रंथ की प्रतिलिपि की थी। उन्होंने कुछ अन्य बानियों की भी रचना की है।

स्वामी सिद्धराम की आचार्य गद्दी की परम्परा—

महन्त मलूकदास जी—(सं० १८७८-१८९७ वि०)[3]—स्वामी जी की शिष्यमण्डली में वरिष्ठ श्री मलूकदास माघ सुदी ९, सं० १८७८ वि० में दिल्ली की गद्दी के महंत हुए। इनकी बानियाँ प्रसिद्ध हैं। इनके केवल तीन ही शिष्यों का उल्लेख मिलता है—(१) सेवादास और (२) कृष्णवमन (कृष्णदयाल) तथा

---

१. सिद्धराम जी के वसीयतनामे पर उनके जिन शिष्यों ने हस्ताक्षर किए थे, वे निम्नलिखित हैं—१. जीवनदास, २. ब्रह्मदास, ३. पूजानंद, ४. सुदरशनदास, ५. अमरसिंहदास और ६. तुलसीदास।

२. इनका एक पद इस प्रकार है—

होरी खेलूँगी बरजोरी कन्हैया तोकूँ जान न देऊँगी।
और सखी सब हार गई हैं मैं तोसों बदलो लेऊँगी॥
आज हमारो दाव बनो है हाहा करिके हराऊँगी।
एक आँखि में काजर आँजि हाथ पकरिके नचाऊँगी॥
पीताम्बर लै लहँगा चुनरी हार सिंगार पहिराऊँगी।
आज करूँ कारो से गोरी गाढ़ो रंग चढ़ाऊँगी॥
ज्ञानबाई सिद्धराम कृपा तें चरन चिह्न चित लाऊँगी॥

—प्रेमदास जी के गुटका सं० ५० से उद्धृत।

३. यह महन्तपद का कालखण्ड है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमगोपाल। श्री सेवादास इनके उत्तराधिकारी हुए। उन्होंने लगभग २० वर्ष तक महंत पद पर रहते हुए धर्म और सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में योगदान किया। उन्होंने अपने वसीयतनामे में अपने शिष्य सेवादास को दिल्ली के अपने प्रधान स्थान के अतिरिक्त ७ अन्य हवेलियाँ भी सौंपी थीं। यह इस बात का प्रमाण है कि इन्होंने अपनी सूझ-बूझ और क्षमता के फलस्वरूप अपनी परम्परागत सम्पत्ति में पर्याप्त वृद्धि की।

सेवादास जी (सं० १८९७-१९२७ वि०)—ये ३० वर्ष तक रामरूप जी की दिल्ली की गद्दी के महन्त-पद पर रहे। इन्होने भी अपनी परम्परा के स्थानों का नियमन बड़ी योग्यता के साथ किया। इनके प्रमुख शिष्यों में मनोहरदास, गंगादास, शादीराम, मन्नूदास, मुक्तदास, श्रीरामदास, मंगलदास, शालिग्राम (जो बाद में महंत हुए), रामजीदास, भोपादास, निश्चलदास, प्रीतमदास और सुन्दरदास के साथ तुलसीबाई के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश गृहस्थ प्रतीत होते हैं। इन्होने अपने उत्तराधिकारी श्री शालिग्राम को ६ हवेलियाँ सौंपी थीं।

शालिग्राम जी (सं०१९२७-१९५७ वि०)—शालिग्राम के प्रमुख शिष्यों में भक्तदास, तुलसीबाई, गोपालदास, मनोहरदास, शादीरामदास, रामशरणदास, गंगादास, जयरामदास, निश्चलदास, प्रीतमदास, सुन्दरदास, हरनारायण तथा दाताराम (अन्तिम दोनों क्रमशः महंत-पद पर आसीन हुए) के नामों का विशेष उल्लेख मिलता है।

हरिनारायण जी और दाताराम जी (सं० १९५७-१९६० वि०)—दोनों सगे भाई और गुरुभाई थे। ये ग्राम अठोर (गाजियाबाद) के जाटवंश में पैदा हुए थे। बड़े भाई हरिनारायण जी की मृत्यु के बाद दाताराम जी ने कुछ दिनों तक गद्दी सँभाली। म० हरिनायण जी के अनेक शिष्यों में से जैरामदास जी, श्री पुरुषोत्तमदास, नरोत्तमदास, गंगादास जी, रामसरनदास और भक्तदास विशेष उल्लेखनीय हैं। ये भी अच्छे कवि थे। इनकी फुटकल बानियाँ चरणदासी सम्प्रदाय के बानी संग्रहों में यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं। गुरुवन्दना के दो दोहे उदाहरण के रूप में यहाँ प्रस्तुत हैं—

आदि पुरुष मतिमान गुरु, तुम कूं सीस नवाय।
हरिनारायणदास की, सब विधि करो सहाय॥
श्री गुरुदेव मनाइये, पूरण हो सब काम।
स्वामी सालिकराम को, कोटि कोटि परनाम॥

इन्होंने 'श्रीमद्भागवत' के दशम् स्कन्ध का अनुवाद भी किया था। श्रीमद्भागवत भाषा का रचनाकाल सं० १९३६ वि० है। उस समय तक उन्होंने महंत-पद धारण नहीं किया था। श्लोकानुसारी पद्यबद्ध इस अनुवाद ग्रंथ की कुल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र संख्या ८७ है। इसकी पाण्डुलिपि महंत प्रेमदास जी (गद्दी श्री रामरूप जी — दिल्ली के वर्तमान महंत) के यहाँ सुरक्षित है। इनके बाद इनकी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले भोलादास जी इन्हीं के शिष्य थे। हरिनारायण जी के एक अन्य शिष्य गोसाईं केशवदास ने 'इन्द्रप्रस्थ महातम' (इन्द्रप्रस्थ भाषा) नामक एक ग्रंथ की रचना की थी। यह जयपुर के 'सरसनिकुंज' में सुरक्षित है। यह 'सौभरसंहिता' नामक ग्रंथ की पद्यबद्ध भाषा-टीका है। इसमें दोहा-चौपाई के अतिरिक्त कुछ अच्छे सवैया तथा कवित्तों का भी समावेश है। इसकी एक सवैया उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है—

भीषम द्रोण विलोकत द्रौपदी खैंचि कै राजसभा महिं आनी।
द्वारिकानाथ पुकारत केशव दीन दुखी अति आरत बानी॥
ताहि समै तन चीर बढ्यौ अंग ज्यौं उमग्यौ परवाह कौ पानी।
हारि रह्यौ मन माँहि दुसासन खैंचत खैंचत बाँह पिरानी॥

महन्त भोलादास जी—इनके समय में भी सम्प्रदाय की सम्पत्ति में वृद्धि ही हुई। महन्त भोलादास के समकालीन एवं शुकसम्प्रदाय के पुनरुद्धारक श्री सरस-माधुरीशरण जी ने भोलादास जी की प्रशंसा इन शब्दों में की है—

श्री स्वामी महाराज अब, भोलादास महन्त।
अति सज्जन सुन्दर सरस, गुनग्राही गुनवन्त॥
चतुर शिरोमणि बुद्धिमत, अरु सूरत सरदार।
सब विद्या सम्पन्न हैं, बड़े मुआफीदार॥
प्रारब्धी पुरुषारथी, राजयोग लवलीन।
तत्वदर्शी ज्ञाता बड़े, अति ही परम प्रवीन॥
अपने निज अस्थान की, शोभा करी अपार।
बिजली पंखा रोशनी, जल नल विविध बहार॥[1]

श्री कल्याणदास और गणेशदास इनके गुरुभाई थे। इनके शिष्यों में प्रेमदास जी, हीरादास जी और लाड़िलीदास जी विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रेमदास जी इस समय महन्त हैं।[2]

सिद्धराम जी की आचार्य गद्दी के अतिरिक्त उनके अन्य शिष्य गद्दियों का परिचय—

(क) मैनाबाई—सुश्री मैनाबाई स्वामी सिद्धराम जी की तीन प्रमुख

---

१. मुक्तिमार्ग (भूमिका) : पृ० ६३।

२. आप बड़े ही सहृदय, संत और अतिथिसेवी तथा अपने नाम के अनुरूप प्रेमी सज्जन हैं। ये बड़े ही साहित्यानुरागी हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्याओं में से एक थीं। इनका अन्य नाम मुन्नाबाई भी मिलता है। दिल्ली में इन्होंने कोई स्वतन्त्र स्थान बनाकर निवास किया था। इनकी परम्परा इनके प्रशिष्य मनोहरदास तक मिलती है जो इस प्रकार है— मैनाबाई—चतुरदास—मनोहरदास (सं० १९६५ वि० तक जीवित)। मैनाबाई के शिष्य चतुरदास जी सखीभाव से रहते थे। सं० १९२७ वि० वाले वसीयतनामे पर इनके हस्ताक्षर हैं। उनके एक शिष्य बुधरामदास रामसखी जी की गद्दी के महन्त हुए तथा गृहस्थ हो गए। यह थाँभा कायस्थों की गली (चीरेखान मुहल्ला) में था। इस स्थान का विशेष परिचय अज्ञात है।

(ख) कोकिलाबाई—(श्रीमती कोकिला बीबी जी—सं० १८७० से १९५० वि०)—स्वामी सिद्धराम जी की राधा-कृष्ण की प्रेमसाधना में लवलीन शिष्या सुश्री कोकिलाबाई मुख्यतः दिल्ली और वृन्दावन में (जंजुगलघाट के स्थान में) रहती थीं। इनके शिष्य मनमोहनदास और प्रशिष्य राधिकादास ने भी प्रचुर साहित्य रचना की है। इनके कई नाम मिलते हैं; यथा—बीबादास, बीबादासी, बीबादासि और विविदासी। दिल्ली में उन्हें केवल विवि या बीबी जी ही कहा जाता था। यह मोहनदास जी का ही दिया हुआ नाम है। विवि का अर्थ है—युगल। अतः प्रिया-प्रीतम की दासी के अर्थ में ही मुख्य रूप से इस शब्द का प्रयोग किया गया है।[1]

बलिहारी बीबादास गुरु, जै जै कृपानिधान।
प्रेमपारावधि भक्ति वपु, प्रकटे दाता ध्यान॥
पठये श्यामा श्याम के, दम्पति कला महान।
आए हौ निज धाम तें, जीवन हित कल्यान॥[2]

---

१. नमो नमो श्री बीबा दासी।
विव को शब्द जुगल सूचक है, राधा कृष्ण सोई सुखरासी॥
मगन मानसी सेवा में नित, पिय प्यारी की करत खवासी।
श्री प्यारी प्रीतम दुलराये, करी केलि पद रचना खासी॥
इन्द्रप्रस्थ रहिके कुछ एक दिन, फेरि भई वृन्दावन बासी।
वन उपवन में रँगी रँगीली, परिकरमा की व्रज चौरासी॥
जब लगि रही जगत के माहीं, गाये गुन दम्पति रस रासी।
तन को त्याग गई निज पद में, भई अचल नव कुंज निवासी॥
देउ महल की टहल मया करि, लाख लाख यह जिव अभिलासी।
सरसमाधुरी दीन की बिनती, सहस कान सुनिये सुखरासी॥
—श्री सरसमाधुरीशरण कृत वन्दना।

२. प्रेम पयोनिधि : भाग २ : पृ० २४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मुहल्ला बल्लीमारान में स्वतन्त्र स्थान बनाकर रहती थीं। यह स्थान रामरूप जी की आचार्य गद्दी के पास ही था। इनकी परम्परा इस प्रकार है—

सुश्री कोकिलाबाई
|
मोहनदास या मनमोहनदास (सं० १९६० वि० तक वर्तमान)
|
श्यामदास — राधिकादास — किशनदास (केवल कृष्णदास)

कोकिलाबाई जी की साधना प्रधानतः सखीभाव की थी। इसकी पुष्टि मनमोहनदास जी की इन पंक्तियों से भली-भाँति होती है—

जुगल कृपा साक्षात तुम, प्रगटे सखी स्वरूप।
मनमोहन बीबादास गुरु, तुम्हरे चरित अनूप ॥[1]

ये उच्च कोटि की साधिका एवं कवयित्री थीं। इनके कई गृहस्थ और विरक्त शिष्य अच्छे कवि थे। स्वामी सिद्धराम जी उनका बड़ा सम्मान करते थे। उनका स्वर्गवास ८० वर्ष की अवस्था में सं० १९५० वि० में हुआ था।

श्री बीबादास के निम्न पद की भाषा में पूरबीपन की झलक द्रष्टव्य है—

कोई मिलावौ कन्हइया।
अस मन व्याकुल हरि बिना, वह मूरति सूरति मन अँटकी लटक रही भटकइया ॥
दिन प्रति बीतत पल-पल गिन-गिन, कब दरसन देगो वो जिवइया।
बिरह की हूक उठै तन सुध ना, प्रेम लहर को बुझइया ॥
चित की पीड़ा चित ही जानै, कासों कहूँ को सुनइया।
बीबादास सिद्धराम कहत हैं, अपनी ओर निबहिया ॥
सरसकुंज—पाण्डुलिपि : सं० ३९६।

राग बसन्त में रचित बीबादास जी का यह पद बड़ा ही माधुर्यपूर्ण है—

नन्दनन्दन वृषभान नन्दिनी सदा बसन्त मनावैं।
नित्त विहार करत कुंजन में आनन्द मंगल गावैं ॥
उड़त गुलाल अबीर अरगजा प्रेम रंग बरसावैं।
हिल मिल खेलत दम्पति छवि सो शोभा कहत न आवै ॥
नैनन रूप छकावै।
'विवादासि' सिद्धराम श्याम कूँ तन मन भेंट चढ़ावै ॥ —वही।

---

१. प्रेम पयोनिधि : पृ० २३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न राग-रागिनियों से युक्त इनके ५० पदों का एक संग्रह महन्त प्रेमदास जी (दिल्ली) के संग्रहालय में है। सरस निकुंज-जयपुर के संग्रह में इनके लगभग १०० पद संगृहीत हैं। इनका समावेश जिल्द सं० ३९६ में है। इनमें से कुछ पद लीलागान से सम्बद्ध हैं और कुछ निर्गुण सन्तों की बानी शैली में रचित हैं। इनके पदों में यद्यपि ह्रस्व-दीर्घ मात्रा-भेद पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है फिर भी उनमें हृदय को छू लेने की शक्ति वर्तमान है। इनका एक पद यहाँ द्रष्टव्य है, जो मानिनी राधा के सम्बन्ध में है—

मनावो कोई जाय मानिनी गई रूठ।
तुनक सुभाव गुमान भरी है मेरी कही मानै सब झूठ॥
उन बिन सब रंग फीको लागै तन मन बंसी लै जा लूट।
राधा जू की पाँव पैंजनी मेरे कुण्डल रही जूट॥
हा हा खावौं बिनती करौं प्रेम की मारी मेरे मूठ।
सिद्धराम बीबादास विकल मन प्रीति रस घरी गई घूट॥

इनकी निर्गुन बानियों की कुछ झलक इन पंक्तियों में देखी जा सकती है—

हरी कृपा जब होई, नर माला फेरै कोई।
…बीबादास कहै संत बसौ हिये दासी करौ हरि मोई॥
सिद्धराम गलतान ध्यान में चरनन सुरत समोई॥

कोकिलाबाई जी की भाषा में पंजाबीपन की भी बानगी वर्तमान है।[1] तात्पर्य यह है कि ये एक कुशल कवयित्री के साथ ही उच्चकोटि की साधिका थीं।

मनमोहनदास—श्री मनमोहनदास कोकिलाबाई जी के प्रिय शिष्य, अच्छे साधक, ज्ञानी महात्मा और बड़े ही योग्य कवि थे। ये सं० १९६० वि० के आस-पास तक अवश्य जीवित रहे होंगे, क्योंकि 'मुक्तिमार्ग' की भूमिका में श्री सरस-माधुरीशरण ने अपने गुरु श्री बलदेवदास के साथ इनका दिल्ली में दरशन करने का वृत्त इस प्रकार दिया है—

श्री मनमोहनदास जी, रसिक संत गुनवंत।
शिष्य श्री बीबादास के, मन के हरन महंत॥
तिनका दरसन गुरू कराया। जिनसे मिल मैं अति हरषाया॥

---

१. मेरा मन लीता वो स्याम बाँसुरी में।
मैं बन गई अकेलोइ ठाढ़ी छू मन्तर पढ़ लीता वो।
अब कोई आन मिलावै स्याम कूँ सोई जान मन मीता वो॥
वही मुरति नैननि में अँटकी और दरस सब रीता बो।
बीबादास सिद्धराम कहत हैं कभी तौ मिल मन मीता वो॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े आश्चर्य की बात है कि पर्याप्त खोज-बीन के बाद भी इनका प्रामाणिक जीवनवृत्त प्राप्त नही हो सका। इनकी बानियों का संग्रह प्रिंटिंग वर्क्स-देहली से सं० १९७३ वि० में तीन भागों में प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक मुंशी हीरालाल भार्गव (जयपुर) हैं। अपने गुरु के आदेशानुसार मनमोहनदास जी भी माधुर्य भाव (सखी भाव) की ही भक्ति करते थे। इनका परलोकवास सं० १९६० वि० में हुआ था। इनके शिष्य केवलकृष्ण जी (किशनदास) इनकी बानियों के लिपिकर्त्ता एवं प्रकाशक हैं। मनमोहनदास जी बड़े ही गुरुसेवी थे। कहते हैं कि अपने ८० वर्ष के गुरु (सुश्री कोकिलाबाई) को उन्होंने अपनी पीठ पर लादकर वृन्दावन की परिक्रमा कराई थी।

मनमोहनदास का साहित्य—

प्रेमपयोनिधि—प्रेमपयोनिधि मध्यकालीन भक्तिधारा का वैष्णवकाव्य है। यह विशेषतः राधाकृष्णोपासना सम्बन्धी एक प्रतिनिधि काव्यकृति है। इसके तीन भाग हैं। प्रथम भाग का प्रारम्भ परम्परासम्मत मंगलाचरण से होता है। कवि ने गोस्वामी तुलसीदास की मंगलाचरण सम्बन्धी व्यापक धारणा का पूर्णरूप से अनुकरण किया है। इस अनुक्रम में गंगा, तुलसी, सालगराम, श्रीमद्भागवत, श्रीजनक, वैदेही, वेदव्यास और महामुनि शुकदेव आदि परिचित एवं पौराणिक व्यक्तित्वों के प्रति मनमोहनदास जी का सादर नमन निवेदित है। तदनन्तर गुरु परम्परा में स्वामी रामरूप, स्वामी सिद्धराम, श्रीमती बीबादास जी, (श्रीमती कोकिला बीबी जी) और समस्त वैष्णवों को नमस्कार किया गया है।

कवि ने अपने गुरु बीबादास जी की बड़े विस्तार से वन्दना की है। कवि की दृष्टि में बीबादास जी रति की प्रतिकृति लज्जा की तरह प्रिया-प्रीतम-प्रीति की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति हैं। मनमोहनदास जी के विचार से सखी भावना के प्रसार के लिए मानो युगल ने अपने को बीबादास के रूप में अवतरित किया है।[1]

महाकवि तुलसीदास की तरह मनमोहन जी भी यह स्वीकार करते हैं कि मैं छन्द और बन्ध की बहुवर्णी विधि से अपरिचित हूँ। कालिदास ने भी अपने को 'मन्दः कवियशः प्रार्थी' कहा था, पर कालिदास और तुलसी की अपनी निरीहता की अभिव्यक्ति उस आत्मविश्वास से सम्पृक्त है, जिसने उन्हें कालजयी बना दिया। गुरुभक्ति की अनन्यता, उसी का एकमात्र भरोसा, उसका शिष्य के समस्त कर्मों का साक्षी होना, उसके प्रति प्रदर्शित सम्मान, विनय, अपनी दीनता और उसकी

---

१. युगल रूप की रास ह्वै, प्रगटे सखी सरूप।
जै जै बीबादास गुरु, दम्पति रसिक अनूप॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयालुता आदि के प्रसंगों से कवि की सात्विक वृत्ति स्पष्ट होती है ।[1]

तात्पर्य यह कि प्रथम भाग का प्रथम प्रभाव एक प्रकार से गुरु को ही समर्पित है। दूसरे प्रभाव में श्रीदम्पति श्याम-श्यामा युगल के प्रताप का वर्णन है। तदनुसार श्री कृष्ण सच्चिदानन्द रूप हैं। रूढ़िगत दार्शनिक मान्यताओं की स्वीकृति के बाद कवि का कथन है—

निरगुण, सरगुण, सर्वमय, सर्वोपरि पहिचान ।
दम्पति पद तब पाइए, चार भाव ये जान ।।

गो० तुलसीदास की भाँति मनमोहनदास जी के इस ग्रन्थ में निर्गुणसगुणात्मक ब्रह्म सम्बन्धी मान्यता का सशक्त तार्किक प्रतिपादन नहीं है। कवि ने सगुण रूपोपासना पर ही अधिक बल दिया है और आराध्य श्री युगल की दर्शनीयता तथा उनकी सर्वमयी शोभासम्पन्नता के सहज बिम्बों के प्रकाशन की सुलभता को ही इस धारणा का मुख्य कारण बताया है ।

तीसरे प्रभाव में दम्पति-महिमा का चित्रण है। कवि के विचार से प्रेमाभक्ति योग, यज्ञ, जप, तप, दान, तीर्थ, व्रत, कर्म तथा धर्म आदि की अपेक्षा नहीं रखती । जब तक अंग-अंग में विरह-व्याकुलता समा नहीं जाती, तब तक प्रिय-प्यारी का प्रीतिकर सान्निध्य सुलभ नहीं हो सकता। यद्यपि इनमें कबीर जैसी अनुभूति की गहराई एवं वियोग से उपजी आन्तरिक करुणा का अभाव है परन्तु कहीं-कहीं मार्मिक तड़प जरूर व्यंजित होती है—

खरो हियो अकुलाय अस छाती फाटी जाय ।

इसी क्रम में दम्पति के पारस्परिक रति का कवि ने बड़ा ही मांसल और ऐन्द्रिक चित्रण किया है—

हिलन मिलन सुख झिलन परस्पर रंभन चुंभन ।
रूप सुधारस करत पान नैनन करि कुंचन ।।

कथानक की संरचना 'प्रसंगों' में विभक्त है। काव्य में तत्कालीन प्रचलित छन्दों का निर्वाह भी सफलता से किया गया है। दोहा. सोरठा, छन्द, चौपाई, कुंडलिया, अरिल्ल, चौबोला, छप्पे, तौंबर, कवित्त, सवैया, झूलना आदि विविध छन्दों और काव्यरूपों के प्रयोग से कवि ने अपना रचना-नैपुण्य सिद्ध किया है ।

---

१. 'प्रेमपयोनिधि' के लिए श्री सरसमाधुरीशरण का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है—

"ऐसी बानी सुनी न देखी । मन माहीं निश्चय करि लेखी ।।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रेमपयोनिधि' का दूसरा भाग भी प्रथम भाग के अन्तर्वस्तु से ही अनुप्राणित है। चतुर्थ प्रभाव से आरम्भ करके इसे पहले भाग से जोड़ने का प्रयास किया गया है। मंगलाचरण और स्तुति के पद यहाँ भी उपलब्ध हैं। इसी क्रम में शुक्राचार्य की स्तुति और 'चरणदासाचार्य स्तोत्र अष्टक' स्वतन्त्र कृति के रूप में समाविष्ट हैं। चरणदास जी की जन्मभूमि डहरा तथा उनके निवासस्थान दिल्ली की महिमा का ऐसा गान कवि ने किया है कि उसे पढ़कर 'अरे मन दिल्ली चलो ही चाहिए' की अनायास इच्छा उत्पन्न होती है। 'बारहमासा' के माध्यम से इस भाग में दिल्ली के आकर्षण और गुरु के प्रति भक्तिभाव का बड़ा ही सुन्दर अंकन किया गया है।

रचना में भगवत्-भावना का पर्याप्त विस्तार से प्रकाशन हुआ है। पदों में लयात्मकता एवं मिठास भी कम नहीं है। अन्तर की सांगीतिक अभिव्यंजना से आराध्य के प्रति प्रदर्शित एकनिष्ठता, तन्मयता एवं सहज समर्पण का रंग और गाढ़ा हो गया है। अपनी इस निष्ठा की घोषणा कवि ने इन छन्दों के माध्यम से की है।

लगन मेरी लगी तुम्हीं ते श्याम।
बुरी कहौ कोऊ भली कोहु न काहू से काम ॥

इस प्रसंग में रेखता का भी कवि ने बड़ी सफाई से प्रयोग किया है—

गोविन्द यार प्यारे रहते हो क्यों खफा।

इसका तृतीय भाग लोक जीवन के भाव-विलास, आभ्यंतरिक तरंग एवं सीधी सरल धुन के एकदम करीब है। बसन्त और फाग के ही पदों से इस भाग की संरचना हुई है। भक्त भी श्याम से होरी खेलते हैं और राधा-कृष्ण की होरी तो सतत् होती ही रहती है—

खेलूँगी हरि होरी मैं तुमसे।
× × ×
मिला इस होरी में पिया मुझे अपना।
× × ×
ठाड़ो रहु श्याम कहत गोरी।

बरसाने की होरी भी खूब जमती है। कवि ने श्यामा-श्याम के होरी खेलने की मुद्रा, उनके रूप, वेश आदि का बड़ा स्वाभाविक और सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। राग मलार में वियोग की तड़प एवं वृन्दावन चलने की व्याकुलता परिलक्षित होती है। इस भाग के पद्यों में आद्योपान्त लोकधुन का निर्वाह हुआ है। फाग, होरी, मलार और राग सोहर आदि के माध्यम से कवि ने प्रिया-प्रीतम की विविध लीलाओं का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। निष्कर्षतः यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निस्संकोच कहा जा सकता है कि श्री मनमोहनदास की काव्य-सम्पदा मध्यकालीन उच्चकोटि के भक्त कवियों के समकक्ष है।

राधिकादास जी—सं० १९३८ वि० में लिखित महन्त शालिग्राम के वसीयत-नामे में इनको नवनिधिदास का शिष्य लिखा गया है। परन्तु यह यथार्थमूलक नहीं है। इस वसीयतनामे के आधार पर सं० १९३८ वि० तक राधिकादास का वर्तमान होना निश्चित है। ये मनमोहनदास जी के योग्यतम शिष्यों में से थे। महंत प्रेमदास (दिल्ली) के यहाँ सुरक्षित एक गुटका में इनकी भी बानियाँ संगृहीत हैं। ये भी रसिकभाव के कवि थे। इनकी साधना रसिकभावापन्न थी। निम्न पद में उन्होंने अपना नाम राधिकादासी लिखा है। इनकी रचना के दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) ॥ होरी का पद ॥ ॥ राग बहार ॥

सखि आयो फाग सुहावनो।
सब मिलि चलो वासे होरी खेलें आज भयो मन भावनो।
सुन्दर श्याम लाल मनमोहन काजल दे गुलबावनो॥
मुख मीड़े अरु चोवा छिड़के भीज भिजाय रिझावनो।
तारी दै दै गारी गावें फेंट पकरि के नचावनो।
राधादासि रस रंग भरे दोउ प्रेम की प्रीति बढ़ावनो॥

(२) चल सखि देखन जाय नंदनंदन को बैरागी भयो है।
डंड कमंडल कर मृग छाला अंग भभूत रमाय॥
कानन मुद्रा गर बिच सेल्ही सिंगी नाद बजाय।
आसन मारि मढी में बैठो ध्यान समाधि लगाय॥
कबहूँ नटनागर घर बन बिच नृत्त करत अधिकाय।
अब यह छवि देखो जोगी की कैसो रूप बनाय॥
राधिकादास सुनु मोहन प्यारे तव छबि पर बलि जाय।

—(सरसनिकुंज की पाण्डुलिपि सं० ३९६ से उद्धृत)

(ग) गिरिवरदास (सं० १८७५–१९५२ वि०)—ये भी स्वामी सिद्धराम के शिष्यों में एक थे। स्वामी जी ने बेलनगंज-आगरा (लँगड़ा की चौकी के पास) में स्थित अपनी गद्दी का महन्त उन्हें नियुक्त किया था। ये सं० १९१९ से १९५२ वि० के बीच हुए मेलों में प्रायः उपस्थित होते रहे। अतः अनुमान है कि सं० १९५२ वि० तक निस्सन्देह ये महन्त-पद पर रहे होंगे। आगरा की इस गद्दी की परम्परा इस प्रकार मिलती है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी सिद्धराम—(सं० १८७८ वि० तक)
|
गिरिवरदास[1]—(सं० १८७५ से १९५२ तक)
|
रामगोपाल—(सं० १९५२ में १९६० तक)।
|
गंगादास—(सं० १९६० से १९७५ वि०)।
|
मनोहरदास—(सं० १९७५ से २०१३ वि० तक)।

—अब यह परम्परा सम्भवतः समाप्त हो गयी है।

स्वामी रामरूप जी के अन्य शिष्य तथा उनकी महन्त-परम्परा—

(२) **रामकृपाल जी तथा लुकसर की परम्परा**— ये रामरूप जी के शिष्यों में सिद्धराम जी के बाद सर्वाधिक सम्मानित महात्मा थे। उन्होंने ३-४ स्थानों का निर्माण किया था। ये दिल्ली के पास ककरोई नामक स्थान पर रहकर कृष्णभक्ति का प्रचार करते थे। सम्भवतः वहाँ का थाँभा आगे चलकर समाप्त हो गया, क्योंकि १९१९ वि० के बाद के मेलों में यहाँ से कोई भी सम्मिलित नहीं हुआ। ये एक उच्चकोटि के कवि थे। रामकृपाल जी की बहुत सी बानियाँ सरस-कुंज-जयपुर के पुस्तकागार में सुरक्षित हैं। उन्होंने अपने पदों में कहीं रामकृपाल, कहीं कृपाल और कहीं कृपा सखी की छाप दी है। 'रसिक माधुरी प्रताप' में भी इनके पद संकलित हैं।[2] इनके दो पद यहाँ नमूने के रूप में उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१) अचवन करत जुगल सुख खान।
ले झारी सीतल जल जमुना लाई सखी सुजान॥
भर गिलास दीनों दंपति कर पीवत जीवन प्रान।
कृपा सखी दोऊ हाथ पुछाले पट पोंछत हित मान॥

(२) हिंडोरा माई झूलत श्री राधे गोपाल।
नव जौवनि गुन रूप सुन्दरी संग रंगीली बाल॥
तैसोहि बन कुसुमित प्रफुलित तैसेहि खग मृग व्याल।
तैसी घटा घुमड़ि बन छाई तैसी बनी बन माल॥
तैसेहि मंद सुगंध शीत युत पवन बहत तिहि काल।
तैसेहि मणि कंचन आभूषण तैसे बसन सब लाल॥
झूलि झुलाइ किये मन पूरण गावत राम कृपाल॥

---

१. सं० १९३९ वि० में हुए मेले मे यहाँ से गिरिधारीदास महन्त रूप में गये थे। सम्भवतः इन्हें ही उक्त बही में गिरिवरदास के स्थान पर गिरिधारीदास लिखा गया है।

२. जगदीश जी राठौड़ की पाण्डुलिपि से साभार।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामरूप जी की अनेक शिष्य गद्दियों में से एक लुकसर, जिला रोहतक में भी थी। रामकृपाल जी यहाँ के प्रथम महंत थे। इनकी वाणी अत्यन्त मधुर एवं आकर्षक थी। ये प्रेमाभक्ति में लीन रहने वाले तथा गोपाल जी के उपासक थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि इनकी वाणी इतनी सिद्ध थी कि जो कह देते थे वही घटित हो जाता था।[1] इनकी लुकसर वाली शिष्य-परम्परा अब भी चल रही है, जो इस प्रकार है—

म० रामकृपाल जी
|
म० बिहारीदास जी
|
म० ठाकुरदास जी— सं० १९३० वि० तक वर्तमान
|
म० बलदेवदास (सं० १९३०–१९५८ वि०)
|
म० रामदास (सं० १९५८–१९६८ वि० तक) सरसमाधुरीशरण
|
नन्दरामदास (सं० १९६८ से सम्भवतः १९८० तक)
|
बाबा मोहन दास (सं० १९८० वि० से २०१० वि० तक वर्तमान)

बिहारीदास—ये सखी भाव के उपासक थे। इनके सम्बन्ध में 'मुक्तिमार्ग' के सम्पादक श्री सरसमाधुरीशरण का यह कथन द्रष्टव्य है—

जुगल विहार उपासना, कुंज केलि आनन्द।
दिव्य दृष्टि देखें सदा, मिलते परमानन्द॥

—मुक्तिमार्ग : (भूमिका) पृ० ४७।

ये 'माघमाहात्म्य' नामक रचना के कृतिकार हैं। इन्होंने कुछ फुटकल पदों की भी रचना की है। ये अधिकांशतः ककरोई में ही रहा करते थे। 'माघमाहात्म्य' के साथ संकलित इनके पद मुख्यतः प्रिया-प्रीतम के विहार से सम्बन्धित हैं। सम्प्रति आपकी शिष्य परम्परा लुकसर और सरसकुंज—जयपुर में चल रही है। इनके दो पद यहाँ उदाहरणार्थ उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१) ॥ शयन का पद ॥ राग सारंग

नवल निकुंज सेज दंपति मिलि कीनो है आराम।
सब परदा छिटकाय अलीगन करके द्वार प्रनाम॥
चलीं सखी सब निज निज कुंजन उर धरि श्यामा श्याम।
बिहारिदास सखि कृपा विचारत निरखि केलि सुख धाम॥

---

१. नवसंतमाल : पृ० ९९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। श्री लाल जी को बधाई ।।
आज अति ब्रजपति के आनन्द ।
रानि जसोमति कूख सिरानी प्रगट्यौ गोकुल चन्द ।।
मंगलचारि शुभ गावति आवति ब्रजनारिन के वृन्द ।
विप्र सुनारिन असीस उचारैं निरखत मुख अरविन्द ।।
दान मान परितोषि जाचकनि माँट सुनावत छन्द ।
भादों कृष्ण अष्टमी के दिन प्रगटे आनन्द कण्द ।।
जाको शिव सनकादिक चाहत चरन कमल मकरन्द ।
विहारीदास गुरु कृपा निहारैं दूर गये दुख दन्द ।।

(क) ठाकुरदास—इनका जन्मस्थान लुकसर है । आश्विन कृष्ण १२, सं० १९३० वि० में इनका परलोकवास लुकसर में ही हुआ । महंत सेवादास (दिल्ली) के वसीयतनामे पर इनका हस्ताक्षर (सं० १९२७ वि०) विद्यमान है । ये एक सिद्ध महात्मा थे । प्रसिद्धि है कि उन्होंने एक बार अपने आशीर्वाद से एक मृत व्यक्ति को जिला दिया था । कहते हैं भगवान् कृष्ण सदा उन्हें दर्शन दिया करते थे । इन्होंने लुकसर में एक मन्दिर बनवाया था और वहीं रहते भी थे । 'नवसन्तमाल' में स्व० रूपमाधुरीशरण ने इनका विस्तृत परिचय दिया है ।[1] इनकी शिष्य-परम्परा इस प्रकार मिलती है—

ठाकुरदास जी
- बलदेवदास जी
  - नन्दराम जी
  - सरसमाधुरीशरणजी
- ध्यानदास जी
  - रामसरनदास जी

(ख) बलदेवदास—ये ठाकुरदास जी के शिष्य तथा सरसमाधुरीशरण जी के गुरु थे, अतः 'मुक्तिमार्ग' की भूमिका में इनका उन्होंने विस्तृत परिचय दिया है । इनके सम्बन्ध में श्री सरसमाधुरीशरण का यह कथन द्रष्टव्य है—

गौर बदन मन को हरन, तिनको सुन्दर रूप ।
ज्ञानयोग पूरन कला, सच्चिदानन्द स्वरूप ।।
इच्छाचारी अवनि में, विचरत रहे स्वच्छंद ।
भजन भावना में मगन, पूरन प्रेमानन्द ।।[2]

---

१. नवसन्तमाल : पृ० १०२ ।
२. श्री शुक सम्प्रदाय सिद्धान्त चन्द्रिका : पृ० १९० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

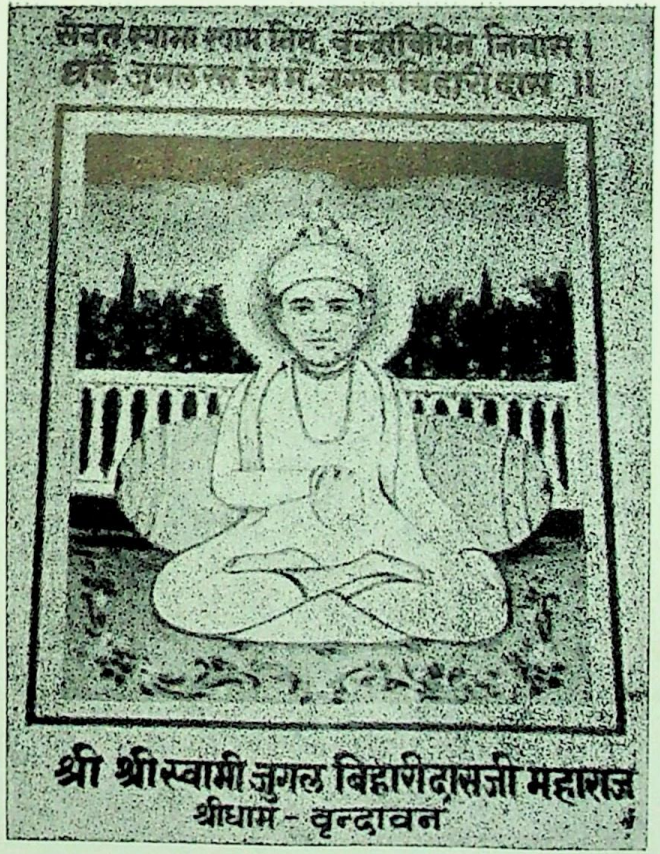

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका जन्म ब्रजप्रदेश के एक ब्राह्मण वंश में हुआ था। ८ वर्ष की अवस्था में इन्होंने गृहत्याग किया था। द्वारिकापुरी में इन्हें श्रीकृष्ण भगवान् का साक्षात् दर्शन बाल्यावस्था में ही प्राप्त हुआ था। गुरु ठाकुरदास जी की उन पर बड़ी कृपा थी। गुरु के परलोकवास के उरान्त इन्होंने चारों धामों के सहित अनेक तीर्थों का भ्रमण किया। कहते हैं कि वे ऐसे सिद्ध महात्मा थे कि उन्हें दुबारा दाँत उग आए थे। खड़े होकर तपस्या में रत रहने के कारण उनका नाम 'ठढ़ेश्वरी' पड़ गया था। गामड़ी (जिला-मेरठ) में इनकी समाधि बनी हुई है। वे प्रायः यहीं रहा करते थे। इनके जिन दो अन्य शिष्यों ने अपनी स्वतन्त्र गद्दियाँ स्थापित कीं, उनके नाम हैं—(१) सरसमाधुरीशरण और (२) नन्दराम जी। ध्यानदास जी उनके गुरुभाई थे।

श्री बलदेवदास का १२० वर्ष की अवस्था में लीलाप्रवेश आषाढ़ सुदी ९, मंगलवार, सं० १९५८ वि० को लुकसर में हुआ था। इनके लिए 'मुक्तिमार्ग' में लिखा है—

त्यागी वैरागी परम अति अनन्य निष्काम।[1]

अपने शिष्य सरसमाधुरीशरण जी के आग्रह पर प्रतिवर्ष ये जयपुर आते थे और वहाँ कुछ दिनों तक सत्संग का लाभ देकर श्रीवन, वृन्दावन, सोरों आदि स्थानों में रुकते हुए लुकसर वापस चले जाते थे। ये श्रीमद्भागवत के पण्डित थे। श्री ध्यानदास के शिष्य श्री रामसरनदास भी अच्छे कवि हुए हैं। इन्होंने 'कृष्ण-विनयावली' नामक एक ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ सं० १९५८ वि० में खेमराज कृष्णदास—बम्बई द्वारा प्रकाशित है। इन्होंने कनखल में धर्मशाला बनवाई थी।

(ग) सरसमाधुरीशरण – अपने गुरु स्वामी बलदेवदास जी के जीवनकाल में ही लुकसर की गद्दी का मोह छोड़कर उन्होंने पानदरीबा, जयपुर में अपना अलग स्थान बना लिया था। ये बड़े ही तपस्वी, त्यागी, विद्वान् और महाकवि थे। चरनदासी सम्प्रदाय के नवीन जागरण का श्रेय इन्हें ही प्राप्त है। इनका जन्म श्रावण बदी १५, सं० १९१२ वि० को मन्दसोर (ग्वालियर राज्य, मध्यप्रदेश) में गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम घासीराम और माता का नाम पार्वती देवी था। श्री सरसमाधुरीशरण का ननिहाल बहादुरपुर (अलवर के पास) में था। बलदेवदास जी प्रायः वहाँ जाते और प्रवचन किया करते थे। वहीं सरसमाधुरीशरण जी का उनसे सत्संग होता था और उसी के प्रभावस्वरूप वे उनके शिष्य बनने को प्रेरित हुए थे। उनका मूल नाम शिवदयालु शर्मा गौड़

१. मुक्तिमार्ग : पृ० ४८–५०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इन्होंने शताधिक काव्यग्रंथों की रचना की, जिनमें से अधिकांश प्रकाशित हैं। इनका लीला प्रवेश सरसनिकुंज, जयपुर में मार्गशीर्ष शुक्ल १४, सं० १९८३ वि० शनिवार को ७१ वर्ष की अवस्था में हुआ था। इनके एक सहस्र से अधिक विरक्त और गृहस्थ शिष्यों ने इस सम्प्रदाय के पुनरुत्थान में तन-मन-धन से उल्लेखनीय प्रयास किया है। इसके फलस्वरूप वृन्दावन, जयपुर, रिवाड़ी, डेहरा और अलवर के चरणदासी स्थान आज भी भक्ति-साधना के केन्द्र बने हुए हैं। इनके प्रमुख विरक्त शिष्यों में स्वर्गीय युगलमनोहरशरण (मास्टर गंगाबख्श जी बी० ए०), मास्टर मूलचन्द बी० ए० (प्रेम सरोवर), रूपमाधुरीशरण (वृन्दावन) तथा रामनारायण जी ठेकेदार (जयपुर) विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी साधना वृन्दावन के रसिक साधना-सम्प्रदायों से प्रभावित थी। इनका सखीनाम 'प्रेममंजरी' था। उनकी पत्नी भी विदुषी एवं कवयित्री थीं। 'सरसचरितामृत' नाम से उन्होंने अपने पतिदेव का चरित्र वर्णन किया है।

आठ वर्ष की अवस्था से ही इन्हें साधु संगति का रंग लगा था। बहादुरपुर (ननिहाल) में ही इन्होने हिन्दी और उर्दू की शिक्षा ग्रहण की। प्रेम की पीर में गुरु द्वारा निमग्न कर दिए जाने के बाद से इन्हें बिहारी जी के प्रत्यक्ष दर्शन अनेक बार प्राप्त हुए थे। वहाँ से जयपुर आकर वे पानदरीबे में रहने लगे। अब उस स्थान का नाम सरसनिकुंज है। वहाँ वकालत के साथ संत समागम भी करते रहे। जयपुर नरेश सवाई माधव सिंह तथा कृष्णगढ़ के राजा इनका बड़ा सम्मान करते थे। प्रथम पत्नी के देहान्त के बाद दूसरी पत्नी से एक पुत्र श्री राधेश्यामशरण हुए, फिर वह भी स्वर्गवासी हो गईं। उस समय ये ४५ वर्ष के थे।[1] इनके एक कन्या भी थी। पत्नी के देहान्त के पश्चात् वे विरक्त के समान रहने लगे थे।

इनके गृहस्थ शिष्यों में प्रो० गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव (जुगलमाधुरीशरण), सनम साहब (मुहम्मद याकूब), श्यामासखी (अजमेर), प्रो० हरीनारायण तोषनीवाल (स्वर्गीय), प्रो० प्यारेलाल, हरिशरणदास बी० ए०, राधेश्याम एम० ए०, पं० रामगोपाल (रासबिहारीशरण), श्रीमतिशरण (मास्टर मूलचन्द), प्रह्लाददास भार्गव (अलवर), उत्तमचन्द माहेश्वरी (जयपुर), प्रेमसुन्दरीबाई, मदनमोहन तोषनीवाल (जयपुर) और दामोदरदास पटवारी (जयपुर) प्रमुख हैं। इनकी शिष्या प्रेममाधुरीबाई तथा किशोरीबाई (किशोरीमाधुरीबाई) शुकभवन वृन्दावन की निर्मात्री हैं, जहाँ चरणदासी महात्माओं की जमघट लगी ही रहती है। प्रेमअलीशरण, बिहारीदास, प्रो० प्यारेलाल, मास्टर जयदेव, उत्तमचन्द्र, मास्टर जयनारायण, हरिशरण बी० ए० के अतिरिक्त भावमाधुरी-

---

१. नवसन्तमाल : पृ० १०९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

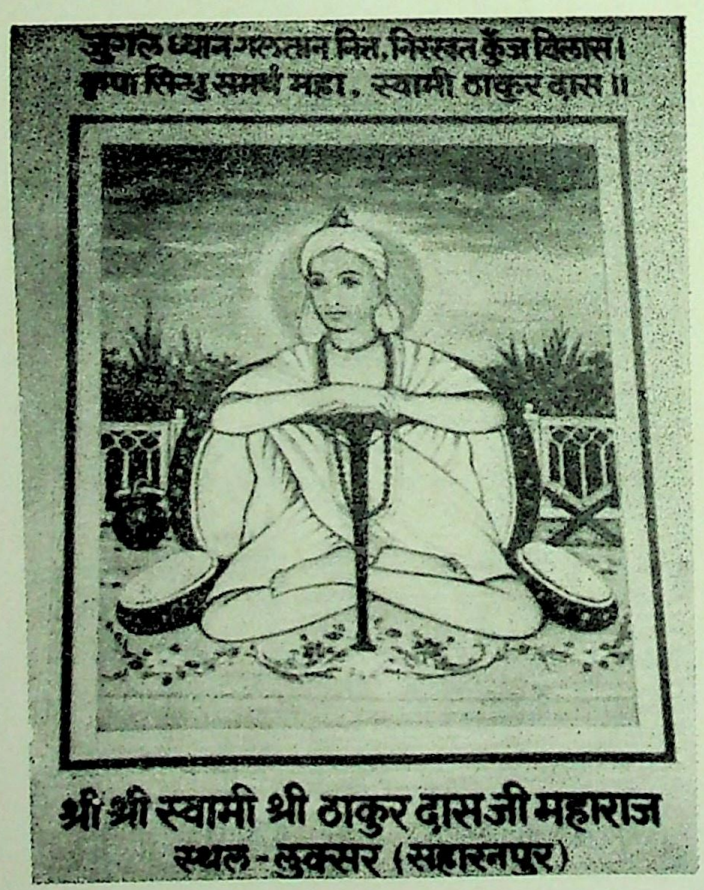

श्री श्री स्वामी श्री ठाकुर दासजी महाराज
स्थल - लुक्सर (सहारनपुर)

श्री श्री स्वामी श्री बलदेव दास जी महाराज
स्थल - लुक्सर (सहारनपुर)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरण (भगवानदास भार्गव), कुँवरि किशोरीशरण (कन्हैयालाल भार्गव), राधावल्लभशरण, बालबिहारीशरण, दम्पतिमाधुरीशरण (जानकीप्रसाद जी), मोहनमाधुरीशरण (मोहनलाल चौधरी), युगलमनोहरशरण (मास्टर गंगाबख्श जी), बिहारीदास जी, रामनारायण जी, गोविन्दराम जी, गेंदीलाल जी, हीरालाल जी, तुलसीबाई और कन्हैयालाल भार्गव आदि उनके ऐसे अन्य योग्य शिष्यों में से हैं, जिन्होंने शुक सम्प्रदाय को पुनर्जागृत करने में उल्लेखनीय योग दिया है। श्री सरसमाधुरीशरण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र और शिष्य श्री रसिकमाधुरीशरण (राधेश्यामशरण) जी गद्दी पर आये। उनका परलोकवास हो जाने के पश्चात् अब श्री अलबेलीमाधुरीशरण महन्त हैं।

सरसकुंज—जयपुर की शिष्य-परम्परा—

महन्त बलदेवदास—(सं० १९१० से १९५८ वि०)
|
म० सरसमाधुरीशरण—(जन्म सं० १९१२ वि०, लीलाप्रवेश मार्गशीर्ष शुक्ल १४, सं० १९८३ वि०)
|
म० राधेश्यामशरण[1]—(जन्म सं० १९५५ वि०, पौष कृष्ण १, जयपुर तथा लीलाप्रवेश सं० २०२० वि०)
|
म० अलबेलीमाधुरीशरण—(गृहस्थ, वर्तमान)

श्री अलबेलीमाधुरीशरण आचार-विचार से बड़े ही पवित्र हैं। वर्तमान शुक-सम्प्रदायानुयायियों का उन्हें प्रभूत आदर-सम्मान प्राप्त है। उनका स्थान (श्री सरस निकुंज-जयपुर) आजकल इस सम्प्रदाय के प्रति आदर-भाव रखने वालों तथा अन्य वैष्णवों के लिए गुरुद्वारा तुल्य है।

सरसमाधुरीशरण—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्व० सरसमाधुरीशरण (मूलनाम शिवदयालु शर्मा गौड़) चरणदासी सम्प्रदाय के पुनरुद्धारकों में शीर्षस्थ माने जाते हैं। इनके हजारों शिष्यों में से सैकड़ों तो प्रोफेसर, वकील,

---

१. राधेश्यामशरण (रसिकमाधुरीशरण)—ये स्वभाव से बड़े ही अतिथि और साधुसेवी तथा भजनानन्दी जीव थे। ये अपने पानदरीबा, जयपुर स्थित आश्रम में कृष्णजन्मोत्सव आदि पर्वों के अनेक आयोजन करके साधुओं की मण्डली जुटाते और कथा-कीर्त्तन कराते रहते थे। इनका स्वास्थ्य प्रायः खराब बना रहा, फलतः ६५ वर्ष की अवस्था में उनका निधन हो गया। सम्प्रति श्री अलबेली-माधुरीशरण (इनके सुपुत्र एवं वर्तमान महन्त) अपनी गुरु-परम्परा के गौरव और कार्यकलापों को यथावत् बनाये हुए हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी कर्मचारी और उच्चकोटि के व्यापारी थे। 'सरसप्रताप' के रचयिता श्री जुगलमाधुरीशरण की यह उक्ति इस तथ्य की पुष्टि करती है—

प्रोफेसर अरु मास्टर, ग्रेजुएट बहु आय।
तिलक और कण्ठी लई, चरनन सीस नवाय ॥[1]

उन्होंने प्रायः सभी चरणदासी केन्द्रों का परिभ्रमण किया और जिस गद्दी के तनिक भी पुनर्जीवित होने की आशा थी, उसमें प्राण प्रतिष्ठा करने का उन्होंने भरसक प्रयास किया। उन्होंने सम्प्रदाय और साहित्य को इतनी बड़ी देन दी है कि उन्हें व्यक्ति न मानकर एक समष्टि या संस्था की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त होगा। विरक्त होने के पूर्व ये जयपुर के पुलिस विभाग से सम्बद्ध एक उपविभाग में सरकारी नौकरी में थे। नौकरी से समय मिलते ही वे भजन-कीर्त्तन में लीन हो जाते थे। धीरे-धीरे वे एक सिद्ध साधक के रूप में जयपुर में प्रख्यात हो गये। ये बहुत बड़े संगीतज्ञ, भजनानन्दी, सम्प्रदायोद्धारक और सिद्ध महात्मा थे। दूसरों के मनोभावों को जान लेना इनकी विशेषता थी। ये भविष्य और अप्रत्यक्ष वर्तमान की घटनाओं के भी ज्ञाता थे। इनमें धार्मिक और साम्प्रदायिक सहिष्णुता इतनी अधिक थी और संकीर्णता का इतना अभाव था कि उन्होंने गौरांग महाप्रभु, निम्बार्क स्वामी, श्री हरिवंश स्वामी और सन्त दादूदयाल आदि की बधाई और उनके महिमा-गान के पदों की भी रचना की है। वे इनके महोत्सवों तथा सामूहिक आयोजनों के प्रोत्साहनकर्त्ता और स्वयं आयोजक भी थे। इन्होंने राम-सभा, सत्संगमंडल, रासमंडली आदि अनेक धार्मिक संगठनों का गठन किया था।

सरसमाधुरीशरण और सरस परिकर की साहित्य सेवा—

श्री सरसमाधुरीशरण—इन्होंने हजारों की संख्या में बानियों की रचना की है। इनकी कुछ बानियों का संग्रह 'सरससागर' शीर्षक से ३ भागों में प्रकाशित हो चुका है। इन तीनों संग्रहों को मिलाकर इनकी बानियों का विस्तार १७००–१८०० पृष्ठों तक पहुँचता है, जिनमें इनके मात्र लगभग ४००० पद्यों का ही समावेश हो सका है। इसके प्रथम भाग में गुरु तथा आचार्यों का कीर्तिगान है, द्वितीय भाग में वैष्णव रीति से अष्टयाम सेवा तथा वैष्णवों के वर्षभर में होने वाले उत्सवों-पर्वों आदि का वर्णन है। तीसरे भाग में साधक-सिद्धान्त-विवेचन, नाम-महिमा और विनय आदि के स्फुट पदों का संग्रह है। ये काव्यसर्जन, नृत्य, गान और नाट्य कला में प्रवीण थे 'अतः उनके काव्य में काव्यरूप सम्बन्धी वैविध्य सर्वाधिक है। उनकी साधना प्रमुखतः रसिक भाव की भक्ति-साधना है। ये स्वभाव से बड़े ही विद्याव्यसनी थे। इनके पुस्तकालय में हजारों प्राचीन ग्रन्थ संगृहीत हैं। जयपुर,

१. श्री सरसप्रताप : पृ० ७१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

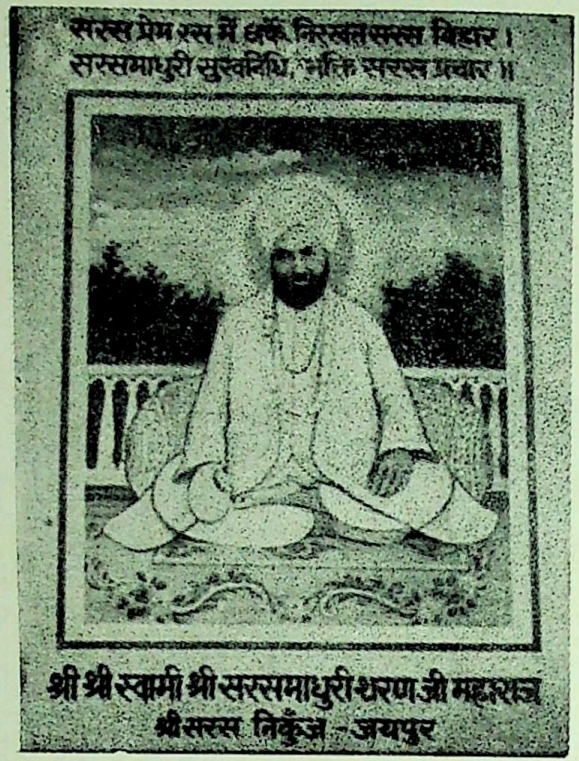

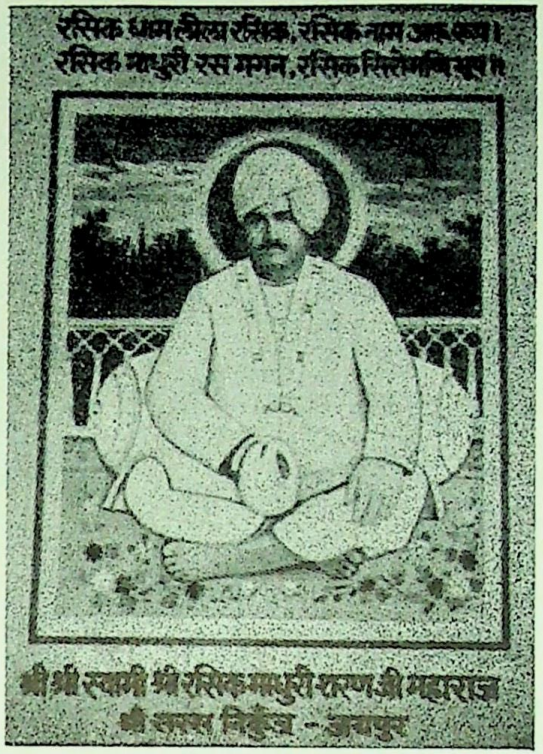

(पृ० ३१७)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशनगढ़ और अलवर के राज-दरबारों से इनको विशेष सम्मान प्राप्त था। ये वस्तुतः मध्यकालीन सगुण-निर्गुण भक्ति की समवेत धारा के अद्यतन प्रतिरूप हैं। इतना ही नहीं बल्कि भक्ति, रीति और वर्तमान—इन तीनों साहित्य-युगों की त्रिवेणी के ये संगम हैं।

इनकी काव्य-रचना-सम्पदा की पूरी-पूरी जानकारी तो एक स्वतन्त्र पुस्तक के ही माध्यम से सम्भव है; यहाँ मात्र उनके कुछ बहुचर्चित रचनाओं की ही सूची दे देना कर्त्तव्य का इदमित्थम् है। अस्तु यह सूची निम्नवत है—

१. सरससागर (तीन भागों में प्रकाशित)।
२. शुक-संप्रदाय सिद्धांतचंद्रिका—(प्रकाशित)
३. सरस निकुंज विलास—(प्रकाशित)
४. सरस मंजावली—(प्रकाशित)
५. कीर्त्तनसंग्रह—(प्रकाशित)
६. अष्टयाम।
७. सरसमाधुरीविलास—(२ भागों में प्रकाशित)
८. दोहावली।
९. निम्बार्क भगवान् की बधाई (भाषा)।
१०. धर्मसंदीपनी।
११. शुक-संप्रदाय सिद्धांतदर्पण।
१२. गोपालसहस्रनाम (संकलन)।
१३. भगवद्गीता (भाषा)।
१४. होरीसंग्रह।
१५. सामुद्रिक।
१६. सेवारीति।
१७. वंशीलीला।
१८. रासलीलासंग्रह (संगीत)।
१९. रसिकसंतमहिमा।
२०. अमृतधारा।
२१. गुरुवंदना।
२२. महानुभावपदसंग्रह।
२३. वैष्णवलीला (नाटक)।
२४. श्री प्रीतिपरीक्षा (नाटक)।
२५. बधाईसंग्रह।
२६. ढाढ़ीजी की पुस्तक।
२७. ब्राह्मणतत्वसिद्धांत।
२८. सरसवर्षोत्सव पदावली।
२९. निरकंचन (नाटक)।
३०. अष्टकालसमयविधि।
३१. संगीतदर्पण।
३२. सरसवसंतहोलीसंग्रह (प्रकाशित)।
३३. उपदेशामृतधार।
३४. सरसभारती (नाटक)।
३५. सरसझूलनमलार (प्रकाशित)।
३६ युगलरस।
३७. शुकसम्वाद।
३८. राधिकानामावली।
३९. शब्द (स्फुट)।
४०. गुरुशिष्यसम्वाद।
४१. सुयशप्रताप (प्रकाशित, सन् १९६४ ई०, चरणदास जी का जीवन-चरित्र)।[1]
४२. नित्यपाठ संस्कृतसंग्रह (प्रकाशित)।
आदि शताधिक।

---

१. सरसमाधुरीशरण जी ने अपने 'सुयशप्रताप' नामक एक पद्यबद्ध लघु ग्रंथ में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें कुछ नाटक हैं तथा अन्य रासलीला, बधाई, झूला, होली और बसन्त आदि विशिष्ट अवसरों और त्योहारों के गीत हैं। इनमें से कुछ रचनाएँ संस्कृत में, कुछ हिन्दी में, कुछ ब्रजभाषा में तथा कुछ उर्दू में है। कुछ संवाद हैं, कुछ प्रबन्ध और कुछ स्फुट; कुछ पारम्परिक छन्द में हैं तो कुछ राग-निबद्ध पद हैं। विषय की दृष्टि से वन्दना, कीर्त्तन, सहस्रनाम, सिद्धान्तनिरूपण, अष्टकाल-सेवन-विधि आदि अनेक विषयों से सम्बद्ध रचनाएँ हैं। इनमें इतनी विविधता और विशेषता है कि इतनी विपुलता एक आदमी के बूते के बाहर है। इन कृतियों में सभी वैष्णव आचार्यों, भक्तों, निर्गुनिया सन्तों और पौराणिक आख्यानों को दृष्टिगत करते हुए पदों की रचना की गयी है। जब जैसी आवश्यकता पड़ी है, सरस-माधुरी जी ने समयानुकूल रचना प्रस्तुत कर दी है। जहाँ जैसी स्थिति हुई है, उन्होंने एक निपुण कवि, आचार्य, कथावाचक, व्यास, व्याख्याता, टीकाकार, सिद्धान्त निरूपक, पुजारी, नर्तक, संगीतज्ञ, पण्डित, पुरोहित, सन्त, रसिक भक्त, वैष्णव, गृहस्थ, संन्यासी या वैरागी आदि की भूमिकाएँ निभाई हैं। तात्पर्य यह है कि शुक-सम्प्रदाय के पुनरुद्धार के लिए व्यक्ति रूप में नहीं बल्कि एक समष्टि के रूप में वे अवतरित हुए थे। उनकी रचनाओं का वैशिष्ट्य-निरूपण अथवा विस्तार से साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत करना स्थानाभाव के कारण यहाँ सम्भव नहीं है।

सरस शिष्य परिकर—

१. जुगलमाधुरीशरण (गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)—श्री सरसमाधुरीशरण के शिष्यों में इनका विशेष स्थान है। ये गृहस्थ वैष्णव थे और महाराजा कालेज जयपुर में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। इनका जन्म सं० १९४५ वि० के भाद्रपद कृष्ण १२ को हुआ था। इनके पिता का नाम हरदेव प्रसाद श्रीवास्तव था। सं० २००३ वि० में इन्होंने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण किया और इसके बाद वे चरनदासी सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में रत हुए। ये सं० १९६७ वि० में ही दीक्षित हो गये थे। जुगलमाधुरीशरण इनका साम्प्रदायिक नाम था। इनका 'सरस-प्रताप' नामक ग्रन्थ सं० २०१५ वि० में मथुरा से प्रकाशित हो चुका है। सरसमाधुरीशरण जी के जयपुर स्थित स्थान में हो रहे एक उत्सव में वैशाख कृष्ण १५, सं० २०२३ वि० को भाव-विभोर होकर नृत्य करते-करते ये परलोकगामी हुए।

चरणदास जी का यश-गान और चरित्र-वर्णन किया है। यह कृति सन् १९६४ ई० में दूसरी बार जयपुर से प्रकाशित हुई है। इसके प्रकाशक श्री अवधेशमाधुरी-शरण हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री जुगलमाधुरीशरण हिन्दी, उर्दू, मारवाड़ी, संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। इनके 'सरसप्रताप' में श्री शुकाचार्य प्राकट्य तथा शुक्र-रम्भा-संवाद—ये दो स्वतन्त्र लघु संवादमयी काव्य कृतियाँ भी संकलित हैं। इनके इस अनूठे काव्य-संग्रह में विभिन्न राग-रागिनियों और गजलों में निबद्ध २३० पद और सैकड़ों दोहे संगृहीत हैं। इन पदों में सगुण और निर्गुण अभिव्यक्ति शैली के अतिरिक्त हिन्दी-उर्दू की प्रायः सभी गीत-विधाओं का समावेश है। इनमें भाषा-प्रयोग सम्बन्धी वैविध्य प्रचुर मात्रा में है। ये आशु कवि और भावुक व्यक्ति थे। इनकी एक गजल 'अब्रे करम के मुन्तजिर हैं इस बहार में', कलकत्ता रेडियो से सन् १९५० ई० के आस-पास प्रसारित हुआ था। इनके कविरूप का वर्णन करते हुए 'श्रीसरस-प्रताप' के भूमिका-भाग में इसके सम्पादक श्री सद्गुरुशरण पाण्डेय का यह कथन उद्धरणीय है—'कवित्व शक्ति भैया जी (जुगलमाधुरीशरण जी) को उत्तराधिकार में मिली है। इनके पिता (जो कि जज थे) ने पाँच उत्कृष्ट काव्यों की रचना की थी। भैया जी यह रचना करते समय धाराप्रवाह बोलते या लिखते चले जाते थे। वे साहित्यिक कवि नहीं हैं और न साहित्य सृजन उनका उद्देश्य ही है। उनकी रचना अनायास ही पिंगल-शास्त्र के छन्दों का परिधान धारण किये हुए प्रसाद गुण से अलंकृत होती चली जाती है।' इनके काव्यगुण के परीक्षण हेतु यहाँ दो छन्द उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१) ललना पलना में झमक, लागे करन किलोल।
मन्द हसन किलकन सरस, निरख बिके बिन मोल॥[1]

(२) प्रगट जो न होते कलिकाल सतगुरु दयाल,
कौन शुकताल के गुणगण यों गावतो।
कौन आचार्य महाप्रभुवन को ऐसी विधि,
गाय के रिझाय हुलसाय यों लड़ावतो?
कौन सारतत्व दरसाय समुझाय के,
प्रेम पीयूष की झरी यों लगावतो?
कौन मोसे पतित मलीन महापामर को,
करके दुलार युगलमाधुरी बनावतो?[2]

२. रूपमाधुरीशरण—ये वर्तमान काल के चरणदासी महात्माओं में अग्रगण्य हैं। ये भी श्रीसरसमाधुरीशरण के शिष्य थे और बालब्रह्मचारी थे। वृन्दावन के युगलघाट पर रहते हुए ये सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में आजीवन रत रहे।

---

१. सरसप्रताप : पृ० ५, छन्द सं० १९।
२. वही : पृ० ११६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रूपमाधुरीशरण जी का जन्म सं० १९५५ वि० में जयपुर के एक कुलीन माहेश्वरी वंश में हुआ था। बचपन से ही इनमें विरक्ति का भाव था। जयपुर में इनका बड़ा प्रभाव था। कई बार नाम सप्ताहयज्ञ का आयोजन जयपुर में इनके द्वारा सम्पन्न हुआ था। बाद में वृन्दावन आकर श्री सरसकुंज का निर्माण कर ये भगवद्भजन में लग गये। इनको विरक्त दीक्षा संगरूर के महन्त बालमुकुन्ददास ने दी थी। ये अच्छे कवि और साधक थे। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ मेरे देखने में आयी हैं—(१) शुकसम्प्रदाय रहस्य, (२) श्री गुरुपरत्व, (३) श्री-चरणावत वैष्णव सदाचार, (४) उपदेश चिन्तामणि, (५) चरणावत वैष्णव वर्षोत्सव, (६) श्री शुक महत्व, (७) नवसन्तमाल, (८) श्री चरणप्रकाश, (९) शुकसम्प्रदाय प्रकाश (सं०) और (,१०) नित्यपाठ संग्रह। ये सभी प्रकाशित हैं। कार्तिक कृष्ण १४, सं० २०३२ वि० को ७७ वर्ष की आयु में इन्होंने लीला-धाम में प्रवेश किया।

(१) शुक सम्प्रदाय प्रकाश—यह इनकी कोई मौलिक कृति नहीं है। इसमें उन्होंने चरणदास जी के शिष्यों के वृत्त के साथ ही उनके सम्बन्ध में रचित १६ श्लोकों वाले स्तोत्र को अनुवादसहित प्रकाशित किया है। साथ ही इसमें इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एन्ड एथिक्स (जे० हेंस्टिंग्स, भाग ३, पृ० ३६५) में प्रकाशित चरणदासी सम्प्रदाय के वृत्त का अंग्रेजी और हिन्दी अंश भी समाविष्ट है। इसका प्रकाशन वर्ष अज्ञात है। यह वृन्दावन से प्रकाशित हुआ है।

(२) श्री गुरुपरत्व—यह गुटका रूप में एक लघु ग्रन्थ है, जिसमें उदाहरणों के माध्यम से गद्य में गुरु का महत्व वर्णित है। यह उपदेशपरक और व्याख्यापरक शैली में रचित है। इसमें भी प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं है।

(३) श्रीचरणावत वैष्णव वर्षोत्सव—इसका प्रकाशन सं० १९५५ वि० में मथुरा से हुआ था। इसमें पूर्ववर्ती एवं समसामयिक चरणदासी महात्माओं के विभिन्न अवसरों पर गाने-योग्य पदों का संग्रह है। इसका सबसे बड़ा उपयोग यह है कि इसके माध्यम से हम अनेक कवियों की बानी की बानगी एक ही पुस्तक में प्राप्त कर लेते हैं।

(४) चरणावत वैष्णव सदाचार—यह चरणदासी सम्प्रदायावलम्बित सज्जनों एवं सन्नारियों के लिए सम्प्रदायविहित आचार-विचार सम्बन्धी मान्यताओं का निरूपक एक लघुकाय ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन वर्ष अज्ञात है। रचना गद्यमयी और व्यास पद्धति की है।

इनके अतिरिक्त कई अन्य लघुकाय संकलन या ग्रन्थ हैं जो नित्यपाठ और भजन-कीर्तन को ध्यान में रखकर तैयार किये गये हैं। ये सभी प्रकाशित हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

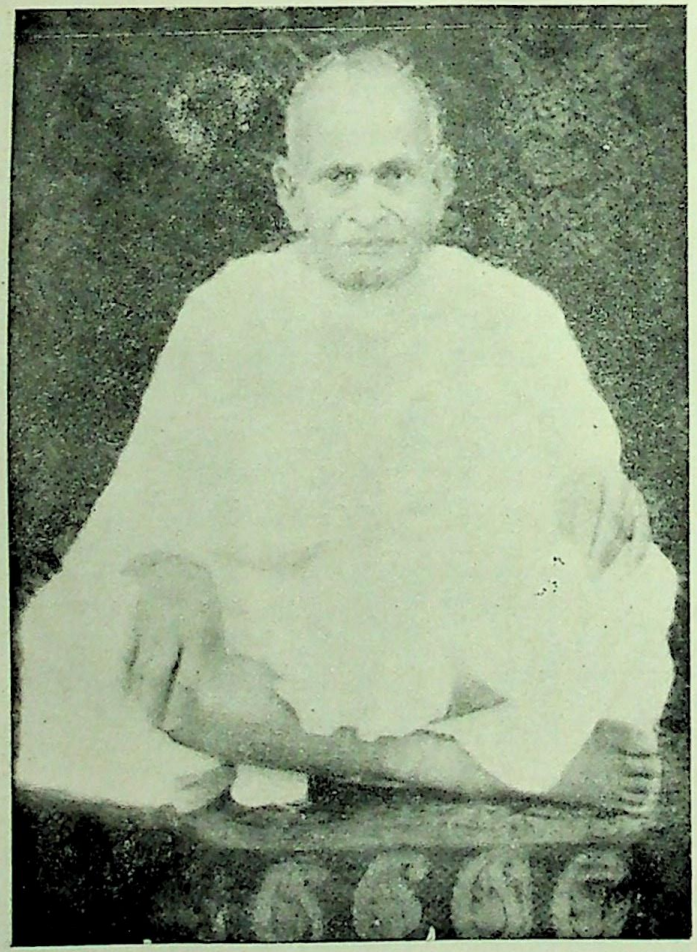

१. श्री स्वामी श्रीमतिशरणजी महाराज, (वृन्दावन) (पृ० ३२०)

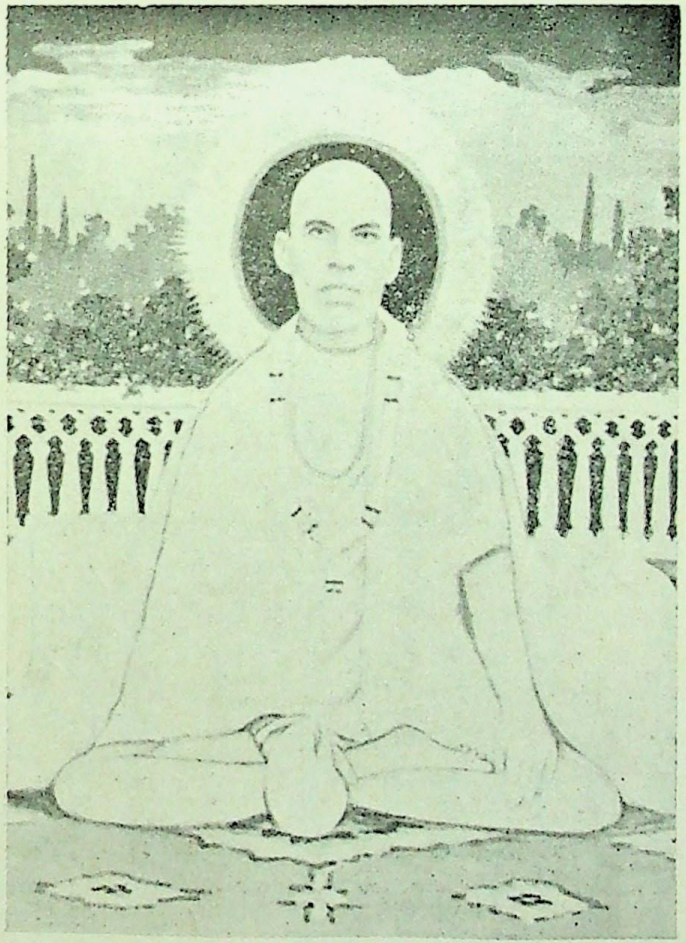

श्री रूपमाधुरीशरणजी महाराज (वृन्दावन)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रूपमाधुरीशरण की साखियों (दोहों) और रससिक्त बानियों (पदों) का संग्रह 'श्री स्वामी रूपमाधुरीशरण जी की वाणी' के नाम से सन् १९८१ ई० में जयपुर से प्रकाशित हो चुका है। इसके सम्पादक श्री जगदीश जी राठौड़ ने बड़े परिश्रम से इसका सम्पादन किया है। इसके १९० पृष्ठों में स्वामी जी की वाणियों का समावेश हुआ है। इन वाणियों में सगुण और निर्गुण साधना की सभी शैलियों की वाणियों का समावेश है। इनको पढ़ने के बाद किसी को भी यह स्वीकार करने में झिझक नहीं होगी कि रूपमाधुरीशरण जी उच्चकोटि के कवि थे। इनका एक पद द्रष्टव्य है—

राधा नाम रटो सुखकारी।
श्यामा प्यारी रूप उजारी, रसिकन की सरदारी ॥
चन्दा बदनी सोभा सदनी, हौं छबि पर बलिहारी।
मोहन मोहिनी नखसिख सोहनी, रूपमाधुरी वारी ॥

३. धर्ममित्र जी—इनका मूल नाम किशोरीलाल भार्गव था। इनका जन्म नारनौल के श्री रामजी भार्गव के यहाँ भाद्रपद कृष्ण ९ सं० १९२२ वि० को हुआ था। इनकी माँ का नाम राधा था। जयपुर निवासी श्री निरंजनलाल ने इनको गोद लिया था। ये संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी धर्मपत्नी कौशल्या जी से इनको तीन पुत्र हुए थे। मध्यम पुत्र असमय में स्वर्गवासी हुआ और शेष दो गोद ले लिये गये। ३० वर्ष की आयु में इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और वृन्दावन में महात्मा गोविन्ददास जी से दीक्षा ग्रहण कर ली। तब से मृत्युपर्यन्त सं० २००७ वि० तक ये ईश्वर भक्ति और चरणदासी सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में रत रहे। डहरा, नैमिषारण्य, वृन्दावन, महावन और शुकतार आदि में स्थित शुकसम्प्रदायके मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराने में इनका योगदान अपूर्व है। कहते हैं कि इन्होंने सं० १९७१ में शुकदेव जी के दर्शन किये थे। 'हिन्दू धर्म दिवाकर' और 'बीर हेमू' इनकी प्रकाशित रचनायें हैं। इनके अतिरिक्त (१) भार्गव दर्पण तथा (२) नवलदास और हेमूवीर के वृत्तान्त नामक पुस्तकें भी प्रकाशित हैं। द्वितीय ग्रन्थ में स्वामी हंसदास जी की बानियाँ भी संकलित हैं। इनके लेख शोधपूर्ण हैं। इनकी काव्य रचना सशक्त और प्रवाहमयी है। इनमें अनुप्रास और श्लेष की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इनका एक अन्य ग्रंथ 'चमनिस्तान' भी है।

४. गंगाबख्श जी – (युगलमनोहरशरण)—इनका जन्म सं० १९३४ वि० में जयपुर निवासी श्री महादेव जी अग्रवाल के घर में हुआ था। बी० ए० की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा पास करने के बाद ये कई वर्षों तक शिक्षक तथा सहायक प्रधानाध्यापक रहे और ३६ वर्ष तक सेवारत रहने के उपरान्त सन् १९४१ ई० में सेवानिवृत्त हुए। ये आरम्भ में गृहस्थ वैष्णव थे। ५४ वर्ष की आयु में द्वितीय पत्नी के निधन के बाद ये विरक्त हुए और चरणदासी बानाधारी साधुओं की भाँति विचरने लगे। ये श्री सरसमाधुरीशरण के शिष्य थे। श्री युगलमनोहरशरण जी संस्कृत के अच्छे ज्ञाता और कुशल उपदेशक थे। इनके शिष्य प्रेमस्वरूप ब्रह्मचारी भी अच्छे विद्वान् हैं। ये श्रीमद् भागवत के मार्मिक वक्ता थे। युगलमनोहरशरण इनका साम्प्रदायिक नाम था। इनमें परान्तःकरण-ज्ञान की प्रतिभा थी। ये अच्छे विद्वान् और सिद्ध साधक थे। इनकी तीन जीवनियाँ अब तक देखने में आई हैं। इनमें से प्रथम जीवनी के लेखक श्री नारायणलाल जी माथुर (बी० ए०) हैं। इनकी दूसरी जीवनी प्रोफेसर माधोलाल जी द्वारा लिखी हुई है। इनका एक बड़ा ही सुन्दर और विस्तृत जीवन चरित्र 'आदर्श सन्त' शीर्षक से सं० २०३४ वि० में श्री हरिनाम प्रेस, बागबुन्देला—वृन्दावन से प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक श्री प्रेमस्वरूप ब्रह्मचारी हैं। अन्य जीवनियाँ अप्रकाशित तथा बहुत ही संक्षिप्त हैं। इन्होंने पर्याप्त तीर्थाटन किया था। ये भूत-भविष्य द्रष्टा तथा अद्भुत ज्ञानी महात्मा थे। इनकी साधना मुख्यतः भक्तिमार्ग की (विशेषतः रसिक भाव की) थी। गोपी-प्रेम इनकी भक्ति का आदर्श था। इनका परलोकवास वैशाख शुक्ल एकादशी, सं० २००९ वि० (५ मई, सन् १९५७ ई०) को जयपुर में हुआ। इनकी शिष्य मंडली में श्री प्रेमस्वरूप जी, हनुमान सहाय पुरोहित, प्रभुदयाल वकील, नारायणलाल जी माथुर, द्वारकादास जी तोषनीवाल, श्रीमती उत्तमबाई और श्रीमती तेजदेवी खत्री आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अधिकांश शिष्य साहित्य और संप्रदाय की सेवा में लगे हुए हैं। इनके शिष्यों में श्री प्रेमस्वरूप का स्थान शीर्षस्थ है। ये परम भागवत, मूर्धन्य विद्वान्, सच्चे सन्त, विचारक, प्रगतिशील चिन्तक, लेखक, कवि, सम्पादक और सम्प्रदाय-उन्नायक हैं। चरणदासी साहित्य के प्रकाशन एवं सम्प्रदाय के पुनर्जागरण में इनका योगदान अविस्मरणीय रहेगा।

५. मास्टर मूलचन्द (उपनाम श्रीमतिशरण)—ये सरसमाधुरीशरण जी के प्रिय शिष्यों में एक हैं। उन्होंने अपने गुरु के चरित्र-वर्णन से सम्बद्ध 'सरस चरितामृत' (प्रकाशित सं० २०११ वि० में) नामक गद्यात्मक ग्रंथ में अतिरंजित वर्णन से बचते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास सम्बन्धी अपने ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है। यह अपने आप में एक ज्ञानवर्द्धक स्वतन्त्र कृति है। इस ग्रंथ के अन्त में इन्होंने श्री प्रेममाधुरीबाई के २० पदों को भी प्रकाशित किया है, जिनमें से अधिकांश गुरु की स्तुति के रूप में हैं। इनकी बानियों की एक बानगी द्रष्टव्य है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस घन रस को मेह बरसावें।
करें गरजना जुगल नाम की सुन रसिक मोर हरसावें॥
बिच-बिच झलकन मेह छटा की दामिनि सी दमकावें।
भक्त जनन की उर अवनी में भाववृक्ष प्रकटावें॥
उमग हर्ष के भरे सरोवर नेह की लहर उठावें।
पावस ऋतु श्री गुरू कृपा नित नई मौज दिखलावें॥
करें प्रफुल्लित तन मन सबके चहुँ दिशि आनन्द छावें।
प्रेम कोइल मतवाली ह्वै के बिनती सब्द सुनावें॥[1]

६. मुहम्मद याकूब सनम—ये अलवर के एक प्रतिष्ठित मुसलमान घराने से सम्बद्ध थे। अंग्रेजी, फारसी, अरबी, हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् थे। इनकी भेंट सरसमाधुरीशरण जी से अलवर में हुई थी। ११ दिसम्बर, सन् १९११ ई० को इन्होंने उनसे विधिवत् दीक्षा ग्रहण की थी। श्री सनम ने अलवर में श्रीकृष्ण लाइब्रेरी की स्थापना भी की थी। उन्होंने श्रीमद्भागवत् का अच्छा अध्ययन किया था और वे प्रायः रसिक साधना के महात्माओं के सत्संग में ही अपना कालक्षेप करते थे। इनका हरिभक्ति सम्बन्धी नाम 'श्यामासखी' था। सनम साहब ने रसिक भाव से पूर्ण पदों एवं गजलों की रचना की है। ये बड़े ही पहुँचे हुए कृष्णभक्त कवि थे। इनकी रचना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

॥ गजल ॥

श्री सद्गुरु चरन परसौ, यही तुमको निभावेंगे।
पकड़ कर हाथ ये तेरा, तुझे रस्ता बतावेंगे॥
न काँटे का हो कुछ खटका, न ठोकर का जरा भय हो।
भँवर संसार से नैया तेरी, वो ही बचावेंगे॥
तिराकर तुझको भवसागर, करे निज धाम का बासी।
पिलाकर प्रेमरस प्याला, तुझे गहरा छकावेंगे॥
वो है चितचोर मनमोहन, पता जिसका नहीं मिलता।
फिरै ढूँढ़त विरह व्याकुल, यही अड्डा मिलावेंगे॥
'सखी श्यामा' अधर अमृत, की जो प्यासी तड़पती है।
श्री व्रजचन्द गुर किरपा, तुझे उर ला पिलावेंगे॥

इसी प्रकार जमाली फिरके के सुप्रसिद्ध कव्वाल श्री लियाकत अली खाँ भी सरसमाधुरी जी से बड़ी मित्रता रखते थे। ये सरसमाधुरी जी के कथा-कीर्तनों में मित्रमण्डलीसहित जाया करते थे।

---

१. श्री सरसचरितामृत : पृ० १५२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मास्टर मूलचन्द जी उपनाम श्रीमतिशरण ने अपने चरित ग्रंथ 'श्री सरस-चरितामृत' में सरसमाधुरी जी के एक अन्य दीक्षित मुसलमान शिष्य श्री गुप्ती जी का उल्लेख किया है। इनका मूल नाम उन्होंने नहीं दिया है।

७. श्री विलासमाधुरीशरण—इनका मूल नाम ठाकुर विजयसिंह नरूका था। ये बहाली गाँव, जिला अलवर के निवासी थे। ये सरसमाधुरी जी के प्रिय शिष्यों में से थे। उन्होंने सं० १९६३ वि०, आषाढ़ कृष्ण ८, गुरुवार को 'सरस सतगुरु विलास' नामक ग्रंथ की रचना पूर्ण की थी। यह कुल ११९ छंदों का ग्रंथ है। इसमें सद्गुरु श्री सरसमाधुरीशरण की अष्टयाम पूजा का विधिवत् वर्णन है। इसकी पांडुलिपि श्री जगदीश जी राठौर के यहाँ है। इस कृति का मुख्य छंद दोहा है। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

समदृष्टी सद्गुरु सरिस, हरि रंग में रंग लेत।
काक पलट हंसा करे, प्रेम पदारथ देत॥
तर्कवाद बकवाद तजि, सन्मुख जो जन जाय।
श्रवण सुने श्रीगुरु बचन, सब बिगरी बन जाय॥
हरिगुरु एक समान गिन, आज्ञावर्ती होय।
सफल होंहि सब कामना, संशय रहै न कोय॥

इनके पदों में भी बड़ा माधुर्य है। इनका शब्द-चयन और भावगुंफन बड़ा ही अनूठा है। इनका एक पद द्रष्टव्य है—

॥ राग मलार ॥

हिंडोरा झूलत श्यामा श्याम।
रच्यो सहेली तट यमुना पर, वंशीवट निज ठाम॥
गलबैयाँ दीने रंग भीने, गौर श्याम अभिराम।
मृदु मुसुकाय हरत मन सबको, लखि लाजत रति काम॥
यह सावन मन भावन आयो, विलसत ज्यौं घन दाम।
'विलासमाधुरी' सरस रस छाकी, निशदिन आठौ जाम॥

(३) देवादास जी—ये रामरूप जी के शिष्य थे। स्वामी जी द्वारा बनाये गये ८२ गुणी महन्तों में इनकी भी गणना है। ये बड़े ही साहित्यिक प्राणी थे। इनकी बानियों में इनके तीन नाम मिलते हैं—देवादासि, दीवाराम और देवादास। इन्होंने रसिक भावना प्रधान पदों की रचना अपेक्षाकृत अधिक की है। "रागगौरी" में रचित इनका एक पद यहाँ द्रष्टव्य है—

इन साँवरे की घाली, दिल कैसे भरूँ आली।
संग लाग्यो गलियन डोलै, मेरे निरखि रूप को तोलै॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोबन मदमातो बोलै, मेरे नयनन में विष घोलै।
भर लाऊँ जमुना पानी, मेरी गागर करी निशानी ॥
मैं हा हा करत हिरानी, सखियन में लाज लजानी।
मधुरी सी बेन बजावै, निरलज री गारी गावै ॥
मोहि सैनो सैन बुलावै, मेरी सास ननद डहकावै।
पलकों पै जादू डारो, मेरे बिना भाल तक मारो ॥
मोहिं डँस गयो कपटी कारो, सखि घाव को जतन विचारो।
देवदासि स्याम रंग भीनी, मेरी गति मति स्याम हरि लीनी ॥

—सरसनिकुंज की जिल्द सं० ३९६ से उद्धृत।

(४) **नवलदास जी**—ये भी रामरूप जी के शिष्य थे। इनका अन्य परिचय अज्ञात है। इनके कुछ फुटकल पद सरसकुंज—जयपुर में तथा कुछ वृन्दावन के स्व० रूपमाधुरीशरण जी के यहाँ देखने को मिले थे। इन पदों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि ये एक उच्चकोटि के कवि थे। इनकी काव्यकला की विशेषताओं पर निम्न पदों से बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है—

॥ होरी ॥

(१) एजी तुम जाओ अपनी गैल, ऐसी होरी न खेलो लला।
कंचुकी फार के बहियाँ मरोरी, छीन लिये हमरो अँचला ॥
औरन सूँ लँगराई करत हो, अपनी बेर बड़े मचला।
तुम तो हो जसुदा के लाला, हम हैं व्रज गोपी अबला ॥
चर्चेगी कोई सुघर सहेली, उघर जाय तोरी सारी कला।
नवलदास मोहन बनवारी, हँसि हँसि कहत भला जी भला ॥

(२) ॥ बन विहार से आने का पद ॥ (राग गौरी)

सुनु सखि मोहन बेनु बजावै।
साँझ समय प्यारी सँग बन सूँ आछै बनि ठनि आवै ॥
कहुँ तें पुष्प कुसुम मंजरी कहुँ ते कहुँ तुलसी दल लावै।
गुंज माल बनमाल लाल उर अंग अंग छवि पावै ॥
इन्दु बदन अरविन्द नैन सिर मुकुट मधुर सुर गावै।
कुंज भवन मारग उपवन मों मोर चकोर नचावै ॥
श्रुति कुंडल झलकत अलकनि पर हलकनि नैन सिरावै।
प्रीत दुकूल खौरि केसर की नवल सखी मन भावै ॥

(५) **निरभयराम जी और उनका थाँभा**—इनके अपरनाम अभयराम, अभैदास और निर्भैराम भी मिलते हैं। इनकी गद्दी का स्थान परमौरा (तहसील-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कासगंज, जिला-एटा) गंगातट पर स्थित है। इनकी रचना 'रामचरितमहातम' प्राप्त है। 'एकादसी माहात्म्य' और 'अगहन बोधिनी' इनकी अन्य रचनाएँ हैं।[1] 'रामचरितमहातम' नामक इनके ग्रंथ की दिल्ली के महंत प्रेमदास के यहाँ प्राप्त पाण्डुलिपि में पत्रों की संख्या ६४ है और प्रत्येक पत्र का विस्तार ४" × ६" है। १२ पंक्तियाँ हर पृष्ठ पर समाविष्ट हैं। इस ग्रंथ द्वारा दोहा-चौपाई छंद में रामजन्म और कृष्णजन्म की कथा प्रस्तुत करना कवि का लक्ष्य है। श्रीकृष्ण के सोलह सहस्र रानियों की उत्पत्ति का कारण और उनका चरित्रवर्णन इसका मुख्य वर्ण्य-विषय है। इसकी भाषा और अभिव्यक्ति के वैशिष्य का अनुमान इसकी निम्नपंक्तियों के आधार हो सकता है—

---

१. एकादशी माहात्म्य—इसकी एक पाण्डुलिपि सरसनिकुंज—जयपुर में सुरक्षित है। यह कृति शूकरक्षेत्र (जिला-एटा) में गंगा-तट पर माघ शुक्ल नवमी सं० १८५३ वि० में रची गयी थी। सम्भवतः यही मूल पाण्डुलिपि है। इसके साथ ही कवि के कुछ फुटकल पद भी सगृहीत हैं। इनके पदों में राधा-कृष्ण लीला-विषयक अनेक पद बहुत ही सरस एवं हृदयग्राही हैं। इनके दो होली विषयक पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

॥ राग काफी ॥

(१) सांवरे सूं खेलूंगी होरी लोगों की कहा चोरी।
फागुन के दिन बीत जात हैं नीको दांव लगो री॥
केसर की पिचकारी भरि भरि अबीर लिये भरि झोरी।
चलो मिलि सब एक ठौरी।
सब ब्रज मण्डल फाग रचावे फगवा ले बरजोरी॥
कुंज कुंज अरु बंसीबट पै जाय नन्द की पौरी।
बांह पकरि के नाच नचावैं पूरण फाग फगौरी॥

॥ राग जैजैवंती ॥

(२) बाँकी सी मरोर वाकी बाँके बाँके नैनों की।
मुरली धुनि सुन मोह लियो मेरो मन रह्यो नहिं धीर तन
झाँकी बाँकी सैनों की॥
बाँके चितवत ठाढ़ी दरस की भूख बाढ़ी
पगहूँ गवनत नाहीं प्यासी प्यारे बैनों की।
रामरूप अब छबि बरनै सो को है कवि
निर्भै निरखि सभी भूली सुधि अयनों की॥
—सरसनिकुंज—जयपुर की पाण्डुलिपि : सं० ७८३ से उद्धृत।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मकाज कौ विलंब न कीजै । हंस भाग काग नहिं दीजै ।।
तुम्ह हीं पुरऔ सब की आशा । काहू को नहिं करौ निराशा ।।

इनके 'रामचरित महातम' में सतयुग से सं० १८२० वि० तक का संक्षिप्त इतिहास समाविष्ट है । ये सं० १८४७ वि० तक जीवित थे । इनका हस्ताक्षर स्वामी रामरूप के वसीयत पर है । इनके शिष्य भगतहुलास ने सं० १८९७ वि० के वसीयतनामे पर हस्ताक्षर किया है । प्राप्त तथ्यों से सिद्ध होता है कि भगत हुलास के बाद प्रेमदास जी परमौरा की गद्दी पर महन्त बने । श्री प्रेमदास ने सं० १९२७ वि० में महन्त सेवादास जी की वसीयत पर हस्ताक्षर किया था । रामत के क्रम में स्वामी रामरूप के परमौरा आगमन का वृत्त मिलता है । निर्भैराम जी ने अपने कुछ पदों में अपने लिए 'निर्भैसखी' लिखा है । इससे यह सूचित होता है कि इनका झुकाव मधुरोपासना की ओर था ।[1]

---

१. साँवरे मोहिं दीनी है गारी ।
होरी खेलन के लिए शाम को हौं मारग चलि जात आपनी ओढ़े कुसुमल सारी ।
गह्‌र चीर हार मेरो झटको टूक टूक करि डारी बहुत हाहा करि हारी ।।
चोवा चन्दन और अरगजा फेटन कुंकुम त्यारी,
ग्वालन सैन बतावत आपुन केसर भर पिचकारी
लाल मोरे मुख पर मारी ।।
या गारी को बदलो लेऊँगी एक-एक की लाख हजारी ।
पहुँचत घर मैं काह कहौंगी सास सुनैगी म्हारी लाज गुरुजन घर भारी ।।
कैसे जाउँ चली घर अपने यह गत देख बिचारी ।
मारग घेर ठग ठाढ़ो ओढ़े कामर कारी भूल गई सुध बुध सारी ।।
जतन करत बहु बन नहिं आवै उमग उठे मन आरी ।
निर्भै सखी जा कासूं कहियै समझत नाहिं अनारी
प्रेम की रीत है न्यारी ।।
(श्री सरसनिकुंज—जयपुर की जिल्द सं० ३९६ से उद्धृत)

निर्भैराम जी के गद्य की एक झलक द्रष्टव्य है—

'इति श्री अमृतधारा ग्रंथ सकल विवेक प्रकाशक विवेक दीप ज्ञान को स्वरूप बर्ननो नाम भगवानदास निरंजनी कथिते चतुर्दशो प्रभाव ।। श्री महाराज चरनदास के शिष्य श्री सिद्धराम जी जिन्होने लिखवाई यह पोथी रामत में रमते हरियाणे मण्डल हाँसी के परगनै कूँ गुड़गाँव में संवत् १८३६ वि० क्वार बदी अमावस्या कूँ लिषंत निर्भैराम महन्त सिद्धराम जी का गुरुभाई । पढ़ै गुनै ताकूँ सतहरि नाम ।।'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्भैराम जी के एक शिष्य श्री आनन्दराम की एक रचना 'परमानन्द प्रबोध' नाम से महंत प्रेमदास जी (दिल्ली) के संग्रह में है। यह ग्रंथ मितराउ के प्रथम महंत श्री बल्लभदास जी (चरणदास के शिष्य) के थाँभे के महंत श्री चतुरदास ने स्वामी रामरूप जी की दिल्ली की आचार्य गद्दी के तत्कालीन महंत शालिग्राम जी को सं० १९३० वि० में भेंट की थी। इसमें १८ ग्रंथों का संग्रह है, जिनमें सवाई प्रताप सिंह (जयपुर नरेश) द्वारा रचित 'वैराग्यमंजरी' और गो० जुक्तानंद द्वारा रचित 'इतिहास सार समुच्चय' भी संगृहीत हैं। 'परमानंद प्रबोध' गीता का पद्यबद्ध अनुवाद है। इस पाण्डुलिपि की विशेषता यह है कि इसमें स्वर्णखचित राजपूत और मुगल शैली के अनेक चित्र हैं। इसके लिपिकर्त्ता श्री बलिरामदास हैं, जिन्होंने सं० १९८७ वि० में भरतपुर राज्य में श्री ब्रजेन्द्र बलदेव सिंह के राज्यकाल में इसकी प्रतिलिपि तैयार की थी। इसके चित्र अत्यंत महत्त्व पूर्ण हैं। इसमें गीता के श्लोकों के अनुवाद दोहों में हैं और दोहों की भी गद्यमयी टीका है। एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

श्लोक—धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे.....

दोहा— धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में, मिले युद्ध के काज।
संजय मो सुत पांडवनि, कीने कैसे काज॥

टीका— धृतराष्ट्र पूछत हैं संजय सों कि हे संजय धर्म को क्षेत्र ऐसो कुरुक्षेत्र ता विषै एकत्र भए हैं अरु युद्ध की इच्छा करत हैं ऐसे मेरे अरु पाण्डु के पुत्र ते कहा करत भए।

(६) श्री अजपादास—इनका पूर्ववृत अज्ञात है। ये स्वामी रामरूप जी के परम विरक्त तथा योग्यतम शिष्यों में थे। चरणदास जी के जीवनकाल में ही इन्होंने स्वामी रामरूप से दीक्षा ले ली थी। रामरूप जी के साहित्यकार शिष्यों में भी ये अग्रगण्य हैं। जिस प्रकार चरणदास जी ने रामरूप जी को अपनी रचनाओं की प्रतिलिपि तैयार करने का काम सौंपा था, उसी प्रकार रामरूप जी ने भी इन्हें चरणदास जी और अपने ग्रंथों का लिपिकर्त्ता नियुक्त किया था। इनके सं० १८५० वि० तक वर्तमान रहने का सुनिश्चित प्रमाण मिलता है।

प्रसिद्धि है कि इनके गुरु श्री रामरूप जी ने 'गुरुभक्तिप्रकाश' के १० विश्रामों (अध्यायों) में से ६ विश्रामों तक की ही रचना की थी। शेष ४ विश्राम श्री अजपादास का ही कृतित्व है। सं० १८४७ वि० के रामरूप जी के वसीयतनामे पर इनके भी हस्ताक्षर हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि ये उस समय तक वर्तमान थे। इनके शिष्य श्री जीवनदास ने रामरूप जी की आचार्य गद्दी के महन्त श्री मलूकदास जी के वसीयतनामे पर सं० १८९७ वि० में हस्ताक्षर किये थे। इससे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदित होता है कि श्री अजपादास के शिष्य श्री जीवनदास सं० १९०० वि० तक वर्तमान थे। अजपादास के एक अन्य शिष्य श्री श्यामरंग इनकी बानियों के लिपिकर्त्ता हैं। श्यामरंग जी कवि के रूप में भी प्रसिद्ध हैं।

स्वामी अजपादास एक उच्चकोटि के कवि के रूप में अपने समय में विख्यात थे। इनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः दिल्ली और उसके आस-पास तक ही रहा। इनकी कुछ बानियाँ स्वामी सिद्धराम की 'शब्द बावनी' में संगृहीत हैं। इन्हें स्वामी रामरूपकृत 'मुक्तिमार्ग' की भूमिका में श्री सरसमाधुरीशरण ने 'अनुपम चेला' कहा है और इनके आग्रह पर श्री रामरूप जी द्वारा इन्हें श्री राधा-कृष्ण के रास परिकर सहित रासलीला के प्रत्यक्ष दर्शन कराने का वृत लिखा है।[1] इससे जहाँ गुरु की सिद्धि की उच्चता व्यंजित होती है, वहीं इनकी गुरुभक्ति भी प्रमाणित होती है। ये स्वामी रामरूप के चार प्रमुख शिष्यों में एक थे।[2] किसी प्रेमसुखदास की एक गुटका स्व० महंत गंगादास के यहाँ देखने को मिली थी, जिसमें श्री अजपादास के कुछ पद संकलित हैं। इस गुटका के लिपिकर्ता श्री अजपादास के शिष्य श्यामरंग जी हैं। इसका (गुटका का) लिपिकाल चरणदास जी के स्वर्गवास-काल के पूर्व (सं० १८३९ वि० के पूर्व) का है। परन्तु 'अजपादास की बानी' उनकी मृत्यु के तीन महीने बाद लिपिबद्ध हुई है। इनकी बानियों पर हिन्दी के निर्गुण कवियों का निगूढ़ प्रभाव था। इनके पदों की भाषा मुख्यतः सधुक्कड़ी कही जा सकती है। सगुण वैष्णव (विशेषतः रसिक साधना) परम्परा में दीक्षित होकर भी निर्गुण साधना की ओर इनका झुकाव दिखाई देता है। इनकी भाषा पर पंजाबी का भी प्रभाव है, जैसे 'परेथा', 'करेथा' आदि। कहीं-कहीं तुक बैठाने के लिए इसमें भरती के शब्द भी भरने का प्रयास दिखाई देता है, जैसे 'सुख-आनन्द' आदि। इन्होंने स्वामी चरणदास के सभी ग्रंथों की कई-कई पांडुलिपियाँ

---

१. अजपादास अनूपम चेला। श्री स्वामी का शिष्य नवेला ॥
विनय करी हरि दरस कराओ। महाराज लीला दरसाओ ॥
तुम समर्थ सब विधि गुरु मेरे। मैं शरणागत हूँ प्रभु तेरे ॥
गुरु आज्ञा सुनि शिष्य ने, मूँदि लिए निज नैन।
अभ्यन्तर रस रास लखि, तन मन पायो चैन ॥
—मुक्तिमार्ग (भूमिका) : पृ० ३५–३६।

२. सिद्धराम सबसे बड़े, पुनि श्री रामकृपाल।
अजपादास पिछानिये, सतवादीराम दयाल ॥
अस्सी अरु द्वै जानिये, स्वामीजू के संत।
सबही किये महंत गुरु, सतोगुनी बुधवंत ॥—मुक्तिमार्ग : पृ० १०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार की थीं। इनकी निर्गुण बानी की कुछ बानगी द्रष्टव्य है—

१. अब मन मौज भई रे साहब सुगम सुहेला पाया।
ना तप किया न उलटा झूला सतगुरु सहज बताया॥
नजर निहाल किया देखत ही आनन्द पद पहुँचाया।
मिट गई भूल भरम सब भाजे परम तत्त दरसाया॥
अगम अगोचर दूर परे था सो वै निकट बताया।
जलाबंब ज्यों डुबकी मारे रंचक रही न माया॥
तल ऊपर दहिने अरु बायें दसों दिसा दरसाया।
आप ही आप और नहिं दूजा विधि न देख निर्ताया॥
रामरूप चारों युग माहीं वेद पुरानन गाया।
अजपादास छोड़ सब आसा ताही सूँ मन लाया॥

× × ×

२. अब मैं अमर किया गुरु मेरे।
जनम जनम के रोग छुड़ाये मिटे दुःख उलझे रे॥
सुख आनन्द भया मन राजी भाजी व्याध हमारी।
जड़ी सजीवन दई दयाकर मिट गये सकल विकारी॥
निरसन्देह रहूँ जगमाहीं संसय सोग निवारे।
पाँच पचीसों को भय नाहीं सबही दुर्जन मारे॥
सस्तर लगे न रोग विनासे सके न अगन जराई।
काल न खाय जरा नहिं व्यापै नवग्रह गये नसाई॥
अजपादास अमर यों कीन्हें मंगलचार बधाई।
रामरूप गुरु अनहद नौबत दसवें द्वार बजाई॥

स्वामी अजपादास का एक पद मुक्तिमार्ग में भी उद्धृत है, जो इस प्रकार है—

करले आशिकाँ दीदार।
बहुत दिनन सो लगी उमंगा हिल मिल के सुख ले पिय संगा।
तन मन की सब तपत मिटाले सन्मुख प्रीतम अजब बहार॥ करले०
झिलमिल ज्योति अनन्त गुलजारी चहूँ दिसा चमके उजियारी।
अनगिन रूप धरे अति बाँके रास अखंडा नित्त विहार॥ करले०
यह लीला लखि बुद्धि थकाई, अमर अजर अलबेला साईं।
रामरूप कहै देख झलक को जन अजपा दै शिर बलिहार॥ करले०[1]

विभिन्न संग्रहों में इनके लगभग ५० पद प्राप्त होते हैं। प्रायः सभी निर्गुणपरक पद हैं, जिनमें नाममहिमा, गुरुमहिमा और ज्ञानविरह आदि का वर्णन है।

---

१. मुक्तिमार्ग : पृ० ३६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) महन्त व्यापकदास—इनका स्वतन्त्र थाँभा दिल्ली नगर में पुराना किला के पास था। चूँकि इनका हस्ताक्षर सं० १८४७ वि० के स्वामी रामरूप जी के वसीयतनामे पर है लेकिन सं० १८७८ वि० के महन्त सिद्धराम जी के वसीयत-नामे पर नहीं है अतः अनुमान किया जा सकता है कि ये उस समय तक जीवित नहीं थे। इनकी शिष्य-परम्परा इस प्रकार उल्लिखित मिलती है—

म० व्यापकदास—(सं० १८४०–१८६० वि०)
|
म० साहबदास[1]—(सं० १८६०–१८८० वि०)
|
म० जमुनादास[2]—(सं० १८८०–१९४० वि०)
|
म० मस्तरामदास—(सं० १९४०–१९६० वि०)
|
म० शीतलदास—(सं० १९६०–१९७५ वि०)
|
किशनदास—(सं० १९७५–२००० वि०)

(महन्तपद की वास्तविक कालावधि प्रामाणिक रूप से उपलब्ध न होने के कारण विविध आधारों पर आश्रित यह अनुमानित अवधि है।)

महन्त व्यापकदास के दो प्रमुख शिष्यों की अलग-अलग परम्परायें चलती हैं अतः दोनों परम्पराओं की वंशावली इस प्रकार उपलब्ध होती है—

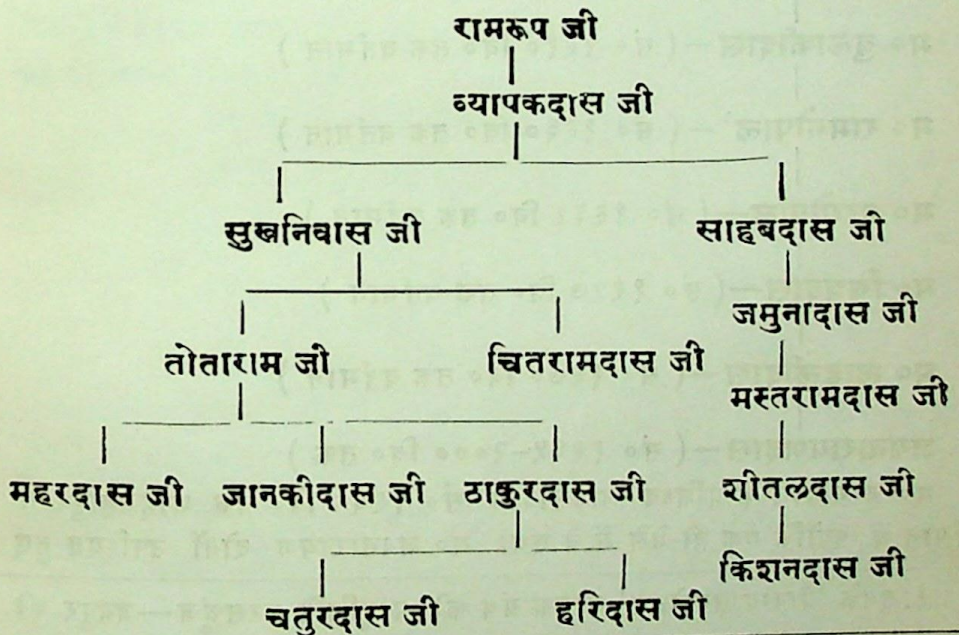

१. सं० १९७८ के स्वामी सिद्धराम के वसीयतनामे पर इनके हस्ताक्षर हैं।
२. महंत सेवादास जी द्वारा श्री शालिग्राम के पक्ष में लिखित वसीयतनामे पर श्री जमुनादास के हस्ताक्षर हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) महन्त सुखनन्दन जी और उनकी शिष्य-परम्परा—ये मुख्यतः दिल्ली में ही रहे। इनकी गद्दी दिल्ली के किसी मुहल्ले में थी परन्तु अब उसका पता नहीं चलता। स्वामी रामरूप की दिल्ली स्थित आचार्य गद्दी में सुरक्षित एक अभिलेख में इनकी शिष्य परम्परा इस प्रकार अंकित है—

महन्त सुखनन्दन जी

- **तोताराम जी**
  - **पोकरदास जी**
    - **चतरदास जी**
- **मटरदास जी**
  - **हरिशरण जी**

(९) म० बुलाकीदास और शाहजहाँपुर का थाँभा—ये सं० १९१० वि० तक वर्तमान थे। इनके सम्बन्ध में अन्य वृत्त अप्राप्त है। शाहजहाँपुर (तह० रिवाड़ी, जि० गुड़गाँव) में इनका थाँभा सं० २००० वि० तक विद्यमान था। यह थाँभा सक्रिय थाँभों में से एक था। यहाँ के महन्तगण अधिकांश मेलों में उपस्थित रहे। यहाँ की शिष्य-परम्परा निम्नलिखित है—

स्वामी रामरूप जी

म० बुलाकीदास—(सं० १९१० वि० तक वर्तमान)

म० रामगोपाल[1]—(सं० १९३० वि० तक वर्तमान)

म० हरगोपाल—(सं० १९३५ वि० तक वर्तमान)

म० चित्रदास—(सं० १९५७ वि० तक वर्तमान)

म० लाडलीदास—(सं० १९७० वि० तक वर्तमान)

जयनारायणदास—(सं० १९६५–२००० वि० तक)

म० हरगोपाल के प्रशिष्य लाड़लीदास सं० १९६८ वि० तक शाहजहाँपुर में वर्तमान थे क्योंकि एक ही मेले में वे तथा म० जयनारायण दोनों उपस्थित हुए

---

१. इनके 'वैराग्य सम्बोधन' नामक ग्रंथ की पांडुलिपि सरसकुंज—जयपुर की जिल्द सं० ३९० में है। इसी प्रकार जिल्द सं० ३४५ में 'प्रेमाभक्ति पर आधारित इनकी 'प्रेमलता' नामक एक अन्य ग्रंथ भी प्राप्त है जिसका रचना काल सं० १९२३ वि० है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। आगे चलकर लाड़लीदास जी सम्भवतः वेरी के महन्त हो गये थे, क्योंकि सं० १९३० वि० में वे वहीं से उपस्थित हुए थे। सम्भवतः अब यह गृहस्थ गद्दी के रूप में होकर निष्क्रिय है।

(१०) सतवादीराम—ये ज्ञानी, ध्यानी और अच्छे योगी थे। ये संगीत, वाद्य और नृत्य की शिक्षा हिन्दू-मुसलमान सबको समान भाव से देते थे। जो जैसी बानी चाहे उनसे वैसी बनवा सकता था। संस्कृत, अरबी, तुर्की, उर्दू और फारसी के ज्ञाता थे। एक दिन सितार बजाकर जुगलविहारी जी की मूर्त्ति के समक्ष गाने के बाद नूपुर धारण कर नृत्य करते हुए गद्गद् भाव से वे परलोक सिधारे। इनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः दिल्ली ही रही। हिन्दू और मुसलमान दोनों समान रूप से उनका सम्मान करते थे—

मुसलमान सबही कहैं, उन्हें वली अल्लाह।
हिन्दू गुरु माने जिन्हें, दोऊ दीन के शाह ॥[1]

सम्भवतः उन्होंने कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं बनाया, इसलिए इनकी शिष्य-परम्परा भी नहीं चली। ये मनमौजी और स्वच्छन्द स्वभाव के महात्मा थे। ये आशु कवि थे। इनके सम्बन्ध में 'नवसन्तमाल' का यह कथन उद्धरणीय है—

'जो कोई चाहता उसको बानी बना देते और अपनी छाप नहीं धरते सो दिल्ली में हरफन उस्ताद और बड़े नामी कहाते थे।'[2] इनके सम्बन्ध में 'मुक्तिमार्ग' का यह कथन उचित ही है—

श्री स्वामी महाराज के, शिष्य सतवादी राम।
चौदह विद्या में निपुण, अतिसुन्दर अभिराम ॥
ज्ञानी ध्यानी योगी पूरे। त्यागी वैरागी अति सूरे।
कविता करनी नीकी जाने। नाना छन्द प्रबन्ध बखाने ॥
दिल्ली में नामी हुए, हरफन के उस्ताद।
जो कुछ चाहा उसी की, पूरन करी मुराद ॥[3]

सं० १८३७ वि०, मिती आषाढ़ सुदी १०, मंगलवार को दिल्ली के मुख्य गुरुद्वारे (चरणदास जी के आश्रम) में इन्होंने चरणदास जी की रचनाओं के संग्रह-रूप 'भक्तिसागर' की प्रतिलिपि तैयार की थी। इस पाण्डुलिपि के विषय में उल्लेखनीय बात यह है कि चरणदास जी ने इसके अन्त में अपना हस्ताक्षर (राम ॥ राम ॥) किया है। यह राम राम ही उनका हस्ताक्षर है।

---

१. मुक्तिमार्ग : पृ० ३७–३८।
२. नवसन्तमाल : पृ० ९७।
३. मुक्तिमार्ग : पृ० ३७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) मुक्तिनिवास जी और मुंगेर की परम्परा—मुक्तिनिवास जी स्वामी रामरूप के एक योग्य और विद्वान् शिष्य थे। स्वामी रामरूप ने चरणदास के शिष्य निगमदास (पटना की गद्दी के महन्त) और अपने एक अन्य शिष्य (जिसके नाम का पता नहीं चलता और जिसका थाँभा ठठेरी बाजार—पटना में था) के साथ मिलकर उन्हें पूर्वी बिहार में अपने सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार का काम सौंपा था। मुंगेर के चौक मुहल्ले में इस सम्प्रदाय का एक मन्दिर अभी भी वर्तमान बताया जाता है। श्री मुक्तिनिवास के एक शिष्य या प्रशिष्य श्री बसन्तनिवास सं० १९४२–१९५२ वि० के बीच हुए पलथा और माँचल के मेलों में उपस्थित हुए थे। इसके अतिरिक्त इस थाँभे का अन्य कोई वृत्त ज्ञात नहीं हो सका है।

(१२) महन्त ज्ञानस्वरूप और थुराना की परम्परा- यह स्थान हरियाणा प्रान्त के हिसार जिले के हाँसी तहसील में स्थित है। यद्यपि श्री रामरूप के शिष्य श्री ज्ञानस्वरूप का विशेष परिचय अप्राप्त है, परन्तु इनके सम्बन्ध में इतना ज्ञात है कि ये एक पहुँचे हुए महात्मा थे। इन्हें जागीर में कई सौ बीघे जमीन प्राप्त हुई थी, जिसकी आय से इनके द्वारा निर्मित मन्दिर की सेवा और भण्डारे आदि के आयोजन का खर्च चलता था। जमीन्दारी उन्मूलन के समय तक यहाँ के मन्दिर के साथ २०० बीघे जमीन संलग्न थी। यहाँ के महन्तगण प्रायः सभी मेलों में अपने अधीन अन्य थाँभों के महात्माओं के साथ उपस्थित होते रहे हैं। इनकी शिष्यपरम्परा इस प्रकार मिलती है—

महन्त ज्ञानस्वरूप	— श्यामास्वरूप	— बालकदास	— चुनीदास
(१८४०–१९१० वि० अनु०)	(१९१०–१९६५ वि०)	(१९६५–१९८० वि०)	(१९८०–२१०० वि०)

वर्तमान समय में इसकी क्या स्थिति है, यह अज्ञात है। इनका एक स्थान मेरठ जिले के बुढ़ाना नामक स्थान में भी था।

(१३) म० मुक्तिराम और सीतारामबाजार (दिल्ली) का थाँभा—म० मुक्तिराम का दूसरा नाम मुकुटराम भी मिलता है। सं० १९४७ वि० में सिद्धराम जी के पक्ष में लिखित अपनी गद्दी के वसीयतनामे में रामरूप जी ने श्री मुक्तिराम से भी हस्ताक्षर कराया है। इससे स्पष्ट होता है कि ये उस समय तक तो अवश्य ही वर्तमान थे। उन्होंने सीतारामबाजार (दिल्ली) में अपना स्थान बनाया था। इनके शिष्य किसुनदास सं० १९२७ तक वर्तमान थे। इस थाँभे का अन्य वृत्त ज्ञात नहीं है।

(१४) म० ब्रह्मनिवास और मित्तराउ की परम्परा—ये एक अच्छे कवि और उच्चकोटि के महात्मा थे। ये दिल्ली शहर से कोई १०–१२ मील दूर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहत्तर दिल्ली क्षेत्र में नजफगढ़ थाने के भित्तराउ नामक स्थान पर रहा करते थे। इनका थाँभा बड़ा ही सक्रिय था। यहाँ के महन्तगण प्रायः अधिकांश मेलों में उपस्थित होते रहे हैं। ऐसा कहा जाता है कि ये स्वामी सिद्धराम की गद्दीनशीनी (सं० १८४७ वि०) के पूर्व ही इस स्थान के महन्त हो गये थे। यह गद्दी सं० २००० वि० के आस-पास गृहस्थ गद्दी के रूप में परिणत हो गई। इसकी शिष्य-परम्परा इस प्रकार मिलती है—

रामरूप जी—ब्रह्मनिवास—चतुरदास—द्वारकादास—हरनामदास—केसोदास
(१८४५– १९२० वि०) (१९२०– १९२५ वि०) (१९२५– १९३८ वि०) (१९३८– १९५२ वि०) (१९५२– १९७८वि०)

ब्रह्मनिवास जी भी अच्छे कवि थे। इनकी बानियों का एक संग्रह महन्त प्रेमदास जी के संग्रहालय में वर्तमान है। सिद्धराम जी की 'शब्द बावनी' में इनके भी कुछ पद संकलित हैं, जो मुख्यतः निर्गुण काव्य की शैली में है। उनमें से एक पद इस प्रकार है—

गुरु बिनु भरम तिमिर नहिं भागे।
कोटि उपाय करो किन कोई ज्ञान दीप अन्तर नहिं जागे॥
नेम धरम कर संयम पूजा तीरथबरत अधिक मन जाये।
जब तक सतगुर भेंटे नाहीं भरमि फिरो कछु हाथ न आये॥
धूनी तप लेहौ जलधारा फल चाहे जाऊँ स्वर्ग मझारा।
आवागमन की पूँजी पल्ले इस करनी कैसे छुटकारा॥
चेतन रूप निरन्तर छायो मूरख नर ने मरम न पायो।
साँचा राम पिछाना नाहीं भटक भटक के जनम गँवायो॥
मुक्तिधाम को सोई जावे रामरूप से सतगुरु पावे।
ब्रह्मनिवास कहै मिटै दोई भव सागर में बहुरि न जावे॥

अन्य गद्दियों का परिचय—

(१५) मुडोर (मुंडेला)—यह स्थान सोनीपत तहसील, जिला सोनीपत में स्थित है। चरनदासी सम्प्रदाय की गद्दियों की गणना में इसी से मिलता-जुलता एक नाम मुडोला का भी है, जो इससे भिन्न है। वहाँ चरणदास जी के शिष्य श्री त्यागीराम का थाँभा था। इन दोनों नामों के बीच ऐसी भ्रान्ति हुई है कि इस सम्प्रदाय के मेलों से सम्बद्ध अभिलेखों में भी इनके महन्तों के नामों के साथ घाल-मेल कर दिया गया है। बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ परीक्षण करने के उपरान्त इस गद्दी की शिष्य-परम्परा त्यागीराम जी की परम्परा से अलग पहचानी जा सकी। रामरूप जी अपने रामत के क्रम में यहाँ भी आये थे और सम्भवतः अपने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी शिष्य को यहाँ छोड़ गये थे, जो बाद में महन्त पद से विभूषित हुआ। इस गद्दी के सर्वप्रथम ज्ञात महन्त श्री भालदास हैं, जो सं० १९३० से १९६५ वि० के बीच और उनके शिष्य रतनदास सं० १९७० से २००० वि० के बीच विभिन्न आयोजनों में उपस्थित हुए हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वृत्त उपलब्ध नहीं होता।

(१६) बनी (बन्दीपुर)— कर्नाल जिले के इस स्थान पर मूलतः किसने स्थान का निर्माण किया था, इसका पता नहीं चलता। प्राप्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि यहाँ इस सम्प्रदाय का कोई प्रभावशाली महात्मा अवश्य रहा होगा, क्योंकि यहाँ के मन्दिर के साथ एक हवेली, घने जंगल से युक्त जमीन और कृषियोग्य भूमि अभी भी संलग्न है। इस सम्पत्ति की व्यवस्था श्री रामरूप के दिल्ली-स्थित मुख्य स्थान के वर्तमान महन्त श्री प्रेमदास द्वारा हो रही है। सं० १९१९ वि० में यहाँ कासीप्रसाद जी महन्त थे। उनके शिष्य सालकरामदास सं० १९९० वि० तक वहाँ वर्तमान थे।

(१७) बेरी—रोहतक जिले के बेरी बाजार के वृन्दावनवालों की गली नामक मुहल्ले में सन्त चरणदास के शिष्य धर्मदास जी रहा करते थे। उनके उत्तराधिकारी और स्वामी सिद्धराम के शिष्य श्री सूरदास सम्भवतः सं० १९३० वि० तक यहाँ वर्तमान थे। धर्मदास जी के परलोकवास के उपरान्त यह स्थान सिद्धराम के शिष्य तुलसीदास की देखरेख में आ गया। यही कारण है कि श्री रामरूप की वर्तमान शिष्य-परम्परा इसे अपना स्थान मानती है। वस्तुतः रामरूप जी की परम्परा की गद्दियों में इसकी गणना सं० १९३० वि० के बाद ही होनी चाहिये। यहाँ का मन्दिर 'प्रीतमदास का मन्दिर' के नाम से विख्यात है। म० तुलसीदास के शिष्य नारायणदास यहाँ सं० १९७० वि० तक वर्तमान थे। उनके बाद लाड़लीदास गद्दी पर आये, जो सं० २०१० वि० तक निश्चित ही वहाँ रहे होंगे। सम्प्रति यह गृहस्थ गद्दी हो गई है।

इस स्थान के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि रामरूप जी ने यहीं सं० १८४७ वि० में शरीर-त्याग किया था। यहाँ उनकी समाधि और छतरी बनी हुई है, जिसका निर्माण स्वामी सिद्धराम जी ने कराया था।[1] इसलिए भी स्वामी

---

१. इस तथ्य की पुष्टि मुक्तिमार्ग की भूमिका की निम्न उक्ति से भी होती है—

सुन्दर ग्राम सुहावनो, बेरी जाको नाम।
श्री स्वामी रामरूप प्रभु, देह तजी जा ठाम॥
स्वामीसिद्धहि राम जू, छत्री तहाँ बनाय।
चरन पादुका गुरुन की, दई तहाँ पधराय॥
साधुन जन पूजन करें, धरें भोग हरषाय॥—मुक्तिमार्ग : पृ० ४६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामरूप जी के शिष्य-प्रशिष्यों के लिए इस स्थान का विशेष आकर्षण रहा होगा। इस गद्दी की शिष्य-परम्परा का विवरण धर्मदास जी के प्रसंग में द्रष्टव्य है।

(१८) सौलघा—यह स्थान रोहतक जिले के साँपला तहसील और बहादुरगढ़ थाने के अन्तर्गत आता है। इसकी स्थापना रामरूप जी के किस शिष्य या प्रशिष्य ने की थी इसका पता नहीं चलता। इतना अवश्य है कि सं० १९३९ वि० से सं० २००० वि० तक इसकी सक्रियता के बराबर बने रहने का उदाहरण मिलता है। इस अवधि के बीच यहाँ के महन्त-पद पर क्रमशः सुमिरनदास, चेतनदास और पूरनदास विराजमान थे। ये महन्तगण अपने अनेक महात्माओं के साथ विभिन्न मेलों में उपस्थित होते रहे हैं। इस समय यह स्थान गृहस्थ गद्दी का स्थान हो गया है।

(१९) जयसिंहपुरा (नयी दिल्ली)—स्वामी सिद्धराम की शिष्या कोकिलाबाई यहीं अपना स्वतन्त्र स्थान बनाकर रहा करती थीं। इनका एक स्थान मुहल्ला बल्लीमरान में भी था। इनकी शिष्या रामकुँअरबाई और प्रशिष्य लाड़लीदास जी ने इस स्थान की उनकी परम्परा को सं० १९६० वि० तक चलाया। बुन्देलखण्ड के सं० १९३० वि० के मेले में रामकुँअरबाई के साथ दिल्ली से २० साधु गये थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि इनका थाँभा उस समय पर्याप्त समृद्ध था।

(२०) नाहड़—(रोहतक जिले के भूतपूर्व दुजाना रियासत का एक स्थान) यहाँ किसने स्थान बनाया था, इसका पता तो नहीं चलता परन्तु मेलों की बहियों से ज्ञात होता है कि सं० १९४२ वि० में राघोदास जी और सं० १९७० वि० में उनके शिष्य श्री पुस्करदास यहाँ के महन्त थे। इस स्थान का वर्तमान-कालिक रूप अज्ञात है।

(२१) मिसरगढ़ (मेरठ)— स्वामी रामरूप जी के शिष्य सुखनिवास जी का हस्ताक्षर रामरूप जी के वसीयतनामे में महन्त-रूप में है और सं० १८७८ वि० के सिद्धराम जी के भी वसीयतनामे पर इनका हस्ताक्षर है। इनका स्थान मेरठ नगर के मिसरगढ़ नामक मुहल्ले में था। यहाँ से सं० १९३० वि० में दो महात्मा बुंदेलखंड के मेले में सम्मिलित हुए थे—(१) गंगानिवास और (२) नत्थूदास। यहाँ की शिष्य-परम्परा इस प्रकार मिलती है—

श्री रामरूप— सुखनिवास — गंगानिवास — सत्यनिवास — बसन्तनिवास
(सं०१८४०–१९१०वि०) (१९११–१९५०) (१९५०–१९५६) (१९५६–८०)

सं० १९८० वि० के उपरान्त यह स्थान दिल्ली स्थित प्रधान गद्दी की देख-रेख में आ गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महन्त सुखनिवास के एक अन्य शिष्य कृपानिवास जी के तीन हस्तलिखित ग्रंथ जयपुर के सरसकुंज की जिल्द सं० ८२६ में संगृहीत हैं। इनके नाम हैं—(१) भावना पचीसी (२) नेहप्रकाश और (३) लगन पचीसी। ये तीनों रचनाएँ मधुराभक्ति की भावाभिव्यक्तियों से युक्त हैं। इनके साक्ष्य से कहा जा सकता है कि कवि सखीभाव की भक्ति से प्रभावित था।

(२२) जयपुर—यहाँ पान का दरीबा नामक मुहल्ले में लुकसर के महन्त श्री रामकृपाल जी की चौथी पीढ़ी के महन्त बलदेवदास जी के शिष्य सरसमाधुरीशरण (वकील) ने अपना स्वतन्त्र स्थान निर्मित किया था। ये अधिकांशतः जयपुर और वृन्दावन (सरसकुंज) में रहकर अपने सम्प्रदाय के पुनरुद्धार में लगे रहे। इसको इस सम्प्रदाय का अद्वितीय पुनरुद्धारक माना जा सकता है। इस स्थान की परम्परा श्री सरसमाधुरीशरण के वृत्त के साथ दी जा चुकी है।

(२३) वृन्दावन (जुगलघाट)—यहाँ के जुगलघाट पर चरणदासी सम्प्रदाय के अनेक महात्मा समय-समय पर रहे हैं। आरम्भ में चरणदास जी के शिष्य श्यामरूप जी यहीं रहते थे। उनके बाद स्वामी सिद्धराम की शिष्या कोकिलाबाई जी अपने जीवन के उत्तरकाल में दिल्ली का अपना स्थान छोड़कर यहाँ रहने के लिए आ गईं। यहाँ निश्चित ही उक्त दोनों महात्माओं की परम्परा अलग-अलग चली क्योंकि कोकिलाबाई जी के शिष्य मोहनदासजी इस केन्द्र से किसी भी मेले में नहीं गये हैं। यही बात उनके तीनों शिष्यों अर्थात् श्यामदास, राधिकादास और किशनदास के लिये भी कही जा सकती है।

इस स्थान से सं० १९३९ वि० में श्री माधोदास महंत-रूप में गये थे और सं० १९४२ से १९६० वि० तक यहाँ श्री गोविन्ददास[1] और उसके पश्चात् सं० १९७५

---

१. गोविन्ददास जी के विषय में स्व० रूपमाधुरीशरण की उक्ति इस प्रकार है—

'साधु सेवा में सरनाम चाहें नहीं धनधाम।'

(रूपमाधुरी जी की बानी से उद्धृत)

ये कोकिलाबाई जी के शिष्य एवं प्रसिद्ध भक्तकवि श्री मनमोहनदास को गुरु-रूप में मानते थे। सम्भवतः दीक्षित भी उन्हीं से थे। वे एक विरक्त तथा सर्वथा अकिंचनमहात्मा थे। वृन्दावन छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। उनके विषय में श्री जगदीश जी राठौर का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है—

तृणवत त्यागे जगत सुख, दृढ़वत विपिन निवास।
रामभजन रस में पगे, गुणनिधि गोविंददास॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि० तक गोपालदास महंत-पद पर रहे। यह परम्परा श्री रामरूप से किसी भी प्रकार से जुट नहीं पाती है, तथापि उनकी परम्परा के स्थानों में इसकी गणना की गई है। इसका एक कारण सम्भवतः यह है कि कुछ दिनों पूर्व यहाँ रूपमाधुरीशरण रहते थे, जो सरर माधुरीशरण जी के शिष्य थे। निश्चित ही रूपमाधुरीशरण जी के पूर्व यहाँ किसी अन्य परम्परा का स्थान था।

इतना ही नहीं बल्कि सं० १९४२ से १९५२ वि० के बीच के मेलों में इस स्थान से रामदास (दिल्ली के महंत सेवादास के शिष्य) नामक एक अन्य महात्मा भी उपस्थित होते रहे हैं। इससे इस अनुमान को बल मिलता है कि जुगलघाट पर दो स्वतंत्र स्थान निर्मित हुए थे, जो श्री रूपमाधुरीशरण द्वारा वर्तमान में संयुक्त रूप में व्यवस्थित हुए हैं।

(२४) पटना—श्री चरनदास के शिष्य निगमदास ने यहाँ के ठठेरीबाजार मुहल्ले में अपना थाँभा पहले से ही स्थापित किया था। इसी स्थान के सहयोग से रामरूप जी के किसी शिष्य ने यहाँ से कुछ दूर सुमेरपुर नामक स्थान में अपना स्वतंत्र स्थान निर्मित किया। दिल्ली के महन्त वसन्तदास की सं० १९४९ वि० की डायरी में यहाँ का पता इस प्रकार लिखा मिलता है—उतमदास साधु, चरणदासी सन्तों की ठाकुरबाड़ी, ठठेरीबाजार, पटना। इससे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि सुमेरपुर के महन्त भी निगमदासजी के ही थाँभे पर रहते थे और यह परम्परा उस समय तक चल रही थी। दिल्ली या हरियाणा के मेलों में दूरी के कारण यहाँ के महात्मा पहुँच नहीं पाते थे। सम्भवतः आज भी यहाँ का स्थान बना हुआ है।

(२५) ईसेपुर (ईसड़हेड़ो)—यह स्थान दिल्ली के निकट (साँपला तहसील, जिला–रोहतक में) स्थित है। यहीं स्वामी रामरूपजी का पालन-पोषण १० वर्ष की अवस्था तक हुआ था। वर्तमान समय में यहाँ का मंदिर ध्वस्त हो गया है तथा मन्दिर की सेवा-पूजा के लिए प्राप्त जमीन किसानों द्वारा हस्तगत कर ली गई है। इस स्थान की यह अवस्था सं० २००० वि० के बाद ही हुई होगी, क्योंकि सं० १९६० वि० तक यहाँ स्वामी हरनामदास और सं० १९८० वि० तक बाबा हरिदास यहाँ वर्तमान थे। वे विविध मेलों और आयोजनों में भी नियमित रूप से उपस्थित होते रहते थे।

(२६) मीलावाली—मैनपुरी जिले में स्थित इस थाँभे की स्थापना सम्भवतः रामरूपजी के शिष्य रामनिवासजी ने की थी। इनके शिष्य ब्रह्मनिवास जी सं० १९२० वि० तक तो निश्चित रूप से जीवित थे, क्योंकि उससे एक वर्ष पहले के मेले में वे आये थे। ब्रह्मनिवास के शिष्य नन्दकिशोर जी सं० १९३० से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९५२ वि० के बीच प्रायः सभी मेलों में उपस्थित हुए थे। इस स्थान का अन्य वृत्त अज्ञात है।

(२७) पतला (निवाड़ी)—गाजियाबाद जिले के इस स्थान के निर्माणकर्त्ता का पता नहीं चलता। सम्भवतः रामरूप जी के किसी शिष्य का यह स्थान था। दिल्ली से कोई २५ मील की दूरी पर त्यागी उपाधिधारी ब्राह्मणों के इस बड़े से गाँव में इस परम्परा का स्थान अब भी वर्तमान है। मुख्य गद्दी (दिल्ली) के महन्त भोलादास जी (सं० १९६०–१९९५ वि०) की एक गढ़ी यहाँ बनी हुई है। यहाँ का सं० १९०० वि० के पूर्व का तो पता नहीं परन्तु इसके पश्चात् की जो महंत परम्परा मिलती है, वह इस प्रकार है—

म० सरूपदास	म० रामचरनदास	म० वृन्दावनदास
(सं० १९०५–१९६० वि०)	(सं० १९६०–८० वि०)	(सं० १९८०–२०२० वि०)

दहकौरा (जिला-रोहतक), कौलाना या कुलताना (जिला-रोहतक), पटौदा (जिला-रोहतक) और असौदा (थाना-खरखौदा, जिला-रोहतक) में स्थापित रामरूपजी के शिष्यों की गद्दियों का प्रामाणिक एवं सुव्यवस्थित वृत्त प्राप्त नहीं होता। विविध सामूहिक आयोजनों में कहीं से सं० १९३० वि० में, कहीं से सं० १९५० वि० में, कहीं से सं० १९७२ वि० में और कहीं से सं० १९८० वि० तक महात्मागण उपस्थित होते रहे लेकिन उनकी शिष्य-परम्परा के अभिलेख अप्राप्त हैं, इसलिए इनका प्रामाणिक विवरण दे पाना सम्भव नहीं है।

(२८) गढ़ीसिलाना (तह० सोनीपत, जिला रोहतक)—रामरूप जी के थाँभों में इसकी गणना क्यों होती है, यह कुछ समझ में न आनेवाली बात है। प्रारम्भ में चरणदास जी के शिष्य आसानन्दजी ने यहाँ अपना थाँभा स्थापित किया था। सम्भव है कि आगे जलकर रामरूप जी की परम्परा का कोई साधु वहाँ पहुँच गया हो और योग्य शिष्य के अभाव में वही इस स्थान का महन्त बना दिया गया हो। यहाँ का कोई भी महन्त किसी भी मेले में उपस्थित नहीं हुआ है। इससे अनुमान होता है कि यहाँ के बड़े थाँभे ने सं० १९०० वि० के पश्चात् अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो दिया होगा और यह रामरूप जी के दिल्ली स्थित प्रमुख स्थान के साथ जुट गया होगा।

(२९) बलियाणा-(तह० रोहतक, जिला रोहतक)—इस स्थान पर सर्वप्रथम संत चरणदास के शिष्य हरिदास जी (प्रथम) ने अपना थाँभा स्थापित किया था परन्तु किसी योग्य शिष्य के अभाव में उन्होंने स्वामी सिद्धराम जी के शिष्य ब्रह्मदास टूटा को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। श्री ब्रह्मदास के सं० १९०० वि० तक जीवित होने का प्रमाण मिलता है। उनके शिष्य सुमिरनदास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९१९ वि० तक जीवित नहीं थे क्योंकि उस वर्ष हुए एक मेले में उनके शिष्य हरिदास जी उपस्थित हुए थे। ये हरिदास जी वहाँ सं० १९३५ वि० तक ही रह पाये होंगे, क्योंकि इसके बाद सं० १९५२ वि० तक वे डूडाहेडा वाले प्रधान थाँभे से ही आते रहे। सं० १९३९ वि० में बलियाणा में किसनदास की उपस्थिति इस तथ्य की पुष्टि करती है। अतः यहाँ की महंत परम्परा इस प्रकार हो सकती है—

स्वामी सिद्धराम—ब्रह्मदास टूटा (सं० १८५०–१९०० वि०)—सुमिरनदास (सं० १९००–१९१५ वि०)—हरिदास (सं० १९१५–१९३५ वि०)—किसनदास (सं० १९३५–४० वि०)—मंगलदास (सं० १९४०–१९५६ वि०)—बल्लभदास (सं० १९५६–७० वि०)—मोहनदास (सं० १९७०–२००० वि० तक) आगे का वृत्त अप्राप्त।

(३०) राल्हियावास—(तह० रिवाड़ी, जिला गुड़गाँव)—यहाँ नंदलाल जी (चरणदास के शिष्य) के अतिरिक्त रामरूप जी के शिष्य म० टीकारामदास ने भी अपना थाँभा स्थापित किया था। इसकी गणना छोटे थाँभे के रूप में होती रही है। इनकी शिष्य परम्परा इस प्रकार है—स्वामी रामरूप—टीकारामदास (सं० १८४०–१९१५ वि० तक)—बलवीरदास (सं० १९१५–४० वि०)—गिरधारीदास (सं० १९४०–५२ वि०)—मंगलदास (सं० १९५२–१९८० वि०) आगे गृहस्थ गद्दी। महंत गिरधारीदास सं० १९३० वि० के मेले में रजधान (कानपुर के निकट) से आये थे। संभव है कि वे वहीं के मूल निवासी हों परन्तु बाद में यहाँ आकर रहने लगे हों और महन्त बना दिये गये हों।

(३१) महन्त सुखनिवास—ये स्वामी रामरूप के ऐसे शिष्यों में से थे, जिन्होंने दिल्ली-क्षेत्र को ही अपना कार्यक्षेत्र और साधनाभूमि के रूप में चुना था। इनकी शिष्य-परम्परा शुक सम्प्रदाय के अभिलेखों में निम्नप्रकार से अंकित है—

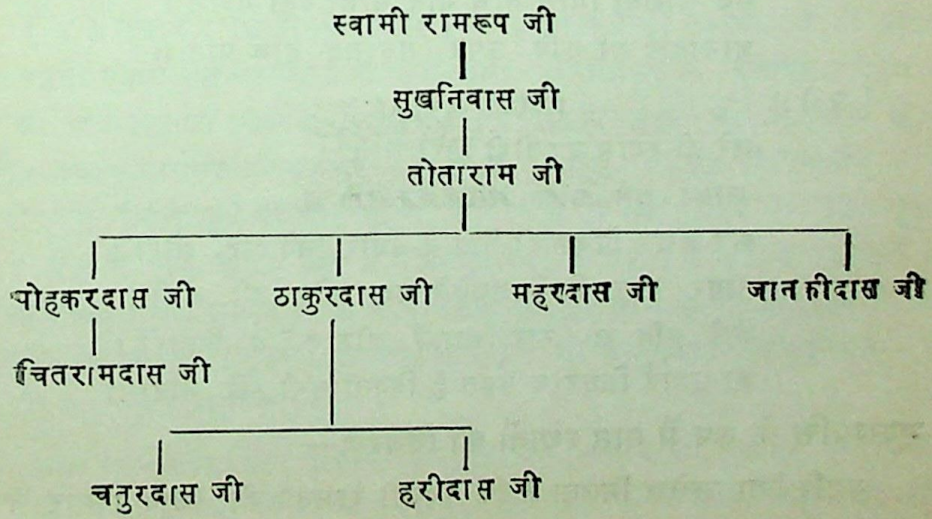

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सुखनिवास के हस्ताक्षर रामरूप जी और सिद्धराम जी—दोनों के वसीयत-नामों पर हैं। इससे अनुमान होता है कि सं० १९८० वि० तक ये वर्तमान थे।

(३०) अमरदास—मुख्यतः गुरुचरणों में ही रहे। गुरु के स्वर्गवास के उपरांत दिल्ली के ही किसी स्थान में रहने लगे। इनके शिष्य महन्त जगतराम ने सं० १९२७ वि० वाले दस्तावेज पर हस्ताक्षर किये हैं। इससे पता चलता है कि यह स्थान सं० १९५० वि० तक अवश्य बना हुआ था।

महन्त मँगनीराम—ये कोसली में स्थान बनाकर रहते थे। सं० १८५७ वि० में उनके शिष्य श्री मोहनदास ने श्री ज्ञानानन्द निर्वाणी के 'श्रीमद्भागवत-दशम स्कंध भाषा' की प्रतिलिपि तैयार की थी। इससे अधिक कोसली की श्री मँगनीराम की गद्दी का कोई भी वृत्त नहीं ज्ञात हो सका।

इसी प्रकार रामरूप जी के शिष्य श्यामकृपाल जी के शिष्य श्री परमेश्वरदास जी ने सं० १८६५ वि० में भगवानदास निरंजनी कृत 'कार्तिकमाहात्य' की प्रतिलिपि पूर्ण की थी।

स्वामी सिद्धराम जी के नारी शिष्यों में ज्ञानाबाई एक उल्लेखनीय व्यक्तित्व हैं। कोकिलाबाई जी इनका बड़ा आदर करती थीं। उनके पद-संग्रह में ज्ञानाबाई जी के भी कुछ पद संकलित हैं।

इनकी बानियों में से दो प्रतिनिधि पद यहाँ उद्धृत हैं—

(१) ॥ झूले का पद ॥

हिंडोरे झूले मुरलीवारो कान्ह।
संग सोहे वृषभानुकुमारी प्यारी प्रान समान॥
सब सखियाँ मिलि नाचैं गावैं सोभा बढ़ी महान।
ज्ञानाबाई या छवि ऊपर तन मन वारूँ प्रान॥

(२) ॥ राग होरी ॥

अरे हो स्याम बरजोरी होरी खेली।
लाला तुम आज स्याम बरजोरी॥
कर कंचन पिचकारी लिये हैं अबीर लिये भर झोरी।
नागर नगर फिरै अलबेले मदन मोहन की जोरी॥
खेलै नहिं तो रार मचावै और करै ये निहोरी।
ज्ञानाबाई सिधराम कहत है बिनती सुनौ हरि, मोरी॥

भूसम्पत्ति के रूप में प्राप्त स्थानों का विवरण—

यद्यपि ऐसा उल्लेख मिलता है कि स्वामी रामरूप की शिष्य परम्परा ने कुल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८२ स्थानों का निर्माण किया था परन्तु सावधानी से परीक्षण करने के पश्चात् इस मान्यता में सन्देह उत्पन्न हो जाता है। इन स्थानों की सूची में कुछ ऐसे भी स्थान हैं जो केवल जागीर में मिले स्थानों के नाम मात्र हैं। वस्तुतः ये स्वतन्त्र थाँभे का रूप नहीं ले सके थे। उनका नियन्त्रण श्री रामरूप जी के दिल्लीस्थित बड़े थाँभे के तत्तद्कालीन महन्तगण करते रहे और उनका कोई व्यक्ति वहाँ व्यवस्था के लिए बना रहा। ऐसे स्थानों में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं—

(१) फतेहपुरी—(तत्कालीन तह० झज्झर, जिला रोहतक)—दिल्ली के बादशाह शाहआलम द्वितीय ने रामरूप जी को उनके दिल्ली स्थित मुख्य मंदिर की रख-रखाव के लिए फतेहपुरी नामक स्थान में ५००० बीघे की माफी जमीन दी थी। इसकी व्यवस्था दिल्ली के प्रधान थाँभे से होती थी। अब यह दिल्ली की वृहत्तर सीमा के अन्तर्गत है।

(२) न्यौरी (नौहरी) (तह० थानेश्वर, जिला करनाल)—आरम्भ में यहाँ रामरूप जी का कोई शिष्य निवास करता था। उसी के प्रभावस्वरूप वहाँ एक मन्दिर का निर्माण हुआ था। सम्भवतः सिद्धराम जी को मिली जागीरों में से यह भी एक ऐसा ही स्थान है। अभी भी यहाँ मन्दिर के साथ एक बगीचा, ५० बीघे जमीन और एक हवेली वर्तमान है। इसकी भी व्यवस्था दिल्ली के प्रधान थाँभे से नियुक्त महात्मागण करते रहे हैं। यह स्वतन्त्र थाँभा नहीं है।

(३) मुरादनगर—यहाँ का स्थान करनाल जिले के लाडुआबाजार में स्थित है। यहाँ भी जमीन, बाग और मकान अभी तक सुरक्षित हैं। इसकी व्यवस्था दिल्ली से ही होती है। यह भी स्वामी सिद्धराम की जागीरों में से एक है और बनी तथा नौहरी के पास ही है।

(४) सवाद (जिला-करनाल)—यहाँ चरणदासी सम्प्रदाय के दो स्थान थे। पहला स्थान संत चरणदास के शिष्य तथा 'लीलासागर' के रचयिता जोगजीत जी का था, जिसकी व्यवस्था कुरुक्षेत्र स्थित उनकी प्रधान गद्दी से होती थी। दूसरा स्थान रामरूप जी का था। कहते हैं कि यहाँ भी ५० बीघे जमीन उन्हें जागीर में मिली हुई थी और शहर के बीच में ही एक मन्दिर भी बना हुआ था। यहाँ से सं० १९५० वि० में श्री गोविन्ददास महन्त के रूप में एक मेले में सम्मिलित हुए थे। सम्भव है कि वे जोगजीत जी के थाँभे के रहे हों। इन स्थानों के अतिरिक्त धीरपुर (बृहत्तर दिल्ली क्षेत्र) में भी इस परम्परा की कुछ सम्पत्ति थी, जो अब भी वर्तमान है।

रामरूप जी की शिष्य-प्रशिष्य परम्परा द्वारा बनाये गये कुछ ऐसे स्थानों के भी नाम मिलते हैं, जहाँ की शिष्य परम्परा एक-दो पीढ़ी से अधिक नहीं चली और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ के महन्तगण अधिक सक्रिय नहीं रहे। इनमें दिल्ली के बल्लीमारान, सीताराम बाजार, जयसिंहपुरा और जहाँगीरपुरा आदि के साथ ही सुनाम (संगरूर), दादरी (वृन्दावन के पास का स्थान), सानखाश (झींद), साँवड़ (झींद), स्यालु (पटियाला) और साप्रा (अंबाला) आदि के उल्लिखित थाँभों के नाम विशेष रूप से गिनाये जा सकते हैं।

स्वामी रामरूप जी के अन्य शिष्य एवं स्थान—

(१) हरिदयाल जी—इनके शिष्य रामदयाल सं० १९२७ वि० तक वर्तमान थे। रामदयाल के शिष्य श्री बलदेवचरण थे। ये दोनों गुरु-शिष्य सं० १९२७ वि० वाले अभिलेख के साक्षी हैं। इनके थाँभे का स्थान भी अज्ञात है।

(२) समीपदास जी—रामरूप जी के वसीयतनामे पर इनका हस्ताक्षर तो है लेकिन इन्हें महन्त सूचित नहीं किया गया है। स्वामी सिद्धराम के वसीयतनामे पर इनका हस्ताक्षर नहीं है परन्तु सं० १८९७ वि० में मलूकदास जी द्वारा लिखित वसीयतनामे पर इन्हें महन्त पद से विभूषित लिखा गया है। इससे अनुमान होता है कि सं० १८५० वि० के पश्चात् ये महन्त हुए होंगे। महन्त समीपदास का हस्ताक्षर सं० १९२७ वि० के वसीयतनामे पर भी महन्त के रूप में है। इससे सिद्ध होता है कि ये दीर्घजीवी महात्मा थे। इनकी बानियाँ अप्राप्त हैं।

(३) स्वामी रामरूप के शिष्य श्रीदास या शिवदास रामरूप जी के वसीयतनामे में महन्त पद से युक्त नहीं थे परन्तु सं० १८७८ वि० के वसीयतनामे में इन्हें महन्त बताया गया है। अतः कहा जा सकता है कि अपने गुरु के स्वर्गवास के पश्चात् ये महन्त हुए होंगे।

(४) रामरूप जी की शिष्य सूची में ८२वें (अंतिम) क्रम संख्या पर उल्लिखित श्री संगतराम जी रामरूप जी के अंतिम काल के आस-पास दीक्षित बाल शिष्यों में रहे होंगे। उन्होंने रामरूपजी के वसीयतनामे पर हस्ताक्षर नहीं किया है। संभवतः उस समय वे नाबालिग रहे होंगे। उसके पश्चात् स्वामी सिद्धराम और उनके शिष्य श्री मलूकदास द्वारा लिखित वसीयतनामों पर भी उनके हस्ताक्षर नहीं हैं। परन्तु सं० १९२७ वि० में सेवादास जी (मलूकदास जी के शिष्य) द्वारा अपने शिष्य शालिग्राम जी के पक्ष में लिखित वसीयतनामे में उनका नाम महंत पद के साथ उल्लिखित है। इससे अनुमान होता है कि सं० १९०० वि० के बाद ही वे महंत हुए होंगे। वे कहाँ के महंत थे, इसका पता मेलों के अभिलेखों से भी नहीं मिलता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) रामरूप जी के वसीयतनामे पर उनके शिष्य मथुरादास के नाम के साथ आगरा का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि सं० १८४७ वि० तक उन्होंने अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया था और वहीं रहते थे परंतु तब तक महंत नहीं बने थे।

(६) रामरूप जी के शिष्य रामदास जी सं० १८७७ वि० तक महंत हो गये थे। सं० १८७८ वि० के वसीयतनामे में इनके साथ महंत शब्द अंकित है।

जहाँ तक जगाधरी, दहीरपुर और घनमौली के थाँभों का प्रश्न है, ये वस्तुतः दूसरी परंपराओं के स्थान हैं परंतु कालान्तर में योग्य शिष्यों के अभाव में ये भी रामरूप जी के थाँभों के अंतर्गत आ गये होंगे। जगाधरी (जिला–अंबाला) में मूलतः जोगजीत जी का थाँभा था। इसी प्रकार धीरपुर (बृहत्तर दिल्ली) में सहजोबाई की परम्परा का कोई स्थान निश्चित रूप से था। यदि श्री रामरूप की परम्परा का कोई स्थान यहाँ रहा भी होगा तो उसका परिचय अप्राप्त है। यहाँ पर अब भी कुछ भूसम्पत्ति श्री रामरूप की परम्परा की है, जो आचार्य गद्दी के वर्तमान महंत प्रेमदास जी के अधिकार में है। धनमौली (जिला–करनाल) में अब इस परम्परा की कोई सम्पत्ति नहीं बची है। भिवानी (हिसार), मांगी (पटियाला), महायो (पटियाला), जलगाँव (मध्यप्रदेश), बीबीपुरा (झींद), कठुआ (करनाल), सोनीपत (करनाल), इन्द्री (करनाल), बुड़ाना (जिला–मुजफ्फरनगर), मुकुटपुर (पटियाला), नारनौल (महेन्द्रगढ़), बाकरगढ़ (नरेला), ठासा, तिहाड़, हिरनकी, बहरामपुरी (सभी बृहत्तर दिल्ली), छापर, वापरौली, गढ़ी साँपला (रोहतक), बादली (दिल्ली), पटौदी (गुड़गाँव) और सहारनपुर (उ० प्र०) में बताये जाने वाले इस गद्दी से सम्बद्ध थाँभों का अब कोई पता नहीं चलता। गढ़ी साँपला के थाँभे का उल्लेख रामरूप जी के स्थानों की सूची में होने का कारण यह है कि आगे चलकर यह थाँभा बल्लभदास जी की प्रधान गद्दी से असम्बद्ध होकर अनियन्त्रित हो गया था। अतः स्वामी रामरूप जी की परंपरा के महात्माओं ने उसकी प्रबन्धव्यवस्था अपने हाथ में लेकर उसे समाप्त होने से बचाया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. गोसाईं जुगतानन्द : उनकी शिष्य परम्परा तथा साहित्य सेवा—

स्वामीचरणदास के तीन सर्वप्रमुख शिष्यों—अर्थात् रामरूप जी, जुगतानन्द जी और सहजोबाई जी में योग्यता और सिद्धियों की दृष्टि से कौन बड़ा था या कौन छोटा, यह कहना बड़ा ही कठिन है। अब प्रायः निम्न दृष्टिकोण ही अधिक उपयुक्त समझा जा रहा है—

सुश्री सहजो, श्री रामरूप, श्री जुगतानन्द तीजे जानो।
आचार्य सम्प्रदा के तीनों, कुछ भेद नहीं इनमें मानो ॥[1]

तीनों एक से एक बढ़कर थे। सुश्री सहजोबाई चरणदास जी की फुफेरी बहन और साधनाजन्य श्रेष्ठता के कारण सब प्रकार से उनका स्नेह-भाजन थीं। स्वामी रामरूप को उन्होंने अपना दीवान बनाकर अपने ग्रंथों के प्रतिलिपिकर्ता एवं अपने सिद्धान्तों के प्रमुख व्याख्याता के रूप में नियोजित किया था। उसी प्रकार गोसाईं जुगतानन्द सभी गुणों की खानि थे और गुरु के योग्य उत्तराधिकारी थे। उनकी विशेषताओं के कारण ही गुरु ने उन्हें आश्रम का व्यवस्थापक और सम्प्रदाय का नियामक बनाया था। यद्यपि तीनों वरिष्ठ शिष्यों को समकक्ष माना गया था तथापि प्राप्त प्रमाणों से सूचित होता है कि चरणदास जी ने किसी को भी अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया था और अन्ततः तीनों को ही अपना स्वतन्त्र स्थान बनाना पड़ा। गो० जुगतानन्द की गद्दी के पिछले खेवे के एक महन्त श्री गुलाबदास के उत्तराधिकार सम्बन्धी एक मुकदमे में सन् १९४५ ई० में हुए निर्णय में मेरठ के तत्कालीन पीठासीन न्यायाधीश ने जो निर्णय दिया है, उससे यह सिद्ध होता है कि गो० जुगतानंद की गद्दी सदर गद्दी रही है और उनकी उपाधि 'श्री महन्त' तथा 'महन्तान महन्त' की थी।[2] यह उपाधि उनकी शिष्य परम्परा के साथ बराबर बनी रही। इस तथ्य की पुष्टि 'लीलासागर' की इन पंक्तियों से भी होती है—

---

१. श्री चरणदासकृत : श्यामाचरणदास चरितावली : पृ० १७८।

2. Charandas ji had 52 chelas out of whom Juktanand was made 'Gaddi Nashin' of the Gaddi of Charandas by the later and so he was the biggest chela and he was called 'Shri Mahant' and he, who succeeds to the Gaddi of Juktanandji is called Shri 'Mahant.'—"Appeal No. 85 (Record Proceedings), p. 24. (from the Statement of Mahant Gulabdasji).

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकारी श्री चरनदास के, महाराज जुगतानंद सही।
एक रूप सो गये निजपुर, एक बपु राख्यो मही।।
परताप श्री गुरु आचरन, सब दिपति मानो है वही।
जोगजीत कहै सुनो संतजन, यामे नहिं संशय रही।।[1]

गो० जुगतानंद का जन्म अलवर के समीप स्थित हरसौरा नामक ग्राम में सं० १८०० वि० के आसपास एक संपन्न ब्राह्मण कुल में हुआ था। बचपन से ही उनका झुकाव कथा-कीर्त्तन और साधु-समागम की ओर था। उनके माता-पिता बचपन में ही परलोकगत हो गये। किसी अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर एवं चरणदास की ख्याति सुनकर वे उनके आश्रम में (दिल्ली) आये और उनके सान्निध्य में रहकर उन्होंने ज्ञान, ध्यान, भक्ति और योग में निपुणता प्राप्त की। उनका दीक्षाग्रहण संस्कार अनुमानतः सं० १८१५ वि० में संपन्न हुआ था। दीक्षित होने के बाद वे दिल्ली की तखतवाली गली के पास कूचा पाती नामक स्थान में रहकर साधनारत रहे। यहाँ के कूएँ पर इनके द्वारा निर्मित होने का अभिलेख अभी भी वर्तमान है। कुछ समय उपरान्त वे चरनदास जी के आश्रम के सामने तमीजन नामक वेश्या के घर में किराये पर कमरा लेकर रहने लगे। आगे चलकर इनके शिष्य श्रीकृष्णकृपाल ने बहादुरशाह के शासनकाल में इस मकान को उस तवायफ से खरीद कर वहाँ ही अपनी स्वतंत्र गद्दी स्थापित की, जो आज तक बनी हुई है। यह गद्दी गो० जुगतानन्द के जीवनकाल में ही स्थापित हो गयी थी।

श्री जोगजीत ने 'लीलासागर' में इनकी बाल्यावस्था की एक घटना का उल्लेख किया है, जिसने इनकी जीवनधारा को हरिभक्ति की ओर उन्मुख कर दिया था। वह घटना इस प्रकार है—

धनवन्ते द्विज घर भयो बाला। पांच वर्ष को मृत्यु सँभाला।।
विमान चढ़ाय जमगण ले धाये। धर्मराय के पासहिं लाये।।
धर्मराय यों बैन सुनायो। या अब वहाँ वेगि ले जावो।।
धर्मराय आज्ञा करी, तुरत दिया पहुँचाय।
द्विज बालक चैतन्य लखि, सकल कुटुंब हरखाय।।[2]

पुनर्जीवित होने के साथ ही मन की वृत्तियाँ ऊर्ध्वमुखी होने लगीं और सत्संगति की ओर उनका आकर्षण बढ़ा। किशोरावस्था में तो यह स्थिति हो गई कि घर छोड़कर कई-कई दिनों तक वे हरिस्मरण और ध्यान में निराहार रहकर व्यतीत करने लगे। भूख लगने पर कभी दूध या फल ग्रहण कर लेते और इनके

---

१. लीलासागर : पृ० ३५२।
२. वही : पृ० २३०–३१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभाव में कभी पीली मिट्टी ही घोलकर पी जाते। इस प्रकार छः मास बीत जाने पर स्वामी चरणदास ने उन्हें दर्शन दिया और अपने दिल्ली-स्थित आश्रम में आने का आदेश दिया। उनके नई बस्ती (दिल्ली) आने पर गुरु द्वारा उनका विधि-वत् दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ और उनका नामकरण जुगतानन्द (युक्तानंद) रखा गया। गुरु ने उन्हें गुसाईं की पदवी भी प्रदान की।

महाराज पुनि आज्ञा दीनी। जुगतानन्द गुसाईं कीनी ॥[1]

उनकी सेवा से प्रसन्न होकर गुरु ने उन्हें श्रीकृष्ण का साक्षात् दर्शन भी करा दिया। ये गुरु-कृपा से स्वयं भी सिद्ध पुरुष थे। जोगजीत जी के कथनानुसार अपने शिष्य दौलतराम जी से चरणदास जी ने स्पष्ट रूप से यह कहा था—

गुसाईं जुक्तानंद मम देहा। तासे कीजे भक्ति सनेहा ॥
साधक भये धर्म के हेता। लोभ नहीं मन में कुछ सेता ॥
बड़े साधु बानी तिन सिद्धा। दरस करो पावो सब रिद्धा ॥[2]

तात्पर्य यह कि जुगतानन्द जी लोभरहित थे और उनकी वाणी सिद्ध थी। प्राप्त उल्लेखों के आधार पर पता चलता है कि वे ठिगने कद के और आकर्षक व्यक्तित्व वाले महात्मा थे। उनका स्वर बड़ा मधुर था। वे तँबूरा बहुत अच्छा बजाते थे। उनमें जन्मजात काव्य-प्रतिभा थी। उनकी अनेक सिद्धियों का भी वर्णन 'लीलासागर' में किया गया है।[3] उनका जीवन बड़ा ही सात्विक और धर्मपरायण था।[4] गुरु के जीवन काल में और उनके स्वर्गारोहण के उपरान्त (सं० १८३९ वि० के पश्चात्) महन्त हो जाने पर उन्होंने अपने गुरु भाइयों और शिष्यों द्वारा स्थापित थाँभों की अनेक बार यात्रा की थी। संत चरणदास जी के ज्ञान, योग और भक्ति-समन्वित वैष्णव युगलोपासना का विशिष्ट सिद्धान्त उत्तर भारत में अल्प समय में ही प्रचारित कर देने में गो० जुगतानंद का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपने गुरु से अलग कोई विशिष्ट आध्यात्मिक सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया, प्रत्युत उन्हीं से उपदेशों का प्रचार-प्रसार वे आजीवन करते रहे। उन्होंने अपने १२२ बानाधारी शिष्यों को भी उसी दिशा में नियोजित किया। इनके इन प्रमुख शिष्यों की सूची इस प्रकार है—

---

१. लीलासागर : पृ० २३३।
२. वही : पृ० २३६।
३. चरणदास गुरु कृपा तें, जुगतानंद भये सिद्ध। लीलासागर : पृ० १८३।
४. परमारथ हित उपजे आई। भव जीवन की करी सहाई ॥
ज्यों परभात प्रगट होय भान। जुगतानंद उतपत कियो ग्यान ॥
—श्री नवनदासकृत नवनप्रकाश : छंद सं० ६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोसाईं जी के १२२ प्रमुख शिष्यों की सूची[1]—

१. कृष्णकृपाल (गोसाईं जी के उत्तराधिकारी)।
२. मगनसरूप (राल्हियावास के महंत)।
३. नवनदास (प्रसिद्ध कवि)।
४. बुद्धिविनोद (रोहतक के महंत)।
५. सुखसरूप (गामड़ी के महंत)।
६. पूरणानन्द (रामपुरा के महंत)।
७. वृंदावनदास (कवि, वृंदावन तथा ग्वालियर के महंत)।
८. विषनानन्द (कवि)।
९. कासीदास (जैमिनि अश्वमेध के प्रतिलिपिकार)।
१०. छिगनसरूप (थुराना के महत)।
११. गंगासरन (जीतपुरा के महंत)।
१२. भक्तिविनोद (लोकरी के महंत)।
१३. भक्तहुलास।
१४. रामहुलास।
१५. कृष्णविनोद।
१६. विष्णुविनोद।
१७. सुरतविनोद।
१८. गोपालविनोद।
१९. शुद्धविनोद।
२०. प्रेमविनोद।
२१. आनन्दविनोद।
२२. भजनविनोद।
२३. श्यामविनोद।
२४. रतनगोपाल (प्रथम)।
२५. रतनगोपाल (द्वितीय)।
२६. भजनगोपाल (विलासपुर के महंत)।
२७. नन्दगोपाल।
२८. प्रेमगोपाल।
२९. परवीनदास (पलवल के महंत)।
३०. भजमनदास।
३१. पुरुषदास।
३२. कृष्णदास (१)।
३३. कृष्णदास (२)।
३४. कृष्णदास (३)।
३५. कृष्णदास (४)।
३६. नारायणदास।
३७. भोलादास।
३८. सोभादास।
३९. खूबदास।
४०. समतादास।
४१. सूरदास।
४२. अचलदास।
४३. रामदास।
४४. निहचलदास।
४५. किशोरदास।
४६. भगवानदास।
४७. सरवदास (१)।

---

१. यह सूची रामचेरा जी द्वारा तैयार की गई है, जो गो० जुगतानंद के परम प्रिय शिष्य थे। उन्होंने इस सूची में अपना नाम नहीं दिया है। जैसा कि इस कथन से स्पष्ट होता है, इसमें केवल शिष्यों के ही नाम हैं न कि प्रशिष्यों आदि के। इस सूची के अंत में रामचेरा जी ने कहा भी है—

नाती पाती बहुत हैं, चेलन के कहे नाम।
गोसाई जुगतानंद के, चेरे आठों जाम॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४८. सरबदास (२)।
४९. सरबदास (३)।
५०. मनसादास (सुनाम के महंत)।
५१. प्रभुदास।
५२. हरसुषदास।
५३. गरीबदास (१)।
५४. गरीबदास (२)।
५५. प्रेमदास।
५६. जुगलदास।
५७. नारायणदास।
५८. राधिकादास।
५९. गोविन्ददास।
६०. सुफलदास।
६१. गंगादास (१)।
६२. रामसुखदास।
६३. प्रेमदास।
६४. कृष्णदास।
६५. नरोत्तमदास।
६६. आनन्दनिवास।
६७. रूपनिवास।
६८. हरीनिवास।
६९. संतोषरूप।
७०. लेषराम।
७१. बिसराम।
७२. अडिगराम।
७३. भजनानन्दराम।
७४. सुरताराम।
७५. बलराम।
७६. सेवकराम।
७७. सुषराम।
७८. सुरतानंद।
७९. सुखानन्द।
८०. सरूपानन्द।
८१. नेहानन्द।
८२. कृष्णानंद।
८३. आसाजीत।
८४. अधीन।
८५. स्यामगुरु।
८६. रामजन।
८७. निरोत्तम।
८८. गिरधर।
८९. प्रेमसुख।
९०. गंगा(दास) (२)।
९१. सीतल(दास)।
९२. रमता(राम)।
९३. श्यामलड़ावन (भोहड़ा के महंत)।
९४. स्याममनोहर।
९५. लगनदास।
९६. प्राण(दास)।
९७. हरीस्वरूप।
९८. आतम जी (आत्मानन्द जी, बिठूर के महंत)।[1]
९९. षलकदास।
१००. भजनविलास (नूह के महंत)।
१०१. भजनपरायण।
१०२. रामसुख।
१०३. कृपासखी।
१०४. रामलला (१) (रामलाला ?)।
१०५. रामलला (२)।
१०६. रामफकीर।

---

१. गुसाईं आसानंद द्रविड़ ब्राह्मण थे। इन्होंने बिठूर में अपना स्वतंत्र स्थान बनाया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०७. राममनोहर ।
१०८. नैनाजी ।
१०९. नामपरायण ।
११०. मुरार जी ।
१११. सालक जी ।
११२. बाण जी ।
११३. सरनबिहारी ।
११४. सहजप्रताप ।
११५. रामकृष्ण ।
११६. रामकला ।
११७. लालदास (लालूजी) ।
११८. हरीविनोद ।
११९. भजनविलास ।
१२०. हितगोपाल ।
१२१. कृष्णगोपाल ।
१२२. नेहानन्द ।

इनके प्रभावशाली व्यक्तित्व और इनकी सिद्धियों से प्रभावित होकर शाहआलम द्वितीय (मुगल बादशाह) तथा नवाब झज्झर ने इन्हें पर्याप्त जागीरें प्रदान की थीं। तत्कालीन हिन्दू राजाओं पर इनका प्रभूत प्रभाव था ही।

प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि आरम्भ में गो० जुगतानन्द अपने गुरु के प्रधान 'अस्थल' में ही रहते थे परन्तु जब तीनों वरिष्ठ शिष्यों में विवाद छिड़ गया और जब न्यायालय से यह निर्णय हो गया कि तीनों शिष्य अपना अलग स्थान बना लें तो उन्होंने 'अस्थल' के ठीक सामने एक विशाल भवन निर्मित कराया और उसी में श्री राधा-कृष्ण की युगलमूर्त्ति पधराकर सेवा-पूजा में लग गए। न्यायालय के निर्णय के अनुसार ही हर महीने में १० दिन तक प्रधान अस्थल का प्रबन्ध उन्हें भी सँहालना पड़ता था। यह परम्परा आज तक चल रही है। उनका स्वर्गवास सं० १८७१ वि० में दिल्ली में हुआ था। उनकी आचार्य गद्दी की शिष्य-परम्परा निम्नलिखित है—

गो० जुगतानन्द जी की दिल्ली की शिष्य-परम्परा —

चरणदास जी महाराज (सं० १७६०–१८३९ वि०) ।
|
जुगतानन्द जी (सं० १८३९–१८७१ वि०, महंत पद का समय) ।
|
कृष्णकृपाल जी[1] (सं० १८७१–१९०४ वि० तक, ,,) ।
|
श्यामसनेही जी[2] (सं० १९०४–१९१५ वि० तक, ,,) ।

---

१. म० कृष्णकृपाल ने अपने जीवनकाल में ही श्यामसनेही के नाम से वसीयतनामा लिख दिया था। जुगतानंद जी की वर्तमान गद्दी का स्थान मुख्यतः इन्हीं का कर्तृत्व है।

२. गो० श्यामसनेही के शिष्य रामस्वरूप जी 'इतिहाससार समुच्चय' की एक पांडुलिपि के लिपिकर्त्ता थे, जिसका लिपिकाल सं० १९०० वि० है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

|
हरशरणदास जी[1] (सं० १९१४–१९१५ वि० तक, महंत पद का समय)।
|
घनश्यामदास जी (सं० १९१५–१९४२ वि० तक, ,,)।
|
वासुदेवदास जी (सं० १९४२–१९७० वि० तक, ,,)।
|
बसन्तदास जी (सं० १९७०–१९७८ वि० तक, ,,)।
|
गुलाबदास जी (सं० १९७८–२०२३ वि० तक, ,,)।
|
प्रवीणदास जी (वैशाख, सं० २०२३ वि० से वर्तमान ,,)।

१. **घनश्यामदास जी**— इनका जन्म स्थान रेवाड़ी के पास गोकुलपुर ग्राम बताया जाता है। ये स्वभाव से बड़े साधु प्रकृति के थे। सप्ताह में एक दिन ब्राह्मणभोजन कराने का इनका नियम था। ये प्रकृति से इतने उदार थे कि दान और सतों की सेवा में इनके मंदिर पर हजारों रुपयों का कर्ज लद गया, जिसे इनके प्रशिष्य बसंतदास जी ने उतारा। आप बड़े कार्यकुशल थे। गोसाईं जुगतानंद जी के शिष्यों द्वारा स्थापित सभी स्थान आपके समय तक बने हुए थे। इनकी बरसी प्रत्येक वर्ष मिती वैशाख शुक्ल ५ को सम्पन्न होती है। इन्होंने अपने जीवनकाल में ही महन्त गोमतीदास जी (गुरुभाई) के शिष्य बासुदेवदास जी के नाम से वसीयतनामा लिख दिया था। सं० १९३३ वि० के माघ मास में चरखारी के राजा जयसिंह देव चरणदास जी के मंदिर में दर्शनार्थ आये थे और उन्होंने मंदिर को ५ मुहरें और महंत घनश्यामदास जी को एक मुहर भेंट में दी थी। म० घनश्यामदास जी के समय में ही पटियालानरेश इन्द्र सिंह जी भी इनके मंदिर में पधारे थे सं० १९२१ वि० में जब वे पटियाला गये थे तो वहाँ के महाराजा महेन्द्र सिंह ने उनका बड़ा सम्मान किया था।

२. **वासुदेवदास जी**— ये नारनौल (हरियाणा) के पास गंगूताणां नामक स्थान में पैदा हुए थे। म० हरशरणदास जी के एक प्रसिद्ध शिष्य गोमतीदास जी के ये शिष्य थे। आगे चलकर इन्हें ही महंत घनश्यामदास जी ने अपना उत्तराधिकारी बनाया। ये मुख्यतः मुसेदपुर में रहा करते थे। इनकी काया लम्बी-चौड़ी और भारीभरकम थी। ये नित्य गंगास्नान करते थे। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि मुसेदपुर की गोशाला में आग लगने पर और उसके बुझने की सम्भावना न

---

१. म० हरशरणदास यहाँ आने के पूर्व संगरूर की गद्दी के महंत थे। इनकी संगरूर की शिष्य-परम्परा आगे दी जा रही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई देने पर उन्होंने दिल्ली की ओर मुँह करके श्री चरणदास का स्मरण किया और आग बुझ गई। गोशाला के सभी जीवजंतु बच गए। इनकी बरसी प्रतिवर्ष आश्विन बदी-१ को होती है। इन्होने अपनी मृत्यु के ५ वर्ष पूर्व ही श्री वसन्तदास को अपनी गद्दी सौंप दी थी। उनका परलोकवास २४ अप्रैल, सन् १९२१ ई० (सं० १८७८ वि०) को हुआ था।

३. बसन्तदास जी—ये वासुदेवदास जी के योग्य शिष्य थे। इनकी बरसी वैशाख कृष्ण २ को होती है। इनके समय तक चरणदासी सम्प्रदाय के ५५६ छोटे थांभे वर्तमान थे। रोहतक के मेले के विवरण में इसका उल्लेख मिलता है। इन्होंने घनश्यामदास जी के समय से चले आते हुए कर्ज को तो उतारा ही, साथ ही मंदिर का जीर्णोद्धार भी कराया। अपने से पूर्व हुए गुरुओं की छतरी और चरणपादुका भी इन्होने बनवाई। उन्होंने मन्दिर की अर्थव्यवस्था दृढ़ की और गोसाईं जी के शिष्य-प्रशिष्यों की परम्परा के स्थानों का संगठन भी ठीक किया। ये स्वभाव से बड़े सरल और तपस्वी थे। इन्हें इस सम्प्रदाय में गो० जुगतानंद जी का अवतार माना जाता है। इनके भाई गोकुलदास जी हैदरपुर में रहते थे। इनके एक शिष्य श्री हंसदास की बानियों का एक संग्रह 'विचारमाला' के नाम से प्राप्त है। इनके अनेक शिष्यों में चुनीदास या चुन्नीदास, हंसदास, कृष्णदास, प्रकाशानन्द और द्वारकादास विशेष उल्लेखनीय हैं। चुन्नीदास जी लोकरी के महन्त थे। इनके शिष्य श्री आज्ञादास कुछ वर्षों पूर्व तक महन्त-पद पर वर्तमान थे।

४. गुलाबदास जी—ये सं० १९५२ वि० में सुनाम में पैदा हुए थे। डेढ़ वर्ष की आयु में ही इनके माता-पिता शाहजहाँपुर के मेले में इन्हें वासुदेव जी को दे गए थे। २५ वर्ष की आयु में ये महंत-पद पर अभिषिक्त हुए और ४५ वर्ष तक बड़ी योग्यता एवं पटुता के साथ उन्होंने अपनी आचार्य गद्दी एवं सम्बन्धित अन्य स्थानों के विकास में अपना उल्लेखनीय योगदान किया। जिस समय ये गद्दी पर आए थे, इनके मन्दिर से ५०० साधुओं का सम्बन्ध था, अतः वह समय गोसाईं जी की परम्परा का स्वर्णकाल माना जा सकता है। वे राजसी वृत्ति के व्यक्ति थे। इनका स्वभाव उदार था।

103922

५. प्रवीणदासजी—ये गोसाईं जुगतानन्द जी की 'महन्तान् महन्त' या आचार्य गद्दी की यद्यपि अन्तिम कड़ी के रूप में दिखाई देते हैं परन्तु आधुनिकता बोध के साथ ही उनमें अपनी परम्परा को जीवित रखने की महती इच्छा वर्तमान है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे परम्परा और आधुनिकता के संगम पर खड़े हैं और इनमें से किसी एक को छोड़कर पूरी तरह अन्य मार्ग को ग्रहण कर लेने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से उनमें अपने पद की गरिमा के अनु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूल मानसिकता और उत्तरदायित्व बोध परिपक्व हुआ है। महन्त प्रवीणदास से शुक सम्प्रदाय को अनेक अपेक्षाएँ हैं और वे इस आवश्यकता की पूर्ति की ओर उन्मुख भी हैं। ये अतिथि सेवी, उदार, स्पष्ट वक्ता और दूरदर्शी व्यक्ति हैं। इनके मन्दिर में समय-समय पर उत्सव और सामूहिक आयोजन आदि होते रहते हैं। इन्होंने पारम्परिक वाणियों की सुरक्षा बड़े यत्नपूर्वक की है और सम्प्रदाय के पुनरुत्थान की दिशा में सचेष्ट हैं।

गोसाईं जुगतानन्द जी के कुछ प्रमुख शिष्य—

१. बुद्धिविनोदजी—इनका मन्दिर रोहतक के हूड़गंज मुहल्ले में बना हुआ है। इनकी समाधि कचहरी के पास है। इनके विषय में प्रसिद्धि है कि किसी कारणवश एक अंग्रेज अधिकारी ने इनकी जमींदारी को कईबार जब्त कर ली थी। इन्होंने प्रयाग में उसके विरुद्ध ४२ दिन का अनशन किया। अधिकारी को कई बार स्वप्न में ये डंडा लिए दिखाई पड़े। अन्ततः उसने इनका गाँव मुक्त कर दिया। इनके शिष्य कृष्ण विलासजी ने 'लीलासागर' की प्रतिलिपि की थी जो मेरे पास है। इनके एक अन्य शिष्य का नाम आत्मनिवास मिलता है। ये रोहतक के थाँभे के प्रथम महन्त थे।

२. रामचेरा जी—इनका गुसाईं जी के १२२ शिष्यों की माला में स्थान न होना आश्चर्यजनक है। इन्होंने पुस्तकों के प्रतिलिपिकार के रूप में सम्प्रदाय की अमूल्य सेवा की। गोसाईं जी के आश्रम में जहाँ बैठकर ये लिखा करते थे, वहाँ का पत्थर घिस गया है। उन्होंने आजीवन लिपिकार का कार्य किया। यही उनकी गुरु सेवा थी। वे सं० १८५२ वि० में प्रथम बार दिल्ली आये और तब से मुख्यतः दिल्ली में ही रहे। सं० १८५२ से १९०७ वि० तक (५५ वर्षों तक) लगातार लिपिकार का काम उन्होंने अथक रूप से किया। इनके ऊपर गोसाईं जी का बड़ा प्रेम था। स्वरचित 'भागवत माहात्म्य' उन्होंने उन्हें ही सौंप दिया था। गोसाईं जी के ग्रन्थों की अत्यन्त सुन्दर तथा सुरुचिपूर्ण हस्तलिखित प्रतियाँ उन्होंने लिखीं जिन्हें गुरु के आदेशानुसार वितरित किया गया। उन्होंने सम्प्रदाय के अन्य अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों की भी सचित्र प्रतिलिपि तैयार की। ये अद्भुत चित्रकार और सुन्दर लिपिकर्त्ता थे। अगर गोसाईं जी व्यास थे, तो रामचेरा जी को गणेश मानना चाहिए। उन्होंने स्वतः तो कोई रचना नहीं की किन्तु ये चरणदास जी और उनके शिष्यों की बानी अमर कर गए। इन्होंने चरणदास जी, रामरूप जी और गोसाईं जुगतानंद जी के शिष्यों की सूची भी दोहों में प्रस्तुत की है, जिसे प्रामाणिक सूची मानने में संदेह को कोई स्थान नहीं है।

गोसाईं जी का सम्प्रदाय को योगदान—जुगतानन्द जी अपने गुरु के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेशों के पालन के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित थे। उन्होंने अपने ३२ वर्ष के महंत-पद की अवधि में चरणदासी संप्रदाय के साहित्य और वैभव को बढ़ाने में स्वामी रामरूप के समकक्ष ही योग दिया है। इस उद्देश्य की सफलता के लिए उन्होंने अपने सम्प्रदाय के विभिन्न स्थानों पर अनेक बार रामत (यात्रा) की और गद्दी-नशीनी तथा सत्रहवीं के मेलों के आयोजनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। चरण-दास जी की छतरी भी आठ हजार रुपये की लागत से सं० १८४० वि० में इन्होंने ही निर्मित कराई थी। इस तथ्य का संकेत उनकी इन पंक्तियों में दिखाई देता है, जो छतरी के शिला पट्ट पर अंकित है—

श्री स्याम चरणदास फोड़ि के दसवां द्वारा।
अनतालै[1] ब्रह्मलीन भये तजि द्वैत प्रसारा॥
धर्म सनातन भक्ति ज्ञान भगवन्त पुनीता।
दे (दे) जीव किये पार दोष कलियुग सब जीता॥
अठारह सै चालीस में छत्री जिनकी सुभ रची।
जुगतानन्द सत इक सहस्र लाग दाम भाषी सची॥[2]

यद्यपि उनका बहुत-सा समय स्वामी रामरूप जी की गद्दी के उत्तराधिकारी श्री सिद्धराम की प्रतिद्वन्द्विता के कारण व्यर्थ चला गया परन्तु उनकी उपलब्धियाँ भी कम नहीं हैं। रामरूप जी की भाँति उनके भी शिष्य-प्रशिष्यों ने दूर-दूर तक अपने स्वतन्त्र स्थान निर्मित किए, जिनमें बड़ा पलथा (झरिया-बिहार) विलासपुर (म० प्र०) और जयपुर के थाँभे विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके अधिकांश थाँभे रिवाड़ी (गुड़गाँव) को ही केन्द्र बनाकर स्थापित हुए हैं। यद्यपि उनके २५ थाँभों का उल्लेख मिलता है परन्तु जैसा कि आगे स्पष्ट होगा, कुछ थाँभों की शिष्य-परम्परा का परिचय नहीं मिलता। इससे अनुमान होता है कि सं० १९०० वि० के बाद वे स्थान निष्क्रिय हो गए या वहाँ के महात्मागण किसी कारण से उन स्थानों को छोड़कर चले गए। गोसाईं जी के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा स्थापित थाँभों में बड़ा सौमनस्य था। उनके एक स्थान का महन्त संक्रान्तिकाल आने पर कई सम्बद्ध थाँभों की व्यवस्था सँभाल लेता था। वे स्वयं तथा अपने शिष्यों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन बनाए रखते थे। इनके सभी थाँभे बड़े ही सक्रिय थे। इनके सम्प्रदाय प्रचारक शिष्यों में श्री बुद्धिविनोद, गंगादास बूढ़े, हरशरणदास, मगनसरूप, वृन्दावनदास, गंगासरन, भक्तिविनोद, परबीनदास, भजनगोपाल और मनसादास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

---

१ अनतालै—उनतालीस (सं० १८३९ वि०)।

२. शब्द काव्य (जुगतानन्दकृत) पांडुलिपि, पत्र सं० १४४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोसाईं जुगतानन्द एक चमत्कारी महात्मा थे। इन्होंने रामत के क्रम में अनेक स्थानों की सदल-बल यात्रा की और गाँव के गाँव उनसे दीक्षित एवं प्रभावित हुए। इस सन्दर्भ में उनकी ब्राह्मणी खेड़ा, बाँगड़, चुरू, और जयपुर की यात्राओं का विशेष महत्व है। मुगल बादशाहों के एक सामंत महाराज बलवन्त सिंह ने उनसे प्रभावित होकर उन्हें एक गाँव भेंट में दी थी। इस घटना का उल्लेख इनके गुरुभाई श्री जोगजीत ने 'लीलासागर' में इस प्रकार किया है—

ताने बात धर्मवृद्धि काजा। कही जाय प्रति बलवन्त राजा॥
कछू मनोरथ मन में कियो। मिलत गोसाईं जी कहि दियो॥
भयो हिरदे में बड़ इतकादा। भेंट गाँव कियो मन अहलादा॥[1]

गोसाईं जी की इन यात्राओं की उपलब्धियाँ अनेकशः थीं। उन्होंने अनेक स्थानों पर कूपों, मठों, मन्दिरों और विश्रामस्थलों का निर्माण कराया जो आज भी उनकी कीर्ति के स्तम्भ हैं। उनमें धार्मिक सहिष्णुता और परस्पर तालमेल बैठाने की प्रवृत्ति थी। फलतः उनके समसामयिक सिख, दादूपंथी, गरीबदासी, निरंजनी और विभिन्न वैष्णव साधनामार्गी उनके 'अस्थल' में आते-जाते और सम्मानित होते थे। उनके इन गुणों से समन्वित व्यक्तित्व का पूर्वाभास पाकर ही सम्भवतः चरणदास जी ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था।[2]

सन् १८५७ ई० (सं० १९१४–१५ वि०) के स्वातंत्र्य आन्दोलन (गदर) के पश्चात् सम्भवतः इस गद्दी की स्थिति विपन्न हो गई। सं० १९१५ वि० के आस-पास महंत घनश्यामदास को मुसेदपुर में ही शरण लेनी पड़ी थी और मन्दिर की आर्थिक स्थिति भी खराब हो गई थी, जिसे बसन्तदास जी ने आगे चलकर सुधारा। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि गदर के समय घनश्यामदास जी ने सम्प्रदाय के साहित्य की रक्षा बड़े यत्नपूर्वक की थी। उन्होंने कुछ ग्रन्थों को मुख्य 'अस्थल' में ही एक सुरक्षित स्थान में रख दिया था और कुछ को बाहर भेज दिया था। साहित्य-सर्जन की दृष्टि से भी यह परम्परा महत्वपूर्ण रही है। गोसाईं जुगतानंद जी के साथ ही उनके शिष्य वृंदावनदास, नवनदास और विषनानन्द आदि अनेक भक्तों और महात्माओं ने उच्चकोटि की काव्यरचना की है। इन महाकवियों के साहित्यिक योगदान की चर्चा यहाँ उचित होगी।

---

१. लीलासागर : पृ० २३६।

२. अधिकारी श्री चरणदास के महाराज जुगतानन्द सही।
एक रूप सो गये निजपुर एक बपु राख्यो मही॥
परताप श्री गुन आचरन सब दीपित मानों है वही।
जोगजीत कहें सुनौ संत जन या में नहीं संशय रही॥
—लीलासागर : पृ० ३५२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोसाईं जुगतानन्द का साहित्य को योगदान—

कवि-रूप में गोसाईं जी का महत्त्व उनके साम्प्रदायिक योगदान से किसी भी प्रकार कम नहीं है। उनका काव्य कृतित्व वस्तु और रूप की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध एवं वैविध्यपूर्ण है। उनकी संतवानी की शैली का साहित्य और भक्ति-परम्परानुमोदित साहित्य, दोनों ही समान रूप से समादरणीय और प्रशस्त हैं। इनके काव्यकौशल का विस्तृत परिचय देने के पूर्व इनकी प्राप्त रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देना उपयुक्त होगा।

गो० जुगतानन्द की कुल १२ कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। ये हैं—(१) इतिहास सार समुच्चय, (२) श्रीमद्भागवत भाषा, (३) भक्ति प्रबोध, (४) आठ पहर मूलचेत प्रसंग, (५) भगवतगीतामाला, (६) शब्द, (७) सप्तश्लोकी गीता, (८) कवित्त, (९) चौमासा और बारहमासा, (१०) चार पदार्थ, (११) विचारबोध और (१२) भागवत माहात्म्य।

१. इतिहास सार समुच्चय—यह महाभारत की कथा का ३३ अध्यायों में सारांश रूप है। इसका रचनाकाल सं० १८३२ वि० है। इसकी अनेक पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हैं। एक मेरे पास भी है। इसकी पत्र-संख्या १७० और पृष्ठ संख्या ३४० है। इसमें कुल ३१ चरित्रों का कथानक या इतिहास समाविष्ट है। इसके छन्दों की कुल संख्या २३१२ है। इतनी बड़ी रचना मात्र एक माह में पूरी हो गई थी। महाभारत की प्रसिद्ध कथाओं को एक स्थान पर एकत्रित करके भाषा (बोलचाल) के माध्यम से इस कृति द्वारा प्रस्तुत करना ही कवि का उद्देश्य है; इस तथ्य की ओर कवि ने स्वयं संकेत किया है—

भारत सागर अगम अथाहा। ऐसो कवि को लावै थाहा॥
कछु इक ताको सार निकारो। सो इतिहास करो इक ठारो॥[1]

कवि ने महाभारत की कथाओं को इतिहास की संज्ञा देकर कथानक की विश्वसनीयता को प्रमाणित किया है। इसका ३२वाँ अध्याय पूर्व अध्यायों में वर्णित कथाओं से निर्गत उपदेशों का संकलन है। इसका अन्तिम अध्याय कथाओं एवं दार्शनिक तत्वों का संग्रह है। इसमें महाभारत के युद्धों का समावेश नहीं है। चौपाई, दोहा और छप्पय आदि मात्रिक छन्दों के माध्यम से ये कथाएँ प्रस्तुत की गई हैं।

(२) श्रीमद्भागवत भाषा—यह श्रीमद्भागवत का चौपाई, दोहा तथा अन्य छन्दों में रचित श्लोकानुसारी भावानुवाद है। इसकी पाण्डुलिपि दो खण्डों में है। प्रथम खण्ड में १ से ९ स्कन्ध हैं और द्वितीय खण्ड में दशम से द्वादश स्कन्धों तक (अर्थात्

---

१. इतिहास सार समुच्चय—(पाण्डुलिपि) अध्याय १, छन्द सं०—४०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ स्कन्धों का) का समावेश है। इस बृहदाकार कृति की रचना का समाप्तिकाल श्रावणबदी १०, सोमवार, सं० १८४१ वि० है। दोहे-चौपाइयों के बीच-बीच में सोरठा, अरिल्ल, छप्पय और छन्द आदि के उपयोग से इस रचना की पठनीयता और मधुरता बढ़ गई है। इसके प्रत्येक स्कन्ध में उतने ही अध्याय हैं, जितने मूल श्रीमद्भागवत में हैं। इसकी पाण्डुलिपि में पत्रों की संख्या ११८८ तथा पृष्ठों की संख्या २३७६ है। इसके पत्रों का आकार १३" × ९" है और अध्यायों की कुल सं० ३३४ है। प्रत्येक पृष्ठ पर समान रूप से २४ पंक्तियाँ समाविष्ट हैं। इस प्रकार पंक्तियों की कुल संख्या ५७०२४ है। इसकी पांडुलिपि के लिपिकर्ता गोसाईं जी के शिष्य रामचेरा जी हैं। इसकी जो पांडुलिपि महंत प्रवीणदास के यहाँ है, वह रामचेरा जी के लगभग एक वर्ष ७ माह के परिश्रम का फल है। इसकी प्रतिलिपि का कार्य सं० १८७८ वि० के अगहन मास में आरम्भ हुआ था और यह मार्गशीर्ष सं० १८७९ वि० में पूर्ण हुआ।

हिन्दी में अब तक श्रीमद्भागवत का कोई भी ऐसा अनुवाद प्राप्त नहीं है जो पूर्णतया तद्वत हो। यदि यह प्रकाशित हो जाय तो श्रीमद्भागवत की कथा जनसाधारण के लिए उसी प्रकार सुगम हो जायगी, जिस प्रकार गोसाईं तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के माध्यम से वाल्मीकि रामायण तथा अन्य कृतियों में वर्णित राम-कथा सर्वसुलभ और लोकप्रिय हो गई। कहीं-कहीं कवि ने स्वरचित अन्तर्कथाओं का भी समावेश करके इसमें मौलिकता का अभिनिवेश किया है। उदाहरण के रूप में प्रथम स्कन्ध के सातवें अध्याय में अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के १०० पुत्रों की हत्या का वृत्तान्त देना अथवा मूल श्रीमद्भागवत के सातवें अध्याय के ५८ श्लोकों का १०४ छन्दों में अनुवाद करना और इसी अध्याय के एक श्लोक के साथ एक गद्यमयी अन्तर्कथा को जोड़ देना आदि इस कृति की मौलिकता के प्रमाण हैं।

इस रचना में कवि ने सांकेतिक आत्मपरिचय भी दिया है। अपने विषय में कवि का कथन है—

जनम ब्राह्मन कुल आदि सरन साधुन की लीनी।
जासूँ गाथा ग्यांन भक्ति प्रभु कथी नवीनी॥[1]

(३) **भक्तिप्रबोध**—सम्भवतः यह कवि की प्रथम कृति है। इसमें कवि ने भक्ति के शास्त्रीय रूप का विवेचन करते हुए भक्तों के आचार और लक्षण आदि पर प्रकाश डाला है। यह ग्रंथ शुक सम्प्रदाय के सिद्धान्त-ग्रंथ के रूप में मान्य है। यह सम्प्रदाय निर्गुण और सगुण—दोनों के समन्वित रूप की साधना को सिद्धान्ततः

१. स्कन्ध १२, अध्याय १३, श्लोक सं० ३३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार करता है। इसी के अनुसार राधाकृष्ण के युगल रूप की उपासना संबंधी कथनों के साथ ही इसमें अजपा जाप, अनहद नाद, कुण्डलिनी आदि की भी विस्तृत चर्चा की गई है। यह पूरी कृति १२ अंगों में विभक्त है—यथा सतगुरु महिमा को अंग, मन-प्रसंग बरनते, अथ उमाह वियोग प्रेम, उतसो का अंग आदि। इसमें समाविष्ट छन्दों का कुल योग ८९२ है।

इस ग्रंथ की साखियों की रचना की कालावधि ४ वर्षों की है। इस ग्रंथ का आरंभ सं० १८२४ वि० में हुआ था और इसका समाप्तिकाल सं० १८२८ वि० है। कवि की इस रचना पर विचारों और अभिव्यक्ति शैली की दृष्टि से कबीर, दादू आदि का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है। गुरु की योग्यता की चर्चा करते हुए इन्होंने भी शाक्तों को हीन बताकर वैष्णवों की प्रधानता सिद्ध की है। कवि का कथन है—

गुरु कीजै तो बैसनों, साकत कीजे नाहिं।
जुगतानंद सोई हिये धर, साषि बेद के माहिं॥[1]

इसी प्रकार मुक्ति के संबंध में कवि का कथन कबीरदास जी से तुलनीय है—

जीवत गति प्रापत नहीं, मुए मुकति को आस।
जुगता जाग्रत जल भटक, सुपन मिटै क्यों प्यास॥[2]

इसमें दोहों के अतिरिक्त कुछ सोरठा, चौपाई और छप्पयों का भी समावेश है। इस ग्रंथ की पांडुलिपि गो० जुगतानंद की गद्दी (दिल्ली) में सुरक्षित है।

(४) भागवतगीतामाला—नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इसका उल्लेख है। इसके अनुसार इसमें २४७३ पद्य हैं। इसका प्राप्तिस्थान नागरी-प्रचारिणी सभा का ग्रंथागार बताया गया है। वस्तुतः यह एक संग्रह ग्रंथ है जिसे गुसाईं जुगतानंद जी ने अपने शिष्य श्री विषनानंद को भेंट किया था। इसमें पाँच ग्रंथों का संग्रह है, जो भिन्न-भिन्न कवियों की रचनाएँ हैं। इसमें गोसाईं जी के 'श्रीमद्भागवत भाषा' का कुछ भाग संकलित है, सम्भवतः इसीलिए इस पूरे संग्रह को उनकी कृति बता दिया गया है।

(५) आठपहर मूल चेतप्रसंग—इसकी कई पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें काशी-नागरीप्रचारिणी सभा, सरसकुंज—जयपुर, दिल्ली की तीनों गद्दियों और मेरे यहाँ प्राप्त प्रतियाँ अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय हैं। यह मात्र ७२ छन्दों का ग्रंथ है, जो चार अध्यायों में विभक्त है। इसके पत्रों की संख्या १० है। इसमें आरम्भ में शुकस्तुति और गुरु-प्रणाली की औपचारिकता के बाद दिन के आठ

---

१. स्कन्ध १२, अध्याय १३, पृ० १२, श्लोक-६८।
२. भक्तिप्रबोध : पत्र सं० १२।६८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहरों का साधना की दृष्टि से महत्व निरूपित किया गया है। वस्तुतः यह 'भक्ति प्रबोध' का ही एक अंग है। उसके पूर्वार्द्ध से ही इस अंश को लेकर एक स्वतन्त्र नामकरण कर दिया गया है। इस प्रकार इसका रचनाकाल भी सं० १८२४ वि० के आस-पास ही है। इसके माध्यम से कवि ने व्यर्थ व्यतीत हो रहे समय के मूल्य को पहचानने की दृष्टि दी है। इस आशय का एक छप्पय द्रष्टव्य है—

ज्ञान भान के छिपत ही, दुरमति छई निस घोर।
है कछु पै सूझै कछू, कहैं और की और॥
कहै और की और, भ्रांतता अति ही बाढ़ी।
डारि हाथ सों रतन, कंकरी पकड़ी गाढ़ी॥
जुगतानंद कहै कूर नर, लगो न हरि की ओर।
ज्ञान भान के छिपत ही, दुरमति छई निस घोर॥[1]

इस प्रकार समय नष्ट होता रहा और एक दिन जीवन-दीप बुझ गया—

च्यारि अवस्था यों गयी, आठ पहर के माँहि।
बहुत संत कह कह रहे, मूरख चेतें नाहि॥[2]

(६) शब्द—इसमें कवि द्वारा समय-समय पर रचित राग-ताल निबद्ध उपदेशात्मक और स्वानुभूत्यात्मक १८६ पदों का संग्रह है। इसकी एक पांडुलिपि पद नाम से सरसकुंज—जयपुर में है। इसी को 'बानी' की भी संज्ञा प्रदान की गयी है। इसे अलग से और कई ग्रंथों के साथ—दोनों विधियों से संकलित किया गया है।

(७) सप्तश्लोकी गीता—जिस पांडुलिपि में 'शब्द' का समावेश है, उसी में पदों के साथ बिना किसी स्वतन्त्र शीर्षक के ७ कवित्त भी संगृहीत हैं। इन्हें भी शब्द के अन्तर्गत ही रखा गया है। प्रतिलिपिकार ने इनके लिए कोई स्वतन्त्र संज्ञा नहीं दी है परन्तु कुछ पांडुलिपियाँ सप्तश्लोकी गीता के नाम से भी मिलती हैं। इसमें ६ कवित्त, एक आरती और एक छप्पय का समावेश है। इन सातों कवित्तों का वर्ण्य मुख्यतः गीता माहात्म्य ही है।

(८) कवित्त—इस शीर्षक के अन्तर्गत गोसाईं जी के ६९ कवित्त, सवैया और झूलना छन्दों का समावेश है। इनके माध्यम से कवि ने अपने दार्शनिक तथा विशिष्ट साधनामूलक चिन्तन के स्वरूप को स्पष्ट किया है। वस्तुतः इन कवित्तों को भी 'शब्द' के ही अन्तर्गत मानना चाहिए। गोसाईं जी के ये कवित्त

---

१. आठपहर मूल चेत प्रसंग : पत्र सं० ३६।
२. वही : पत्र सं० १–१८।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत दादूदयाल के शिष्य सुन्दरदास की टक्कर के हैं। इसका रचनाकाल सं० १८३५ से १८४० वि० के बीच है।

(९) चौमासा और बारहमासा—इस ग्रंथ के पद्य देवगरी राग (देक्कनी ?) में रचित हैं। इन दोनों के शीर्षक अलग-अलग हैं। इनमें ज्ञान-विरह की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। इन्हें निर्गुण प्रेम और विरह काव्य के अन्तर्गत समझना चाहिए। छन्द रूप में कुछ कवित्त, दोहा और कुण्डलिया को भी स्थान दिया गया है। राग देवगरी की एक बानगी द्रष्टव्य है—

कातिक महीने अधिक चिन्ता दीनबन्ध दयाल हो।
भया कीजै दरस दीजै सुन्दर महा विसाल हो॥
सुन्दर महाविसाल स्वामी चरन को चेरी करो।
दासी हो सेवा करूँगी आस यह पूरी परो॥
आस यह पूरी परो सुनि प्राण प्यारे लाल जी।
जुगतानन्द मन होय आनन्द मेटि उर के साल जी॥[1]

क्रम सं० ७ से १० तक के पद्य कवि की स्फुट मुक्तक रचनाएँ हैं। अतः इनमें क्रमबद्धता या कथानक के पूर्वापर सम्बन्ध आदि की खोज करना निरर्थक है। 'रुक्मिणी मंगल' जुगतानंद जी की कोई स्वतंत्र रचना नहीं है।[2]

(१०) चारपदार्थ तथा (११) विचारबोध—ये दोनों स्वतंत्र लघु ग्रंथ गुरु चेले की गोष्ठी पद्धति पर ज्ञान, योग और वैराग्य आदि के निरूपण से संबद्ध हैं। चार पदार्थ के अन्तर्गत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार 'विचार बोध' ६० पत्रों में है। यह आठ अध्यायों में विभक्त है और चौपाई, दोहा छंद में रचित है। यह ५३३ छन्दों की रचना है। इसका प्रमुख उद्देश्य वैराग्य को दृढ़ करना है। कवि ने इसके विषय में स्वयं कहा है—

---

१. बारहमासी : छंद सं० ५।

२. जहाँ तक रुक्मिणी मंगल का प्रश्न है, सम्भवतः यह इनकी स्वतन्त्र रचना नहीं है। इसके स्वतन्त्र रचना होने के सम्बन्ध में भ्रान्ति का मुख्य कारण यह है कि गोसाईं जी के 'इतिहास सार समुच्चय' के साथ जहाँ 'बानी' और 'भक्ति प्रबोध' संकलित हैं, वहीं इसे भी अलग शीर्षक के साथ रखा गया है। वस्तुतः श्रीमद्भागवत भाषा (गोसाईं जी द्वारा अनूदित) के दशम स्कंध के अध्याय सं० ५२ से ५४ की सामग्री को एक स्वतंत्र संग्रह का रूप दे देने और स्वतंत्र शीर्षक देने के कारण इसका अलग अस्तित्व है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार बोध पोथी कही, मोक्ष देन दातार।
वैराग्य ज्ञान ताके विषय, भक्ति जहाँ सुखसार ।।[1]

विचार बोध के षष्ठ अध्याय में 'भागवत माहात्म्य' (भागोत महातम) नामक एक स्वतंत्र शीर्षक का समावेश है। इसी आधार पर इसका नाम 'भागवत महातम' भी मिलता है। इस अंश की अलग से भी पांडुलिपियाँ मिलती हैं। इसमें 'पद्मपुराण' के 'उत्तरखण्ड' में वर्णित भागवत माहात्म्य का पद्यबद्ध अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। महंत प्रेमदास के यहाँ 'विचार बोध पोथी' 'भागवत महातम' के नाम से ही प्राप्त है, जिसका लिपिकाल सं० १८७२ वि० है।

उक्त दोनों ग्रंथों की जो पांडुलिपियाँ मेरे उपयोग में आई हैं, उनका लिपिकाल सं० १८५६ है। इन्हें गुसाईं जुगतानंद ने अपने शिष्य भक्तगोपाल को दिया था। इन दोनों रचनाओं का रचनाकाल चैत्र सुदी १०, शुक्रवार, सं० १८३२ वि० है। इस तथ्य की ओर कवि ने स्वयं संकेत किया है—

चैत बदी तिथि पंचमी, वार जैत ही वार।
वाही दिन अस्थापिया, जीवन के उपगार ।।
चैत बदी दशमी विषै, पूरन भई पिछान।
वार शुक्रवार का, कृष्ण पक्षि परवान ।।
अठारह सै बत्तीस को, संवत जानि पुनीत।
भई समापत कथा यह, निर्मल महा पुनीत ।।

इससे यह भी पता चलता है कि 'विचारबोध' (भागोत महातम) तथा 'चार पदार्थ' सहित कुल १२ (४+८) अध्यायों की रचना मात्र छह दिन में पूरी हो गई थी। महंत प्रवीणदास और महंत गंगादास की प्रतियाँ क्रमशः सं० १८८० वि० और सं० १८८७ वि० की हैं। जब कि मेरी प्रति सं० १८५६ वि० की है। 'चार-पदार्थ' तथा 'विचारबोध' की सामग्री मुख्यतः मनुस्मृति, श्रीमद्भागवत, गीता, पद्मपुराण (उत्तर खण्ड) आदि अनेक सूत्रों से ली गयी है। इससे पता चलता है कि कवि बहुपठित, बहुश्रुत और विदान् था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोसाईं जुगतानंद की रचनाओं की दो कोटियाँ स्पष्ट हैं—(क) मौलिक रचनाएँ, यथा—(१) इतिहास सार समुच्चय, (२) भक्ति प्रबोध, (३) आठ पहर मूल चेत प्रसंग, (४) शब्द, (५) भागवतगीता माला और (६) कवित्त आदि। (ख) अनूदित रचनाएँ—(१) श्रीमद्भागवत महापुराण(भाषा) और (२) भागवत माहात्म्य। कवि ने 'इतिहास सार समुच्चय' और 'श्रीमद्भागवत भाषा' में कुछ गद्य भी लिखा है, जिसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

---

१. विचार बोध : अध्याय ८, छंद सं० ७६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कथा बावन पुराने। बिद्युन्माली नाम राक्षस महादेव ने प्रसन्न ह्वै कै वाके तप में स्वर्ण का बिवान सूर्ज तुल्ल दीया सूरज ने वा राक्षस कूं मारा महादेव ने सूरज पै कोप किया सूरज कासी में गिरा लोल्की वहाँ नाम भया।'[1]

काव्यरूप की दृष्टि से 'भक्तिप्रबोध', 'शब्द', 'कवित्त' और 'सप्तश्लोकी गीता' आदि ग्रंथ मुक्तकों की कोटि में आते हैं। 'विचार बोध' की रचना के मूल में 'पद्मपुराण' का उत्तर खण्ड है परन्तु इसकी भी रचना मुक्तकों की भाँति ही हुई है। 'इतिहास सार समुच्चय' और 'श्रीमद्भागवत महापुराण' (भाषा) प्रबंध काव्य हैं। 'चौमासा' और 'बारहमासा' जैसी कृतियाँ एक विशिष्ट काव्यरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं।

गोसाईं जुगतानन्द एक मँजे हुए कवि थे। उनकी मुक्तक रचनाओं के मुख्य विषय के रूप में समाज का घृणास्पद व्यवहार, स्वार्थपरक पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्ध, आत्मनिवेदन, पश्चात्ताप-प्रकाशन, सात्विक प्रेम-विरह, ज्ञान योग-भक्ति स्वरूपनिरूपण, संयोग और वियोग पक्ष के विविध साधक और बाधक तत्व, शांत-बीभत्स आदि रसों की अवतारणा, मधुरोपासना का स्वरूप और उसकी अनुभूति, सौन्दर्य निरूपण, उपदेश, कथनी-करनी में सामंजस्यहीनता की आलोचना और पाखंड विरोध आदि हैं।

गो० जुगतानन्द एक भक्त और सन्त कवि के रूप में पूर्णतया प्रभावशाली हैं। यदि उनका साहित्य प्रकाशित होता तो वे उच्चकोटि के कवियों की श्रेणी में पढ़े-पढ़ाये जाते और शोध्य होते। उनकी गद्दी के वर्तमान महंत प्रवीणदास जी तथा उनसे सम्बद्ध अन्य गद्दियों के महन्तों को भी इस दिशा में सोचना चाहिए। मेरे निर्देशन में श्री शंभुनारायण मिश्र द्वारा प्रस्तुत एक शोधप्रबंध भी 'गोसाईं जुगतानन्द और उनका साहित्य' विषय पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि हेतु स्वीकृत हो चुका है। अतः इस क्षेत्र में काम करने की नयी दिशा मिली है। स्वयं गोसाईं जुगतानन्द तथा उनके शिष्यों का ही साहित्य कई शोध प्रबन्धों एवं स्वतन्त्र पुस्तक रचयिताओं का उपजीव्य बन सकता है।

गो० जुगतानन्द की भाषा मुख्यतः खड़ीबोली है। वैसे उन्हें संस्कृत, फारसी, पंजाबी, राजस्थानी और ब्रज भाषा के चलते शब्दों के प्रयोग से परहेज भी नहीं है। संतवानी में प्रयुक्त सधुक्कड़ी को भी उन्होंने आजमाया है। संक्षेप में कह सकते हैं कि आलोच्य कवि का काव्यसर्जक रूप उसके साधक रूप से कम प्रशस्त नहीं है।

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण (भाषा) : १।७।१८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोसाईं जुगतानन्द न केवल एक उच्चकोटि के साधक और कवि थे बल्कि एक विचारक तथा सिद्धान्त-प्रतिपादक आचार्य भी थे। स्वामी चरणदास के तीनों प्रमुख शिष्यों (रामरूप, सहजोबाई और जुगतानन्द) की दिल्ली के मुहल्ला दस्सान, हौजकाजी स्थित गद्दियाँ आचार्य गद्दी मानी जाती हैं। यदि साधना-मूलक मान्यताओं के आधार पर इन तीनों आचार्य महन्तों और कवियों का तुलनात्मक आकलन किया जाय तो हम पायेंगे कि सहजोबाई का झुकाव निर्गुण साधना की ओर अपेक्षाकृत अधिक है जब कि रामरूप जी और जुगतानन्द जी आरम्भ में निर्गुण साधना की ओर उन्मुख रहने के बाद अन्ततः सगुणोपासना, विशेषतः राधा-कृष्ण युगलोपासना को विधिवत अपना लेते हैं। इस प्रकार उनकी निर्गुण बानियाँ सगुण साधना की पृष्ठभूमि मात्र बनकर रह जाती हैं। कवि की वाणियों की रससिक्तता के उदाहरण स्वरूप दो पद यहाँ उद्धृत हैं—

॥ झूला वर्णन ॥ ॥ राग-हिंडौल ॥

ये री माई झूलत श्यामा श्याम सरस हिंडोलनै ॥
थंभ हाटक जुगल सुन्दर, बहुरंग मणि ता मांहि।
खिची बेलि विचित्र तिहि मधि, उपमा जिहि कुछ नाहिं ॥
पाटुली अद्भुत कांति जाकी, लालन जटित अनूप।
पंचरंग डाँड़ी झूलना कैं, डोरी जु सुरंग सरूप ॥
श्याम श्यामा ललित तिहि पैं, मन्द हाँसि कराहिं।
दुहूँ दिशि ज्यों घटा माहीं, दामिनि दमकि दुराहिं ॥
फूल फूले चहू दिशि शुभ, भँवर अति घुमराहिं।
मोर चातिक कोकिला बहु, कीर शब्द कराहिं ॥
पवन मंद सुगन्ध शीतल, बहुत अवसर पाइ।
घटा उमगि फुहार बरसै, समय निपट सुहाइ ॥
सखी कोउक देत झोंटा, कोइक राग जमाय।
कोइक बहुतै ख्याल खिलावति, कोईक रही लुभाय ॥
नवल किशोर चितचोर प्यारो, वेद कहै ताहि नेत।
भयौ आसक्त लाड़िली पैं, करि रंगीलौ हेत ॥
जुगतानन्द लखि मदन मोहन, प्रान वारन देत।
समै सोभा कहा जु बरनौं, काम मूरछा लेत ॥

॥ शयन का पद ॥

पौढ़ो मिलि रसिक छबीले बिहारी।
श्याम सरूप ललित मनमोहन संग सुख राशि पियारी ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्ट सुगंध सदन छबि छायो गुंजत भ्रमर महा री।
अद्भुत सेज कहा छवि बरनौं थाकी बुद्धि विचारी ॥
चितवै लाल लाड़िली मुख को हरषत रूप निहारी।
अमृत बचन प्रीति रस पागे आनंद बढ्यो अपारी ॥
हिलत मिलत भुज मेल ग्रीव में श्यामसुन्दर सुकुमारी।
मोद विनोद करत मुसकावै नैनन नींद खुमारी ॥
जन जुगतानन्द है निज दासी चरणदासि प्रभु थारी।
चरण कमल मन हिरदय राखूं बार बार बलिहारी ॥

संभवतः चरणदास जी के जीवनकाल में ही, उन्हीं की प्रेरणा से इस संप्रदाय की विचारधारा में परिवर्तन आया और प्रायः यह बात मान्य हो गई—

राधा कृष्ण उपास धर्म भागौत हमारो।[1]

अथवा

राधा कृष्ण उपास भगति प्रभु अनन्य विचारी।[2]

इस प्रकार निर्गुण से सगुण की पटरी पर आने से पूर्व एक ऐसी स्थिति भी आती है जिसमें श्री चरणदास-सहित उनके तीनों आचार्य शिष्य इस मान्यता का विस्तार करते हैं कि निर्गुण ही लीला रूप धारण करके सगुण हो जाता है।[3] इस बात का समर्थन इन आचार्यों के अतिरिक्त ध्यानेश्वर जोगजीत, रामसखी जी और गुरु छौना जी सहित प्रायः सभी आदि चरणदासियों ने किया है। उपासना और उपास्य के संबंध में इस परिवर्त्तन की चर्चा हम अन्यत्र यथास्थान करेंगे।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, गो० जुगतानंद एक सुलझे हुए कवि थे। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। उनके काव्य में सर्वत्र अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, दृष्टांत, विरोधाभास आदि अलंकारों की छटा वर्तमान है। लयात्मकता, सहजता, अनुभूति की गहराई और व्यासपद्धति की व्याख्यात्मकता आदि उनकी अभिव्यक्ति की सहज विशेषताएँ हैं।

गो० जुगतानंद के साहित्यकार शिष्य—

(१) नवनदास—ये गो० जुक्तानन्द के प्रिय शिष्यों में थे। इनका विशेष व्यक्तिगत परिचय अप्राप्त है। केवल एक छप्पय में इन्होंने अपना जो संक्षिप्त या सांकेतिक परिचय दिया है, उसके अनुसार ये मेवात प्रदेश के सींभली नामक

---

१. मुक्तिमार्ग : रामरूपकृत : पृ० ३१२।
२. भक्तिप्रबोध–जुगतानंदकृत : पत्र सं० ७७।
३. निरगुन सोई सरगुन हो ब्रज में करी किलोल।
कबहूँ नाचा गाइया मंद हास मृदु बोल ॥ वही : पत्र सं० ७४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान में पैदा हुए थे। किसी त्रिलोचन नामक महापुरुष के वंश में उत्पन्न श्री डालचंद इनके पिता थे।[1] सम्भवतः दिल्ली में ही गुरु चरणों में रहकर ये सम्प्रदाय और साहित्य की सेवा में आजीवन लगे रहे। इनकी दो काव्य कृतियाँ गोसाईं जुगतानन्द जी की गद्दी के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं, जिनके लिपिकर्ता श्री रामचेरा जी (गोसाईं जी के शिष्य) हैं। इनकी इन रचनाओं के नाम है—(१) नवनप्रकाश और (२) कार्तिक माहात्म्य। नवनप्रकाश की एक प्रति सरसकुंज—जयपुर के ग्रंथागार की जिल्द सं० २६० में भी प्राप्त है।

१. नवनप्रकाश—नवनदास जी अच्छे तत्वदर्शी और योगविद्या के पारंगत कवि प्रतीत होते हैं। इन्होंने 'नवनप्रकाश' में दार्शनिक तत्वों का तो गूढ़ विवेचन किया ही है, हठयोग पर भी उन्होंने एक अलग 'अंग' की रचना की है। योग पर इतना गहन अध्ययन तथा अनुभव स्वामी चरणदास के पश्चात् इस सम्प्रदाय में किसी अन्य का नहीं दिखाई देता। 'नवनप्रकाश' ज्ञान, वैराग्य, योग, उपासना और नीति सम्बन्धी विचारों का एक बहुत अच्छा संकलन है। इसमें गुरु-शिष्य संवाद की शैली में विषय-निरूपण किया गया है और छन्द के रूप में चौपाई, दोहा, सोरठा, छप्पय, सवैया और दण्डक का इसमें प्राधान्य है। 'नवनप्रकाश' की प्राप्त पांडुलिपि में इनकी तीन स्वतन्त्र कृतियाँ भी सम्मिलित हैं, जिनके नाम हैं—(१) प्रेमसार पोथी, (२) आनन्दसार पोथी और (३) शब्द।

गुरु महिमा, साधु महिमा, निष्ठा-भक्ति, प्रेमलक्षणा भक्ति, पराभक्ति और अष्टांग योग साधन आदि पारम्परिक विषयों पर प्रकाश डालने के बाद इसके ४५वें अंग या विश्राम के पश्चात् कवि ने समझसार, आनन्दसार, अनभैसार तथा प्रेमसार पोथी आदि स्वतन्त्र लघु ग्रंथों को संकलित कर दिया है। इसके पत्र सं० २३२ से ३०७ तक के बीच में विभिन्न राग-रागिनियों में रचित २०५ पदों का समावेश है। इसके पाँच परिशिष्ट रूप में संलग्न पत्रों में २७ अन्य 'शब्दों' का संग्रह है। इस प्रकार इस ग्रंथ में कुल ३१२ पत्र हैं। इसका रचनाकाल आश्विन कृष्ण ११, सं० १८३४ वि० है। प्राप्त पांडुलिपि का लिपिकाल सं० १८७४ वि० है।

---

१. देस नगर कुल जात हमारे रंचक नाहीं।
एक ब्रह्म अद्वैत सकल जग ताके माहीं॥
मरजादा मेवात् सींभली वतन हमारा।
डालचंद मम पिता तास के ग्रेह मँझारा॥
तिरलोचन के वंस में नवनदास मम नाम।
सतगुरु जुगतानन्द ने दरसायो निज धाम॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवनदास संत वाणी की शैली के ही कवि नहीं हैं बल्कि अनन्य राधाकृष्ण युगलोपासक और रामभक्त भी हैं। उनकी दृष्टि में राम और कृष्ण—दोनों एक ही तत्व के नाम-भेद मात्र हैं। इसीलिए उन्होंने श्री रामचन्द्र की जन्म-बधाई भी बड़े चाव से गायी है—

प्रगटे भक्तवत्सल हरि आज।
गऊ विप्र रक्षा के कारण रामचन्द्र महाराज॥
दुष्ट दलन संतन हितकारी देवन के सरताज।
रावण गंजन पातक भंजन पतित उधारन हार॥
·····लछमन वीर पवनसुत स्वामी बनवासी बन साज।
नवनदास पापिष्ट अधम को करिहैं पार जहाज॥

अथवा

धन धन आज अयोध्या धाम।
दशरथ गृह अवतार लियो है रघुवंशी श्री राम।
घर घर मंगलचार भयो है कहत बधाई वाम॥
चाव भरी डोलत नृप आंगन त्याग दियो निज काम।
·····नवनदास कहै कौशल्या सुत कुल के मंडन श्याम॥[1]

कृष्ण की वंशी न केवल गोपियों को ही आकर्षित करती थी, बल्कि उसकी ध्वनि भुवनमोहिनी थी। यहाँ तक कि देवलोक की अप्सरायें भी उस ध्वनि से विकल हो उठती थीं। उस आकर्षण से बँधकर कौन नहीं बिक जायगा? नवनदास जी वंशी के इसी मोहन रूप का वर्णन इन पंक्तियों में इस प्रकार कर रहे हैं—

सुनत थके ऋषि देव मुनीश्वर काज बिसारे आन।
वृज बाला सब भईं प्रेमबस दूरि करी कुल कान॥
स्वर्गलोक की सकल अप्सरा भूलि गईं निज गान।
नवलदास वंशीधर हरि में सुरति निरंतर तान॥[2]

कवि की अपनी मनःस्थिति भी बड़ी विचित्र हो गई है। वह भी प्रेमदीवानी गोपियों में सम्मिलित हो गया है।[3]

---

१. श्री चरनावत वैष्णव वर्षोत्सव (संपादक, रूपमाधुरीशरण) : पृ० ७५।
२. वही : पृ० १००।
३. प्रेम दीवानी भई विरह वश चैन नहीं निशि भोर।
नवनदास पर हाथ बिकानी नेह लगाई डोर॥ वही : पृ० ९९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके ज्ञान में जितनी गहराई है, प्रेम में भी उतनी ही विह्वलता है। अपने प्रियतम के लिए आत्मा रूपी प्रेमिका में कितनी तड़पन है, इसका उदाहरण द्रष्टव्य है—

प्रीतम से डोरी लगी, टूट सकै नहिं तार।
नवनदास आसा रहै, निरखत नैन उघार॥
बिरह बिथा कहत न बनै, पीर उठै मन माँहि।
नवनदास जल के तजै, मीन रहै सुधि नाँहि॥[1]

(अ) प्रेमसारपोथी—नवनदास की यह एक स्वतंत्र रचना है, जो श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध के ३३ अध्यायों का भावानुवाद है। इस पोथी में इस अंश के साथ ही कुछ फुटकल शब्द और छंद भी संगृहीत हैं। इस पांडुलिपि में संगृहीत इनके कुछ शब्दों की भाषा सधुक्कड़ी है और उसमें भी राजस्थानी का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है।[2] इनकी निर्गुण शैली की बानियों पर रैदास तथा कबीरादि संत कवियों का स्पष्ट प्रभाव है। उदाहरण के रूप में निम्न साखियाँ उद्धृत हैं—

(१) नवनदास दस दिसि रमा, जग भरमाना दूर।
अनभो के परगास बिन, लषा न अपना नूर।
(२) मरे मुकुत आसा करै, जीवत बंध अनेक।
नवनदास अनभै बिना, बिसरा ब्रह्म बिवेक॥[3]

(आ) आनन्दसारपोथी—इसमें श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के श्रीकृष्ण-माहात्म्य वर्णन से संबद्ध प्रसंग लिया गया है। इसी क्रम में इन्होंने भेषधारी एवं प्रपंची साधुओं की कटु आलोचना की है। एतत्सम्बन्धी इनका निम्न कथन द्रष्टव्य है—

सवैया—

बहुतक साधु छुहारे की भाँति, जु बाहर त्याग विषै मन माँहीं।
भेष बनाय फिरैं जग में, पर आस लिए और मान बड़ाई॥
ज्यों बग बाहर ध्यान करै, उर अंतर मीन की आस सदाई।
नवनदास बहु ग्यान कथैं, पर चाल चलैं सब रंचक नाहीं।[4]

---

१. नवनप्रकाश : पत्र सं० च (पांडुलिपि)।
२. म्हारे गुरु दरसाया हो, म्हाने पाया छै हरी।
ममता मोह मिटै देखत ही, डायन पाँचो तुरत फिरी॥ वही : शब्द सं० ४।
३. अनभै सार पोथी : पत्र सं० ७–८।
४. वही : शब्द : पृ० ३०७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत कबीर की भांति इनका भी एक गूढ़ार्थ पद उदाहरण के रूप में यहाँ उद्धृत है—

साधो अचरज एक लखाया, काहू बिरले जन ने पाया।
ऊपर कूप तले पनिहारी, नीर भरै निस प्राता॥
नजर नैन बिन सूझ अनूठा, तहाँ नहीं दिन राता॥
बागन ही वृक्ष लगै अमोलक, सींच बिना हरियाली।
फूल खिले बहु रंग बिरंगे, मूल पात बिनु डाली॥
गगन मांहि एक धेनु विराजै, अमी देत नहिं खावै।
गुरुमुख आवै और जुगुत सों, जनम मरन छुट जावै।
जोग साध यह खेल निहारा, निपट अगोचर भेवा॥
नवनदास हित चित तैं करिया, अलप पुरुष की सेवा॥[1]

श्री नवनदास के पदों में अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग किया गया है। उनमें पर्याप्त विषय-वैविध्य भी है परन्तु कवि का ध्यान गुरुमहिमा और मुरली-महिमा के गान पर तथा आत्मनिवेदन एवं विरहनिवेदन पर अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रित है। कुछ पदों की प्रथम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. गुरु बिन बाधा कौन हरै।
२. सुमर मन राधा कृष्ण कृपाल।
३. बंसी तू है कामनगारी।
४. परमानन्द निधान हेली तासूँ प्रीति लगाइए।
५. झूठ जगत की प्रीत सखी री मोहन मित्र हमारा।
६. प्रभु जी हूँ शरनागति तेरी।
७. हरि जी भक्ति दया करि दीजै।
८. प्यारे के दर्श बिन कल न परे।
९. प्यारे लै गयो चित को चोर।
१०. मुरली श्याम बजावै जी, सो छवि बरनी न जाय सखी री।
११. हे दिल जानी तूं मेरे डेरे आव। आदि।

इनके पदों में भाषा-प्रयोग की अनेकरूपता भी स्पष्ट दिखाई देती है, जैसे—

(क) ओ मन मोहा मेड़ा ओ मुस्कान।
(ख) मोहनवा लागत है अति प्यारा।
(ग) हो हो सकल करत ब्रजबनिता चहुँ दिसि से घिरि आई हो जू।

---

१. नवनप्रकाश : शब्द सं० ४२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नवनदास के पदों में ऊधो-गोपी संवादपरक तथा राधा-कृष्ण की युगललीला सम्बन्धी पद विशेष मधुर एवं रससिक्त हैं। ये निस्सन्देह एक महाकवि थे। इनकी बानियों पर विस्तृत प्रकाश डालने में स्थानाभाव होने के कारण मात्र सूचनात्मक ही लिख पाने की वाध्यता है। इन पर शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है।

२. कार्तिक माहात्म्य (भाषा)—यह नवनदास जी की दूसरी महत्वपूर्ण कृति है। पद्मपुराण के कार्तिक माहात्म्य वाले भाग का श्लोकानुसारी तथा चौपाई और दोहे के माध्यम से ३० अध्यायों में किये गये अनुवाद की ही संज्ञा 'कार्तिक माहात्म्य' है। अनूदित ग्रंथ होने के कारण यह कवि की प्रतिभा का उतना परिचायक नहीं है जितना कि 'नवन प्रकाश' को माना जा सकता है। इसका रचना-काल ज्ञात नहीं है। मेरे पास इसकी जो प्रति है उसके लिपिकर्त्ता नवनदास जी के गुरुभाई और गो० जुगतानंद के शिष्यों में गणेश के रूप में ख्यात श्री रामचेरा जी हैं। इस प्रति का लिपिकाल मिती सावन सुदी ५, सं० १८७४ वि० है। यह पांडु-लिपि बड़ी ही स्पष्ट है और काली तथा लाल स्याही के द्वारा लिखी गई है। इसमें ६×४ इंच के ११० पत्र अर्थात् २२० पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ के दोनों किनारों पर एक-एक इंच का किनारा लाल स्याही से खींचकर घेरे के भीतर ८ पंक्तियों के समावेशपूर्वक इसे लिखा गया है।

'कार्तिक माहात्म्य' की कथा के तीन वक्ता-श्रोता हैं। प्रथम वक्ता श्री कृष्ण हैं, जिन्होंने यह कथा सत्यभामा को सुनाई थी। दूसरे वक्ता श्री नारद जी हैं, जिन्होंने सत्यभामा के यहाँ सुनी हुई इस कथा को महाराज पृथु को सुनाई थी। तीसरे वक्ता सूत जी हैं, उन्होंने यह कथा मुनियों को सुनाई थी। स्पष्ट है कि वक्ता-श्रोता के विधान से यह कथा संवादात्मक है। यह कथा मूलतः अत्यन्त रोचक है, अतः तदनुसार अनूदित यह ग्रन्थ भी वैसा ही माधुर्यपूर्ण है। इसे एक बार पढ़ना आरंभ करने पर बिना समाप्त किये रुकना कठिन है।

काव्यरूप की दृष्टि से यह पौराणिकगाथापरक प्रबन्ध काव्य है। इसकी समाप्ति निम्न फलश्रुति के साथ हुई है—

जो यह कथा सुनै अरु गावै। कातिक न्हान महातम पावै॥
अन्त समय बैकुण्ठ बिराजै। नवनदास निरभै हो गाजै॥[1]
नवनदास भाषा करी, अपनी मति परवान।
ज्ञाता विलग न मानियो, अलप बुद्धि मोहि जान॥

ऐसा कहकर नवनदास जी ने अपनी विनम्रता व्यक्त करते हुए इस ग्रन्थ की समाप्ति की है। यह रचना अभी तक अप्रकाशित है। इसकी एक अन्य पांडुलिपि गो० जुगतानन्द जी की गद्दी के संग्रहालय में संगृहीत एवं सुरक्षित है।

---

१. कार्तिक माहात्म्य : पत्र सं० १०८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) विषनानन्द—विषनानन्द जी गोसाईं जुगतानन्द के १२२ शिष्यों में से एक हैं। इनका व्यक्तिगत परिचय अज्ञात है। इनके विषय में श्रुति परम्परा से पता चलता है कि ये मुख्यतः गोसाईंजी की ही सेवा में रहे और उन्हीं के आदेशानुसार क्रियाशील रहे। ये अच्छे साधक और कवि रूप में भी प्रख्यात थे। इन्होंने सौ से अधिक पदों की रचना की थी, जो 'विषनानन्द जी के शब्द' के नाम से गोसाईं जुगतानन्द कृत 'इतिहाससार समुच्चय' की पांडुलिपि में समाविष्ट है। महंत प्रवीणदास जी (वर्तमान महंत, गद्दी गोसाईं जुगतानन्द जी-दिल्ली) के हस्तलिखित पुस्तकागार की जिल्द सं० १० में विषनानन्द जी की बानी संगृहीत एवं सुरक्षित है। इनके शब्द की एक अन्य पांडुलिपि सरसकुंज-जयपुर में भी विद्यमान है।

गोसाईं जुगतानन्द की अन्य शिष्य गद्दियों का वृत्त—

(१) मोहड़ा—रेवाड़ी (जिला-महेन्द्रगढ़, हरियाणा) के पास मोहड़ा या बहोड़ा ग्राम में जुगतानन्द जी के शिष्य श्यामलड़ावन जी का थाँभा था, जो अब तक चला जा रहा है। यद्यपि यह स्वयं में छोटा थाँभा था परन्तु सं० १९७६ वि० से अब तक इसके साथ अन्य दो स्थान और भी बने हुए थे। यहाँ के महन्तगण प्रायः सभी आयोजनों में उपस्थित होते रहे हैं। यहाँ की परम्परा इस प्रकार मिलती है—

म० जुगतानंद जी— (सं० १८३९-१८७१ वि०)।
|
म० श्यामलड़ावन जी, अनुमानित—(सं० १८७१-१९१० वि०)।
|
म० जानकीदास ,, —(सं० १९११-१९२५ वि०)।
|
म० केशोदास ,, —(सं० १९२५-१९४५ वि०)।
|
म० रामजीदास ,, —(सं० १९४५-१९६१ वि०)।
|
म० वसंतदास ,, —(सं० १९६१-१९७५ वि०)।
|
म० ब्रह्मदास[1] ,, —(सं० १९७६-१९८३ वि०)।
|
म० प्रेमदास ,, —(सं० १९८३-२०२० वि०)।

सं० २०२३ वि० के दिल्ली के मेले में यहाँ से किसी का उपस्थित न होना

१. महन्त ब्रह्मदास गो० जुगतानन्द के 'भागवत महात्म्य' की एक प्रति के प्रतिलिपिकार हैं। यह पांडुलिपि सरसकुंज-जयपुर में है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भवतः इस बात का सूचक है कि यह स्थान अब सक्रिय नहीं रह गया है और गृहस्थ गद्दी के रूप में आ गया है।

(२) करीरीवास— यह स्थान रेवाड़ी के निकट अलवर राज्य के परगना कोटकासम में पड़ता है। 'गुरुभक्ति प्रकाश' के अनुसार चरणदास जी ने यहाँ कुछ समय तक निवास किया था। जुगतानन्द जी के शिष्य श्री गंगासरन यहाँ के प्रथम महंत थे। सं० १९९९ वि० में गंगादास बूढ़े की मृत्यु के पश्चात् यह थाँभा दिल्ली के प्रधान स्थान के अन्तर्गत आ गया। गंगादास जी म० घनश्यामदास के भतीजे थे और वे मुख्यतः मुसेदपुर (गुड़गाँव) में ही रहते थे, अतः यही कहना विशेष उचित है कि यहाँ की स्वतन्त्र परम्परा महंत रामदास तक अर्थात् सं० १९७५ वि० तक ही चली। रामदास जी के समय में इसके दो अन्य स्थान भी थे। यह बड़ा ही सक्रिय थाँभा था। यहाँ की शिष्य-परम्परा इस प्रकार है—

गो० जुगतानंद जी—(सं० १८३९–१८७१ वि०)।
|
म० गंगासरन —(संभवतः सं० १८७०–१८८८ वि०)।
|
माधोसरन[1] (जीतपुरा) | गोविन्दसरन—(सं० १८८८–१९१० वि०)। (करीरीवास)
|
म० रामगुरदास (प्रेमविलास के शिष्य)–(सं० १९१०–१९३७ वि०
|
म० गिरधारीदास—(सं० १९३७–१९५० वि०)।
|
म० रामदास—(सं० १९५०–१९७५ वि०)।
|
म० गंगादास बूढ़े—(सं० १९७५–१९९९ वि०)
|
—सं० २००० के पश्चात् दिल्ली के मुख्य स्थान के अन्तर्गत।

(३) गामड़ी— यह स्थान दिल्ली–मेरठ सड़क पर मोदीनगर (बेगमाबाद) के निकट जिला मेरठ में है। गो० जुगतानंद जी के शिष्य सुखसरूप यहाँ के प्रथम महन्त थे। सं० १९६० वि० में म० हंसरामदास द्वारा निर्मित इनकी समाधि यहाँ बनी हुई है। यहाँ का मन्दिर बड़ा सुन्दर और सम्पन्न है। हंसरामदास सं० १९६० से २००० वि० के बीच प्रायः सभी मेलों में उपस्थित हुए थे और धर्मप्रचार में बड़े

१. महन्त माधोसरन की जीतपुरा की शिष्य परम्परा जीतपुरा की गद्दी के वृत्त के साथ द्रष्टव्य।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सक्रिय थे। वे महंत गुलाबदास के भाई थे। चिरचिटा के महंत बलदेवदास जी से उनकी बड़ी मैत्री थी। उनकी धूनी और समाधि मन्दिर के पास ही बनी हुई है। महंत गंगादास सम्भवतः सं० १९५२ वि० तक वर्तमान थे क्योंकि वे उस वर्ष के दिल्ली के मेले में गये थे। इससे अनुमान होता है कि ये सं० १९४२ वि० के पश्चात् वहीं रहने लगे थे। यहाँ हस्तलिखित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह बनाया जाता है। श्री लक्खीराम गुप्ता (दिल्ली) ने एक कापी मुझे दिखाई थी, जिसमें हंसरामदास जी के पद बड़ी संख्या में लिखे हुए थे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि ये केवल पुस्तक प्रेमी ही नहीं बल्कि अच्छे कवि भी थे। परम्परा इस प्रकार मिलती है।

म० गो० जुगतानंद
|
म० सुखसरूप —(सं० १८७०–१९०० वि०)।
|
म० हरिस्वरूप —(सं० १९००–१९३० वि०)।
|
म० गंगादास —(सं० १९३०–१९४२ वि०)।
|
म० कृष्णस्वरूप —(सं० १९४२–१९६० वि०)।
|
म० हंसरामदास —(सं० १९६०–२००० वि०)।
|
म० रतनदास —(सं० २०००–वर्तमान)।

(४) रोहतक—यह थाँभा चरणदास जी के शिष्य बल्लभदास जी ने यहाँ की पुरानी सब्जी मण्डी नामक मुहल्ले में स्थापित किया था। अतः इसकी गणना बड़े थाँभों में होती है। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता कि गो० जुगतानन्द के शिष्य बुधविनोदजी इस थाँभे पर गोद लिए गये थे या अभिषिक्त किये गये थे। आगे की परम्परा इन्हीं से चली। अतः इसकी गणना भी दिल्ली के प्रमुख थाँभे के अन्तर्गत होने लगी। परम्परा इस प्रकार है—

म० बुधविनोद (बुद्धिविनोद)—(सं० १८६०–१८८५ वि०)।
|
म० अयोध्याप्रसाद —(सं० १८८५–१९२० वि०)।
|
म० कृष्णप्रसाद —(सं० १९२०–१९५७ वि०)।
|
म० गोपालदास —(सं० १९५७–१९७६ वि०)।
|
म० सुखदास जी —(सं० १९७६–१९९१ वि०)।
|
दुर्गादास जी —(वर्तमान, गृहस्थ गद्दी)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १९४० से १९८३ के बीच इसके साथ पाँच छोटे थाँभे भी वर्तमान थे। इन्हीं में से एक बीरबल की गढ़ी का भी स्थान था, जो चरणदास जी के शिष्य परमानन्ददास जी का कार्य-क्षेत्र था। यह बाद में गोसाईं जी के थाँभे से जुट गया। रोहतक के हूड़गंज मुहल्ले में बुद्धिविनोद जी ने मन्दिर बनवाया था। उसी में उनकी छतरी भी बनी है।

(५) मुसेदपुर— यह स्थान गुड़गाँव जिले में स्थित है। दिल्ली की प्रधान गद्दी के महंत घनश्यामदास ने यहाँ पर स्थान का निर्माण कराया था। गो० जुगतानन्द जी के शिष्य मोटे बाबा भी यहीं रहते थे। महंत घनश्यामदास और उनके शिष्य गंगादास बूढ़े का निवास वहाँ प्रायः होता रहता था। गोसाईं जुगतानन्द जी भी प्रायः यहीं रहा करते थे। गोसाईं जी द्वारा निर्मित एक विशाल दुमंजिला मकान यहाँ आज भी वर्तमान है। इससे संलग्न एक मन्दिर भी है जिसमें राधा-कृष्ण की युगल मूर्त्ति की उपासना होती है। सं० १९७५ से १९९९ वि० के बीच गंगादास जी करीरीवास और मुसेदपुर—दोनों स्थानों के महन्त रहे। आगे चलकर यह थाँभा महंत गुलाबदास जी (दिल्ली की आचार्य गद्दी के महन्त) के अधिकार में आ गया। इस थाँभे के साथ पर्याप्त भू-सम्पत्ति बताई जाती है। शिष्य परम्परा इस प्रकार मिलती है—

मोटे बाबा (जीवनकाल—सं० १८३९–१९३९ वि०)।
|
गंगादास जी बूढ़े (महन्त पद का काल—१९३९–१९९९ वि०)।
—दोनों महात्मा लगभग १०० वर्ष तक जीवित रहे।

गंगादास जी का सं० १९३९ वि० के मेले की बही में गंगादास अभैराम लंबादास नाम लिखा हुआ है। ये उस वर्ष मुसेदपुर में थे। ये सं० १९१७–४२ के बीच रिवाड़ी, सं० १९३९–४२ वि० के बीच गामड़ी, सं० १९४२ से १९५० वि० के बीच दिल्ली और इसके पश्चात् सं० १९९९ वि० तक करीरीवास से मेलों में आते रहे। इससे अनुमान होता है कि ये गोसाईं जी की गद्दियों के व्यवस्थापक के रूप में थे। इनका जन्म सं० १९ ० वि० में हुआ था और परलोकवास सं० १९९९ वि० में हुआ।

(६) संगरूर— दिल्ली के महंत हरशरणदास (गो० जुगतानन्द के प्रशिष्य, श्यामसनेही जी के शिष्य) का यह स्थान था। उनके शिष्य गोमतीदास जी यहाँ रहा करते थे। जयपुर में भी इनका एक थाँभा था। वे स्वरोदय के बड़े ज्ञाता थे। इनकी समाधि यहाँ बनी हुई है। इस गद्दी के अन्तिम महंत बालमुकुन्ददास सं० २०२० वि० तक जीवित थे और अधिकतर वृन्दावन में ही रहा करते थे। यहाँ की महंत परम्परा इस प्रकार मिलती है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म० हरशरणदास (सं० १९१५ वि० तक दिल्ली की आचार्य गद्दी पर वर्तमान)—म० गोमतीदास (सं० १९१५–१९३० वि०)—महंत द्वारकादास (सं० १९३१–१९४१ वि०)—म० कँवलदास (सं० १९४१–१९५२ वि०)—म० माधोदास (सं० १९५२–१९७० वि०)—म० बिहारीदास (सं० १९७०–१९८३)—म० बालमुकंददास[1] (सं० १९८३–२०२० वि०)।

गोमतीदास
- वासुदेवदास (दिल्ली के महंत, इनकी परंपरा दिल्ली के साथ द्रष्टव्य)
- द्वारकादास (संगरूर के महंत)
  - माधोदास
  - लंबनारायण जी (सं० २००० वि० तक जीवित)

सं० १९३९ वि० के मेले की बही में सम्भवतः इन्हीं लम्बनारायण का नाम लंबदास लिखा हुआ है, जो उस समय मुसेदपुर में रहते थे। ये शरीर से लम्बे और तगड़े रहे होंगे, इसी से इनका नाम लंबादास या लंबनारायण पड़ा था। यहाँ ज्ञातव्य है कि संगरूर और दिल्ली की आचार्य गद्दी का सम्बन्ध बड़ा घनिष्ट था। इसीलिए महन्तों का आदान-प्रदान इन दोनों स्थानों में हुआ करता था।

(७) राहिल्यावास (तहसील रिवाड़ी, जिला–महेन्द्रगढ़)—गो० जुगतानंद जी के शिष्य श्री मगनस्वरूप ने यहाँ अपना थाँभा स्थापित किया था। मगनस्वरूप जी के निम्न तीन शिष्य भिन्न-भिन्न स्थानों पर महन्त बने थे—

म० मगनस्वरूप
- गनेसस्वरूप जी (राहिल्यावास के महंत)
- पुरुषोत्तमदास जी (रामपुरा के महंत)
- सदानन्द (रिवाड़ी के महंत)

सं० २००० वि० के पश्चात् सम्भवतः यह स्थान गृहस्थ गद्दी के रूप में परिणत हो गया। यहाँ के अन्तिम महंत मंगलदास जी सं० १९८५ वि० तक वर्तमान थे। परम्परा इस प्रकार है—

---

१. भागवत पाठी थे। ब्रज में ही अधिकांश रहते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म० मगन स्वरूप (सं० १८६०–१८८२ वि०) ।
|
म० गनेस सरूप (सं० १८८२–१९०० वि०) ।
|
म० ज्ञानदास (सं० १९००–१९१५ वि०) ।
|
म० बलवीरदास (सं० १९१५–१९४२ वि०) ।
|
म० मंगलदास (सं० १९४२–२००० वि०) ।
|
गृहस्थ गद्दी (सं० २००० वि०……) ।

महंत मंगलदास सं० १९६० से १९८३ वि० के बीच प्रायः सभी मेलों में उपस्थित हुए थे ।

(८) जयपुर (बारह गनगौर)—दिल्ली के महंत हरशरणदास के शिष्य और संगरूर के महंत श्री गोमतीदास ने सं० १९२५ वि० के आसपास एक थाँभा यहाँ भी स्थापित किया था । उनके शिष्य वासुदेवदास (जो बाद में दिल्ली के महंत हुए) के शिष्य पन्नालाल जी यहाँ रहकर भक्तिप्रचार करते थे । अब यहाँ इस परम्परा का कोई स्वतन्त्र थाँभा नहीं रह गया है । इस केन्द्र के लोग बड़े उत्साही एवं कर्मठ रहे हैं—परम्परा इस प्रकार है—म० गोमतीदास—वासुदेव-दास—पन्नालाल जी ।

(९) वृन्दावन—यहाँ ग्वालियर वालों की कुंज नामक स्थान पर गो० जुगतानंद के शिष्य श्री वृन्दावनदास रहा करते थे । यहाँ उनकी समाधिपर छतरी और चरणपादुका बनी हुई है । ग्वालियर की कोई महारानी उनकी शिष्या थी ।[1] वे एक अच्छे महात्मा और कवि थे । सं० १९०० वि० तक उनके जीवित रहने का प्रमाण मिलता है । क्योंकि उस वर्ष उन्होंने उक्त स्थान पर गोसाईं जुगतानन्द जी की छतरी बनवाई थी । इस गद्दी के वर्तमान महंत कृपालदास जी प्रायः ग्राम—देहरगवाँ, परगना—पोरी, जिला—ग्वालियर में रहते हैं । सम्भवतः यह सम्पत्ति महारानी की ओर से वृन्दावनदास जी को मिली होगी, जो मंदिर की पूजा-अर्चा

---

१. इस महारानी का नाम बैजाबाई बताया जाता है । कहते हैं कि ग्वालियर वालों की कुंज नामक स्थान में बना मंदिर उन्हीं की प्रेरणा से निर्मित हुआ था और उसकी पूजा-अर्चा पर होने वाले व्यय-भार की पूर्ति के लिए उन्होंने वृन्दावन-दास जी को देहरगँवा नामक गाँव दान में दिया था, जो अब तक उनकी शिष्य-परम्परा के साथ बना हुआ है । श्री दौलतराव सिन्धिया भी वृन्दावनदास जी को गुरु मानते थे । सम्भवतः महारानी बैजाबाई या बायजाबाई उनकी पत्नी थीं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए अब तक मंदिर की सम्पत्ति है। सम्भवतः इस परम्परा के लोग ग्वालियर जैसे दूरस्थ स्थान में होने के कारण मेलों में उपस्थित नहीं हो पाते थे। यहाँ की शिष्य परम्परा इस प्रकार मिलती है—

गु० श्री वृन्दावनदास (सं० १९१० तक वर्तमान)।
|
म० श्री गोविन्दभजन
|
गु० माधवदास जी
|
म० गोपालदास जी
|
म० रामदास जी
|
मनमोहनदास जी
|
म० पुरुषोत्तमदास जी
|
म० कृपालदास (वर्तमान)

श्री वृन्दावनदास की बानियों का एक संग्रह 'पद' के नाम से सरसकुंज-जयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है, जिसकी जिल्द सं० ८०२ है। इस संग्रह के पदों की कुल संख्या २१ है। इन पदों के माध्यम से कवि की रसिक भाव की भक्ति निवेदित हुई है। ये निश्चित ही एक उच्चकोटि के कवि थे। इस संग्रह के अधिकांश पद व्रज की होली और श्रीकृष्ण के वंशीवादन-लीला से सम्बद्ध हैं। इनके पदों में प्रेम की उमंग और विरह की पीर-दोनों की सुन्दर अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी काव्यभाषा (व्रजभाषा) भी अपेक्षाकृत परिष्कृत है। फाग के रागरंग की कितनी सुंदर कल्पना इन पंक्तियों द्वारा कवि ने चित्रित की है, यह द्रष्टव्य है—

पिया संग खेलौंगी फाग।
वह भिजवै मारी कुसुमल चूनर मैं भिजऊँ उन पाग॥
पकरि लेउँगी अपने भवन में निसिवासर कर लाग।
नैनन काजर सिर गुँछ बैनी मोतियन भरिहूँ माँग॥
हिल मिल पिय के रंग मिलूंगी लोक लाज सब त्याग।
जीवन मुक्ति मिलै जब फगुवा वृन्दावन बहु भाग॥

श्री कृष्ण के वंशीवादन से उनकी प्रेमिकाओं में जो विह्वलता छाई हुई है, इसका सुन्दर चित्र इस पद में देखा जा सकता है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी बनमाली आली बंसी बजाई। सुन धुन व्याकुल रह्यो न जाई॥
त्यागी सदन बदन सुधि बिसरत कुंज कुंज वन हेरत धाई।
अहो मालिती मोहि बतावो मन मोहन बृज कुँवर कन्हाई॥
श्यामसुन्दर प्रीतम बिन देखे अति व्याकुल कछु नाहिं सुहाई।
वृन्दावन को दरशन दीजै जुगतानंद मोहन सुखदाई॥[1]

कवि वृन्दावन दास एक शब्द चित्रकार हैं। इनमें वर्ण्य विषय को शब्दों के माध्यम से प्रत्यक्ष करने की अद्भुत क्षमता है। इन वर्णनों के आधार पर कोई भी चित्रकार रंग तूलिका के माध्यम से चित्र प्रस्तुत कर सकता है। भगवान कृष्ण के कुंज विहार का एक चित्र यहाँ द्रष्टव्य है —

बिहरत कुंजन कुंज बिहारी।
अंसनि भुज दीने दंपति वर संग सखी रंग भरी अपारी॥
निरखत फिरत बिपिन की शोभा फूलि रही चहुँ दिशि फुलवारी।
वृन्दावन दासी दोऊन की या छबि लखि जाऊँ बलिहारी॥

(१०) जीतपुरा —(तहसील रिवाड़ी, जिला महेन्द्रगढ़, करीरीवास के निकट) यहाँ गो० जुगतानंद के शिष्य श्री गंगासरन ने अपना स्वतंत्र स्थान बनाया था। यह स्थान भी सं० २००० वि० तक चलता रहा परन्तु इसके बाद संभवतः गृहस्थ गद्दी के रूप में परिणत हो गया या दिल्ली के प्रधान थाँमें के अंतर्गत हो गया। परंपरा निम्नलिखित है—

म० गंगासरन (सं० १८७०–१८८८ वि० अनुमानित)।
|
म० माधोसरन (सं० १८८८–१९१२ वि० ,,)।
|
म० बलदेवसरनदास (सं० १९१२–१९६० वि० ,,)।
|
म० हीरादास (सं० १९६१–१९९० वि० ,,)।
|
आगे की परम्परा अज्ञात है।

(११) रिवाड़ी—यहाँ के सदर बाजार (नई बस्ती) में भगनस्वरूप जी के शिष्य श्री सदानंद का थाँभा था। म० सदानन्द ने राहिल्यावास से अलग होकर यहाँ स्वतंत्र स्थान का निर्माण किया था। यहाँ की परंपरा इस प्रकार पाई जाती है—

---

१. श्री चरणावत वैष्णव वर्षोत्सव : पृ० ९८ पर उद्धृत।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म० मगन सरूप (सं० १८६०–१८८२ वि०, राहिल्यावास वाले)।
|
म० सदानन्द (सं० १८८२–१९१५ वि०)।
|
म० प्रागदास (सं० १९१६–१९३७ वि०,करीरीवास और मुसेदपुर वाले)।
|
म० मुरलीदास (सं० १९३७–१९७० वि०)।
|
म० अयोध्यादास (१९७०–१९८० वि०)।
|
म० प्रकाशानन्द (१९८०–१९९० वि०)।
|
म० हरिदास (वर्तमान)।

सं० १९७८ वि० में लिखित अपने वसीयतनामे में आचार्य गद्दी के (दिल्ली के) महन्त बसन्तदास जी ने अपने शिष्य प्रकाशनंद जी को जगाधरी का मन्दिर और ५००० रु० दिया था। उन्होंने अपने दूसरे शिष्य हंसदास जी को २००० रु० तथा तीसरे शिष्य द्वारकादास जी को अपनी गद्दी के उत्तराधिकारी श्री गुलाबदास जी के साथ दिल्ली में रहने का आदेश दिया था।

(१२) रामपुरा—रिवाड़ी से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर स्थित रामपुरा में यह स्थान था। संभवतः पूर्णानन्द जी यहाँ के प्रथम महंत थे। इनका अपर नाम पूर्णदास आचार्य भी मिलता है। संभवतः ये विद्वान् ब्राह्मण महन्त थे। परंपरा इस प्रकार द्रष्टव्य है —

म० पूर्णानन्द जी[1] (सं० १८६०–१९३० वि०)।
|
म० पुरुषोत्तमदास जी[2] (सं० १९३०–१९७५ वि०)।
|
म० बालकदास जी (सं० १९७५–२०१० वि०)।
|
हरिदास जी (रिवाड़ी के अधीन)।

म० बसन्तदास (दिल्ली) के शिष्य प्रकाशनंद जी भी कुछ दिनों तक यहाँ व्यवस्थापक रहे। महंत बालकदास यहाँ के महंत पद पर आने के पूर्व अन्यत्र किसी स्थान के महंत थे।

---

१. आचार्य पूरणदास रिवाड़ी से सं० १९३० तक मेलों में आते रहे हैं।

२. म० पुरुषोत्तमदासजी राहिल्यावास के महंत मगनस्वरूपजी के शिष्य थे। यहाँ ये गोद लिए गए थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३) लोकरी—यह रिवाड़ी के निकट स्थित जुगतानंद के शिष्य भगत विनोद जी का स्थान था। यहाँ का मंदिर अभी भी व्यवस्थित है। परंपरा चल रही है, जो इस प्रकार है—

म० भक्ति विनोद (सं० १८६०–१८९० वि० तक)।
|
म० बिसन सरन (सं० १८९०–१९१५ वि० तक)।
|
म० मलूकदास[1] (सं० १९१५–१९६५ वि० तक)।
|
म० खूबदास या खूबीदास (सं० १९६५–१९८० वि० तक)।
|
म० चुनीदास जी[2] (सं० १९८०–२०१५ वि० तक)।
|
म० आज्ञादास जी (वर्तमान)।

मलूकदास जी लगभग ५० वर्षों तक महन्त पद पर रहे। ये अच्छे कवि और महात्मा थे। इन्होंने दो-तीन बार मेलों का आयोजन भी किया था।

(१४) नूह—(तहसील नूह, जिला गुड़गाँव)—गोसाईं जी के शिष्य श्री भजन-विलास यहाँ के प्रथम महंत थे। इनके शिष्य कृष्णविलास जी सं० १९१९–१९३० वि० के बीच में हुए मेलों में उपस्थित होते रहे। संभवतः यह स्थान आगे चलकर किसी संबद्ध थाँभे में सम्मिलित कर लिया गया। इस अनुमान का आधार यह है कि सं० १९३० वि० के बाद यहाँ से कोई भी महंत किसी मेले में उपस्थित नहीं हुआ है।

(१५) हरसौरा—अलवर के समीप स्थित हरसौरा गोसाईं जुगतानंद जी की जन्मभूमि है। यहाँ उनके किसी शिष्य ने स्थान-निर्माण किया था। यहाँ किशन सेठ के बगीचे में उनकी छतरी बनी हुई है। अपने रामत के क्रम में वे यहाँ कई बार आए थे। यहाँ का स्थान संभवतः स्वतंत्र थाँभे का रूप ग्रहण नहीं कर सका, क्योंकि यहाँ का कोई भी महंत मेले की बहियों में उल्लिखित नहीं है।

(१६) पलवल—गुड़गाँव जिले के पलवल बाजार (तहसील तथा कस्बा) में गोसाईं जी के शिष्य परवीनदास रहा करते थे। यहाँ के तीसरे महंत रामगुरदास बड़े प्रभावशाली महात्मा थे और १९१९ से १९५२ के हुए सभी आयोजनों में उपस्थित हुए थे। यहाँ की महंत परंपरा इस प्रकार है—

---

१. म० मलूकदास के व्यक्तिगत परिचय और उनके साहित्य के विषय में द्रष्टव्य बल्लभदास (चरणदास के शिष्य) के दिसावर खेड़ी थाँभे का वृत्त।

२. ये दिल्ली की संबद्ध आचार्य गद्दी के महन्त बसन्तदासजी के शिष्य थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म० परवीनदास (सं० १८७५–१८९४ वि०)।
|
म० मुकुटदास (सं० १८९४–१९१० वि०)।
|
म० रामगुरुदास (सं० १९१०–१९६२ वि०)।
|
म० कान्हड़दास[1] (सं० १९६२–१९७० वि०)।
|
म० शंकरदास (सं० १९७०–२००० वि०)।

इसका एक स्थान वपणिया, तह०—साँथला, जिला—रोहतक में भी था जहाँ से सं० १९३९ वि० के मेले में रामगुरुदास पधारे थे।

(१७) बिलासपुर—यह मध्यप्रदेश का बिलासपुर शहर नहीं बल्कि गुड़गाँव तहसील का एक गाँव हैं, जहाँ गोसाईं जी के शिष्य भजनगोपाल जी स्थान बनाकर भक्ति प्रचार करते थे। उनकी गद्दी की महंत-परंपरा सं० १९६० वि० तक ही मिलती है। संभवतः इसके आगे यह स्थान समाप्त हो गया। प्राप्त परंपरा इस प्रकार है—

भजन गोपाल (सम्भवतः सं० १९०० वि० तक)।
|
म० श्याम गोपाल (सं० १९००–१९१५ वि०)।
|
मुकुन्द गोपाल (सं० १९१५–१९१९ वि०)।
|
म० नंद गोपाल (सं० १९१९–१९४० वि०)।
|
म० रघुबरदास (सं० १९४०–१९४८ वि०)।
|
म० साँवलदास (सं० १९४८–१९६० वि०)।

(१८) बड़ा पलथा—यह स्थान झरिया (जि०—धनबाद, बिहार) से २४-२५ मील दूर है। यहाँ सं० २००० वि० तक बाबा हरनामदास वर्तमान थे, जो प्रायः मेलों में सम्मिलित होते थे। इसकी शिष्य परंपरा प्राप्त नहीं होती और न तो यह ही पता चलता है कि किसने यहाँ सर्व प्रथम थाँभा निर्माण किया था।

(१९) पटियाला—यहाँ के नाभा दरवाजा नामक स्थान में इस गद्दी का एक स्थान था। सं० १९२१ वि० में महन्त घनश्यामदास यहाँ पधारे थे, तभी संभवतः यह स्थान निर्मित हुआ था। यहाँ के राजदरबार में चरणदासी महात्माओं का

---

१. ये कान्हड़दास किसी श्यामदास के शिष्य थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा सम्मान था। इसका प्रमाण यह है कि यहाँ के नरेश महेन्द्र सिंह जब दिल्ली आते थे तो वे गुसाईं गद्दी के महंतों से अवश्य मिलते थे। उन्हीं के निमंत्रण पर महंत घनश्यामदास जी वहाँ गए थे। अभी यह गद्दी चल रही है और म० हरिदास जी इसकी देख-रेख कर रहे हैं। इसकी परंपरा इस प्रकार मिलती है—

म० घनश्यामदास (सं० १९१५–४२ वि०)।
|
म० जमुनादास (सं० १९२२–६५ वि०)।
|
म० जैरामदास (सं० १९६५–९० वि०)।
|
म० हरिदास (सं० १९९० वि०—वर्तमान) :

भूतपूर्व पटियाला रियासत में शुक संप्रदाय के कई छोटे-बड़े थाँभे थे, जिनमें बरनाला, सुनाम, ठीकरी और तषतमल के थाँभे विशेष उल्लेखनीय हैं। एक थाँमा फतेदाकोट में भी था।

(२०) सुनाम—(थाना—सुनाम, पो०—संगरूर, जिला—अंबाला)–यह महंत गुलाबदास जी की जन्मभूमि का स्थान है। यहाँ की गद्दी अभी भी चल रही है। यहाँ के मंदिर के साथ ६०० बीघे जमीन महाराजा पटियाला द्वारा प्रदत्त थी। यहाँ के रामरूप जी और अखैरामजी के अखाड़े समाप्त होकर महंत गुलाबदास की व्यवस्था के अन्तर्गत आ गए थे। गोसाईं जुगतानंद के शिष्य मनसादास यहाँ के प्रथम महंत थे। परंपरा इस प्रकार मिलती है—

गो० जुगतानन्द
|
मनसादास जी (सं० १८७०–१९१५ वि०)।
|
ध्यानदास जी (सं० १९१५–१९६० वि०)।
|
ज्ञानदास जी (सं० १९६०–१९९० वि०)।
|
लंबनारायणकृष्णदास (संगरूर वाले) (सं० २००० वि० तक वर्तमान)।
|
म० बनवारीदास (संभवतः सं० १९२० तक वर्तमान)
|
म० सहदेवदास (वर्तमान)।

महंत सहदेवदास इस समय अखैराम जी के रौड़ी (पंजाब), सुनाम (संगरूर) और हिसार नगर में स्थित थाँभों के भी व्यवस्थापक हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२१) हेजरपुर—(नजीबाबाद, जिला बिजनौर)—नगीना स्टेशन से कोई ४-५ मील की दूरी पर स्थित उक्त गाँव में इस संप्रदाय का एक सुन्दर मंदिर है। मंदिर से संलग्न ४० बीघे का बगीचा है। दिल्ली के गुसाईं बसन्तदास जी के भाई परमहंसवृत्ति से यहाँ रहते थे। यहाँ के एक अन्य महन्त हरीदास जी, जो नजीबाबाद के वैश्यकुलोत्पन्न थे, सखीभाव से यहाँ रहते थे। इनके गुरु नारायणदास और स्वयं स्वामी हरीदासजी की समाधियाँ नजीबाबाद के रबों के मुहल्ले में बनी हुई हैं। हरीदास जी उर्दू के कवि थे। इनके शिष्य ठाकुर रामरतन सिंह नहटोर के पास सगड़ी नामक स्थान में रहते हैं। ये भी साहित्यिक व्यक्ति हैं।[1]

यहाँ की शिष्य परम्परा इस प्रकार है—

नारायणदास जी (सं० १९४०–१९६० वि०)।
|
हरीदास जी (सं० १९६०–१९८० वि०)।
|
ठाकुर रामरतनसिंह (वर्तमान सगड़ी में)।

(२२) फर्रूखनगर–(तहसील और जिला गुड़गाँव)—यहाँ चरणदास जी के किसी शिष्य का बड़ा थाँभा था। या कहीं के बड़े थाँभे के महंत यहाँ सं० १९१५ वि० से १९४५ के बीच रहते थे। क्योंकि इस बीच के दो महन्तों—म० हरीस्वरूप और खेमदास जी को बड़े थाँभे के महन्त-रूप में दक्षिणा मिलती रही

---

१. स्वामी हरीदास जी की बानियाँ सरसकुंज—जयपुर में सुरक्षित एक बानी-संग्रह में संकलित हैं। इनके शिष्य रामरतन सिंह की बानियों का एक संग्रह 'बानी' के नाम से और दूसरा 'शब्द' के नाम से प्राप्त है, जो उक्त संग्रहालय में संगृहीत है।

ठाकुर रामरतन सिंह के पिता का नाम देवसिंह था। इन्होंने सं० १९६३ वि० में 'हरीदास जी की बानी' और नंदराम जी (चपणदास जी के शिष्य) कृत 'योगसार' की प्रतिलिपि तैयार की थी। इनके गुरु हरीदास जी ९० वर्ष की अवस्था में परलोकवासी हुए। रामरतन सिंह की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

नरायनदास दादा गुरु, करूँ चरनन को ध्यान।
मम बिनती सुनि लीजिए, मैं मूरख अज्ञान ॥ १ ॥
हरीदास गुरु आनि के, दियो मोहि उपदेस।
राम रतन अपना कियो, दीनो निर्भय देस ॥ २ ॥
बार-बार बिनती करूँ, अरज सुनो सुखदेव।
दास रतन आधीन कूँ, सब समझाबो भव ॥ ३ ॥

(रामरतन जी के शब्द)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसके पश्चात् यह थाँभा जुगतानन्द जी की परम्परा के महन्त जैकिसनदास के हाथ में आ गया। सं० १९७० वि० के बाद इसका थाँभे के रूप में स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया। तब से यह गोसाईं जी के दिल्ली के महंतों की देख-रेख में आ गया। यह स्थान मुसेदपुर के निकट है। अतः इसकी व्यवस्था वहीं से होने लगी थी।

(२३) ग्वालियर—यहाँ के लकड़ खाने के पास गवरवा की मण्डी के पास कुछ समय पूर्व तक चरणदासियों का मंदिर था। यह स्थान गो० जुगतानंद के शिष्य और वृन्दावन के महंत श्री वृन्दावनदास द्वारा स्थापित किया गया था। सं० १९५२ वि० के मेले में यहाँ से श्रीमनमोहनदास महंत के रूप में गए थे। यहाँ की गद्दी वृन्दावन के थाँभे के अधीन थी। अब दोनों गद्दियों के संयुक्त महंत देहरगवाँ (ग्वालियर) में ही रहा करते हैं।

(२४) भूघड़—(तह०—बरनाला, संगरूर के पास का एक स्थान)—यहाँ का थाँभा आगे चलकर संत अखैराम जी के थाँभे से मिल गया अतः इसका परिचय गुरु छौना जी की शिष्य-परम्परा के वृत्त के साथ द्रष्टव्य है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

बड़ी गद्दियों की शिष्य परम्पराएँ और उनकी साहित्यिक उपलब्धियाँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी गद्दियों की शिष्य-परम्पराएँ और उनकी साहित्यिक उपलब्धियाँ—

(१) आचार्य गद्दी, बड़ी गद्दी और छोटी गद्दी के भेदक लक्षण।

(२) बड़ी गद्दी के संस्थापक शिष्यगण।

(३) उनका सम्प्रदाय और साहित्य के क्षेत्र में योगदान।

(४) गुरुछौना जी—उनके शिष्य-प्रशिष्य परिकर के अखैराम, चेतनदास, मोहनदास, ध्यानदास, बेगमदास, रामूदास, हीरादास और मगनदास आदि का साहित्य और सम्प्रदाय को योगदान—माचल, जयपुर, रोड़ी, भदेचे (मालेरकोटला), झंडूकी, डेरावाली, बालाँवाली, तषतमल, झींद, दिल्ली (सीताराम बाजार), कुलचाड़ाँ, मालाखेड़ा और पृथ्वीपुरा-पावटा आदि की गद्दियों की शिष्य-परम्पराएँ—इन परम्पराओं के कवि और उनका कवि कर्म।

(५) श्री आतमराम इकंगी—व्यक्तित्व और साम्प्रदायिक कृतित्व—आतमराम का साहित्य—उनके शिष्य श्री लच्छीदास तथा मानदास द्वारा रचित काव्य ग्रंथों का मूल्यांकन—आतमराम जी की प्रशिष्य-परम्परा के गुरु-सरनदास, रामसरनदास, जैदास, सेवादास और लालदास आदि का साहित्य।

(६) ध्यानेश्वर जोगजीत जी—व्यक्तित्व एवं सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में योगदान—कुरुक्षेत्र, अजराड़ा, शाहजहाँपुर, सवाद, खुर्जा, जगाधरी आदि गद्दियों की शिष्य-परम्पराएँ—जोगजीत जी का 'लीलासागर' और उसका साहित्यिक एवं साम्प्रदायिक महत्त्व : एक मूल्यांकन।

(७) ब्रह्मप्रकाश जी—व्यक्तित्व, काव्य, सम्प्रदाय प्रसार में योगदान—धनौरा, असगरीपुर, जटाणां, धामपुर, मंदपुर, जसौरा, मोड़िया आदि गद्दियों का वृत्त और उनकी साहित्यिक उपलब्धियाँ।

(८) श्री जसराम उपगारी—उनका खरग का थाँभा, जसराम जी का साहित्य-भक्ति प्रकाश, भक्तिबावनी और शब्द आदि।

(९) भगवानदास जी—उनका बानूगंज (आगरा) का थाँभा-उनकी 'रामा-श्वमेध की कथा' तथा अन्य कृतियाँ।

(१०) प्रेमाभक्तिरसाचार्य रामसखी जी—उनकी साधना का स्वरूप—उनकी काव्य कृतियाँ—'भक्तिरसमंजरी', अष्टयाम' और 'नृत्यराघवमिलन, आदि।

(११) प्रेमगलतान जी—व्यक्तिगत परिचय—ब्रदेह का थाँभा—साहित्य-'विज्ञान पदार्थ', 'शब्द' और 'बानी' आदि।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) श्री छीतरमल—उनकी शाहपुरा की गद्दी की शिष्य-परम्परा।

(१३) श्रीरामप्रताप भार्गव—रिवाड़ी का थांभा और उसका साहित्य एवं सम्प्रदाय को योगदान।

(१४) पूरनप्रताप जी—परिचय—डीग का थांभा-साहित्य।

(१५) त्यागीराम जी—उनकी मुडौला, नौरसपुर और बनी की गद्दियों की शिष्य-परम्परा—उनके शिष्य ज्ञानानंद निर्वाणी का साहित्य-दशम-स्कंध भागवत भाषा, चौबीस एकादशी कथा, चौबीस अवतार कथा और बानी।

(१६) जैदेवदास जी—उनका कोयल (अलीगढ़) का थाँभा।

(१७) श्री सबगतिराम (प्रथम)—उनकी बभनौली (जिला मेरठ) और मेरठ नगर के थांभे—उनके आत्मबोध ग्रंथ और अन्य रचनाओं का वैशिष्ट्य।

(१८) वल्लभदास जी—उनकी दिसावर खेड़ी और रोहतक नगर की शिष्य गद्दियाँ—उनके प्रशिष्य श्री मलूकदास की साहित्यिक उपलब्धियाँ।

(१९) श्री घनश्यामदास—उनका मुट्ठीगंज (प्रयाग) का थांभा, साहित्यिक परिचय।

(२०) बालगुपाल जी—उनका कीडगंज (प्रयाग) का थांभा, बानियाँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्दी या थाँभा की अवधारणा—किसी स्थान विशेष पर कुटी, आश्रम या मठ-मन्दिर स्थापित करके उसी केन्द्र से अपने संप्रदाय अथवा गुरु द्वारा प्रतिपादित किसी विशिष्ट सिद्धांत का प्रचार एवं उससे संबद्ध आचार का पालन करने-कराते जब एक महात्मा या आचार्य स्वर्गवासी हो जाता है और उसका कोई शिष्य या पुत्र उसके कार्य को अग्रसर करता है तो वह केन्द्र गद्दी की संज्ञा धारण करता है। आलोच्य संप्रदाय में गद्दी के लिए 'थाँभा' शब्द अधिक प्रचलित है। वैष्णव संप्रदायों में गद्दियाँ तीन प्रकार की मानी गयी हैं-(१) मौरूसी (२) हाकिमी और (३) पंचायती। इसी प्रकार, गद्दियों की शिष्य परंपरा भी दो प्रकार की होती है—(१) नादकुल और (२) बिन्दुकुल। मौरूसी गद्दी शिष्य या पुत्र परंपरा से चलती है। हाकिमी गद्दी और पंचायती गद्दी प्रायः विवादग्रस्तता की देन होती है। प्रथम में न्यायालय या शासक द्वारा नियुक्त व्यक्ति गद्दी का अधिकारी होता है तो दूसरी कोटि में वे गद्दियाँ आती हैं, जिनके लिए संरक्षक मंडल (ट्रस्ट) या पंचायत द्वारा नियुक्त व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह गद्दी की संपत्ति (चल-अचल) की देख-भाल के लिए नियुक्त होता है। ये दोनों व्यवस्थाएँ बहुधा विवाद-काल तक या अस्थायी अवधि के लिए ही होती हैं। शुक संप्रदाय में हमें इन तीनों कोटियों की गद्दियाँ मिलती हैं। दिल्ली की तीनों आचार्य गद्दियाँ स्वयं भी इन तीनों श्रेणियों एवं स्थितियों में आ चुकी हैं। इसी प्रकार नादकुल और बिन्दुकुल—दोनों कुलों की शिष्य परम्पराओं को इस संप्रदाय के आद्याचार्य श्री चरणदास ने मान्य किया था। उन्होंने अपवाद रूप में प्रयाग निवासी श्री घनश्यामदास और बालगुमान जी को गृहस्थ रूप में रहकर ही शिष्य परंपरा चलाने की छूट दी थी परन्तु इस संप्रदाय में नाद-परंपरा ही विशेष रूप से मान्य है।

आलोच्य संप्रदाय में उपर्युक्त कोटियों के अतिरिक्त गद्दियों की तीन विशिष्ट-श्रेणियाँ भी मिलती हैं—(१) आचार्य गद्दी (२) बड़ी गद्दी और (३) छोटी गद्दी। सन्त चरणदास जी की गद्दी के तीन प्रबलतम दावेदारों ने परिस्थितिवश उन्हीं के प्रधान स्थल (प्रधान गद्दी) के आस-पास अपने-अपने स्वतंत्र स्थान निर्मित किये और उनकी गद्दियों को कालान्तर में आचार्य गद्दी की मान्यता प्राप्त हुई थी। इन आचार्य गद्दियों के संस्थापक थे—(१) सुश्री सहजोबाई (२) स्वामी रामरूप जी 'गुरू भक्तानन्द' और (३) गोसाईं जुगतानन्द जी। इनमें भी वरिष्ठता की मान्यता का प्रश्न विवादित रहा और इन तीनों गद्दियों की शिष्य शाखा-प्रशाखा आज भी अपने-अपने मूल आचार्य (सहजोबाई जी, रामरूप जी और जुगतानंदजी) को सर्वश्रेष्ठ मानती है।

बड़ी गद्दियों की संख्या ५२ मानने की इस संप्रदाय की मान्यता में उपर्युक्त तीन आचार्य गद्दियों के अतिरिक्त ४९ अन्य बड़ी गद्दियों की गणना होती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन शिष्यों और प्रशिष्यों की सूची द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत की जा चुकी है। इनके संप्रदाय और साहित्य के क्षेत्र में किये गये योगदान का परिचय तथा मूल्यांकन इस अध्याय का वर्ण्य-विषय है। इनमे संबद्ध सामग्री इतनी अधिक है कि इन सबका इस एक अध्याय में समावेश संभव नहीं है अतः पंचम अध्याय में भी इसी क्रम का अनुपालन किया गया है। छोटे थांभे के ५६ सदस्यों का वृत्त भी अपने-आप में बड़ा विस्तृत है परन्तु उसे सांकेतिक रूप में ही प्रस्तुत करने का प्रयास करके संबद्ध सामग्री को मात्र षष्ठ अध्याय में ही समाविष्ट किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय में बड़ी गद्दी के जिन संस्थापकों का समावेश किया गया है, उनमें से गुरु छौना जी, आतमराम इकंगी, जसराम उपगारी, भगवानदास जी, प्रेमाभक्ति के आचार्य रामसखी जी, प्रेमगलतान जी, त्यागीराम जी और सबगति-राम (प्रथम) तथा उनकी शिष्य-शाखाओं का साहित्य-सर्जन की दृष्टि से विशेष महत्व है। इन कवियों की रचनाएँ सांम्प्रदायिक, साधनामूलक या सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण तो हैं ही, साथ ही उनका साहित्यिक महत्त्व भी अत्यधिक है। इन कवियों की रचनाओं का कुछ अंश रीति कवियों की टक्कर का है। इनके काव्यजनित सौंदर्य का उद्घाटन तत्तद कवियों के वृत्त के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस अध्याय में समाविष्ट कवियों के क्रम में पूर्वापर का निर्धारण उनके सांप्रदायिक और साहित्यिक योगदान को ध्यान मे रखकर किया गया है। चरणदासजी के जिन शिष्यों ने संख्या में अधिकाधिक प्रचार केन्द्रों का निर्माण किया और जिनकी शिष्य-प्रशिष्य शाखाओं से संबद्ध महात्माओं ने अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में साहित्य का सृजन किया उन्हें यहाँ गणनाक्रम में वरिष्ठ स्थान दिया गया है। साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि इससे भिन्न हो भी नहीं सकती।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) गुरुछौना जी और उनकी गद्दियों की शिष्य परंपरा—

ये दिल्ली के किसी सरदार के पुत्र और उच्चकुल में उत्पन्न थे। इनकी जाति के सम्बन्ध में निश्चित उल्लेख का अभाव है। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण कुलोत्पन्न मानते हैं। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। 'अपने गुरु श्री चरणदास के अत्यन्त प्रिय होने के कारण ही इनका नाम 'गुरुछौना' पड़ा था। 'गुरुभक्तिप्रकाश', 'लीलासागर' और 'नवसंतमाल' जैसे सांप्रदायिक इतिहास-ग्रंथों में इनके चरणदास की ओर आकर्षित होने के सम्बन्ध में एक विचित्र कथा उल्लिखित है। इसके अनुसार एक दिन जब वे बन-ठन कर और घोड़े पर सवार होकर यमुना स्नान के लिए आये तो उन पर चरणदास जी की दृष्टि पड़ी। इनके भव्य स्वरूप को लक्षित करके चरणदास जी ने अपने साथ के महात्माओं से बड़े ही सहज ढंग से कहा—'महल तो अच्छा है परन्तु इसमें दीपक नहीं है।' इसे सुनकर उस युवक ने व्यंग्य पूर्वक उत्तर दिया 'इसमें दीपक रखनेवाला कोई दीखता नहीं।' चरणदास जी ने मुस्कुराते हुए कहा 'तुम चाहो तो प्रभु के भक्त उनकी कृपा से सब कुछ कर सकते हैं।' उस सजीले नवयुवक को उनकी गर्वोक्ति पर हँसी आई और उसने परीक्षा लेने के निमित्त उनसे कहा 'यदि आप में यह शक्ति हो तो मेरे घोड़े से राम-राम कहला दो।' संत चरणदास ने घोड़े की ओर देखा और घोड़े ने तीन बार राम-राम का उच्चारण किया। यह चमत्कार देखकर युवक उनका शिष्य बन गया।[1] यही अल्हड़ युवक आगे चलकर अपनी साधना की उच्चता और गुरु के प्रति अगाध भक्ति के कारण 'गुरुछौना' उपाधि का अधिकारी बना।

धीरे-धीरे साधना का उनका अभ्यास इतना बढ़ गया कि ये अखंड समाधि तक लगाने लगे। इनके शिष्य गंगादास ने इसे लक्षित करते हुए कहा भी है—

> हमारे गुरु सुगम समाधि लगाई।
> सोवत खात उठत औ बैठत टरत न नेकु टराई॥
> बिन आसन बिन संजम साधन अलख रूप दरसाई।
> संध्या भोर द्यौस औ रजनी तामें सिमट समाई॥[2]

इनके आग्रह पर स्वामी चरणदास ने उन्हें दिल्ली में ही समाधि के क्रम में निजवृंदावनधाम और श्यामा-श्याम की युगलमूर्ति के प्रत्यक्ष दर्शन कराये थे।

यद्यपि इस वृत्त का उल्लेख प्रायः उपर्युक्त सभी ग्रंथों में है तथापि 'लीला-

---

१. नवसंतमाल : रूपमाधुरी शरण : पृ० ३९।

२. अखैराम की वाणी (पाण्डुलिपि) : पत्र सं० ३९८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सागर' में इसका वर्णन विशेष विस्तार के साथ किया गया है।[1] गुरुछौना जी का गुरुप्रदत्त यह नाम विशिष्ट कारणों से इतना लोकप्रिय हुआ कि उनका मूल नाम अज्ञात ही रह गया।

गुरुछौना जी चरणदासी संप्रदाय के बड़े ही प्रभावशाली और सिद्ध महात्मा हुए हैं। इनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा ने हिन्दी साहित्य-भंडार को अमूल्य देन दी है। इस परम्परा में अखैराम, बेगमदास, रामूदास, हीरादास, गंगा या गंगनदास, मोहनदास, खुशालीबाई और हीरालाल भार्गव जैसे अनेक कवि समय-समय पर हुए हैं, जिनका वृत आगे चलकर यथा-स्थान दिया गया है। साहित्यिक योगदान के अतिरिक्त अपने संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में भी इनकी शिष्य-परम्परा की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके थाँभों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उनके महन्त प्रायः सभी सांप्रदायिक आयोजनों में सम्मिलित होते रहे हैं। यह उनकी सक्रियता एवं जागरूकता का प्रमाण है।

गुरुछौना जी और उनके शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा स्थापित लगभग २५ थाँभों में माचल (प्रधान थाँभा) जयपुर, रोड़ी, झंडूकी, झींद, करनाल (लाडुआ), पटियाला, दिल्ली (सीताराम बाजार) आदि स्थानों के थाँभे सर्वाधिक सक्रिय रहे हैं। छौना जी संस्कृत और फारसी के साथ पंजाबी, खड़ीबोली एवं व्रजभाषा के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी बानियों से इनका संत रूप सगुणोपासक की अपेक्षा अधिक मुखर दिखाई देता है। आलोच्य संप्रदाय की बड़ी गद्दियों में क्रम के अनुसार दिल्ली की तीनों आचार्य गद्दियों के पश्चात् माचल की ही गणना होती है, जो इस बात का परिचायक है कि सम्प्रदाय में महत्व की दृष्टि से रामरूपजी, जुगतानंदजी और सहजोबाई जी के बाद गुरुछौना जी का ही स्थान था।

गुरुछौना जी के शिष्यों में अखैराम, बेगमदास, रामूदास तथा गंगादास के नाम इस परंपरा के लिए विशेष आदर के पात्र हैं।[2] इनमें भी साहित्य और

---

१. गुरू छौना फिर बचन उचारी। सतगुरु सुनिये अरज हमारी॥
बहुदिन से हिय माँहि उमाहा। श्री कृष्ण दर्शन की चाहा॥
आज सु मन की आस पुजाओ। श्यामा श्याम दरस दिखलाओ॥
मुदित होय महराज उचारे। ला आसन करि ध्यान पिआरे॥
जब लगि मैं न हिलाऊँ तोहीं। तब लगि नैन न खोलिओ दोई॥
...चौसठ खंभा ताके माहीं। झुंड सखिन कौ सौभित ताहीं॥
अद्भुत तहाँ सिंहासन साजे। तापर राधा कृष्ण विराजे॥
निरख निरख आनंद समानो। जो सुख भयो न जाय बखानो॥
—लीला : पृ० २६२।

२. दष्टव्य : रोड़ी के थाँभे का वृत्त।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संप्रदाय-विस्तार की दृष्टि से अखैरामजी का महत्व सर्वाधिक है। उनके अनेक शिष्यों यथा चेतनदास, मोहनदास, ध्यानदास और प्रशिष्य शार्दूल सिंह, बद्रीदास, शीतलदास, अमरदास, गोविंददास आदि ने अनेक स्वतंत्र स्थानों का निर्माण किया। उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः राजस्थान, हरियाणा और पंजाब रहा। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वामी चरणदास जी ने अपने प्रशिष्य अखैराम को अपने शिष्यों से भी अधिक स्नेह प्रदान किया था। गुरुछौना जी के देहत्याग-वर्ष का पता नहीं चलता लेकिन इस सम्बन्ध में प्राप्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका स्वर्गवास सं० १८६० के आसपास हुआ होगा। इनके 'षट्रूप मोक्ष' नामक ग्रंथ का रचनाकाल सं० १८४५ वि० है। इसके अतिरिक्त अन्य कई ठोस प्रमाण हैं, जिनके आधार पर गुरुछौना जी के सं० १८६० वि० तक जीवित रहने की बात पुष्ट होती है।

अखैराम जी और उनका संप्रदाय को योगदान—

एक सिद्ध साधक के रूप में अखैराम जी (अक्षयराम) जयपुर राज्य में प्रख्यात तो थे ही साथ ही शीर्षकोटि के कवि और वैद्य के रूप में भी उनकी उतनी ही ख्याति थी। समकालीन कई राजे-रजवाड़े उनके आशीर्वाद के अकांक्षी थे और सेवा के लिए प्रस्तुत रहते थे। सामान्य जनवर्ग के लिए तो वे किसी अवतारी पुरुष से कम न थे। जयपुर नरेश सवाई महाराजा प्रतापसिंह ने उन्हें १०१ स्वर्णमुद्रा और कोलीवाड़ा नामक गांव भेंट में देकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की थी।

उस पट्टे की नकल इस प्रकार है—सिद्धि श्री महाराजाधिराज श्री सवाई प्रतापसिंह जी देव वंचनात के नमेती[1] परगना सवाई जयपुर का दसे सुप्रसाद वंच्या। अपरंच बाबति भोग गांव ठाकुर श्री चैनबिहारी जी विराजमान श्री वृन्दावन जी में जुगलघाट परि मंदिर स्वामी अखैरामदास बणायो। त्यां के बास्ते मार्फत बोहरा राजा खुस्याली राम की मिती पौष बदि नौमी सं० १८५० है। आरज पहौंची जो गांव कौलीवाड़ा तप्पा रामगढ़ परगना सवाई जयपुर को भौमि वगैरह सौधा सालीना रुपया २०००) का मै दरोबस्त स्वामी श्यामचरनदास उदिक मुआफिक (माफी) परवाने सवती करार मिती भादवा सुदी ८ सं० १८३९ थें पावैछो सों काल बसि मिती माग्यश्र[2] बदि ७ सं० १८३९ ने हुयौ अर हासिल गांव को सं० १८४९ ताईं मुसारन अलेह का चेला पायो। अब इब्तदाय साबसाल सं० १८५० थें सषालतैं करी एवज भोग मे करि देवा को हुक्म हुयो सौ दस्तखत करायो चाहै सो हुकुम हुवा मुवाफिक लिजे सीगै भोग कैं ड्यौढ़ी को प्रवान सवती लिषो सो चाहिज्ये दीवान सरकार का प्रवाणा लिषै मिती माह बदि १ सं०

---

१. नमेती = निमित्त। २. माग्यश्र = मार्गशीर्ष।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८५० अरज मुकरर पहौंची मुकररा गाँव मजकूर भोमि बाग वगैरह सुधा सालीना रुपया २०००) का मै दरोबस्त एक मुवाफिक पादिदासाती मै दसजत बौहरा राजा षुस्याली राम व दीवान पान तीसूं फुरभावा छां मतलब परवाता का सूं वाकिफ होय गांव कोलीवाड़ा तप्पा रासगढ़ परगना सवाई जयपुर का सुधा सालीना २०००) को मै दरोबस्त इब्तदाय साष स्यालू सं० १८५० के सीगै भोग के जाणी हासिल हवाले करबो कीजो अरु प्रतिवर्ष नवो परवानो मत मांगजो। इ परवाना सूं हिसाब मुजरा होयला।"

इस पट्टे से हमें यह भी सूचना मिलती है कि सं० १८३९ वि० में यह गाँव चरणदास जी को मिला था। परन्तु उसी वर्ष उनके स्वर्गवास के उपरांत यह ग्राम वार्षिक पट्टे (परवाने) पर उनके प्रशिष्य अखैराम जी को सं० १८४९ वि० तक मिलता रहा। सं० १८५० वि० में जब अखैराम जी ने वृन्दावन में युगलघाट पर श्री चैनबिहारी जी का मंदिर निर्मित्त कराया तो उसके भोगप्रसाद आदि की व्यवस्था के लिए उन्हें महाराज सवाई प्रतापसिंह से उक्त गाँव स्थायी पट्टे पर माफी केरूप में मिला। इससे जयपुर के राजदरबार में उनका प्रभाव सिद्ध होता है।

स्वामी चरणदास जी को उनके परलोकवास के लगभग छह मास पूर्व जयपुर के तत्कालीन महाराजा सवाई प्रतापसिंह के निमंत्रण पर जयपुर की यात्रा की प्रेरणा देने वालों में स्वामी अखैराम की भूमिका सर्वप्रमुख थी। इस यात्रा का वृत्त 'गुरुभक्तिप्रकाश' के पृ० २११ से २१३ के बीच स्वामी रामरूप जी ने बड़े विस्तार से दिया है। इस यात्रा का वर्णन श्री चरणदास के समसामयिक अनेक शिष्यों तथा परवर्ती प्रशिष्यों आदि ने किया है। यद्यपि ये चरणदास जी के प्रशिष्य थे परन्तु इन पर उनकी बहुत बड़ी कृपा थी। सं० १८३९ वि० में अपनी जयपुर यात्रा के समय महाराज जयपुर से भेंटस्वरूप प्राप्त २१ स्वर्ण मुद्राओं और एक गाँव की भेंट को भी स्वामी चरणदास ने स्वयं न लेकर अखैराम जी को ही सौंप दी थी।

मंदिरों के निर्माणकर्त्ता के रूप में अखैराम जी इस संप्रदाय के इतिहास में अविस्मरणीय एवं अद्वितीय हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल में ८ भव्य मंदिरों का निर्माण भिन्न-भिन्न स्थानों पर कराया और प्रायः सबमें सुन्दरतम मूर्त्तियों को पधराया। इन सभी मंदिरों की पूजा-व्यवस्था का व्यय-भार वहन करने के लिए उन्होंने अपनी योग्यता और सिद्धियों के बल पर चल-अचल संपत्ति की अच्छी व्यवस्था की। ये मंदिर कुलचाणा, मालाखेड़ा, जिंदौली, माचल, देल्हावास, अलवर, जयपुर और वृन्दावन में बनवाये गये थे। अखैराम जी की इस उपलब्धि का वृत्त उनकी शिष्या सुश्री षुशालाबाई ने निम्नपंक्तियों में दिया है—

गुरु छौना के सिख अखैराम। हरि सुमिरत है आषैं जाम॥
जिनके द्वैत भाव नहिं होई। निरगुण सरगुण एकहि सोई॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत मंदिर हरि के बनवाये। जिनमें महाविष्णु पधराए ॥[1]

सुश्री पुशालाबाई ने केवल ७ मंदिरों के निर्माण का ही उल्लेख किया है, इससे अनुमान होता है कि उनके इस उल्लेख तक वृन्दावन का मंदिर नहीं बना था। संभवतः मंदिरों के निर्माण-क्रम में यह अंतिम मंदिर था। किस मंदिर में किस-किस देवता की प्रतिष्ठा हुई है, इसका भी विवरण पुशालाबाई ने दिया है।[2]

अखैराम जी एक विख्यात चिकित्सक थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि सवाई महाराज प्रतापसिंह को उन्होंने अपनी औषधि तथा चिकित्सा द्वारा ऐसे रोग से मुक्त किया था, जिसे अच्छे-अच्छे वैद्य और हकीम भी नहीं ठीक कर पाये थे। यह भी एक कारण था, जिससे प्रभावित होकर जयपुर नरेश ने उन्हें दो हजार रुपये की आमदनी का उक्त कोलीबाड़ा गाँव स्थायी रूप से दे दिया था। अपने दादा गुरु स्वामी चरणदास द्वारा प्रवर्त्तित शुक संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में श्री अखैराम जी का बहुत बड़ा योगदान है। राजस्थान के जयपुर, अलवर और भरतपुर की रियासतों में उनके अनुयायियों एवं शिष्यों की संख्या बहुत बड़ी थी। उनका प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर था। यहाँ तक कि जयपुर से आस-पास के अनेक मुसलमान भी उनसे प्रभावित थे। यद्यपि उनके बानाधारी विरक्त शिष्यों की संख्या शताधिक थी परन्तु उनमें भी संप्रदाय के विस्तार की दृष्टि से श्री चेतनदास, मोहनदास और ध्यानदास जैसे शिष्यों का विशेष महत्व है। इन तीनों शिष्यों की शिष्य-प्रशिष्य मंडली ने कुछ ही समय में लगभग २० स्थानों का निर्माण किया। साहित्य रचना में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है। इस परंपरा की कुछ गद्दियों में सिख संप्रदास के लोग ही महंत होते आये हैं। यह शुक संप्रदाय की सांप्रदायिक सहिष्णुता का प्रमाण है। इस संप्रदाय की उदारता, सहिष्णुता और विशालहृदयता प्रशंसनीय है।

कहते हैं कि उन्होंने अपने परलोकवास के पूर्व ही अपने शिष्यों से कह दिया

---

१. अखैराम जी की बानी : पृ० ३४८।

२. (१) कुलचाणा—सीता-राम की युगल मूर्त्ति।
(२) मालाखेड़ा—शालिग्राम जी की प्रतिमा।
(३) जिंदोली—चतुर्भुज भगवान की मूर्त्ति।
(४) मांचल—कूप और शिखर-सहित अटलविहारी जी की मूर्त्ति।
(५) देल्हावास—यहाँ गुरुछौना जी जी चरणपादुका ही प्रतिष्ठित है।
(६) अलवर—राधा-कृष्ण की युगलमूर्ति।
(७) जयपुर—जुगलविहारी जी (राधा-कृष्ण) की मूर्त्ति।
(८) वृन्दावन—चैनबिहारी जी का मंदिर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि उनका दाह-संस्कार नगर की सीमा के भीतर ही किया जाय, जो तत्कालीन राजकीय आदेश के विरुद्ध था।[1] उनके स्वर्गवास के सम्बन्ध में एक मान्यता यह भी है कि उन्होंने जीवित समाधि ली थी। इनकी समाधि जयपुर के खंडार के रास्ते पर मोतीकटला नामक मुहल्ले में इनके द्वारा निर्मित मंदिर के परिसर में ही बनी हुई है। इस मंदिर का निर्माण उन्होंने मिति वैसाख सुदी ३, बुधवार सं० १८५० वि० को पूर्ण किया था। इनके स्वर्गवास का अनुमानित काल सं० १८५८ वि० के आस-पास है। सं० १८६० वि० से इनके शिष्य महन्त चेतनदास की उपस्थिति विभिन्न मेलों के अभिलेखों में अंकित है। अतः अखैराम जी का निधनकाल सं० १८६० वि० के पूर्व ही माना जा सकता है।[2]

---

१. अखैराम जी को स्वामी चरणदास ने जयपुर महाराज की इच्छा के अनुसार उनको सत्संग का लाभ कराने के लिए जयपुर भेजा था। ये पूर्ण सिद्ध महात्मा थे। किंवदन्ती है कि अखैराम (अक्षयराम) जी की मित्रता फकीर खुदा रसीद उपनाम जियाउद्दीन से थी। दोनों नगर के अन्दर रहते थे। जयपुर राज्य का नियम था कि मुर्दे नगर की सीमा के भीतर गाड़े या जलाये नहीं जा सकते थे। श्री अखैराम ने जियाउद्दीन से बात-बात में कभी कह दिया था कि मर कर भी शहर के बाहर नहीं जाऊँगा। मौलवी साहब उनकी शक्ति पहचानते थे। बात वही हुई जो संत ने कही थी। उनके स्वर्गवास के उपरांत उनके मृतक शरीर को नगर के बाहर ले जाने का बड़ा प्रयास हुआ लेकिन वह टस से मस नहीं हुआ। यहाँ तक कि हाथी से खींचे जाने पर भी जब वह अपने स्थान से नहीं हिला तो लाचार होकर उनके शव को वहीं समाधि दी गई। कहते हैं कि जयपुर में बहुत दिनों से चले आ रहे नियम को मात्र अखैराम जी के लिए ही भंग करना पड़ा।

२. इस तथ्य की पुष्टि अखैराम जी के मित्र एवं सूफी फकीर जिकाउद्दीन साहब के वर्तमान उत्तराधिकारी श्री सैयद जैनुल आबेदीन साहब से भी हुई। श्री जिआउद्दीन साहब का जन्म हिजरी सन् ११५० (सन् १७३० ई०) में दिल्ली के पास स्थित गयासपुर खेड़ा गाँव में हुआ था। वे कादिरिया सिलसिले के सूफी फकीर थे। जयपुर में २७–२८ साल तक रहने के बाद हि० सन् १२३० (सन् १८१० ई०) में उनका इन्तकाल जयपुर में ही हुआ। वे एक पहुँचे हुए फकीर थे। जयपुर के राजवंश से उन्हें साल में दो बार दो-दो अशर्फियों के साथ मिठाई आदि की भेंट दी जाती थी। सं० १८५४ (सन् १७९७ ई०) में जयपुर के खंडार के रास्ते पर मोतीकटला गेट के बाहर इनका आवास निर्मित हुआ था। उनके भांजे हजरत गुलाम रसूल साहब उनके उत्तराधिकारी बने। उन्होंने 'फवायदे जिआई' और 'मीर आते जिआई' नामक ग्रंथों की रचना फारसी में की है। अखैराम जी से उनका घंटों सत्संग होता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुछौना जी से संबंधित गद्दियों का संप्रदाय को योगदान—

(१) माचल—नारनौल के निकट तहसील बैरोड़, जिला अलवर में स्थित माचल का थाँभा गुरुछौना जी का प्रधान थाँभा था। शेष स्थान इसके अन्तर्गत छोटे स्थान माने जाते थे। इनके शिष्य अखैराम जी प्रायः यहीं रहा करते थे। महन्त कन्हैया दास के समय अर्थात् संवत् १९५० वि० के आसपास इसके अन्तर्गत केवल चार ही स्थान थे, जो सं० १९७० वि० तक (महन्त सेवादास के समय में) बढ़कर १४ हो गए। अखैराम जी ने जिन आठ मंदिरों का निर्माण कराया था, उनमें से एक यहाँ भी था। महंत कन्हैयादास (सं० १९१५–१९५२ वि०) के समय में यहाँ की गद्दी की व्यवस्था प्रायः जयपुर से ही होने लगी थी, क्योंकि वे अधिकांशतः जयपुर में ही रहते थे। इस परम्परा की अब तक की यही स्थिति बनी हुई है। यहाँ की महंत परम्परा इस प्रकार है—

गुरुछौना जी—(सं० १७८०–१८५० वि०)—अखैरामदास जी (सं० १८३०–१८६० वि०)—चेतनदासजी[1] (सं० १८६०–१९०० वि०)—शीतलदास जी (सं० १९००–१९१५ वि०)—कन्हैयादास जी (सं० १९१५–१९५२ वि०)—सेवादास जी (सं० १९५२–१९७२ वि०)—द्वारकादास जी (सं० १९७२–२०२१ वि०) आगे का क्रम जयपुर की गद्दी के साथ द्रष्टव्य।

(२) जयपुर—आरम्भ में यह माचल के अन्तर्गत छोटा थाँभा था। अखैराम जी के शिष्य महंत चेतनदास जी ने इस गद्दी को व्यवस्थित किया। महन्त कन्हैयादास तथा उनकी शिष्य परम्परा ने सं० १९०० वि० के बाद जयपुर को ही अपना केन्द्र बनाया। जयपुर नरेशों के यहाँ इन लोगों का बड़ा सम्मान था और आर्थिक सहायता भी अच्छी मिल रही थी। उन्हें यहाँ से बड़ी-बड़ी जागीरें मिली हुई थीं। माचल में उतनी सम्पत्ति और सुविधा नहीं थी।

महंत अखैराम यहाँ खंड़ार के रास्ते में मोतीकटला नामक स्थान में मठ बनाकर रहते थे और उनका देहान्त भी यहीं हुआ। ज्ञातव्य है कि जयपुर और माचल की परंपरा सं० १९४० वि० तक तो साथ-साथ चलती रही परन्तु उसके बाद महंत कन्हैयादास के प्रभावशाली शिष्य सेवादास के समय से जयपुर को ही सर्वाधिक प्राधान्य मिला। म० कन्हैयादास जी के वरिष्ठ शिष्य श्री हरभजनदास संभवतः कन्हैयादास के देहान्त से साल-दो साल बाद ही परलोकगत हो गए थे। क्योंकि महंतपद पर उनके स्थान पर सेवादास का ही प्रभुत्व रहा। वे सं० १९५२ वि० में महंत हुए और लगभग सं० १९७० वि० तक तो अवश्य ही महंत बने रहे। उनके बाद उनके शिष्य द्वारकादास जी महंत हुए। उनका परलोकवास सं० २०२१ वि०

१. चेतनदास जी के शिष्य शीतलदास जी ने जयपुर में और श्री हंसदास ने झींद में गद्दी स्थापित की।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हुआ और उनके शिष्य व्रजदास जी वर्तमान महंत हैं। इस स्थान की शिष्य परंपरा में मतभेद एक मान्यता के अनुसार यह इस प्रकार है। अखैरामदास जी—संतोषदास जी—प्रियादास जी—विहारीदास जी—कन्हैयादास (माचल और जयपुर की संयुक्त गद्दी के महंत)—सेवादास जी—द्वारकादास जी (सं० १९७२-२०२१ वि०)—व्रजदास जी (सं० २०२३ वि०—वर्तमान)।

अखैराम जी की माचल और जयपुर की संयुक्त शिष्य परंपरा—

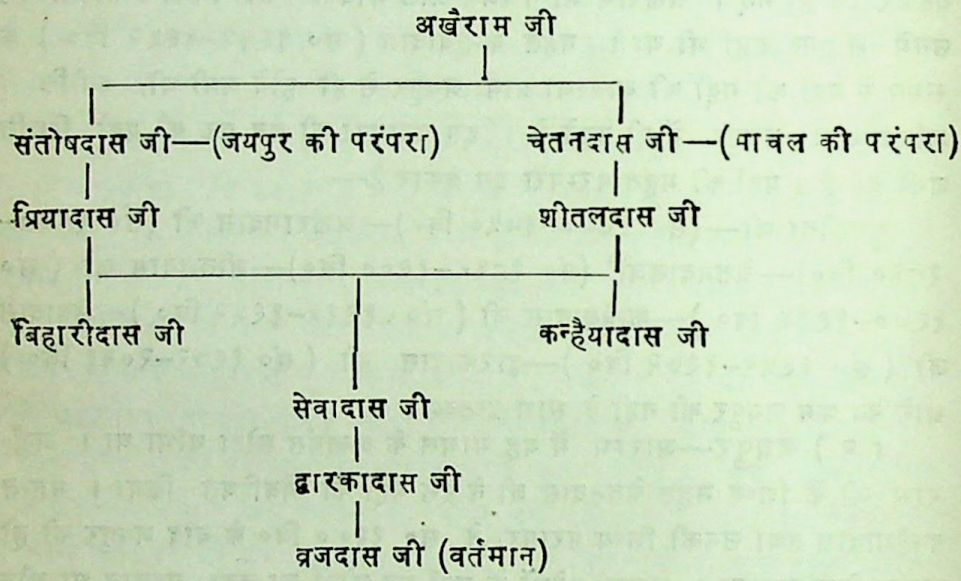

(३) रोड़ी—(तहसील—सिरसा, जिला—सिरसा, हरियाणा, निकट मानसा मंडी) श्री अखैरामदास के शिष्य श्री मोहनदास यहां स्थान बनाकर रहा करते थे। वे अच्छे महात्मा और कवि थे। इनके कई योग्य शिष्यों ने स्वतंत्र गद्दियाँ स्थापित की थीं, जिनमें बद्रीदास जी ने झंडूकी में, श्री शार्दूलसिंह ने डेरा शार्दूल सिंह में, बाबा ध्यानदास ने बालावाली में और श्री अमरदास ने रोड़ी में स्थान-निर्माण किया था। इस प्रकार रोड़ी की परंपरा को अमरदास जी से ही मानना चाहिए। अमरदास जी सं० १९२० वि० तक वर्तमान थे। ये भी सिद्ध महात्मा थे। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि इन्होंने जीवित समाधि ली थी। इनके एक शिष्य श्री बालकदास ने बालावाली में बाबा ध्यानदास से अलग एक स्थान निर्मित किया था।[1] उनकी समाधि भदेचे (निकट मालेरकोटला में) बनी हुई है। ये सं० १९१९ वि०

---

१. रोड़ी, झंडूकी, बालावाली और डेरा शार्दूलसिंह आदि गद्दियों का कार्यक्षेत्र मुख्यतः सिख सम्प्रदाय के बीच में था। इनके महन्त भी प्रायः सिख ही हुआ करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मेले में आए थे। इनके शिष्य जानकीदास ने जी सं० १९१५ वि० (सन् १८५७ ई०) के गदर में अंग्रेजों की बड़ी सहायता की थी, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों से उन्हें कई गाँव भेंट में मिले थे। इनके शिष्य विशुद्धानन्द प्रायः चक नं० ६०, लायलपुर में रहा करते थे, जो इनके गुरु को जागीर में प्राप्त हुआ था। अपने गुरु की भाँति इनका भी तत्कालीन पंजाब की रियासतों में और दिल्ली के अंग्रेजी शासकों में सम्मान था। इससे उनका स्थान समृद्ध भी हो गया था। यहाँ की परंपरा इस प्रकार मिलती है :—अखैराम जी—मोहनदास जी (सं० १९१० वि० तक)—अमरदास जी (सं० १९१०–१९२० वि०)—जानकीदास जी (सं० १९२०–१९६० वि०)—विशुद्धानन्द जी[1] (सं० १९६०–१९८३ वि०)—रामजीदास (सं० १९८३–२०२२ वि०)—सहदेवदास जी (सं० २०२२ वि०—वर्तमान) अब यह गृहस्थी गद्दी हो गयी है।

श्री विशुद्धानन्द जी के एक अन्य शिष्य पं० विश्वेश्वरानन्द ने अपना स्वतंत्र स्थान मुकाम—बीझ बायलां (तहसील—पदमपुर, जिला—गंगानगर, राज०) में स्थापित किया था। यहाँ की शिष्य परंपरा निम्नवत् है—

पं० विश्वेश्वरानन्द
- स्वामी मुक्तानन्द
  - सदानन्द जी (वर्तमान)
    - सेवानन्द
    - स्वरूपानन्द
- स्वामी विश्वम्भरानन्द

सदानन्द जी ने बीझ-बायलां से हटकर कोलायत (गऊ घाट के पास, श्री कोलायत जी, जिला—बीकानेर) में अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया है। यहाँ चरणदासियों की एक धर्मशाला भी बनी हुई है।

(४) झंडूकी—यह भटिंडा जिले के बालावाली थाने के अन्तर्गत एक गाँव है, जो भटिंडा स्टेशन से कोई १० मील की दूरी पर तथा मानसा मण्डी के निकट है। यहाँ अखैराम जी प्रायः रहा करते थे। इनके शिष्य मोहनदास जी के शिष्य बद्रीदास जी ने इस स्थान को पर्याप्त सम्पन्न बनाया। अब यह गृहस्थ गद्दी हो

---

१. 'महन्त विशुद्धानन्द जी बड़े विद्वान् एवं सत्पुरुष थे और इनको दरबार में कुर्सी मिलती थी।' द्रष्टव्य 'गुरुभक्तिप्रकाश' की भूमिका पृ० ३। इनका परलोकवास चैत्र कृष्ण १, सं० १९८३ वि० को फिरोजपुर शहर के मंगल आश्रम में हुआ था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी है। महन्त सेवादास के समय में इसके चार अन्य स्थान भी थे। ये बड़े ही सम्मानित और योग्य महात्मा थे। यहाँ की शिष्य परम्परा निम्नलिलित है—

मोहनदास जी—बद्रीदास जी (सं० १९१०–१९४२ वि०)—गोपीदास जी (सं० १९४२–१९४५ वि०)—सेवादास जी (वि० १९४४–१९८० वि०)—गोविन्द-दास[1] (सं० १९८०–२०२० वि०)—रामदयाल जी (दयालदास, गृहस्थ—स्वर्गीय) (सं० २०२१–२०२८ वि०)—विमलवीर दास (विमलबीर सिंह) उत्तरा-धिकारी।

इस थांभे की एक विशेषता यह है कि यहाँ के महन्तगण प्रायः सभी मेलों में सम्मिलित हुए हैं। इस गद्दी की वर्तमान स्थिति यह है कि श्री दयालदास की पत्नी श्रीमती गुरिन्दर कौर ने इसे सिख गद्दी के रूप में परिवर्तित कर दिया है। ये स्वयं भी सिख परिवार की कन्या हैं। ये बी० ए० तक पढ़ी हुई हैं और सम्प्रति महन्तानी के रूप में गद्दी की प्रचुर सम्पत्ति की मालकिन हैं। इनके लड़के श्री विमलदास सम्भवतः अभी छात्रावस्था में हैं।

(५) डेराशार्दूल सिंह (थाना—डागरू, तह० मोगा, जिला फरीदकोट)—इसका एक नाम डेरावाली भी मिलता है। यह स्थान मोहनदास के छोटे भाई श्री शार्दूलसिंह द्वारा स्थापित किया गया था। उनके विषय में प्रसिद्ध है कि अपने विवाह का मङ्गल सूत्र तोड़कर उन्होंने अखैराम जी से दीक्षा ले ली थी और तब भी सिख वेश में ही रहते थे। महाराज रणजीतसिंह उनका बड़ा सम्मान करते थे। सिखों में उन्होंने ज्ञान और भक्ति का खूब प्रचार किया। यहाँ के महन्त चरणदासी महात्माओं की गद्दीनशीनी या सत्रहवीं में कभी भी उपस्थित नहीं हुए। इससे अनुमान होता है कि आलोच्य सम्प्रदाय में इस स्थान को मान्यता नहीं मिली थी। शार्दूलसिंह जी के शिष्य श्री यज्ञसिंह और प्रशिष्य गोपाल सिंह (सं० १९६० वि०) तक ही यह परम्परा चली। आगे चलकर सम्भवतः यह थांभा व्यक्तिगत स्थान हो गया।

(६) बालावाली (चक—जैमलासिंह, जिला—भटिंडा)—अखैराम जी के शिष्य श्री अमरदास ने यहाँ अपना स्थान बनाया था। यहाँ दो स्थान अखैराम

---

१. महन्त गोविंददास बद्रीदास जी के शिष्य न होकर मोहनदास जी के एक अन्य शिष्य खूबदास जी के शिष्य थे। खूबदास जी सम्भवतः कहीं के महन्त नहीं थे। या यदि महन्त रहे भी होंगे तो पंजाब में ही किसी स्थान के होंगे। इसलिए उनका नाम महन्त रूप में नहीं मिलता। ज्ञातव्य है कि सं० १९५० वि० के पश्चात् गोविंददास जी रावड़की (अलवर) में चले गये थे और वहाँ सं० १९७० वि० तक वर्तमान रहे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अन्य शिष्य ध्यानदास जी भी थे। इसे म० गोविंददास ने समृद्ध किया। ध्यानदास की दूसरी परम्परा तखतमल में स्थापित हुई थी। बाबा ध्यानदास की दो गद्दियाँ और अमरदास जी की रोड़ी की गद्दी की शिष्य परम्पराएँ क्रमशः निम्नलिखित हैं—

(क) ध्यानदास की जी शिष्य परम्परा[1] (सं० १८७० से १९१० वि० तक)

- चन्दन सिंह (सं० १९३० वि० तक)
  - चेतसिंह (सं० १९५० वि० तक वर्तमान) (यहाँ से महन्त प्रकाशानन्द सं० १९८३ वि० के मेले में आये थे)
- गोविंददास (सं० १९१०–१९४० वि०)
  - माणिकदास (सं० १९४०–१९५५ वि०)
    - रामसरनदास[2] (सं० १९५५–१९६१ वि०)
      - बीसनदास (सं० १९६१–१९६५ वि० तक)

(ख) ध्यानदास जी की द्वितीय परम्परा—

- चन्दन सिंह
- गोविंददास
- आत्माराम
  - द्रष्टव्य तखतमल का थाँभा (सं० १८५०–१९२० वि०)

---

१. ध्यानदास जी के शिष्य आत्माराम जी ने अपना स्वतन्त्र स्थान तखतमल में स्थापित किया था। बाबा गोविंददास ने अपने जीवनकाल में ही (सं० १९४० वि० में) श्री माणिकदास को महन्त पद दे दिया और स्वयं सं० १९५० वि० तक झण्डूकी में ही रहे।

२. महन्त रामसरनदास अच्छे महात्मा थे। उन्होंने बम्बई से अनेक पुस्तकों का प्रकाशन कराया और 'सुखदेव चरनदासीय' नामक एक धर्मशाला कनखल में बनवाई है। इनकी बानियों का एक संग्रह सरसकुंज—जयपुर में है। कनखल की धर्मशाला को चरनदास की हवेली के नाम से जानते हैं। अब यह धर्मशाला नहीं है। सम्प्रति यह झण्डूकी के स्वर्गीय महन्त श्री रामदयाल की पत्नी श्रीमती गुरिन्दर कौर की व्यक्तिगत सम्पत्ति के समान है। इसमें कई किरायेदार रहते हैं। अब चरणदासी महात्मा यहाँ नहीं ठहरते। इस धर्मशाला के मुख्य द्वार पर जो प्रस्तर लगा है, उस पर इसका निर्माण वर्ष सं० १९५८ अङ्कित है और श्री रामसरनदास तथा हीरालाल भार्गव (जयपुर वाले) का नाम भी खुदा हुआ है। इस हवेली के अन्दर चरनदास की छतरी और पादुका बनी हुई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२–अमरदास (रोड़ीवाले की परम्परा) ।
|
बालकदास (सं० १९२५ वि० तक)
|
कल्याणदास (सम्भवतः सं० १९३५ वि० तक)
|
जयरामदास[1] (सं० २००५ वि० तक जीवित)

(७) तखतमल का थांभा (थाना रोड़ी, तह० सिरसा, जिला सिरसा, हरियाणा)—यह भूतपूर्व पटियाला रियासत में स्थित कालावाली स्टेशन के पास का स्थान है। यहाँ अखैराम जी के शिष्य ध्यानदास जी का थांभा था। यहाँ की परम्परा इस प्रकार है :—अखैराम जी—ध्यानदास जी (सं० १८७०–१९१० वि०)—आत्माराम जी (सं० १९१०–१९४०वि०)—पूर्णानन्द जी (सं० १९४०–१९४४ वि०)—म० मङ्गलदास[2] (सं० १९४४–१९७० वि०)—रोनकी राम (सं० १९७०–२००० वि०)—सहदेवदास जी (सं० २००० वि० में वर्तमान) पश्चात् गृहस्थ गद्दी।

(८) झींद (खाश)—यहाँ के कानूनगो के मुहल्ले में गुरुछौना जी के शिष्य-प्रशिष्यों ने दो-तीन थांभे स्थापित किए थे। अखैराम जी के शिष्य चेतनदास जी और उनके शिष्य हंसदास जी से यहाँ की परम्परा चलती है। अखैराम जी ने यहाँ एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया था। हंसदास जी सं० १९१९ वि० में यहाँ की गद्दी पर आए। यहाँ सं० १९४० वि० से १९६५ तक केसोदास जी महन्त रहे। उनके बाद जमुनादास सं० २००० वि० तक बने रहे। जमुनादास जी के शिष्य चुनीदास के शिष्य हरिदास जी गृहस्थ हो गए हैं, तथापि यह स्थान अभी तक बना हुआ है। शिष्य परम्परा का क्रम इस प्रकार मिलता है—

श्री अखैराम—चेतनदास जी (सं० १८६०–१९०० वि०)—हंसदास जी (सं० १९००–१९४५ वि०)—केसीदास जी (सं० १९१०–१९६५ वि०)—जमुनादास[3] (सं० १९६५–१९९० वि०)—चुनीदास जी (सं० १९९०–२०१५ वि०)—हरीदास जी (गृहस्थ—(सं० २०१५ वि० वर्तमान)।

(९) दिल्ली—यहाँ के सीताराम बाजार में छौना जी का एक स्थान था।

---

१. महन्त जयरामदास सं० २००५ वि० में ९५ वर्ष की अवस्था में परलोकगत हुए। इस परम्परा के लोग मेलों में नहीं जाते थे।

२. श्री मङ्गलदास जी के लिए हीरालाल जी भार्गव की उक्ति है :—आप सभाजीत, पण्डित, ब्रह्मज्ञानी एक ही हैं। पंजाब के सन्त महन्त अक्सर आपके इरादतमन्द हैं। —गुरुभक्तिप्रकाश : भूमिका, पृ० ३।

३. जमुनादास जी के समय में यहाँ दो अन्य थांभे भी थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबा मोहनदास (अखैराम के शिष्य) के शिष्य अमरदास जी सं० १९१९ वि० के मेले में आये थे। वे उस समय इसी स्थान से गये थे क्योंकि उनका यही पता मेले के अभिलेख में लिखा हुआ है। उन्हीं के शिष्य श्री बालकदास ने आगे चलकर बालावाली में अपना स्वतन्त्र स्थान बनाया। सीताराम बाजार (दिल्ली में) स्थित छौना जी के थाँभे की तथा पटियाला के थाँभे की शिष्य-परम्परा नहीं मिल रही है। लाडुआ की भी यही स्थिति है। अखैराम जी ने जिन अन्य स्थानों पर मन्दिर-निर्माण कराया था, वहाँ थाँभा भी स्थापित किया था या नहीं; इस विषय में पुष्ट प्रमाण नहीं हैं। उन्होंने अलवर शहर में देहली दरवाजा के पास और उसके निकट के कुलचाणा और मालाखेड़ा के पृथ्वीपुरा में भी मन्दिर बनवाया था। वृन्दावन का चैन बिहारी जी का मन्दिर भी उन्हीं का है। जिंदली के मन्दिर के साथ थाँभा भी था, क्योंकि यहाँ से सं० १९३० वि० में श्री हंसदास एक मेले में गये थे। संगरूर खास और समीपस्थ सुनाम में भी इस परम्परा के स्थान थे। सं० १९४२ वि० में झींद के महंत केशवदास यहाँ रहते थे। सुनाम की गद्दी गृहस्थ गद्दी के रूप में चल रही है और रोड़ी वाले महंत श्री सहदेवदास यहाँ की सम्पत्ति की भी देख भाल करते रहे हैं।

(१०) भूधड़-(तह० एवं थाना बरनाला, जिला संगरूर) —यह सुनाम के आसपास का कोई स्थान है। यहाँ से सं० १९५८ वि० में महंत माधोदास जी और सं० १९६८ से १९८३ वि० के बीच ब्रह्मदास जी मेलों में पधारे थे। आरम्भ में यह संगरूर स्थित गोसाईं जुगतानन्दजी के थाँभे से सम्बद्ध रहा होगा जो आगे चलकर अखैराम जी के थाँभे से मिल गया। सुनाम नगर में भी चरणदासियों के दो-तीन स्थान निर्मित हुए थे। कुछ दिनों पूर्व तक सुनाम (जिला-संगरूर) के नगरपालिका भवन के पास महन्त भक्तानन्द जी रहा करते थे। इनके मन्दिर का नाम 'मन्दिर श्री चरणदास जी' के नाम से जाना जाता था।

(११) दहलियावास – यह रीवाड़ी तहसील के आस-पास का कोई स्थान है जहाँ अखैराम जी ने एक मन्दिर बनवाकर स्थान-निर्माण किया था। यहाँ की व्यवस्था माचल से ही होती थी पर ऐसा लगता है कि सं० १९१९–१९४१ वि० के बीच अखैराम जी के शिष्य श्री सन्तोषदास के शिष्य श्री विहारीदास जयपुर, दरियापुर और यहाँ घूम-फिर कर रहा करते थे। सम्भवतः वे यहाँ के स्वतन्त्र महंत ही बना दिये गये थे।[1]

---

१. महंत विहारीदास के शिष्य श्री कुंवरसिंह द्वारा रचित पदों का संग्रह बानी के नाम से तथा कई अन्य ग्रंथों की पांडुलिपियाँ गामड़ी में प्राप्त हैं। ये उच्चकोटि के कवि बताये जाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) दरियापुर (तह० सिकन्दराबाद, जिला बुलन्दशहर)— संभवतः यहाँ महंत शीतलदास ने ही स्थान-निर्माण किया था। सं० १९५२ से १९८० वि० तक यहाँ की गद्दी पर रामस्वरूपदास जी महंत पद पर रहे। उनके उपरान्त यह गृहस्थ गद्दी के अन्तर्गत आ गया।

(१३) वृन्दावन— यहाँ के जुगलघाट पर चैनविहारी जी का मन्दिर अखैराम जी द्वारा निर्मित कराया गया था। अखैराम जी के शिष्य मोहनदास जी के प्रशिष्य गोविन्ददास अधिकांशतः वृन्दावन (व्यासघेरा, सेवाकुंज) में ही रहते थे। वहाँ वे सं० १९२० से १९५२ वि० तक रहे। इसके बाद प्रियादास जी (अखैराम जी के अन्य प्रशिष्य) सं० १९८० वि० तक वहाँ रहे। श्रीरूपमाधुरीशरण जी अधिकांशतः वहीं रहते थे। कोकिला बाई जी भी यहीं रहा करती थीं। परन्तु यह परम्परा गुरुछौना जी या उनके शिष्य-प्रशिष्यों की नहीं है। केवल उनका मन्दिर मात्र यहाँ था। श्री हीरालाल भार्गव (अलवेलीशरण) इसी परम्परा के शिष्य थे।[1]

(१४) अलवर—यहाँ देहली दरवाजे के पास अखैराम जी ने एक मंदिर का निर्माण कराया था। महंत रामदास जी (अखैराम जी के प्रशिष्य) सं० १९३० वि० में यहाँ के एक मेले में उपस्थित हुए थे। अनुमान है कि यह थाँभा आगे नहीं चला। सम्भवतः रामदास जी सं० १९३० वि० के बाद मालाखेड़ा के पृथ्वीपुरा नामक स्थान में रहने लगे।

(१५) पृथ्वीपुरा—(तहसील—मालाखेड़ा, जि० अलवर)—इसके पृथ्वीपुरा नामक स्थान में यहाँ के महन्त रामुदास जी सं० १९३९ से १९५७ वि० के

---

१. हीरालाल भार्गव, हरिसम्बन्धी नाम अलवेलीशरण जी एक अच्छे कवि, साधक और अपने सम्प्रदाय के उद्धारक के रूप में स्मरण किये जाते हैं। 'मुक्तिमार्ग' और 'गुरुभक्तिप्रकाश' (दोनों स्वामी रामरूप की कृतियाँ) के प्रकाशन की सर्वप्रथम व्यवस्था करने वाले और उनकी विस्तृत भूमिका के लेखक आप ही हैं। उन्होंने भूमिका में सन् १९०५ ई० के आस-पास की अपने सम्प्रदाय की स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला है। इनका स्वर्गवास २५ अगस्त, सन् १९३१ ई० को प्रातः ८॥ बजे हुआ था। इन्होंने अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार दी है—

अखैराम—चेतनदास—भगवानदास—मोहनदास—खूबदास—गोविन्ददास—अलवेलीशरण। 'हिन्दू धर्म दिवाकर' और 'तकरीर दिल पंजीर' नामक इनके दो ग्रन्थ प्रकाशित हैं। भार्गवों की वार्षिक स्मारिका (पत्रिका) के ये बहुत दिनों तक सम्पादक रहे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच और गरीबदास जी सं० १९६५ से १९७८ वि० की अवधि में आयोजित विभिन्न मेलों में आए थे। अनुमानतः ये वही रामुदास हैं जो सं० १९३० वि० में अलवर से आये थे। ये सम्भवतः अखैराम जी के शिष्य म० चेतनदास के शिष्य थे।

(१६) रावड़की—मेलों की बहियों में इसका तहसील टपुकड़ा लिखा गया है और इसे अलवर राज्य के अन्तर्गत बताया गया है। इसका सर्वप्रथम नामोल्लेख सं० १९३६ वि० के मेले में उपस्थित थाँभों की सूची में आया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि श्री अखैराम के किसी प्रशिष्य का यह स्थान था। यहाँ सं० १९३९–१९५० वि० के बीच श्री सन्तदास महन्त थे। उनके पश्चात् सं०१९५० से १९७० वि० के बीच श्री गोविन्ददास[1] और उनके पश्चात् मंगलदास जी यहाँ महन्त पद पर वर्तमान थे।

गुरुछौना जी और उनकी शिष्य-परम्परा का साहित्य—

(१) गुरुछौना जी—षट्रूप-मोक्ष' या 'षट्रूप गुरु चेले की गोष्ठ' नामक इनका यह ग्रंथ इस सम्प्रदाय में पर्याप्त प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'बानी' नामक संग्रह में इनकी १०१ स्फुट बानियाँ भी प्राप्त होती हैं। इनके ये दोनों ग्रंथ जयपुर स्थित अखैरामदास जी के मन्दिर में सुरक्षित 'अखैराम की वाणी' या 'अखैसागर' (४०० पृष्ठों की पांडुलिपि) में संकलित हैं। इनका 'षट्रूप-मोक्ष' केवल ९ पन्नों (१८ पृष्ठों) का ग्रंथ है। इसका रचनाकाल सं० १८४५ वि० है।

इसी संग्रह ग्रंथ में अखैराम सहित गुरुछौना जी तथा अखैराम के प्रायः सभी शिष्यों की बानियाँ संकलित हैं। इनका 'षट्रूप-मोक्ष' उक्त संग्रह के प्रारम्भ के ९ पत्रों में तथा 'शब्द' उसके पृष्ठ सं० ३ ६ से ३७८ के बीच समाविष्ट हैं।

(क) षट्रूप-मोक्ष—इसकी रचना गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में (गुरुछौना जी और चरणदास जी के संवाद के रूप में) हुई है। आरम्भ के १८ श्लोकों में संस्कृत-भाषा में 'महापुरुषस्तोत्र' का समावेश है। इसकी भाषा प्रौढ़ और प्रांजल है। स्तोत्र के उपरांत शिष्य ने गुरु, ब्रह्म के स्वरूप, जीव, जगत्, माया और मुक्ति के प्रकार तथा स्वरूप आदि पर प्रश्न पूछे हैं, जिनका उत्तर गुरु की ओर से दिया गया है। इसमें गुरुछौना जी ने छः प्रकार की मुक्तियों की विशेषरूप से चर्चा की है, जब कि मुख्यतः चार प्रकार की मुक्तियों का ही वर्णन मिलता है। गुरुछौना जी ने जिन छः मुक्तियों का स्वरूप-विवेचन किया है, वे हैं—(१) सारूप्य, (२) सामीप्य, (३) सालोक्य, (४) सायुज्य, (५) विदेह और (६) जीवन्मुक्ति। छः प्रकार की मुक्तियों का स्वरूप-निरूपण होने के कारण ही इस कृति का नाम

---

१. सम्भवतः झंडूकी वाले गोविन्ददास ही सं० १९५० वि के पश्चात् यहाँ आ गये होंगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'षट्रूप-मोक्ष' है। इसकी रचना मुख्यतः चौपाई-दोहों में हुई है। साधना के क्षेत्र में छौना जी किसी भेदभाव को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। इस बात को ध्वनित करते हुए वे कहते हैं :—

राव रंक सब एक से, नारि पुरुष सब एक।
जैसे माटी एक ही, बासन भये अनेक ॥[1]

ज्ञान, योग और भक्ति की विधिवत कठोर साधना तथा तज्जनित सिद्धियों की प्राप्ति आसान काम नही है। यह प्रभूत अभ्यास, त्याग, श्रम और सापेक्ष है। इसके लिए साधक को कई सीढ़ियाँ पार करनी पड़ती हैं, यथा (१) ब्रह्मज्ञान का उपदेश-ग्रहण (२) सद्गुरु की कृपा (३) ब्रह्मानन्दमय जीवन-यापन और (४) ब्रह्ममय होना।[2] अन्य सन्त कवियों की भाँति ही गुरुछौना जी ने नाम-जप को साधना का मूलमंत्र घोषित करते हुए कहा है—

होय जाप तप नाम बिन, सभी अफल हो जाहिं।
फल सेंवल को सेय करि, कहा निकासै माहिं ॥
नाम लिए पातग मिटै, पहुँचै हरि के देश।
छौना कै गिरही जपो, कै अतीत कै भेस ॥[3]

(ख) छौना जी की बानी— यह २२ पत्रों अर्थात् ४४ पृष्ठों की रचना है। पाण्डुलिपि का आकार ८" × ११" है। इन बानियों के आधार पर कहा जा सकता है कि ये एक मस्तमौला और ज्ञानी पुरुष थे। इनकी बानियों में कबीर की सी मस्ती सर्वत्र मिलती है। इनके कुछ दोहे और पद कृष्णलीला-गान से भी संबद्ध हैं। लीलागान सम्बन्धी पदों में भाषा का प्रवाह और उसका प्राञ्जल प्रयोग प्रशंसनीय है। इनका एक सन्त बानी की शैली का पद द्रष्टव्य है—

मनुवा चल बस गुरु के देसा।
जितके गये बहुरि नहिं आवै पाप पुण्य नहिं लेसा ॥
पाँच तत्त तीनों गुन नाहीं जहाँ अलख का बासा।
काल जाल उपजै नहिं बिनसै ना ह्वाँ साहब दासा ॥
पूरन ब्रह्म अखंड अगोचर निराकार निरबाना।
गुरु कृपा सों सगुरे पहुँचै समझै संत सुजाना ॥
अमर होय वा देस बसै सो जात बरन ना कोई।

---

१. षटरूप-मोक्ष- (अखैराम जी की वाणी, पांडुलिपि-जयपुर) पत्र सं० ३।
२. पहले ब्रह्म ज्ञान कू पावै, दूजे सतगुरु ब्रह्म लखावै। वही : पत्र सं० ४।
३. वही : दोहा सं० ३३–३४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरनदास ने किरपा कीनी परमातम दरसाया।
गुरु छौना ने आपा बिसरचा सुन्न सरोवर छाया ॥[1]

इन्होंने अपने वैराग्य का कारण बताते हुए सामाजिक सम्बन्धों को स्वार्थ-परता को ही मूल कारण बताया है—

छौना छाँड़ै जगत कौ, राम सुमिरि सुख लेइ।
कुटुम्ब मित्र तेरे नहीं, जार करैंगे पेइ ॥[2]

छौना जी के शब्दों के संग्रहकर्त्ता ने अथवा स्वयं उन्होंने ही शब्दों का संग्रह रागानुसार किया है। एक राग में निबद्ध पद एक ही साथ संगृहीत हैं और अन्त में १६ दोहे हैं। इससे सबसे बड़ी सुविधा यह हो गई है कि प्रत्येक राग-ताल के पद कितने हैं, इसे सूचीबद्ध करना आसान हो गया है। उदाहरण के रूप में इसकी एक तालिका नीचे दी जा रही है—

१. राग आरती	—	१ पद	१०. राग खयाल	—	३ पद
२. राग भैरो	—	१ ,,	११. राग बिहागड़ा	—	१२ ,,
३. राग भोग	—	१ ,,	१२. राग कल्यान	—	५ ,,
४. राग सोरठ	—	१७ ,,	१३. राग परज	—	६ ,,
५. राग होली धनाश्री	—	१६ ,,	१४. राग मंगल	—	२ ,,
६. राग बसन्त	—	३ ,,	१५. राग मलार	—	१ ,,
७. राग बिलावल	—	५ ,,	१६. राग काफी	—	३ ,,
८. राग सोठना	—	३ ,,	१७. राग ललित	—	३ ,,
९. राग सारंग	—	३ ,,			

इनके अतिरिक्त राग जैजैवन्ती, रामकली और हेली—इन तीनों रागों के तीन-तीन पद और राग माँझ के १ पद को जोड़कर कुल पदों की संख्या १०१ होती है।

यहाँ छौना जी के 'शब्द' में समाविष्ट पदों का मूल्यांकन उनकी संगीतात्मकता की कसौटी पर करना उद्देश्य नहीं है। वरन् केवल पदों की गणना और राग की दृष्टि से उनकी श्रेणीबद्धता की नवीन पद्धति की ओर ध्यान दिलाना ही इष्ट है। इस पद्धति पर पदों का संग्रह प्रायः देखने को नहीं मिलता।

छौना जी के अधिकांश पद योग, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और चेतावनी आदि से संबद्ध विचारों की अभिव्यक्तियों के वाहक हैं। बीच-बीच में श्रीकृष्ण के प्रति भी कवि का प्रेमोद्गार व्यक्त हुआ है। छौना जी ने राम और कृष्ण के निर्गुण रूप का ही अधिक स्मरण किया है। अपने अन्य गुरु भाइयों भी भाँति उन्होंने लीला-

---

१. बानी : शब्द सं० ७।
२ वही : अन्तिम दोहा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गान में अधिक रुचि-प्रदर्शन नहीं किया है। श्रीकृष्ण के सगुण रूप का जहाँ कोई चित्र आया भी है वह भी उतना लीलापरक नहीं है, जितना कि चरणदास जी सहित इस सम्प्रदाय के अन्य कवियों की रचनाओं में मिलता है। इसके द्वारा अपवाद-रूप में रचित लीला-गान का एक संवादात्मक पद इस प्रकार है—

राग बिलावल—मोरी मटकी छांड़ि कन्हाई।

काहे खैंचत मोरे करतें आजहि नई मँगाई॥
नाहिं कछू या माहिं सलौना और कछु नाहिं मिठाई।
छींक भई जब घर तें निकसी तैं कहा रार मचाई॥
दधि को दान देउ जब ग्वारन तब तुम जाने पाई।
ना तो दही लूटि सब जैहैं ग्वारन देउँ सिषाई॥
कहाँ को दान लगायो मोहन कहाँ पाई ठकुराई।
जो कहुँ कंस राय सुन पावे निकस जाय चतुराई॥
को है कंस वंस काके सो जाकी करत बड़ाई।
छिन में मारि निकासों पुर ते बृज की करौं सहाई॥
इतनी सुनत बलैया लेकर ग्वारन सनमुष आई।
मगन होय कर दान दियो जब सुनी बात मन भाई॥
धन बृज मंडल नंद महर धन धन्य जसोदा माई।
चरणदास जित हरि परगट हुवे छौना के सुख दाई॥[1]

इसी प्रकार 'मेरा मन हरि लिया जी गोपाल,' 'मेरा मन नंदलाल सों अँदक्यो' और 'सुन्दर स्याम गोपाल बिना कैसे रहौं' जैसी पंक्तियों से आरंभ होने वाले ८-१० पदों को छोड़कर शेष सब निर्गुण बानी की पद्धति का अनुसरण करने वाले पद हैं। छौना जी की दृष्टि में राम और कृष्ण-दोनों परात्पर ब्रह्म हैं, तथापि कृष्ण का सगुण रूप छौना जी के साहित्य में राम के सगुण रूप की अपेक्षा कुछ अधिक स्पष्ट है। छौना जी के राम तो सर्वथा निर्गुण हैं। अतः राम से जहाँ प्रेम करने की बात आई है, वहाँ कबीर और दादू की भाँति उन्होंने भी निर्गुण वाणी की शैली अपनाई है। यथा—

राम बिना तेरा कोई न साथी छांड़ि देउ सब आन धरम।
गुरू छौना के चित विच साहब भेदी होय सो पावे मरम॥[2]

यों तो छौना जी के अधिकांश पद निर्गुण बानी की अनुकृति हैं, परन्तु उनमें भी 'बसंत,' 'फाग' या 'होली' रागों में रचित पद अधिक निर्गुणात्मक हैं। ऐसे पद प्रायः प्रतीकात्मक हैं। इनकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

---

१. शब्द : पत्र सं० ९२।
२. वही : पत्र सं० ९७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिया संग होली खेल सखी री ।
सील छिमा को रंग लगाकर भर्म अबीर उड़ाव सखी री ।।...

अथवा

होरी खेलत रोकें पाँच जना ।
काम क्रोध और लोभ मोह भै निस वासर मोहैं करत मना ।।[1]

'साधो सहज समाधि लगाई,' 'साधो अजब तमासा देखा,' 'नगरियाँ बावरी रे साधो कौई बसै सो बौरा होय,' 'संतों राम भजै सो सूरा'—जैसे वाक्यों से आरम्भ होनेवाले पदों पर तो सीधे-सीधे कबीर, दादू आदि संत कवियों का प्रभाव परिलक्षित होता है । इसी प्रकार—

'पी मो में मैं पी में री सजनी निहवै सुरति पगी ।
सखी छौना कुल लाज छांड़ि करि नित चित्त पीव लगी ।।[2]

ऐसे पदों की पंक्तियों में रहस्यवाद की झलक मिलती है । साथ ही इन पंक्तियों की द्वितीय पंक्ति में प्रयुक्त 'सखी' शब्द भी विचारणीय है । यह इस तथ्य का सूचक है कि अपने अन्य गुरुभाइयों की भाँति कुछ समय के लिए गुरूछौना जी भी सखी-साधना की ओर उन्मुख हो गये थे । ऐसे ज्ञानी महात्मा की रसिक साधना की ओर मोड़ने का श्रेय चरनदास जी के शिष्य रामसखी जी को देना चाहिए ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरुछौना जी के आराध्य घट-घट वासी परब्रह्म ही हैं, जो सृष्टि के कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता होने के साथ साथ सर्वव्यापक भी हैं ।[3] राम और कृष्ण तो उस ब्रह्म के उपाधि मात्र हैं । इस प्रकार शुकसंप्रदाय के स्वामी रामरूप, सुश्री सहजोबाई, श्री जसराम उपगारी और गुरुछौना जी जैसे कुछ ही कवि ऐसे हैं, जिन्होंने अपनी बानियों में संतबानी का अधिक अनुकरण किया है । छौना जी ने दो-तीन स्थानों पर अपने नाम के साथ जहाँ 'सखी' शब्द का प्रयोग किया है, वहाँ भी वे तत्त्वतः इसके अभिधार्थ में प्रयोग करते नहीं दिखाई देते ।

---

१. शब्द : पत्र सं० ९३ ।

२. वही : पत्र सं० ८८ ।

३. जिन षोजा तिन पाया ।।
मेरा प्रभु आप में आप छिपाया आप आप कूँ गाया ।।
आप आप मैं ढूंढ़ भुलाना ग्यान ध्यान समझाया ।
अपनी माया जग विस्तारा कौतुक सा दरसाया ।।
जड़ चेतन दोऊ आपहि हूवा आप आप लौ लाया ।।
चरनदास गुरु आपहि होकर छौना कौं समझाया ।।
—शब्द : पत्र सं० ९२ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छौना जी की खड़ीबोली पर मेवाती भाषा का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है। जयपुर और अलवर को केन्द्र बनाकर भक्ति प्रचार करने के कारण ही संभवतः उन्होंने स्थानीय भाषा को अपनाया है। राग सोरठ के अन्तर्गत रचित प्रायः सभी पद (१७ पद) राजस्थानी में हैं। ऐसे कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

म्हारै जग मैं न कोई म्हारै राम के धनी, जी।

× × ×

येक संदेसड़ा कहियो म्हारे बालमा से जाय।

× × ×

नाथ जी थे म्हारो सिरताज।[1]

गुरुछौना जी का शिष्य परिकर और उसका साहित्य को योगदान—

अब तक गुरुछौना जी के साहित्यिक कृतित्व की जो चर्चा हुई है, उससे स्पष्ट है कि ये उच्चकोटि के कवि और अपने संप्रदाय की दृष्टि से आचार्य कोटि के धर्म प्रचारक रहे हैं। अपने संप्रदाय को निर्गुण साधना की ओर उन्मुख करने का इनका प्रयास इस अर्थ में सफल कहा जायगा कि इनकी शिष्य परम्परा के अनेक ज्ञात कवि यथा अखैराम जी, रामुदास जी, हीरादास जी और मोहनदास जी प्रभृति कवियों की बानियों में निर्गुण साधना की ओर झुकाव अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देता है। इस दृष्टि से छौना जी का साहित्य इस सम्प्रदाय के उस वर्ग विशेष के लिए अनुकरणीय रहा है, जो ब्रह्म के निर्गुण रूप को सगुण की अपेक्षा अधिक महत्त्व देता रहा है।

(१) गोसाईं अखैराम जी[2] और उनका साहित्य—गुरुछौना जी के वरिष्ठ शिष्य तथा युगावतार संत चरणदास के प्रबुद्ध प्रशिष्य अखैराम जी चरणदासी

---

१. वही : पत्र सं० ८२–८२।

२. प्राप्त प्रमाणों के आधार पर सामान्यतया जो बात ज्ञात होती है वह यह कि 'गोसाईं' की उपाधि संत चरणदास के उत्तराधिकारी श्री जुगतानन्द के लिए गुरु द्वारा प्रदत्त थी अतः परम्परानुसार उनके तथा उनकी आचार्य गद्दी के महन्तों के लिए यह उपाधि अधिकारस्वरूप प्राप्त थी, लेकिन अखैराम जी के जयपुर के खंडार का रास्ता नामक मुहल्ले में निर्मित बिहारी जी के मन्दिर के मुख्यद्वार पर स्थित विजय-स्तम्भ पर उनके लिए 'गुसाईं' उपाधि अंकित है। यह स्तम्भ सं० १८४५ वि० का है, जो चरणदास जी के परमधाम पधारने के लगभग छः वर्ष बाद का है और मन्दिर के निर्माण कार्य के पूरा होने के उपलक्ष्य में स्थापित किया गया है। इसी के आधार पर यहाँ अखैराम जी के लिए 'गोसाईं' उपाधि का प्रयोग किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री श्रीं गुरुछौनाजी महाराज

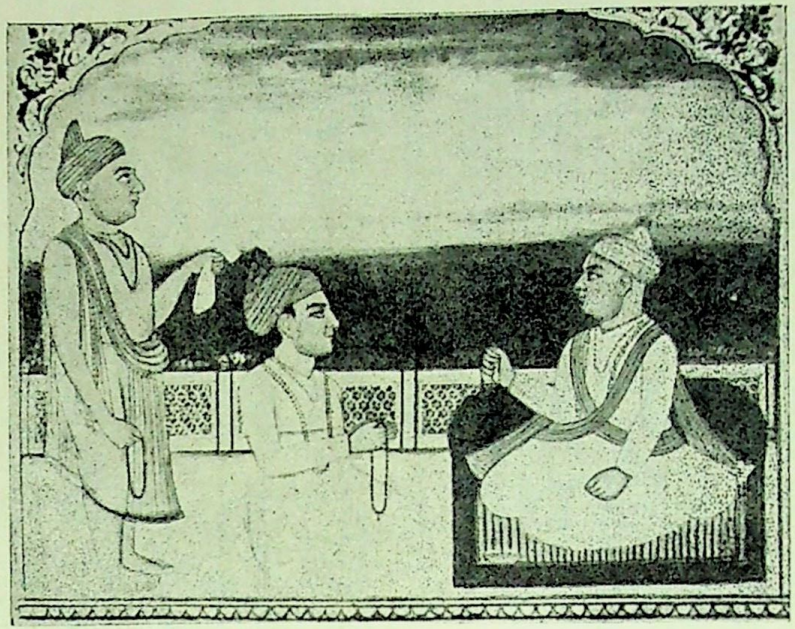

१. श्री स्वामी अखैरामजी (आसन पर विराजमान, जयपुर)
२. श्री स्वामी चेतनदासजी (मध्य में) माचल
३. श्री स्वामी प्रियादासजी (वामपार्श्व में) जयपुर (पृ० ४११)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार कर्त्ताओं में गुणात्मक एवं संख्यात्मक दृष्टि से चतुर्थ स्थान पर हैं। इस दृष्टि से इनसे वरिष्ठ आचार्यों में सुश्री सहजोबाई, स्वामी रामरूप जी और गोसाईं जुगतानन्द की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। जहाँ एक और मन्दिर-निर्माण, गद्दी एवं मठ-संस्थापन और सिद्धि-प्रसिद्धि में अग्रगण्य अखैराम जी का सम्प्रदाय-प्रसार की दृष्टि से विशिष्ट स्थान है, उसी प्रकार इस सम्प्रदाय के साहित्यकारों में भी वे मूर्धन्य कोटि में हैं।

श्री अखैराम जी बहुभाषाविद्, उच्चकोटि के चिंतक, बहुमुखी प्रतिभा के धनी एवं प्रत्युत्पन्न कवि थे। राजस्थानी, ब्रजभाषा, पंजाबी, खड़ीबोली, फारसी आदि के साथ ही ये अच्छे संस्कृतज्ञ भी थे। इन्होंने संस्कृत में एक 'मंगलाष्टक' नामक लघु ग्रन्थ की भी रचना की थी। 'अखैसागर,' 'वाणगंगा माहात्म्य' और 'वैद्यबोध'—इनकी तीन प्रमुख कृत्तियाँ हैं। इनमें से 'अखैसागर' इनकी १४ छोटी-छोटी रचनाओं का संग्रह है। इस ग्रन्थ की पत्र सं० २०० और पृष्ठ संख्या ४०० है। इसकी पांडुलिपि का विस्तार १२″ × ८″ है।

'अखैसागर' में समाविष्ट अखैराम जी की १४ स्वतंत्र कृतियों के नाम, उनकी पृष्ठ संख्या आदि का विवरण निम्नवत है—

क्रमसंख्या	ग्रंथ नाम	पृष्ठ संख्या	अखैसागर की पृष्ठ संख्या जहाँ ये रचनाएँ समाविष्ट हैं।
१.	विचार चरित्र	२५	६ से ३३।
२.	गंगा माहात्म्य (रचनाकाल सं० १८३२ वि०)	७०	३३–१०२।
३.	वाणगंगा माहात्म्य	१२२	११२–२३३।
४.	कुरुक्षेत्र लीला	१५	२३३–२४८।
५.	अखैसार	८	२४८–२५५।
६.	अखैज्ञान समूह	४२	२५५–२९७।
७.	सांख्ययोग	३	२९८–३०१।
८.	चारभाव, पंचकोष, षट् सम्पत्ति	१०	३०१–३११।
९.	षट्दर्शन मत	७	३११–३१७।
१०.	सप्तभूमिका, अनुबन्धचतुष्टय	८	३१८–३२६।
११.	श्री शुकदेव की कथा तथा व्यासमोह आदि	९	३२६–३३५।
१२.	भक्तों की रहनी	७	३३५–३४२।
१३.	मंगलाष्टक	६	३४२–३४८।
१४.	पद	१२ (३९ पद)	३७८–३८९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संग्रह के पृष्ठ सं० १ से ९ के बीच छौना जी का 'षट्रूप-मोक्ष' तथा पृ० सं० ३५६ से ३७८ के बीच उनकी बानियाँ संकलित हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कवियों की जो रचनाएँ इस पांडुलिपि में समाविष्ट हैं, उनकी सूची इस प्रकार है—

१. सुश्री पुसालावाई की 'बानी' और 'साधु महिमा ग्रंथ' पृ० सं० ३४८–३५५।
२. श्री रामुदास की 'बानी' ,, ३८९–३९०।
३. श्री हीरादास जी की 'बानी' ,, ३९३–३९८।
४. श्री बेगमदास जी के 'शब्द' ,, ३९८……।
५. श्री गंगनदास (गंगादास) की 'बानी' ,, ३९८–४००।

(१) **वैद्यबोध**—अखैरामजी का यह ग्रंथ लगभग १४० पृष्ठों की रचना है। यह एक छन्दबद्ध कृति है, जिसमें दोहे-चौपाई के साथ ही अनेक मात्रिक और वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसके आरम्भ में गणेश, गुरु तथा अन्य देवी-देवताओं की स्तुति है। इसमें प्रायः सभी रोगों का लक्षण और उपचार लिखा हुआ है। इसका मूलाधार इनका अनुभूत ज्ञान है न कि पुस्तकीय ज्ञान। मध्य-कालीन वैद्यक ग्रंथों में इस रचना का महत्वपूर्ण स्थान है। अखैराम जी की परंपरा में चौथी पीढ़ी में हुए श्री रामगोपाल ने 'वैद्यभास्कर' नामक अपनी रचना में अखैराम जी को साक्षात् धन्वन्तरि के रूप में अवतरित बताया है। वे कहते हैं—

अखैराम आचारज गाये। मनु कलि धन्वन्तरि बनि आये॥[1]

रामगोपाल जी की यह कृति सं० १८८९ वि० की है और वैद्यक की एक उत्कृष्ट रचना है। इससे प्रमाणित होता है कि अखैराम जी उच्चकोटि के साधक सिद्धयोगी, कवि तथा वैद्य थे। उनके इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर तत्कालीन जयपुराधीश सवाई महाराज प्रतापसिंह जी ने इन्हें अपने गुरु तथा चिकित्सक का सम्मान प्रदान किया था।

(२) **विचार चरित्र**—यह मुख्यतः संतबानी शैली की रचना है। इसमें साखियों का संग्रह विविध अंगों में विभक्त करके प्रस्तुत किया गया है। पांडुलिपि के २५ पृष्ठों में समाविष्ट इस कृति में लगभग ३० 'अंग' हैं, इनमें से कुछ के नाम तो पारम्परिक ही हैं परन्तु कुछ नये शीर्षक भी हैं, यथा 'इश्क को अंग', 'गम्भी-रता को अंग', 'गरीबी को अंग', 'निरणय को अंग' और 'पोथी की महिमा को अंग' आदि।

(३) **गंगा माहात्म्य**—इसमें राजा भगीरथ के भगीरथ प्रयास के फल-स्वरूप पृथ्वी तल पर गंगा के अवतरण का पौराणिक वृत्त बड़े विस्तार से छन्दबद्ध

---

१. वैद्यभास्कर : प्रकाशक, हीरालाल प्रेस—जयपुर, पृ० २।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैली में वर्णित है। इसका रचनाकाल माघ पूर्णिमा सं० १८३२ है।[1] सम्भवतः यह कवि का प्रथम प्रबन्ध काव्य है। इसके पत्रों की संख्या ८० और पृष्ठों की संख्या १६० है। इसके प्रत्येक पृष्ठ पर लिखित पंक्तियों की संख्या विषम है और १९ से २३ के बीच है। पूरी रचना २० प्रकरणों में विभाजित है। अध्यायों के नाम 'प्रकरण' और 'प्रकाश' हैं। मुख्य छन्द चौपाई है परन्तु बीच-बीच में दोहा और सोरठा छन्द भी रखे गये हैं। कितनी चौपाइयों के बाद दोहा और सोरठा आयेगा, इसका कोई निश्चित क्रम नहीं है। ग्रंथारम्भ में २२ दोहों में गुरुछौना जी की स्तुति का गान करने के उपरांत कवि ने स्वप्न में गुरु से गंगामाहात्म्य का ज्ञान प्राप्त करने की बात कही है। गुरु-महिमा का गान करते हुए कवि कहता है—

प्राणनाथ गोविन्द सों, गुरु मोहिं प्यारे बीर।
हरि दीनों जग जाल में, गुरू मिटाई पीर॥

स्वप्न में गुरु द्वारा आदेश प्राप्त होने की ओर संकेत इस प्रकार है—

अैसे ही मन सोच करि, सोय गयो ता वार।
सपने में गुरु छौन गुरु, बचन कहे तत सार॥
सकल सिरोमनि भक्ति है, तासौं अधिकी गंग।
शिष्य सोई बरनन करो, उपजै ज्ञान तरंग॥[2]

इस ग्रन्थ के अन्त में बड़े विस्तार से कथा की फलश्रुति दी हुई है। यह बड़ा ही रोचक, शिक्षाप्रद और गंगावतरण की प्रख्यात कथा से सम्बद्ध प्रबन्ध काव्य है। यदि यह कृति प्रकाशित होती तो बड़ी ही लोकप्रिय हुई होती। इसका धार्मिक दृष्टि से विशिष्ट महत्व तो है ही साथ ही साहित्यिक दृष्टि से भी यह एक पठनीय तथा उच्चकोटि की काव्यकृति है। इसकी सरसकुंज (जयपुर) वाली पांडुलिपि में पत्रों की संख्या २५३ है और पृष्ठों की संख्या ५०६ है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ पर मात्र ७ पंक्तियाँ हैं और इसका लिपिकाल सं० १८६२ है।

(४) वाणगंगा माहात्म्य—यह भी पौराणिक कथा पर आधारित तथा १२२ पृष्ठों का विस्तृत ग्रंथ है। कवि की चौपाई-दोहों वाली वर्णन शैली बड़ी ही रोचक और ज्ञानवर्द्धक है। इसके वैराग्यपर्व नामक खण्ड में अखैराम जी ने दिल्ली से आकर जयपुर में अपने निवास करने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए जयपुर नगर की प्रशंसा के साथ ही वहाँ के राजा सवाई प्रतापसिंह तथा उनके तीन विश्वस्त मुसाहबों—राव खुश्याली, दौलतराम और नन्दराम (हल्दिया बन्धु)

---

१. संवत् अठारह सौ बत्तीसौ जानौ। माह सुदी पुनौ पहिचानौ॥
दीतवार वार कूं सोई। गंग महातम पूरन होई॥

२. गंगामाहात्य (गंगा महातम, पांडुलिपि) दोहा सं० ११, २४–२५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भी पर्याप्त प्रशंसा की है। यह कृति तत्कालीन जयपुर के इतिहास के अध्येताओं के लिए उत्तम दस्तावेज है। श्री छाजूराम हल्दिया और उनके इन तीनों पुत्रों के इतिहास के साथ ही जयपुर के सवाई महाराज जयसिंह, उनके पुत्र महाराज माधोसिंह, और तत्पुत्र महाराज प्रतापसिंह आदि कई पीढ़ियों का प्रामाणिक वृत्त इस रचना में सुरक्षित है। जयपुर नरेश सवाई जयसिंह के दीवान छाजूराम हल्दिया के सबसे छोटे पुत्र एवं महाराज प्रतापसिंह के बख्शी श्री नन्दराम हल्दिया द्वारा निर्मित गंगा मन्दिर का वृत्त इस रचना में विस्तार से वर्णित है। वाण गंगा का एक नाम अर्जुनी गंगा भी इस रचना में उल्लिखित है।

(५) अखै ज्ञानसमूह—'विचार चरित्र' के वर्ण्य और शैली के विपरीत यह भक्तिमूलक रचना है। इसमें गुरु-स्तुति के बाद सत्संग महिमा, नवधा भक्ति, प्रेमा भक्ति, अष्टसखी सेवा, पराभक्ति, कर्मकाण्ड, उपासना, ज्ञान, हठयोग और समाधि आदि का वर्णन है। साधना-सिद्धान्तों के विवेचन की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इसमें शुक-सम्प्रदायानुमोदित योग, ज्ञान और कर्म से पुष्ट प्रेमाभक्ति का तर्कपूर्ण प्रतिपादन किया गया है।

(६) अखैज्ञानसमूह के अतिरिक्त 'सांख्ययोग', 'चारभाव' (प्राक्, अन्योन्या, विध्वंसा और अतीता) 'पंचकोण वर्णन,' 'षट्सम्पत्ति', 'षट् दर्शन मत', 'सप्त-भूमिका' (ज्ञान की सात भूमिकाएँ) 'अनुबन्ध चतुष्टय' आदि स्वतंत्र ग्रंथ न होकर स्वतन्त्र विषय हैं जिन्हें 'अखैसागर' का एक-एक विशिष्ट अंग मानना चाहिए। इसी प्रकार 'श्री शुकदेव की कथा' और 'व्यास जी का मोह' सम्बन्धी कथा का वर्णन शुक सम्प्रदाय का बड़ा ही प्रिय विषय है।

इस संग्रह की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसके माध्यम से हम गुरुछौना जी के अखैराम सहित कई शिष्यों और प्रशिष्यों की बानियाँ एक ही स्थान पर संकलित पाते हैं। अभी तक यह संग्रह अप्रकाशित है, जबकि इसका साहित्यिक महत्व अत्यधिक है। 'अखैसागर' की कई पांडुलिपियाँ ज्ञात हैं, जिनमें से एक मेरे पास, दूसरी सरसकुंज—जयपुर में तीसरी स्व० महंत गंगादास के दिल्ली-स्थित पुस्तकालय में तथा चौथी अखैराम जी की जयपुर स्थित गद्दी के संग्रह में उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त दो-तीन अन्य स्थानों पर भी इसकी स्वतन्त्र पांडुलिपियाँ वर्तमान हैं।

इसी प्रकार इनके 'वाणगंगा माहात्म्य' और 'गंगामाहात्म्य' की पांडुलिपियाँ सरसकुंज—जयपुर के संग्रहालय की जिल्द सं० ३११ और ३१२ में हैं। वाणगंगा माहात्म्य की एक प्रति महंत प्रेमदास (दिल्ली) के यहाँ भी है। इसीप्रकार अखैराम के 'वैद्यबोध' की एक पांडुलिपि भी महंत प्रेमदास के यहाँ प्राप्त है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तप्रवर अखैरामदास की काव्य-रसिकता, भाव-भक्ति और अभिव्यक्ति कुशलता को व्यंजित करने वाला 'राग कल्याण' में निबद्ध उनका एक पद उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है—

वृज का खैया कान्ह मोही को जान दे रे।
तुम तो मोहन निपट अटपटे चितवन मन हर ले रे॥
हौं तो दासी तुम चरनन की पल छिन ध्यान रहे रे।
घरी निस बासर कल न परत है एक लगन मन मेरे॥
ग्वालिन बचन कहत हैं स्याम सो प्रभु मोहें आज्ञा देरे।
अखैराम गुरु छौन कहत हैं रस दे सरबस ले रे॥[1]

(७) अखैराम जी की बानी—जैसा कि पहले ही कहा गया है, यह ३९ पदों की एक स्वतन्त्र संग्रहात्मक कृति है। ये पद गुरुछौना जी के पदों की शैली के सटीक अनुकरण हैं। यदि रचयिता का नाम पदों से हटा दें तो इन दोनों महात्माओं (गुरु-शिष्य) की बानियों की सही पहचान कठिन हो जायगी। इनके भी पद अधिकांशतः निर्गुण बानियों की शैली में रचित हैं। इन्होंने भी 'अनहद घोर बजे दिन राती,' 'जगमग नूर सवाया हो,' 'सब में है अरु सबसे न्यारा एक अखण्ड छये हो,' अविगत नगर सुहावणां कैसे पहुँचूं जाय,' 'साधो यह जग खेंचाताणी,' 'साधो ऐसा ज्ञान विचारो,' 'तातें, उलटा पंथ निहारो,' 'सुन्न में गगन घटा घनघोरी,' 'मूल बंध को बाँध जुगत सूं आसन सिद्ध लगाया,' 'ऐसा ज्ञान बिचारे कोई', 'जो नर जीवन मुक्ता होई,' 'तब खोजे बिन क्या पावे', 'आद पुरुष नजर न आवे,' और 'होरी खेलो गुरु ग्यान सूं, औघट घट विकट है मारग बिरला पहुँचे आन सूं' जैसी बानियों की रचना करके अपने गुरु श्री छौना जी की रचना पद्धति का अच्छा अनुसरण किया है।

'बानी' के सगुणभाव वाले पद संख्या में बहुत ही कम हैं। श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का इनका एक शब्द चित्र इस प्रकार है—

राग ध्याल— मोहन मुरली वारो श्री नन्दनन्दन ब्रजवासी साँवरो री।
घूँघरवारी अलकें झलकें सब सषियन को प्यारो री॥
पीतांबर कटि काछनी सो है सो हम नैन निहारो री॥
अखैराम गुरु छौना ऊपर तन मन धन सब वारो री॥[2]

अखैराम जी के निम्न पद में 'अखैराम सखी' की छाप संभ्रम उत्पन्न करती है। परन्तु 'सखी' उपाधि से युक्त नाम इस सम्प्रदाय के प्रायः सभी कवियों के

१. श्रीचरनावत वैष्णव वर्षोत्सव से उद्धृत, पृ० सं० १०४-१०५।
२. अखैसागर—पत्र सं० १९०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलते हैं जो उनके एकाधिक पदों या शब्दों में प्रयुक्त दिखाई देते हैं, अतः अखैराम जी के सम्बन्ध में भी यह कोई नई बात नहीं है। उनका यह पद इस प्रकार है—

स्याम की सोभा लगत अति प्यारी।
मोर मुकुट मकराकृति कुण्डल अलकैं घूंघरवारी॥
भृकुटि कमान बान वाके लोचन चितवन अति अनियारी।
मृदु मुसकान प्रान हर ले गई तन की सुधि न सँभारी॥
नख सिख भूषन सब विधि सुन्दर सोहत कुंज बिहारी।
पीताम्बर कटि काछनि काछे मुरली बजत सुढारी॥
सुन धुन स्रवन सकल सुर मोहे ब्रह्मादिक तिपुरारी।
'अखैराम सखि' नैन निरखि कै भई प्रेम मतवारी॥
गुरु छौना प्रभु किरपा कीनी दीनी भक्ति अपारी॥
—पाण्डुलिपि सं० ३२५, पत्र सं० २१२ (सरस निकुंज–जयपुर)

ऐसे केवल तीन-चार ही पद इनकी बानी में उपलब्ध हैं अतः ये अपवादस्वरूप ही हैं। ऐसा लगता है कि परम्परा-निर्वाह के लिए ही ऐसे पदों की रचना हुई है। अखैराम जी के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचार प्रायः वहीं हैं, जिनकी चर्चा गुरुछौना जी के सन्दर्भ में की जा चुकी है।

इनकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। दो तीन पदों में मारवाड़ी और कुछ में पंजाबी भाषा की भी छौंक मिलती हैं। इनकी इस प्रकार की एक बानी की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

स्याम मेड़े नाहीं आवंदा।
औरा दे आगन ठुम ठुम डोले फिर फिर बेन बजावंदा॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे कानन कुंडल झलकावंदा।'—आदि।

संक्षेप में कह सकते हैं कि चरणदास जी के पौत्र-शिष्य वर्ग में साहित्य-सर्जक और सम्प्रदाय-प्रचारक के रूप में अखैराम अद्वितीय हैं। इन्होंने चरणदास जी के जीवनकाल में ही एक सिद्ध महात्मा, योगी, कवि और वैद्य के रूप में ख्याति अर्जित कर ली थी। चरणदास जी की इहलीला का पटाक्षेप सं० १८३९ वि० में हुआ था। उसके कुछ ही मास पूर्व जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह जी ने अखैराम जी के ही माध्यम से चरणदास जी को दिल्ली से जयपुर निमंत्रित किया था और उनका प्रभूत सत्कार किया था। सं० १८४१ वि० तक गुरुछौना जी तथा अखैराम सहित उनके अन्य शिष्यों और पुशालाबाई आदि अखैराम जी के शिष्यवर्ग की वाणियाँ संगृहीत होकर लिपिबद्ध हो चुकी थीं। इसका प्रमाण सरसनिकुंज के हस्तलिखित

१. अखैसागर : पत्र सं० १९३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ संग्रह की जिल्द सं० ३७१ की पांडुलिपि है जिसके लिपिकर्त्ता श्री चत्रभुज तिवारी (कामावन) हैं। इस पांडुलिपि में कुल ३२८ पत्र (६५६ पृष्ठ) हैं और पद्यों की संख्या ८५२६ है।

(२) बेगमदास जी—गुरुछौना जी के योग्यतम शिष्यों में इनकी भी गणना है। ये अच्छे साधक और सिद्ध महात्मा थे। इनका एक अन्य नाम जनबेगम भी मिलता है। इन्हें श्री अखैराम का छोटा भाई बताया जाता है। इनकी चार-रचनाओं का भी पता चलता है, उनके नाम इस प्रकार हैं–(१) वैराग बारहमासी, (२) श्रीमद्भागवत भाषा या एकादशी माहात्म्य, (३) सुदामा चरित्र और (४) बानी। इनकी सभी रचनाएँ अखैराम जी के जयपुर स्थित थांभे के पुस्तकालय में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त इनकी 'बानी' और 'एकादशी-माहात्म्य कथा' दिल्ली के स्व० महन्त गंगादास जी के यहाँ भी हैं। इनका 'वैराग-बारहमासी' नामक ग्रन्थ महन्त प्रेमदास (दिल्ली) के पुस्तकालय में उपलब्ध हैं। इनकी 'बानी' की एक पाण्डुलिपि सरसकुंज–जयपुर में भी है, जिसकी जिल्द सं० ६९१ है। ये अपना स्वतन्त्र मठ-मन्दिर न बनाकर अखैराम जी की सेवा में ही रहकर काव्य-रचना में प्रवृत्त थे। ये जिन्दौली ग्राम के निवासी थे और वहाँ अखैराम जी द्वारा निर्मित मन्दिर की देख-रेख भी करते थे।

(१) वैराग बारहमासी—यह केवल ८ पत्रों (१६ पृष्ठों) का ग्रंथ है। इसका मुख्य वर्ण्यविषय ज्ञान-वैराग्य सम्बन्धी उपदेशों से सम्बद्ध है। इस रचना की भाषा वैसी ही जोरदार और ललकारवाली है जैसी कि हम कबीर के साहित्य में पाते हैं। कवि का छन्द-रचना पर अच्छा अधिकार नहीं है, इसीलिए तुक मिल जाने पर भी भर्ती के शब्दों का प्रयोग किया गया है। साथ ही छन्द और पद की मात्रा आदि में होने वाली त्रुटियों का भी निवारण नहीं किया गया है। इस बारहमासी का आरम्भ आषाढ़ से होता है। कविता की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं, जो इस प्रकार हैं—

सावण सिर पै काला ठाढ़ा चेत क्यों न सबार ही।
तज देह झूठी वासना कर साध संगत प्यार ही।
छिन छिन तेरी आव छीजै समझ मूढ़ गंवार ही।
अंत समय पछतावगे जम जब देह अधिकी मारही॥
भादों भरम में कहां भुलाने नार सुत धन धाम में।
संत न जानकै कुल गोत नाती परा झूठे काम में॥
इन सूं छूटन होय कब दिन रैन आठों जाम में।
तातें जु नेह निवार भोंदू सुरत लावो राम में॥[1]

१. वैरागबारह मासी : पत्र सं० ३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में कवि गुरु-कृपा का वरदान माँगता है ताकि हृदय में कुछ शांति मिले।

जेठ जिउ की हुई नासी न सीतता अंतर भई।
गुरु छौना जी कृपा करिये कथा करनी रख मई।
बैराग बारहमासिया सिष तोहिं दीआ नित नई।
जन बेगम अधीन के यह सकल अन्तर में छई ॥[1]

इस रचना की एक पांडुलिपि काशी नागरी प्रचारिणी सभा में भी सुरक्षित है।

२. बानी—इसकी पांडुलिपि महन्त गंगादास (दिल्ली) के ग्रन्थागार में तथा सरसकुंज (जयपुर) की जिल्द संख्या ४१ में देखने को मिली थी। इस शीर्षक के अन्तर्गत इनकी कुछ बानियाँ संगृहीत हैं। संभवतः इनकी कुछ ही बानियाँ अब तक प्राप्त इन बानी संग्रहों में आ पायी हैं। शेष बानियाँ शोध्य हैं।

मेरे पास इनका जो बानी संग्रह है, उसमें इनकी कुल १० बानियाँ ही समाविष्ट हैं। उनमें से एक पद 'राग नट' में है, जो इस प्रकार है—

प्रभु जी मैं पापी अति भारो।
अब तो आयो सरन तुम्हारी मेरी करो निवारो ॥
कामी क्रोधी लोभी मैं हूँ मोह गर्व में पूरा।
तुम्हरी भक्ति करी नहिं कबहूँ ऐसों मति का कूरा ॥
हूँ अज्ञान महा जड़ मूरष जगत विषै में पागो।
साध संत की सेव न कीनी वाद विवाद में लागो ॥
परनिन्दा और हिंसा मो मैं मैं पतितन को राजा।
बड़ो भरोसो राखूं तेरी तुमही संवारो काजा ॥
गुरु छौना पूरन अविनासी अब कै मोहिं उबारो।
जन बेगम को भौ सागर सों बांह पकर कर तारो ॥[2]

इस बानी संग्रह में होरी, धमार, राग झंझोटी और धनाश्री आदि कई रागों में निबद्ध पदों का समावेश है। इन पदों के मुख्य विषय हैं—भगवान् कृष्ण की होली-लीला, विवाहोत्सव-लीला, रासलीला और गोपी विरह वर्णन आदि। इनका एक होरी लीला का पद द्रष्टव्य है—

॥ राग धनाश्री ॥ ॥ होरी का पद ॥

कान्ह सुजान चतुर रंग भीना होरी खेलत आये मोरे अंगना।
संग लिये बहु ग्वाल मंडली अधिक अनूप समाज बना ॥

---

१. बैराग बारहमासी : पत्र सं० ७।
२. बानी : पत्र सं० १५।
३. अखैराम जी की वाणी : पत्र सं० १३३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नख सिख भूषन पीत बसन तन श्याम बदन अति सोभ घना।
पान खात मुसक्यात लाल जी चितवन में मेरे हर्‌यो मना॥
गावत धमार बिसाल सुरन सों नाचत ततथेई तनन तना।
केसर की पिचकारी भरि भरि छिरकत हरि सबके जु तना॥
सखि बेगम गुरु छौन पिया की छबि बिसरूँ ना रैन दिना॥[1]

यद्यपि राधा और श्री कृष्ण के परिणय संस्कार का कोई प्रामाणिक आख्यान प्राप्त नहीं होता परन्तु निंबार्क और गौड़ीय मत के वैष्णव कवियों में इसे इन दोनों की लीला का एक अंग मानकर इसका अनेकशः वर्णन किया गया है। इसी प्रकार का एक चित्र श्री बेगमदास ने भी प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है—

॥ राग झंझोटी ॥

अहो हरियाला बनड़ा प्यारा।
सुन्दर स्याम सोहन मन मोहन अनुपम रूप उजारा॥
नख सिख भूषन बसन सजे अति चितवन कामनगारा।
सखि बेगम राधावर प्यारो जीवन प्राण हमारा॥[2]

(३) रामुदास जी—गुरु छौना जी के कवि-शिष्यों में रामुदास या रामदास-जी की कविता अपेक्षाकृत अधिक मनोहर है। इनका एक नाम रामूदास भी मिलता है। इनकी बानियों का एक संग्रह 'बानी' शीर्षक के अन्तर्गत सरसकुंज (जयपुर) के हस्तलिखित पुस्तक संग्रहालय की जिल्द संख्या ४१ में संकलित है। जैसा कि पहले सूचित किया जा चुका है, 'अखैसागर' की पाण्डुलिपि की पृष्ठ-संख्या ३८९–३९० पर इनकी बानियाँ संगृहीत हैं। इनकी कुल ५ बानियों का ही इसमें समावेश है। मेरे यहाँ गुरु छौना जी और उनके शिष्यों की रचनाओं की जो पाण्डुलिपि है, उसमें श्री रामुदास के २० पद संगृहीत हैं। इनमें से कुछ पदों में इनके अपरनाम रामकृष्ण की भी छाप है। इससे पता चलता है कि इनका मूल नाम रामकृष्णदास था, जिसका संक्षिप्त रूप रामुदास है। ये सभी पद निर्गुण-बानी के अन्तर्गत आते हैं। एक भी ऐसा पद इनका नहीं मिला, जिसमें सगुण साधना की झलक मिले।

कवि के जीवनवृत्त के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। इनकी रच-नाओं में प्रयुक्त भाषा में पंजाबी भाषा के शब्दों के प्रचुर प्रयोग को देखते हुए अनुमान किया जा सकता है कि ये पंजाबी भाषी रहे होंगे और गुरुछौना जी के साथ ही माचल (अलवर) में रहते रहे होंगे। प्राप्त बानियों के आधार पर कहा

१. जगदीश जी राठौर द्वारा संकलित।
२. वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकता है कि ये मस्तमौला प्रकृति के महात्मा थे। इनकी बानियों पर सन्त-कबीर और दादूदयाल का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उदाहरण के रूप में निम्न पंक्तियाँ उद्धृत हैं—

हँसा करौ संसार अब मैंनूं हरि रंग लागा।
सतगुरु रंग धीरज दई रफू किया अहंकार।
गुरु चरनन में धुन लगी मेरी भजा जगत सूं प्यार॥[1]

× × +

आतम कुंज बिहारी सदा संग कबहूँ न होसूं न्यारी।
जब तक पिया सूं बेमुख मैं थी फिरत फिरत मैं हारी॥
यामे दोष कछू नहिं पिय की मैं ही औगुनगारी।
पांच पचीसों सोंच न घर में अपने मन मतवारी॥
सतगुरु भेद बताया मोकूं तब मैं दूर निहारी॥[2]

इनकी एक निर्गुण वाणी यहाँ इनकी रचनागत विशेषताओं की ओर संकेत करने के लिए उद्धृत करना उचित होगा—

चलो री सखी जहाँ अनहद घोरै सोहं शब्द सुहावैरी।
सुमत कहै सुन सील पिया सूं यह अचरज मोहि भावै री॥
अन्तर घट में नट नाचत है आपा जब दिखरावै री।
मूरिष घाट बाट नहिं जाने सुगरा होय सु पावै री॥
गूंगा गावै बहरा रीझै नकटो नगर सुहावै री।
सन्त सभा मिल बैठो जाकर प्रेम पियाला प्यावै री॥
सुगरा होय सो भर भर पीवै निगुरा लेन न पावै री।
नौ कूं बंध करै जोगेसर दसवें सूं लौ लावै री।
रामू गुरु छौना किरपा सूं जब वह अलष लषावै री॥[3]

(४) हीरादास जी—गुरु छौना जी के शिष्य हीरादास जी की बानियाँ 'अखैसागर' की पृष्ठ संख्या ३९३ और ३९८ के बीच छः पन्नों (बारह पृष्ठों) में समाविष्ट हैं। अखैराम जी की मोतीकटला—जयपुर स्थित गद्दी में भी इनके व्यक्तिगत परिचय के ज्ञान हेतु कोई भी सूत्र हाथ नहीं लगा। इनकी प्राप्त बानियों की संख्या ३० के लगभग है। इनमें से अधिकतर निर्गुणपरक शब्द हैं। अपवाद-स्वरूप 'होरी', 'मांझ' और कुछ अन्य रागों में लीलागान सम्बन्धी भी कुछ पद

१. अखैराम जी की वाणी (पाण्डुलिपि) पत्र सं० १२१, पद सं० २।
२. वही : पत्र सं० १२३, पद सं ११।
३. वही : पत्र सं० १२४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होते हैं। इनकी बानियों में कवित्त, सवैया, रेखता, कड़खा और अनेक राग-रागिनियों में निबद्ध पदों का समावेश है। इनकी छन्द रचना प्रौढ़ और भाषा खड़ी बोली के बेलाग प्रयोग से युक्त है। इनकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं—

'करता हूँ विचार यार भूला संसार धार
छौंड़ा ही है सार प्यार माया यौं कीआ है।
लोग भोग करत हैं अधाय धाय मन
पछतात हैं आन काल घेर लीआ है॥'[1]

इनकी एक संतवानी की शैली का पद इस प्रकार है—

मनुवां हरि सुमिरन यूं कीजै।
ज्यूं नट बांस चढ़ै अरु उतरै अरध उरध मन दीजै॥
नाम अखण्ड रटै बिनु रसना शब्द मूल गहि लीजै।
गह निज डोर सुरत करम करि बंकनाल रस पीजै॥
आसन अधर गगन में बैठे अमर जुगै जुग जीजै।
बाढ़ी नेह मिलौ अबिनासी रोम रोम तन भीजै॥
बिन पग निरत होय निसबासर गुरु छौना प्रभु रीझै।
जन हीरा आधीन तुम्हारो ज्ञान रतन मोहिं दीजै॥[2]

इनकी बानियों में १७ कवित्तों का भी समावेश है। ये कवित्त सन्त कवियों की भाँति मूर्त्तिपूजा, पाखण्ड, तीर्थ-व्रतोद्यापन, कर्मकांड, कथनी-करनी में असामंजस्य, लोभ, मोह, काम और क्रोध में आसक्ति आदि की कटु आलोचना से युक्त हैं। अपनी बानियों के माध्यम से कवि ने आचार-विचार की शुद्धता, साधना की दृढ़ता, एकांतनिष्ठा और श्रद्धा-विश्वास आदि गुणों के विकास की आवश्यकता पर बल दिया है। ये शिल्प की दृष्टि से सशक्त और उच्चकोटि की काव्यात्मकता से युक्त हैं। इनका इस प्रकार का एक शब्द द्रष्टव्य है—

जाने ब्रह्म सोई कुल ब्राह्मन जाति कहाँ से आई।
पहर जनेऊ जन दिखलावैं चाहे मान बड़ाई॥
करम लगा कर सब जग लूटा दुनियां ठग-ठग खाई।
सेवैं भूत करैं तन किरिया डूबी सब चतुराई॥
ज्ञानी मिलै जवाब नहिं आवैं बेद पुरान बताई।
हीरा कहै खोज तन अपना गुरु छौना समझाई॥[3]

---

१. अखैराम जी की वाणी : पत्र सं० १९७।
२. वही : पत्र सं० १२६, शब्द सं० २।
३. हीरादास की बानी : कवित्त सं० १७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ तक श्री हीरादास की निर्गुण शैली की वाणियों की झलक देखने के बाद अब उनकी लीलापरक पंक्तियों का स्वरूप देखना उचित होगा। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि हीरादास जी एक उच्च कोटि के कवि थे। उनका होरी का एक पद इस प्रकार है—

॥ होरी का पद ॥

वह नन्द महर को ढोटारी रंग डार गयो भर लोटा।
भीज गई मोरि सुरंग चुनरिया चोली अरु अतरोटा ॥[1]
ठाढ़ी ही मैं द्वार आपने सोहनि[2] देकर ओटा।
तक तक दिये उरोजन ऊपर लाल गुलाल के गोटा ॥
मन हर लिये तनक चितवन में मदन देन लगे झोंटा।
निरखत छबि उड़ि लगे नैन ये खंजन के से जोटा ॥
अब तो ये माँगू बिधना पै हो निज अंचल ओटा।
हीरासखी वै बसो हिये मैं गुरुछौना राधा चरण पलोटा ॥[3]

इस पद में हीरादास जी ने अपने लिए 'हीरा सखी' शब्द का प्रयोग करके अपने सम्प्रदायानुमोदित रसिक साधना की स्वीकृति का भी अनुमोदन किया है।

(५) गंगादास जी (गंगनदास जी)—गंगादास जी का अपरनाम गंगनदास भी मिलता है। इन्होंने कुछ पदों में अपना नाम गंगनसखी भी दिया है।[3] इनके प्रायः सभी पदों में कान्ताभाव की भक्ति की झलक मिलती है। 'नवसंतमाल' के रचयिता श्री रूपमाधुरीशरण जी के विचार से ये गुरुछौना जी के अत्यन्त प्रिय और गुरुसेवी शिष्य थे।[4] छौना जी के 'षट्रूप मुक्ति' के लिपिकार भी यही थे। इनकी रचनाओं में जो भावमाधुर्य और सुष्ठु भाषा-प्रयोग मिलता है उससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि ये अच्छे साधक, भक्त और कवि थे। गंगन जी गुरुछौना जी के सीताराम बाजार (दिल्ली) में स्थित आश्रम में रहा करते थे। गुरुछौना जी के बाद सम्भवतः वे ही इस स्थान के महन्त भी हुए। इस स्थान की शिष्य-परम्परा इस प्रकार मिलती है—

गुरुछौना जी—गंगनदास जी—आदीराम जी—मोतीराम जी—श्रीकृष्णदास जी—अज्ञात।

---

१. अतरोटा = लहँगा।
२. सोहनि = झाड़ू।
३. अब गुरु छौना मिले पूरे भाग।
सखी गंगन पायो नित सुहाग ॥—अखैसागर : पृ० ३९८।
४. नवसंतमाल : पृ० १०२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त प्रमाणों के अनुसार यह शिष्य-परम्परा सं० १९४९ वि० तक ही सुचारु रूप से चल पाई। ज्ञातव्य है कि मुक्तिराम जी के यहाँ रहते हुए सं० १९११ वि० श्रावणमास, कृष्णपक्ष सप्तमी को गो० केशवदास वृन्दावनबासी ने 'इन्द्रप्रस्थ महातम ग्रंथ' की रचना की थी जिसमें उन्होंने उक्त वंशावली दी है।

इनकी बानियाँ 'अखैसागर' की पृ० सं० ३९८ और ४०० के बीच संकलित हैं। अखैसागर की समाप्ति ही गंगादास जी की बानियों से हुई है। इनकी 'बानी' एक स्वतन्त्र पांडुलिपि के रूप में सरसकुंज (जयपुर) की जिल्द सं० ६९१ में संगृहीत है। स्व० महंत गंगादास (दिल्ली) के संग्रहालय की जिल्द सं० ४१ में भी इनकी कुछ बानियाँ प्राप्त होती हैं। इनका एक मधुर-भाव का पद इस प्रकार है—

भाई मेरा मोहन चित बिरमाया।
सांवरी सूरत माधुरी मूरत मोरे नैनन माहिं समाया॥
ना जानौं कछु टोना कीनौ मेरा तन मन सब बौराया।
टारौं तो कबहूँ नहिं टरता मेरे भीतर बाहर छाया॥
जन गंगन गुरु छौना दया सूं प्रीतम माँहि समाया॥[1]

मेरे पास इनकी बानियों का जो संग्रह है, वह १३ पत्रों (२६ पृष्ठों) में है। इसमें कुल मिलाकर इनके १४१ पद और ८ दोहे संगृहीत हैं। ये दोहे इस पांडुलिपि के अन्त भाग में है। बानियों की रचना शैली और भाषा के प्रयोग आदि में ये अपने गुरु और गुरुभाइयों से अलग नहीं दिखाई देते। इनके अधिकांश पद संतवाणी की पद्धति पर रचित हैं और ज्ञान, वैराग्य, योग, भक्ति, चेतावनी, आत्मनिवेदन, विरह-निवेदन तथा ब्रह्मस्वरूप-निरूपण आदि से संबद्ध हैं। इनकी 'चेतनसार' नामक एक अन्य कृति भी गुणवत्ता में उच्चकोटि की कृति है। यह ग्रंथ गुरु-शिष्य संवाद की शैली में दोहा-चौपाई छन्द में रचित है। यह छः खंडों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में देह, जीव तथा ईश्वर के सम्बन्ध पर विचार किया गया है। द्वितीय खंड का विषय उत्तम-मध्यम कर्म-निर्णय से सम्बन्धित है। इसी प्रकार वैराग्य निर्णय, विचार निर्णय, ज्ञानी लक्षण तथा गुरु स्तुति अधिकारी-अनधिकारी निर्णय आदि शेष अध्यायों के क्रमशः शीर्षक हैं। यह १५८ छन्दों की रचना है और बड़ी ही उपयोगी कृति है।

इन्होंने अपने नाम तथा अपनी गगन या शून्य साधना के रहस्य की ओर इंगित करते हुए कहा है—

गगन हमारो जात है, गगन हमारो नाँव।
गगन हमारो गांव है, गगन हमारो ठाँव॥[2]

---

१. अखैसागर : पृ० ३९९।
२. अखैराम जी की बानी : पत्र सं० १४५, दोहा सं० ३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आराध्य के विषय में कवि की मान्यता इस प्रकार है—

साछी रूप अचल अखण्डित सब में है अरु सब सो न्यारा ।
रूप रंग नहिं सूरत मूरत सूक्ष्म स्थूल नहीं ना कुछ भारा ।।
पाँच तत्त गुन तीन नहीं है चाँद सूर बिन अधिक उजारा ।
जन गंगन गुरु छौन दया सूं पाय लियो है अलष पियारा ।।[1]

यद्यपि गंगनदास जी के आराध्य निर्गुण-निराकार हैं परन्तु वे राम और कृष्ण के रूप में भी अवतरित हो चुके हैं । इनमें से राम लीला पुरुष या अवतारी देवता न होकर प्रायः ब्रह्मस्वरूप ही हैं । अतः भक्त कवि उनके नामस्मरण तक ही सीमित रहता है ।[2] परन्तु कवि भगवान् कृष्ण के जन्म के उपलक्ष्य में बधाई भी गाता है और गोपियों की विरह-वेदना में भी सहभागी होता है । उदाहरण द्रष्टव्य है—

जनमें कुंवर कन्हाई सुनो री माई ।
जादौ बंस उजागर कीआ संतन के सुषदाई ।।
···जन गंगन गुरु छौन दया सूं जन्म जन्म हौं दासी ।।[3]

तथा

अरी माई अजहूँ मोहन न आया ।
घर अंगना में खड़ी पुकारों किन दूती बिरमाया ।।
···सखी गंगन गुरु छौन निहारी तै कीवा मन भाया ।।[4]

गंगनदास जी का व्यक्तित्व एक मस्तमौला तथा बेफिक्र फकीर का सा प्रतीत होता है । उन्होंने संत कबीर की भाँति अपने कई पदों में अपनी मस्ती का परिचय दिया है । इनका इस प्रकार का एक पद निम्नलिखित है—

अब जम क्या करेगा रे मैं तो चर्नदास का पोता ।
सब्द गुरु का बख्तर पहरा निहचै तरकस बांधा ।।
···जन गंगन अब निरभै होकर अलष पुरुष को चीन्हा ।।[5]

'अखैसागर' की प्राप्त पांडुलिपि में गंगनदास की जो बानियाँ संकलित हैं उनमें उनके 'भ्रमरगीत' नामक काव्य को पूरी तरह छोड़ दिया गया है । सम्भव है कि यह उनकी परवर्ती रचना हो और उसकी रचना के पूर्व उक्त संग्रह तैयार किया

---

१. अखैराम की बानी । पत्र १४४ ।
२. सीताराम सीताराम सीताराम गाइये ।
मनषा जनम बहुरि ना पाइये ।। वही : पत्र सं० १४३ ।
३. अखैराम की बानी : पत्र सं० १३७ ।
४. वही : पत्र सं० १४३ ।
५. वही : पत्र सं० १४१ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा चुका हो। इसी क्रम में इस तथ्य का भी उल्लेख कर देना उचित होगा कि नागरी प्रचारिणी सभा—काशी के हस्तलिखित पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण में इनके 'राग बारामास का मंगल' नामक एक अन्य रचना भी उल्लिखित है। सम्भव है कि 'भ्रमरगीत' और 'राग बारामास का मंगल'—दोनों एक ही कृति के दोनाम हों परन्तु ऐसा तभी कहा जा सकता है जब पुष्ट प्रमाण हो।

जहाँ तक 'भ्रमरगीत' का सम्बन्ध है, इसकी पांडुलिपि श्री जगदीश जी राठौड़ के यहाँ वर्तमान है। इसका कुछ अंश मेरे पास भी है। इसकी रचना दोहा छन्द में हुई है। इसका कथ्य प्रायः वही है जो अन्य भ्रमरगीतों में हम पाते हैं।

भ्रमरगीत

आरम्भ—नमो नमो परमात्मा, नमो नमो सुखदेव।
नमो नमो चरनदास कूं, गंगन पावै भेव॥
गुरु छौना गुरुदेव कूं, गंगन को परणाम।
भँवरगीत कूं बरनतैं, पावै मन बिसराम॥
सतगुरु करो सहाई जन की॥ २॥

मध्य—निराकार आकार सूं, नैकु जुदा है नाहिं।
जैसे पुतली बरफ की, पानी वाके माँहि॥
जिनके ऐ आँखे नहीं, देखन कूं यह रूप।
तिनकूं कदे न शांति है, पड़े कर्म के कूप॥
ऊधौ जी सुनौ हमारी बात॥ ५३॥

अन्त—अति पवित्र है सोहनी, कथा श्री भागौत।
भँवरगीत सबकूं प्रिय, जामें भक्ति अद्वैत॥
सो अब विधिवत कही है, जामें राग न दोष।
प्रेमीजन याकूं गहैं, पावैं जीवन मोष॥
कष्ट कोई ना रहै जी कूं॥ १३७॥

यह रचना १४० छन्दों में समाप्त हुई है। कवि ने रचना-काल निर्दिष्ट नहीं की है। यह कृति पठनीय एवं उच्चकोटि की है, इसमें सन्देह नहीं।

अखैराम जी के शिष्यों का साहित्य—

(१) बाबा मोहनदास—अखैराम जी के सम्प्रदाय प्रसारक तीन शिष्यों में मोहनदास जी अग्रगण्य हैं। रोड़ी, झण्डूकी और बालांवाली में स्थापित चरणदासी थाँभे इन्हीं की देन हैं। भूतपूर्व संगरूर रियासत (पंजाब) में इन्होंने अपने शिष्यों यथा अमरदास और बद्रीदास आदि के माध्यम से अनेक छोटे-बड़े स्थानों का निर्माण किया था। इनके शिष्य अमरदास जी (इनके सीताराम बाजार—दिल्ली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के थांभे के) एक कर्मठ धर्म प्रचारक थे। अकेले उन्होंने दिल्ली, रोड़ी और बालांवाली में केन्द्रों का निर्माण किया और अपने महंत-पद के काल में किसी भी मेले में अनुपस्थित नहीं हुए। डेरा शार्दूलसिंह (डेरावली) का थांभा भी इन्हीं के कार्यक्षेत्र में था।

ये बड़े ही समर्थ महात्मा बताये जाते हैं। आचार-विचार की शुद्धता पर अधिक जोर देने तथा स्वयं आचरण करने के कारण ही उन्हें बाबा की उपाधि मिली थी। उनकी 'बानी' जयपुर के सरसकुंज के पुस्तकागार में सुरक्षित है। स्व० महंत गंगादास (दिल्ली) की सूचना के अनुसार इनकी 'बानी' की एक पांडुलिपि गामड़ी (मेरठ) के महंत हंसदास जी के स्थान में भी है। इनकी बानियों को देखने और उद्धरण लेने का मुझे संयोग प्राप्त न हो सका। शुक सम्प्रदाय के कुछ वर्तमान आचार्यों ने बताया कि ये उच्चकोटि के कवि भी थे।

(२) **खुसाला बाई**—ये अखैराम जी की शिष्या एवं जयपुर राज्य के दीवान एवं बख्शी परिवार (हल्दिया परिवार) की कन्या थी। ये विदुषी एवं विरक्त कवयित्री थीं। इनका एक नाम जन खुसाला भी मिलता है। ये जयपुर में ही विरक्त भाव से रहा करती थीं। अपने गुरु श्री अखैराम जी की अधिकांश बानियों की लिपिकर्त्ता इन्हें ही बताया जाता है। 'अखैसागर' या 'अखैराम की वाणी' शीर्षक बृहत्काय ग्रंथ के पृष्ठ सं० ३४८-३५० पर अखैराम जी द्वारा बनवाये गये मन्दिरों के वृत्त और पृ० सं० ३५०–३५६ पर संकलित 'साधु महिमा' नामक ग्रन्थ की रचना करने वाली सुश्री सुखाला बाई ही हैं। जयपुर के हल्दिया परिवार के एक वर्तमान सदस्य से ज्ञात हुआ कि इनका यह व्रत आजीवन चला कि ये कम से कम एक पद की रचना बिना किये भोजन ग्रहण नहीं करती थीं।

इनके 'साधु महिमा' नामक लघु ग्रंथ के २८ पद्यों में गुरु महिमा का गान किया गया है। अपने गुरु अखैराम जी के लिए इनकी यह उक्ति बड़ी ही सटीक है—

ज्ञान भक्ति योग में पूरे। सब गुन सील छमा में सूरे॥

इस ग्रंथ का द्वितीयार्द्ध 'धर्म-महिमा' शीर्षक के अन्तर्गत है। इसमें चौपाई, दोहा, सोरठा और छंद में एक ऐसे असुर की कथा वर्णित है, जो अपनी कठोर तपश्चर्या से सिद्ध-साधक हो गया। उसकी इस उपलब्धि पर देवताओं ने ईर्ष्या न करके उन्मुक्त भाव से उसका स्वागत ही किया।[1] इसप्रकार देवताओं के

---

१. बाजा बाजैं अनहद घोरा। पुहुपन की बरखा चहुँ ओरा।
हरिपुर के वासी सुखदाई। मारग में भेटैं सब आई॥
अखैसागर : पृ० ३५५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम्परागत चरित्र में उन्होंने नयी दृष्टि का अभिनिवेश किया है। उनकी इस रचना की निष्कर्षात्मक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जोगी जंगम सेवरा, राव रंक नर नार।
केते होय होय मिट गये, रह्यो ब्रह्म ततसार ॥[1]

सरस निकुंज (जयपुर) की पांडुलिपि सं० ३७१ (जिसका उल्लेख अखैराम जी के प्रसंग में किया जा चुका है) में सुश्री खुसालाबाई का 'बुध विलास' नामक एक स्वतन्त्र कृति संगृहीत है। इसका रचनाकाल सं० १८३७ वि० है। इस प्रकार यह स्वामी चरणदास जी की सं० १८३९ वि० के आरम्भ में हुई जयपुर यात्रा के दो वर्ष पूर्व की रचना है। इसके आरम्भ में बाई खुसाला ने अपने गुरु अखैराम जी का स्मरण इन शब्दों में किया है—

गुरु छौना के शिष्य अखैरामा। हरि सुमिरत रहैं आठो जामा ॥
जिनके द्वैत भाव नहिं कोई। निरगुन सरगुन एकहि होई ॥
षट मन्दिर हरि के करवाये। जिनमें महाविष्णु पधराये ॥

सब मिलाकर यह १४४ दोहों का ग्रंथ है। इसी में उन्होंने अखैराम जी द्वारा निर्मित मंदिरों का भी उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त 'नरसी रो भात' और 'सात वार' नामक उनकी दो अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है। इनके फुटकल पद मुख्यतः राधा-कृष्ण-लीला के गान से ही सम्बन्धित हैं। इनका मल्हार राग में रचित एक झूला का पद द्रष्टव्य है—

हिंडोरे झूलत हैं दुहुँ प्यारे।
श्री राधा वृषभाननन्दिनी मोहन नन्द दुलारे ॥
गौर स्याम छवि बनी अनूपम अंगन भूषन धारे।
झोंटा देइ झुलावत सखियाँ गावत राग मलारे ॥
हरी भरी भई भूमि सुहावन बरसत मेघ फुहारे।
बाई खुशाला अखैगुरु किरपा ये सुख नैन निहारे ॥

यद्यपि खुसाला बाई मुख्यतः जयपुर में ही रहीं क्योंकि उनका पितृगृह और गुरुद्वारा (मन्दिर अटल बिहारी जी) जयपुर में ही था परन्तु उनके शिष्य गोपालदास जी स्याझापुर (शाहजहाँपुर, अलवर के पास) में स्वतन्त्र स्थान बनाकर रहे। इस प्रकार स्याझापुर की शिष्य परम्परा निम्नवत मिलती है—

गुरु छौना जी—अखैराम जी—सुश्री खुशालाबाई—गोपालदास जी—रामगोपाल जी—बनवारीदास जी। रामगोपाल जी की काव्य कृतियों का परिचय चेतनदास जी के बाद दिया जा रहा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) चेतनदास जी (चेतराम)—ये अबैराम जी के प्रबुद्ध शिष्य, सिद्धयोगी एवं अच्छे कवि थे। ये अधिकांशतः माचल (अलवर) में ही रहते थे। 'अखैसागर' में इनकी बानियों का समावेश न होना कुछ विचित्र प्रतीत होता है। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह जी इनकी साधनागत सिद्धियों से प्रभावित थे। कहते हैं कि ये एक-एक महीने की समाधि लगाते थे। इनके विषय में यह भी प्रसिद्धि है कि इनकी समाधि-सिद्धि की परीक्षा हेतु सवाई प्रतापसिंह की ओर से प्रयत्न होते देख इन्होंने एक बार छः मास की समाधि लगाई थी। महाराज के ऐसे प्रयास से रुष्ट होकर उन्होंने जयपुर न आने की प्रतिज्ञा की और दूधाधारी के रूप में वे माचल में ही आजीवन रहे। उनकी छतरी माचल में बनी हुई है।

चेतनदास जी की दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं—(१) 'वरूणचरित्र' और (२) वाणी। इनके वरुणचरित्र की तीन पाण्डुलिपियाँ ज्ञात हैं—प्रथम सरसकुंज (जयपुर) में, द्वितीय श्री जगदीश जी राठौर के यहाँ तथा तृतीय अबैराम जी के जयपुर स्थित स्थान में उपलब्ध है। इनकी 'वाणी' की प्रथम दो पांडुलिपियों में इनके मात्र २५ पद संगृहीत हैं, जबकि तृतीय में बानियों की संख्या ९० से भी अधिक है।

चेतनदास जी की बानियाँ अनेकानेक राग-रागिनियों में निबद्ध हैं। इनकी बानियों से इनके संगीतज्ञ होने का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। इन्होंने अधिकांश पदों में अपना नाम 'चेतराम' लिखा है, जिससे सामान्यतया यह भ्रम उत्पन्न होता है कि चेतनदास और चेतराम दो भिन्न व्यक्ति हैं। अपने समकालीन अन्य चरणदासी कवियों की भाँति इनकी बानियों में भी निर्गुणकाव्य शैली और रसिक भावना से सम्पन्न शैली—इन दोनों शैलियों की बानियों का समावेश है। इनकी इन दोनों शैलियों की एक-एक प्रतिनिधि बानी यहाँ उदाहरणार्थ उद्धृत की जा रही है—

(१) ॥ राग सोरठा ॥

घर बैठे हरि पाया साधो भाइ ॥
सतगुरु के पद बलि बलि जइये जिन परगट दिखलाया।
तीरथ बरत न संजम कीनौ नहिं कछु नेम सधाया ॥
येहि सैन बताई छिन मैं पूरन जोति लखाया।
अंधरे होकर माला पोई गूंगे हरि गुन गाया ॥
बिन कर बजत छतीसो बाजा बिन पग नाच नचाया।
बिन दीपक जहँ अति उजियारो बिन नैनों दरसाया ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिन धरतीज हूँ उलटा कूँवा बिन रसना रस प्याया।
नहीं दूर नहिं निकट हमारे जहँ ले सुरति लगाया॥
चेतराम अखैराम दया सूँ अविगत नगर बसाया।

(२) ॥ रास रस वर्णन ॥

सीस मुकुट कुण्डल महा अलक रही बल खाय।
पीतांबर उर भृगु लता जन चेतन बलि जाय॥
मोतिन की माला गरे बीच धुकधुकी ऐन।
नूपुर सुघर सुहावने मुखहिं बजावत बेन॥
कटि कछनी छुद्र घंटिका मुदरी रतन जराव।
इकीस चिह्न चरणन दिये जन चेतन चित लाव॥
सखियन की उपमा सकल कहं लौं करौ बखान।
घुमर घुमर निरतत सबै बीच सांवरो कान॥
ताल मृदंग मुरचंग ले कोउ बजावत बीन।
कोउ तंबूरा खंजरी गावत राग प्रवीन॥
सबहीं कर सों कर पकर नृत्य करत हरि राय।
छिनन छिनन अंग मोरि करि गावत भाव बताय॥
ठुमुक ठुमुक गति मति लगे नैन सैन मुसुकाय।
चरन चलत घुंघुरू बजत झुनुन झुनुन झनकाय॥
अखैराम गुरुदेव के सुखदाई हैं बैन।
चेतराम दर्शन किये तृप्त होत हैं नैन॥

जहां तक 'वरुण चरित्र' नामक प्रबन्ध काव्य की बात है, यह रचना मेरे देखने में नहीं आई, इसलिए इसके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। अनुमातः यह किसी पुराण के उस अंश का भवानुवाद है, जिसमें वरुण की कथा वर्णित है।

रामगोपाल जी— ये सुश्री खुशाला बाई (शिष्या श्री अखैराम) के शिष्य और शाहजहांपुर (अलवर के पास का स्थान) की गद्दी के महंत गोपालदास जी के शिष्य थे। ये अपने गुरु के जीवनकाल में ही उक्त गद्दी के महंत बना दिये गये थे। इन्होंने सं० १८७० वि० में रचित अपने 'वैराग्य संबोधन ग्रंथ' के आरम्भ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

चौ०—गुरु छौना थांभा कहलावै। ऐसे भेष जान सब पावे॥
अखैराम आचारज गाये। मनु कलि धनवंतर बनि आये॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाई खुसाला ज्ञान सुशीला। ललिता जिमि हरि सेवन शीला ।।
श्री गोपालदास गुरुदेवा। जिन यह कह्या गूप सब भेवा ।।
स्याझांपुर शुभ नगर सुधामा। मन्दिर श्यामा श्याम सुजाना ।।

अपने 'वैराग्य सम्बोधन' ग्रंथ में इन्होंने प्रवृत्ति-निवृत्ति महामार्ग का वर्णन किया है। इस रचना का आधार ग्रंथ 'गरुणपुराण' है। वर्ण्य विषय को २७ विश्रामों में विभक्त किया गया है। इसके शीर्षकों में अनुभवप्रकाश, अघ अष्टप्रकाश, दुख-सुख, वैतरणी, यमपुरी, अठारह नरक, यम-नियमादि योगांग, सांख्य-परिचय, देवहूति, कपिल आदि ऋषियों का वृत्त तथा भक्त लक्षण आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इसकी फलश्रुति इस प्रकार है—

ऊँच नीच जो करम है, जैसी भुगतै जौन।
वैसा ही फल होत हैं, सुख दुख पावै तौन ।।

इसकी पांडुलिपि में पत्रों की संख्या ७४ है। प्रत्येक पत्र पर कुल २० पंक्तियाँ लिखी गई हैं। अनूदित काव्यकृति होने पर भी इसके भाषा प्रवाह और प्रभावोत्पादकता में कोई न्यूनता नहीं है।

इनकी दूसरी उल्लेखनीय कृति 'प्रेमलता' है। इसमें भ्रमरगीत की परम्परा का पालन करते हुए कवि ने उद्धव और गोपी संवाद बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें ५३ छंद हैं। यह रचना सं० १९२३ वि० की है जो कवि की अन्तिम कृति प्रतीत होती है क्योंकि इनके परमधाम पधारने की तिथि 'भादव सुदी सात, सोमवार प्रातः सं० १९२८ वि० है। इस रचना के अन्त में भक्ति के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कवि अपना भी परिचय इस प्रकार दे रहा है—

श्री गोपालदास गुरुदेव जी, दे सैन जु कियो निहाल।
सेवक स्यामास्याम कै, कही राम गोपाल ।।
स्यांझापुर इक नगर है, जयपुर दिल्ली बीच।
पौदा रोपा प्रेम का, सतगुरु अमृत सींच ।।
लाख करोड़ै द्रव्य है, हस्ती बँधे जंजीर।
बिना भक्ति भगवान की, मिटी न जम की पीर ।।

स्वामी राम गोपाल जी की तीसरी प्राप्त कृति का नाम 'वैद्यभास्कर' है। इसकी रचना गुरुवार, पौष सुदी अष्टमी, सं० १८८९ वि० को पूर्ण हुई थी। इसका पूर्व परिचय देते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है—

बड़ो भरोसो मोहि, दयासिंधु श्री राधिका।
सुगम होइ सब बात जिमि, सो सब मात सिखावई ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरक वैद चिन्तामणि निघंटादि पिछान।
सद्ग्रंथन को सार यह वैद्य भास्कर जान॥

इसमें उन्होंने नाड़ी परीक्षा, मूत्र परीक्षा, साध्यासाध्य, सर्व रोगोत्पत्ति एवं चिकित्सा आदि प्रायः सभी चिकित्सकीय विषयों का स्पष्ट, अनुभूत ज्ञान से युक्त एवं वैज्ञानिक विवेचनपरक परिचय दिया है। यह कृति हीरालाल प्रेस—जयपुर से प्रकाशित हो चुकी है। इस ग्रन्थ के माध्यम से रामगोपाल जी ने अपने परदादा गुरु श्री अखैराम की 'वैद्यबोध' वाली परम्परा को आगे बढ़ाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुछौना जी के शिष्यों, प्रशिष्यों और शिष्य-परम्परा में हुए अन्यान्य कवियों ने मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को एक समृद्ध देन दी है। इनका सम्यक् मूल्यांकन जब कभी होगा तो उनकी कृतियों का महत्त्व प्रकाश में आयेगा, यहाँ तो मात्र उनकी ओर इंगित कर देना ही कर्त्तव्य का इदमित्थम् है।

× × ×

(५) आतमाराम इकंगी और उनकी शिष्य परम्परा का संम्प्रदाय और साहित्य को योगदान—

आत्माराम इकंगी—इनका जन्म भाद्रपद शुक्ल तृतीया सं० १८०३ वि० को दिल्ली की घास की मण्डी नामक मुहल्ले में एक सम्पन्न ढूसर भार्गव वंश में हुआ था। इनके पिता श्री जीवनदास प्रकृत्या साधुसेवी तथा सत्संगी थे और आगे-चलकर वे भी अपने पुत्र आत्माराम और पौत्री नूपीबाई सहित चरणदास के शिष्य हो गये थे। ये तीनों अच्छे कवि भी थे। चरणदास जी अपने दिल्ली-निवास के क्रम में कभी सहजोबाई जी के पिता हरप्रसाद जी के यहाँ और कभी श्री जीवनदास के यहाँ रहा करते थे। सहजोबाई के भाई श्री दासकुंअर और श्री आत्माराम में बड़ी मित्रता थी। यद्यपि हरप्रसादजी का पूरा परिवार संत चरणदास का शिष्य हो गया था परन्तु प्राप्त उल्लेखों के अनुसार दीक्षित होने के पूर्व आत्माराम की आस्था धर्म-कर्म में नहीं थी। वे एक सम्पन्न गृहस्थ थे और खूब बने-ठने तथा अँकड़े रहते थे। आत्माराम के रंग-रूप को देखते हुए उनके मित्र दासकुँअर से चरणदासजी ने एक बार पूछा था 'ये हिन्दू हैं या मुसलमान?' आत्माराम जी ने उत्तर दिया 'आप सिद्ध पुरुष हैं, मेरी वेश-भूषा से पहचान ही गये होगें कि मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान।' इसके आगे का वर्णन जोगजीत जी इस प्रकार करते हैं—

भक्तिराज कहीं यो नहीं जाना। तरह चलन सूं नहिं पहचाना।
है गुरुमुखी कि अब तक नाहीं। तिलक न कंठी गल के माहीं॥
सुनके आतम राम रिसाने। कड़वे टेढ़े बचन बखाने॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्ततः चरणदास जी ने उन्हें यम-यातना के भय के प्रति सावधान किया। उन्होंने कहा—'निश्चय नर्क परोगे जाई। यम की मार सहोगे भाई।।'[1]

उनका व्यक्तित्व भी बड़ा आकर्षक और रोबीला था। वे संतप्रवर श्रीचरणदास की विचित्र वेश-भूषा की प्रायः हँसी उड़ाया करते थे और उनकी साधना को ढोंग समझते थे। उनकी इस मनःस्थिति का वर्णन रामरूपजी और जोगजीत जी, दोनों ने समान रूप से किया है।

तदनुसार एक दिन उन्होने चरणदास जी की सिद्धियों का उपहास करने के लिए उनसे यमलोक और यमराज का स्वरूप-दर्शन कराने की शर्त रखी, जिसे श्री चरणदास ने स्वीकार कर लिया तथा उन्हें इन दोनों का दर्शन भी करा दिया। तभी से वे उनके शिष्य बन गये और कंठी-तिलक के साथ 'आतमाराम इकंगी' नाम धारण किया।[2] 'इकंगी' उपाधि उन्हें क्यों दी गई, इसका कारण स्पष्ट नहीं होता। अंततः उनका भी पूरा परिवार चरणदास जी की शिष्यमंडली में सम्मिलित हो गया था। उन्होंने स्वयं तथा उनकी लड़की तूपीव ई ने साधना और साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में बड़ा यश अर्जित किया। 'नवसंतमाल' और 'लीलासागर' के साक्ष्यानुसार गुरु ने उन्हें भगवान् के भी दर्शन करा दिये थे। उनकी भक्ति में तल्लीनता का वर्णन उनके गुरुभाई श्री जोगजीत के शब्दों में द्रष्टव्य है—

ता दिन सों जगरीति विसारी। हरिकी भक्ति जगी हिय प्यारी।
नवधा अंग अंग में आये। फर्म-भर्म सबही बिसराये।।
राम भजन बिन और न भावै। सरबन हरि रस कथा सुहावै।
मान बड़ाई सकल विसारी। हरि गुरु संत सेव हिय धारी।।[3]

गुरु के जीवनकाल में तो वे अधिकांशतः दिल्ली में ही रहे परन्तु उनके इहलोकत्याग के बाद जयपुर नगर में बजाजों के बगीचे के पीछे वद्रीविशाल की डूंगरी पर आतमकुंज का निर्माण कर वे भक्ति-प्रचार करने लगे। जयपुर में उनका एक स्थान और था जिसे बारह गनगौर का स्थान कहते हैं।

आतमराम इकंगी का परलोकवास-काल सं० १८६७ वि० है। इसका प्रमाण यह है कि जयपुर से आमेर जाने के रास्ते पर रामगढ़ के कुछ पहले सड़क की दाईं ओर कुछ छतरियाँ बनी हुई मिलती हैं। इनमें से एक में चरणदास जी की पादुका सं० १८५३ वि० की बनी हुई है, जिसे श्री आतमराम ने बनवायी थी।[4] दूसरी छतरी में आतमरामजी की पादुका है, जो सं० १८६७ वि० की है।

---

१. लीलासागर : पृ० १९४। २. गुरुभक्तिप्रकाश, १५३-५४।

२. लीलासागर : पृ० १९७।

३. लीलासागर—हस्तलिखित प्रति, पृ० १४४।

४. इस पर इसके निर्माण की तिथि इस प्रकार अंकित है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत् अष्ट दस जु पर त्रेपन भये व्यतीत।
मास फाल्गुन शुक्ल तिथि पून्यौ परम पुनीत ॥

सम्भवतः इनके सर्वप्रथम शिष्य लक्षिदास थे, जिनका निधन-काल सं० १८६८ वि० है। उन्होंने सं० १८३३ वि० में उनसे दीक्षा ली थी। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि आत्माराम जी २० वर्ष की अवस्था में ही विरक्त बाना धारण कर चुके थे। श्री आतमराम ने जयपुर के आतमकुंज की व्यवस्था का भार लक्षिदास जी को ही सौंपा था। इनके अन्य विशिष्ट शिष्यों में श्री मानदास, शोभादास, सुश्री ज्ञानवतीबाई, श्री पूर्णदास (पूरणदास) निरभैदास तथा जीवनदास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी कवि थे। श्री मानदास के शिष्य श्री जैदास ने तो आतमराम को 'परमहंस' कहा है।[1] उनके कथनानुसार इनका जीवन परम निस्संग और विरक्त था। धर्मप्रचार के क्षेत्र में श्री आतमराम की अखैराम जी के साथ बड़ी कड़ी होड़ थी। दोनों को तत्कालीन राजा सवाई ईश्वरसिंह और प्रताप सिंह जी से पर्याप्त श्रद्धा और सहायता की प्राप्ति हुई थी। दोनों की शिष्य-परम्परा में प्रशस्त विद्वान्, वक्ता और कवि शिष्यों का बाहुल्य था। यदि यह कहा जाय कि चरणदास जी के इस शिष्य की शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा ने सर्वाधिक समृद्ध काव्य रचना की तो इसमें अत्युक्ति नहीं है। इस अर्थ में इनका 'इकंगी' (अद्वितीय, अकेला) नाम सार्थक है। प्राप्त तथ्यों के आधार पर इकंकी जी की जयपुर स्थित गद्दी की जो शिष्य-परम्परा प्राप्त होती है, उसका स्वरूप निम्नलिखित है—

आतमराम (आत्माराम) इकंगी
(सं० १८०३–१८६७ वि०)

(कालावाली के महंत) शोभादास जी	मानदास जी (बद्रीविशाल की डूंगरी, जयपुर के महंत)	लक्षिदास (लक्ष्मीदास) (जयपुर के आतमकुंज के महन्त (सं० १८००–१८६७ वि०)

१. परमहंस मगन सुख भारी। भ्रम तन गति भय आनन्दकारी ॥
सब माहीं सब सूँ निःसंगी। करम मरम सों सदा असंगी ॥
—भाषामान विनोदपोथी ।

तथा

अमरलोक बिच अडिग सिंहासन रतन जटित बहुरंगी।
सतगुरु बैठे आसन मारे आतम राम इकंगी ॥
—श्री लक्षिदास कृत शुकपुराण ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैदास माधवदास सेवादास लालदास
सं० १८६९ वि० में वर्तमान
केवलदास (सं०१८६९वि० में वर्तमान)

साधुशरणदास गुरुसरनदासजी रामसरनदास
सं० २००७ वि० तक वर्तमान

मंगलदास
चेतनदास

कन्हैयादास जी (सं० १८७५–१८८५ वि०)
गंगादास जी (सं० १८८५–१८९७ वि०)
गोबर्द्धनदास जी (सं० १८९७.....
(सं० २०१० वि० तक येन केन प्रकारेण चलते रहने के बाद यह स्थान गृहस्थ गद्दी के रूप में अब तक बना हुआ है परन्तु साम्प्रदायिक आयोजनों में यहाँ का कोई सहयोग नहीं रह गया है।

सं० १९२४ वि० में यहाँ से मोहनदास जी एक मेले में उपस्थित हुए थे।

इस समृद्ध परम्परा के इतने योग्य शिष्य-प्रशिष्यों का सं० १९५० वि० के उपरान्त हुए किसी भी मेले में उपस्थित न होना बड़ा ही आश्चर्यजनक है। सम्भव है कि उस समय तक अखैराम जी के मोतीकटले वाले थाँभे और आतमराम इकंगी के स्थानों के सम्बन्ध अच्छे न रह गये हों। जहाँ तक शुक सम्प्रदाय के विस्तार में योगदान देने की बात है, इकंगी जी की शिष्य-प्रशिष्य परम्परा की सक्रियता उनके तथा उनके शिष्यों के जीवन-काल तक ही रही। इसके विपरीत जयपुर स्थित अखैराम जी का थाँभा पर्याप्त सक्रिय रहा और उसने वर्तमान हरियाणा और पंजाब प्रान्तों के अतिरिक्त राजस्थान के तत्कालीन अलवर और जयपुर राज्यों में अनेक थाँभों का निर्माण किया। जहाँ अखैराम जी की शिष्य-परम्परा का सम्प्रदाय-विस्तार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है, वहीं साहित्य-रचना के क्षेत्र में आत्माराम जी की परम्परा की बहुत बड़ी देन है।

इनके वरिष्ठ शिष्य लक्षिदास के शिष्य गुरुसरनदास, रामसरनदास और माधुरीशरण के अतिरिक्त गुरुसरनदास के शिष्य हरीदास का साहित्य प्राप्त है। इसी प्रकार श्री मानदास के शिष्य जैदास, माधवदास, सेवादास और लालदास के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त जैदास के शिष्य केवलदास की रचनाएँ भी प्राप्त हैं। इनकी पुत्री तूपीबाई जी (चरणदास जी की शिष्या) भी अच्छी कवयित्री थीं।

आतमराम का साहित्य—इनका एक ग्रन्थ 'सातिक सुभ लच्छन' के नाम से ब्रह्मविद्यासागर प्रेस-लाहौर से सन् १९०५ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसकी प्रकाशित प्रति तो देखने में नहीं आई परन्तु इसकी पांडुलिपि दिल्ली स्थित सहजोबाई जी के स्थान पर सुरक्षित है। इस पांडुलिपि में इसके साथ ही आतमराम जी के कुछ फुटकल पद भी संगृहीत हैं। इनकी इन दोनों कृतियों (सातिक-सुभ लच्छन तथा बानी) की पाण्डुलिपियाँ जयपुर के सरसकुंज की जिल्द सं० ३१९ में भी हैं। इनके 'सातिग शुभलच्छन' की एक प्रति 'स्वातिग शुभलच्छिन' के नाम से नागरीप्रचारिणी सभा के खोज विवरण संख्या ४१-०८ में भी उल्लिखित है।

(अ) सातिक सुभलच्छन—यह १०० दोहों और ६० चौपाइयों का एक लघुग्रन्थ है। इसमें चौपाई और दोहे का क्रम अनिश्चित है। कहीं ३-४ चौपाइयों के बाद ही दोहा आ जाता है और कहीं ८ या ९ चौपाइयों के बाद दोहा आता है। यह रचना ज्ञान, वैराग्य और उपदेशमूलक है। इस ग्रन्थ के नामकरण का कारण कवि ने ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार बताया है—

सात्विक शुभलक्षण कही, पढ़ि गुनि आवै सुद्धि।
राजस तामस जाहिं भजि, मातिग उपजै बुद्धि॥[1]

दृष्टांत और रूपक अलंकार कवि को बहुत प्रिय हैं। कहीं-कहीं रूपक का भी बड़ा स्वाभाविक प्रयोग इन्होंने किया है।[2] गुरु के प्रति व्यक्त निष्ठा और निवेदन की इन पंक्तियों से इनकी काव्य-निपुणता भी व्यंजित होती है—

---

१. सातिक सुभलच्छन : दोहा सं० ९८।

२. टोपी धरि न्यासी इकता इक पेंचा से,
त्रिकुटी में तिलक भाल भक्ति को संवारा है।
जत्त की जनेऊ अरु सत्तहू की सैली गल,
ज्ञान हू की कूबरी करि कर्मन कूं मारा है॥
कमर में अढगा करि नीकी नीकी भाँति,
धरना लंगोट खैंच काम कूं बिडारा है।
मारी है लात कनक कामिनी कूं चरनदास,
आतम इकंगी के तोड़ा पग डारा है।
'श्री चरनावत वैष्णव वर्षोत्सव' के पृ० ५ पर संकलित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों करके थाल में, धरौं नारियल सीस।
भेंट करौं सुषदेव की, पूजा बिस्वा बीस ॥ ५ ॥
गुरु मेहा सम स्वाति की, कदली सीप मँझार।
भयो कपूर मोती भयो, बिष भयौ नाग अहार ॥ ५२ ॥[1]

सन्त काव्यधारा के अन्य सन्तों की भाँति इन्होने भी 'सहज सुन्नि में मोती निपजै' वाली निर्गुण बानी तथा उलटबाँसी रची है। इनका इस प्रकार का एक पद द्रष्टव्य है—

साधो भाई झिलमिल रूप अपारा।
सहज सुन्न में मोती बरषै बिनु दामिनि चमकारा ॥
बिनु कर ताल बजत दिन राती बिनु मुख मुरली बाजै।
बिनु पग निरत घूँघरू झनकै सप महाधुन गाजै ॥
बिना सिंध जहँ गर्जन भारी बहरा आनन्द पावै।
गूंगे भये वेद के वक्ता जब ऐसी छक छावै ॥
कागा पलटि भयो गति हंसा सुध बुध तन बिसराई।
चित्त स्थिर चंचल मन थाक्यो पाँचों उलटि समाई ॥
चरनदास गुरु भेद दियो तब अगम देस गम पाई।
आतमराम बिनोद महाई अजब नगर सुखदाई ॥[2]

इन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था। ये शास्त्र-पुराण के अच्छे ज्ञाता थे। इनके समकालीन जयपुर और आस-पास के बुद्धिजीवी, उच्च पदाधिकारी, कवि और राजपुरुष इनसे प्रभावित थे। यद्यपि इनकी कुछ बानियाँ निर्गुणवाणी की पद्धति पर रचित हैं परन्तु ये राधा-कृष्ण की युगलमूर्त्ति के उपासक थे। इनका झुकाव कृष्णोपासना के रसिक सम्प्रदाय की ओर भी था। इनके शिष्य लच्छीदास (लक्ष्मीदास) ने अपने लिए 'लक्षदास सखी' शब्द का प्रयोग किया है, इससे उक्त अनुमान की पुष्टि होती है। इतना ही नहीं बल्कि कई पदों में इन्होंने अपने नाम के साथ भी सखी शब्द जोड़ा है। आत्माराम जी न केवल रसिक भावना से ओत-प्रोत काव्य के कर्त्ता हैं, वरन् एक सिद्धहस्त शब्दचित्रकार भी हैं। उन्होंने निम्न पद में श्रीकृष्ण की बाँकी छवि और नटवर वेश का कितना सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है, यह द्रष्टव्य है—

॥ राग हेली ॥

हेली मोहनि मूरति स्याम की नैनन रही समाय।
हेरत ही बौरी भई री सब सुधि गई हिराय ॥

---

१. सातिक सुभलच्छन : दोहा सं० ५१–५२।
२. ब्रह्मविद्यासागर : शब्द सं० ५५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोर मुकुट कटि काछनी री नटवर भेष बनाय।
भाल तिलक अति सोहनो री सोभा वरनि न जाय ॥
ललित पलक अलि लोचना री भौहनि रहे है चढ़ाय।
श्रवणन में कुण्डल बने री अलक रहे बल खाय ॥
सबहिन में मेरो नाम लै री टेरत वेन बलाय।
छल बल करि मनुवाँ हरचो री गयो ठगोरी लाय ॥
चरनदास सूँ बीनती री अब कै बहुरि मिलाय।
'आतमराम सखी' कहै चरनन सीस नवाय ॥[1]

इन्होंने पंजाबी भाषा में रचित पदों में भी अपने नाम के साथ 'सखी' शब्द जोड़ा है जब कि प्रायः अन्य चरणदासी कवियों ने माधुर्यभाव के पदों को मुख्यतः ब्रजभाषा में ही रचा है। इनका एक पद इस प्रकार है—

इश्क असानुं कबलीं कीता सुधि बुधि रही न राई।
असी अयानी फिरी दीवानी तरफि तरफि जी जाई ॥
नख सिख विष साढ़े तन फैला बिरह भवंगम खाई।
है कोई 'आतमराम सखी' दी लहरि उतारै आई ॥[2]

आतमराम जी भाषा के डिक्टेटर थे। सन्तों और भक्तों की बानियों में प्रयुक्त प्रायः सभी भाषाशैलियों के प्रयोग में वे निपुण थे। ऐसा तभी सम्भव है जब कवि को अनेक काव्य भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो। उनकी बानियों में भाषा प्रयोग की अनेक शैलियाँ मिलती हैं। संस्कृत, फारसी, पंजाबी, खड़ी बोली, ब्रजभाषा, मारवाड़ी आदि के शुद्ध प्रयोगों के साथ ही मिली-जुली खिचड़ी भाषा का प्रयोग भी उन्होंने बखूबी किया है।

मुनि शुकदेव की स्तुति में लिखित अनेक पदों में से उनका निम्न पद हिन्दी-संस्कृत मिश्रित भाषा-प्रयोग का उपयुक्त उदाहरण है—

नमो शुकदेव तुम चरण को बंदनं।
सकल संशय हरन करन सुख कंदनं ॥
भौ के विदारन निवारन भरम व्याध के ज्ञान के सिंधु कर्म बंध के खंडनं।
धर्म के धारन उधारन महापतित के दीन के नाथ अरु दुष्ट दल दंडनं ॥
दया के करन दुख हरन आनंद घन जनक के शिष्य श्री व्यास के नंदनं।
चरनदास के गुरु जन आतमाराम की लेहु परनाम सुरसभा के मंडनं ॥[3]

---

१. राठौर जी के संग्रह से साभार।
२. ,, ,, ,, ।
३. नित्य पाठ संग्रह—(संग्रहकर्त्ता श्री सरसमाधुरीशरण, प्रकाशित) : पृ० सं० ८१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके अधिकांश पदों में तत्सम शब्दों और समासान्त पदों की बहुलता इनके बहुभाषाज्ञान और सुपठित होने का प्रमाण है। इनके कवित्त रीतिकालीन उच्च-कोटि के कवियों के समकक्ष हैं। उदारण के रूप में एक कवित्त उद्धृत करना उचित होगा—

कवित्त—आनन अरूप रूप लोचन विशाल महा,
रति हूँ तैं नीकी देखि शशि तो लजात है।
हाटक सूँ सरस अंग कोमल किशोर वैस,
चंप की डार मानों भँवर अति लुभात है॥
कमला चपला सी वृषभान की सुता सो,
चख लख सुचारु रूप मन तो हुलसात है।
कहत 'सखी आतम' श्याम नेकहुँ न करत न्यारी,
ऐसी प्रिया प्यारी जू बिसारि कैसो जात है॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्माराम जी एक उच्चकोटि के भक्तकवि हैं और इनकी बानियाँ गहन अध्ययन का विषय हैं।

आत्माराम इकंगी की शिष्य परम्परा के कवि—

श्री आत्माराम ने स्वयं तो उत्कृष्ट कोटि की काव्य रचना की ही, साथ ही अपने शिष्यों और उनकी शिष्य परम्परा को साहित्य सर्जन की उन्होंने उल्लेखनीय प्रेरणा दी। परिणामतः यह परम्परा हिन्दी को एक समृद्ध साहित्य भण्डार सौंप सकी। इस भण्डार में अनेक रत्न भरे हुए हैं। इस कड़ी में लक्षिदास, निर्भैदास, पूर्णदास, मानदास, जीवनदास और ज्ञानमती बाई (सभी आत्माराम जी के शिष्य) उज्ज्वल रत्न हैं। इनके अतिरिक्त इस परम्परा में गुरुसरनदास, रामसरनदास, चन्द्रदास और साधुसरन (सभी लक्षिदास जी के शिष्य), जैदासी, माधोदास, रूपदास, लालदास, मीराबाई एवं सेवादास (सभी मानदास जी के शिष्य) तथा अनेक परवर्ती कवियों का साहित्य प्राप्त है। यहाँ इनमें से कतिपय अत्यन्त उल्लेख-नीय कवियों का साहित्यिक परिचय दिया जा रहा है।

(१) श्री लक्षिदास—जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, ये आत्माराम जी के सम्भवतः सर्वप्रथम शिष्य थे। इनके नाम के कई रूपान्तर मिलते हैं, यथा लक्ष्मीदास, लक्षिदास और लच्छदास आदि। इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध होती है। इन्होने सं० १८२३ वि०, बैसाख कृष्ण षष्टी, बुधवार को दीक्षा लेकर विरक्त बाना धारण किया था। इस सम्बन्ध में स्वयं उन्होंने इन शब्दों में प्रकाश डाला है—

जैपुर सवाई मध्य धाम श्री आतमकुंज,
निश्चय निरधार वहाँ आतम बिचार को।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत् अठारह सत बीस अरु तीन लगे,
छठ बैसाख बदी वार बुधवार कौ।
घड़ी दस दिवस चढ़े घर सों असंग भये,
आतम इकंग संग भयो निराधार कौ।
लक्षिदास दास सो उपाय कर जोरि करै,
कैसे बिसतरै रूप कर्म गुण अपार कौ।।[1]

इनका निधन ज्येष्ठ सुदी पंचमी, सं० १८६७ वि० को हुआ था। उस समय की इनकी छतरी और पादुका जयपुर के बारह गनगौर स्थित आतमकुंज में बनी हुई है। चरणपादुका के नीचे दक्षिण से उत्तर की ओर यह दोहा अंकित है—

श्री शुक सिख चरणदास जी ता सिख आतम राम।
तिन सिख श्री लक्षिदास जी तिनकी चरण पादुका नाम।।

पूर्व से पश्चिम की ओर का दोहा इस प्रकार है—

संवत् अष्टादस सु पर षटसत भये जु विनीत।
जेठ सुदी तिथि पंचमी बृहस्पतिवार पुनीत।।

श्री आतमराम इकंगी के वरिष्ठ शिष्य होने के कारण उनके द्वारा जयपुर में स्थापित आतमकुंज के प्रथम महन्त श्री लक्षिदास जी ही थे। ये श्री विहारी जी (राधा-कृष्ण) के उपासक थे और रात दिन पूजा अर्चा में लीन रहते थे। उनसे प्रभावित होकर जयपुर के अनेक लोग उनके शिष्य बने। उन्हें ब्रज का निवास विशेष पसन्द था। ये स्वयं तो अच्छे कवि थे ही साथ ही उनके शिष्यों में श्री गुरु-सरनदास, चन्द्रदास, साधुसरन रामसरन और आदि कई उच्चकोटि के साधक तथा कवि हुए हैं।

इनकी कुल ९ काव्य कृतियाँ प्राप्त होती हैं। इन रचनाओं की रचना का कालक्रम निर्धारित करना कठिन है। केवल इनकी एक ही कृति ऐसी है, जिसमें रचनाकाल अंकित है। सम्भवतः यही उनकी प्रथम कृति हो सकती है। इसका नाम 'चरणप्रकाश' या 'भरद्वाज पंचाध्यायी' है। इस ग्रंथ की समाप्ति का काल सं० १८२३ वि०, भाद्रपद शुक्ल-तृतीया, मंगलवार है। लक्षिदास की रचनाओं की जो पाण्डुलिपियाँ इस समय प्राप्त होती हैं, वे अधिकांशतः उनके निधन के उपरांत की हैं। इनमें से कुछ के लिपिकर्त्ता उनके प्रशिष्य (गुरु सरनदास के शिष्य) श्री हरीदास जी हैं, जिन्होंने सं० १८६९ वि० में इन पांडुलिपियों को तैयार किया था। हरीदास द्वारा लिखित इनकी 'लक्षिदास ग्रंथावली' की पांडुलिपि में (१) सार संग्रह, (२) बारामास, (३) मांझ, (४) दोहा, (५) मंगलाष्टक, (६) लक्षिदास की

१. शुकपुराण—लक्षिदास कृत : छन्द सं० ८६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी, (७) स्फुट पद और (८) चरणप्रकाश का समावेश है। ये आठों ग्रंथ 'लक्षिदास ग्रंथावली' के अंग हैं। लक्षिदास द्वारा रचित 'शुक पुराण' या 'सुखसागर पुराण' इस ग्रंथावली में संकलित उक्त लघु ग्रंथों के अतिरिक्त एक स्वतंत्र रचना है जिसकी स्वतंत्र पाण्डुलिपि उपलब्ध है। इन दोनों ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ सरसकुंज–जयपुर में वर्तमान हैं।[1] इसका रचनाकाल सं० १८१२ वि० है। इस प्रकार यह कवि की प्रथम कृति प्रमाणित होता है। इसकी पुष्पिका में इसका रचनाकाल इन शब्दों में निर्दिष्ट है—

अष्टादस शत वर्ष परि, द्वादस भये व्यतीत।
मार्गशीर्ष सित सप्तमी, रच्यौ ग्रंथ सुभ रीति॥

(१) शुकपुराण—इसका एक अन्य नाम सुखसागर पुराण भी है। जैसा शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह पौराणिक शैली का एक प्रबन्धकाव्य है। इसका कथ्य ४ विश्रामों के अन्तर्गत ३९ अध्यायों में विभक्त है। गुरु-शिष्य संवाद के माध्यम से श्री व्यास के पुत्र मुनि शुकदेव जी की कथा का वर्णन ही इस ग्रंथ का वर्ण्य है। कुल ७२ पत्रों के इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि के लिपिकर्त्ता लच्छीदास जी के शिष्य श्री केवलदास हैं। ४" × ६" के विस्तार वाले पत्रों पर लाल स्याही के सुन्दर घेरे और स्पष्टाक्षरों में प्रत्येक पृष्ठ पर १६ पंक्तियों के क्रम से लिपिबद्ध इस काव्य में १७५८ पद्य-पंक्तियों का समावेश है, जिनमें १२३१ चौपाइयों की पंक्तियाँ, ४२ छप्पय पंक्तियाँ और १ त्रिभंगी छन्द हैं। इस ग्रंथ के आरम्भ में कवि ने गो साइं तुलसीदास जी की भाँति अपना दैन्य एवं अज्ञान इस प्रकार व्यक्त किया है—

पढ़्यौ न पिंगल पुरान वेद संस्कृत कछू,
जानूं न कवित्त छन्द जाति गन अगन की।
कवि न कहाऊँ करि कविता न जांचू काहू,
राम गुन गाऊँ यहै रुचिर रुचि मन की॥
अगुन सगुन सरूप सो संतन लड़ायौ ज्यों,
त्यौं ही भक्ति भाव चहूँ चाह नहीं धन की।
आतम इकंगी गुरुदेव जू कृपा करी,
हरि अभिलाष आनि लक्षिदास जन की॥[2]

चरणदासी संप्रदाय में एक विरोधाभास यह दिखाई देता है कि प्रायः सभी कवियों की बानियों जहाँ एक ओर अति ज्ञानमार्गी अभिव्यक्ति परम्परा का अनुसरण करती हैं वहीं दूसरी ओर युगलोपासना का परवर्ती रूप अर्थात् सखी

१. द्रष्टव्य : जिल्द सं० २९१ तथा २९९।
२. शुकपुराण : प्रथम विश्राम, प्रथम अध्याय छन्द २।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव की साधना की ओर झुकी दिखाई देती हैं। एक ही कवि के दो प्रकार के विचार सामान्य पाठक को उलझन में डालने वाले सिद्ध होते हैं। अन्ततः उसे इस निष्कर्ष पर पहुँचना ही पड़ता है कि इन कवियों के उपास्य तो राधा-कृष्ण ही हैं, जो परब्रह्म के अंशीभूत या स्वरूप हैं। एक ही तत्व के निर्गुण ब्रह्म और युगल सरकार-दो बिम्ब हैं। अतः इन कवियों में जो रहस्यवादी उक्ति मिलती है, वह भी वस्तुतः सगुण उपासना के ही भावों की प्रकारान्तर से अभिव्यक्ति है। इसी निर्गुण सगुण उभयात्मक स्वरूप का चित्र लक्षिदास के निम्न पद्य में इस प्रकार चित्रित है—

आँखिन में बसै न आनि न आँखिन सु देखै आनि,
चित में प्रकाशरूप तुमहीं चित करे हों।
सोहन सलोने स्याम मोहन मनहरन प्यारे,
न्यारे न नेकु नित हित ही में भरे हों॥
परस्यौ कर सीस सो असीस बहु भाँति भई,
सोई कर कृपा सिधि सीस मेरे धरे हौ।
कहै लक्षिदास दास आतम इकंगी को जानि,
बिहारी बाँके मोहन तुम ढरे हौ॥[1]

(२) सार-संग्रह—इस ग्रंथ में ६६ कवित्त, १८ सवैया, २ झूलना और १ दोहा—कुछ ८७ छन्दों का समावेश है। इसमें ज्ञान, भक्ति, योग और वैराग्य आदि सम्बन्धी पद्यों का संग्रह है। इसकी स्वतंत्र पाण्डुलिपि दिल्ली स्थित श्री रामरूप जी के थाँभे के संग्रहालय में सुरक्षित है।

(३) बारामास—यह मात्र १२ चतुष्पदी लावनी की एक छोटी सी रचना है। इसमें ज्ञान-भक्ति-विरह सम्बन्धी भावों की अभिव्यक्ति मुख्य उद्देश्य है। इसकी भी पाण्डुलिपि दिल्ली के उक्त संग्रहालय में सारसंग्रह के साथ एक ही जिल्द में प्राप्त है।

(४) मांझ—इसमें ३५ चतुष्पदी छन्दों में श्री विहारी जी की शोभायात्रा का वर्णन है। मांझ एक छन्द विशेष और स्वतंत्र काव्यरूप है। इस छन्द की एक बानगी द्रष्टव्य है—

चल सखी भनक भरी मेरे स्रवनन मोहन बेनु बजाई।
तन भयो सिथिल बिकल भयो मनुवां सुध बुध सब बिसराई॥
मैन छयो चित्त चैन गयो सब बिरह भयो दुषदाई।
लक्षदास घट प्रान रहै जो मिलै स्याम सुषदाई॥

---

१. शुकपुराण : तृतीय विश्राम : छन्द सं० ३६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) दोहा—यह मात्र ४० दोहों की रचना है, जिसमें ज्ञान-वैराग्य सम्बन्धी उपदेश निहित हैं।

(६) मंगलाष्टक—मंगल छन्द में राम और कृष्ण का चरित्र आठ अष्टकों (प्रत्येक अष्टक में आठ छन्द) में वर्णित होने के कारण ही इसका नाम मंगलाष्टक है। कुल मिलाकर इसमें ६४ छन्द हैं।

(७) लक्षिदास की वाणी—इसमें कुल २८७ पद हैं, जो राग भैरूँ, बधाई, बरुवै, कान्हरा, होरी काफी, टौड़ी, सोरठा, धनाश्री आदि विविध रागों में निबद्ध हैं। इन पदों में से ५९ मंगलाचरण, १०० प्रेमशृंगार, ५१ करुणा-भक्ति और ४३ ज्ञान-भक्ति से सम्बद्ध हैं। इनके अतिरिक्त ३४ पद स्फुट हैं।

(८) स्फुटपद—इस शीर्षक के अन्तर्गत ६० पदों का समावेश है। इस स्वतंत्र संग्रह की पत्र सं० ८६ है।

(९) चरणप्रकाश या भरद्वाज पंचाध्यायी—यह पद्मपुराण के पाँच-अध्यायों का श्लोकशः भाषानुवाद है। इसका रचनाकाल सं० १८२३ वि० है। प्राप्त पाण्डुलिपि (सरसकुंज—जयपुरवाली प्रति) का लिपिकाल सं० १८६९ है। इस ग्रन्थ की रचना मुख्यतः दोहा-चौपाई, सोरठा और छप्पय छन्द में हुई है। इसमें लक्षिदास ने श्रीचरणदास की स्तुति बड़े विस्तार के साथ की है।[1]

लक्षिदास की एक स्वतंत्र कृति 'ज्ञानमयी बानी' के नाम से महन्त प्रेमदास जी (दिल्ली) के यहाँ देखने को मिली थी, जिसमें २२ छन्दों में ज्ञानोपदेश निहित हैं। संभवतः यह स्वतंत्र रचना न होकर उक्त ग्रन्थों की कुछ चुनी हुई बानियों का संग्रह मात्र है।

भाषा पर कवि का अद्भुत अधिकार है। प्रसंगानुरूप भाषा-प्रयोग में ये निपुण हैं। इनकी रचनाओं में सधुक्कड़ी भाषा प्रायः देखने को नहीं मिलती। एक मँजे हुए कवि की भाँति ये शब्दचित्र उपस्थित करने में सक्षम हैं। इनका एक बधाई का पद द्रष्टव्य है—

---

१. भक्तराज महाराज सो पूरण काम हैं।
श्री चरणदास शुभनाम रूप अभिराम हैं॥
नौधा में अति निपुण नेह हरि सूं किये।
छके रहैं उन्मुक्त प्रेम रस को पिये॥
राम दुहाई फिरी सकल जग बस करी।
सहजि अमन मन भयो धारणा निज धरी॥
···जिन चरणन की शरण आत्माराम हैं।
जन लक्षिदास करजोर जु करत प्रणाम हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज महामंगल पुर माहिं।
रानी जसुदा ढीटा जायौ उपमा कछु कहि आवत नाहिं ॥
घर घर नगर नगर सूं बनि-बनि नंदभवन ब्रज बनिता जाहिं।
द्वारे मोर दुंदुभी बाजै झँझँझँ झांझर झुनकाहिं ॥
गोपी ग्वाल परस्पर नाचत हरद दही लिपटाही।
अंगन बीच मची दधि काँदौ भादौ सौं बरसत हरषाहिं ॥
युवतिन सहित देवगन छाये छये विमान भई छिति छाहिं।
कौतुक देखि मुदित मन सुरमुनि पुष्पन की बरसा बरसाहिं ॥
कंचन कलस जटित रतन मणि सुंदर मन्दिर अधिक सुहाहिं।
कलस कलस पर धुजा पताका त्रिविध समीर परस फहराहिं ॥
तात मात धन बाँटत अनगिन गुनि जन याचक लेत अघाहिं।
आतमराम लाल मुख निरखत लक्षदास घरनि बलि बलि जाहिं ॥[1]

श्री लक्षिदास या लक्ष्मीदासजी ने अपने लीलागान वाले पदों में अपने नाम के पूर्व या बाद में 'सखी' शब्द का भी प्रयोग किया है, जो उन्हें अपनी संप्रदायानुमोदित परम्परा में खींच लाती है। इनके पदों की ध्वन्यात्मकता और सानुप्रासिकता माधुर्यवर्द्धन में सर्वथा सहायक सिद्ध हुई है।

आज माई बरसानौ सरसानौ।
घर घर बाद्य दुंदुभि बाजे गाजे नौबत खानो ॥
देखो श्री वृषभान के मन्दिर फरकत ध्वजा निसानों।
...आतम सषी अधिक आनन्दित पूरण भाग पहचानो ॥
लक्षदास की स्वामिनि श्यामा जीवन धन मन प्रानो ॥[2]

रसिक साधना में श्री कृष्ण की अपेक्षा राधा जी का महत्व अधिक माना गया है। वृन्दावन की तो अधिपति राधा रानी ही हैं। वहाँ श्रीकृष्ण भी उनके सखा मात्र हैं।

श्री राधा की नगर बन बगर सबै राधा की
राधा को धाम नाम जाको वृन्दावन है।
श्री राधा की उपास जहाँ रास और विलास सदा,
सहजै प्रकाश शोभा सुख की सदन है ॥[2]

---

१. श्री चरणावत वैष्णव वर्षोत्सव (संग्रहकर्त्ता श्रीरूपमाधुरीशरण), पृ० ३१।
२. वही : पृ० ४९–५०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) श्री गुरुसरनदास—ये श्री लक्षिदास के शिष्य थे और आतमकुंज—जयपुर में ही रहकर साधना एवं सत्संग किया करते थे। इनके व्यक्तिगत परिचय के सूत्र प्राप्त नहीं होते। संभवतः सं० १८३० वि० के आस-पास ही इन्होंने लक्षिदास जी से विरक्त दीक्षा ग्रहण कर ली थी। आतमकुंज में इनकी जो छतरी निर्मित हुई है, उसके लेखानुसार इनका निधनकाल सं० १८७५ वि० है। यह अंश इस प्रकार है—'श्री रामजी' 'श्री लक्षदास' शिष्य श्री आतमराम तिन शिष्य महन्त श्री गुरुसरनदास जी की पादुका नाम—सं० १८७५ वि०। इनके शिष्य हरीदास जी अच्छे साहित्यकार हुए हैं और उन्होंने ही गुरुसरनदास की रचनाओं की अनेक प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं। सं० १८३२ वि० में रचित इनका 'बानी प्रकाश' नामक ग्रन्थ ३२६ पद्यों का संग्रह है। इतने पदों की रचना में निश्चित ही दो-तीन वर्ष लगे होंगे। इसके अतिरिक्त 'भक्तिसुधानिधि' और 'द्वादस महावाक्य ग्रन्थ' नामक दो अन्य रचनाओं के भी ये रचयिता हैं। इन तीनों ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है—

बानी प्रकाश (भक्ति सुधानिधि)—यद्यपि इसका रचनाकाल सं० १८३२ वि० है परन्तु प्राप्त प्रतिलिपि सं० १८३५ वि० की है। इनकी 'बानी प्रकाश' सहित सभी रचनाओं के प्रतिलिपिकर्त्ता इनके शिष्य श्री हरीदास हैं। सरसकुंज—जयपुर की जिल्द, सं० २८६ वि० में 'बानी' शीर्षक इनकी रचना वस्तुतः 'भक्ति सुधानिधि' से अभिन्न है। यदि ऐसी बात है तो गुरुसरनदास जी मात्र दो ही ग्रन्थों के रचयिता हैं। परन्तु 'भक्ति सुधानिधि' की जो पाण्डुलिपि महन्त प्रेमदास जी (दिल्ली) के यहाँ है, उसमें इस ग्रन्थ की रचना का समाप्तिकाल सं० १८३३ वि० श्रावण कृष्ण ३ दिया हुआ है।[२] प्राप्त पाडुलिपि का लिपिकाल सं० १८६७ वि० है। इसी समय के आस-पास श्री हरीदास ने लच्छीदास (दादागुरु) के ग्रन्थों की भी प्रतिलिपि तैयार की थी।

इस ग्रन्थ की कुल पत्र सं ४६ है। इसकी एक अन्य प्रति जो सरसकुंज में है, उसके भी लिपिकर्त्ता हरीदास जी ही हैं और यह पाण्डुलिपि सं० १८६२ वि०, आषाढ़, शुक्ल ९, वृहस्पतिवार की है। इसकी रचना गुरु-शिष्य-संवाद शैली में है।

---

१. श्री चरणावत वैष्णव वर्षोत्सव।
—(संग्रहकर्त्ता श्री रूपमाधुरी शरण), पृ० ५३।

२. अष्टादस शत वर्ष परि तीस अरु तीन विचारि।
सावण बदि सुभ तीज कूं पोथी रची सुधारि॥
—भक्तिसुधानिधि (अंतिम छंद)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें १६१ चौपाइयों, १५८ दोहों और ७ छप्पयों (कुल ३२६ पद्यों) का समावेश है। इसका वर्ण्य विषय ज्ञान, योग और भक्ति सम्बन्धी उद्गारों की अभिव्यक्ति है। इनकी एक वैराग्य विषयक कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

ब्राह्मण जाति जिमाय कै कियो पिता कौ काज।
जब बेटा वारिस भयो सब घर को सिरताज॥
ऐसे ग्रह में तूं फस्यो सुत दारा को संग।
विषय भोग जासूं करत सो यह तन छनभंग॥[1]

द्वादस महावाक्य ग्रन्थ—यह मात्र आठ पत्रों का एक लघु काव्य है। इसमें सृष्टि के आरम्भ और विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन है। इसके नामकरण और इसके कथ्य से कोई ताल-मेल सिद्ध नहीं होता। कवि की धारणा है कि सृष्टि, स्थिति और प्रलय सभी कुछ आनन्द में ही निहित है। आनन्द ही ब्रह्म है और ब्रह्म तथा जगत् में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। कवि का यह कथन विचारणीय है—

आनन्द तें सब सृष्टि उपावै। फिर आनन्द के मांहि समावै॥
ज्यों तरंग है सागर मांही। जगत् ब्रह्म यूं अन्तर नाहीं॥
लहरि सिंधु तै भिन्न न होय। कोटि उपाय करौ किन कोय॥[2]

इसकी पाण्डुलिपि सरसकुंज–जयपुर की जिल्द सं० ३२९ वि० में संगृहीत है। इनकी उक्त दोनों रचनाओं में भाषा तथा अभिव्यक्ति-प्रौढ़ता की दृष्टि से प्रशंसा योग्य कोई बात नहीं है। इतना अवश्य है कि इन्होंने जो कुछ कहना चाहा है उसे जैसे-तैसे अभिव्यक्त कर दिया है। इनमें कलात्मक दृष्टि का अभाव दिखाई देता है।

अन्य चरणदासी कवियों की भाँति इन्होंने भी निर्गुण संत शैली तथा सगुण माधुर्यभाव की काव्य शैली—दोनों की रचना की है और दोनों में अपना नैपुण्य सिद्ध किया है। दोनों ही भक्तिधाराओं के कवियों ने साधक के लिए वैराग्यभाव की अनिवार्यता पर बल दिया है, अतः जहाँ तक ज्ञान, वैराग्य और कायासाधना की बात है, दोनों ने इसे साधना का आवश्यक अंग माना है। इसी भावना के अनुसार श्री गुरुसरन ने भी सांसारिक सम्बन्धों की स्वार्थपरता की ओर इंगित करते हुए कहा है—

॥ राग पूरबी ॥

ये जग झूठा रे भाई।
चलता फिरता सबकूं दीखे खोज किये मिट जाई॥

---

१. भक्तिसुधानिधि : छन्द सं० २२१–२२।
२. द्वादस महावाक्य ग्रन्थ। पृ० ३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नट बाजीगर स्वांग बनावे मूढ़ देख ललचाई ।
मृग तृष्णा जल सांच जानकर भटक भटक बौराई ।।
ग्राम बाग सुत जानी सबही अरु धन की गुमराई ।
इनमें पग्यो तज्यो सब सुख ही धोखे में भरमाई ।।
हरि को भजो तजो सब व्याधा लक्षिदास समझाई ।
गुरुसरना सब बंधन छूटे निश्चय हो मुकताई ।।

इन्होंने भी अपनी काव्य भाषा में कहीं-कहीं राजस्थानी या पंजाबी की छौंक दी है। इनके निम्न होरी के पद में कुछ इसी प्रकार की बात दिखाई देती है—

नन्द नन्दन ब्रजराज सांवरो होरी मिलने आवंदा है ।
ग्वाल बाल संग ले पिचकारी रंग दी झड़ी लगावन्दा है ।।
उफन बजावत रीझ रिझावत हो हो होली गावन्दा है ।
केसर चन्दन और कुमकुमा लाल गुलाल उड़ावन्दा है ।।
नाचत गावत मिलत परस्पर नई नई तान सुनावन्दा है ।
देखि देखि या सुख को सजनी दिल मेरा ललचावन्दा है ।।
मैं गुरुजन उर उरपति सखि री और न कछू सुहावन्दा है ।
रामसरन लक्षिदास पियारे मेरे दिल विच भावन्दा है ।।

(ख) श्री रामसरनदास—रामसरनदास जी श्री लक्षिदास (लक्ष्मीदास) के शिष्य तथा सं० १८५० से १८७० वि० के बीच निश्चित रूप से वर्तमान थे। इनके पदों और अन्य पद्यों का एक संग्रह 'बानी' के नाम से सरसकुंज (जयपुर) की जिल्द सं० ७१२ में संगृहीत एवं सुरक्षित है। 'बानी' में इनके विविध राग-रागिनियों में निबद्ध लगभग १०० पद समाविष्ट हैं। २८ पत्रों (५६ पृष्ठों) के इस ग्रंथ के ५ पत्रों (१० पृष्ठों) में इनकी साखियों का संग्रह है। ये भी मूलतः सगुण साधक ही हैं परन्तु उनके साखियों और पदों में संत कवियों के समान रहस्योन्मुखता भी दिखायी देती है। उदाहरण के रूप में इनका निम्न पद द्रष्टव्य है—

बिधना कौन संजोग बनायो ।
पास पिया परदेस बराबर होय न मन को भायो ।।
सरवन सुनै न नैन बिलोकत बोलत नाहिं बोलायो ।
सदा असंग अंग नहिं परसै नखसिख अंग समायो ।।
जाग्रत जगै न सुसुपति सोवै सुपिनै मैं न लखायो ।
तुरयातीत नित इक रस रहै चतुर महाबर पायो ।।
स्पर्श शब्द रूप रस गंध को टोना फूंक चलायो ।
रामसरन तज कोप पाँच संग तब आनंद घर पायो ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आराध्य के निर्गुण-निराकार मूल स्वरूप को जानते हुए भी अपने सम्प्रदायानुमोदित निम्न मान्यता के ये भी समर्थक हैं—

निरगुन सों सरगुन जपु धरियो भक्त हेतु अवतार।
रामसरन उर धार भरोसो सुमरो सिरजन हार॥

॥ राग भैरो ॥

प्रभु मैं बिरद भरोसो आयो।
भक्त बछल संतन हितकारी पतितोद्धार बतायो॥
परभौ अंध भवसागर माहीं उपज उपज बिनसायो।
जम की भास सही बहु भाँती जनम जनम दुःख पायो॥
भूल्यो भजन विषय मद राच्यो ममता मन उरझायो।
भक्ति बिना ये गति भई मेरी कर्मन बस भरमायो॥
मम अवगुन पर दृष्टि न कीजे तुम्हरो दास कहायो।
रामसरन लक्षिदास सरन है कीजे हरि मन आयो॥[1]

इनके बानी संग्रह का अंतिम पद भी इनकी हरिभक्ति की अनन्यता का सूचक है। यह पद इस प्रकार है—

बर हम बरलीनौ नागर नंद किसोर।
हौं तो दासी जनम जनम की नई भई कछु और।
आठौ जाम स्याम छबि निरखूँ जैसे चंद चकोर॥
ना कोई हमरो हम न किसी के जग नातो दियो तोर।
मुकुट लटक मटकन नैनन की लखलीनां चितचोर॥
भय भ्रम लाज मृजाद निवारी खोटी कहो करोर॥
मेरे स्याम स्याम की मैं हूँ कहत बजायें ढोल।
रामसरन हरि भाग लिखी थी ब्रह्मा बचन अडोल॥[2]

रामसरन जी द्वारा रचित भ्रमरगीतशैली के निम्न पद में राधा एवं गोपी की ओर से श्री कृष्ण के लिए उपालंभात्मक वचन की भंगिमा अद्भुत है—

॥ राग असावरी ॥

सखी री मैं उनकी गति जानौं।
हैं वै निडर कपट उर अन्तर बहुतन हाथ बिकानौं॥
ताकत कली कली रस चाखत अलि ज्यौं फिरत लुभानौं।
रामसरन हरि जो लख पाऊँ करहूँ मन को मानौ॥

---

१. श्री जगदीश जी राठौड़ के संग्रह से साभार।
२. सरसनिकुंज—जयपुर की पाण्डुलिपि (जिल्द सं० ७१२) से उद्धृत।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामशरण जी एक उच्चकोटि के कवि हैं।

(ग) श्री चन्द्रसखी (चन्ददास जी)—ये श्री लक्षिदास के कृपापात्र शिष्य एवं रसिक भक्त कवि थे। इनका निवास मुख्यतः आतमकुंज (जयपुर) और वृन्दावन में रहा। इनकी बानियों में चंद्रसखी, चंद या चंद्रदास आदि कई नामों के छाप मिलते हैं। इनकी बानियों का एक संग्रह सरसकुंज—जयपुर में प्राप्त है। कुछ फुटकल पद यत्र-तत्र कतिपय पांडुलिपियों में भी संगृहीत मिलते हैं। इनकी साधना मुख्यतः सखीभाव की थी, इसलिए इन्होंने चंददास नाम छोड़कर चंदसखी या चंद्रसखी नाम धारण कर लिया था। इनके रसिक भाव के पद बड़े ही मधुर हैं। हिंडोले झूलती हुई राधा का वर्णन करते हुए ये कह रहे हैं—

हिंडोले झूलति लाड़ली राधा।
हरित रंग सारी तन सोहे गोरी रूप अगाधा॥
सुंदर स्याम सुजान पिया की पुजवत दृग मन साधा।
चंदसखी लक्षिदासी स्वामिनी निरखि मिटी सब बाधा॥

यद्यपि ये श्री राधा और गोविन्द दोनों को समवेत रूप में भजने के लिए निम्न पद द्वारा कह रहे हैं लेकिन इनके आराध्य के रूप में श्री राधा ही हैं—

भज ले श्री राधा गोविन्द।
मात पिता सुत वित दारा तन ये सब झूठो दंद॥
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद ये माया के फंद।
अन्त समय संगी को तेरो भरमि रह्यो क्यूँ अंध॥
लक्षिदास कहे काटि फंद कूँ चेत सवेरे चंद॥

जहाँ तक भाषा-प्रयोग का प्रश्न है, चंद्रसखी किसी विशेष नियम या सिद्धान्त के पोषक नहीं हैं। देश-कालानुसार उन्होंने पंजाबी और राजस्थान का भी खुलकर प्रयोग किया है। यथा—

(i) ओ मुड़ि आवी वो बंसी वारे।
कूक दीवानी दी सुनो साँवरे मदन मोहन मतवारे॥

× × ×

(ii) स्याम सलोने जादू कीता।
किस विधि काटाँ रैन असानूँ बहुत दुखां दीन बीता॥

× × ×

(iii) वो साँवले दी बेपरवाहिया।
असी नहीं जाणी तुसी कामण कीते करदा है वो निठुराइयाँ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) साधुसरन जी—श्री लक्षिदास के उच्चकोटि के साधक तथा कवि शिष्यों में इनका स्थान महत्वपूर्ण है। ये मुख्यतः आतमकुंज, जयपुर में ही रहकर साधनारत रहे। इनकी केवल एक ही उल्लेखनीय कृति प्राप्त होती है। इसका नाम 'नवधाभक्ति' है। इसका वर्ण्य विषय इसके नामकरण से ही स्पष्ट है। इस ग्रथ का रचनाकाल सं० १८२३ वि० है।[1] इनके द्वारा रचित 'सतनाम माला' नामक एक अन्य ग्रंथ तथा स्फुट पद भी प्राप्त होते हैं। प्राप्त रचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि साधुसरन जी भी अपने अन्य गुरुभाइयों की भाँति ही काव्य के वस्तु, रूप और भाषा में अपना नैपुण्य सिद्धि करने में पूर्णतः क्षम हैं। इतना ही नहीं बल्कि नवधाभक्ति के स्वरूप विवेचन तथा आराध्य के स्वरूप वर्णन में इन्होंने अपने शास्त्रीय ज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया है।

श्रीकृष्ण के चरणों में अंकित चिह्नों की गणना करते हुए कवि का कथन है—

नूपुर ठुमक सुमंद, पद्म छबि लहर तरंगा।
कोमल अरुन सरूप, हरित पत्रक जय अंगा॥
धुजा बज्र आकार, शंख और कमल विराजै।
अष्टकोण त्रयकोण, तेऊ त्रिभुवन पर राजै॥
भेष सुसज्जित देखिकै, साधुसरन बलि बलि गयौ।
चरनचिह्न ध्वनि निरखते, मो मन अटक्यौ ही रह्यौ॥

गुरु की प्रशंसा में रचित निम्न छप्पय में कवि का भाषानैपुण्य प्रतिफलित है—

ज्ञान सिंधु गुरुदेव कलपद्रुम मनसा दाता।
भक्ति भान परकाश सोम शीतल जन त्राता॥
अचल मेरु सम पैज नैकु टरिहैं नहिं टारे।
कामधेनु की रीति क्षुधा त्रिस्ना निरुवारे॥
मलयागिरि पारस दशा श्रृंगी गुरु दीपक जिसो।
श्री लक्षिदास गुरु के चरण साधुशरण के उर बस्यो॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण के निर्गुण रूप और लीला रूप—इन दोनों के एकत्व के सिद्धान्त को श्री साधुसरनदास ने भी स्वीकार किया है। इनके "भज मन सुन्दर श्याम गोपाल"—जैसे पद में इनका दैन्य, आत्मनिवेदन और तल्लीनता के भाव-तत्व निहित हैं।

---

१. संबत् अठारह सै बरस, नख अरु राम प्रमान।
मास साढ़ नौधा भक्ति, साधू करी बखान॥
(नख = २० तथा राम = ३, राम, परशुराम, बलिराम = २३)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्यतया इनकी भाषा प्रसंगानुकूल और रागानुगामिनी है। मुख्य रूप से वह ब्रजभाषा है या खड़ीबोली। कुछ पद और साखियों में इनकी भाषा पंजाबी से अधिक प्रभावित दिखाई देती है। कहीं-कहीं सधुक्कड़ी भाषा की बानगी भी वर्तमान है।

(२) मानदास—जैसा कि आतमराम जी के प्रसंग में कहा जा चुका है उनके शिष्यों में श्री लक्षिदास और मानदास श्रेष्ठ कवि हो गये हैं। ये दोनों महात्मा स्वयं तो कवि थे ही, उन्होंने अपने कई शिष्यों और प्रशिष्यों को भी कवि बनाया। इन दोनों का झुकाव अपने सम्प्रदाय के साहित्य को ही समृद्ध करने की ओर था। यद्यपि दोनों महंत थे और उस पद के उत्तरदायित्व का उन्हें वहन करना था, फिर भी साहित्य-सर्जन की ओर से उनका विमुख या उदासीन न होना अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण बात है।

जयपुर में आत्माराम जी ने दो स्थान बनाये थे। उनका एक स्थान बद्रीविशाल की डूंगरी पर आतम कुंज नाम से था और दूसरा उसी के पास बारह गनगौर नामक स्थान में था। सम्भवतः बारह गनगौर वाले स्थान के प्रथम महंत श्री मानदास जी ही थे। इनकी शिष्य-परम्परा का साहित्य इनके गुरुभाई श्री लक्षिदास की शिष्य-परम्परा के साहित्य से अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है। इनके कवि शिष्यों में जैदासी, माधवदास, सेवादास और लालदास विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्रीमानदास की रचनाओं की भाषा के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि ये मारवाड़ी भाषी क्षेत्र में पैदा हुए थे। इस सम्प्रदाय के अन्य कवियों की भाँति इन्होंने भी अपना पूर्वपरिचय नहीं दिया है। अपने 'भाषा ज्ञान नौका' नामक ग्रंथ में अपने विषय में इन्होंने मात्र इतना ही परिचय दिया है—

श्री चरनदास दादा गुरु, सतगुरु आतम राम।
तिनको सिष मोहि जानिए, मानदास मेरो नाम॥

जैपुर राजस्थान में, रामगंज शुभ ठाँम।
ज्ञान नाव पूरन भई, राम बंगला धाम॥[1]

इससे यह भी सूचित होता है कि वे कुछ समय तक रामगंज के राम बंगला में भी रहे थे। इनके शिष्य जैदासी जी की प्रथम कृति 'भक्तिरतन पोथी' का रचना काल सं० १८३७ वि० है। इससे अनुमान होता है कि सं० १८३० वि० के आस-पास मानदास जी का कवि-जीवन आरम्भ हो गया होगा।

---

१. भाषा ज्ञान नौका : छंद सं० १७७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानदास जी निम्नलिखित सात ग्रंथों के रचयिता हैं—(१) बोधविचार, (२) भाषा मान विनोद पोथी, (३) षड्ऋतु वर्णन, (४) भाषा ज्ञानदीप, (५) भाषा ज्ञान नौका, (६) शब्द और (७) साखी।

१. बोध विचार - यह केवल छः पत्रों का दोहा, चौपाई और मांझ छंदों में रचित ज्ञानवैराग्यमूलक रचना है। इसकी पाण्डुलिपि सरसकुंज (जयपुर) की जिल्द सं० ३२१ में प्राप्त है।

२. भाषा मान विनोद पोथी—यह भी मात्र १५७ छंदों का ग्रंथ है। इसकी रचना चौपाई, दोहा, अरिल्ल और अन्य अनेक छंदों में हुई है। इसमें राम और कृष्ण का एक साथ गुणगान किया गया है। इससे यह तथ्य ध्वनित करने का प्रयास किया गया है कि राम और कृष्ण में वस्तुतः कोई भी तात्विक भेद नहीं है।[1] दोनों एक ही परब्रह्म के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। राम-कृष्ण की उपासना के माध्यम से ब्रह्म को ही पाना उपासक का उद्देश्य है—

अगम अपार अलेष ब्रह्म भरपूर है।
अविनासी अविकारी अजनमा नूर है।
सो वह नूर हजूर गुरुन सूं पाइये।
हां मानदास मन समझि स्वरूप समाइये ॥[2]

३. षड्ऋतु वर्णन—यह २२ छन्दों का ज्ञान-विरहात्मक अनुभूतियों का बारहमासी काव्य-रूप पद्धति से रचित एक स्वतंत्र लघु रचना है। इसकी पांडुलिपि महंत प्रेमदास जी (दिल्ली) के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

४. भाषा ज्ञानदीप—यह ३० पृष्ठों (१५ पत्रों) का तथा १६३ छन्दों का ग्रन्थ है, जिसमें दोहा, कवित्त त्रोटक और छप्पय आदि छंद-विधाओं के माध्यम से दार्शनिक विषयों की चर्चा है। इस दृष्टि से इसके शीर्षक की संज्ञा सार्थक है। उदाहरण-रूप में ब्रह्मनिरूपण सम्बन्धी इनका एक दोहा इस प्रकार है—

निराकार आकार धरि, प्रगटि रह्यो जग माँहि।
जहाँ तहाँ एकहि लसै, और दूसरा नाहिं ॥[3]

५. भाषा ज्ञान नौका—इसमें १७९ छन्दों में गुरु-शिष्य-संवाद के माध्यम से

---

१. रसायन रसिक बिहारी मेरे राम कृष्ण धन देवा।
रामकृष्ण ही पढ़ाँ पढ़ाँवाँ राम कृष्ण ही लेवा ॥
करां कीमियां भक्ति राम की और राम कहावां।
मानदास हरिनाम खजाना बाँटां खरचां खावां ॥

२. वही : सं० ४०।

३. भाषाज्ञानदीप (भाषा मान विनोद) : मांझ छंद, पत्र सं० १०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मविषयक चर्चा ही मुख्य विषय के रूप में है। दोहा और चौपाई इसके प्रधान छन्द हैं। इसमें ब्रह्म की अनिर्वचनीयता की ओर इंगित करते हुए कवि का कथन विचारणीय है—

ऐसो वैसो कैसो ही, कह्यो जात नहिं ताहि।
है जैसो सो वैसो ही, बानी विषय न आहि ॥[1]

६. शब्द—'मानदास जी के शब्द' नाम से इनके कुछ पदों का एक संग्रह सहजोबाई जी की गद्दी के स्व० महंत गंगादास के यहाँ देखने में आया था। अनुमानतः यह श्री मानदास के उपर्युक्त ग्रंथों के कुछ चुने हुए छन्दों को संग्रह की इस शीर्षक से एक स्वतंत्र पांडुलिपि है। इसी प्रकार 'ज्ञानमई बानी' के नाम से इनके एक अन्य ग्रन्थ का उल्लेख महंत प्रेमदास जी (दिल्ली) की पांडुलिपि के संग्रहालय में उपलब्ध है। इनकी बानियाँ अनेक राग-रागिनियों में निबद्ध हैं। इनके विषय भी वैविध्यपूर्ण हैं और प्रायः अष्टयाम सेवा के समय गाये जाने के उद्देश्य से रचित हैं।

७. साखी (साखियाँ)— सरसकुंज-जयपुर के संग्रहालय की जिल्द सं० ३२१ के अन्त में मानदास जी द्वारा रचित तथा विविध अंगों में विभक्त २०० साखियाँ एक स्वतंत्र पांडुलिपि में संकलित हैं। यद्यपि इन साखियों को मुख्यतः खड़ीबोली में ही रचा गया है परन्तु इनकी भाषा में मारवाड़ी भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

मानदास जी की शिष्य परम्परा के कवि—

(क) जैदास जी (जैदासी जी)—ये मानदास जी के शिष्य थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं अपना नाम जैदासी भी लिखा है। इससे अनुमान होता है कि इनकी रुचि श्री राधा की माधुर्योपासना की ओर अधिक थी। कुछ लोगों ने इन्हें स्त्री माना है न कि पुरुष। इनके ग्रंथ 'भक्तिरतन पोथी' का रचनाकाल सं० १८३७ वि० है। जिससे सिद्ध होता है कि वे तब तक काव्य-रचना में प्रवृत्त हो चुके थे। इन्होंने चरणदास जी की वंदना भी 'चरनसखी' के रूप में की है

चरनदास शुभ नाम को, को करि सकै बखान।
निगम अगम महिमा कहैं, चरन सखी सुख खान ॥[2]

× × ×

जैदासी दास तिहारी गुरु मानदास बलिहारी।[3]

इसकी तीन रचनाएँ प्राप्त होती हैं—(१) भक्तिरतनपोथी, (२) कका बत्तीसी और (३) शब्द।

---

१. भाषा ज्ञान नौका : छंद सं० १६३।
२. भक्तिरतन पोथी (पांडुलिपि) छंद सं० ६।
३. वही : छंद सं० ५०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) भक्तिरतन पोथी—इसका रचनाकाल सं० १८३७ वि० ज्येष्ठ शुक्लपक्ष ११, मंगलवार है। इसके दोहा, छप्पय, अरिल्ल, चौपाई और सोरठा छन्दों का योग २३३ है। इसमें गुरुवंदना के पश्चात् गुरु-शिष्य-संवाद के माध्यम से ज्ञान, भक्ति, नीति आदि का विस्तार से वर्णन है। इस ग्रंथ में इन्होंने वैराग्य, त्रिकांड (कर्म, ज्ञान, भक्ति) और त्रिधा भक्ति (उत्तमा-मध्यमा-अधमा) आदि पर इतनी सूक्ष्मता, गूढ़ता और तार्किकता के साथ विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है कि इनकी विद्वत्ता, अनुभव-परिपक्वता और दार्शनिकता में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। ये निश्चित रूप से एक बहुपठित और बहुश्रुत महात्मा थे। उनकी ज्ञान-वैराग्यपूर्ण अनेक उक्तियों में से उदाहरण के रूप में कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं—

सुन जैदास कहूँ समुझाई। आतम अंश जीवता पाई॥
अनादिकाल को भरमत आयो। अपने रूप आप बिसरायो॥
करम पेंच की गाँठ गुहायो। तातें चौरासी भटकायो॥
भव अटवी में षेद अपारा। ताके दुःखको वार न पारा॥

(२) कका बत्तीसी—यह ककहरे की शैली की रचना है, जिसमें वर्णमाला के ३२ अक्षरों को लेकर काव्य रचना की गई है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें एक नहीं बल्कि भक्ति, प्रेम, ज्ञान और कर्म इन चारों पर चार अलग-अलग 'बत्तीसियाँ' कही गई हैं। इनमें आनुप्रासिक सौंदर्य और बुद्धिवैभव का प्रदर्शन अधिक दिखाई देता है। उदाहरणार्थ निम्नपंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

टकर लगी गुरु सब्द की, टार भरम जग व्याध।
टिके रहो निज समझ में, टीको ब्रह्म अनाद॥

(३) शब्द—सरसकुंज की जिल्द सं० ३२१ में पत्र सं० ५७९ से ५८१ के बीच इनके २७ पद संकलित हैं। ये पद अनेक रागों और विषयों से सम्बद्ध हैं। इनकी भाषा मुख्यतः खड़ी बोली है। सामान्यतया खड़ी बोली में पदों की रचना को एक कठिन काम माना जाता है तथापि इन्होंने और लालदास जी ने इसी भाषा को माध्यम बनाया है। 'शब्द' का लिपिकाल सं० १८६९ वि० है। जैदासी जी के शिष्य केवलदास जी भी कवि थे। उन्होंने ही जैदासी जी की उक्त तीनों रचनाओं की पाण्डुलिपि तैयार की है। इनके पदों में कहीं-कहीं अच्छे शब्द चित्र मिलते हैं, जो इनकी काव्य-निपुणता के परिचायक हैं। श्रीकृष्ण की बाँकी अदा और लटक-चाल का एक चित्र द्रष्टव्य है—

॥ राग झिंझोटी ॥

लाल तेरी लटक चाल पै वारी।
मोर मुकुट सिर बंसी अधर धरि करत कटाक्ष बिहारी॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलक रही बलखाय कपोलन कुण्डल झलक सुढारी।
ग्रीव लटकि मोतिन की माला बनमाला उरधारी॥
पीतांबर कटि सुंदर सोहै नूपुर की झनकारी।
चरण कमल सोभा कह बरनौं कोटि चंद उजियारी॥
मानदास गुरु प्रीतम प्यारे सद्गुरु लीला धारी।
जैदासी लखि अलबेली छबि नेक न रही सँभारी॥

इनके द्वारा रचित श्रृंगार आरती का एक पद इस प्रकार है—

करत सखी श्रृंगार आरती। कंचन थार कपूर की बाती॥
ज्योति जगाइ अंगन पै वारति। गौर स्याम सोभा के सागर॥
इक टक नैननि रूप निहारति। निरतत तान गान धुनि छाई॥
हिलमिल जै जै शब्द उचारति। अंशन भुज धरि बैठ सिंहासन॥
दोउ दिसि सहचरि चांवर ढारति। जैदासी सुखरासि जुगल की॥

(ख) सेवादास जी— ये भी मानदास जी के शिष्य और कई ग्रंथों के रचयिता हैं। इनके द्वारा रचित अनेक ग्रंथों में से निम्नलिखित अब तक प्राप्त हैं—(१) जीवन्मुक्ति आनंदबोध (२) ज्ञानलता, (३) बोध बावनी, (४) प्रेमसैलपोथी, (५) मनज्ञान संग्राम, (६) ज्ञानसागर और (७) शब्द। अंतिम तीन ग्रंथ महंत प्रेमदास जी के यहाँ (दिल्ली) तथा शेष जयपुर के सरसकुंज में उपलब्ध हैं।[1] इनके 'जीवनमुक्ति आनन्दबोध' से एक छन्द द्रष्टव्य है, जिसमें जीवन्मुक्त साधक का लक्षण बताया गया है—

जानि सुरति विज्ञान कूं, डूब गयो गलतान।
सहजानंदी हो रहे, गयो मान अपमान॥
गयो मान अपमान फेरि कछु करतव्य नाहीं।
जल बुद बुद बपु जानि ब्रह्म में सहज समाहीं॥
सेवा जो कुछ करत है सिसुवत निरअभिमान।
ऐसीमत जा पुरुष की जीवन्मुक्ता जानि॥

इस ग्रंथ में कुल ३२ छन्द हैं। अपनी 'बानी' की प्रशंसा और फलश्रुति कवि ने इस प्रकार की है—

बंदन करि गुरु परम गुरु, रचूं ग्रंथ सुभ सार।
बानी थोरी अर्थ बहु, सुनत नसाहिं विकार॥

यह ग्रंथ गुरु-शिष्य संवाद की शैली में एवं कवित्त, सोरठा, कुण्डलिया, चौपाई आदि छन्दों में रचित है। अन्त में नवधा भक्ति का विवेचन है, जिसमें परा-अपरा

---

१. द्रष्टव्य—जिल्द सं० ३९, सरसनिकुंज, जयपुर का पुस्तकालय।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि भक्ति-प्रकारों का भी परिचय दिया गया है। इन्होंने 'बोध बावनी' के अंतिम छंद में अपना परिचय देते हुए कहा है—

श्री चरनदास के शिष्य आतमाराम हैं।
भक्ति कलपतरु जानि सो पूरन काम हैं॥
मानदास जिन शिष्य सो मम गुरुदेव हैं।
सेवा सकल कला परवीन लहे सब भेव हैं॥
मानदास की कृपा लह्यो निज ज्ञान है।
× × ×
ता चरणन को ध्यान हृदय में धारिया।
सेवा सब दुख भव के मेटि काज निज सारिया॥

सेवादास जी के अन्य ग्रंथ भी अधिकांशतः ज्ञान, वैराग्य, योग और भक्ति आदि की चर्चाओं से पूर्ण हैं। वर्ण्य-विषय अथवा रचना-शैली की दृष्टि से इनमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है। इन रचनाओं की भाषा भी टूटी-फूटी है। सामान्यतया सेवादास जी की रचनाएँ संतबानी की अनुकृति मात्र हैं। श्री कृष्ण की रूप माधुरी का श्री सेवादास द्वारा अंकित एक शब्द चित्र यहाँ उद्धृत है—

मोहन की बाजै बाँसुरी।
टेर सुनी सरवन में आली थिर भयो मेरो साँस री॥
हक बक रही चौंकि चढ़ ऊठी परी प्रेम की फांस री।
पढ़ि पढ़ि टोना मोपर डारो कोई न जाने गांस री॥
जाय कहो वा निठुर स्याम से मेरी मरम तेरी हांस री।
मानदास गुरु श्याम मिलावो अर्ज करे सेवादास री॥[1]

(ग) लालदास जी—इन्होंने अपने को कहीं-कहीं 'लाल' भी कहा है। ये भी मानदास जी के ही शिष्य थे। इनका ग्रंथ 'रतन गुटका' कुल ७२ दोहों का ग्रंथ है, जो १२ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। ये बड़े अनुभवी और अच्छे साधक प्रतीत होते हैं। इनके ज्ञानोपदेशों में अनुभूति की गहराई सर्वत्र देखने में आती है। इनके प्रत्येक दोहे में इनके नाम की छाप मिलती है। ये अच्छे दार्शनिक प्रतीत होते हैं।

(१) रतन गुटका—इसमें मुख्यतः दुष्ट-निन्दा, साधु-महिमा और संसार की असारता का विस्तार से वर्णन है। इसकी भाषा सुसंस्कृत है। उदाहरण के लिए यह दोहा द्रष्टव्य है—

बाहर प्रगटत भान है, माँहि प्रकासत संत।
ज्ञान चक्षु सूझन लगे, लालदास भगवन्त॥[2]

---

१. श्री चरणावत वैष्णव वर्षोत्सव के पृ० १०१ पर संकलित।
२. रतन गुटका (ह० प्रति) : दोहा सं० २७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार दुष्ट-वचन किस प्रकार उपेक्षणीय है, इस संदर्भ में कवि का यह कथन अनुकरणीय है—

कहा करी को घट गयो, स्वान जू भूसै आय।
लालदास यों संत की, कहा दुष्ट ले जाय ।।[1]

(२) गुरु स्तुति-बीनती—'रतन गुटका' के साथ ही संलग्न १६ पृष्ठों और ७१ दोहों का यह स्वतन्त्र ग्रंथ है, जिसमें दोहा, चौपाई और कुण्डलिया आदि छंदों में गुरु की स्तुति, सज्जन प्रशंसा और दुष्टजन-निन्दा आदि वर्णित है। इनका 'हरिगुरु प्रकाश' भी इसी के साथ सरस कुंज (जयपुर) की जिल्द सं० ३२१ में संगृहीत तथा सुरक्षित है।

(३) हरिगुरु प्रकाश—इस काव्यकृति के छंदों की संख्या २१९ और पृष्ठों की संख्या ४६ है। इसमें दोहा, चौपाई, सोरठा और सवैया छन्दों तथा गुरु-शिष्य-संवाद शैली में गुरु-स्तुति, सज्जन-प्रशंसा तथा दुष्टनिन्दा के अतिरिक्त सांख्य मतानुसार सृष्टि की रचना का क्रम और आख्यान भी वर्णित है। इस ग्रन्थ में कवि ने ब्रह्म, माया, जीव और उनके परस्पर सम्बन्धों पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला है। यह रचना कवि के गूढ़ दार्शनिक ज्ञान का परिचायक है। दर्शनशास्त्र में भी सांख्य और वेदान्त की ओर इनकी रुचि अधिक प्रतीत होती है।

(४) शब्द—२६ पत्रों के इस ग्रंथ में विविध रागों में निबद्ध इनके ऐसे पद संगृहीत हैं, जिनमें बधाई, आरती, होली और विहाग आदि अनेक गेय पदों का समावेश है। इसकी भाषा खड़ीबोली है। श्री लालदास के उक्त सभी ग्रंथों की रचना सं० १८६९ वि० तक हो चुकी थी। इससे इतना तो सिद्ध ही है कि ये सं० १८७० वि० तक वर्तमान थे। इनके उपर्युक्त सभी ग्रंथ श्री सेवादास के ग्रंथों के साथ ही सरसकुंज के संग्रहालय की जिल्द सं० ३२१ में संकलित हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में विशुद्ध खड़ीबोली का प्रयोग किया है। इनका व्यक्तिगत परिचय अज्ञात है।

अपने अन्य गुरुभाइयों की भाँति ये भी राधा-कृष्ण के अनन्य उपासक थे। उस पर भी इन पर ब्रज संस्कृति का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। इन्होंने श्री राधा जी को ही अपना इष्टदेव घोषित किया है।[2] इनके 'शब्द' शीर्षक संग्रह में

---

१. रतन गुटका : दोहा सं० १९।

२. श्री राधे माँ बाप मेरे राधे सिरताज मेरे,
राधे देवरत्न मेरे राधे सब जान जू।
श्री राधे रिद्ध सिद्ध मेरे राधे तीरथ व्रत मेरे,
राधे क्रिया कर्म मेरे और न जपूं आन जू।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ छन्दों की इनकी 'बारहमासी' भी संगृहीत है। यह भी गीतात्मक है। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

लगत महीना अषाढ़ को जु बरषा ऋतु आई।
पीतम हमरे स्याम सलोना चीठी भिजवाई॥
कहो वे कैसें नहिं आये।
अैसे चतुर सुजान स्याम को चेरी ने बिलमाये॥
डार के जादू कीना फाँसी श्री राधा गोपी त्याग करी।
घर बारी कुबजा सी भले हम जानी ब्रिज वासी॥

लालदास जी के कुछ पद गो० तुलसीदास जी की 'विनयपत्रिका' के पदों की भाँति पर्याप्त विस्तृत हैं। इनका इस प्रकार का एक पद यहाँ उद्धृत है, जो श्यामाश्याम के हिंडोरा झूलने से सम्बन्धित है—

॥ राग मल्हार ॥

अरी माई झूलत श्यामाश्याम।
संग जिनके सखी सहेली जुगल रटें मुख नाम॥
कुन्दन के जहँ खम्भ जु रोपे दमकत नग हीरान।
डोरी सुरंग महाछबि राजै पटुरी अनुपम जान॥
स्याम घटा अति घुमड़ आई बरसत आनंद मेह।
नाना पंछी करें कोलाहल उपज्यो अधिक सनेह॥
सखी गावें गीत हिलमिल जय जय बोल सुनाइ।
वारणे सब लेत पिय के प्यारी पर बलि जाइ॥
कबहुँ ललिता देत झोंटा कबहुँ बिसाखा देत।
कबहुँ चम्पकजा झुलावे निरखि छबि रस लेत॥
सबहिन के ह्याँ मोद बाढ़्यो पायो हर्ष हुलास।
भाग अपनो सब सराहें प्रिया चरणन बास॥
मानदास गुरुदेव मया करि ये लीला दरसात।
लालदास सखि दासी उनकी नित रसना गुन गात॥

(घ) माधवदास जी—ये मानदास के शिष्य और अच्छे कवि थे। इनके 'माधवदास के पद' शीर्षक ग्रंथ में विविध रागों से रचित अनेक पद संकलित हैं,

---

मोसे पतित तारन उधारन और अधमन की,
ऐसी सारन गावें वेद बतावें और पुरान जू।
तातें चरन गहे गुरु मानदास जी के,
लालदास छोड़े नाहिं लाभ हो के हान जू।
—चरनावत वैष्णव वर्षोत्सव : पृ० ५३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें प्रिया-प्रीतम की छवि और उनकी विविध लीलाओं के गीत हैं। भाषा और लय पर कवि का अच्छा नियन्त्रण दिखाई देता है। इसकी काव्य शैली प्रौढ़ है। इनका ब्रजभाषा के अतिरिक्त पंजाबी भाषा पर भी अधिकार था। सम्भवतः ये पंजाब में बहुत दिनों तक रहे होंगे या जन्मजात पंजाबी होंगे। इनका पंजाबी मिश्रित खड़ीबोली का एक पद द्रष्टव्य है—

॥ राग झंझोटी ॥

पियाड़े मेरी गलियों आव बंसीदी टेर सुनाव।
तेड़ी बंसी मेरा मन हरि लीता अब काह करूँ उपाव॥
चटक आई चितै चित चोरयो नेह लगा मत जाव।
लगन दी अगन जरै जिय अन्दर तेडा ढीठ सुभाव॥
माधो कहै दिल जानी प्यारे अब तो दरस दिखाव॥[1]

सूरदास के अनुकरण पर वंशी को उलाहना देने का स्वर मुखरित करता इनका निम्न पद पठनीय है—

॥ राग सोरठ ॥

मोहन मधुर अधर सौं अँटकी मीठी रंग भरी।
बहुतै मान बढ़्यो है तेरे मोहन अधर धरी॥
ज्यों ज्यों बरजै त्यौं ही त्यौं तू रहति खरीयै खरी।
चन्द चाँदनी पूरनवासी जमुना थकित करी॥
मधुर सुरन सूँ सबको मन लीयो निपट हि कपट भरी॥
खान पान सुध बिसर भूल घर, कुंज निकुंज फिरी।
साँपिन सरिता उमड़ घुमड़ कर माधव पाँय परी॥[2]

इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि सरसकुंज—जयपुर की जिल्द सं० ७२२ में प्राप्त है।

(ङ) रूपदास जी—ये भी श्री मानदास के शिष्य थे। इनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः जयपुर और वृन्दावन था। इनका झुकाव निकुंजोपासना की ओर अधिक था। इनका व्यक्तिगत परिचय प्राप्त नहीं होता। इनके कुछ पदों का संग्रह श्री जगदीश जी राठौड़ ने किया है। संभवतः ये पद उन्हें वृन्दावन या आतमकुंज (जयपुर) के पाण्डुलिपि संग्रहों में से प्राप्त हुए होंगे। इनकी भाषा मुख्यतः निखरी-हुई ब्रजभाषा है। इनके प्राप्त पदों से पता चलता है कि ये बड़े ही रसिक एवं उच्च-कोटि के कवि थे। इनके बधाई के पद तो और भी अच्छे बन पड़े हैं। निम्न-लिखित दोनों पद क्रमशः श्रीकृष्ण और श्रीराधा के अवतरित होने के उपलक्ष्य में गाये गये बधाई गीत के रूप में हैं—

---

१ पद (पाण्डुलिपि) : सं० ६।
२. वही : पद सं० १०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ राग सारंग ॥

(१) बाजत सरस बधाई प्रगटे नंद सदन ब्रजराज।
बाढ़्यौ उर अह्लाद सबनि के घर-घर मंगल साज॥
तोरन बंदनवार पताका अति सोभित दरवाज।
बाजे बिबिध बजे मधुरे सुर मनु होवत घन गाज॥
नवल बधू मिलि मंगल गावैं कोकिल कंठ अवाज।
ढाढ़ी ढाढ़न नृत्यत छबि सो हरषित सकल समाज॥
रसिक राज रस छैल प्रगट भयो भक्त जनन के काज।
आनंद के झर लाग रह्यो चहुं दिसि बरसत शोभा आज॥
बरनि सकै को यह सुख अद्भुत उपमा लखि रहि लाज।
रूपदास गुरु मानदास के प्राण जीवन सरताज॥

(२) आज तो बाजै री हेली रंगीली बधावनियां।
प्रगट भई हैं कुंवरि किशोरी तिथि आई भादौं सुदि आठैं सुहावनियां॥
रंग झर लाग रह्यो बरसानै भान भवन मैं अति छवि छावनियां।
रूपदास मेरी स्वामिनि श्यामा सहन करी सब मन की भावनियां॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री रूपदास एक सशक्त कवि हैं। इन्हें संगीत का अच्छा ज्ञान था, इसलिये इनके पदों की सांगीतिकता मात्रा और वर्ण की गणना में नियम का अतिक्रमण करती दिखाई देती है।

(च) सुश्री बीरांबाई—ये मानदास जी की शिष्या थीं। श्री मानदास के साथ इनका नाम जुड़ा हुआ पाकर कुछ लोगों को यह भ्रम हुआ है कि ये जोधपुर-नरेश महाराज मानसिंह की पत्नी थीं। किन्तु यथार्थतः ऐसा कुछ नहीं है। ये जयपुर की ही कोई विरक्त एवं विदुषी महिला थीं। उनके द्वारा लिपिबद्ध 'भक्ति-सागर' (चरणदास जी की २१ रचनाओं का संग्रह) और 'सहज प्रकाश' (सहजो-बाई जी की बानियों का संग्रह) की पांडुलिपि वृन्दावन के शुकचरणदासी स्वर्गीय महात्मा रूपमाधुरीशरण जी के यहाँ सुरक्षित है। इनके २०–२५ पद यत्र-तत्र संग्रहों में प्राप्त होते हैं। इन पदों में प्रेमाभक्ति (प्रेमविरह, विरह विह्वलता आदि) की तन्मयता की झलक वर्तमान है। उदाहरण के रूप में यहाँ इनके दो पद उद्धृत हैं, जो इनकी काव्य-निपुणता के भी परिचायक हैं—

॥ राग बिलावल ॥

(१) बस रहे मेरे प्राण मुरलिया बस रहे मेरे प्राण।
आ मुरली में कामण घोरचो उन ब्रजबासी कान्ह॥
मुख की सीर लई सखियन मिलि अधरामृत कियो पान।
वृन्दावन में रास रच्यो है सखियाँ राख्यो मान॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुन सुन कान्ह भई मतवारी अंतर लग गयो ध्यान।
बीरां कहे तुम बहुरि बजावो नन्द के लाल सुजान ॥

॥ राग सोरठ ॥

(२) प्रीति लगाइ जिन जाइ रे सांवरिया बाल्हा।
तुम्हरे तो संग सखि बहुतेरी हम नहिं आई धाइ रे सांवरिया ॥
प्रीतम को पतियाँ लिखि पठऊँ रचि रचि लिखूँ बनाइ रे सांवरिया।
जाइ बँचाओ वा नन्दनन्दन सो हिवड़ो अति अकुलाइ रे सांवरिया ॥
प्रीति की रीति कठिन भई सजनी करवत अंग बहाइ रे सांवरिया।
जब सुधि आवे स्यामसुंदर की पावक बिन जल जाइ रे सांवरिया ॥
मिलन मिलन तुम कह गये मोहन अब क्यों बेर लगाइ रे सांवरिया।
बीराँ को तुम दर्शन दीजो तब मेरो नैन सिराइ रे सांवरिया ॥

श्री आतमराम इकंगी के अन्य शिष्य और उनका साहित्य

(१) निर्भेदास जी—ये श्री आतमराम इकंगी के शिष्य और लच्छिदास एवं मानदास जी के गुरुभाई थे। इनका व्यक्तिगत परिचय अप्राप्त है। आतमराम जी तथा लच्छिदास जी की बानियों के साथ इनकी भी कुछ बानियाँ संगृहीत मिलती हैं। इन बानियों के आधार पर कहा जा सकता है कि संतबानी परम्परा के ये अच्छे बानीकार हैं। इनकी बानियों के संग्रह का शीर्षक 'सिद्धान्त बसन्त वर्णन' है। इस संग्रह की अधिकांश बानियाँ 'राग बसन्त' में रचित हैं। संभवतः इसीलिए इनका शीर्षक इस प्रकार का है। इनकी एक वीररसात्मक बानी इस प्रकार है—

॥ राग बसन्त ॥

ऐसे सूर संत खेले बसन्त। जाके अचल पाँव चालै न अन्त[1]॥
जिन प्रेम खड़ग करि राख्यो धार। सो कूद खेत में धरे मार॥
जहाँ होत झड़ाझड़ झरे सार। तहाँ सब तें पहले करे वार॥
जहाँ मारे दुर्जन लोभ काम। मुख बरसे नूर जीते संग्राम॥
जहाँ करे कनक कामिनी की बंद। जम जालिम को मेटे दंद॥
जब मंगल गावें पाँच चार। अरु सकल देव करे जै जै कार॥
धनि धनि सावंत आतम इकंग। कहै निर्भेजन राख्यो नीको रंग॥

(२) पूर्णदास—ये भी 'इकंगी' जी के शिष्य थे। इनकी २०-२२ बानियाँ अब तक प्राप्त हुई हैं। ये निश्चित रूप से अच्छे कवि एवं महात्मा रहे होंगे। इनकी

---

१. अन्त—अन्यत्र।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाएँ शोध्य हैं। ये संत कबीर की भाँति मस्त मौला कवि थे। इनकी निम्न बानी हिन्दी की संत परम्परा के कवियों से तनिक भी हीन नहीं है—

॥ राग गौरी ॥

मेरे कौन पढ़ेगा रे मनुवां भरम पड़ेगा।
पोथी बांची पतड़ा बाच्यां बांचे बेद पुराना।
जोतिष पढ़ पढ़ अर्थ बिचारा ना पाया अस्थाना।
निहअक्षर निरबंध निरासा निराकार निर्बाना।
हिरदय भीतर हरदम दरसै सद्गुरु सबद समाना॥
दाता साध सती अरु सूरा मर मर जहाँ समाई।
बेगमपुर सुख दुख नहिं पैये जीवत प्राण लगाई॥
आतमराम इकंगी सतगुरु परमधाम के बासी।
पूरणदास को कर गहि पकड़ो राखो चरणों पासी॥[1]

उपर्युक्त पंक्तियों की भाषा में अद्भुत प्रवाह है। ऐसा लगता है कि किसी फक्कड़ किन्तु अत्यन्त विनयावनत कवि की उक्तियाँ पढ़ रहे हों। परन्तु सिक्के का दूसरा पहलू भी है, जो इन्हें सीधे रागानुगा भक्तिमार्गियों तथा राधाकृष्ण-युगल के रसिकोपासना से जुड़े भक्तों की पंक्ति में स्थापित करता है। इस कोटि की बानियों से एक बानगी यहाँ प्रस्तुत है—

॥ राग बहार ॥

होरी खेलूंगी मोहन संग संग।
चोवा अतर गुलाल अरगजा मुख मींड़ू अरु अंग अंग॥
बरजि रहीं मोरी सास ननदियां बहुत कहीं उन ढंग ढंग।
फागुन अवसर नीको पायो बिलसूंगी रस रंग रंग॥
ताल मृदंग मुरली घन घोरा डफ बाजत मुहचंग चंग।
पूरन प्रभु से फगुवा लूंगी और करूंगी दंग दंग॥[2]

इस प्रकार हम देखते है कि श्री पूर्णदास एक सिद्धहस्त कवि हैं और भाषा पर उनका अच्छा अधिकार है। खेद है कि ऐसे कवि अभी भी अंधकार के गर्त में छिपे हुए हैं।

(३) जीवणदास जी—ये आत्माराम जी के शिष्य थे। इनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। चरणदासी साहित्य के खोजी एवं मर्मी श्री जगदीश राठौड़ ने इनका एक पद अपनी बानी संग्रह की कापी में लिखा है, जो इस प्रकार है—

---

१. श्री जगदीश जी राठौड़ के बानी संग्रह से उद्धृत।

२. वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ राग अलहिया ॥

हम तो श्याम नाम के सूरे।
सस्तर बांध नगर में पैठे हाथ धरचो गुरु पूरे ॥
पांच मवासी पहिले बांधे पाछे दुख सुख दोऊ।
खोट कपट का फाटक तोरा और पचीसो सोऊ ॥
जत सत का तो बख्तर पहना सील छिमा का तोड़ा।
सुरति निरति कै घोड़े चढ़िया काम क्रोध दल मोड़ा ॥
सतगुरु सबदी तेग लगाई सत का टोप बनाया।
धीरज ढाल गही जब कर में तब गढ़ भीतर धाया ॥
साहेब आतमराम इकंगी जिनके हैं हम चाकर।
जीवणदास जान जन अपनो दीनी भक्ति कृपाकर ॥

श्री जीवणदास के इस पद में साधक का 'सूरातन' बड़ी पटुता के साथ वर्णित हैं। इस शैली के पद कबीर, दादू और पलटूदास की बानियों में भी मिलते हैं। साधना के क्षेत्र में प्रवेश करते समय कामादि षड्विकार एवं इन्द्रिय-विषय आदि से साधक को किस प्रकार जूझना पड़ता है, इसकी झलक देना ही यहां कवि का उद्देश्य है।

(४) सुश्री ज्ञानवती बाई—ये श्री आत्माराम इकंगी की शिष्या, उच्चकोटि की कवयित्री, सिद्ध साधिका एवं अनन्यरसिका थीं। रसिक साधना के मान्यतानुसार निकुंज में इनकी सेवा पंखा डुलाने की है। इस प्रकार ये दम्पति के अधिक निकट मानी गई हैं। इनकी अनन्य निष्ठा-भक्ति की सराहना करते हुए श्री सरसमाधुरी-शरण कहते हैं—

आतमराम इकंग की, शिष्य परम गुण धाम।
ज्ञानवतीबाई परम, सुन्दर तिनको नाम ॥

पद प्रणमों श्रीमती ज्ञानवती बाई सयन कुंज सेवा रंग भीनी।
पौढ़ावत शय्या दम्पति को बचन चातुरी प्रेम प्रवीनी ॥
उज्ज्वल रस आराधन अनुदिन करत टहल सर्वोपरि झीनी।
मैं बलिहार निहोरत तिनसूं सुन बिनती निज जान अधीनी ॥
अपनैये बहियां मम गहिये सरस सरण चरणन की लीनी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री ज्ञानमती बाई साधिका के रूप में प्रतिष्ठित एवं अनुकरणीय थीं। इनके ५० से अधिक पद प्राप्त होते हैं। इनमें से १० पदों का चयन श्री जगदीश राठौड़ ने अपनी कापी में किया है। श्री आत्माराम एवं लक्षदास जी की बानियों के संग्रह में बीच-बीच में बाई जी के भी पद संकलित मिलते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। राठौड़ जी ने अपनी रुचि के अनुसार केवल इनके उन्हीं पदों का संग्रह किया है जो युगल सरकार की पौढ़ावनी, होली, झूला तथा अन्य लीलाओं से सम्बन्धित हैं। हाँ, उन्होंने तीन ऐसे भी पद चुने हैं जो गुरुभक्ति और विरक्ति आदि से युक्त हैं। प्रेमाभक्ति को अपनाने में साधक को कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, इसकी एक झलक उनके इस पद में वर्तमान है—

॥ राग परज ॥

काहू सूं नेह न कीजै हो।
करियै तो नेह निबाहियै फिर जाण न दीजै हो॥
नेह कियो मृग नाद सूं सुनि शीस गँवायो हो।
दीपक देखि पतंग ने तन तुरत जरायो हो॥
जैसे जीवन मीन को जल बिन पल नाहीं हो।
ऐसे ही गति नेह की कछु कही न जाई हो॥
आतमराम इकंग सूं जब नेह लगाया हो।
ज्ञानमती ने आपकूं आपन बिसराया हो॥

'गुरुभक्त' या 'गुरुभक्ता' कहलाना आसान नहीं है। इसके लिए बहुत कुछ त्यागना पड़ता है। गुरुमार्ग बड़ा ही गुरु-गम्भीर मार्ग है। इसमें अनेक अन्तराय हैं। इन सबसे जूझते हुए आगे बढ़ते रहने में ही कुशल है। अपने इस संकल्प को उन्होंने निम्न पंक्तियों में व्यक्त करते हुए कहा है—

सन्तों मैं गुरुभक्ता कहाऊँगी।
गुरु कृपा सों मान बली को पल में मार चलाऊँगी॥
हरि गुरु देव भेव दियो नीको आन देव नहि ध्याऊँगी।
पकरि पचीस पांच बस करिकै आनन्द उर सिंधु समाऊँगी।
जप नहिं जानूँ तप कहिं ठानूँ तीरथ कूँ नहिं जाऊँगी॥
गुरु मेरे मोहिं अग्यां दीनी राधेश्याम मनाऊँगी॥
श्री गुरुदेव दया सूँ साधो पूरन आनन्द पाऊँगी।
ज्ञानमती प्रभु आतम लखि हौं मैं मैल मिटाऊँगी॥

अपनी आराध्या श्री राधा महारानी को शयन हेतु स्मरण दिलाते हुए उन्होंने निम्न पद में सखी और अभिभाविका—दोनों रूपों में अपना भक्ति-भाव प्रकट किया है—

॥ राग सोरठ ॥

अब तुम पौढ़ो प्रीतम प्यारी।
आलस छाय रह्यो अंगन में नैनन नींद खुमारी॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंज महल में सेज बिछी है तुम हित सखी सँवारी।
अद्भुत रचना कहत न आवै मनि दीपक उजियारी॥
रस की केलि करौ सुख बिलसौ नित्य संयोग बिहारी।
ज्ञानमती प्रभु चरण पलौटौं पल न करौ मोहिं न्यारी॥

इनकी बानियों में रूपक, प्रतीप, उलटवाँसी, विरोधाभास और दृष्टांत अलंकारों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार है। ज्ञानमयी होली का इनका एक सुन्दर एवं रूपक-सम्पुष्ट पद द्रष्टव्य है—

॥ राग कल्याण ॥

साजन सौं खेलौं री रस होरी।
पतिबरता तिरिया सोइ कहिये चित राखे पिया के नित चरनौ री॥
चूंदरि भाव ओढ़ सिर सजनी प्रेम रंग माहिं झकझोरी।
कंचुकि करनी की उर सोहै साड़ी सील सुमति पहिरो री॥
अंजन ज्ञान बिचार को मंजन दसन चौंप दीजै अनुभौ री।
सकल सिंगार सहज सजि लीजै सुघर सयानी सुंदर गोरी॥
घूंघट भरम उठाय सुहागन तिलक भाल रस भक्ति को द्यौ री।
आतमराम इकंगी प्यारे ज्ञानमती सनमुख लखि ल्यौ री॥

श्री रामसन्त—ये आतमराम इकंगी के शिष्य श्री रूपदास के शिष्य थे। इनका निवास जयपुर के रामबंगला (रामगंज चौपड़-जयपुर) में था। इनकी छत्री एवं चरणपादुका आदि इस स्थान पर बनी हुई है। इनका अन्य परिचय अज्ञात है। इनकी बहुत सी बानियाँ प्राप्त हैं जो सरसकुंज-जयपुर के संग्रहालय की एक पांडुलिपि में हैं। ये साधक की अपेक्षा कवि अधिक प्रतीत होते हैं। इनकी अधिकांश बानियाँ युगलोपासना से सम्बन्धित हैं। इनका एक होरी का पद इस प्रकार है—

॥ राग जैजैवन्ती ॥

जान देव मोहिं तुम नये छैल होरी के।
लाल गुलाल दृगन जिन डारो मति करो चित्र कपोलन रोरी के॥
गारी देत पिचकारी को तानत सीख्यो खेल ये सब बरजोरी के।
रामसंत सखी सुख चहुँ दिसि निरखत हास विलास दुहूँ ओरी के॥

उन्होंने अन्य साधनामार्गों की अपेक्षा प्रेमाभक्ति को श्रेष्ठ बताते हुए उसे ही अपनाने की राय दी है। वे कहते हैं—

प्रेम पियाला पी हरि मिले पीवे सन्त पियारा।
प्रेमी जन की मती परख ले पीय सूं नहीं है न्यारा॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तवछल प्रेमी की खातिर बहुत धरत औतारा।
प्रेम भक्ति के बस भगवाना जन हित लेत सँभारा॥
अनिन भक्ति हरि के हिय भावै कहा पुरुष कहा दारा।
हरि अरु हरि के दास जल बादल बरसें संगति धारा।
नवधा नेम छूट क्रम क्रिया छाकि रहै रस मतवारा।
हरि रस सम रस और न कोई और सबै रस खारा॥
राम सन्त रूपदास दिवायो दुरलभ प्रेम अपारा॥

श्री राम सन्त की 'दानलीला' के पद में निहित व्यंग्य और उलाहना कितना गम्भीर है, यह इन पंक्तियों द्वारा ज्ञातव्य है—

बंसीवारे की घाली री दधि लेन गई।
गोरस पिये तो पियाऊँ वाकूँ वाके मन कुछ और छई॥
गोरस के रस के मिस रोके आय अचानक बाँह गही।
राम सन्त कह नन्दनन्दन सूँ ब्रज बस बचि कोउ नाहिं रही॥

६. ध्यानेश्वर जोगजीत जी—

श्री जोगजीत का एक नाम भक्तानन्द भी मिलता है। इनका जन्म सं० १७७४ वि० में दिल्ली के एक भार्गव परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम गोविन्दराम था। इनका पारिवारिक नाम हरिदास था।[1] इनके माता-पिता ने साधना की ओर इन्हें उन्मुख देखकर १२ वर्ष की अवस्था में ही श्री चरणदास के शरणागत कर दिया था। दीक्षोपरान्त योग-साधना में उनके अतिशय नैपुण्य को देखते हुए गुरु ने इन्हें 'जोगजीत' की उपाधि दे दी थी। उन्होंने १३ वर्षों तक योगाभ्यास किया था। इनका एक उपनाम 'ध्यानेश्वर' भी था, जो इस बात का परिचायक है कि ये बड़े ही ज्ञानी और ध्यानी महात्मा थे। कहा जाता है कि इन्हें निर्विकल्प समाधि सिद्ध थी। योग और ज्ञान की पूर्ण स्थिति को पाकर भी ये सगुणलीलामृत-गान को सर्वोत्कृष्ट मानते थे। ये चरणदास जी के प्रारम्भिक शिष्यों में से थे। इन्हें चरणदास जी जैसे समर्थ और सिद्ध गुरु ने दिल्ली में ही श्रीराधा-कृष्ण युगल की ब्रज में होनेवाली लीला का दर्शन समाधि की स्थिति में कराया था। इन पर गुरु की असीम कृपा थी। यही कारण है कि अपने स्वर्ग-वास की पूर्व सूचना उन्होंने केवल स्वामी रामरूप जी और जोगजीत जी को ही दी थी। ये भी अनन्य गुरुभक्त थे। इन्होने एक पद में चरणदास जी को कपिल, वशिष्ठ, भीष्म, राम आदि के रूप में स्मरण किया है।[2]

---

१. गोविंदराय के सुत मो जानो। इन्द्रप्रस्थ मो जनम पिछानो।
हरीदास था नांव नवीनो। जोगजीत सतगुरु कह दीनों॥

२. नमो शुक श्याम तारण तरण।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये स्वयं भी एक सिद्ध महात्मा थे। इनकी सिद्धियों के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ इस सम्प्रदाय के विभिन्न ग्रन्थों में मिलती हैं। कहते हैं कि एक बार जब वे साधु मंडली के साथ वृन्दावन से दिल्ली लौट रहे थे तो रास्ते में ब्राह्मणी खेड़ा नामक स्थान में पक्षाघात से पीड़ित एक पँड़िया (भैंस की बच्ची) को सन्तों का जूठन (शीत प्रसाद) खिलाकर उन्होंने रोगमुक्त कर दिया था। वहाँ के १० दिनों के निवास में उन्होंने १५० व्यक्तियों को शिष्य बनाया था। इसी प्रकार झाझर गाँव की आशावती नामक स्त्री की सद्योजात बालिका को उन्होंने योगबल से बालक बना दिया था।[1] एक अन्य कथा के अनुसार झाझर से ५ कोस दूर थोरा ग्राम के रज्जा नामक वणिक के २ वर्ष के मृत पुत्र को उन्होंने जीवित कर दिया था, जो जीवित होने के बाद उन्हें ही समर्पित कर दिया गया। उसका नाम रामबक्स रखकर जोगजीत जी ने उसे अपना शिष्य बना लिया था।[2] इस प्रकार की अनेक कथाएँ 'लीलासागर' में वर्णित हैं।[3] चूँकि उन्होंने स्वयं इन चमत्कारों का वर्णन किया है अतः इनमें अविश्वास का कोई कारण नहीं है। जोगजीत जी ने 'लीलासागर' के पृष्ठ ३४५ पर बताया है कि ऐहिकलीला समाप्ति के पूर्व ही गुरु चरणदास ने उन्हें खुर्जा में स्वप्न में इस घटना की पूर्व सूचना दे दी थी। इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि ये उनके विशेष कृपाभाजन थे। इन्होंने स्वामी चरणदास के जीवनकाल में ही खुर्जा में अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया था। वहाँ चरणदास जी ने एक बार आठ दिनों तक निवास भी किया था। सुखविलास मस्तराम और त्यागीराम—ये दोनों गुरुभाई भी इन्हीं के साथ खुर्जा में रहा करते थे। यद्यपि आगे चलकर इन लोगों ने भी अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया परन्तु वे स्वयं अधिकांशतः खुर्जा में ही रहे। जोगजीत जी ने 'लीलासागर' के अतिरिक्त सं० १८३० वि में महाभारत के 'जैमिनि पर्व' की टीका भी की थी। सं० १८५० वि० तक जोगजीत जी के वर्तमान रहने का प्रमाण मिलता है।

भये औतार श्री विष्णु कलि मैं धरो भई निश्चय हिये देखिये चरण ॥
ज्ञान गंभीर मुनि कपिल बशिष्ट सम ध्यान मधि धीर समाध जिमि शिवधरन।
महा ही धीर श्री राम गंगेय से अभयदातार दानिन में ज्यों करन ॥
दया के ऐन सुख दैन सब जियन के छिमा के रूप महा भूप ममता हरन।
श्री भागवत मत भेख अस्थापिया करे भव पार बहु पतित नारी नरन ॥
कीने बहु संत महंत जीवन मुकुत तीनहूँ काल में आये जो सरन।
जोग ही जीत की प्रीति तुममें रहै यहि मोहिं देवो गुरुदेव पोषन भरन ॥
—लीलासागर : पृ० ६।

१. वही : पृ० ३२६।
२. वही : पृ ३२८।
३. वही : पृ० सं० ३२२–३२७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोगजीत जी अत्यन्त सेवापरायण, साधुप्रेमी, अनन्य गुरु-भक्त, ब्रह्मज्ञानी, काव्यमर्मज्ञ, वक्ता एवं कीर्त्तन-गायक थे। यद्यपि उनकी प्रधान गद्दी कुरुक्षेत्र में ही थी परन्तु खुर्जा का निवास उन्हें विशेष प्रिय था। उनकी शिष्यपरम्परा ने खुर्जा और कुरुक्षेत्र के अतिरिक्त अजराड़ा (हापुड़-मेरठ), सवाद (थानेश्वर, जिला-कर्नाल), शाहजहाँपुर (रिवाड़ी) और जगाधरी (अम्बाला) आदि कई स्थानों पर अपने थाँभे स्थापित किए और प्रायः सभी सक्रिय बने रहे। इनके अनेक शिष्यों में ब्रह्म-परसाद जी कुरुक्षेत्र में प्रथम महन्त बने। ब्रह्मपरसाद के शिष्य छोटादास बड़े ही समर्थ महन्त थे। उनके कई शिष्यों ने स्वतंत्र स्थान बनाये। इनमें रामसनेही जी सवाद के, रतनदास जी अजराड़ा के और श्री मोहनदास (मोहन निवास जी) जगाधरी के महन्त पद पर अभिषिक्त हुए। श्री गोपालदास ने कुरुक्षेत्र की प्रमुख गद्दी को सँभाला। इस प्रकार गद्दियों के विस्तार का श्रेय छोटादास जी को ही दिया जा सकता है।

जोगजीत जी के थाँभों की महन्त-परम्परा—

१. कुरुक्षेत्र[1]—यह श्री जीगजीत का प्रधान थाँभा था और सक्रियता एवं समृद्धि में भी उच्चस्तरीय था। यहाँ की शिष्य परम्परा निम्नवत प्राप्त होती है—

जोगजीत जी (सं० १७७४–१८४५ वि०)—ब्रह्मप्रसाद जी (सं० १८४५–७५ वि०)—छोटादास जी (सं० १८७५–१९१० वि०)—गोपालदास जी (सं० १९१०–१९२५ वि०)—रामदास जी (सं० १९२५–१९४५ वि०)—बजरंगदास जी (सं० १९४५–१९६४ वि०)—लछमनदास जी (सं० १९६५–१९७८ वि०)—रघुदास जी (सं० १९७८–२००० वि०)। संभवतः सं० २००० वि० के बाद यह गृहस्थ गद्दी के रूप में परिवर्तित हो गया। चरणदास जी के प्रबुद्धतम शिष्य जोगजोत जी की समृद्ध शिष्य-परम्परा के साहित्य का अनुपलब्ध होना बड़ा ही आश्चर्यजनक है।

२. सवाद—(तहसील थानेश्वर, जिला कुरुक्षेत्र)—यह कुरुक्षेत्र के निकट का कोई स्थान है। यहाँ की शिष्य परम्परा मात्र सं० १९०० से १९६० वि० तक ही मिलती है। इसके पश्चात् संभवतः यह स्थान प्रधान गद्दी की व्यावस्था के अन्तर्गत आ गया। यहाँ की शिष्य परम्परा निम्नलिखित है—

महन्त छोटादास जी (कुरुक्षेत्र वाले)—रामसनेही जी (सं० १८८५–१९१५ वि०)—श्री संतसनेही (सं० १९१५–१९२५ वि०)—ओंकारदास जी (सं० १९२८–

---

१. सवाद, अजराड़ा, शाहजहाँपुर तथा जगाधरी के थाँभे कुरुक्षेत्र के ही अन्तर्गत छोटे थाँभे के रूप में थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३४ वि०)—गोविन्ददास जी (सं० १९३४–१९५५ वि०), (इसके पश्चात् संभवतः कुरुक्षेत्र के थांभे के श्री बजरंगदास द्वारा नियंत्रित) ।

३. अजराड़ा— यह गाजियाबाद जिले के हापुड़ तहसील में खरखौदा थाने का एक स्थान था । मन्दिर के साथ जमीन और बाग-बगीचे भी थे । यहाँ की परंपरा अब भी चल रही है । यह थांभा मूलतः चरणदास जी के शिष्य श्री ठंडीराम का था, जिसे आगे चलकर जोगजीत जी के प्रशिष्य छोटादास जी ने कुरुक्षेत्र के बड़े थांभे के अधीन कर लिया और अपनी परम्परा स्थापित की । यहाँ के जोगजीत जी की परम्परा के प्रथम महन्त रतनदास जी छोटादास जी के ही शिष्य हैं । यहाँ के महन्तों की परम्परा क्रमशः इस प्रकार है—महन्त छोटादास जी (सं० १८७५–१९०० वि०)—रतनदास जी (सं० १९००–१९३५ वि० तक)—सालकदास जी (सं० १९३५–१९५० वि०)—लछमनदास जी (सं० १९५०–१९७१ वि०)—जसवन्तदास जी (सं० १९७२–२०१० वि०) । आगे की महन्त परम्परा अप्राप्त है ।

४. शाहजहाँपुर— यह स्थान रिवाड़ी तहसील (जिला महेन्द्रगढ़) का एक छोटा सा कस्बा है । रामरूप जी के शिष्य श्री बुलाकीदास ने यहाँ स्थान बनाया था परन्तु ऐसा लगता है कि उनके बाद जोगजीत की शिष्य परम्परा का कोई महात्मा यहाँ आकर जम गया । ऐसा मानने का मुख्य कारण यह है कि सं० १९७० के बाद रामरूप जी की परम्परा का कोई महन्त यहाँ नहीं रह गया था और न तो दिल्ली की प्रधान गद्दी का नियंत्रण ही इस पर था । यहाँ एक थांभा सुश्री सहजोबाई का भी था जिसका उल्लेख उनके प्रसङ्ग में हो चुका है । अन्ततः यहाँ के दोनों स्थान अखैराम जी की शिष्य परम्परा द्वारा नियंत्रित हुए और अब भी बने हुए हैं ।

५. खुर्जा (जिला बुलन्दशहर)— शुकसम्प्रदाय के इतिहाससदृश ग्रंथ 'लीलासागर' के रचयिता ध्यानेश्वर जोगजीत जी प्राय यहीं रहा करते थे । उनके शिष्य श्री सनेहीदास ने इस स्थान का निर्माण किया था । यहाँ का निवास जोगजीत जी को विशेष रुचिकर था। मेरे पास 'लीलासागर' की एक पांडुलिपि है, जिसके लिपिकर्ता सनेहीदास जी ही हैं । सं० १९५२ वि० में श्रीटीकमदास और सं० १९७८ वि० में श्री साहबदास यहाँ के महंत थे । यहाँ के लोहार मण्डी बाजार में मन्दिर बना हुआ है । जोगजीत जी के 'लीलासागर' में उल्लिखित साक्ष्य के अनुसार चरणदास जी यहाँ सदलबल ८ दिन तक रहे थे । यहाँ की परम्परा सं० १९९० वि० के बाद नहीं मिलती । यहाँ से संबद्ध महन्तगण घूम फिर कर कुरुक्षेत्र, अजराड़ा और जगाधरी में रहा करते थे ।

६. जगाधरी (जिला अंबाला)— यहाँ का मुहल्ला पंसारियान में निर्मित मंदिर अभी भी वर्तमान है । श्री जोगजीत के प्रशिष्य (श्री छोटादास के शिष्य)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहनदास जी यहाँ के प्रथम महन्त थे। यहाँ के मंदिर का निर्माण उनके गुरुभाई और अजराड़ा के महंत श्री रतनदास ने कराया था। सं० २००० के बाद से यह मन्दिर रिवाड़ी के महन्त हरीदास जी के आधीन है अर्थात् गुसाईं जुगतानन्द जी के थाँभे के अधिकार में आ गया है। सं० २०२० ई० तक तो येनकेन प्रकारेण यहाँ की परम्परा चली परन्तु उसके बाद गृहस्थ गद्दी के रूप में परिणत हो गई। यहाँ की शिष्य-परंपरा इस प्रकार मिलती है—

छोटादास जी (सं० १८७५–१९०० वि०)।
|
मोहनदास जी[1] (सं० १९००–१९४० वि०)।
|
बलरामदास जी (गृहस्थ) (सं० १९४०–१९७० वि०)।
|
दरसनदास जी (सं० १९७०–२०२० वि०)।
|
अज्ञात (सम्भवतः गृहस्थ गद्दी के रूप में यह परंपरा समाप्त हो गई)।

श्री जोगजीत जी कृत लीलासागर—

यह शुक सम्प्रदाय का एक ऐतिहासिक महत्त्व का दस्तावेज है। इसमें चरणदास जी का जीवन-प्रसंग विस्तार से चौपाई-दोहा-पद्धति से वर्णित है। यह इस सम्प्रदाय का एक प्रामाणिक इतिहास ग्रंथ तो है ही, साथ ही उच्चकोटि का चरित्र प्रधान प्रबन्ध काव्य भी है। जोगजीत जी ने जो कुछ देखा और अनुभव किया गुरु की उपस्थिति में ही उसे काव्यबद्ध किया। अतः उनके कथनों की प्रामाणिकता में संदेह का कोई कारण नहीं है। फिर भी बौद्धिकता एवं तर्क-बुद्धि इसमें वर्णित कुछ अंशों के प्रति अविश्वास का आश्रय ले सकती है। जहाँ चरणदास जी तथा उनके अन्य शिष्यों की सिद्धियों का चमत्कारिक वर्णन किया गया है; वहाँ सन्देह की उत्पत्ति सम्भावित है, लेकिन जोगजीत जी ने अपनी ओर से घटनाओं के वर्णन में कल्पना या अतिरंजना को अधिक प्रश्रय न देने का विश्वास काव्यारंभ में ही दिलाया है।

ऐसा दुर्लभ सन्दर्भ ग्रंथ सन् १९६७ ई० तक अप्रकाशित था। सन् १९६८ ई० में श्री मदनमोहन तोषनीवाल, ब्रह्मचारी प्रेमस्वरूप जी तथा जयपुर के कई भार्गव विद्यानुरागियों की सहायता से जयपुर से इसका प्रकाशन सम्भव हुआ। इस काव्य के चरितनायक स्वामी श्यामाचरणदास जी हैं। प्रसंगतः उनके लगभग ९० शिष्यों

---

१. मोहनदास जी के दो शिष्य थे—बलरामदास जी और श्री अरजनदास। इनमें से द्वितीय को कोई शिष्य या पुत्र नहीं था। बलरामदास के दो बेटे थे—श्री बालकिशुनदास और दरसनदास। जिसमें दरसनदास जी सं० २०२० वि० तक जीवित थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वृत्त भी इसमें आ गया है। यह कृति अत्यन्त ललित, बोधगम्य और यथार्थमूलक है। गुरु के प्रति ज्ञानी भक्त में अगाध श्रद्धा का अभिनिवेश स्वाभाविक है। 'लीला-सागर' के आरंभ में कवि ने इस रचना की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए बताया है कि सं० १८११ वि० की कार्तिक पूर्णिमा को जब शिष्य मंडली के साथ चरणदास जी कुछ चर्चा-विचारणा कर रहे थे तो एक बार सहसा उनकी दृष्टि जोगजीत जी की ओर उठी और उन्होंने उनसे कहा—

तुम्हरे सतगुरु अरु गुरु भाई। अनभो बानी बहुत बनाई॥
पोथी औरो शब्द रचे हैं। पाँचों अंग ता माहिं सचे हैं॥
भक्ति जोग वैराग अरु ग्याना। औरो बरने प्रेम प्रधाना॥
तुम हूँ गुणानुवाद कुछ गाओ। वाणी अरु पद कहा बनाओ॥[1]

इस प्रकार उन्हें गुणानुवाद गाने और बानी तथा पद की रचना करने का आदेश दिया। श्री जोगजीत उस आदेश को शिरोधार्य करके काव्य रचना की मनोभूमि तैयार करने में प्रवृत्त हुए। किस प्रकार की काव्य-रचना की जाय, इस तर्क वितर्क में पड़ने के पश्चात् अन्ततः उनका मन स्थिर हुआ और उन्होंने निश्चय किया—

जो पै गुणानुवाद प्रभु गाऊँ। अति अगाध कछु अन्त न पाऊँ॥
तुच्छ मनुष बुधि कहा बखाने। बड़े कवीश्वर बरणि थकाने॥
हो निश्चल मन कीन्ह उपाऊ। गुण चरित्र सतगुरु के गाऊँ॥
गुरु के ध्यान हिये मधि राखूँ। गुरु के गुण बिनु और न भाखूँ॥[2]

श्री जोगजीत अपने गुरु चरणदास जी की जीवन लीला के प्रत्यक्ष द्रष्टा थे, यही कारण है कि उनके द्वारा वर्णित लीलामृत का पान अत्यन्त सहज एवं सुखद है। चौपाइयों में कवि ने यद्यपि अवधी भाषा की प्रकृति को पकड़ने का पर्याप्त प्रयत्न किया है तथापि अपनी स्वाभाविक भाषा खड़ी बोली और अपनी भक्ति-भाषा ब्रजभाषा का मिश्रण वे बचा नहीं पाये हैं। उपमा, अनुप्रास आदि उनके प्रिय अलंकार हैं। 'लीलासागर' में कहीं ८ और कहीं १० अर्द्धालियों के बाद दोहा का क्रम है।

इसकी रचना का आरम्भ-काल कार्तिक पूर्णिमा सं० १८११ वि० और समाप्तिकाल सं० १८१९ वि० स्वयं कवि द्वारा ही उल्लिखित है।[3] श्री जोगजीत के वरिष्ठ गुरुभाई श्री रामरूप जी के 'गुरुभक्तिप्रकाश' की रचना सं० १८२६ वि० में आरम्भ हुई थी। जोगजीत जी ने जिस प्रकार अपने गुरुभाइयों का वृत्त लिखा

१. लीलासागर : पृ० २।
२. वही : पृ० ४।
३. वही : पृ० २–४ तथा ३५२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उससे प्रतीत होता है कि उन्होंने इसकी रचना भले ही सं० १८११ वि० में आरम्भ की हो परन्तु इसे पूरा किया है सं० १८४० वि० के आसपास ही। रामरूप जी ने गुरुभाइयों में से मात्र १५-२० का ही उल्लेख किया है, जबकि जोगजीत जी ने लगभग ९० गुरुभाइयों का वृत्त दिया है। श्री जोगजीत ने 'लीलासागर' की रचना का समाप्तिकाल सं० १८१९ वि० दिया है। उस समय कवि की आयु ४५ वर्ष की थी। परन्तु साथ में यह भी उन्होंने बताया है कि इसमें सं० १८३९ वि० तक की घटनाएँ जोड़ी गई हैं।[1] घटनाक्रम की छोटी-छोटी बातें भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हुई हैं और गोस्वामी तुलसीदास की भाँति इन्होंने भी संवाद-शैली में प्रत्येक मनोभाव, परिस्थिति और घटनाक्रम को व्यवस्थित ढंग से चित्रित किया है। 'गुरुभक्तिप्रकाश' में रामरूप जी की शैली कुछ उखड़ी-उखड़ी सी दिखाई देती है। उसमें इतनी क्रमबद्धता और स्पष्टता नहीं है। नारी की भूमिका और विवाह प्रसंग (चरणदास जी के विशेष संदर्भ में) की चर्चा उन्होंने (जोगजीत जी ने) इतने विस्तार से की है और ऋषियों-मुनियों का विवाह के पक्ष-विपक्ष में ऐसा सटीक उदाहरण दिया है कि इनके ज्ञान का लोहा मानना ही पड़ता है। श्री जोगजीत में कथा कहने की अद्भुत क्षमता है। 'लीलासागर' में वर्णित चरणदास जी की गुरु-दीक्षा का प्रसंग स्वयं में एक स्वतंत्र खंड काव्य है।

इसकी रचना-शैली 'रामचरितमानस' से अत्यधिक प्रभावित है। इसमें प्रसंगतः ज्ञान, योग, भक्ति, प्रेम, वैराग्य आदि अनेक विषयों की एकाधिक बार चर्चा हुई है। कथा-प्रसंग में आने वाले प्रत्येक घटना-क्रम या मार्मिक स्थलों का इसमें बहुत अच्छा वर्णन किया गया है और उससे संबद्ध काव्यशास्त्र संबंधी औपचारिकताओं का भी पूर्णतः निर्वाह किया गया है। अनेक अन्तर्साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि 'गुरुभक्तिप्रकाश' के कतिपय संक्षिप्त स्थलों की व्याख्या या विस्तार 'लीलासागर' में है। चरणदास जी के जीवन से सम्बद्ध वृत्त का क्रम तो दोनों में प्रायः एक ही है, परन्तु गुरुभाइयों का जितना वृत्त 'लीलासागर' में है, उतना 'गुरुभक्तिप्रकाश' में नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि 'लीलासागर' 'गुरु-भक्तिप्रकाश' से पीछे की रचना है। कुछ बातों में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। 'लीलासागर' में शुक-सम्प्रदाय की स्थापना के काल का समग्र एवं प्रामाणिक चित्र

---

१. चरणदास की उमर रहाई। उनसठ बरस तब कथा बनाई॥
महाराज यों आज्ञा दीजो। मों पीछे या परगट कीजो॥
विक्रमजीत की संवत ईसा। अष्टादस सत वर्ष उनीसा॥
वर्ष पैंतालीस के हम जबहीं। लीला ग्रंथ कह्यो हम तबहीं॥
महाराज परमधाम सिधाये। सो चरित्र तिन पीछे गाये॥
—लीलासागर : पृ० ३५३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत होता है। साथ ही सम्प्रदाय में मान्य आध्यात्मिक तथा उपासना सम्बन्धी विविध मान्यताओं के भेदक लक्षणों का भी इस प्रबंध काव्य में विशद विवेचन किया गया है। जहाँ लीलासागर शुक सम्प्रदाय का इतिहास है, वहीं उसका सिद्धान्त ग्रंथ भी है। लीलासागर और गुरुभक्तिप्रकाश—ये दोनों कृतियाँ सम्मिलित रूप से आलोच्य सम्प्रदाय के उद्भव-विकास और सिद्धान्त को समझने के लिए आकर ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। यद्यपि रामरूप जी और जोगजीत जी—दोनों सिद्ध महात्मा, गुरु के परमप्रिय और उनके द्वारा प्रदत्त अनेक उपाधियों से विभूषित थे, परन्तु परम्परागत मान्यता रामरूप जी को ही ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ मानने की है। साथ ही उनका आचार्य गद्दी का महन्त होना भी इस मान्यता की पुष्टि करता है। 'लीलासागर' में नादिरशाह के आक्रमण के सम्बन्ध में चरणदास जी की भविष्य-वाणी का प्रसंग इतने विस्तार से वर्णित है, जैसे यह कोई स्वतन्त्र काव्य हो।

जोगजीत जी खड़ी बोली, ब्रजभाषा, पंजाबी और संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू और फारसी के भी अच्छे ज्ञाता प्रतीत होते हैं। कथाक्रम में मुसलमानों का जहाँ भी प्रसंग आया है, बड़ी सुन्दर एवं प्रसंगानुकूल फारसी-शब्दावली का उन्होंने प्रयोग किया है।[1] देश-काल-पात्रानुसार उक्त भाषाओं के प्रयोग में वे सिद्धहस्त हैं।[2] चूंकि यह प्रबन्ध काव्य एक धर्म ग्रंथ के रूप में रचा गया है, इसलिए कथानक की समाप्ति

---

१. श्री रणजीत और उनके अध्यापक मुल्ला कादरबख्श के बीच के उर्दू-फारसी मिश्रित शब्दावली में हुए संवाद का एक अवतरण उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है—

सुनि मुल्ला हैरत में आया। इस लड़के पर रब की छाया॥
करि करि गौर जु यहै उचारी। सुन मियाँ लड़के बात हमारी॥
इलम बिना रब को नहिं पावै। अल्लाह पिछान नैक कहिं आवै॥
...तब बोले रणजीत सँभाले। देखे नहिं दरवेश कमाले॥
उनकी बात कहा तुम जानौ। इल्म लुदन्नी ना पहिचानो॥
तुमको भी है इल्म सबाई। हक्क पिछान कहो क्या पाई॥
जाकूँ हौ पूरा इरफान। सोही जगत को ले पहिचान।

—लीलासागर : पृ० ५०।

२. नादिरशाह और स्वामी चरणदास की वार्ता के प्रसंग का एक अवतरण इस प्रकार है—

हिल मिल खुशी होन जब लागे। खुलक प्यार के रस में पागे॥
रदल बदल खालिक की आई। जात सिफात सभी समझाई॥
दरजे दरजे ही सब खोले। उनको ही बोली में बोले॥
शगल इश्क की चाली बातें। मगन भया बहुतें मन यातें॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ इसके श्रद्धापूर्वक वाचन से होने वाले लाभों और इसकी निन्दा से होने वाली हानियों का भी उल्लेख कवि ने कर दिया है।[1]

'लीलासागर' की एक हस्तलिखित प्रति मुझे प्राप्त हुई है, जिसके लिपिकर्त्ता श्री सनेहीदास ने इन्हें अपना गुरु बताया है।[2] इस कथन के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि जोगजीत जी के खुर्जा वाले स्थान के प्रथम उत्तराधिकारी महन्त सनेहीदास ही थे। ये सम्भवतः सं० १८५० वि० में महन्त पद पर आये होंगे। इनके बाद कौन महन्त हुआ—इसका वृत्त नहीं मिलता। इनके पौत्र शिष्य श्री टीकमदास से पुनः परम्परा के चलते रहने का संकेत मिलता है।

जोगजीत जी की एक अन्य रचना 'जैमिनी अश्वमेध पर्व-भाषा' की रचना सं० १८३० वि० में हुई थी। इसकी पाण्डुलिपि सम्प्रति जगदीश जी राठौर के यहाँ प्राप्त है। इस पाण्डुलिपि के प्रतिलिपिकार जोगजीत जी के शिष्य गुरुनिवास जी, मुरारदास जी और मोहननिवास जी हैं। इस पाण्डुलिपि का लिपिकाल सं० १८३७ वि० है। इसकी रचना जोगजीत जी ने खुर्जा में की थी। यह ३६६ पत्रों (७३२ पृष्ठों) की रचना है। इसमें महाभारत के जैमिनि अश्वमेध पर्व की दोहा, कुण्डलिया तथा अन्य मात्रिक एवं वार्णिक छन्दों में अनूदित कथा समाविष्ट है। यह अनूदित रचना भी पढ़ने पर मौलिक कृति प्रतीत होती है।

'लीलासागर' में चरणदास जी के १०८ या १०९ प्रमुख शिष्यों में से केवल ८५–९० शिष्यों के ही वृत्त का समाविष्ट होना और कुछ बड़े महत्वपूर्ण शिष्यों का इसमें उल्लेख न होना सम्भ्रमकारी है। स्वयं जोगजीत जी ने भी स्वीकार किया है कि चरणदास जी के शिष्यों की वरिष्ठता के क्रम-निर्धारण तथा किसी का अति संक्षिप्त, किसी का विस्तृत और किसी का बिलकुल उल्लेख न करने में उनसे चूक हुई है।[3] जिन प्रमुख बड़े थाँभों के संस्थापकों की चर्चा जोगजीत जी ने

कुछ कुछ नादर सीखन चीन्हा। महाराज प्रसन्न हो दीना॥
शेर रुबाई आयत हदीसा। चरचा हुई जु बिस्वा बीसा॥
तारीफें करने लगा, होकर वह महजूज।
तुम हो कामिल औलिया, बड़ी समझ अरु सूझ॥—लीला०: पृ०१५५।

१. जो या वाणी निन्दहै, महामूर्ख मति मन्द।
सतगुरु की निज भक्ति यह, पढ़ सुन जा दुख दन्द॥—वही : पृ० ३५३।

२. खुरजे में पोथी लिखी, जोगजीत अस्थान।
शिष्य सनेहीदास ने, सतगुरु आज्ञा मान॥—वही : पृ० ३५४।

३. औरौं यह औगुन हूँ कमायो। कोई आगे कोई पीछे गायो।
कोई दीरघ कोई सूक्षम बानी। छिमियो सो मम सठ बुधि मानी॥
कोइ बरणों कोई याद न आई। सो लिखने की ठौर रखाई॥
वही : पृ० ३५२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं की, उनमें ब्रह्मप्रकाश जी, श्री छीतरमल, पूरणप्रताप जी और जैदेवदास जी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

'लीलासागर' में कवि की वर्णन शैली इतिवृत्तात्मकता के साथ-साथ प्रवाहमयी है। कवि को मार्मिक स्थलों की अच्छी पहचान है। घटना-प्रवाह में तीव्र गति से अग्रसर होते हुए भी कवि स्थान-स्थान पर विरम जाता है और योग, भक्ति और ज्ञान आदि के लक्षणों-उपलक्षणों एवं भेदोपभेदों के सांगोपांग विवेचन में जुट जाता है। कुछ समय के लिए पाठक को ऐसा प्रतीत होता है कि कवि विषयान्तर में भटक गया है, लेकिन थोड़ी ही दूर आगे चलने पर उसकी धारणा को उस समय ठेस लगती है, जब वह देखता है कि कवि पुनः पूर्ववृत्त से जुड़ गया है। घटना-वैविध्य और औपचारिक वर्णनबाहुल्य का अद्भुत गुम्फन 'लीलासागर' में दिखाई देता है।

इस प्रबन्धकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके माध्यम से हम श्री चरणदास के युग का एक आँखोंदेखा चित्र प्रस्तुत पाते हैं। चरणदास जी के जीवनकाल में मुहम्मदशाह रँगीले से लेकर ५ मुगल बादशाह दिल्ली की गद्दी पर आये और चले गये। इनमें से प्रायः सभी किसी-न-किसी रूप में उनसे सम्बद्ध रहे। जयपुर के सवाई महाराज जयसिंह, ईश्वरीसिंह और प्रतापसिंह से वे सक्रिय रूप से जुड़े हुये थे। अलवर, कोटा, बूंदी, पानीपत, करनाल, लाहौर और अवध के तत्कालीन शासकों से भी उनका जीवन वृत्त जुटता है। नादिरशाह के आक्रमण की भविष्यवाणी और उसके साथ उनका सत्संग अपने आप में बड़ा ही प्रभावशाली प्रसंग है। अहमदशाह अब्दाली द्वारा दिल्ली की लूट के बावजूद चरणदास जी के आश्रम को अछूता छोड़ दिया जाना उनके महत्व को सिद्ध करता है। इस प्रकार की अनेक बातें हैं, जो इतिहाससिद्ध हैं और प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा ऐतिहासिक तथ्य के रूप में उल्लिखित हैं।

इस प्रबन्ध काव्य में स्थान-स्थान पर प्रकृति वर्णन का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत हुआ है, जो यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि कवि की दृष्टि प्रकृति-सौंदर्य के आकर्षण से विमुख नहीं है। श्री चरणदास के जन्म के समय प्रकृति के स्वरूप का एक शब्दचित्र इस प्रकार है—

बिजुरी चमकि गगन घनघोरा। जित तित बोलत दादुर मोरा॥
उमड़े बादर झड़ी लगाई। सरिता उमग अधिक गहराई॥
हरी भूमि ऋतु नई सुहाई। झींगुर शब्द सों टेर लगाई॥
बाग वृक्ष फल फूल सुहाये। बेलि बेलि में पुहुप दिखाये॥[1]

---

१. लीलासागर : पृ० १३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार श्री चरणदास का बाल्यवर्णन, उनकी कठोर योगसाधना का स्वरूप-वर्णन, उनके भूप-रूप का वर्णन, वृन्दावन धाम का रास-विलास एवं गुरु-दर्शन और उनसे वियुक्त होने पर दारुण वियोग-दशा का वर्णन, विविध यात्राओं में प्रदर्शित चमत्कारों आदि के वर्णन इस काव्य के विशेष आकर्षक स्थल हैं। अन्त में कहा जा सकता है कि लीलासागर प्रबन्धकाव्य की सभी विशेषताओं से समन्वित तथा पठनीय है।

जोगजीत जी ने 'लीलासागर' तथा 'जैमिनि अश्वमेध पर्व' (भाषा) जैसे दो प्रशस्त प्रबन्धकाव्यों की रचना करके हिन्दी की प्रबन्ध-काव्य-सम्पदा की अभिवृद्धि में तो योगदान किया ही, साथ ही उन्होंने सुन्दर स्फुट बानियों की भी रचना की। इन बानियों में शुकसम्प्रदाय के बानी-साहित्य की परम्परा का पूर्णतः निर्वाह मिलता है। जैसा कि हम अब तक देख चुके हैं, इस सम्प्रदाय के कवियों ने योग, ज्ञान, वैराग्य, नवधा भक्ति और अष्टयामोपासना से सम्बन्धित विविध शैलियों के पदों की रचना के साथ-साथ श्री राधा और श्री राधाकृष्ण युगल से सम्बन्धित विविध लीलाओं का भी रसमय गान किया है। ध्यानेश्वर जोगजीत भी इसके अपवाद नहीं है। उनके निम्न पद में प्रिया जी (राधाजू) से कवि का निवेदन वर्णित है—

मेरी प्राण जीवन श्री राधे तुम बिन कैसे रहिये।
जो पल प्यारी होवत न्यारी तरफ तरफ जिउ दैये॥
विरह बिथा अति ही बाढ़त है ये दुख कासों कहिये।
बांह गहे की लाज निभाओ तुमको यों नहिं चहिये॥
प्रणतपाल कृपाल किशोरी अपनी जान निभैये।
जोगजीत चरणदासि तिहारी जनम जनम की कहिये॥

इस सम्प्रदाय के प्रायः सभी कवियों ने श्री कृष्ण अथवा राधा अथवा श्रीराधा-कृष्ण युगल की सदलबल होली खेलने का अनेकशः वर्णन किया है। जोगजीत जी का 'राग भैरव' में रचित निम्न पद भी इसी परम्परा का निर्वाह है—

होरी हरि खेलत रंग भरी।
हौं जावत जमुना जल भरने परवश जाय परी॥
भर पिचकारी मुख तक मारी सुध बुध सब बिसरी।
अबिर गुलाल उड़ावत लालन चल न सकत मग री॥
टोंना सी कछु कीनो री आली चितवनि चित्त हरी।
वै मूरति मन मोहनि मेरे हिय बिच रहत अरी॥
निसि बासर सोवत अरु जागत बिसरत नाहिं घरी।
जोगजीत चरणदासी होकर भव जल पार तरी॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोगजीत जी की शिष्य परम्परा में निश्चित ही कुछ महात्मा और संत-महन्त कवि हुए होंगे परन्तु अभी तक उनकी बानियाँ उपलब्ध न होने के कारण वे शोध्य बनी हुई हैं।

७. ब्रह्मप्रकाश जी—

सन्तप्रवर चरणदास जी के १०८ शिष्यों की सांप्रदायिक सूचियों में इनके नाम का सम्मिलित न होना आश्चर्यजनक है। 'लीलासागर' और 'गुरुभक्तिप्रकाश' में इनके सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। कारण जो भी हो,पर इतना निश्चित है कि ये चरणदास जी के एक प्रभावशाली शिष्य थे। उन्होंने चरणदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार अपने कईकेन्द्रों और थाँभों के माध्यम से किया। धनौरा वाला इनका प्रधान थाँभा इस सम्प्रदाय में बड़े थाँभे के रूप में मान्य था और वहाँ के महन्तों को उसी कोटि में गिना जाता था।

इनका जन्मकाल या इनके जीवन सम्बन्धी अन्य वृत्त का पता नहीं चलता। ये जाति के ब्राह्मण थे और अनुमानतः सं० १८७० वि० तक जीवित थे। इनकी समाधि बिजनौर जिले के धामपुर से लगभग १० मील दूर जटपुरा नामक स्थान में बनी हुई है। सम्भव है कि इनके थाँभे चरणदास जी के लीला प्रवेश के बाद स्थापित हुए हों। इसलिये उक्त दोनों साम्प्रदायिक इतिवृत्त सूचक कृतियों में श्री ब्रह्मप्रकाश का उल्लेख नहीं हुआ।

धनौरा के प्रधान थाँभे के अतिरिक्त इनके और इनकी शिष्य परम्परा द्वारा स्थापित स्थानों में असगरीपुर, जटपुरा, धामपुर, मंदपुर, जसौरा, मोड़िया, खदाना और गधेली आदि १० स्थानों का जो यत्किंचित् वृत्त मिलता है, उसका परिचय यहाँ दिया जा रहा है। साहित्य-सर्जन की दृष्टि से इस परम्परा के महात्माओं का योगदान प्रायः नगण्य है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उनकी रचनाएँ (यदि कुछ हैं भी तो) अभी तक अप्राप्त हैं।

ब्रह्मप्रकाश जी का होरी से सम्बन्धित एक पद श्री जगदीश राठौड़ के बानी-संग्रह में संकलित है, जो इस प्रकार है—

होरी खेलत कुंज बिहारी।
नवल किशोरी लाड़ली श्यामा प्रीतम प्राण पियारी॥
संग में सखी अनेकन सोहैं सुंदर रूप उज्यारी।
कुंकुम केसर और अरगजा करन लिये पिचकारी॥
डारि गुलाल मलत मुख रोरी सोभा बढ़ी अपारी।
बाजत ताल मृदंग झांझ डफ राग रागिनी न्यारी॥
प्रीतम को गहि फगुवा मांगे हिल मिल के सुकुमारी।
ब्रह्मप्रकाश निरखि या छबि कूँ बार बार बलिहारी॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस परम्परा के रामरिष जी (ब्रह्मप्रकाश जी के शिष्य), संतदास जी और उनके शिष्य लखनदास जी की बानियाँ उपलब्ध हैं। इनका उल्लेख यथास्थान किया जा रहा है।

ब्रह्मप्रकाश जी की शिष्य परम्परा में आत्मप्रकाश, चतुरदास, श्यामादास या श्यामस्वरूप और शांतिप्रकाश आदि ऐसे महन्त हुए जिन लोगों ने अपने सम्प्रदाय के विस्तार में पर्याप्त रुचि दिखाई। यही कारण है कि इस परम्परा के लगभग एक दर्जन सक्रिय स्थान निर्मित हो सके। इन थाँभों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. धनौरा (जिला मुरादाबाद)—यहाँ ब्रह्मप्रकाश जी का मुख्य थाँभा था। यहीं से उनके गनौरा, जसौरा, कनरवाला, धामपुर, जटपुरा, खदाना और असगरीपुर के थाँभे नियन्त्रित होते थे। सं० १९५२ वि० में महन्त चतुरदास के समय में इसके साथ मात्र पाँच ही छोटे थाँभे थे, जो आगे चलकर १० हो गए। महन्त ब्रह्मानन्द के समय में (सं० २००० वि० और उसके बाद) इनमें से केवल तीन स्थान ही सक्रिय रह गए थे। यहाँ की परम्परा इस प्रकार है—ब्रह्मप्रकाश जी (सं० १८७० वि० तक अनुमानित)—आनन्दप्रकाश जी (सं० १८७०–१८९० वि०)—आत्माप्रकाश (सं० १८९०–१९२० वि०)—भरपुरदास जी (सं० १९२१–१९३१ वि०)—भगतप्रकाश जी (सं० १९३१–१९३९ वि०)—महन्त चतुरदास[1] (सं० १९३९–१९६८ वि०)—श्यामादास जी (सं० १९६८–१९७८ वि०)—ब्रह्मध्यान जी (ब्रह्मानन्द जी) (सं० १९७८–२०२३ वि०)—शांतिप्रकाश (वर्तमान), यहाँ का मन्दिर अब भी सुरक्षित है।

२. असगरीपुर—बिजनौर जिले के गोहावर डाकखाने में ताजपुर स्टेशन के पास यह स्थान है। महन्त चतुरदास के समय से यहाँ का केन्द्र धनौरा से संबद्ध हो गया है। सं० २०१५ वि० तक संतराम जी यहाँ वर्तमान थे। संतराम जी के शिष्य लखनदास जी द्वारा रचित 'आध्यात्मकीर्त्तन पुष्पांजली' ३२ पृष्ठों का एक लघुकाय एवं प्रकाशित ग्रंथ है। इसके आरम्भ में श्री शुकदेव मुनि, राधा-कृष्ण, चरणदास जी और गुरु श्री संतरामदास की कीर्त्तन-पद्धति में रचित १८ स्तुतियाँ समाविष्ट

---

१. महन्त चतुरदास के विषय में सन् १९०५ ई० में प्रकाशित 'गुरुभक्तिप्रकाश' की भूमिका में श्री अलबेलीशरण ने इस प्रकार प्रकाश डाला है—धनौरे में महन्त चतुरदास जी महाराज हैं जो उस देश के बड़े मान्य सत्पुरुष हैं। वहाँ के रईस भी उनकी सेवा करते हैं। महन्त चतुरदास या चत्रदास के गुरु संतदास जी प्रायः असगरीपुर में रहा करते थे। 'आध्यात्मकीर्त्तन पुष्पांजली' के रचयिता स्वामी लखनदास भी इन्हीं संतदास जी के शिष्य थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। ये विभिन्न रागों में निबद्ध हैं। इस ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में रामरूप जी और स्वामी चरणदास जी का कीर्त्तन शैली में जीवन चरित्र वर्णित है। रामरूप जी की स्तुति के सन्दर्भ में इन्होंने यह संकेत किया है कि रामरूप जी की शिष्य परंपरा ने इन्हें अपना लिया है।

सच्ची आत्मा कृष्णरूप हो, जगत चिता कर हुए गूप हो।
लखन का भी है धन्यभाग, लिया अपनी शरण बुलाये ॥—पृ० २२।

इनकी भाषा खड़ी बोली है, परन्तु उस पर बोलचाल के रूप का प्रभाव परिलक्षित होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

अब तो प्रभू मोपै निभाना पड़ेगा।
इतना परिश्रम उठाना पड़ेगा ॥—पृ० १३।

महन्त संतदास भी कवि थे। इनकी बानी सरसकुंज–जयपुर में प्राप्त है। इनके शिष्य चत्रदास तो कवि थे ही। यहां से किसी महन्त का सं० १९४५ वि० तक के मेलों में उपस्थित न होना यह सिद्ध करता हैं कि यह थाँभा सं० १९५० वि० के बाद स्थापित हुआ था।

३. जटपुरा—यह बिजनौर जिले में सीवारा स्टेशन के पास का एक गाँव है। धामपुर से कोई १० मील दूर है। यहाँ ब्रह्मप्रकाश जी की छतरी एवं समाधि बनी हुई है। रामगंगा के तट पर स्थित यह थाँभा अभी भी सक्रिय है। धनौरा के महन्त इसकी व्यवस्था करते हैं। इस समय वहाँ के महन्त शान्तिप्रकाश जी हैं। इस स्थान का पुराना नाम जटाणां मिलता है। यहाँ भी चरणदासी मंदिर बना हुआ है और अर्चा-पूजा होती रहती है। यहां की शिष्य परम्परा का अनुमानाश्रित स्वरूप इस प्रकार है—आत्माराम या आत्मप्रकाश जी (सं० १८९०–१९२० वि०)—गुलाबदास जी (सं० १९२०–१९३० वि०)—रामदास जी (सं० १९३०–१९४० वि०)—श्यामस्वरूप जी (श्यामदास जी धनौरा वाले ?) (सं० १९४०–७५ वि०)—वासुदेवदास जी (सं० १९७५–८० वि०)—महन्त आत्मानन्द (सं०१९८०–२०२० वि०)—महन्त शान्तिप्रकाश (वर्तमान)।

४. धामपुर—धामपुर (बिजनौर) में भी कोई थाँभा था, जिसका अब पता नहीं चलता। इसकी व्यवस्था धनौरा से ही होती रही। यहां मन्दिर के साथ पर्याप्त भू सम्पत्ति संलग्न थी।

५. मन्दपुर (तह०–रुड़की, जिला–सहारनपुर)—यह रुड़की के निकट का कोई स्थान था। सं० १९५२ एवं ५८ वि० के मेलों में महन्त सेवाराम दो-तीन साधुओं के साथ पधारे थे। अनुमानतः सं० १९७० वि० के बाद यह स्थान समाप्त हो गया। यहां का मन्दिर अब भी सुरक्षित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. जसौरा (जिला–मुरादाबाद)—सं० १९१९ से १९४५ वि० के बीच प्रेमदास जी यहाँ के महन्त थे। उनके बाद आनेवाले रामकिसनदास संभवतः उनके शिष्य थे। इस प्रकार सं० १९६० वि० तक इस थाँभे का पता चलता है, इसके आगे नहीं।

७. मोड़िया (जिला–बिजनौर)—ब्रह्मप्रकाश जी के स्थानों में यहाँ का थाँभा बड़ा जोरदार था। यह इसी से प्रमाणित है कि सं० १९३० से १९३९ वि० के बीच कई मेलों में यहाँ के महंत रामदेव जी २५ से ३० साधुओं की मण्डली के साथ जाते रहे। प्रसिद्धि है कि यहाँ के महन्त काल्हड़दास को गजक्रिया सिद्ध थी। सं० २००८ वि० तक श्री साहबदास यहाँ के महंत थे। यह परम्परा गृहस्थ गद्दी के रूप में अब भी चल रही है।

८. खदाना या खदान (जिला–बिजनौर)—यहाँ से सं० १९१९–४२ वि० के बीच श्यामस्वरूप (धनौरा वाले) विभिन्न मेलों में आते थे। इसके बाद संभवतः वे जटाणां (जटपुरा) के थाँभे पर रहने लगे और यहाँ की परम्परा निष्क्रिय हो गई। इस स्थान का एक नाम उमरी खदान भी मिलता है।

९. गधेली (तह०–कीरतपुर, जिला–बिजनौर)—यहाँ की परम्परा भी संभवतः सं० १९४० वि० के बाद नहीं चली, क्योंकि १९१९ के मेले में गरीबदास और सं० १९३९ वि० के मेले में ब्रह्मरीष के आने के बाद पुनः यहाँ से कोई किसी मेले में नहीं आया।

कनखाला (जिला–मुरादाबाद), गनौरा (मुरादाबाद) और बालावाली (बिजनौर) के थाँभों का कोई परिचय प्राप्त नहीं होता। अनुमानतः इन स्थानों पर स्वतन्त्र थाँभे नहीं थे, बल्कि यहाँ इस परम्परा की जागीरें थीं और इनकी व्यवस्था धनौरा से होती थी।

८. श्री जसराम उपकारी—

श्री चरणदास के कवि शिष्यों में इनका महत्वपूर्ण स्थान हैं। ये रोहतक जिले के झज्झर परगने के अन्तर्गत स्थित सुबाना ग्राम में सं० १८०० वि० के आस-पास एक विप्रकुल में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम सीताराम तथा माता का नाम आनन्दी देवी था। इन्हें बचपन से ही साधु-सेवा, अतिथि सेवा और हरिभजन की धुन लगी थी। ये स्वभाव से बड़े ही आज्ञाकारी, श्रद्धालु और परोपकारी थे तथा चरणदासी महात्माओं की विशेष लगन के साथ सेवा करते थे। 'लीलासागर' के अनुसार एक बार चरणदास जी ने भी एक वृद्ध साधु का वेश धारण करके इनकी परोपकार-निष्ठा और सेवा-भावना की परीक्षा ली थी।[1] इनकी इस उपकारी

१. लीलासागर : पृ० २९६–९७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्ति के कारण ही दीक्षा के उपरांत गुरु (चरणदास जी) ने इन्हें 'उपकारी' की उपाधि दी थी।[1]

अपने पिता-माता के परलोकवासोपरान्त इन्होंने गृहत्याग किया और विरक्त-बाना धारण करके आजीवन अविवाहित रहते हुए भक्तिप्रचार और साहित्य सर्जन में अपने को नियोजित किया। गुरु के आदेश से रिवाड़ी तहसील के खरक (कलाँ) नामक स्थान में अपना थाँभा स्थापित कर ये वहीं रहने लगे। इनके 'गुरुस्तोत्र' नामक ग्रंथ के रचनाकाल के आधार पर इनके सं० १८३८ वि० तक जीवित होने के पुष्ट प्रमाण हैं। इनके तीन प्रमुख शिष्यों का नामोल्लेख मिलता है, जिनमें से रामदयाल जी तो खरक के इनके प्रधान थाँभे के महन्त थे। शेष दो—छबीलीदास और हेतनदास का थाँभा कहाँ था, इसका पता नहीं चलता। ज्ञानानंद निर्वाणी जी कृत 'अवतार अष्टक' और 'चौबीस अवतार कथा भागवत सार' नामक ग्रंथों की पाण्डुलिपि के प्रतिलिपिकार छबीलीदास जी ही हैं। उन्होंने सं० १८४७ वि० में इन दोनों ग्रंथों की पाण्डुलिपि तैयार की थी और लिखने का स्थान उन्होंने पिचौवा बताया है। यह पिचौवा कहाँ है, इसका पता नहीं चलता। निर्वाणी जी के उक्त दोनों ग्रंथों की संयुक्त पाण्डुलिपि में छबीलीदास जी ने अपनी भी १५–२० बानियाँ संकलित कर दी हैं। इन बानियों के पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि इनकी भक्ति भावना रसिकभावापन्न थी। इनका नाम भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार चेतनदास जी ने उपकारी जी की रचनाओं की पाण्डुलिपि तैयार की थी। सम्भवतः ये गुरु के साथ खरग में या कहीं आस-पास में ही रहते थे।

यद्यपि इनका प्रधान थाँभा खरक (कलाँ) में था परन्तु ये प्रायः तहसील रिवाड़ी के विहारीपुर नामक गाँव में रहा करते थे। यह गाँव उन्हें माफी में मिला था। यहाँ उनके शिष्य रामदयाल जी ने मन्दिर का निर्माण कराया था। इससे अनुमान होता है कि ये अच्छे महात्मा और सिद्ध साधक थे। रोहतक, गुड़गाँव और महेन्द्रगढ़ जैसे हरियाणा के जिले इनके कार्यक्षेत्र थे।

इनका साहित्यिक जीवन सं० १८२८ वि० से आरम्भ हुआ। उन्होंने उस वर्ष 'भक्त बावनी' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इस प्रकार मानना चाहिए कि 'भक्त बावनी' (सं० १८२८ वि०) इनकी प्रथम कृति और 'गुरुस्तोत्र' अन्तिम रचना है। इनके सभी ग्रंथों की पाण्डुलिपि हेतनदास नामक इनके शिष्य ने तैयार की है। इनके प्रधान थाँभे (खरक) की शिष्य-परम्परा इस प्रकार मिलती है—

---

१. आ अस्थल यह मोहि मिलो, कियो साधु सुखधाम।
जोगजीत या नाम यों, उपकारी जसराम॥
—लीलासागर : पृ० २९७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खरक का थाँभा—उपगारी जसराम जी (सं० १८३४–१८७० वि०) —महन्त रामदयाल[1] (सं० १८७०–१९०० वि०)—किशोरदास (सं० १९००–७५ वि०)—मथुरादास जी (सं० १९७५–७८ वि०)—जानकीदासजी (सं० १९७८–२०२० वि० अनु०) - अज्ञात। अपने सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में चाहे इनका महत्त्व उल्लेखनीय भले न हो परन्तु कवि रूप में इनकी कीर्ति स्थायी है। नागरी-प्रचारिणी सभा के खोज विवरण के अनुसार ये 'भक्ति बावनी', 'भक्तिबोध', 'शब्द' और 'हरिगुरु स्तोत्र'— इन चार ग्रन्थों के रचयिता हैं। संयोग से इन चारो ग्रन्थों की पाण्डुलिपि मुझे प्राप्त हो गई है। इनमें से अन्तिम ग्रन्थ अर्थात् 'हरिगुरु स्तोत्र' मात्र ढाई पृष्ठों का एक स्वतंत्र शीर्षक है। इसे ग्रंथ मानना उचित नहीं है। इसमें भगवान् और गुरु-सहित अनेक प्रसिद्ध भक्तों को नमन निवेदित है। स्तोत्र की संज्ञा को सार्थक करने के लिए कवि ने संस्कृत शब्द मिश्रित भाषा के प्रयोग का प्रयास किया है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

नमो चरनदासं। हरिभक्ति प्रकासं।
नमो स्वामी सिद्धं। भये कूल मद्धं।
नमो जोग जुक्ता। करै जीव मुक्ता ।। आदि ।।

१. भक्ति बावनी—यह २२९ पत्रों (४५८ पृष्ठों का) एक विस्तृत ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक पृष्ठ पर १७ पंक्तियों का समावेश हैं। ४ खंडों और ५२ अध्यायों में विभक्त तथा ५२ आख्यानों से युक्त इस रचना को प्रस्तुत करके कवि ने साधकों और जनसाधारण के समक्ष उच्च आदर्शों की स्थापना की है। इनमें से कुछ भक्त तो पौराणिक हैं परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो हिन्दी साहित्य में ख्यात हैं–जैसे रामानन्द, कबीर, पीपा, रैदास, मलूकदास, तुलसीदास, मीराबाई और चरनदास आदि।[2]

---

१. रामदयाल जी महन्त भले सं० १८७० वि० में हुए हों परन्तु ये एक प्रसिद्ध महात्मा के रूप में सं० १८३४–३५ वि० तक ख्यात हो चुके थे। इसका प्रमाण यह है कि सं० १८३४ वि० में लिपिबद्ध और स्वयं चरणदास जी द्वारा हस्ताक्षरित 'भक्ति सागर' की एक प्रति मिति ज्येष्ठ सुदी १५, सं० १८३५ वि० को इन्हें भेंट की गई थी। इसमें चरणदास जी की मुहर भी थी। यह प्रति दिल्ली के प्रधान 'अस्थल' में सुरक्षित है।

२. 'भक्ति बावनी' में वर्णित भक्तों के नाम कवि ने स्वयं ही इस प्रकार निर्दिष्ट किया है—

छंद—नारद ध्रुव प्रहलाद सिवा नृग पुरूरवा भिक्षुक है।
अजामेल कूं आदि ये जुग सतजुग भागौती लहै ।।
बाल्मीकि बल रुक्मांगद हरिचन्द सिवरी नल सुनो।
ये त्रेता के भक्त अब द्वापर के नीके सुनो ।।...क्रमशः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि ने इनके जीवन सम्बन्धी प्रामाणिक आख्यानों के माध्यम से इनकी साधनाओं और सिद्धियों पर प्रकाश डाला है। इस काव्य का रचनाकाल मिति चैत बदी, आठ, वार-बुधवार सं० १८२६ वि० है। इसकी प्राप्त पांडुलिपि का लिपिकाल सं० १८४१ वि०, आषाढ़ कृष्ण ५, मङ्गलवार है।

कवि ने इस प्रबन्धकाव्य का आरम्भ बड़े समारोहपूर्वक किया है और अंत में विस्तृत फलश्रुति भी दी है। ५२ भक्तों का आख्यान एक ही ग्रंथ में सुलभ हो जाय यह अपने आप में बड़ी महत्वपूर्ण बात है। अपनी विनम्रता व्यक्त करते हुए कवि कहता है—

लघु बुधि नाहिं पिंगुल पढ़्यौ, जन महिमा जु अपार।
पंगु परवत कैसे चढ़ै, अतिर सिन्धु करि पार॥

× × ×

बाल बचन सुनि सब हँसैं, प्यार करैं लघु जानि।
मो बाणी कूं सन्त सब, ऐसें लीजौ मानि॥[1]

यद्यपि इसके मुख्य छंद के रूप में चौपाई की ही प्रधानता है परन्तु दोहा, कुंडलिया आदि का भी इसमें बीच-बीच में प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं इसमें विविध रागों में निबद्ध पद भी हैं। इसकी फलश्रुति इस प्रकार है—

जो कोई हित करि सुनै सुनावै। अरु जो प्रेम सहित कोई गावै॥
इन तीनों के पातिक जरैं। जैसे गंगा जो अघ हरैं।
अरु जो कोई सम्पूरन सुनै। सरवन करिके मन में गुनै॥
सो नर भक्ति मुक्ति फल पावै। भवसागर में बहुरि न आवै॥

अंबरीष सुषदेव मोरध्वज रिष सुदामा ऊधव भये।
बाल्मीकि अक्रूर पांडव चंद्र ही द्वापर ठये॥
बिल्वमंगल भक्त नरसी जैदेवादिक गाइया।
रामानंद कबीर पीपा रैदासा हरि भाइया॥
माधवदास निम्बादित्य स्वामी निहकंचन कूं बंध ना।
सेन सदना नामदेवा त्रिलोचन तुलसी जना॥
लालाचारज व्यास नरपति मोहजीत जैमलहि।
रतनावती मीरा जु करमा करमेती नाभा वहि॥
मलूक और चरनदास स्वामी कलजुग पहरै अवतरे।
रामप्रसादादिक ५२ भये जन जसराम गायें षरे॥

१. भक्ति बावनी : प्रथम प्रभाव, छंद सं० ४, ६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके १५ वें प्रभाव में शुकदेव जी और ५१ वें में चरणदासजी का चरित्र वर्णित है। चरणदास जी के चरित्र-वर्णन में कवि ने रामरूप जी के 'गुरुभक्तिप्रकाश' और जोगजीत जी के 'लीलासागर' में वर्णित घटनाओं को ज्यों का त्यों अपने शब्दों में प्रस्तुत कर दिया है। इससे भी इन ग्रंथों में वर्णित वृत्तों की यथार्थता प्रमाणित होती है। अन्य महात्माओं और भक्तों के चरित्र-वर्णन में भी उपलब्ध प्रामाणिक आधारों को ही ग्रहण किया गया है। अपनी ओर से अतिरंजना या काल्पनिकता को किंचित् भी प्रश्रय नहीं दिया गया है।

२. भक्ति प्रबोध—यह २४ पत्रों (४८ पृष्ठों) का चौपाई, दोहा, सोरठा, सवैया एवं कवित्त आदि छन्दों में रचित एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसका कथ्य ४ अंगों में विभक्त है, जिनका शीर्षक है—भक्ति का अंग, साधु महिमा का अंग, वैराग्य-का अंग और सांख्य-भेद का अंग। इस ग्रन्थ का रचनाकाल कार्तिक कृष्ण १२, मंगलवार सं० १८३४ वि है।[1] इसकी कुल छन्द संख्या २७४ है, जिसका वितरण इस प्रकार है—

(१) भक्ति को अंग—५३ छंद। (२) साधुमहिमा को अंग—४९ छंद।
(३) वैराग उपजावन को अंग ९७ छंद। (४) सांख्य भेद को अंग ७५ ,,।

इस ग्रन्थ की वर्णन पद्धति गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में है। कवि के शास्त्रीय ज्ञान का प्रमाण इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर मिलता है। इस रचना का शीर्षक 'भक्तिबोध' सार्थक और साभिप्राय है। इसका उद्देश्य भक्ति-निरूपण के साथ ही भक्ति की ओर उन्मुख करना भी है। यह कृति शुकचरणदासी संप्रदाय का सिद्धान्त निरूपक ग्रन्थ है।

इन्होंने अपनी बानियों में कहीं-कहीं अपना नाम जस्सराम और कहीं-कहीं जसराम सखी भी लिखा है। जस्सराम लिखने का मुख्य कारण मात्रा की पूर्ति हो सकती है, जैसे—

सत संगति परताप की, कथा कही रनजीत।
साधुन के सम जस्सराम, और न कोई मीत॥

१—अठारह सै चौंतीस का सम्वत नीका जान।
हरि गुरु के परताप सूँ उपजा अनभौ ज्ञान॥
कातिक बदी दुआदसी सुभ दिन मंगलवार।
जा दिन यह पोथी कही भक्तिबोध तत्सार॥
सत संगति परताप की, कथा कही रनजीत।
साधुन के सम जस्सराम, और न कोई मीत॥[1]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वैराग्य उपजावन को अंग' का पहला ही दोहा इस अंग का सारतत्त्व सूचित कर देता है—

तेरा साथी कौन है, संग न चालै देह।
झूठ जानि जग त्यागियै, हरि सूँ करो सनेह ।।

३. शब्द—इसकी पाण्डुलिपि में कुल ३० पत्र (६० पृष्ठ) हैं।[1] यह १५ दोहों और १०० पदों का ग्रंथ है। ये पद विविध राग-रागिनियों में निबद्ध हैं और उनके रागों के शीर्षक भी दिये हुए हैं। इस ग्रंथ का रचनाकाल अंकित नहीं है। इससे अनुमान होता है कि विभिन्न समयों, उत्सवों और पर्वों के अवसर पर इन पदों की रचना हुई है। इनमें होली, धमाल, वसन्त, पूरबी, झंझोटी, राग बरुआ, ख्याल और काफी आदि रागों की प्रधानता है। इन पदों में सगुण और निर्गुण—दोनों प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति है। जहाँ एक ओर श्री राधा-कृष्ण की अनेकविध लीलाओं का वर्णन है, वहीं ज्ञान-वैराग्य, चेतावनी आदि सन्तबानी शैली के पदों का भी समावेश है। जहाँ एक ओर—

होरी खेलत सुंदर साँवर हो।
अहो मोरे ललना संग सखा बहु ग्वाल।
मना मनसुखा सबल संतोषा भर भर फेंट गुलाल।[2] आदि—

जैसे पद हैं, वहीं दूसरी ओर इस प्रकार के वैराग्यमूलक कथन भी हैं—

हंसा चलो समुंद को, यह जग डाबर त्याग।
सतसंगत कर पायले, पंख ज्ञान बैराग।।
शब्द गुरू का समझ के, अपना रूप सँभाल।
भर्म भूल कउआ भया, तू है जात मराल।।[3]

इस ग्रंथ में जो बानियाँ संगृहीत हैं उन्हें भी अंगों में विभाजित किया गया है, जैसे गुरुदेव का अंग, भक्ति का अंग, प्रेम का अंग, साधु-सूरमा का अंग, वैराग का अंग और ज्ञान का अंग। इनमें से भक्ति का अंग और प्रेम का अंग में समाविष्ट प्रायः सभी पद श्री राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हैं।

निम्न पंक्तियों में उद्धव-गोपी संवाद के माध्यम से श्री राधा या किसी गोपी की विरह-पीड़ा का ऐसा मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है, जो अपने आप में बड़ा ही प्रभावशाली है—

---

१. सरसकुंज—जयपुर की प्रति में पत्रों की संख्या ४५ है। पत्रों का विस्तार ८" × ५" है। इसकी प्रतिलिपि का काल सं० १९०७ वि० है।

२. शब्द : ज्ञान का अंग, बानी सं०-२०।

३. वही : सं० ६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीस मुकुट मुरली गहैं, अलकैं नैन बिसाल ।
या छवि सूँ जसराम कूँ, दरसन देउ दयाल ।।
पंथ निहारूँ पीव को, निस दिन अठों जाम ।
सषी जसराम अधीन कूँ, आय मिलौ घनश्याम ।।[1]

अथवा

ऊधो कदि आवैं स्याम पियारा ।
मैं बिरहन ठाढ़ी मग जोऊँ कब हरि लैहैं सँभारा ।।
मोकूँ दरस दिखाओ मोहन आनंद होय अपारा ।
जन जसराम दोऊ कर जोरै राखौ मान हमारा ।।[2]

'प्रेम का अंग' और 'भक्ति का अंग' में संकलित इनके कई पदों में 'जसराम सखी' के रूप में कवि की मधुरोपासना का संकेत मिलता है । अनन्य प्रेमाभिव्यक्ति से पूर्ण इनका ऐसा ही एक पद द्रष्टव्य है—

नन्द नन्दन मममोहना मोहिं लागे री प्यारो ।
साँवरि सूरत माधुरि मूरत बड़े बड़े नैना वारो ।।
वा देखे बिन कल न परत मोहिं कछु टोना सो डारो ।
चितवन में चेटक सो कीनो चित हरि लियो हमारो ।।
लोक लाज मरजादा त्यागी तन मन भवन बिसारो ।
जो देखे तेहि मोहित करले ऐसो कामनिगारो ।।
बहुतक गोपी गर्व गुमावन तिनको मानन धारो ।
चरनदास जसराम सखी कूँ चरनन लाय निस्तारो ।।

—शब्द : पत्र सं० २६ ।

इनकी अधिकांश निर्गुन बानियाँ 'कड़खा राग' में निबद्ध हैं । इन बानियों की सधुक्कड़ीशैली और पंचमेल भाषा जसराम जी की मनमौजी वृत्ति की परिचायिका है । इनका इस प्रकार का पद यहाँ उद्धृत है—

करै महल की सैल सोई सतभाग है ।
जोग जुगति सूँ चढ़ै महल पर सुखमनि पंथ निहारा है ।।
कामधेनु जहाँ अमृत बरखै झिलमिल जोत अपारा है ।
जो नर पीवै अमीरस प्याला देवै अति गुलजारा है ।।
सहस कँवल दल अजब सिंहासन तहाँ जु पीव हमारा है ।

---

१. शब्द : प्रेम का अंग १–२ ।
२. वही : पृ० ५ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोहं शब्द लहै सोई हंसा अनहद का झनकारा है ।।
जन जसराम लहै या छवि कूँ जहाँ रणजीत पियारा है ।[1]

९. भगवानदास जी—ये चरणदास जी के वरिष्ठ शिष्यों में से थे । इनका बालूगंज (आगरा शहर) का थाँभा बड़े थाँभों की सूची में परिगणित होता है । श्री भगवानदास जाति के ब्राह्मण थे । गंगा-यमुना के बीच (म्यान डाब या द्वाब) स्थित सिलसिली ग्राम (जिला—मुजफ्फरनगर) इनका मूल स्थान था । यहीं रहकर इन्होंने अपने सम्प्रदाय के साधना-सिद्धान्तों का आजीवन प्रचार-प्रसार किया । इनके इस स्थान का महत्व इसी बात से सिद्ध होता है कि चरणदास जी रामत के क्रम में एकाधिक बार इनके यहाँ गये थे । इस तथ्य की ओर इनके गुरु-भाई श्री जोगजीत जी ने इस प्रकार संकेत किया है—

कियो जु तिन अस्थान, गाँव सिलसिली के निकट ।
चरणदास सुखदान, इक बर वा अस्थल गये ।[2]

दीक्षा ग्रहण के पूर्व ये दिल्ली की शाही सेना में सिपाही थे । ये प्रायः चरणदास जी के अस्थल में कथा-प्रवचन आदि के श्रवण तथा सत्संग-लाभ के लिए आते थे । एक बार चरणदास जी ने इनसे इनका परिचय पूछा तो इन्होंने बड़ी अँकड़ के साथ उत्तर दिया । उन्होंने इनके अज्ञान पर तरस खाकर उन्हें ज्ञानोपदेश दिया । इससे ये इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तत्काल शस्त्र और वर्दी खोलकर दूर रख दिया और वे चरणदास जी के शरणागत हो गये । उनकी भावना और गुरुनिष्ठा से प्रेरित होकर चरणदास जी ने उन्हें अपना लिया और दीक्षा देकर उनका नाम भगवानदास रखा । कुछ दिनों तक गुरुचरणों में रहने के उपरांत ये गुरु के आदेश से द्वाब क्षेत्र में रामत करने और उपदेश देने आदि में प्रवृत्त हो गये ।

ये ज्ञान-ध्यान में पूर्ण थे । 'लीलासागर' के अनुसार इन पर गुरु की महती कृपा थी और ये बड़े नामी महात्मा हुए ।[3] इनका व्यक्तिगत जीवनवृत्त अप्राप्त है । इन्होने 'रामाश्वमेध' नामक प्रबन्धकाव्य की रचना सं० १८९२ वि० में पूर्ण की थी, अतः तब तक तो इनका जीवित रहना प्रायः निश्चित ही है । संभव है कि इसके आगे भी वे कई वर्षों तक जीवित रहे हों ।

इनकी बालूगंज–आगरा वाली गद्दी पर्याप्त सक्रिय रही है । इनके प्रशिष्य मथुरादास सं० १९०० से १९२५ वि० तक इस गद्दी के महन्त रहे । उनके समय में

---

१. शब्द : पत्र सं० २२ ।
२. लीलासागर : पृ० २७६ ।
३. गुरुकृपा सेती बनि आये । नामी महापुरुष कहलाये ।।
—लीलासागर : पृ० २७६ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनके बाद महंत मोतीदास जी के समय तक इस प्रधान थाँभे के साथ ३ अन्य छोटे थाँभे भी थे। संभवतः ये सभी आगरा शहर या उसके आस-पास में ही थे। सं० १९०५ वि० के बाद इन छोटे थाँभों का अस्तित्व समाप्त हो गया।

महंत मथुरादास के शिष्य श्री मोतीदास का नामोल्लेख कई मेलों की बहियों में मोतीदास टूरा भी मिलता है। इससे अनुमान होता है कि ये हाथ या पाँव से लुंज रहे होंगे। वे सं० १९३० से १९७५ वि० तक के मेलों और सामूहिक आयोजनों में सम्मिलित होते रहे। इनके बाद मनोहरदास जी यहाँ के महंत-पद पर आये। ये रामरूप जी के प्रशिष्य (स्वामी सिद्धराम के शिष्य) महंत गिरिवरदास की बेलनगंज–आगरा की गद्दी की परम्परा में थे। संभवतः मोतीदास टूरा ने इन्हें ही यहाँ का कार्यभार सौंप दिया था। तब से यह स्थान रामरूप जी की परम्परा से संबद्ध हो गया। इस प्रकार मोतीदास जी टूरा ही श्री भगवानदास की शिष्य-परम्परा की अन्तिम कड़ी थे। सं० १९४९ से १९४४ वि० तक आगरा से महंत गिरधारीदास और सं० १९४५ वि० में वासुदेवदास जी यहां से मेलों में गये थे परंतु संभवतः वे मोतीदास टूरा के प्रतिनिधि के रूप में ही गये होंगे न कि स्वतन्त्र महंत के रूप में। संप्रति आगरा में एक ही स्थान मुख्य रह गया है, शेष इसी के अन्तर्गत हैं। यह सम्भवतः रामरूप जी की परम्परा का बालूगंज स्थित थाँभा है, जहाँ इस समय डोरीदास जी महंत के रूप में कार्यरत हैं। ये लँगड़ा चौकी, हनुमान मन्दिर में रहते हैं और महंत पेमदास के शिष्य हैं। यहाँ का मन्दिर बड़ा ही भव्य है और गुसाईं जुगतानंद की शिष्य-परम्परा से सम्बद्ध है। गो० जुगतानन्द के शिष्य श्री गो० गोविन्ददास ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था।

ये संस्कृत भाषा और साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। 'रामाश्वमेध कथा' नामक एक उत्तम प्रबन्धकाव्य की रचना करके इन्होंने अपनी कवि-प्रतिभा का परिचय दिया है।

रामाश्वमेध की कथा—यह २१८ पत्रों (४३६ पृष्ठों) का एक वृहत्काय प्रबन्ध काव्य है। इसका आधार 'पद्मपुराण' का पाताल खण्ड है। यह मूलतः एक अनूदित कृति है, जो ७० अध्यायों में विभक्त है।[1] यह श्लोकबद्ध अनुवाद न होकर मात्र छायानुवाद है। इसका रचनाकाल सं० १८६२ वि० है। इसके लिपिकार ने अपना नाम सूचित नहीं किया है। इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि श्री

---

१. चरनदास मेरे गुरू, कह भगवानहिं दास।
संसकिरत की छाँह ले, मैं भाख्यो इतिहास॥
—रामाश्वमेध की कथा (हस्तलिखित प्रति) : पत्र सं० २१८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामरूप जी की गद्दी के वर्तमान महंत श्री प्रेमदास (दिल्ली) के यहाँ सुरक्षित है। इसकी लिपि छोटे आकार में और सुस्पष्ट है। प्रत्येक पत्र में ४८ पंक्तियों का समावेश है। पत्रों का आकार ८" × ४" है। चौपाई और दोहा इसमें मुख्य छंद के रूप में प्रयुक्त हैं। साथ ही बीच-बीच में सोरठा, दण्डक, पद्धरी और सवैया आदि छंदों का भी समावेश मिलता है।

यद्यपि कवि ने इस छायानुवादमयी कृति की रचना में पर्याप्त श्रम एवं प्रयास किया है परन्तु यह रचना उनकी उच्चकोटि की कारयित्री प्रतिभा की परिचायिका नहीं है। कवि ने दिल्ली और उसके आस पास की जनभाषा को अपरिष्कृत रूप में (ज्यों का त्यों) ही अपनाकर उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, जो अच्छे कवि की पहचान नहीं है। इनके काव्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सर्वस तीर्थन को मनु न्हायो सोलह प्रकार को पूजन ऐसो।
सालकराम को नेकु चरणामृत आगले पाछले पाप दहै सो॥
सालगराम सिला जहाँ पूजन आपहु प्रसोत्तम याहिं रहै सो।
जोजन एक में कोटिक तीरथ सालक राम का आसैं सहै सो॥[1]

इनके कुछ पद भी यत्र-तत्र मिलते हैं परन्तु इनमें भी वर्ण्य विषय और शैली की दृष्टि से कुछ विशेष उल्लेख योग्य बात नहीं है।

१०. रसिकाचार्य रामसखी जी—ये जाति के कायस्थ थे। इनके अभिभावक दिल्ली के मुहल्ला-चीरेखान स्थित कायस्थों की गली के निवासी थे। 'लीलासागर' के अनुसार ये जन्मना किंपुरुष (हिंजड़ा) थे। ४–६ वर्षों तक तो यह बात छिपी रही परन्तु फिर किसी प्रकार दिल्ली के हिंजड़ों को इसका पता चल गया। उन्होंने नियमानुसार पालन-पोषण के लिये माँ-बाप से उस बच्चे की माँग की। उस बालक के माता-पिता संत चरणदास के शिष्य थे। उन लोगों ने उस बच्चे को अपने गुरु श्री चरणदास की शरण में लाकर रख दिया और उनसे सब बातें बता दीं।

कहते हैं कि दिल्ली के नियमानुसार ऐसा बालक हिंजड़ों के साथ ही रह सकता था परन्तु चरणदास जी ने नगर कोतवाल और हिंजड़ों को आश्रम में बुलवाया और कहा "मैंने इसे अपना शिष्य बना लिया है। इससे पूछिये कहाँ रहेगा ?" जब पूछा गया तो बालक ने चरणदास जी के यहाँ ही रहने के लिये कहा। अतः पाँच रुपया हिंजड़ों को देकर उन्होंने विदा किया। कोतवाल को भी आशीर्वाद

---

१. रामाश्वमेध की कथा (हस्तलिखित प्रति) : पत्र सं० ८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रसाद दिया। वह प्रसन्न होकर चला गया। १६ वर्ष की आयु में गुरु ने विधिवत उन्हें दीक्षित किया और 'रामसखी' नाम रखा। तब से रामसखी जी हरि और गुरु की कृपा के आकांक्षी बन कर प्रेमोपासना में लीन रहे। उन्होंने अपनी मनोकामना व्यक्त करते हुए प्रभु से निवेदन भी किया है—

अहो नवललाल पिय विनय सुनि लीजिये।
वास वृन्दाविपिन टहल श्रीकुंज की सोहनी आदि मोहिं कृपा करि दीजिये॥
और कछू ना चहौं मुक्ति बैकुण्ठ लौं रूप रस माधुरी पान करि जीजिये।
परी भव जलधि में पार पावत नहीं धुनत सिर नाथ बलि दया टुक कीजिये॥
रामसखि सरण पै दृष्टि करुणा करौ भई अति विकल सब गयो बल छीजिये॥

—नित्य पाठ संग्रह (सम्पादक श्री सरसमाधुरीशरण) : पृ० १५१।

चरणदास जी ने उन्हें सखीवेश में ही रहकर चूड़ी, सिन्दूर और श्रृंगारयुक्त होकर मन्दिर में नृत्य-गान करने का आदेश दिया। शिष्य-सेवकों की स्त्रियों को भजन-कीर्त्तन कराने का काम भी उन्हें ही सौंपा गया। गुरु के आदेशानुसार ये स्त्रियों में मिलकर कीर्त्तन-नर्तन करते थे और कृष्णप्रियामय हो गये थे।[1] उन्होंने अपने देहत्याग के एक माह पूर्व ही भजन-कीर्तन के लिए चरणदास जी के आश्रम में आनेवाली स्त्रियों को अपने महाप्रयाण की सूचना दे दी थी और गुरु से भी इसके लिये आज्ञा ले ली थी। एक दिन गुरु ने आशीर्वाद दे उन्हें ऐहिक लीला समाप्ति हेतु विदा किया। आधीरात को उठकर श्रृंगार करके नृत्य करते हुए सबके बीच ही उन्होंने प्राणत्याग किया। 'लीलासागर' में उनके सदेह स्वर्ग पधारने का वृत्त लिखा हुआ है।[2] इस प्रकार गुरु के जीवनकाल में ही इनका परलोकवास हुआ। इससे अनुमान होता है कि ये अल्पायु थे। इनका सखी नाम 'अली किशोरी' मिलता है।

इनकी मुहल्ला चीरेखान की गद्दी पर आरंभ में कई दशाब्दियों तक प्रायः स्त्रियाँ या सखी वेशधारी पुरुष ही बैठते रहे। इस स्थान की उपासना पद्धति

---

१. रामसखी जी की वेश-भूषा का वर्णन 'लीलासागर' में इस प्रकार है—
कर मेंहदी पग कंकन भ्राजै। अंग अंग भूषन छवि छाजै॥
सखी भेष अलंकार सु जेते। महाराज सज दीने तेते॥
स्त्रिन में मिलि हरि गुन गावै। प्रेम उमगि कभि नृत्य सजावै॥
—लीलासागर : पृ० २८१।

२. सहित देह प्रभु पति मिली, राम सखी ही जानि।
जोगजीत सब सूं कही, श्री महाराज बखानि॥
—लीलासागर। पृ० १९६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सखी भाव की ही रही। अब यह मन्दिर कायस्थ गृहस्थों के हाथ में चला गया है। सं० १९५६ वि० में महंत चतुरदास जी के शिष्य बुधराम दास ने गृहस्थ धर्म अपना लिया था। तभी से यह गद्दी गृहस्थ गद्दी हो गई है। चैत्र शुक्ल, तृतीया, सं० १८०४ वि० को रामसखी जी ने 'नृत्य राघव मिलन' की रचना पूर्ण की थी। अतः तब तक तो वे जीवित थे ही। अनुमानतः इनके परलोकवास का काल सं० १८२० वि० के आसपास है। इनके तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—(१) भक्ति रस मंजरी, (२) अष्टयाम और (३) नृत्य राघव मिलन।[1] इनकी ये तीनों कृतियाँ चरणदासी सम्प्रदाय के ज्ञान, योग और भक्ति समन्वित वैधी भक्तिधारा में अन्तःसलिला के समान प्रवहमान रसिक साधना-धारा का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है—

१. **भक्तिरसमंजरी**—यह चरणदासी संप्रदाय की विशिष्ट उपासना-पद्धति का शास्त्रीय एवं आधारभूत सिद्धान्तनिरूपक कृति है। इसके माध्यम से रामसखी जी ने अपने संप्रदाय की आचार-विचार संबंधी विशिष्ट धारणाओं की शास्त्रीय आधार पर स्थापना की है। इस प्रकार 'भक्तिरस मंजरी' के रचयिता के रूप में रामसखी जी रसिकोपासना के एक प्रतिष्ठित आचार्य सदृश प्रमाणित होते हैं। रसिक भाव की साधना या प्रेमाभक्ति के सिद्धान्तों की जानकारी की दृष्टि से इस कृति का वही मूल्य है, जो 'भक्तिरसामृत सिंधु' अथवा 'उज्ज्वलनीलमणि' का है। भक्तिमार्ग के विविध मान्य सिद्धान्तों से आलोच्य परम्परा के सिद्धान्त किस प्रकार विशिष्ट या भिन्न हैं, इसको सिद्ध करने का कवि का प्रयास सर्वथा सफल है।

रामसखी जी की मान्यता है कि व्यास पुत्र श्री शुकदेव मुनि ही प्रेमाभक्ति के आद्याचार्य हैं। वे शुकी का वेश धारण करके श्री राधा-कृष्ण और सखियों के नित्य-विहार लीला का दर्शन-आस्वादन करते रहते हैं।[2] अतः स्वाभाविक है कि उनके द्वारा प्रतिपादित, समर्थित एवं व्याख्यायित रसिक-साधना के सिद्धान्त अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक माने जायँ। रामसखी जी के कथनानुसार स्वामी चरणदास जी भी नित्य विहार-लीला के प्रत्यक्षदर्शी हैं।[3] अतः उन्हीं के साक्ष्यानुसार कवि ने

---

१. इनका एक 'बानी' संज्ञक ग्रंथ श्री प्रेमस्वरूप जी (वृन्दावन) के यहाँ है। संभवतः यह इन्हीं तीनों ग्रंथों का सार-संग्रह रूप है। इसे स्वतन्त्र रचना मानने की आवश्यकता नहीं है।

२. दूजौ तन श्री शुकी को, मध्य केलि की कुंज।
पंछी ह्वै छवि माधुरी, पियत रहत छवि पुंज॥
—भक्तिरसमंजरी (पांडुलिपि) : दोहा—३३।

३. लहि आज्ञा गुरु अली सों, सेवौं सुख की रासि।...क्रमशः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री राधा-कृष्ण के सेवाकुंज विहार, उनकी विविध प्रेमलीलाओं (कलाएँ, क्रीड़ाएँ और हाव-भावजनित सात्विक क्रियाएँ आदि), भक्तों पर उनकी अपार एवं अहैतुकी कृपा तथा उनके अंग-सौन्दर्य आदि का अद्भुत शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है।

लीला-वर्णन के क्रम में श्री राधाकृष्ण के विवाह और उनके सखि-परिकर द्वारा विवाह की व्यवस्था के साथ ही विवाह मंडप, उपवन, शृंगार तथा अन्य वैवाहिक आयोजनों का उन्होंने बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। उनका कथन है कि श्री शुकदेव मुनि त्रिविध रूपों में जगत् में स्थित हैं। निजधाम (निधुवन या केलि कुंज) में शुकसखी के रूप में, वृन्दावन में आनन्दा के नाम से और जगद्-व्यवहार में शुकाचार्य के रूप में वे सदैव विचरते रहते हैं। वे कहते हैं—

श्री शुकसखी निज धाम में, आनंदा ब्रज ख्यात।
शुकाचार्य हैं जग प्रकट, परा मांहि रत नाथ ॥[1]

रामसखी जी के विचार से श्री राधा और श्री कृष्ण दो अलग-अलग अस्तित्व या प्रकृति-पुरुष-रूप नहीं हैं। ये तो जलतरंग के समान अभिन्न, युगलरूप एवं अनादि हैं। वे निर्गुण-सगुण से परे, सर्वोपरि और वर्णनातीत हैं।[2] राम और राधा-कृष्ण में तत्वतः कोई अन्तर नहीं है। राम शब्द में ही राधा-कृष्ण का अर्थ निहित है—

राम इन्हें सब कहत हैं, ताको अर्थ रसाल।
रा अक्षर की राधिका, म है मदन गुपाल।[3]

सभी प्रकार की साधनाओं में रागानुगा या प्रेमाभक्ति श्रेष्ठ है, इस तर्क के पक्ष का समर्थन करते हुए रामसखी जी का निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त विचार द्रष्टव्य है—

पिय प्यारी बिलसत तहाँ, नित प्रति रास विलास ॥
...शुक परिकर में रहौं नित जहँ अभूत सुखसाज ॥—वही, ३९, ४१।

१. भक्तिरस मंजरी—दोहा सं० १७६।

२. प्रकृति पुरुष ये हैं नहीं, ये दोऊ एक स्वरूप।
युगल अनादि विराजहीं, कुंज महल नित भूप ॥
जल तरंगवत हैं दोऊ, न्यारे कबहुँ न होंय।
वैभव वृन्दाविपिन को, कहन समर्थ न कोय ॥
निर्गुण सर्गुण से परे, इनको रूप अपार।
कैसे वर्णन कीजिए, रसना सों उच्चार ॥
—भक्तिरसमंजरी, दोहा सं० १९७, १९८, २०४।

३. वही : दोहा सं० २१६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकल रसन में मुख्य है, उत्तम रस सिंगार ।
तामें लय सब होत हैं, नीके लिये विचार ।।
प्राकृत क्रीड़ा काम की, नैकु नहीं जहँ वास ।
किंचित कोर कटाक्ष सों, कोटि मदन ह्वै नास ।।
ता रस मिल सेवन करो, नूतन युगल किसोर ।
रस माधुर्य मिलाय के, अनुपम स्यामल गौर ।।[1]

रामसखी जी द्वारा व्याख्यायित एवं निरूपित मत या सिद्धान्त ही शुक सम्प्रदाय (चरणदासी संप्रदाय) के साधना-सिद्धान्त का मूल है। उनकी यह उक्ति इस तथ्य को भलीभाँति उजागर कर रही है—

संप्रदाय शुकदेव मुनि, भक्ति अनन्य अकाम ।
मत भागौत आधार दृढ़, ताको कोटि प्रणाम ।।
विह्व चंद्रिका नाम प्रिय, श्री तिलक बिच भाल ।
जपिये मुख निस दिन सदा, राधा बल्लभ लाल ।।[2]

इस प्रकार यह २८६ दोहों का सिद्धांत ग्रंथ आलोच्य संप्रदाय को एक दृढ़ सैद्धांतिक आधार-भूमि प्रदान करता है। अभी तक इसका अप्रकाशित रहना खेद की बात है। इस ग्रंथ की पांडुलिपियाँ वृन्दावन के श्री प्रेमस्वरूप जी के यहाँ, जयपुर के सरसकुंज में, दिल्ली के महंत प्रेमदास जी के यहाँ, मेरे यहाँ तथा कई अन्य स्थानों पर प्राप्त हैं। काव्य-कला और भाषा-प्रयोग की दृष्टि से यह एक शीर्षस्तरीय शास्त्रीय काव्य-कृति है।

२. अष्टयाम—विविध राग-रागिनियों में निबद्ध पदों के माध्यम से श्री राधाकृष्ण के रूप-सौंदर्य और उनकी विविध लीलाओं का गान ही इस ग्रंथ का इष्ट है। यह रचना १७० पदों में हुई है तथा यह ४४ अध्यायों में विभक्त है। श्री राधाकृष्ण-युगल के रास-विलास और उनकी अष्टयाम लीला की इतनी सुन्दर झाँकी बहुत कम कवियों ने प्रस्तुत किया होगा। रामसखी जी का 'अष्टयाम' उनके काव्यकौशल के चरमोत्कर्ष का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इनकी इस काव्य कृति में वस्तुवर्णन और मधुर भावों की अभिव्यक्ति अत्यन्त प्रशस्त है। इसके अनेक पदों में इनके नाम के स्थान पर इनके सखी संप्रदाय वाले नाम–'अलीकिशोरी' की छाप है। यद्यपि सभी पद ताल-लय-निबद्ध हैं परन्तु इनमें भी भैरों, विभास, रामकली, मालकोंष तथा पूरबी नामक रागों का इसमें विशेष प्राधान्य है। यह रचना रागानुगा, वैधी और रसिक वैष्णव साधना-सिद्धांत-निरूपक होने के साथ ही मूलतः श्रृंगार प्रधान है।

---

१. भक्तिरसमंजरी : दोहा सं० २२५–२२७।
२. वही : २५३–५४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अधिकांश पदों की भाषा संस्कृतनिष्ठ और समास-बहुल पदावली से युक्त है। पदों की इतनी मधुरता और प्रांजलता के मूल में गान, वाद्य और नृत्यकला में इनकी अतिशय निपुणता और परिपक्वता निहित है। इन गुणों से युक्त इनका 'राग भैरो' में निबद्ध समासनिष्ठ एवं तत्समप्रधान भाषा का यह पद द्रष्टव्य है—

विपिन विहारिणि सब सुषकारिणि रसविस्तारिणि ललितपुरे।
जय जय वृज रमणी चूड़ामणि मुखरित वंशी सुयश रुते॥
शयति किशोरी गोरी स्वामिनि अति अभिरामिनि कृष्ण नुते॥[1]

रास के समय सामूहिक नृत्य का यह शब्द चित्र कितना सुन्दर है—

षेलत रास रसिक बर बाला। नव घन दामिनि रूप रसाला॥
बीन मृदंग तंबूरा साज। लै आई सब सषी समाज॥
पुष्प अंजुली दै गर बाहीं। ठाढ़े भये मण्डल के माहीं॥
तत्तत्थेई थेई कहि आवत। ललिता तैसैं मृदंग बजावत॥
हस्तक भेद होत दम्पति के। पायनि दलत जूथ रति पति के॥
नव घन दामिनि दै गर बाहीं। नचत मनो घन मण्डल माहीं॥[2]

अष्टयाम में वर्णित प्रमुख विषयों में गुरु-स्तुति, श्री शुक जन्मोत्सव-बधाई, राधा-कृष्ण की जन्म-बधाई, श्री राधाकृष्ण का झूलनोत्सव, दीपमालिका, अन्नकूट, खिचड़ी भोग, रासलीला, राधाकृष्ण का बसन्तोत्सव, चन्दनशृंगार, मंगल-भोग, युगलसरकार की आरती, राजभोग, रास, माखनचोरी, वंशीवादन और दानलीला आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

३. नृत्य राघव मिलन—इस नाम की रचना इन्हीं रामसखी जी कृत है अथवा रामानंदी परम्परा के किसी रामसखे नामक कवि की है, यह विवाद का विषय है। नागरीप्रचारिणी पत्रिका (सं २०३२ वि०) के अंक सं० १-२ के पृ० १०९–११२ के बीच डा० महावीर प्रसाद शर्मा ने इसे रामानंदी महात्मा स्वामी अग्रदास की परम्परा के किसी रामसखे नामक कवि की कृति बताया है। उनको इस कृति की दो पांडुलिपियाँ देखने को मिली हैं, जिनमें प्रथम पांडुलिपि त्रुटित है और इसमें रचनाकाल या लिपिकाल अंकित नहीं है। दूसरी प्रति पूर्ण है, जिसमें मूल कृति का रचनाकाल सं० १८०४ वि० और पांडुलिपि का लिपिकाल सं० १९३० वि० अंकित है। डा० महावीर प्रसाद शर्मा ने इसी कवि की दो अन्य भी लघु रचनाओं का उल्लेख किया है, जिनमें प्रथम का नाम 'दोहावली' (पत्र सं० ३३, छन्द सं० ७३, रचनाकाल–अज्ञात) और दूसरी का नाम 'अखिल रामायण मुक्ता षट्कवित्त'

---

१. अष्टयाम : पद सं० १।
२. वही : ४२-१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पत्र सं० ३, कवित्त सं० ६, लिपिकाल सं० १९३० वि०) दिया गया है। इन दोनों कृतियों के वर्ण्य-विषय श्री राम और सीता हैं।

इस लेख में 'नृत्यराघव मिलन' से कोई उदाहरण नहीं दिया गया है, जो बड़ा आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। वस्तुस्थिति यह है कि 'दोहावली' और 'षट्कवित्त' भी 'नृत्यराघव मिलन' के अंश मात्र हैं। इन कवित्तों में नृत्यराघव शब्द कई बार प्रयुक्त है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

कवित्त—बाल लीला रघुवंसिन सों अवधि बीथि,
व्याह लीला जानकी सों मिथिलापुर भारी है।
रासलीला कोटिन सखिन सों प्रमोदवन,
बन लीला दण्डक में लषन संग धारी है॥
रन लीला अद्भुत अति लंका में रावन सों,
राजलीला अजोध्या पुनि आइ के सम्हारी है।
लीला ये अनंत रामसषे नृत्य राघव जी की,
पावै को अंत बाल्मीकि मति गति हारी है॥[1]

अथवा

बन प्रमाद रंगी स्याम अंगी कलाणी कंठ,
रामसषे संगी नृत्य राघव सुजान है।[2]

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का 'संक्षिप्त खोज विवरण' (प्रथम खण्ड) में 'नृत्य राघव मिलन' नामक एक ही कृति का उल्लेख है, जिसके रचयिता रामसखे बताये गये हैं। इस पांडुलिपि का जो स्थान सूचित है, वहीं से स्वामी चरणदास की रचनाओं की प्राप्ति भी उल्लिखित है। अतः यह अनुमान प्रमाण सिद्ध है कि यह रचना भी चरणदासी रामसखे या रामसखी की ही है।

इसकी पांडुलिपि में स्थान-स्थान पर चरणदास जी और शुकदेव मुनि का नामोल्लेख भी इस बात की पुष्टि करता है कि यह कृति चरणदास जी से सम्बद्ध किसी व्यक्ति की ही है और वह कवि रामसखी जी ही हो सकते हैं। सरसकुंज (जयपुर) में सुरक्षित इस ग्रंथ की पांडुलिपि निस्संदिग्ध रूप से इन्हीं की रचना मानकर संगृहीत की गयी है। अतः 'नृत्यराघव' किसी अन्य की रचना है—इसे मानने का कोई आधार नहीं है। उक्त लेख में डा० महावीरप्रसाद शर्मा ने जो उद्धरण दिये हैं वे भी इसी ग्रंथ के हैं न कि इसी नाम के किसी अन्य ग्रंथ के। अस्तु सिद्ध है कि वे जिस कवि को स्वामी अग्रदास की परंपरा के किसी रामसखे नामक

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सं० २०३२, अंक १-२, पृ० ११०।
२. वही : छन्द सं० ५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि की रचना मानते हैं, वह श्री चरणदास के प्रिय शिष्य रामसखी जी की ही कृति है। डा० शर्मा ने इसका रचनाकाल सं० १८०४ वि० बताया है। ज्ञातव्य है कि यही रचनाकाल सरसकुंज की पांडुलिपि में भी अंकित है। यह उल्लेख इस प्रकार है—

संवत अष्टादस चतुर शुक्ल मधुर मधु तीज।
भयो नृत्य राघव मिलन, उद्भव सब रस बीज ॥[1]

'नृत्य राघव मिलन' की एक ही पांडुलिपि उपलब्ध है, जो सरसकुंज–जयपुर की जिल्द सं० ७११ में 'भक्तिरसमंजरी' के साथ ही संलग्न है। यह प्रति सर्वथा प्रामाणिक है। इस ग्रंथ में कुल २६० छन्द हैं, जिनमें दोहा-चौपाई के माध्यम से श्री रामचन्द्र के रास-मिलन का माधुर्यपूर्ण वर्णन है। काव्य-कौशल की दृष्टि से यह अत्यन्त सुन्दर एवं उत्कृष्ट रचना है। आरंभ में कई पृष्ठों तक इसमें जीव, माया, ईश्वर, ब्रह्म, सृष्टि और जगद्व्यवहार आदि के सम्बन्ध में गूढ़ बानिय कही गई हैं। यद्यपि रामसखी जी ने इस कृति में राम के मानुषी-रूप में की गई प्रणयलीला को ही काव्य का विषय बनाया है परन्तु बीच-बीच में वे बराबर स्मरण दिलाते रहते हैं कि राम मूलतः परब्रह्म ही हैं। श्री रामचन्द्र के निर्गुण और सगुण रूप में साम्य सिद्ध करते हुए राम को ब्रह्म से भिन्न मानने वालों की उन्होंने इन शब्दों में निन्दा की है—

ब्रह्म राम तैं कहैं इक न्यारा। तिन नहिं ईश्वर तत्व विचारा ॥
अलख अरूप सून्य वेवादी। तिन अति दुष्ट असुर मति लादी ॥
तिनको भयो भर्म अतिभारी। माया बस जड़ता उर धारी ॥
तिनकी जो कोउ संगति करहीं। वे भी महाभर्म में मरहीं ॥[2]

रामसखी जी के विषय में एक उल्लेखनीय बात यह है कि वे राम और कृष्ण में अभेद दृष्टि रखते थे। अतः उन्होंने समान भाव से 'अष्टयाम' में श्री राधाकृष्ण की और 'नृत्य राघव मिलन' में श्री सीता-राम की प्रणय लीला का गान करके अयोध्या और वृन्दावन—दोनों में प्रचलित तत्कालीन रसिक-साधना का प्रतिनिधित्व किया है। उन्होंने रसिक रामोपासना और कृष्णोपासना के उपासकों का समान रूप से स्वागत इन शब्दों में किया है—

वृन्दावन अरु अवध को, कोउ उपासक होय।
ताके चरण सरोज रज, मस्तक धरिये सोय ॥[3]

---

१. नृत्य राघव मिलन–(पांडुलिपि–जयपुर) छन्द सं० १४६।
२. वही : छन्द सं० २७।
३. भक्तिरसमंजरी : दोहा सं० २६१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुवर्णन की दृष्टि से भी रामसखी जी की जानकारी और शैली चमत्कृत करने वाली है। फल-फूल, बेल-बूटे, राज-भोग की सामग्रियाँ, अन्नकूट के विविध भोज्य पदार्थ, वाद्य-नृत्य-संगीत के ताल-लय-छंद आदि के इतने नाम इन्होंने स्थान-स्थान पर प्रसंगतः गिना दिये हैं कि इनका ज्ञान आश्चर्यचकित कर देता है। जहाँ तक भाषा-प्रयोग की बात है, केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये भाषा-चतुर एवं निष्णात् कवि थे।

(११) प्रेम गलतान जी—ये रिवाड़ी शहर के ढूसर भार्गव श्री अनूपराय के पुत्र थे। इनका बचपन का नाम भीमसेन था। दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त इन्होंने प्रेमगलतान नाम धारण किया।[1] संभवतः इनकी गुरुभक्ति और रसिक भावना की भक्ति को देखते हुए ही उनका यह नामकरण किया गया था। ये गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित थे। बिना उनकी आज्ञा लिए कोई काम नहीं करते थे और गुरु के आदेश पर उनके लिए कोई भी काम अकरणीय नहीं था। इनकी गुरु भक्ति कितनी सिद्धावस्था को पहुँची हुई थी, इसके उदाहरणस्वरूप श्री जोगजीत जी ने 'लीला-सागर' में एक वृत्त दिया है। इसके अनुसार एक बार जब वे गुरु के आदेश सेकिसी कार्यवश किसी गली में गये हुए थे—एक साँड़ ने उन्हें घेर लिया। उससे बचने का कोई उपाय न देखकर उन्होंने आर्त्त भाव से अपने गुरु चरणदास जी का स्मरण किया। चरणदास जी ने तत्काल वहाँ प्रगट होकर तथा गुप्ती से डराकर साँड़ को भगा दिया और प्रेमगलतान जी सकुशल वापस आ गये।[2] इनका अनुमानित जन्मकाल सं० १८०० से १८०५ वि० के बीच होना चाहिए, जैसा कि हम आगे बतायेंगे, ये सं० १८२२ वि० से तो पद-रचना करने लगे थे। अतः जन्मकाल की समय-सीमा सं० १८०५ वि० के बाद नहीं जा सकती।

इनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः मुजफ्फरनगर जनपद का शामली क्षेत्र था। शामली के पास स्थित बदेह नामक स्थान में यमुना के किनारे इनका आश्रम था। वहाँ एक मंदिर और इनकी समाधि-स्थल सूचक छतरी अब भी वर्तमान है। इनके शिष्य रतन गलतान भी अच्छे वाणीकार थे। बदेह का मंदिर और गुरु की चरणपादुका

१—छप्पय—मेवात क्षेत्र इक ठांव शहर रेवाड़ी जानो।
अनूपराय जित रहत जात ढूसर ही मांनो॥
जाको सुत है भीमसेन व्यौंकराड़ा कहलावै।
बांके हरि की भक्ति साधु संगति हित लावै॥
चरणदास सतगुरु मिले इन्द्रप्रस्थ में आइके।
प्रेमगलतान तब करि कृपा धरयो सो नाम सुनाइके॥
—विज्ञानपदार्थ (पाण्डुलिपि) का अंतिम छंद।

२. लीलासागर : पृ० ३०३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं छतरी इन्हीं के द्वारा निर्मित कराई गई थी। यह स्थान बड़ी गद्दियों में परिगणित होता है। यहाँ की शिष्य परम्परा इस प्रकार है—

बदेह की थाँभा—श्री प्रेमगलतान (.....सं० १८६५ वि० तक)—रतन गलतान (सं० १८६५–१८९५ वि०)—स्वरूप गलतान (सं० १८९५–१९१५ वि०)—मंगल गलतान (सं० १९१५–१९३० वि०)—बद्री गलतान (सं० १९३०–१९५० वि०)—कन्हैया गलतान[1] (सं० १९५०–१९७० वि०)—गोकुलदास जी (सं० १९७०–२००० वि० तक)—अज्ञात। इस गद्दी के दो महंत—कन्हैया (दास) गलतान और गोकुलदास बड़े प्रभावशाली महन्त हुए हैं। कन्हैयादास के समय में इस बड़े थाँभे के साथ सात छोटे स्थान भी थे। म० गोकुलदास के समय में छोटे थाँभों की संख्या घटकर ४ तक पहुँच गई थी।

महन्त कन्हैयादास के शिष्य श्री कासीदास ने टेहरी (गढ़वाल) में एक स्वतंत्र स्थान बनाया था, जो कुछ दिनों पूर्व तक चल रहा था।

श्री प्रेमगलतान का साहित्य—चरणदासी सम्प्रदाय के जयपुर, वृन्दावन और दिल्ली स्थित ग्रन्थागारों में खोज करने पर इनकी ४ रचनाओं का पता चला है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) विज्ञान पदार्थ, (२) शब्द, (३) बानी और (४) पद। वैसे तो प्रथम ग्रन्थ को छोड़कर शेष तीनों नाम एक ही अर्थ के सूचक प्रतीत होते हैं परन्तु सावधानी से इनका अध्ययन करने पर स्थिति कुछ और ही दिखाई देती है। इनका 'शब्द' नामक संग्रह 'ललिता सखी' की छाप से इनके ५० पदों का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इनकी 'बानी' में साखी, सवैया और कवित्त संगृहीत हैं जब कि 'पद' में राग-रागिनियों से युक्त पदों का संकलन है। सम्भवतः दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व ही इन्होंने काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी। इनकी 'बानी' में एक कवित्त ऐसा भी है, जिसमें कवि ने अपने गुरु से शीघ्रातिशीघ्र दीक्षा देकर अपनी शरण में ले लेने का निवेदन किया है। इनकी इन बानियों का परिचय संक्षेप में निम्नवत है—

१. विज्ञान पदार्थ—इसकी पाण्डुलिपि सरसकुंज-जयपुर की जिल्द सं० ३०८ में संकलित है। ६″ × ४″ विस्तार के पत्र में ४″ × ३″ के स्थान में लिखित चौपाई-दोहे के माध्यम से आध्यात्मिक विषयों की चर्चा ही इस कृति का वर्ण्य है। गुरु-शिष्य-संवाद की शैली में रचित होने के कारण इसकी रोचकता बढ़ गई है। ज्ञान, वैराग्य, तत्वचिन्तन, जीवात्मा और परमात्मा का स्वरूप विवेचन, कारण-कार्य,

---

१. महन्त कन्हैया गलतान का जन्म सं० १९०७ वि० में हुआ था। ४३ वर्ष की अवस्था में वे महन्त बने थे। मार्गशीर्ष शुक्ल ४, सं० १९७० वि० को इनका परलोकवास हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत् और माया आदि का गूढ़ दार्शनिक विवेचन करके कवि ने अपनी आध्यात्मिक पहुँच का अच्छा परिचय दिया है। इस कृति का रचनाकाल सं० १८२७ वि०, वैशाख शुक्ल सप्तमी, शुक्रवार है। इसमें कुल मिलाकर ६५ पत्र (१३० पृष्ठ) हैं। यह ग्रंथ १२ प्रकरणों में विभाजित है। प्रत्येक प्रकरण में ३० से ४० छंद हैं। इसमें दोहा-चौपाई मुख्य छंद हैं प्रत्येक पृष्ठ पर ११ पंक्तियों का समावेश है। यह लगभग ४०० छंदों का ग्रंथ है।

इसके 'विज्ञान पदार्थ' नामकरण के मूल में ब्रह्मज्ञान और मानव सुलभ अज्ञान का विनिश्चय मुख्य कारण है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ज्ञान और अज्ञान के संवाद के माध्यम से कथ्य को प्रस्तुत किया गया है। कवि ने गुरु द्वारा प्रदत्त इस विशिष्ट एवं गूढ़ ज्ञान का सन्देश इस काव्य द्वारा दिया है।[1] कवि को विश्वास है कि जो इस ग्रंथ का सम्यक् पारायण करेगा वह ज्ञान और वैराग्य के क्षेत्र में उच्चतम लक्ष्य तक अवश्य पहुँचेगा।

इस ग्रंथ के प्रश्नोत्तर बड़े ही स्पष्ट, सटीक और बोधगम्य भाषा में हैं। उत्तर की सूत्रात्मकता बड़ी ही मोहक और अपने आप में महत्वपूर्ण है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

प्रश्न—को मैं को संसार यह जनमै मरै सु कौन ?
उत्तर—पाँच पचीस तीन गुन नाहीं। इन्द्री विषै न तेरे माहीं॥
इनके मिटे रहै जो मानो। सो तुम अपना रूप पिछानो॥

इसी प्रकार मुक्त कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में गुरु का यह कथन विचारणीय है—

सो है मुक्त मुक्ति जो देवै। आतम कूँ आतम ही ऐवै॥

अर्थात् मुक्त वही है जो दूसरों को भी बन्धनमुक्त करे। इस प्रकार आत्मा ही आत्मा का उद्धारक है।

इन्द्रियजनित सुखों में आसक्त व्यक्ति को इस प्रकार का सुख परिणामतः कड़ुवा और कष्टप्रद होने पर भी वाह्यतः वैसे ही मधुर प्रतीत होता है, जैसे साँप के द्वारा डँसे हुए व्यक्ति को नीम की पत्ती मधुर लगती है। इस आशय को इस दोहे के माध्यम से कवि ने बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त किया है—

अहि के काटें नीम ज्यों, मीठो लागत जाहि।
प्रेम गलतान संसार यों, इन्द्री अमल जु ताहि॥[2]

---

१. विज्ञान तत्व गुरु मोहिं लखायो। भर्म दुई अरु तिमिर नसायो।
अर्थ-धर्म नहिं चाह स्वरग की। एक और दुइ मिटी कहन की॥
२. विज्ञान पदार्थ (अप्रकाशित) : प्रथम प्रकरण, छं० सं २१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. शब्द—सरसकुंज—जयपुर के ग्रंथागार की जिल्द सं० ८६४ में 'ललिता सखी' और 'ललिता' के नाम से ५० पद संकलित हैं। इन पदों में प्रेमगलतान का कहीं भी नाम नहीं आया है और न तो चरणदास या शुकदेव जी का ही कोई नामोल्लेख है। तात्पर्य यह कि ये पद प्रेमगलतान के ही हैं, इसे जानने का कोई साधन इन पदों के माध्यम से उपलब्ध नहीं है परन्तु ग्रंथ सूची में इन पदों के रचयिता का नाम प्रेमगलतान लिखा हुआ है। संभव है कि माधुर्यपूर्ण भावों के 'उद्गारों' से युक्त पदों में कवि ने अपना सखी परिकर वाला नाम अर्थात् ललिता नाम दे दिया हो। इस विषय में तथ्य शोध्य है।

३. बानी—इसकी रचना मुख्यतः चौपाई और दोहों में हुई है। बीच-बीच में कवित्त भी हैं। कहीं-कहीं गुरु-शिष्य की संवाद शैली अपनाई गयी है। रचना में विषयानुसार अंग-विभाजन किया गया है, जैसे गुरु महिमा, गुरु लक्षण, ज्ञान इन्द्री वर्णन, मोह वर्णन, साधु-संगति-महिमा, साधु-सुलक्षण, नाम-महिमा आदि। इस ग्रंथ का 'प्रेम का अंग' शीर्षक अंश तो ऐसा लगता है कि मानो संत कबीर साहब ने ही अवतरित होकर लिख दिया हो। कवि नाम-जप का महत्व बताते हुए कहता है—

नाम बरोबर कुछ नहीं, तीरथ व्रत आचार।
जोग दान तप साधना, राम नाम बिनु खवार॥

× × ×

अड़सठ तीरथ जो फिर आवे। नाम समान कछू नहिं पावे॥

इनके कवित्तों की भाषा इतनी प्रांजल और प्रवाहमयी है कि इनके सिद्धहस्त कवि होने में सन्देह नहीं रह जाता। गुरु की प्रार्थना में लिखित इनका एक कवित्त द्रष्टव्य है—

आयो सरन तेरी, गहो बाँह मेरी,
सीस काहू नहिं नाऊँ यह अरज सुन लीजिए।
अब कीजिए गुरुमुखी जासों रहूँ सदा सुखी,
नहिं व्यापै दुःख दर्द बंध सभी काट दीजिए॥
एक तोही कूँ जानूं दूजे और नहिं मानूं,
आप सुनिये पुकार प्रभु देर नाहिं कीजिए।
प्रेम गलतान के तुमहीं गुरु चरनदास,
जान निज दास शरण अपने कर लीजिए॥[1]

---

१. बानी : सं० ९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी पांडुलिपि सरसकुंज की जिल्द सं० ३०९ में संगृहीत है।

४. पद—इनमें इनके ४१ पद संकलित हैं, जो विविध रागों में निबद्ध हैं। इन पदों की भाषा और अभिव्यक्ति में पर्याप्त प्रौढ़ता लक्षित होती है। प्रेममूला भक्ति से पूर्ण इनका एक पद इस प्रकार है—

कल नाहीं बिन स्याम री सखि अब कहा कीजै।
कोटि जतन करि मैं समझाऊँ यह मन नाहिं न धीजै॥
निस दिन आँख लगे नहिं मेरी तन की सुधि न संभारी।
जानत ना कहा चूक करी जातैं दीना मन सूं बिसारी॥[1]

श्री प्रेमगलतान के निम्न पद में विरह की गहराई देखते ही बनती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई रससिद्ध रीतिकालीन कवि किसी विरहकातरा की अन्तर्वेदना का मार्मिक चित्र प्रस्तुत कर रहा हो।

सखी री मोकूं है कोई श्याम मिलावै।
सर्बस भूषन दूँगी अंग के और जु बहुतक पावै॥
जा दिन सों पिय कियौ पयानौ तब सूं नींद न आवै।
तन की सुधि मोहिं नाहिं रही है खान पान नहिं भावै॥
स्वेत स्याम बदरा घिरि आये शीतल पवन चलावै।
जब मोरा कुहकत बन माहीं तब हियरो लरजावै॥
बैठत सोवत चैन नहीं है घर अँगना न सुहावै।
सखी सहेली यों समझावै कृष्ण बेगि ही आवै॥
चरणदास प्रभु आये हैं री यों कहि आन सुनावै।
प्रेम गलतान सखी मन माहीं फूली नाहिं समावै॥

(जगदीश जी राठौड़ द्वारा संकलित)

इनकी कुछ स्फुट बानियाँ भी विभिन्न संग्रहों में मिलती हैं। यहाँ इनकी ऐसी ही एक बानी उद्धृत की जा रही है, जिसे इन्होंने अपने गुरु चरणदास (बचपन का नाम रणजीत) की जन्म-बधाई के रूप में रचा है—

जन्म दिवस रणजीत जी अति सुन्दर अभिराम।
सन्त रूप धर अवतरे श्रीमत सुंदर स्याम॥
प्रेम भक्ति प्रीतम प्रिया करें कृपा कर दान।
लहैं जीव रंग महल रस सेवा सुख गलतान॥[2]

---

१. पद सं० १४।

२. चरणावत वैष्णव वर्षोत्सव (संकलनकर्त्ता— श्रीरूपमाधुरी शरण) : पृ० ४०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने त्याग एवं तितिक्षामूलक पदों की रचना में विशेष रुचि प्रदर्शित की है। इन पदों में कवि के आत्मनिवेदनपरक अनेक पदों का समावेश है। ऐसा ही एक पद यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

॥ राग गौरी ॥

हरि जी तुम बिन कौन हमारा।
स्वारथ का सब जगत सगा है मात पिता सुत दारा॥
जैसे काग जहाजहि जानौ जहाँ तहाँ जल धारा।
जब थाकै तब ह्वांई आवै ताहि और न सहारा॥
रिद्धि सिद्धि अरु मान बड़ाई इन सूं नहिं छुटकारा।
जोग जुगुत मैं कुछ नहिं जानूं ना विद्या अचारा॥
भव सागर बिच नांव पड़ी है जीव डरै बहु भारा।
चरनदास प्रभु प्रेमगलतान कूं लीजै बेगि उबारा॥

इनकी भाषा इनके गूढ़तम भावों को भी व्यक्त करने में सक्षम है। संभवतः इन्हें संस्कृत का बड़ा अच्छा ज्ञान था और बहुश्रुत होने के कारण इन्हें फारसी के शब्दों की भी जानकारी थी। इसीलिए इन्हें शब्द-दारिद्र्य नहीं रहा और साथ ही छन्द-पूर्ति के लिये भर्ती के शब्दों की आवश्यकता नहीं पड़ी।

रतन गलतान—ये श्री प्रेमगलतान के शिष्य थे। बदेह के थाँभे के प्रथम महंत थे। उन्होंने ही वहाँ के मंदिर का निर्माण कराया था। उनसे पूर्व श्री प्रेमगलतान उस स्थान को केन्द्र बनाकर धर्मप्रचाररत थे। सं० १८६५ वि० में श्री रतन गलतान को महंत पद पर अभिषिक्त किया गया। सं० १८९५ वि० तक अर्थात् ३० वर्षों तक उन्होंने कुशलतापूर्वक महंत पद का निर्वाह किया। उनका व्यक्तिगत परिचय अप्राप्त है। श्री जगदीश राठौड़ के पास इनकी बानियों का संग्रह सुरक्षित है। इन बानियों में अनेक विषयों और रागों का समावेश है। बानगी के रूप में इनका एक पद द्रष्टव्य है—

॥ राग कान्हरा ॥ वंशी का पद ॥

हरि गुन गावत बान परी॥
बंसी टेर सुनी जबही ते हियरे आनि अरी।
बाजत तान मरोर सुने से रसना रसन भरी॥
सुर नर मुनि जो ध्यान धरत हैं कृष्ण कुंवर सो हरी।
जब ही लाल गह्यो कर मेरो मो तन व्याधि टरी॥
भूल गई हौं प्रेम तुम्हारे व्याकुल प्राण परी।
रतन गलतान हरि प्रेम तिहारे निसदिन रहत हरी॥

इस परम्परा के अन्य संत-महंतों की बानियाँ अज्ञात हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) श्री छीतरमल—यह एक विचित्र बात है कि भक्तप्रवर चरणदास के १०८ प्रमुख शिष्यों की पारम्परिक सूची में ब्रह्मप्रकाश जी की भाँति इनका भी नाम सम्मिलित नहीं मिलता, फिर भी इनका शाहपुरा (थाना डहरा, जिला-अलवर) का थाँभा ५२ बड़े थाँभों में गिना गया है। इस प्रकार यह एक रहस्य ही बना रह जाता है कि श्री जोगजीत, रामरूप जी और श्री रूपमाधुरीशरण ने अपने ग्रंथों में इनका नामोल्लेख क्यों नहीं किया ? प्राप्त संकेतों से पता चलता है कि ये खत्री परिवार के सदस्य थे। इनका जन्म और कर्मस्थल शाहपुरा ग्राम ही था, जहाँ इन्होने अपना थाँभा स्थापित किया था।[1] इसकी शिष्य-परम्परा निम्न-लिखित है—छीतरमल जी (सं० १८७५ वि० तक अनुमानित)—श्री बलदेवसरन (सं० १८७५–१९३० वि०)—सेवादास जी (सं० १९३०–१९५८ वि०)—विहारीदास जी (सं० १९५८–२००० वि०)—प्रेमदास जी (सं० २०२३ वि० में वर्तमान)।

इस थाँभे के महन्त विहारीदास जी बड़े प्रभावशाली महात्मा प्रतीत होते हैं। इनके समय में इनके प्रधान थाँभे के साथ ४ छोटे थाँभे भी थे। सहजोबाई जी का शाहजहाँपुर (रिवाड़ी) का थाँभा भी महंत सेवादास के समय में इसी थाँभे के साथ संलग्न हो गया था। यह बड़ा ही सक्रिय थाँभा रहा है। सं० १९१९ वि० में म० भगवानदास और सं० १९३० वि० में म० हरभजनदास यहाँ से विभिन्न मेलों में गये थे। अनुमानतः म० हरभजनदास म० बलदेवसरन के ही शिष्य थे परन्तु मुख्य थाँभे से सम्बद्ध न होकर शाहपुरा से सम्बद्ध किसी छोटे थाँभे के महन्त रहे होंगे।

(१३) रामप्रताप जी—ये रिवाड़ी के एक सम्पन्न ढूसर वंश में पैदा हुए थे। इनकी चरणदास जी के प्रति इतनी दृढ़ आस्था थी कि ये उन्हें श्रीकृष्ण का अवतार मानते थे। जो व्यक्ति चरणदास जी को अवतारी न मानकर सामान्य व्यक्ति समझते थे, उनसे ये बहुत चिढ़ते थे। इन्होंने गृहस्थ जीवन बिताने के उपरान्त चरणदास जी से दीक्षा ली थी। गुरु के जीवनकाल में (सं० १८३९ वि० तक) ये मुख्यतः दिल्ली में ही रहे। गुरु के देहावसान के पश्चात् रिवाड़ी की नई बस्ती में अपना थाँभा स्थापित कर ये धर्मप्रचार में रत हुए। इनके थाँभे की शिष्य-परम्परा इस प्रकार मिलती है—रामप्रताप जी (सं० १८७० वि० तक वर्तमान)—भगतदास जी—(सं० १८७०–९१० वि०)—प्रेमदास जी (सं०

---

१. कतिपय विद्वानों में यह भ्रान्ति व्यापक रूप से वर्तमान है कि यह स्थान काशी की पंचक्रोश की परिक्रमा में कहीं है और इसके संस्थापक जैरामदास जी (चरणदास जी के शिष्य) हैं। परन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि काशी का शाहपुरा इससे भिन्न है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९१०–१९२५ वि०)—गंगादास जी (सं० १९२५–१९३५ वि०)—श्री गोविन्द-दास[1] (सं० १९३५–१९७६ वि०)—रामसरूपदास जी (सं०१९७६–१९८० वि०)--प्रकाशानन्द[2] (सं० १९८०–१९९० वि०)—म० हरिदास जी (वर्तमान[3])। ज्ञातव्य है कि महन्त प्रकाशानन्द गोसाईं जुगतानंद जी की आचार्य गद्दी (दिल्ली) के महंत गोसाईं बसन्तदास जी के शिष्य थे। इस प्रकार महंत प्रकाशानंद के साथ ही यह गद्दी रामप्रताप जी की परम्परा से अलग होकर जुगतानंद जी की परम्परा के साथ जुट गई।

महंत प्रकाशानंद जी के समय से रिवाड़ी के सदर बाजार वाले थाँभे और बलभद्र की सराय वाले थाँभे का एकीकरण हो गया था। ऐसा मानने का आधार यह है कि इन दोनों थाँभों के महंतों की उपस्थिति सं० १९७८ वि० के पश्चात् किसी भी मेले में नहीं है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि अखैराम जी की शिष्य परम्परा के महंत गोविन्ददास जी के समय से ही श्री छीतरमल के शाहपुरा के थाँभों का, रामप्रताप जी के रिवाड़ी के थाँभों का, अखैराम जी के माचल, रोड़ी, झंडूकी और वालांवाली आदि थाँभों का आपसी तालमेल स्थापित हो गया था। महंत हरभजनदास, महंत गोविन्ददास और महंत प्रकाशानन्द जी भिन्न-भिन्न कालों में इन सभी स्थानों पर आते-जाते रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि द्वितीय महायुद्धोत्तर काल में धार्मिक मान्यताओं में उल्लेखनीय परिवर्तन उपस्थित हुआ था। यह धार्मिक अनास्था के युग का नवोन्मेष था।

---

१. महंत गोविन्ददास के साथ एक मेले में ५ महंत गये थे, जो इस बात का परिचायक है कि उन्होंने आस-पास के कई थाँभों को संघटित कर लिया था।

२. महंत प्रकाशानंद गोसाईं जुगतानंद की सदर गद्दी (दिल्ली) के तत्कालीन महंत श्री गुलाबदास के भाई थे। अतः यह मानना अनुचित न होगा कि महंत रामसरूप जी ने किसी योग्य शिष्य के अभाव में उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। यह भी संभव है कि गद्दी को खाली समझ कर भेख ने प्रकाशानंद जी को व्यवस्था सौंप दी हो।

३. महंत हरिदास जी वर्तमान काल में हरियाणा, पंजाब और अलवर के आस-पास के चरणदासी ठिकानों के सन्त-महन्तों के सरदार हैं। ये बड़े ही जागरूक, धर्मपरायण, अपने सम्प्रदायोद्धार के कार्य में सक्रिय योगदान देने वाले और तेजस्वी महन्त हैं। चरणदासी साहित्य-शोधकों के लिए ये एक अच्छे मार्गदर्शक भी हैं। साम्प्रदायिक तथा सामूहिक आयोजनों को इनसे प्रेरणा और सहायता प्राप्त होती रहती है। आशा है कि यह व्यवस्था आगे भी ऐसी ही बनी रहेगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि रिवाड़ी का यह थांभा बड़े थांभों में गिना जाता रहा है और पर्याप्त सक्रिय भी था, लेकिन इसके संस्थापक श्री रामप्रताप जी का वृत्त 'लीलासागर' और 'गुरुभक्तिप्रकाश'—दोनों महत्वपूर्ण सांप्रदायिक इतिहास-ग्रंथों में वर्णित नहीं है।

(१४) पूरनप्रताप (पूर्णप्रताप जी)—इस नाम के एक व्यक्ति का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के खोज विवरण में मिलता है, जिन्हें जाति से खत्री, चरणदास का शिष्य और जमालपुर (पंजाब) का निवासी बताया गया है। उनको 'आनन्दसागर' या 'आनन्दसार' नामक ग्रंथ का रचयिता कहा गया है, जिसका रचनाकाल सं० १८२० वि० है।[1] परन्तु आलोच्य पूरनप्रताप उनसे भिन्न व्यक्ति हैं। ये भरतपुर राज्य के उत्तराधिकारी राजकुमार थे। उन्होंने राज-पाट के झंझट से मुक्त होकर चरणदास जी से दीक्षा ग्रहण करने के उपरांत एक चरणदासी संत का बाना धारण कर लिया था। भरतपुर के डीग नामक स्थान में रहकर वे वृन्दावन की यात्रा के लिए आने वाले संत-महात्माओं का स्वागत-सत्कार किया करते थे और बड़े-बड़े भंडारों का आयोजन भी किया करते थे। एक स्थिति ऐसी भी आई कि एक बार श्री चरणदास सहित उनके अनेक शिष्य संत-महात्माओं के लिए भंडारे का आयोजन करने के कारण एक व्यापारी (मोदी) का इनके ऊपर ५००) रु० से अधिक का कर्ज लद गया। फलतः उसने सामान देने से इनकार कर दिया और अभ्यागत संत जनों के भूखे रह जाने की स्थिति आ गई। परन्तु ऐसी विषम घड़ी में चरणदास जी ने गुप्त रूप से उनका सारा कर्ज चुका कर उन्हें और मोदी को चमत्कृत कर दिया और साथ ही संतों को भोजन भी मिल गया।[2]

इस घटना का विवरण रामरूप जी ने 'गुरुभक्तिप्रकाश' में कुछ भिन्न रूप से दिया है। उनके अनुसार—एक बार पूर्णप्रताप जी को धन की आवश्यकता हुई। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि किससे उधार लूं? उस समय भरतपुर नगर में एक गोविन्द राय नागर नामक व्यक्ति था, जिसमें घोड़ा खरीदने के लिए कुछ रकम इकट्ठी की थी। मांगने पर उसने इस शर्त पर उन्हें ऋण दे दिया कि इस समय तो आप काम चला लीजिए परन्तु आठ दिन में यह रकम वापस कर दीजिए ताकि मैं घोड़ा क्रय कर सकूं। पूरणप्रताप जी ने आठ दिनों में ऋण वापस कर देने का वादा कर दिया। आठ दिनों के बाद ऋणदाता ने रुपये वापस मांगे। पुनः दो दिन का अतिरिक्त समय लेकर वे व्यवस्था में लगे। धीरे-धीरे २ माह का समय बीत गया परन्तु ऋण वापस न हो सका। एक दिन बड़ा कड़ा तगादा हुआ और

१. संक्षिप्त खोज विवरण : भाग—१, पृ० ५७८।
२. लीलासागर : पृ० २८३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त ऋणदाता ब्राह्मण ने उनसे पैसा वसूलने के लिए उनके द्वार पर धरना दे दिया। पूरणप्रताप जी दुःखी हुए और अन्न-जल छोड़कर गुरु का स्मरण करने लगे। उस दिन एक चमत्कार यह हुआ कि चरणदास जी रात्रि में उस मंदिर में गुप्त रूप से प्रकट हुए जहाँ गोविन्द राय और उसके भाई सुजानराय द्वार बंद करके सो रहे थे। उन्होंने उन दोनों को साधुओं को तंग करने के लिए उलाहना देते हुए रुपये की थैली दे दी। दोनों भाई आश्चर्यचकित होकर प्रातः पूरणप्रताप जी से क्षमा-दान के लिए गिड़गिड़ाते हुए नतमस्तक हुए। इस प्रकार ऐसे भक्त को कृतकृत्य मानकर रामरूप जी कहते हैं—

धन पूरन परताप को, ऐसा सिष जो होय।
धन ऐसे गुरुदेव को, राम रूप कहै सोय॥[1]

इस घटना का श्री पूरनप्रताप पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उनका संत-सेवा का व्रत तो आजीवन चलता रहा परन्तु उन्होंने कोई थाँभा भी स्थापित किया, इसका पता नहीं चलता क्योंकि यहाँ की शिष्य परम्परा का किसी भी सूत्र से ज्ञान नहीं हो सका। चरणदासी परम्परा डीग की गणना बड़े थाँभों में करती है अतः यदि ऐसा होगा तो मानना चाहिए कि आगे चलकर वह स्थान वृन्दावन के थाँभों में सम्मिलित हो गया होगा। इस निष्कर्ष का मुख्य आधार यह है कि चरणदास जी के ५४ बड़े थाँभों के शिष्य संस्थापकों में इनकी भी गणना होती है।

'आनंदसागर' निश्चित रूप से इन्हीं पूरनप्रताप जी की कृति है। इसका रचना काल सं० १८२४ वि० है। चरणदास जी के अधिकांश वरिष्ठ शिष्यों की रचनाएँ सं० १८०० से १८२५ वि० के बीच की हैं। नागरी प्रचारिणी सभा (वाराणसी) के संक्षिप्त खोज विवरण में इनके नाम के साथ खत्री उपाधि संकेतित (कोस्टक में) है। संभवतः क्षत्रिय शब्द के देशीकृत रूप 'खत्री' शब्द का उल्लेख पाकर ही पांडु-लिपि खोज विवरण के शोध सहायक ने उन्हें खत्री जाति का अनुमानित कर लिया। परन्तु इसके साथ ही उन्हें उक्त विवरण में चरणदास जी का शिष्य भी लिखा गया है। अतः आलोच्य पूरनप्रताप जी ही 'आनन्दसागर' या आनन्दसार पोथी के रचयिता हैं, इसमें संदेह को स्थान नहीं है।

यों तो मुझे उक्त ग्रंथ की पांडुलिपि देखने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है परन्तु इनकी छिट-फुट प्राप्त ५-६ बानियों को देखने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि ये अच्छे कवि थे। इनकी भाषा में तत्सम शब्दावली की बहुलता इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि ये विद्वान् महात्मा थे। उदाहरण के रूप में इनका एक पद यहाँ उद्धृत है—

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० सं० २०१–२०३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बधाई रावल पति के द्वार ।
जन्म लियो है कंवरि राधिका मोहन प्राण अधार ।।
गहमह घुरत निसान पौरि पें रोपी सींक सवार ।
मंजुल मुक्ता चौक पुराये बांधी वंदनवार ।।
मंगल साज सजाय चलीं सब घर-घर तें ब्रज नार ।।
कीरति कूक महलावति गावति हिल मिल मंगलचार ।
भादों सुदि आठें को शुभ दिन आनंद बढ़्यो अपार ।।
पूर्णप्रताप निरखि स्वामिनि को बार-बार बलिहार ।।

(१५) त्यागीराम जी—ये मुडौला (तह०—साँपला, जिला—रोहतक) ग्राम के एक त्यागी उपाधिधारी संपन्न ब्राह्मण परिवार के सदस्य थे। इनके पिता सरकारी नौकरी में थे। बचपन से ही ये चरणदासी महात्माओं को निमंत्रित करके उनका बड़ा आदर-सत्कार करते थे। उसी के फलस्वरूप ये भी चरणदास जी से प्रभावित हुए थे। 'लीलासागर' के अनुसार इनकी साधु सेवा और त्यागी वृत्ति का आभास पाकर श्री चरणदास जी ने इनको स्वप्न में दीक्षा और गुरु मंत्र दिया था। जागने पर स्वप्न की घटना को वास्तविक रूप में घटित पाया। अतः श्री त्यागीराम चरणदास जी के दिल्ली स्थित आश्रम में आ गये और कुछ दिनों तक गुरु से ज्ञान-ध्यान की शिक्षा ग्रहण कर के सर्वप्रथम अपने गाँव में ही आश्रम बनाकर धर्मप्रचार में निरत हुए।[1] तत्पश्चात् करनाल जिले के बनी नामक स्थान में और मुडौला के समीपस्थ नौरसपुर नामक स्थान में भी उन्होंने अपना आश्रम निर्मित किया। इन दोनों स्थानों पर कुछ समय पश्चात् रामरूप जी और उनके शिष्य स्वामी सिद्धराम जी को कुछ जागीरें मिल गईं, जिसके कारण त्यागीराम जी के थाँभे भी उन्हीं की देख-रेख में आ गये।

मुडौला, नौरसपुर और बनी के श्री त्यागीराम के थाँभों की स्वतंत्र परंपरा संभवतः सं० १९०० वि० के आगे नहीं चली, क्योंकि इन तीनों स्थानों से मेलों में आने वाले महंतगण किसी न किसी रूप से श्री रामरूप जी की शिष्य परंपरा से ही संबद्ध प्रतीत होते हैं और अब भी उन स्थानों पर उनकी गद्दी के वर्तमान उत्तराधिकारी श्री प्रेमदास का नियंत्रण है। इतना अवश्य है कि नौरसपुर वाले थाँभे के महंतों को बड़ी गद्दी का महंत माना जाता रहा है, जब कि मुडौला के महंत छोटे थाँभे के ही महंत माने जाते रहे हैं। बनी का एक नाम बंदीपुर भी मिलता है, जिसका उल्लेख रामरूप जी की गद्दियों के साथ किया जा चुका है।

---

१. लीलासागर : पृ० २७८ तथा नवसंतमाल : पृ० ५१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागीराम जी के योग्यतम शिष्य श्री ज्ञानानंद निर्वाणी ने मुडौला, नौरसपुर और बनी के स्थानों को सुरक्षित रखते हुए भी सुनाम और संगरूर में स्थान निर्मित किया। सुनाम (जिला–संगरूर) में वर्तमान नगरपालिका के पास आज भी राधा-कृष्ण जी (मंदिर ठाकुर जी अथवा मंदिर श्री चरणदास जी) का मंदिर वर्तमान है। यहाँ की महंत परम्परा में त्यागीराम जी की शिष्य परम्परा तथा गो० जुगतानंद की शिष्य परम्परा का आपस में सम्मिश्रण हो गया है। फिर भी इस स्थान की महंत परम्परा का चित्र इस प्रकार बनता है—

श्री ज्ञानानंद निर्वाणी (शिष्य श्री त्यागीराम)—मय्यादास जी—सुरतदास जी—टीकादास जी—गोपालदास जी—रामजी दास—मंगलदास जी—केशोदास जी—ज्ञानदास जी—भगतानंद दास जी (गृहस्थ)।

भगतानंद जी के तीन बेटे (शिष्य) बताये जाते हैं—

(१) रामेसुरदास (२) करनदास और (३) बुद्धिप्रकाश।

इसी प्रकार नाभा गेट संगरूर की शिष्य परंपरा यद्यपि श्री ज्ञानानंद निर्वाणी से जुटती है परन्तु यथार्थतः यह स्थान उक्त सुरतदास जी के शिष्य श्री सुरजन दास द्वारा निर्मित किया गया। सं० १८८२ वि० में सुरजनदास जी सुनाम से यहाँ आ गये थे। यहाँ की शिष्य परंपरा निम्नवत है—

श्री ज्ञानानंद निर्वाणी—महीराम जी—सुरजनदास जी (चेला सुरतदास जी)—द्वारकादास जी—नारायणदास जी (दोनों गुरुभाई थे)—माधोदास जी—मनीराम दास और बालमुकुन्द दास (दोनों गुरुभाई)—बिहारीदास जी (चेला बालमुकुन्द दास)—किसनदास जी (वर्तमान)।

महंत किसनदास जी हंसराज जी के सुपुत्र हैं। श्री किसनदास सं० १९७७ वि० से ही महंत हैं। इन्हें बचपन में ही महंत पद प्राप्त हुआ था।

त्यागीराम जी के कुछ पद छिट-फुट रूप में मिलते हैं, जब कि उनके शिष्य ज्ञानानंद निर्वाणी के चार ग्रंथ प्राप्त हैं, जिनका परिचय आगे दिया जा रहा है।

श्री त्यागीराम का जीवनकाल अन्तर्साक्ष्यों के आधार पर सं० १८०० से १८६० वि० के बीच माना जा सकता है। इनके शिष्य निर्वाणी जी के 'चौबीस अवतार भाषा भागवत' का रचनाकाल सं० १८४३ वि० है। उस समय तक त्यागीराम जी के वर्तमान होने का उल्लेख निर्वाणी जी ने किया है। इसी प्रकार त्यागीराम के कुछ पद सं० १८५३ वि० में लिखे गये मिलते हैं। अतः सं० १८६० वि० तक इनका जीवित होना संभावित है।

श्री ज्ञानानन्द निर्वाणी और उनका साहित्य—

ज्ञानानंद निर्वाणी अपने समय के अच्छे साधक, कवि, वक्ता और पुराणज्ञ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताये जाते हैं। इनका साहित्य-रचना का कार्यक्रम सं० १८४० वि० से पूर्व ही आरम्भ हो चुका था। 'इनकी चौबीस अवतार' कथा का रचनाकाल सं० १८४० वि० है। इसके पूर्व भी उन्होंने स्फुट पदों और छंदों की रचना की ही होगी जो उनकी 'बानी' संज्ञक कृति में संगृहीत हैं। इनकी प्राप्त रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) दसम स्कंध भागवत भाषा, (२) चौबीस एकादशी कथा, (३) चौबीस अवतार कथा, (४) बानी और अवतार अष्टक। 'नागरी प्रचारिणी सभा' के खोज विवरण में इन्हें चरणदास जी का शिष्य एवं सं० १९०५ वि० के पूर्व वर्तमान लिखा गया है और इन्हें भागवत दसम स्कंध का रचयिता बताया गया है।[1] जैसा कि त्यागीराम जी की शिष्य परंपरा की गद्दियों के वृत्त के सन्दर्भ में सूचित किया जा चुका है, निर्वाणी जी के दो शिष्यों (मय्यादास या महादास तथा महीरामदास) ने सुनाम और संगरूर में स्वतंत्र गद्दियाँ स्थापित की थीं। इनकी स्थापना का श्रेय निर्वाणी जी को ही देना चाहिए।

१. दसम स्कंध भागवत भाषा—इन चारों कृतियों में से रचनाकाल की दृष्टि से सर्वप्रथम रचना श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का पद्यबद्ध अनुवाद है। इसमें मूल कृति के अनुसार ही अध्यायों का विभाजन है। इस प्रकार यह भी ९० अध्यायों में विभक्त एक बृहत्काय अनुवादपरक कृति है। इसकी रचना का समाप्ति काल सं० १८४० वि० है। इसकी चार प्रतियाँ संप्रति उपलब्ध हैं, जिनमें से प्रथम दो चरणदास जी के तपःस्थल-दिल्ली में हैं, तृतीय श्री रूपमाधुरीशरण-वृन्दावन के यहाँ तथा चतुर्थ सरसकुंज (जयपुर) में है। दिल्ली के एक प्रति में ८३ अध्याय ही हैं, शेष सात अध्याय नहीं हैं। इसका प्रतिलिपिकाल सं० १८४६ वि० है। दूसरी प्रति संपूर्ण है, अर्थात् इसमें सभी ९० अध्याय समाविष्ट हैं। प्रतिलिपिकर्त्ता चरणदास जी के शिष्य श्री जसराम उपकारी के शिष्य श्री हेमदास हैं। सरसकुंज (जयपुर) वाली प्रति का लिपिकाल सं० १८९१ वि० है। इसके लिपिकर्त्ता रामरूप जी के शिष्य महंत बिनानदास के शिष्य हरिदास जी हैं।

२. चौबीस एकादशी कथा—यह पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में समाविष्ट अध्याय सं० ३५ से अध्याय सं० ६४ के बीच वर्णित सामग्री के आधार पर काव्य-बद्ध एक स्वतंत्र कृति है। इसमें मूल की ही भाँति कार्तिक शुक्ल एकादशी से आरम्भ करके कार्तिक कृष्ण एकादशी के बीच आने वाली २४ एकादशियों में व्रतोपवास, पूजनादि के विधान और महत्व का वर्णन है। यह अनूदित रचना नहीं है। कवि ने इसमें रोचकता और मौलिकता का समावेश करके इसे रोचक एवं पठनीय बना दिया है।

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा, खोज विवरण (भाग १) : पृ० ३७१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. चौबीस अवतार भाषा भागवत—इस रचना का शीर्षक बड़ा ही भ्रामक है। इससे सहज ही अनुमान होता है कि यह समस्त 'श्रीमद्भागवत' का अनुवाद है। वस्तुतः 'श्रीमद्भागवत' के द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में अधिकांश अवतारों का वृत्त सांकेतिक रूप में उल्लिखित है। कुछ अन्य अवतारों की कथा श्रीमद्भागवत में यत्र-तत्र बिखरी हुई है। इन कथाओं से तथा अन्यान्य पुराणों में वर्णित एतत्संबंधी वृत्तों से सहायता लेकर कवि ने २४ विष्णु के अवतारों की कथा पद्यबद्ध शैली में प्रस्तुत की है। अतः इस ग्रंथ के शीर्षक में से 'भागवत' शब्द हटाकर इसे 'चौबीस अवतार भाषा' के नाम से अभिहित करना अधिक उपयुक्त है। इसका रचनाकाल सं० १८४३ वि० है, जो यह सिद्ध करता है कि श्री ज्ञानानंद जी अपने दादा गुरु श्री चरणदास जी के जीवन काल में ही कवि-रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। इसकी सरसकुंज (जयपुर) वाली पांडुलिपि सं० १८४७ वि० में श्री जसराम उपकारी (चरणदास जी के शिष्य) के शिष्य श्री छबीलीदास द्वारा लिखित है।

इनकी 'चौबीस अवतार भाषा' की पाण्डुलिपि जयपुर के सरसकुंज के पुस्तकालय में सुरक्षित है। जब कि 'चौबीस एकादशी कथा' की पांडुलिपि श्री रूपमाधुरीशरण (वृन्दावन) के यहाँ है। चौबीस अवतार कथा के आरम्भ में इन्होंने अपने परिचय और इस ग्रंथ के कथ्य का संकेत इस प्रकार दिया है—

व्यासपुत्र को हाथ है, चरनदास के सीस।
जिनके त्यागीराम हैं, ज्ञानानंद के ईस॥
भक्त वछल भगवान जू, धरे जु बहु औतार।
जो है अति विख्यात ही, तिनको करूँ उचार॥

इसी क्रम में कवि ने उन अवतारों का भी नामोल्लेख किया है, जिनका परिचय देना इस ग्रंथ का मूल विषय है। इन पंक्तियों को उद्धृत कर कवि के भाषा-प्रयोग के गुण-दोष पर भी प्रकाश डालना यहाँ इष्ट है—

प्रथम धरौ मीन को रूपा। द्वितिए श्री बाराह अनूपा॥
पुन कछप अंग धरो मुरारी। श्री नरसिंह भये बल धारी॥
बावन परसराम रघुनाथा। श्री कृष्ण औ बुध विख्याता॥
निहकलंक हंस प्रथुराजा। वेदव्यास मुनिन सिरताजा॥
बद्रीपत दत्त कपिल जु ज्ञानी। मनुतर धनंतर भये बिनानी॥
ऋषभदेव ध्रुव अरु औतारा। यज्ञपुरुष हर सनत कुमारा॥
हयग्रीव आदि भये चौबीसा। सो तन धरे आप जगदीशा॥

उपर्युक्त पंक्तियों की भाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि शुद्ध भाषा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रयोग और छन्द की मात्रा-पूर्ति में कवि ने विशेष सावधानी से काम नहीं लिया है। इस ग्रंथ का साहित्यिक महत्व भी सामान्य ही है।

४. बानी—इसमें राग काफी, गौरी, सोरठ, विहाग, केदारा, जै जैवन्ती और ख्याल आदि रागों में निबद्ध पदों का संग्रह है। इन पदों का मुख्य विषय, ज्ञान, वैराग्य, चेतावनी, भक्ति और योगादि से सम्बन्धित है। सांसारिक विषय वासनाओं में भटक रहे मनुष्य को इनकी एक चेतावनी इस प्रकार है—

ज्यों कस्तूरी रहत सदा ही मृग की नाभि मँझारा।
आपन में निरखत वह नाहीं ढूँढ़त फिरत उजारा॥
जैसे नाहर रूप आपनों गयो जु आप भुलाई।
जान दूसरो केहरि वह परो आप कूप में आई॥
जैसे काँच महल के माँही कूकर फिरत भुँसाई।
ज्यों बनचर ने गही मुष्ठ ढिढ़ लीनो आप बँधाई॥
अरु जैसो नलिनी को सुबटा धोखे रह्यो फँसाई।
यों ज्ञानानन्द ब्रह्म बिन जाने, रहो अविद्या छाई॥

५. अवतार अष्टक—इसका रचनाकाल सं० १८४५ वि० है। जसराम उपकारी जी के शिष्य श्री छबीलीदास ने सं० १८४७ वि० में 'चौबीस अवतार कथा भागवत' के साथ इसका भी लेखन और संकलन किया है।

(१६) जैदेवदास जी—ये सम्भवतः अलीगढ़ के ढूसर मुहल्ले के निवासी थे। चरणदास जी के यशस्वी शिष्य श्री श्यामसरन बड़भागी और निर्मलदास के साथ नंगे पैर प्रयाग से त्रिवेणी का जल लाकर श्री चरणदास को स्नान कराने के बड़भागी जी के वृत्त के साथ इनका भी उल्लेख श्री जोगजीत ने 'लीलासागर' में चलते ढंग से कर दिया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि 'लीला-सागर' के पूर्ण होने (सं० १९१८ वि०) तक इनका कोई स्वतन्त्र थाँभा नहीं था। प्रारम्भ में ये दिल्ली स्थित चरणदास जी के आश्रम में ही रहते थे परन्तु सं० १८३९ वि० में गुरु की इहलीला समाप्ति के पश्चात् अलीगढ़ के कोयल नामक स्थान में ढूसरों के मुहल्ले में उन्होंने अपना स्वतन्त्र स्थान बनाया होगा। यहाँ एक छोटा थाँभा भी था, जो गो० जुगतानन्द या सहजोबाई जी की परम्परा का था।

चूँकि सं० १९०० वि० के पूर्व का इस सम्प्रदाय के मेलों का कोई अभिलेख प्राप्त नहीं होता, इसलिए यह बताना कठिन है कि इनका शिष्य कौन था जो इनके बाद कोयल का महन्त बना? इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यहाँ की शिष्य-परम्परा व्यवस्थित और सक्रिय थी। प्रायः सभी मेलों में यहाँ के महन्तगण अपने अधीनस्थ थाँभों के साथ उपस्थित होते रहे हैं। यहाँ की प्राप्त शिष्य-परंपरा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार है—जैदेवदास—गंगादास[1] (सं० १९००–१९२५ वि०)—साहबदास (सं० १९३६–१९४६ वि०)—ठाकुरदास (सं० १९४६–१९९० वि०)—अज्ञात। कोयल के छोटे थाँभे पर सं० १९३५ वि० में जमुनादास, सं० १९३९ वि० में सन्तदास और सं० १९५२ वि० में टीकमदास महन्त थे। सम्भवतः यह गो० जुगतानन्द जी के थाँभों से सम्बद्ध था। उनके यहाँ आने का भी वृत्त मिलता है। कोयल के निकट ही हाथरस में सहजोबाई जी की शिष्या लक्ष्मीबाई जी का थाँभा था। म० जमुनादास जी श्री रामप्रसाद (सहजोबाई के शिष्य) के शाहजहाँपुर स्थित थाँभे के महन्त थे। सम्भवतः वे कुछ दिनों के लिए यहाँ भी पधारे थे और यहीं से मेलों में जाते थे। इनका कोई भी वृत्त ज्ञात नहीं है।

(१७) सबगतिराम (प्रथम)—इनका जन्म और कर्मक्षेत्र मेरठ जिले के बड़ौत शहर का समीपस्थ ग्राम बभनौली था। ये जाति के क्षत्रिय थे।[2] भगवान् रामचन्द्र को पूर्णरूप से समर्पित होने और सब में राम के दर्शन करने के कारण ही इनका नाम सबगतिराम पड़ा था। इस नाम के दो महात्मा श्री चरणदास के शिष्य थे, जिसमें द्वितीय सबगतिराम आजीवन दिल्ली में ही रहे। इनके आचार-विचार की पवित्रता की ओर संकेत करते हुए जोगजीत जी कहते हैं—

"नारि पुरुष सब रामहिं जाने। एक राम सब विश्व पिछाने॥"[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि सबगतिराम जी ने कुछ अधिक वय में चरणदास जी से दीक्षा ली थी और द्वितीय सबगतिराम के पूर्व ही सं० १८४० वि० के आस-पास वे परलोकगत भी हो गये थे। परन्तु दूसरे सबगतिराम दिल्ली में ही रहे।[4]

बभनौली चरणदासी सन्तों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। श्री जोगजीत, आत्माराम इकंगी और श्री जीवनदास (आत्माराम जी के पिता) के वहाँ निवास करने का उल्लेख प्राप्त होता है। स्वयं चरणदास जी भी वहाँ गये थे। सबगतिराम जी एक उच्चकोटि के कवि थे। इनके 'आत्मबोध' और 'शब्द' नामक दो ग्रन्थ

---

१. यह कहना कठिन है कि ये जैदेवदास के शिष्य थे या प्रशिष्य।

२. सरूप राम सुत जानियो, नाम बिहारीदास।
छत्री जाति पिछानियो, दिल्ली में कियो वास॥
आतम प्रापत को कियो, सतगुरु चरणहिं दास।
सबगतराम जु नाम धरि, आतम कियो प्रकास॥
—आत्मबोध (पांडुलिपि) : दोहा सं० १४३–१४४।

३. लीलासागर : पृ० ३००।

४. ब्रह्मनौली जो बसत थे, सु तो गये परधाम।
जोगजीत दिल्ली विषै, ब्राजे सबगति राम॥—वही : पृ० ३००।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हुए हैं जिनमें से इनके 'आत्मबोध' का रचनाकाल सं० १८३६ वि० है।[1]

इनकी प्रधान गद्दी मेरठनगर के पाड़ामल के बाड़ा में स्थित थी। यहाँ के महंत धर्मप्रचार की दृष्टि से बड़े ही सक्रिय रहे हैं और दिल्ली के प्रधान गुरुद्वारे से उनका सम्बन्ध सतत् बना रहा। यहाँ की शिष्य-परम्परा निम्नलिखित है—

श्री सबगतिराम—अज्ञात—सेवादास जी (सं० १९००–१९२० वि०)—(सम्भवतः सं० १९४० वि० तक वर्तमान)—मोहनदास जी (सं० १९२०–१९४५ वि०)—गोपालदास जी (सं० १९४५–१९६९ वि०)—गंगादास जी (सं० १९७०–२००० वि०)। इसके पश्चात् इस स्थान की शिष्य-परंपरा नहीं मिलती। संभवतः यह गद्दी गृहस्थ सम्पत्ति के रूप में परिवर्तित हो गई।

यहाँ की गद्दी से सम्बद्ध एक छोटा थाँभा मेरठ के मिसरगढ़ नामक स्थान में भी था, जिसकी स्थापना रामरूप के शिष्य महन्त सुखनिवास ने की थी, अतः उसका विवरण रामरूप जी के परिचयक्रम में दिया जा चुका है। इन दोनों थाँभों की शिष्य नामावली से यह निर्धारण करना बहुत कठिन काम है कि कौन किस थाँभे से सम्बद्ध है?

सबगतिराम (प्रथम) द्वारा रचित 'आत्मबोध' तथा 'शब्द' या 'बानी' शीर्षक कृतियों की पाण्डुलिपियाँ वृन्दावन के चरणदासी महात्मा श्री रूपमाधुरी-शरण के यहाँ हैं। इनमें से 'शब्द' या 'बानी' नामक संग्रह संभवतः 'आत्मबोध' के ही पदों का स्वतंत्र संग्रह है। अतः 'आत्मबोध' ही इनकी एक मात्र ऐसी कृति है, जिस पर इनका कवि रूप आश्रित है। इस ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि स्वामी राम-रूप जी की दिल्ली की गद्दी के पुस्तकागार में भी है। सबगतिराम जी की 'बानी' की एक पाण्डुलिपि श्री जगदीश जी राठौड़ के पास भी है। इसमें कुल ३५ पद समाविष्ट हैं।

आत्मबोध—यह आध्यात्मिक विषयों के निरूपण से सम्बद्ध काव्यकृति है। इसके पत्रों की संख्या ५९ (पृष्ठों की संख्या १०८) है। इसकी वृन्दावन वाली प्रति के कुछ पत्र खंडित हैं जब कि दिल्ली वाली प्रति पूर्ण है। दिल्ली वाली पाण्डु-लिपि के पत्रों का विस्तार ४″ × ३″ है। इस ग्रन्थ में मुख्यतः छन्द के रूप में दोहा और सवैया हैं। राग केदारा तथा रेषता सहित अनेक रागों में निबद्ध कुछ पदों का भी इसमें समावेश है। इसमें दोहों की संख्या १४७ है।

---

१. संवत अठारह सै गये, छत्तीस और उदार।
चैत बदी तिथि दूज को, पूरण ग्रंथ विचार॥
—आत्मबोध (पांडुलिपि की पुष्पिका)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा और परमात्मा के मूल स्वरूप और उनके परस्पर सम्बन्धों की गहन मीमांसा अपने आप में एक गूढ़ विषय है। ऐसे गहन विषय को भी इस ग्रन्थ में कवि ने सरल भाषा में बड़ी सफाई के साथ व्यक्त किया है। परमात्मा और जीवात्मा के परस्पर सम्बन्धों का स्वरूप निरूपण करते हुए कवि कहता है—

आतम अन्तर तें जु सुध, सत चैतन्य लखाय।
जैसे तन्दुल धान में, स्वेत रूप दरसाय॥
सदा सर्व में आतमा, सब में सोभामान।
पर ये बुध ही के विषय, भासत है सो जान॥[1]

जीवात्मा और परमात्मा में अभेद की बात कवि ने निम्नपंक्तियों में किस प्रकार प्रस्तुत की है, यह द्रष्टव्य है—

टेढ़ा सूधा ब्रह्म है, ऊँचे नीचे ब्रह्म।
सच्चिदानन्द मय आतमा, अद्वय एक अभर्म॥
अनन्त नित्य वह एक सों, ब्रह्म सु तिसको जान।
ब्रह्म बिना दूजा कोई, सब गत और न मान॥[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस ग्रन्थ का कथ्य वेदान्त है। ब्रह्मनिरूपण की स्पष्टता एवं सुबोधता कवि को एक समर्थ विचारक एवं कवि सिद्ध करती है। इस ग्रन्थ के कुछ आरम्भिक दोहे भाषा की दृष्टि से सशक्त एवं साधु नहीं हैं परन्तु आगे चलकर भाषा प्रयोग की दृष्टि से सबगतिरामजी सचेत दिखाई देते हैं। इनकी आरम्भिक कुछ पंक्तियाँ भाषा की दृष्टि से कितनी दोषपूर्ण हैं, यह देखने योग्य है—

परणम परुमातम करूँ, परम गुरू सुखदेव।
बन्दन गुरु चरणदास को, सबगतिराम करेव॥
नमस्कार संतन करूँ, मङ्गल अर्थ विचार।
आतम बोध गिरन्थ जो, मम मुख होय उचार॥

आतमबोध—दोहा सं० १–२।

भाषा-प्रयोग की किंचित्, असावधानियों के बावजूद विषय निरूपण की दृष्टि से ये निस्सन्देह एक उच्चकोटि के कवि थे।

(१८) बल्लभदास—'लीलासागर' और 'नवसंतमाल' में आये उल्लेख के आधार पर पता चलता है कि ये रोहतक जिले के साँपला तहसील में आने वाले दिसावर खेड़ी नामक गाँव के निवासी एक ब्राह्मण गृहस्थ थे। यह स्थान दिल्ली

१. आत्मबोध—(पाण्डुलिपि) छं० सं० ३३–३४।
२. वही : छं० सं० ११५–११६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समीपस्थ बहादुरगढ़ थाने के क्षेत्र में हैं। इन्हें चरणदास जी का कनिष्ठतम शिष्य बताया जाता है। कहते हैं कि ये सभी साधु-महात्माओं, विशेषतः चरणदासी साधुओं की बड़ी आवभगत करते थे। इन्हें एक पहुँचे हुए गुरु की खोज थी परन्तु ऐसे गुरु के न मिलने से ये प्रायः चिन्तित रहते थे। इनकी इस इच्छा का पता चरणदास जी को भी था। एक दिन स्वप्न में उन्होंने उन्हें दर्शन दिया और उन्हें अपना मित्र बनाने की सूचना दी। इससे ये इतने प्रभावित हो गये कि घरबार छोड़कर चरणदास जी के बानाधारी शिष्य बन गये। इन्हें चरणदास जी ने मित्र की संज्ञा क्यों दी, यह एक रहस्यमय कथा है, जिसे जानने के लिए जोगजीत जी द्वारा जिज्ञासा व्यक्त करने पर चरणदास जी ने उन्हें जो कुछ बताया था, उसका वृत्त 'लीलासागर' में इस प्रकार आया है—

कुटुम्ब माहिं रहै बल्लभदासा। साधु सेव मन करै हुलासा॥
जो कुछ बने करै तिन सेवा। पूरन मिलन चहै गुरु देवा॥
खोजे बैरागी संन्यासी। जोगी जंगम पन्थ उदासी॥
कहूँ न याको मन पतियायो। मम साधुन सेती मन लायो॥
मन बच कर्म करे सेवकाई। सन्तन या मोहि रीति सुनाई।

सुन मो मन परसन भयो, सुपनै दर्शन दीन।
ऐसो बचन सुनाइया, तोहि मित्र मैं कीन॥[1]

गुरु द्वारा दीक्षा दिये जाने के पश्चात् कुछ दिनों तक तो वे गुरुद्वारे में ही रहे। तत्पश्चात् उन्होंने तीर्थाटन किया और अंत में अपनी जन्मभूमि में ही अपना आश्रम बनाकर रहने लगे। उनका यह थाँभा अब भी सक्रिय रूप से चल रहा है। इनका परलोकवास पौष सुदी ९, गुरुवार, सं० १८६४ वि० को हुआ था। इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए 'सर्व अंग सार गुटका' नामक अपनी कृति में मलूकदास जी ने लिखा है—

कुण्डलिया—संवत अठारह सौ चौसठ, पौष सुदी गुरुवार।
नौमी तिथि सुभ दिन गिनो, वा दिन प्रातहि काल॥
वा दिन प्रातहिकाल ध्यान निज रूप विचारी।
गये अमरपुर धाम देह कूँ तज के न्यारी॥
बल्लभदास महराज जी, जीवन मुक्त सरूप।
मलूकदास हरि सम भये, जैसे सूरज धूप॥

(२) दिसावर खेड़ी का थाँभा—बल्लभदास जी (सं० १८६४ वि० तक)

---

१. लीलासागर : पृ० २९८–९९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—ब्रह्मदास जी (सं० १८६४–१९१५ वि०)–मलूकदास जी[1] (१९१५–१९३५ वि०) —हरप्रसाद जी (सं० १९३५–१९५१ वि०) —नारायणदास जी (सं० १९५१–१९७० वि०)—चतुर्भुजदास जी (सं० १९७०–२०१८ वि०) प्रेमदास जी (२०१८–वर्तमान) ।

आलोच्य परम्परा में यह ब्राह्मणों का थाँभा माना जाता है । इस थाँभे पर दिल्ली के महंत जुगतानंद के शिष्य बुद्धिविनोद जी का बड़ा प्रभाव रहा । इसका कारण यह था कि बल्लभदास जी का प्रधान थाँभा रोहतक में था । यह एक छोटे थाँभे के रूप में थाँभे से सम्बद्ध रहा होगा ।

(२) रोहतक का थाँभा—रोहतक नगर के कोटकासम बाजार नामक स्थान में बल्लभदास जी की प्रधान गद्दी थी । यहाँ रहकर उन्होंने आस-पास के क्षेत्र में अनेक प्रबुद्ध शिष्य दीक्षित किये थे । संभवतः यहाँ उनको कोई आचार निष्ठ शिष्य नहीं मिला, इसलिए उन्होंने जुगतानन्द जी के शिष्य बुद्धिविनोद जी को गोद ले लिया और सं० १८७० वि० में उन्हें इस स्थान का महंत-पद देकर स्वयं दिसावर-खेड़ी में रहने लगे । यही कारण है कि इनकी दोनों (बड़ी और छोटी) गद्दियों

---

१. मलूकदास—ये मलूकदास कड़ा—इलाहाबाद के खत्री और मलूक पंथ के प्रवर्त्तक से भिन्न हैं । प्रसिद्ध संत मलूकदास जी (इलाहाबाद) का जीवनकाल सं० १६३१–१७३९ के बीच है, जबकि आलोच्य मलूकदास जी बल्लभदास जी के शिष्य श्री ब्रह्मदास के शिष्य एवं गो० जुगतानंद जी की लोकरी (रिवाड़ी) वाली गद्दी से सम्बद्ध थे । ये रामरूप जी के पौत्र शिष्य एवं स्वामी सिद्धराम जी के शिष्य तथा उनकी दिल्ली स्थित आचार्य गद्दी के उत्तराधिकारी म० मलूकदास जी से भी भिन्न हैं । ये श्री मलूकदास लोकरी और दिसावर खेड़ी (बल्लभदास का स्थान) दोनों स्थानों के संयुक्त व्यवस्थापक थे । सं० १९१९ से १९५८ वि० के बीच सम्पन्न मेलों की बहियों में इनका पता लोकरी का ही दिया हुआ है । लोकरी की शिष्य परम्परा को यदि दृष्टि में रखे तो ये वहाँ की गद्दी पर गोसाईं जुगतानन्द के शिष्य म० भक्ति बिनोद जी के शिष्य म० बिसनसरन के बाद आते हैं । इसका अर्थ यह नहीं है कि ये महंत बिसनसरन के शिष्य थे । इन्होंने अपनी रचनाओं में ब्रह्मदास जी को ही गुरु बताया है । अतः अनुमान किया जा सकता है कि म० ब्रह्मदास भी गो० जुगतानन्द की ही परम्परा से सम्बद्ध थे और दिसावर खेड़ी तथा लोकरी के थाँभों का ताल-मेल सं० १८८० वि० के आस-पास स्थापित हो गया था । यह तभी संभव हुआ होगा, जबकि म० ब्रह्मदास के पास किसी योग्य शिष्य का अभाव हो और उन्होंने गु० जुगतानंद की सदरगद्दी (दिल्ली) से किसी व्यक्ति की माँग की हो ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जुगतानंद जी की शिष्य-परम्परा का प्रभाव बना रहा। यहाँ की शिष्य परम्परा निम्नलिखित है—बल्लभदास जी (सं० १८५०–७० वि० तक)—बुद्धिविनोद-जी (सं० १८७०—८५)—अयोध्या प्रसाद जी (सं० १८८५—१९२० वि०) —कृष्णप्रसाद जी (सं० १९२०–५७ वि०)—गोपाल[1] जी (सं० १९५७–७६ वि०) —सुखदास जी (सं० १९७६–९१ वि०)—दुर्गादास जी (गृहस्थ) (सं० १९९१– –वर्तमान)। महन्त दुर्गादास का जो पता मेरे पास है, उसके अनुसार उनका निवास सब्जी मण्डी, पुराना रोहतक में है। वर्तमान में इस स्थान पर चरणदासी मंदिर के अतिरिक्त कुछ भी अवशिष्ट नही है। मंदिर की सम्पत्ति व्यक्तिगत संपत्ति हो चुकी है।

(१) ब्रह्मदास जी का साहित्य—इनका व्यक्तिगत परिचय अज्ञात है। इनकी 'बानी' शीर्षक बानियों की पाण्डुलिपि सरसनिकुंज (जयपुर) में है लेकिन मैं उसका सम्यक् अवलोकन नहीं कर पाया। इनका एक पद जगदीश जी राठौड़ के बानी संग्रह में संगृहीत है जो होली विषयक है और जिसमें श्री कृष्ण के नटखट रूप का वर्णन है। यह पद इस प्रकार है—

॥ राग बरुआ ॥ ॥ होली का पद ॥

मोको रङ्ग में बोरि डारी रे इस नंद दे छैल बिहारी।
ले बूका मेरे सनमुख आवै भरि पिचकारी मेरे मुख पर डारै।
ले कलसा ऊपर ढरकावै ऐसो ढीठ बिहारी॥
कहा करूँ कहँ जाउँ मोरी आली या ब्रज में अब भई कुचाली।
चितवन हँसन फांस गर डारे ऐंचत है मोरी सारी॥
जे कर पाऊँ पकरूँ वाको हौं भी कसर कछू ना राखूँ।
ब्रह्मदास हिय में अभिलाखूँ मुख मेड़ौं गिरधारी॥

(२) महन्त मलूकदास और उनका साहित्य—

महंत ब्रह्मदास के शिष्य महंत मलूकदास जी का व्यक्तिगत परिचय अज्ञात है। अनुमानतः ये जाति के ब्राह्मण और रोहतक जिले के दिसावर खेड़ी (साँपला तहसील) के आस-पास के निवासी थे। जैसा कि पहले कहा चुका है, यह गद्दी ही ब्राह्मण गद्दी मानी जाती है, अतः इसका महंत जाति से ब्राह्मण ही रहा होगा। यही बात मलूकदास जी की जाति का भी निर्धारण करती है। इनका जन्मकाल

---

१. महंत गोपालदास का परलोकवास फाल्गुन सुदी २, सं० १९७६ वि० को हुआ था। उनकी सत्रहवीं के मेले में ५२ बड़े थाँभों और ५५५ छोटे थाँभों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति अभिलेखों में उल्लिखित है, जो प्रमाण सिद्ध नहीं प्रतीत होती।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १८७० वि० के आस-पास होना चाहिए। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि ये सं० १९१० वि० के आस-पास महंत पद पर आये होंगे। पूर्ववर्ती अन्य मेलों के अतिरिक्त सं० १९५८ वि० में माचल में महंत सेवादास द्वारा आयोजित मेले में भी इनकी उपस्थिति उल्लिखित है। परन्तु सं० १९६५ वि० के मेले में लोकरी से महंत खूबदास (खूबीदास) आये थे। अतः कहा जा सकता है कि इनका परलोकवास सं० १८६० वि० के आस-पास कभी हुआ होगा।

चरणदासी संप्रदाय में इन्हें बाबा कहकर संबोधित किया जाता था। ये उच्च-कोटि के साधक, कवि और व्यस्थापक थे। गोसाईं जुगतानंद की शिष्य-परंपरा की गद्दियों को व्यवस्थित करने और उनकी संख्या को बढ़ाने में इनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनकी एक काव्य कृति 'सर्वअंगसार गुटका' की पांडुलिपि मुझे सरसकुंज–जयपुर की जिल्द सं० ८४१ में देखने को मिली। इसमें संकलित पद संतबानी की शैली से मेल खाते हैं। इनकी भाषा-शैली और अभिव्यक्ति-पद्धति आदि की जानकारी के लिए उदाहरण के रूप में इनका निम्न पद द्रष्टव्य है—

साधो भाई ग्यानी देस अलैदा।
पाँच तत्त तीनों गुन नाहीं तहाँ नाहिं कुछ भेदा॥
नहीं स्वर्ग में वह अस्थाना नाहिं पाताल में भाई।
नहीं काहू को रच्यो जु कहिये आप ही आप रहाई॥
ह्वां किला नाहिं नहिं हाकिम देखा नहीं बादसा कोई।
नहीं कोतवाल नहिं रैयत ह्वाँ है नहिं हिसाब दे सोई॥
नहिं तस्कर नहिं धाड़ी तामें नाहीं ठग तहँ देखा।
नहिं हिन्दू नहिं तुरका वामें नहीं बर्न नहिं भेदा॥
स्वयं जीत अविगत अविनासी तहाँ इकंगी राजै।
ब्रह्मदास सतगुरु ह्वां पहुँचे मलूकदास तहँ गाजै॥[1]

आलोच्य मलूकदास जी मलूकदासी संप्रदाय-प्रवर्तक संत मलूकदास की सत्य प्रतिच्छवि के रूप में प्रतीत होते हैं। दोनों मलूकदासों की उक्तियों और अभिव्यक्ति शैली में अद्भुत साम्य है। दोनों में तर्क, दृष्टान्त और उदाहरणों की सटीकता समान रूप से प्रभावशाली है। इस तथ्य पर विस्तार से प्रकाश डालने का यहाँ अवकाश न पाते हुए मात्र इस एक कुण्डलिया द्वारा हम इस कथन की पुष्टि करना चाहते हैं—

१. सर्वअंगसार गुटका, पत्र २३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निगुरे-सगुरे का वर्णन—

निगुरे सगुरे भेद बहु, जैसे काग मराल।
गऊ जो खर को जानिये, भक्त और चांडाल ।।
भक्त और चाण्डाल, पंगु औ चरणन वारो।
वाक अवाको जान, अंध अरु नैन उजारो ।।
इतनो अंतर जानिये, जैसे रात अरु द्यौस।
कहे मलूका बिन गुरू, मिटे न जग की हौंस ।।
—सर्वअंगसार गुटका (पांडुलिपि)।

इसी प्रकार निम्न 'अरिल्ल' में मलूकदास जी का शिल्पगत नवीन प्रयोग एवं 'दोटूक' सुनाने की प्रवृत्ति भी संत मलूकदास से प्रभावित प्रतीत होती है—

कंस रावण सिसुपाल काल ने खा लिये।
भौमासुर अरु मूर वाण से आलिये ।।
दुरजोधन बलवंत कहत हम सम नहीं।
हरि हाँ कहे मलूकदास रहा इनमें न कहीं ।।
जैसे तारे भोर अंधेरा दुंद है।
जैसे बादल छांहि ओस ज्यूं बुंद है ।।
जैसे सुपना रैन बगूला बायु को।
हरि हाँ कहे मलूकादास तजे जग बाय को ।।

अन्त में इनकी एक सवैया उद्धृत करते हुए इस बात की ओर संकेत किया जा रहा है कि ये किसी भी रीतिकालीन अच्छे कवि से भाषा के प्रयोग एवं भावाभिव्यक्ति के क्षेत्र में टक्कर ले सकते हैं।

सवैया—दीन दयाल सुने जबतें तबते मन में कुछ ऐसी बसी है।
तेरी कहाय के जाऊँ कहाँ अब तेरे ही नाम की फेंट कसी है ।।
तेरो सहारो है एक मलूक नहीं प्रभू सों कोई दूजो जसी है।
ए हो मुरारि पुकारि कहौं या में मेरी हँसी नहीं तेरी हँसी है ।।

(१९) घनश्यामदास जी—ये झूंसी (प्रयाग) के कायस्थ जाति के एक सम्पन्न गृहस्थ थे। एक बार कुम्भ के मेले में चरणदास जी सहित उनकी शिष्य मंडली प्रयाग गई थी। उनके समाज में हो रहे सत्संग के आयोजन में घनश्यामदास भी प्रायः उपस्थित होते रहते थे और चरणदास जी से प्रभावित थे। अन्ततः उन्होंने अपने बाल सखा श्री बाल-गुपाल के साथ दिल्ली जाकर चरणदास जी से दीक्षा ले ली। उनकी विशिष्ट स्थिति को समझते हुए गुरु ने उक्त दोनों शिष्यों को गृहस्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में रह कर ही धर्माचरण करने का आदेश दिया।[1] इस प्रकार उनके १०८ विशिष्ट शिष्यों में ये दो ही व्यक्ति ऐसे थे जो गृहस्थ थे और उनकी शिष्य-परंपरा भी प्रायः गृहस्थ परंपरा ही रही।

इन दोनों सज्जनों ने अपने विशुद्धाचरण एवं साधना संबंधी औदात्य से प्रयाग में बड़ा यश अर्जित किया। वहाँ के अनेक सेठ साहूकार उनके शिष्य बने। इनका मंदिर प्रयाग के मुट्ठीगंज नामक मुहल्ले में बना हुआ है और अब भी सुरक्षित है। कहा जाता है कि इलाहाबाद की कुछ दूरी पर स्थित करमा नामक कस्बे के अधिकांश कायस्थ परिवार चरणदासी हैं और यहाँ एक मंदिर भी बना हुआ है। इनका मुट्ठीगंज वाला थाँभा अभी भी चल रहा है। शुक संप्रदाय के अधिकांश मेले दिल्ली और रिवाड़ी के आस-पास ही हुए, इसलिए आवागमन की असुविधा के कारण यहाँ के महंत उस क्षेत्र में आयोजित मेलों में प्रायः कम ही पहुँच पाये थे। फिर भी विभिन्न स्रोतों से यहाँ की जो शिष्य परंपरा ज्ञात हो सकी है, वह इस प्रकार है—श्री घनश्यामदास (सं० १८७० वि० तक)—हरनामदास जी[2] (सं० १८७०-१९६० वि०)—अज्ञात।

घनश्यामदास जी की बानियाँ सरसकुंज-जयपुर, स्व० रूपमाधुरीशरण-(वृन्दावन) तथा बीकानेर के श्री रामसहाय श्रीवास्तव के यहाँ उपलब्ध हैं। इनकी बानियों की कुल संख्या क्या है, यह कह पाना कठिन है पर इतना अवश्य है कि ये अच्छे बानीकार थे। उदाहरण के रूप में इनका निम्न पद द्रष्टव्य है—

॥ पवित्रा[3] का पद ॥ । राग मल्हार ।

पवित्रा पहने श्यामा श्याम।
सोभित सुभग सरूप अंग छबि निरखि सकल ब्रजबाँम ॥
सुर नर मुनि सब देख मगन भगे रति मोहे अरु काम।
सावन सुदी एकादशी की छबि पावन परम ललाम ॥
जन घनश्याम सखी बलि बलि जै वृन्दावन निज धाम ॥

(२०) बालगुगाल जी—इनका नाम घनश्यामदास के साथ युग्म रूप से उल्लिखित मिलता है। ये काश्मीरी ब्राह्मण परिवार के गृहस्थ और विद्वान् थे।

---

१. गृहस्थपन हू राखियो, और सजियो बैराग।
शिष्य शाखा भी कीजियो, साँची हरि से लाग ॥
—लीलासागर : पृ० २८९।

२. श्री हरनामदास १०८ वर्ष की आयु में परलोकगत हुए थे। वे अपने जीवन काल में प्रायः सभी मेलों में उपस्थित होते थे। यह पता नहीं चलता कि वे घनश्यामदास जी के शिष्य थे या प्रशिष्य।

३. पवित्रा—श्रावण शुक्ल एकादशी को सम्पन्न होने वाला उत्सव।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीचरणदास से दीक्षा लेने के उपरान्त इन्होंने कीडगंज (प्रयाग) में अपना थाँभा स्थापित करके धर्मप्रचार करते हुए अनेक राजाओं और जमींदारों को शिष्य बनाया। इनकी गृहस्थ गद्दी अभी भी चल रही है। सं० १९२९–५२ वि० के बीच इनके प्रशिष्य नरसिंहदास मेलों में आते थे। इस गद्दी की शिष्य परंपरा प्राप्त नहीं हो सकी। इनका एक पद जगदीश जी राठौड़ ने कहीं से प्राप्त किया है जो इस प्रकार है—

॥ बधाई लाल जू की ॥ । राग मल्हार ।

बाजत मंगल आज बधाई ।
अद्भुत चन्द्र निकर सोभा अति उदय भयो ब्रज आई ॥
मरकत मनि तन आभा जीतत सुन्दर रूप निकाई ।
उपमा खोजे कहुँ नहिं पावे रति पति कोटि लजाई ॥
चार वेद षट् शास्त्र बखानत सुयश सुनी जन गाई ।
पूरब सुकृत को फल पायो प्रगट्यो कुँवर कन्हाई ॥
धन्य धन्य ब्रजराज नंदजू धन्य यशोमति माई ।
आनन्द सिंधु बढ्यो अति भारी कहँ लौं करौं बड़ाई ॥
बालगुपाल निरखि नैनन सूँ छबि निज हिये बसाई ॥

इस पद में प्रयुक्त काव्य भाषा के सुष्ठु प्रयोग और भक्तिमय उद्गार की अभिव्यक्ति कुशलता को देखते हुए कहा जा सकता है कि श्री बालगुपाल निस्सन्देह एक अच्छे कवि थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चम अध्याय

बड़ी गद्दियों की शिष्य परम्पराएँ और उनका साहित्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी गद्दियों की शिष्य परम्पराएँ और उनका साहित्य

प्रस्तुत अध्याय पूर्व अध्याय (चतुर्थ) का पूरक है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि संतप्रवर श्री चरणदास जी के १०८ शिष्यों में से तीन आचार्य गद्दियों के संस्थापकों सहित ५२ वरिष्ठ शिष्यों के प्रचार केन्द्रों अथवा थाँभों की 'बड़ी गद्दी' की संज्ञा थी और शेष ५६ या ५७ शिष्यों के स्थानों को 'छोटी गद्दी' या छोटा थाँभा कहा जाता था। बड़े थाँभे के २० संस्थापकों की शिष्य-परम्पराओं, उनके द्वारा स्थापित अन्य छोटी-बड़ी गद्दियों और उनकी परम्परा के कवियों द्वारा रचित साहित्य आदि का परिचय चतुर्थ अध्याय में दिया जा चुका है। बड़े थाँभों के शेष २९ संस्थापकों का साम्प्रदायिक एवं साहित्यिक परिचय इस अध्याय का मुख्य विषय है।

हर थाँभा-संस्थापक की गद्दी या गद्दियों की शिष्य परम्परा, सम्प्रदाय के प्रचार में उनका योगदान, उनका व्यक्तिगत परिचय और उनके उपलब्ध साहित्य का मूल्यांकन आदि पर इस अध्याय में प्रकाश डालने का यथासंभव प्रयास किया गया है।

इस अध्याय में समाविष्ट बड़े थाँभों के संस्थापकों की सूची इस प्रकार है—

बड़े थाँभों के (अवशिष्ट) शिष्यगण—

क्रम संख्या	संस्थापक का नाम	मुख्य थाँभे का स्थान
२१.	श्री निगमदास	पटना
२२.	,, हरिसेवक	अलवर
२३.	,, परमसनेही	(बड़ा) पलथा (झरिया, बिहार)
२४.	,, धरमदास	बेरी (रोहतक)
२५.	,, नन्दलाल	राहिल्यावास (रिवाड़ी)
२६.	,, चरणरज	चिरचिटा और चोरमऊ (मुजफ्फरनगर)
२७.	,, चरणधूर	,, ,,
२८.	,, हरिदास (प्रथम)	डूड़ाहेड़ा (गुड़गाँव)
२९.	,, परमदास	मुर्शीदाबाद (बंगाल)
३०.	,, सुखरामदास (प्रथम)	जयपुर
३१.	,, डन्डौतीराम	डहरा-बहादुरपुर
३२.	,, निर्मलदास	कानपुर (चौक)
३३.	,, श्यामसरनबड़भागी	बिठूर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम संख्या	संस्थापक का नाम	मुख्य थाँभे का स्थान
३४.	श्री हरभजनदास	रजधान (कानपुर)
३५.	,, गुरुप्रसाद	लखनऊ (चौक)
३६.	,, सुखविलास मस्तराम	लखनऊ (फतहगंज)
३७.	,, भजनानन्द	रायपुर तथा चित्रकूट
३८.	,, मुक्तानन्द परमार्थी	लखनऊ (ठाकुरगंज)
३९.	,, सहजानन्द	काँधला
४०.	,, ठंडीराम	अजराड़ा (खरखौदा)
४१.	,, नन्दराम	परीक्षितपुरा-दिल्ली
४२.	,, गुसाईंनागरीदास	कामावन (वृन्दावन)
४३.	,, सुश्री दयाबाई	कानपुर तथा बिठूर
४४.	,, श्री दाताराम	लुजीड़ा (नारनौल)
४५.	,, जीवनदास	बाभनौली (बड़ौत-मेरठ)
४६.	,, मधुरीदास या मथुरादास	भुसावल (भरतपुर राज्य)
४७.	,, गुरुमुखदास	हेजरपुर (नजीबाबाद)
४८.	,, हरिदेवदास	धाराहेड़ी (शुकतार, मुजफ्फरनगर)
४९.	,, योगी विद्यानाथ	शामली (मुजफ्फरनगर)
५०.	,, रामघड़ल्ला	सिलसिली (,,)
५१.	,, साधुरामदास (प्रथम)	जयपुर
५२.	,, श्यामरूप	जुगलघाट (वृन्दावन)

(२१) निगमदास जी—ये जाति के ब्राह्मण और आगम-निगम के ज्ञाता थे।[1] संभवतः इसी कारण इनका नाम निगमदास पड़ा था। ये कहाँ के रहने वाले थे, इसका पता नहीं चलता। सम्भव है कि पटना या झरिया के आस-पास का कोई स्थान इनका मूल निवास रहा हो। इनके श्रीचरणदास के सम्पर्क में आने के दो कारण हो सकते हैं—(१) कुरुक्षेत्र या हरिद्वार की यात्रा में चरणदास जी की ख्याति सुनकर वे दिल्ली स्थित उनके स्थान पर स्वयं गये हों और वहाँ कुछ समय तक रहने के बाद उनसे दीक्षित हो गये हों, अथवा (२) तत्कालीन चरणदासियों की जमात प्रायः वैद्यनाथधाम और पुरी की यात्रा पर निकलती रहती थी। उसी क्रम में उनकी भेंट उनमें से किसी विशिष्ट व्यक्ति से हो गई हो और वे भी उनके साथ दिल्ली आ गये हों। 'लीलासागर' के अनुसार चरणदास जी के जीवनकाल में ये

---

१. निगमदास जु नाम धरचो त्यों करूँ बखानी।
अगम निगम की चर्चा करें जुबानी॥—लीलासागर : पृ० ३१५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकतर दिल्ली में ही रहे।[1]

पटना का थाँभा—ये पटना स्थित अपने थाँभे के माध्यम से अपने तीर्थयात्री गुरुभाइयों की बड़ी आवभगत करते थे। उनका एक स्थान पलथा (बड़ा पलथा) में भी था, जो झरिया से २०–२५ मील दूर हजारीबाग जिले में स्थित है। बिहार में चरणदासी सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार करने का श्रेय मुख्यतः निगमदास जी और रामरूप जी के शिष्य मुक्तिनिवास जी को दिया जा सकता है, जिन्होंने पटना, पलथा, मुंगेर, वैद्यनाथधाम और अन्य कई स्थानों पर अपने प्रचार केन्द्र स्थापित किये थे।

पटना में मोती बाजार में अब भी चरणदासियों के मंदिर वर्तमान बताये जाते हैं। पटना शहर से ८–९ मील दूर सुमेरपुर-मेहदरु नामक गाँव में सं० २००० वि० तक श्री रामरूप की शिष्य परम्परा के साधु बालकदास जी वर्तमान थे। पटना के ठठेरीबाजार नामक मुहल्ले में भी इस परम्परा के मन्दिरों के होने की बात कही जाती है। ठठेरीबाजार वाले मन्दिर से सं० १९४९ वि० के मेले में उत्तमदास नामक एक महात्मा पधारे थे। पटना या पलथा की गद्दियों की शिष्य परम्परा विधिवत नहीं मिलती। इसका मुख्य कारण संभवतः यह है कि दिल्ली के आस-पास के मेलों में इतनी दूर से महन्तगण पहुँच नहीं पाते थे। उनकी उपस्थिति का यह अभाव ही निगमदास जी की शिष्य परम्परा का इतिहास जानने में बाधक है।

दिल्ली की गो० जुगतानंद जी की मुख्य गद्दी के एक अभिलेख से पता चलता है कि सं० २०१० वि० तक पलथा में बाबा हरनामदास वर्तमान थे। इस परंपरा का साहित्य अभी तक अनुपलब्ध है।

(२२) हरिसेवक जी—श्री हरिसेवक के सम्बन्ध में 'लीलासागर' और 'नव संतमाल' से केवल इतना ही पता चल पाता है कि वे मेवात (अलवर राज्य) के निवासी थे। वे स्वभावतः बड़े ही सरल, सन्तोषी, संत सेवी, मधुरभाषी और गुरुभक्त तो थे ही साथ ही एक आदर्श संत एवं कुशल वक्ता भी थे। गुरु के आदेश से हरिसेवक जी अलवर नगर में रहते हुए अपने मत का प्रचार दत्तचित्त होकर करते रहते थे। उनका थाँभा अलवर के ढोली का कुँआ नामक मुहल्ले में था और अब भी चल रहा है।

अलवर का थाँभा—यहाँ की शिष्य परम्परा इस प्रकार है—

हरिसेवक जी (–सं० १८८० वि० तक)—म० ब्रह्मदास (सं० १८८०–१९१० वि०)—म० रामलाल (सं० १९१०–४८ वि०)—म० रामगोपाल जी

---

१. जोगजीत बहुवर रहे हिल मिल के जो पास ही।

—लीलासागर : पृ० ३१५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शिष्य श्री म० गोपालदास जी[1]) (सं० १९६०–१९६९ वि०)—म० सिद्धराम (सं० १९६९–१९९० वि० तक के आस-पास)—गृहस्थगद्दी। महन्त रामलाल जी (इनका एक नाम रामदास भी मिलता है) और म०गंगादासजी तक (सं० १९००–१९६० वि० के बीच) यह थाँभा बड़ा सम्पन्न और प्रभावशाली था। इसके साथ ५ अन्य स्थान भी संबद्ध थे। अलवर यों भी भार्गवों का केन्द्र है। नगर और उसके बाहर के समीपवर्ती गाँवों में उन दिनों चरणदासी महात्माओं की भरमार थी। डेहरा और बहादुरपुर जैसे चरणदास जी के जीवन से सम्बद्ध गाँव (क्रमश. जन्म-स्थान और ननिहाल) भी पास में ही थे। अतः स्वाभाविक था कि यह क्षेत्र इस सम्प्रदाय के लिए आकर्षण का केन्द्र होता। हरिसेवक जी के शिष्य महंत ब्रह्मदास बड़े प्रभावशाली महात्मा थे। सम्भवतः ये स्वामी रामरूपजी के शिष्य ब्रह्मदासजी तथा बल्लभदास जो चरणदास जी के शिष्य के शिष्य श्री ब्रह्मदास-दोनों से भिन्न हैं।

रामगोपाल जी की सात कुँडलियाँ सरसकुंज-जयपुर की पांडुलिपि सं० ३५५ में अभी कुछ ही दिन पूर्व मुझे प्राप्त हुई हैं। इनका उल्लेख अखैराम जी की परम्परा के वृत्त के साथ नहीं हो पाया था। इन कुंडलियों में से कुंडलिया सं० ५ यहाँ उद्धृत है—

(कुंडलिया)

देखि खिलौना दैव का, गये जगत खिलौना भूल।
नव द्वारा पुतली रची, कोई चतुर कोई बूल॥
कोई चतुर कोई बूल प्रकृति सब न्यारी न्यारी।
कीनी नाना भाँति देखि अति लागै प्यारी॥
अरे हाँ कह राम गोपाल चतुर चतुराई कीनी।
मिट्टी जड़वत रूप ताहि चेतन करि दीनी॥

(२३) परमसनेही जी—इनका व्यक्तिगत परिचय इनके किसी भी गुरुभाई ने नहीं दिया है। संभवतः ये बरेली जिले के पलथा नामक स्थान के निवासी थे क्योंकि इनका थाभाँ भी वहीं था।[2] एक बात इनके सम्बन्ध में प्रायः सबने कही है कि ये गुरु के परम स्नेही शिष्य थे। कहते हैं कि इन्हें यह समझ कर गुरु के देहावसान का समाचार काफी दिनों तक नहीं दिया गया कि वे उसे सुनकर जीवित नहीं

---

१. रामगोपाल जी अखैराम जी की परम्परा से संबद्ध हैं, अतः इनका परिचय वहीं द्रष्टव्य है।

२. चरणदासी सम्प्रदाय के थाँभों में पलथा नामक दो स्थान बताये गये हैं, जिनमें से एक को बड़ा पलथा कहा गया है, जो बिहार प्रांत में झरिया के आस-पास था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह सकेंगे। विना गुरु का दर्शन किये वे अन्न-जल ग्रहण नहीं करते थे और उन्हीं को भगवान् का विग्रह मानते थे। अन्ततः गुरु के स्वर्गवास का इन्हें समाचार मिला फिर भी ये अन्तर्हृदय में उनका दर्शन पाते रहे। इनके इन्हीं गुणों के कारण इन्हें परमसनेही या प्रेमसनेही कहा गया।[1]

पलथा (छोटा) का थाँभा—इनका थाँभा बरेली जिले के आँवला तहसील के सरोली थाने के अन्तर्गत पलथा नामक स्थान में था। यह थाँभा बड़ा ही सक्रिय रहा है। यहाँ की शिष्य-परम्परा निम्नलिखित है-परमसनेही जी (–सं० १८६० वि० तक वर्तमान)—अलखसनेही जी[2] (सं० १८६०–१८७५ वि०)—रामसनेही जी (सं० १८७५–१९१० वि०)—वासुदेव सनेही (दास) (सं० १९१०—१९३९ वि०) —भगवानसनेही (दास) (सं० १९४०—१९६० वि०)—मथुरादास (सनेही)[3] (सं० १९६०–२०२७ वि०)—गृहस्थ गद्दी। यहाँ किसी समय ब्रह्मनिवास जी नामक महात्मा भी महन्त थे। संभवतः श्री भगवान सनेही तथा मथुरादास के मध्य सं० १९७५ वि० के आस-पास ये महंत रहे हों।

इस प्रधान थाँभे के ३ सहयोगी छोटे थाँभे भी रहे हैं। ये सभी बरेली जिले के विभिन्न स्थानों पर थे और सक्रिय रूप से अपने संप्रदाय के संरक्षण एवं संवर्द्धन में लगे हुए थे। इस परम्परा का साहित्य अभी तक अप्राप्त है। संभव है कि संबद्ध गद्दी के वर्तमान महंत के यहाँ उपलब्ध हो।

---

१. भौंरा ज्यूँ सुगन्ध को चाहै। चातक स्वाति बूँद ज्यों लाहै॥
चरणदास दर्शन की जैसो। परम सनेही चाहत ऐसौ॥
जो कहौ गुरुधाम सिधाए। क्यों करि इन तन प्राण रहाये॥

× × ×

चरणदास गुरुदेव ने, हिरदय मांहि परेख।
परमसनेही नाम ही, धरो जु लक्षण देखि॥ लीलासागर, पृ० ३०३।

२. महन्त अलखसनेही के शिष्य श्री रामसनेही ने ज्ञानानन्द निर्वाणी जी के 'दसमस्कंध भाषा भागवत' की प्रतिलिपि सं० १८५३ वि० में की थी। अलखसनेही जी महंत-पद पाने के पूर्व से ही एक अध्ययनशील विरक्त महात्मा थे। उक्त पांडुलिपि का लिपि स्थल चिन्तापुर नामक स्थान उल्लिखित है।

३. मथुरादास जी सं० २०२१ वि० में १२० वर्ष की आयु में भी दिल्ली के मेले में सम्मिलित हुए थे। वे वासुदेव सनेही (वासुदेव दास) के शिष्य और महंत भगवान सनेही के गुरुभाई थे। इस प्रकार भगवान सनेही के स्थान पर उनके शिष्य नहीं बल्कि गुरुभाई महंत बने।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२४) धरमदास जी—चरणदास जी के शिष्य धरमदास जी का व्यक्तिगत परिचय न देकर भी जोगजीत जी ने इन्हें 'महाधर्म की खान' और 'भजनानन्दी' कहा है और इनका प्रचार केन्द्र बेरी नामक स्थान बताया है। प्राप्त अन्य प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है श्री धर्मदास और रामरूप जी में बड़ी घनिष्ठता थी। धर्मदास जी के स्थान पर ही रामरूप जी प्रायः रहा करते थे और यहीं उन्होंने देहत्याग भी किया था। रामरूप जी और गोसाईं जुगतानन्द के बीच प्रधान 'अस्थल' के उत्तराधिकार-पद के लिए जो विवाद हुआ था, उसमें श्री धर्मदास ने स्पष्ट रूप से रामरूप जी का साथ दिया था, जब कि जोगजीत जी का झुकाव श्री जुगतानन्द की ओर था। संभव है कि धर्मदास जी की इस पक्षधरता ने जोगजीत जी सदृश महन्तों के मन में उपेक्षा का भाव उत्पन्न किया हो।

बेरी (खाश) का यह थाँभा रोहतक जिले के प्रभावशाली स्थानों में से एक था। स्वामी सिद्धराम के शिष्य तुलसीदास जी यहाँ गोद लिये गये थे। अतः धर्मदास जी के अनन्तर इस बड़े थाँभे की शिष्य परम्परा एक प्रकार से रामरूप जी की ही शिष्य-परम्परा की सम्पत्ति बन कर रह गई।

बेरी का थाँभा—

बेरी का महत्व रामरूप जी के शिष्य-प्रशिष्य वर्ग द्वारा स्थापित गद्दियों के महन्तों एवं अनुयायियों के लिए केवल इसीलिए नहीं था कि यहाँ सं० १९४७ वि० में उनका देहावसान हुआ था, बल्कि यह उनका जन्मस्थान भी था। संभावना यह भी हो सकती है कि धरमदास जी के अतिरिक्त यहाँ एक अन्य थाँभा रामरूप जी का भी रहा हो। परिस्थितिवशात् कालान्तर में श्री धर्मदास का स्थान सीधे रामरूप के साथ जुट गया। बेरी में सेठ हरगूलाल (वृन्दावन वालों) की गली में धर्मदास जी का बनवाया हुआ श्री राधाकृष्ण का मन्दिर अब भी वर्तमान बताया जाता है। इसमें युगलमूर्त्ति की उपासना वैष्णव रीति से आरम्भ से ही होती आई है। यहाँ की शिष्य परम्परा इस प्रकार मिलती है—धर्मदास जी (सं० १८७० वि० तक वर्तमान)—तुलसीदास जी (सं० १८७०–१९०० वि०)—सूरदास जी (सं० १९००–१९४० वि०)—नारायणदास जी (सं० १९४०–१९६८ वि०)—लाड़लीदास जी (सं० १९६८–९० वि०)—गृहस्थ गद्दी। इस थाँभे के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि महंत लाड़लीदास जी के समय से इस स्थान की गणना छोटे थाँभे के रूप में होने लगी थी। इस परम्परा का साहित्य उपलब्ध नहीं है।

(२५) नन्दलाल जी—संत चरणदास के तीन शिष्यों, अर्थात् नंदराम, नन्ददास और नन्दलाल में इस सम्प्रदाय के आचार्यों में भारी भ्रम व्याप्त है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोगजीत जी ने 'लीलासागर' में अपने गुरुभाइयों का परिचय देते समय भी श्री नन्दलाल और नन्दराम जी का वृत्त छोड़ दिया है। जबकि नन्दराम जी को चरणदास जी का सर्वप्रथम शिष्य और वल्लभदास जी को अन्तिम शिष्य बताया जाता है। कतिपय अन्य सूत्रों से पता चलता है कि ये रिवाड़ी के आस-पास के किसी स्थान के ढूसर भार्गव थे और रिवाड़ी के निकटस्थ राल्हियावास (रेहला-वास) को इन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बनाया था।

राल्हियावास का थाँभा—

इनका राल्हियावास का थाँभा बड़े ही सक्रिय थाँभों में से था और यहाँ के महंत प्रायः सभी सामूहिक आयोजनों में सम्मिलित होते रहे। यहाँ श्री रामरूप का भी एक थाँभा था, जो अभी कुछ दिनों पहले तक चल रहा था। बड़े थाँभे की शिष्य परम्परा इस प्रकार है—

नन्दलाल जी[1] (सं० १८४०–१८८९ वि०)—गुरुशरण जी (सं० १८९०–१९१५ वि०)—टीकमदास जी (सं० १९१५–१९५० वि०)—सेवादास जी (सं० १९५०–१९६८ वि०)—मंगलदास जी (सं० १९६८–१९९८ वि०)—गृहस्थ गद्दी।

यहाँ का एक छोटा थाँभा वहरोड़ नामक स्थान में भी था जहाँ महंत मंगल-दास जी प्रायः रहा करते थे। संभव है, यहाँ इस बड़े थाँभे की भू-संपत्ति रही हो। श्री रामरूप के छोटे थाँभे के शिष्य-क्रम से इस गद्दी के शिष्य क्रम का मिलान करने पर पता चलता है कि म० सेवादास जी के परलोकवास के पश्चात् मंगलदास जी के काल में दोनों थाँभे एक में मिल गये। ये गृहस्थ थे अतः आगे बड़े थाँभे को हम गृहस्थ गद्दी के रूप में पाते हैं। रामरूप जी की परम्परा का स्थान तो इसमें मिला ही, साथ ही वहरोड़ स्थित अखैराम जी की परम्परा का थाँभा भी इसी में मिलकर समाप्त हो गया।

(२६) **श्री चरणरज**—संत चरणदास जी के बड़े ही गुरुसेवी एवं आज्ञा-कारी शिष्य श्री चरणरज जाति के गूजर और चिरचिटा (जिला–मुजफ्फरनगर) के गुजरौट क्षेत्र के रोछर गाँव के सम्पन्न गृहस्थ थे। ये साधु-संतों की बड़ी सेवा करते थे और अल्पशिक्षित होने पर भी सत्संग में गहरी रुचि रखते थे। इनकी प्रशंसा में 'लीलासागर' की यह उक्ति अपने आप में सार्थक है—

---

१. 'नासिकेतपुराण–भाषा' नामक एक ग्रंथ किसी नन्दलाल के नाम काशी नागरीप्रचारिणी सभा के संक्षिप्त खोजविवरण में अंकित है। संभव है वह कृति इन्हीं की हो, क्योंकि उसमें श्री शुकमुनि की स्तुति के साथ गुरु रूप में चरणदास जी को भी कवि द्वारा नमन निवेदित किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल स्वभाव साधु मति पूरा। गुरु की टेक मांहि दृढ़ सूरा ।।
साधु अंग जो जैसे चहिये। सो ताके अंग माहीं लहिए ।।[1]

श्री जोगजीत और रामरूप जैसे इनके गुरुभाइयों ने चरणरज की भूरि भूरि प्रशंसा की है। इनका चिरचिटा वाला थाँभा चोरमऊ कस्बे के पास मेरठ जिले में यमुना के तट पर बना हुआ था। इनका मंदिर पुराना महादेव के नाम से प्रसिद्ध था।

यह थाँभा उतना सक्रिय नहीं था, जितना चरणदास जी के एक अन्य शिष्य श्री चरणधूर का चोरमऊ वाला थाँभा था। ये दोनों स्थान परस्पर सहयोगी थे और उनके महंत प्रायः संयुक्त रूप से नियुक्त होते थे। अतः इसकी भी शिष्य-परम्परा के लिए चरणधूर जी के ही थाँभे का वृत्त द्रष्टव्य है। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि जोगजीत जी ने 'लीलासागर' में श्री चरणरज और चरणधूर का एक ही साथ परिचय दिया है ये दोनों महात्मा अलग-अलग स्थानों के निवासी होकर भी जाति और विचारों में समान थे।

(२७) श्री चरणधूर—इनका मूल नाम नाथूराम था और ये जिला मेरठ के छपरौली नामक स्थान के निवासी थे। एक गूजर परिवार में उत्पन्न होकर भी ये स्वभावतः संत सेवी और ज्ञान-पिपासु थे। एक बार उनकी भेंट स्वामी चरणदास के शिष्य गुरुमुखदास जी से हुई और उनसे प्रेरित होकर ये दिल्ली चले आये। चरणदास जी के आश्रम में रहकर उन्होंने उनकी ऐसी सेवा की कि उनसे प्रसन्न होकर गुरु ने उन्हें सहर्ष दीक्षित किया तथा चरणधूर जैसा विनम्रतासूचक नाम प्रदान किया। दीक्षोपरांत ये पुनः छपरौली लौट आये और वहीं आश्रम का निर्माण करके धर्मप्रचार में रत हुए। आगे चलकर उन्होंने चरणखाक और चरण-रज नामक दो अन्य गुरुभाइयों से भी निकट का सम्पर्क बनाया और चोरमऊ में अपना थाँभा स्थापित किया।[2] श्री चरणदास के शिष्य सुखरामदास जी (दोनों) भी यहीं के निवासी थे। श्री चरणदास के शिष्य चरणरज, चरणधूर तथा चरण-खाक का चोरमऊ और चिरचिटा से सम्बन्ध बड़ा ही सानुप्रासिक प्रतीत होता है।

---

१. लीलासागर : पृ० ३१०।

२. चिरचिटा और चोरमऊ के थाँभे प्रायः परस्पर संबद्ध थे। प्राप्त प्रमाणों से ऐसा लगता है कि उनकी व्यवस्था संयुक्त रूप से होती थी। परन्तु सं० १९७६ वि० के रोहतक के मेले में चिरचिटा से रघुबरदास जी स्वतंत्र रूप से गये थे और उनके साथ दो अन्य छोटे थाँभे भी थे। जबकि चोरमऊ से म० तपसीदास भी पधारे थे। इससे यह अनुमान असंगत नहीं है कि बीच-बीच में ये दोनों बड़ी गद्दियाँ एक-दूसरी से असंबद्ध भी हो जाती थीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सिद्ध महात्मा थे। कहते हैं कि एक बार एक योगी बढ़ी हुई यमुना के जल के ऊपर पद्मासन लगाकर बैठ गया और उसने घोषणा की कि जब तक कोई पानी के ऊपर चलकर उसे नहीं लिवा जायेगा तब तक वह किनारे नहीं जायगा। जोगजीत जी का कथन है कि चरणधूर जी खड़ाऊँ पर चढ़कर पानी के ऊपर चलते हुए उस योगी तक पहुँचे और उसे किनारे ले आये। अन्ततः वह उनका शिष्य बन गया। तात्पर्य यह कि चरणधूर जी एक अच्छे महात्मा और सिद्ध साधक थे।

चोरमऊ का थाँभा

उनके चोरमऊ के थाँभे की शिष्य परंपरा निम्नलिखित प्रकार से मिलती है—चरणधूर जी (सं० १९०० वि० तक)—हरदयालदास (सं० १९००–१९३० वि०)—बलदेवदास जी (खाकी बाबा) (सं० १९३०–१९७० वि०)—तपसीदास जी (१९७०–१९९० वि०)—समाप्त।

इनमें से हरदयालदास जी और बलदेवदास खाकी चिरचिटा वाले थाँभे से भी सम्बद्ध थे। बलदेवदास जी कभी-कभी गामड़ी में भी रहा करते थे। वहाँ के महंत हंसरामदास (जुगतानंद की परंपरा के) साथ उनकी मैत्री थी।

(२८) हरिदासजी (प्रथम)—स्वामी चरणदास के हरिदास या हरीदास नामक दो शिष्य ऐसे हैं, जिनकी गणना उनके १०८ प्रमुख शिष्यों में की जाती है। इनमें से जिन्हें हम हरिदास प्रथम की संज्ञा दे रहे हैं, वे बड़े ऊँचे दर्जे के महात्मा थे। इन दोनों हरिदासों का जीवन वृत्त 'लीलासागर' में नहीं है। श्री रूपमाधुरी-शरण के 'नवसंतमाल' में श्री चरणदास के शिष्यों की जो सूची दी गई है, उसमें इनका नाम मात्र आया है; इन लोगों का परिचय इसमें भी नहीं दिया गया है।[1] फिर भी अन्य सूत्रों से आलोच्य हरिदास के संबन्ध में बहुत सी बातें ज्ञात हुई हैं। जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि ये चरणदास जी के ५२ विशिष्ट शिष्यों में से थे और इनके डूडाहेड़ा और बलियाणा नामक स्थानों में स्थित थाँभे बड़े ही सक्रिय थाँभों में से थे। संभवतः ये चरणदास जी के पिछले खेवे के शिष्यों में से थे। इसीलिए जोगजीत जी तथा रामरूप जी ने इनका उल्लेख नहीं किया।

---

१. 'लीलासागर' में दो में से एक हरिदास का लालदास, मुरली मनोहर और मुरली बिहारी के साथ 'चतुर संतन' शीर्षक से उल्लेख आया है। ये हरिदास कौन हैं, इनका संकेत नहीं है। इनके लिए जोगजीत जी कहते हैं—

चरणहिं दास के साधु, चारो भजनानंद भारे।
प्रेमी परम पुनीत, लिये लक्षण अधिकारे॥

—लीलासागर : पृ० ३१८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी हरिदास का निधन दिल्ली से १५-२० मील की दूरी पर दिल्ली-गुड़गांव रोड पर स्थित डूड़ाहेड़ा नामक स्थान में हुआ था। स्वामी जी प्रायः वहीं रहा करते थे। वहां उनकी समाधि एवं छतरी अब भी वर्तमान है। उनका एक स्थान रोहतक तहसील (जिला-रोहतक) के बलियाणा नामक स्थान में भी था जो आगे चलकर रामरूप जी शिष्य परम्परा की व्यवस्था के अन्तर्गत आ गया। यह भी संभव है कि बलियाणा में श्री रामरूप का कोई स्वतंत्र स्थान भी रहा हो। बलियाणा और डूड़ाहेड़ा के महन्त प्रायः एक ही व्यक्ति होते थे और कभी बलियाणा में तो कभी डूड़ाहेड़ा में रहा करते थे।[1] अतः दोनों स्थानों से विभिन्न उत्सवों में उपस्थित महन्तों की नामावली के आधार पर डूड़ाहेड़ा की शिष्य-परंपरा निम्नलिखित रूप से मिलती है—

(१) डूड़ाहेड़ा की परम्परा—हरिदास जी (सं० १९२० वि० तक जीवित)—सुमिरनदास जी (सं० १९२०-१९३० वि०)—हरिदास जी (सं० १९३०-१९५२ वि०)—बलदेवदास जी (सं० १९५२-६० वि०)—गोपालदास जी (सं० १९६०-७० वि०)—बलरामदास जी (सं० १९७०-९० वि०)—अज्ञात।

(२) बलियाणा का थाँभा—हरिदास जी (सं० १९२० वि० तक वर्तमान)—ब्रह्मदास टूटा (रामरूप जी के प्रशिष्य तथा स्वामी सिद्धराम के शिष्य)[2] (सं० १९२०-१९३० वि०)—म० सुमिरनदास (शिष्य हरिदास)—(सं० १९३०-३६ वि०)—किसनदास जी (सं० १९३६-४० वि०)—मंगलदास जी (सं० १९४०-६२ वि०)—मोहनदास जी (सं० १९६२-१९८० वि०)—गृहस्थ गद्दी।

ज्ञातव्य है कि इन दोनों स्थानों के साथ सं० १९०० से १९८० वि० के बीच दो अन्य थाँभे भी थे, जहाँ से महात्माओं के उपस्थित होने का उल्लेख मिलता है। साथ ही बलियाणा और डूड़ाहेड़ा में कौन बड़ा थाँभा है, यह भी अनिश्चित सा ही है। मेलों की बहियों में कभी बलियाणा को बड़ा माना गया है, कभी डूड़ाहेड़ा को।

इतनी महत्वपूर्ण एवं सक्रिय शिष्य-परम्परा का साहित्य भी होना चाहिए, जो शोध्य है। एक 'पद' शीर्षक बानी-संग्रह नागरी प्रचारिणी सभा के संक्षिप्त खोज

---

१. मेलों की बहियों (अभिलेखों) में कभी डूड़ाहेड़ा को बड़ा थाँभा बताया गया है तो कभी बलियाणा को। प्रायः दोनों स्थानों के महंत एक साथ उपस्थित नहीं हुए हैं, फिर भी डूड़ाहेड़ा ही अधिकांशतः बड़े थाँभे के रूप में अंकित है।

२. ब्रह्मदास जी यहाँ गोद लिए गये थे। प्राप्त प्रमाणों के आधार कहा जा सकता है कि यहां इनकी शिष्य परंपरा नहीं चली। ये मध्यप्रदेश के नरवरगढ़ के के निवासी तथा 'मोरध्वज चरित्र' के रचयिता बताये जाते हैं। यह ग्रंथ अप्राप्त है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवरण में उल्लिखित है।[1] इनकी कुछ ही बानियाँ चरणदासी संग्रहालयों में संकलित एवं प्राप्त हैं जिनमें से एक चेतावनीमूलक बानी इस प्रकार है—

नर समझत नाहिं अनारी।
गर्भ बास में उलटो लटक्यो पायो दुख अति भारी।
जो प्रभु अबके बाहर कीन्हों भजन करूँ हर बारी॥
पलक नहिं देउँ बिसारी॥ १॥
जनम होत माया लिपटानो भूल गयो सुधि सारी।
भक्ति भाव में चित्त न राख्यो ऐसी कुमति बिचारी॥
जनम की कर दई ख्वारी॥ २॥
आया था कुछ लाभ करन को गाँठ की पूँजी हारी।
सौदा कर ले हरी नाम का आयो सरण गिरधारी॥
भरोसा जिनका है भारी॥ ३॥
श्री सतगुरु तोहें नित समझावें वै सबके हितकारी।
आप तरे औरन कूँ तारे कह हरिदास पुकारी॥
उमर यों ही मुफ्त गुजारी॥ ४॥

यह बानी इस तथ्य की ओर इंगित करती है कि हरीदास जी अच्छे वागीकार तथा उच्चकोटि के महात्मा थे।

(२९) श्री परमदास (प्रेमदास)—इनका अपर नाम प्रेमदास था। ये मूलतः उत्कल प्रदेश के जगन्नाथ पुरी नगर के निवासी और जाति के ब्राह्मण थे। एक बार चरणदासी महात्माओं का एक दल तीर्थयात्रा के क्रम में वहाँ गया था। उनमें से किसी ने श्री चरणदास की 'भक्तिपदार्थ' नामक कृति उन्हें पढ़ने के निमित्त दी। उससे प्रभावित होकर वे दिल्ली चले आये और उनसे दीक्षा लेकर गुरु-सेवा में ही रत रहे। वे मुख्यतः उदासी साधु थे। गुरु के परलोकवास के उपरान्त वृन्दावन में ही आश्रम बनाकर रहने लगे थे। कहा जाता है कि उनका एक स्थान पुरी में भी था, जहाँ चरणदासी महात्माओं की बड़ी आवभगत होती थी। इनका एक स्थान मुर्शिदाबाद (प० बंगाल) में भी था। तात्पर्य यह कि ये दिल्ली से बंगाल तक छाये हुए थे। उन्होंने इन क्षेत्रों में खूब परिभ्रमण करके गुरु के सिद्धान्तों का प्रचार किया था। इतना होने पर भी इनके थाँभों या स्थानों की शिष्य-परम्परा नहीं मिलती। इससे यह अनुमान होता है कि उन्होंने बंगाल और उड़ीसा को ही अपना प्रमुख कार्यक्षेत्र बनाया था और उनकी

१. नवसन्तमाल : पृ० ७६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम्परा के महात्मा दिल्ली के आस-पास होने वाले मेलों में दूरी के कारण नहीं पहुँच पाते थे।

इनका एक पद श्री जगदीश जी राठौड़ ने संगृहीत किया है, जो इस प्रकार है—

॥ राग मलार ॥

हिंडोरा झूलत जुगुल किशोर।
कोटि काम रति उपमा लाजै सुन्दर सांवर गौर॥
कंचन खंभ सोहै अति भारी नग लागे चहुँ ओर।
रतन जटित पटुली मन मोहै सुरंग सुहाई डोर॥
नन्हीं बूंदन बरसन लागै उमड़ि घुमड़ि घन घोर।
हरित भूमि भई विपिन राज की जमुना लेत हिलोर॥
त्रिविध बयार चलत सुखदाई बिजुरी चमकै जोर।
बोलत शुक पिक मोर पपैया भँवरन को अति सोर॥
झोंटा देय झुलावैं सखियाँ दंपति चित के चोर।
गावत गीत करत कौतूहल आनंद बढ़्यो न थोर॥
यह सुख सहज सदा वृन्दावन परम अलौकिक ठौर।
प्रेमदास को तहाँ बसायो चरणदास सिर मौर॥

(३०) सुखरामदास (प्रथम)—इस नाम के दो गुरुभाइयों के एक साथ छपरौली गाँव में रहने का वृत्त मिलता है। 'नवसन्तमाल' के लेखक ने दोनों को समशील और एक ही स्थान का निवासी बताया है।[1] चरणदासी सम्प्रदाय में जहाँ भी १०८ शिष्यों की सूची प्राप्त होती है, वहाँ इन्हें 'दोऊ सुखराम' कह कर उल्लिखित किया गया है। गुरु के द्वारा इन दोनों का एक ही नाम दिया जाना सम्भ्रम में डालता है। 'नवसन्तमाल' के लेखक का अनुमान है कि चूँकि ये दोनों आत्मानन्दी और सन्तोषी वृत्ति के महात्मा थे, इसी से इनका नाम सुखरामदास था।[1] इस तथ्य की पुष्टि 'लीलासागर' की निम्नलिखित उक्तियों से भी होती है—

गोसा पकरे रहें पियारे। सत सन्तोष हिये में धारे॥

× × ×

ताते यह बड़ ग्यानी जाने। गुजरानी तिन्हों जग पहिचाने॥

× × ×

तातें ये एक ठौर ही बिराजें। दौड़ धूप सेती उन्ह लाजें॥[2]

छपरौली गाँव मेरठ जिले में और दिल्ली से कुछ ही दूरी पर अवस्थित है।

---

१. नवसन्तमाल : पृ० ७७।
२. लीलासागर : पृ० ३१३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये दोनों सुखरामदास गुजरौट में विख्यात साधु के रूप में सम्मानित थे। छपरौली श्री चरणधूर का भी निवास-स्थान था। उनसे ये लोग भी प्रभावित थे।

यद्यपि 'लीलासागर' और 'गुरुभक्तिप्रकाश' में कोई स्पष्ट संकेत नहीं है कि इनमें से किसका कार्यक्षेत्र जयपुर में था परन्तु इन दोनों ग्रंथों में एक सुखानन्द का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने श्री चरणदास को सवाई महाराज ईश्वरीसिंह से मिलवाने में चरणदास जी के अन्य शिष्यों—पूर्णचन्द और नन्दराम के साथ मिलकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि आलोच्य सुखराम (प्रथम) का कार्यक्षेत्र कुछ कालान्तर में छपरौली न होकर जयपुर नगर हो गया था। जयपुर में सुखरामदास का स्वतन्त्र थाँभा कहाँ था, इसका पता नहीं चलता। सम्भव है कि श्री अखैराम के साथ ही इनका भी निवास रहा हो।

(३१) डंडौतीराम जी—यों तो डंडौतीराम जी एक त्यागी और तपस्वी महात्मा थे ही, दूसरे उनका सबसे बड़ा महत्व यह है कि वे शुक संप्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य श्री चरणदास की जन्मभूमि डहरा और ननिहाल बहादुरपुर के प्रथम (संयुक्त रूप में) महन्त थे। इन दोनों स्थानों को इस संप्रदाय के अनुयायी अपना सबसे पवित्र तीर्थ मानते हैं। चरणदास जी (बाल्यकाल का नाम रणजीत) यद्यपि डहरा में अवतरित हुए थे परन्तु उनका बचपन बहादुरपुर में ही बीता था। ये दोनों स्थान उन्हें कितने प्रिय रहे होंगे, यह सहज अनुमान का विषय है। अपने १०८ विशिष्ट शिष्यों में चरणदास जी ने डंडौतीराम को ही इन स्थानों पर आश्रम बना कर रहने का आदेश दिया, यह उनकी पात्रता और योग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है। डंडौतीराम जी ने अपने सदाचरण से अनुकरणीय त्याग और तपस्या का उदाहरण प्रस्तुत किया था। इन्होंने कठोर योग-साधना की थी। दण्डवत करते-करते ही वे डहरा से मथुरा—वृन्दावन और पुनः वहाँ से जयपुर तक गये थे। ३६ वर्षों तक उन्होने अन्न-त्याग करके मात्र दुग्धाहार पर ही कालक्षेप किया था। दण्डवत करते हुए चलकर उन्होंने अनेक तीर्थों की अनेक बार यात्रा करके अपने 'दण्डवती राम' या डंडौतीराम नाम की सार्थकता प्रमाणित की थी। अंततः एक बार फिर डहरा से जयपुर दंडवत करते हुए जाकर गोविंद देव का दर्शन करने के उपरान्त वहीं उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की थी।

उनके आरंभिक जीवन के विषय में कोई विशेष सूचना प्राप्त नहीं होती। उनके गुरुभाई जोगजीत जी ने 'लीलासागर' में उनका जो वृत्त दिया है, उसके अनुसार गंगा-यमुना के द्वाब क्षेत्र में संभवतः मेरठ या मुजफ्फरनगर जिले के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी स्थान के ये मूल निवासी थे।[1]

म्यान डाभ का अर्थ है—द्वाब के मध्य। द्वाब का अर्थ होता है—दो नदियों के बीच का क्षेत्र। 'म्यान' शब्द फारसी का है, जिससे मध्य या बीच का अर्थ ग्रहण किया जाता है। अतः यहाँ जोगजीत जी के कथन का तात्पर्य यह है कि गंगा-जमुना के मध्य क्षेत्र या द्वाब क्षेत्र में वे बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति थे। चूंकि दिल्ली के आस-पास के लोग मेरठ, गाजियाबाद और मुजफ्फरनगर जिलों को 'म्यान डाब' ही कहते हैं, अतः यही अर्थग्रहण करना उचित होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि डंडौतीराम जी की जन्म-भूमि का गाँव अज्ञात ही है।

जोगजीत जी के कथनानुसार ये बड़े ही संपन्न गृहस्थ थे। घर में ऋण के लेन-देन का या साहूकारी का धंधा था। हजारों रुपयों का व्यापार था। एक बार सहसा उनके मन में वैराग्य का भाव उत्पन्न हुआ और इन्होंने लेन-देन सहित घर-गृहस्थी के अन्य कामों का भी परित्याग कर दिया। अपने ऊपर जो ऋण देय था उसे तो उन्होंने चुका दिया परन्तु जिनसे ऋण की वसूली करनी थी उनके कागज-पत्र फाड़कर उन्होंने फेंक दिया। तदुपरांत घर-द्वार छोड़कर वे चरणदास जी के आश्रम में उनके शरणागत हुए और उनके शिष्य बन गये।

कुछ दिनों तक उक्त आश्रम में (दिल्ली में) रहने के उपरांत वे गुरु से तीर्थ-यात्रा का आदेश लेकर वहाँ से भी निकल पड़े। साष्टांग दंडवत विधि से चलकर उन्होंने अनेक तीर्थों की यात्रा की। पड़ाव के समय जनता के बीच वे ज्ञानोपदेश भी दिया करते थे। अनेक लोग उनके शिष्य बने और उनके प्रति श्रद्धा रखने वालों की संख्या तो बहुत बड़ी हो ही गई थी। गुरु के आदेश से गुरु की जन्मभूमि डहरा में रहकर ये कठोर तपश्चर्या में लीन हो गये। इन्होंने वहाँ एक गुफा में बैठकर योग और समाधि को सिद्ध किया। सं० १८७० वि० के आस-पास जयपुर स्थित अखैराम जी के आश्रम में उनका देहत्याग हुआ। उनकी छतरी और समाधि डहरा में बनी हुई है।

बड़ी खोजबीन के बाद भी इनका मात्र एक ही पद प्राप्त हो पाया। संभव है कि किसी ऐसे संग्रहालय में डंडौतीराम जी की बानियाँ सुरक्षित हों जहाँ हम लोगों की पहुँच नहीं हो पाई है। आशा है इस ग्रंथ के प्रकाशनोपरान्त उनकी बानियों के संग्रहकर्ताओं को संभवतः प्रेरणा मिलेगी और वे उन बानियों को जानकारी में ला सकेंगे। उनका प्राप्त पद बधाई से संबंधित है, जो इस प्रकार है—

---

१. चरणदास के शिष्य सुखधामे। म्यान डाभ में भये सरनामे॥
—लीलासागर : पृ० २८८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्यामचरणदास जी की बधाई ॥ ॥ राग मल्हार ॥

बधाई बाजत डहरे धाम ।
मुरलीधर की रानी कुंजो जायो सुत घनश्याम ॥
भीर भई अति भवन मँझारी कतहुं न पावै ठांम ।
नाचत गावत करत कौतूहल हिलमिल के पुर बाम ॥
ध्वजा पताका तोरण रोपे कदली दल अभिराम ।
प्रागदास[1] धन अमित लुटायो किय सब पूरण काम ॥
ज्ञाता विप्र लगन सब सोधे घड़ी मुहूरत जाम ।
अद्भुत हैं ग्रह जोग सब याको होइ जगत सरनाम ॥
संत रूप हरि आप पधारे धरि रणजीता नाम ।
दंडौत चरणदास चरणन में करत डंडौती राम ॥[2]

मात्र इस एक पद के आधार इनके काव्य कौशल पर निर्णायक रूप से कुछ भी कहना उचित न होगा लेकिन इससे इतना संकेत अवश्य मिलता है कि ये अच्छे कवि थे ।

ये अपने जीवनकाल में डहरा और बहादुर–दोनों स्थानों पर रहा करते थे । लेकिन इनका थाँभा बहादुरपुर में ही था । आलोच्य संप्रदाय में ऐसी मान्यता प्रचलित है कि स्वयं चरणदास जी ने ही डहरा में कोई थाँभा स्थापित करने से अपने शिष्यों को मना कर दिया था । इसलिए बहादुरपुर के महंतगण ही डहरा–बहादुरपुर के संयुक्त महंत होते थे । अधिकांशतः वे बहादुरपुर में ही रहते थे पर कभी-कभी डेहरा में भी उनका निवास होता था । बीच-बीच में ऐसी भी स्थिति आई है जब कि विभिन्न सामूहिक आयोजनों में डहरा और बहादुरपुर–दोनों स्थानों से भिन्न-भिन्न महंत सम्मिलित हुए हैं ।

बहादुरपुर का थाँभा—

बहादुरपुर का यह स्थान अलवर जिले (पुराना अलवर राज्य) के मुख्य नगर अलवर से कुछ ही दूरी पर स्थित है । डहरा भी यहाँ से पास में ही है । इस गद्दी का चरणदासी संप्रदाय में क्या स्थान था, यह इसी से समझा जा सकता है कि मेलों की बहियों में दिल्ली की आचार्य गद्दियों के उल्लेख के तत्काल बाद इसी का उल्लेख होता था । इसकी मान्यता बड़ी गद्दी में भी वरिष्ठ गद्दी की रही है और अब भी है । यह मुख्यतः गोसाईं गद्दी (विरक्त गद्दी) है, जिस पर प्रायः सभी जातियों के महंत हुए हैं । इसकी शिष्य-परंपरा इस प्रकार है—

---

१. प्रागदास जी चरणदास जी के पितामह थे ।
२. श्री जगदीश जी राठौड़ के बानी संग्रह से साभार ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी (सं० १८३९ वि० तक)—डंडौतीराम जी (सं० १८३०–१८७० अनु०)—हरनारायणदास जी[1] (सं० १८७०–१९०० वि०)—गोवर्द्धनदास जी (सं० १९००–१९२० वि०)—बलदेवसरन जी (सं० १९२०–१९४७ वि०)—बनवारीदास जी (सं० १९४७–१९६८ वि०)—मथुरादास जी (सं० १९६८–१९७७ वि०)—गौरीदास जी (सं० १९७७–१९९७ वि० अनु०)—हीरादास जी (सं० १९९७–२०२० वि० अनु०)—पूर्णदास जी (सं० २०२० वि०, वर्तमान)।[2]

ज्ञातव्य है कि सं० १९३० वि० में इस प्रधान थाँभे के साथ एक छोटा थाँभा और था जो अनुमानतः डहरा का रहा होगा। परन्तु सं० १९५२ वि० से इसके साथ कभी दो तो कभी तीन थाँभे संबद्ध रहे। महंत बलदेवसरन और म० बनवारीदास बड़े प्रतापी महंत हुए। इन लोगों के समय में डहरा और बहादुरपुर–दोनों स्थानों का उल्लेखनीय विकास हुआ और आस-पास के भार्गवों में नूतन कर्त्तव्यबोध जागृत हुआ। फलतः विघटन की ओर अग्रसर चरणदासी गद्दियाँ पर्याप्त सचेत हुईं। सं० १९६८ वि०, चैत्र सुदी १ को म० बनवारीदास जी की सत्रहवीं संपन्न हुई। वे लगभग ३० वर्ष तक महंत पद पर रहे। ५५ वर्ष की आयु में उनका परलोकवास हुआ। बलदेवसरन जी के एक अन्य शिष्य मंगलदास जी प्रायः डहरा में ही रहते थे। उनके शिष्य रामजीदास वहाँ के स्वतंत्र महंत हो गये थे परन्तु बाद में बहादुरपुर के ही महंत यहाँ का भी काम-काज देखने लगे।

महंत बनवारीदास आचार-विचार से पूर्ण सात्विक महात्मा थे। ये बड़े ही सेवाभावी, प्रसन्नचित्त और समद्रष्टा थे।

डहरा की शिष्य-परम्परा—

यद्यपि श्री डंडौतीराम का प्रधान थाँभा बहादुरपुर में ही था, तथापि चरणदास जी की जन्मभूमि होने के कारण डहरा का भी महत्व संप्रदाय की दृष्टि से कम न था। यहाँ का स्थान महंत बलदेवशरण के प्रयत्न से अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित हुआ। इधर १० वर्षों के बीच अखिल भारतीय भार्गव सभा और चरणदासी महात्माओं ने इसे और भी अधिक समृद्ध बनाया है। यहाँ प्रत्येक वर्ष भाद्रपद तृतीया को चरणदास जी का जन्म महोत्सव बड़ी ही धूम-धाम से मनाया जाता है। इस पवित्र स्थान की उन्नति में अलवर के नरेशों का भी बहुत बड़ा योगदान है। डहरा उत्सव समिति-अलवर, बहादुरपुर के महंत पूर्णदास, जयपुर आदि स्थानों के भार्गव महानुभाव एवं चरणदासी विरक्त तथा गृहस्थ जन बड़े उत्साह के साथ इस स्थान को एक तीर्थ का रूप देने में लगे हुए हैं।

---

१. म० हरनारायणदास जी के दो प्रमुख शिष्यों—गोवर्द्धनदास जी और श्री बलदेवदास या बलदेवसरन में से द्वितीय यहाँ के महंत बने।

२. पूर्णदास जी हीरादास जी के शिष्य न होकर उ. के गुरुभाई हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि डंडौतीराम जी का मूल थाँभा बहादुरपुर में ही था परन्तु उनके शिष्य हरनारायणदास जी और दिल्ली के आचार्य महंत श्री रामरूप आदि के प्रयत्न से एक स्थान डहरा में भी बन गया था।[1] कहते हैं कि चरणदास जी ने डहरा में थाँभा स्थापित करने का आदेश नहीं दिया था, इसीलिए यहाँ के थाँभे को भी बहादुरपुर के थाँभे के साथ ही संयुक्त कर दिया गया था।

डहरा के सर्वप्रथम ज्ञात महंत बलदेवशरण सं० १९१९ वि० में यहाँ वर्तमान थे और उन्होंने ही यहाँ का थाँभा व्यवस्थित किया। वे रामरूप जी के रिवाड़ी और अलवर के आस-पास के अनेक थाँभों के भी नियामक थे। उनके पश्चात् यहाँ की गद्दी पर उनके शिष्य मंगलदास जी आये जो सं० १९२५–५० वि० के बीच वर्तमान थे। ये और बलदेवसरन जी विभिन्न स्थानों से सं० १९४२ वि० तक आते रहे। प्राप्त तथ्यों के आधार पर यहाँ की शिष्य परंपरा इस प्रकार की मिलती है जो रामजीदास तक तो अलग-अलग चलती है परन्तु इसके बाद यह थाँभा बहादुरपुर के अन्तर्गत पूर्णतः आ गया। म० बलदेवसरन जी (सं० १९१०–१९४५ वि०)—मंगलदास जी (सं० १९४५–५० वि०)—रामजीदास (सं० १९५०–६७ वि०)[2] म० रामजीदास के पश्चात् बहादुरपुर के महंत गौरीदास जी के शिष्य प्रेमदास जी को यहाँ के महंत के रूप मे मान्यता प्राप्त हुई। तदनन्तर महंत सेवादास जी यहाँ के महंत हुए। थांभे की स्वतंत्र सत्ता अब भी बनी हुई है।[3]

डंडौतीराम जी के एक अन्य शिष्य श्री छित्रमलदास ने शाहपुरा में अपना थाँभा स्थापित किया था। चूँकि इस थाँभे की मान्यता बड़ी गद्दी की है और ऐसा थाँभा केवल चरणदास जी के शिष्यों का ही हो सकता है अतः यह मानना

---

१. यहाँ चरण गंगा नामक एक बरसाती नदी है, जिसके तट पर स्थित एक वट-वृक्ष की जड़ के पास शुकदेव मुनि द्वारा बालक रणजीत (आगे चलकर चरणदास) को दर्शन देने का वृत्त प्रसिद्ध है। वह वटवृक्ष तो अब नहीं है लेकिन उसके स्थान पर जो वर्तमान वटवृक्ष है, उसे उसी प्राचीन वृक्ष की परंपरा में माना जाता है।

२. रामजीदास के एक गुरुभाई बाबा नत्थूदास सं० १९५९ वि में ७० वर्षों तक मादीपुर के महंत पद पर रहने के बाद ९४ वर्ष की अवस्था में परमधाम पधारे। उन्होंने जीवित समाधि ली थी। कहा जाता है कि वे सोना बनाने की कला के विशेषज्ञ थे।

३. नई बस्ती—रिवाड़ी के वर्तमान चरणदासी महंत श्री हरिदास जी की सूचना के अनुसार डहरा की स्वतंत्र परंपरा अभी भी चल रही है। यहाँ के महंत प्रेमदास जी कुछ दिनों पूर्व स्वर्गवासी हुए हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुचित न होगा कि छित्रमल जी (छीतरमल जी) भले ही आरम्भ में डंडौती-राम जी के शिष्य रहे हों लेकिन बाद में चरणदास जी के शिष्य हो गये होंगे। अतः शाहपुरा (अलवर) के थाँभे की शिष्य परंपरा यहाँ उल्लेखनीय है—

डंडौतीराम जी—छित्रमलदास—सांवलदास—सेवादास--बिहारीदास—जगन्नाथदास (वर्तमान)।

(३२) श्री निर्मलदास—इनके गुरुभाई श्री जोगजीत ने इनका बहुत ही संक्षिप्त परिचय दिया है। इनके सम्बन्ध में केवल इतना ही उन्होंने बताया है कि श्याम-सरन बड़भागी की प्रेरणा से जब से वे चरणदास जी से दीक्षित हुए, उन्हें केवल गुरु की सेवा का ही कार्य सौंपा गया था। इस कर्त्तव्य का वे पूर्ण निष्ठा के साथ पालन करते रहे। एक बार किसी आवश्यक कार्य से गुरु ने उन्हें पुराने बाजार दिल्ली की ओर भेजा, जहाँ किसी कटखने घोड़े ने उन पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने आर्त्तभाव से गुरु का स्मरण किया और श्री चरणदास ने प्रकट होकर गुती से मारकर उसे भगा दिया।

एक बार उनकी और श्री श्यामसरन बड़भागी की गुरु-निष्ठा की परीक्षा के लिए बिना जूता पहने ही उन्हें प्रयाग का जल लाने का आदेश गुरु ने दिया, जिसे इन दोनों शिष्यों ने पूरा कर दिखाया। इससे गुरु के प्रति इनकी प्रगाढ़ श्रद्धा-भावना का परिचय मिलता है। परन्तु इससे अधिक इनका व्यक्तिगत परिचय नहीं मिलता। यद्यपि इनके किसी गुरुभाई ने इस बात का संकेत नहीं किया है कि ५४ थाँभों में से एक गिना जाने वाला इनका स्थान कहाँ था परन्तु मेलों और दिल्ली की प्रधान गद्दियों के अभिलेखों के परीक्षण के पश्चात् यह ज्ञात हो सका है कि इनका थाँभा कानपुर के चौक बाजार में स्थित था। यहाँ के मंदिर का नाम 'मन्दिर श्री विहारी जी' है। यह एक विशाल एवं भव्य मन्दिर है।

एक समय ऐसा भी था, जब कानपुर में कई थाँभे थे, इसलिए मेलों की बहियों में कानपुर के महन्तों का ठीक-ठीक पता नहीं दिया जा सका है और इसी कारण प्रत्येक थाँभे की शिष्य-परंपरा का अनुमान लगाना कठिन हो गया है। दूसरी बात यह है कि कानपुर क्षेत्र के महंतगण प्रायः किसी भी मेले में उपस्थित नहीं हुए हैं, इसलिए उनके विषय में यह जानना भी आसान नहीं है कि उनका थाँभा छोटा था या बड़ा। फिर भी विभिन्न अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर यहाँ की शिष्य परंपरा इस प्रकार हो सकती है—

कानपुर (चौक बाजार) का बड़ा थाँभा—निर्मलदास जी (सं० १८३०–१८५० वि०)—भगवानदास जी (सं० १८५०–६१ वि०)—जगन्नाथदास जी (सं० १८६१–१८७२ वि०)—गोमतीदास जी (सं० १८७२–१८९० वि०)। इसके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात् विठूर के थांभे के अन्तर्गत यहाँ की व्यवस्था लगभग १०० वर्षों तक चलती रही। रजधान थांभे के महंत माधोदास जी गृहस्थ थे। ये सं० २०१५ वि० तक वर्तमान थे। रामजीदास शास्त्री गृहस्थ, वर्तमान महन्त हैं। ये एल० एल० बी० और आचार्य की शिक्षा ग्रहण किये हुए तथा योग्य व्यक्ति हैं।

श्री निर्मलदास अच्छे वाणीकार थे। इनकी रागबद्ध बानियों में तत्तद् रागों, लयों और तालों की शास्त्रीय विधि का पूरा-पूरा पालन हुआ है। इससे इनकी संगीत-विशेषज्ञता प्रमाणित होती है। इनके पदों का बंध रीतिमुक्त कवि श्री घनानंद के टक्कर का है। उदाहरण रूप में इनका निम्न पद द्रष्टव्य है—

॥ राग भैरव ॥

आंखिन में दुराय प्यारो काहू देखन न दीजिये।
हिये लगाइ सुख पाइ सब गुणनिधि पूर्ण जोइ जोइ मन इच्छा होय
सोइ सोइ क्यों न कीजिए ॥
मधुर मधुर बचन कहत श्रवण सुख दीजिए
दास निर्मल प्रभु नंद नंदन निरखि जीजिए ॥[1]

हरिभजन की महिमा का गान करते हुए श्री निर्मलदास ने निम्न पद में निर्गुण बानी रचयिताओं की शैली अपनाई है। इसकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

॥ राग केदार ॥

जो चित लाय हरी जप करै।
रहै अमर होय मरै न कबहूँ काल वासूँ डरै ॥
प्रह्लाद की सी पैज बांधै सांस जिय मैं धरै।
लाख बैरी तृण बराबर कौन या सूँ अरै ॥
जाकी ओर श्री नंदनंदन तासूं कहा कोई करै।
दास निर्मल निश्चय जानो भजन से सब सरै ॥[2]

(३३) श्री श्यामशरण बड़भागी—ये दिल्ली के नई बस्ती नामक मुहल्ले के एक सम्पन्न ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे और अरबी, फारसी एवं ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे। प्रासवृत्त के अनुसार गजल, रेखता और रुबाई की रचना में ये सिद्धहस्त थे और आशु कवि थे। दीक्षा लेकर विरक्त होने के पूर्व बड़भागी जी गृहस्थ थे। इन्होंने शब्द और साखियों की भी रचना बड़ी संख्या में की थी। इनके इन्द्रजाल एवं तांत्रिक ज्ञान की दिल्ली में बड़ी धाक थी और इस विद्या से वे खूब

---

१. स्व० रूपमाधुरीशरण (वृन्दावन) के बानीसंग्रह के आधार पर।
२. वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैसा पैदा करते थे। ये शरीर से बलिष्ठ, सदाचारी एवं अनन्य गुरु सेवी थे। तर्क में इनसे बड़े-बड़े पंडित और मौलवी परास्त हो जाते थे।[1]

इस प्रकार इनकी बहुज्ञता पर जोगजीत जी ने विस्तार से प्रकाश डाला है। उनकी इतनी प्रशंसापरक वर्णन पद्धति केवल श्यामसरन जी के लिए ही दिखाई देती है। इससे भी श्यामसरन जी का प्रभाव सिद्ध होता है। इनकी भौतिक और साधनामूलक समृद्ध उपलब्धियों के कारण ही इन्हें संभवतः 'बड़भागी' कहा जाता था। इनका प्रभाव इसी से सिद्ध है कि दिल्ली से कानपुर जैसे सुदूर स्थित स्थान में आकर भी इन्होने ५० गाँवों की जागीर अपने मन्दिर के लिए प्राप्त की थी। दीक्षा के पूर्व इनके अहंकारी और अक्खड़ स्वभाव में हुए परिवर्तन की परीक्षा लेने के लिए इनके गुरु चरणदास ने निर्मलदास जी और जैदेवदास जी को साथ लेकर पैदल नंगे पाँव प्रयाग जाकर त्रिवेणी का जल लाने का आदेश दिया था, जिसे इन्होंने पूरा कर दिखाया। जोगजीत जी इसके विषय में बताते हैं—

नगन पगन जब ही उठि धाये। जैदेव निर्मल संग लिवाये॥
वैसेहि गंगा जल भरि लाये। नहाय जु भक्तराज हुलसाये॥[2]

ये निश्चय ही चरणदास जी के आरंभिक एवं वरिष्ठ शिष्यों में थे। इस अनुमान का आधार यह है कि बड़भागी जी के एक शिष्य श्री नित्यानंद जी ने सं० १८०८ वि० में 'संत विलास' नामक एक ऐसे ग्रंथ की रचना की थी, जो नाभादास जी के 'भक्तमाल' की पद्धति पर रचित चरणदासी भक्तमाल है। इस ग्रंथ की रचना रीवाँनरेश श्री विश्वनाथ सिंह जू देव की प्रेरणा से हुई थी। संक्षेप में यदि कहा जाय तो सं० १८०८ वि० तक चरणदास जी के शिष्य निर्माण का प्रारंभिक काल था। तभी श्यामसरन जी के शिष्य इस ख्याति तक पहुँच चुके थे कि उन्होंने ऐसी रचना प्रस्तुत कर दी। इतना ही नहीं, बल्कि तब तक नित्यानंद

---

१. महापुरुष इक दिल्ली मांही। अति गुणवन्ते सब अङ्ग मांही॥
हिन्दी तुर्की इल्म सु जेते। पढ़े पढ़ाये वे सब तेते॥
गजल रेख्ता अरु रोबाई। शब्द जु साखी बहुत बनाई॥
कागज में लिख जंत्र धरावै। बन ता मोहर रुपैया आवै॥
कोरा कागज ढांप धरे हैं। मतलब चहिये सो लिख अय हैं॥
इष्ट आदि अरु नाना खेला। बहु विधि जाने साधु सुहेला॥
औरो तर्क अनेक ही, करैं सो देय मिटाय।
पंडित काजी मौलवी, चरचा करत थकाय॥
—लीलासागर : पृ० २८४।

२. वही : पृ० २८५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी भी महंत हो चुके थे। अपने 'संत विलास' के आरंभ में इन्होंने गुरु-स्मरण करते हुए लिखा है—

व्यासपुत्र शुकदेव जी, परमहंस हरि रूप।
प्रगटे जिन पद ध्यान तें, मनहर भक्ति अनूप॥
चरणदास दादा गुरु, हरि औतार सुजान।
सुमिरत जिनके विमल जस, मिटे मोह अज्ञान॥
चरणदास पूरण कला, गुरुदेवन गुरुदेव।
स्यामसरन सतगुरु कृपा, पायो भेव अभेव॥
स्यामचरन गुरुचरन को, कर प्रणाम सिर नाय।
हरि हरिजन जस कहत कछु, नित्यानन्द सुख पाय॥
स्यामसरन तुम कृपा तैं, छूटे भव भय फन्द।
आनन्द परमानन्द भयो, नित ही नित्यानन्द॥

भ्रमनिवारण (पांडुलिपि) की आरम्भिक पंक्तियाँ।

गंगा के तट पर बिठूर में इनका आश्रम था। वहाँ इनका एक विशाल लोहे का डंडा अब भी रखा हुआ है। इनका वजन ५–७ सेर है तथा लम्बाई साढ़े तीन हाथ है, जिसकी पूजा उनके शिष्य उनके परलोकवासोपरान्त करते रहे। कहते हैं कि इस समय उस डंडे पर १० सेर चन्दन का लेप चढ़ गया है। उस पर यह आदेश अङ्कित है—

राधाकृष्ण सुखदेवशरण श्री गुरुचरणदास मङ्गलकरन।
सुमिरों बड़भागी श्यामशरण, हजार हाथ हुए बिना।
हाथ न राषे कोई, गुरु दोहाई॥ सं० १८१९ वि०॥

बिठूर ब्रह्मावर्त का थाँभा—यह स्थान कानपुर जिले के बिठूर स्टेशन से कुछ दूरी पर इस समय खंडहर की स्थिति में वर्तमान है। यहाँ चरणदास जी के शिष्य भजनानन्द जी की गुफा भी है, जिसमें रहकर वे ध्यान किया करते थे। इस बड़े थाँभे के अन्तर्गत स्वराज्यपुर और तिन्दुआरी की छोटी गद्दियाँ भी थीं। यहाँ के अन्तिम ज्ञात महन्त प्रहलाददास जी कानपुर के लोहाई बाजार में रहते थे और एक पुजारी द्वारा उक्त स्थान पर पूजा-पाठ की व्यवस्था कराते थे। यहाँ की शिष्य परम्परा इस प्रकार मिलती है—म० श्यामशरण बड़भागी (सं० १८७० वि० तक वर्तमान)—म० गोविंदशरण (सं० १८७०–१९१० वि०)—म० गिरधरशरण (सं० १९१०—१९३० वि०)—म० मोहनशरण (सं० १९३१—१९३५ वि०) म० रामशरण (सं० १९३५–१९५५ वि०)[1]—लालताशरण जी (सं० २०१५ वि०

१. सं० १९४२ वि० तक बिठूर एवं कानपुर के सम्बद्ध स्थानों पर म० गोविंद-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक वर्तमान)। इसके पश्चात् महन्त अयोध्यादास जी के समय में यह गद्दी गृहस्थ गद्दी हो गई। सम्भवतः महन्त रामशरणदास जी तक ही यहाँ की शिष्य परम्परा व्यवस्थित रह पाई। उस समय तक स्वराज्यपुर—विन्दकी का छोटा थाँभा भी इससे सम्बद्ध हो गया था।

शिवराजपुर (स्वराज्यपुर का छोटा थाँभा)—

यह स्थान विन्दकी रोड से ४-५ मील की दूरी पर फतेहपुर जिले में स्थित है। यह थाँभा सम्भवतः बड़भागी जी के एक गृहस्थ शिष्य द्वारा स्थापित किया गया था, जिसकी शिष्य-परम्परा के सभी महंत गृहस्थ ही होते थे। यह एक सम्पन्न थाँभा था, जिसके साथ ५० गाँवों की जमींदारी संलग्न थी। यहाँ की पूजा अर्चा वैष्णव रीति से होती थी। यहाँ की महन्त परम्परा इस प्रकार मिलती है—लाला बेलीलाल जी—वीरवर जी—पंचमलाल जी—बलरामदास जी—त्रिलोकचंद जी—ठाकुर प्रसाद जी—किशोरीशरण जी—अवध बिहारी शरण जी (सं० १९४०-१९७० वि०)—कृष्ण बिहारी शरण जी (सं० १९७०-वि० वर्तमान)। यहाँ कोई गोसाईं गद्दी भी रही होगी। सं० १९३९ वि० में यहाँ राधाकृष्ण जी महंत थे। सं० १९५२ वि० में श्री रामशरणदास माचल के मेले में यहाँ से गये थे। ये तब बिठूर वाले बड़े थाँभे के भी महन्त थे।

तेरही का थाँभा (छोटा थाँभा)—

इसका एक नाम तेरही तिन्दुआरी भी मिलता है। यह बाँदा जिले में स्थित है। यह श्यामशरण जी के बिठूर थाँभे से सम्बद्ध है। श्यामशरण जी के प्रशिष्य (म० गोविंदशरण जी के शिष्य) रसिकशरण जी ने इस स्थान का निर्माण किया था। यहाँ की शिष्य परम्परा अभी चल रही है, जो निम्नलिखित है—श्यामसरन बड़भागी—म० रसिकशरण जी (सं० १९००-१९१५ वि०)[1]—म० गुरुशरण जी (सं० १९१५—१९२० वि०)—मोहनशरण जी (सं० १९२०-१९३० वि०)—रामशरण जी (सं० १९३०-१९३९ वि०)—यहाँ के अंतिम महंत वंशीशरण जी के सं० २०२० वि० तक वर्तमान होने का उल्लेख मिलता है।

बड़भागी जी के साहित्यकार शिष्य और उनका साहित्य—

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, श्यामशरण बड़भागी जी आशु कवि थे।

शरण जी (गोविन्द निवास भी नाम मिलता है) म० गुरुशरणदास जी (गिरधरशरण जी) म० मोहनशरण जी तथा रामशरण जी क्रमशः महंत पद पर आ चुके थे। इस निष्कर्ष का आधार यह है कि चरणदासियों के वृन्दावन स्थित पंडा श्री गोपालजी पंडा की बही में उक्त महात्माओं के हस्ताक्षर अंकित हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोगजीत जी की सूचना के अनुसार उन्होंने गजल, रेखता, रुबाई, साखी और शब्द की रचना प्रचुर मात्रा में की थी।[1] इतना ही नहीं बल्कि अन्य लोग भी उनसे अवसरोचित एवं वांछित बानियां रचवा लेते थे। खेद है कि ऐसे योग्य महात्मा एवं उच्चकोटि के कवि की बानियां अनुपलब्ध हैं। चरनदासी कवियों की बानियों के संग्रहकर्त्ता के रूप में जयपुर के स्व० सरसमाधुरीशरण जी, वृन्दावन के विरक्त तथा स्वर्गीय महात्मा रूपमाधुरीशरण जी तथा भ्रमणशील एवं खोजी प्रकृति वाले बीकानेर निवासी श्री जगदीश जी राठौड़ भी बड़भागी जी के पदों का पता न पा सके। इन लोगों के प्रयास से बड़भागी जी के शिष्यों—रसिकशरण जी (रसिक सखी), गुलाल सखी जी, गोविंदशरण जी एवं नित्यानंदशरण जी के साहित्य का आंशिक रूप से पता चल पाया है। अतः यहाँ इन सभी के प्रयत्नों के फलस्वरूप प्राप्त सूचना की संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है—

१. गोविन्दशरण जी—ये श्री श्यामशरण बड़भागी के योग्य शिष्यों में से थे तथा बिठूर के उनके बड़े थांभे के उत्तराधिकारी भी थे। बड़भागी जी की इहलीला समाप्ति के पश्चात् ये ही बिठूर की गद्दी के महन्त बने थे। अपने गुरु को प्राप्त ५० गांवों की जमींदारी और कई मंदिरों की प्रचुर संपदा के संरक्षक के रूप में इन्होंने प्रबन्धविषयक अपनी पटुता को तो सिद्ध किया ही था साथ ही एक कवि के रूप में भी ये प्रख्यात थे। इनकी रुचि रसिकोपासना की ओर अधिक थी। केवल इनकी ही नहीं बल्कि इनके सभी गुरुभाइयों तथा शिष्य परम्परा में हुए भक्त कवियों का रुझान इसी दिशा में था। इनके कुछ ऐसे पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं, जो इनकी साधनापद्धति एवं काव्य-पटुता का निदर्शन कराने में क्षम हैं। इनमें से प्रथम सुरतांत वर्णन से सम्बद्ध है—

॥ भैरवी राग ॥

आज दोउ निकसे कुंज तें भोर।
आलस भरे नींद रस पागे निसि जागे इक ठौर॥
आगे श्री वृषभानुनंदिनी पीछे नन्दकिशोर।
झूमत चलत झुकत ज्यों मातल लटके पट के छोर॥
दे चुटकी जमुहात परसपर सुन्दर स्यामल गौर।
तजि मारग चलिजात अनत ही दंपति अति चितचोर॥
जन गोंविन्द बलिहारि चरण की आनंददायक मोर।

---

१. गजल रेखता और रुबाई। शब्द जु साखी बहुत बनाई॥
लीलासागर : पृ० १८४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ होरी का पद ॥ ॥ राग काफी ॥

होरी खेलन आज चलो री। (टेर)
कुंजन पुंज अलिन के ठाढ़े उड़त अबीर भलो री ॥
चातुर चारु सकल छबि आगर श्री वृषभान किशोरी।
करे चितवन में चोरी ॥
चंचल नैन अंजन अनियारे खंजन की सी जोरी।
छायो लाल गुलाल गगन में खान पान बिसरो री ॥
नहिं कुछ सूझ परो री।
और सखा सब पकरि लियो हैं हलधर भाज बचोरी।
जमुना पैर पार भयो सजनी सब अंग रंग भरो री ॥
सखि अस फाग मच्यो री।
नंद नंदन को घेरि लियो है मान साँच तूं गोरी।
गलिन गलिन बृज बनिता ठढ़ीं अनगिन भईं इक ठौरी ॥
जतन नहिं निकसन को री।
जनगोविंद सखि स्याम सरन है फगुवा ले भर झोरी।
ऐसो अवसर फिर नहिं पैहौ अब जनि बिलंब करो री ॥
करें बिनती कर जोरी।

इसी प्रकार इनके बधाई, विनय, अष्टयाम सेवा के समय विविध रागों में गाये जाने वाले पद, विविध पर्वों के रसिक भावापन्न गीत आदि २०–२२ की संख्या में प्राप्त हैं।

२. रसिकशरण जी—ये बांदा जिले के तेरही (तेरही-तिंदुआरी) नामक स्थान के प्रथम महन्त एवं श्यामशरण बड़भागी जी के योग्य शिष्य थे। तेरही में बने चरणदासी मंदिर (राधा कृष्ण मंदिर) के निर्माता यही थे। इस भव्य मंदिर की मूर्तियाँ अष्टधातु और पीतल की बनी हुई हैं। इनके अब तक ज्ञात १५–२० पदों के आधार पर कहा जा सकता है कि ये अच्छे कवि थे। इनकी अन्य रचनाएँ जब तक प्राप्त नहीं हो जातीं तब तक इनके काव्य कौशल के सम्बन्ध में इदमित्थम् कह पाना सम्भव नहीं है। इनकी 'रसिक सखी' उपाधि इनके साधनागत भाव की परिचायिका है।

इनके 'राग काफी' में रचित होरी के निम्न पद में अवधी भाषा की भी झलक वर्तमान है—

लाल गुलाल मोरी अँखियन खरकत।
नंद नंदन भरि झोरी झोंकी, पीर उठत निस दिन जल ढरकत ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब होरी खेलन नहिं जैहौं रसिया के उर छतियां धरकत।
जब देखै मोंहीं सो अँटकै बांह पकर मो पर रंग छिरकत॥
रसिक सखी वा स्याम सुंदर को देखत मोरा अंग अंग फरकत॥

पावस ऋतु में वर्षा की झड़ी के बीच राधा-कृष्ण युगल की चुहल का बड़ा ही सजीव वर्णन कवि द्वारा निम्न पद में किया गया है—

॥ राग मलार ॥

दोउ जन भीजत हैं बन मांहीं।
उमड़ी घटा घुमड़ि चहुँ दिसि तें देखियत कहूँ न समाई॥
कर पर कर धरि धावत कुंजन एक तें एक अगाई।
रसिक सखी भये ओट कदम की भीजत पुहुमि सिहाई॥

इसी क्रम में प्रिया जू की बधाई का यह पद भी द्रष्टव्य है—

॥ सोरठ ॥

प्रगटी श्री ब्रजभानु कुमारि।
रावल मांहि अवनि अवतरी रसिकन प्राण अधार॥
सुन्दरता की सींव किशोरी महिमा अपरम्पार।
रसिक सखी जाके श्याम सरन हैं हैं सांची सरदार॥

श्री रसिकशरण का 'राग काफी' में रचित निम्न होरी का पद अपने ढंग का बेजोड़ पद है—

होरी खेलो लला घर जाइके।
मेरे आंगन में तुम निस दिन धूम मचावत आइके॥
गारी देत करत अति रव्वारी मतवारी छबि पाइके।
हौं अपनी सखियन सों कहि देऊँ अब ही स्याम बुलाइके॥
मुरली लकुट मुकुट पीताम्बर लैहौं अबै छिनाइके।
हे ललिता या गरबीलों कूँ ले जावो समझाइके॥
लेओ री छीन कोई पिचकारी गालन को गुलचाइ के।
रसिकशरण सखी श्याम शरण है फगुवा ले हरषाइ के॥
फागुन में जिन बोलो री सजनी रसिया से अनखाइ के॥

३. गुलाल (सखी) जी—ये कहाँ के महन्त थे, इसका पता नहीं चलता। सम्भवतः कानपुर कैम्प स्थित चरणदासी मंदिर या किसी अन्य स्थान पर रहे हों। ये भी बड़भागी जी के कवि शिष्यों में से एक हैं। इनका मात्र एक पद ही प्राप्त है, जो निम्नलिखित है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ होरी डोल का पद ॥ ॥ राग काफी ।

झूलत श्यामल गौर सरीर ।
सुन्दर डोल रच्यो मिलि हेली नवल निकुंज कुटीर ॥
बाजत ताल मृदंग महूवर उड़त गुलाल अबीर ।
गुलाल सखी झुलावत रंग सो संग सखियन की भीर ॥

श्री जगदीश जी राठौड़ ने अपनी रुचि का इनका मात्र एक पद ही संगृहीत किया है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनकी दृष्टि में इनके और भी पद आये होंगे। अतः अनुमान है कि इनके पदों की संख्या अधिक है, जो यथा समय प्रकाश में आ जायगी।

४. महंत नित्यानंद—इनका व्यक्तिगत परिचय अप्राप्त है। ये कहाँ के महंत थे, इसका भी पता नहीं चलता। दिल्ली स्थित सुश्री सहजोबाई जी के प्रधान स्थान के स्व० महन्त श्री गंगादास के यहाँ नित्यानन्द जी के दो ग्रंथों की पांडुलिपि देखने को मिली थी, जिनके नाम हैं—(१) संत विलास और (२) भ्रम निवारण। इनके 'भ्रमनिवारण' की आरम्भिक कुछ पंक्तियाँ (दोहा में) श्यामशरण बड़भागी जी के परिचय-प्रसंग में उद्धृत की जा चुकी हैं। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के 'संक्षिप्त खोज विवरण' में इन दोनों ग्रथों के अतिरिक्त एक तीसरे ग्रंथ का भी उल्लेख है जिसका नाम 'नित्यानंद के भजन' है। इनके इन ग्रन्थों का रचना काल सं० १८०७ वि० से सं० १८१५ वि० के बीच है।

३४. हरभजनदास जी—श्री श्यामसरन बड़भागी, हरभजनदास जी, श्री भजनानन्द और सुश्री दयाबाई—इन चार चरणदासी महात्माओं के प्रभाव-स्वरूप इन्हें अपने विशिष्ट सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार करने के लिए आरम्भ में पाँच गाँवों की जमींदारी किसी जागीरदार के माध्यम से मिली थी। ये पाँचों गाँव कानपुर कैम्प के पास स्थित थे। इन्हीं में एक गाँव रजधान भी था, जहाँ हरभजनदास जी रहा करते थे और उनका वहीं थाँभा भी स्थापित हुआ था।

यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि हरभजनदास जी और भजनानन्द जी—दोनों की गणना १०८ शिष्यों की सूची में नहीं मिलती। सच तो यह है कि ऐसी कोई सूची ही किसी चरणदासी विद्वान के पास नहीं है, जिसमें सभी १०८ नाम वर्तमान हों। यदि किसी के पास है भी तो ५२ बड़े स्थानों और ५६ छोटे स्थानों के संस्थापक शिष्यों का कोई निश्चित निर्धारण नहीं है। इन नामों में भी लोगों में मतभेद बना हुआ है परन्तु इस विवाद का निवारण मेलों में उपस्थित महंतों की सूची का सम्यक् अनुशीलन करने से हो जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि श्री हरभजनदास के विषय में विशेष कुछ पता नहीं चलता परन्तु प्राचीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ये भी लखनऊ के ही मूल निवासी थे और श्री श्यामसरन बड़भागी की प्रेरणा से चरणदास जी की लखनऊ की यात्रा में ही शिष्य बने थे। फतहगंज (लालदरवाजा) लखनऊ के एक सप्ताह की अपनी यात्रा के समय चरणदास जी ने हरभजनदास सहित अनेक विशिष्ट लोगों को शिष्य बनाया था। इस यात्रा का वृत्त श्री रामरूप ने इस प्रकार दिया है—

आठ दिना लौं ह्वाँई रहे। मनुष्य सैकड़ों दर्शन लहे।
जाके घर रहे धन वा जीया। नांव हरिभजन शिष्य सो कीया ॥[1]

कंठी-बाना धारण करने के पश्चात् इन्होंने दिल्ली स्थित अपने गुरुद्वारे की कई बार यात्रा की थी। इनका मन चित्रकूट में अधिक रमता था, क्योंकि भजनानंद जी उस समय वहीं रहते थे। इनका थाँभा मूलतः नई सड़क–कानपुर में था। यहाँ के महंत कभी रजधान में और कभी मानगंज (थाना सीकरी, तह० डेरापुर, जिला कानपुर) में रहा करते थे। मेलों में उनकी उपस्थिति के हेतु भेजे गये निमंत्रण पत्रों में भिन्न-भिन्न समयों पर दोनों पते दिये गये हैं। संभव है कि इस थाँभे का एक स्थान मानगंज में भी रहा हो।

रजधान के थाँभे की शिष्य परंपरा—

श्री हरभजनदास (सं० १८३०–१९०० वि०, महंत पद का काल)—रतनदास जी (सं० १९००–१९१९ वि०)—गिरधारीदास जी (सं० १९१९–१९३२ वि०)—म० सुखदास जी (सं० १९३२–१९५२ वि०)—रतनदास जी (सं० १९५२–१९८५ वि०)—माधोदास[2] (सं० १९८५–२०१५ वि०)—बिठूर के थाँभे से सम्बद्ध। म० रतनदास जी के समय में कानपुर शहर में कम से कम ५-६ स्थान अवश्य थे। माचल के सं० १९५२ वि० के मेले में म० सुखदास (चौक से) वैष्णवदास (नई सड़क से) तथा दो अन्य स्थानों से क्रमशः गोमतीदास और प्रहलाददास सम्मिलित हुए थे।

(३५) गुरुप्रसाद जी—ये कांधला (जिला मुजफ्फरनगर) के निवासी एवं गौड़ ब्राह्मण थे। संस्कारवश उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और भगवद्भक्ति की ओर उनका झुकाव बढ़ा। चरणदास जी की ख्याति सुनकर वे दिल्ली आये और उनसे उन्होंने दीक्षा ग्रहण करके विरक्त बाना धारण कर लिया। कुछ दिनों

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २०५।

२. माधोदास जी नारनौल के एक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे। ये पाँच वर्ष की अवस्था में ही विरक्त हो गये थे। इनके जीवन काल में कानपुर के कई थाँभे समाप्त हो गये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक दिल्ली स्थित अपने आश्रम में रखकर गुरु ने उन्हें ज्ञान, ध्यान और योग की शिक्षा दी। जब उनका मन साधना में दृढ़ हो गया तो गुरु ने रामत करते हुए धर्मप्रचार का उन्हें आदेश दिया। उन दिनों लखनऊ में श्री सुखविलास मस्तराम, हँसमुखदास आदि उनके गुरुभाई भक्ति-प्रचार में लगे थे। वहीं गुरुप्रसाद जी भी आ गये और कुछ समय के पश्चात् चौक बाजार में उन्होने अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया। उन्होंने अनेक नर-नारियों का अपने उपदेशों द्वारा हित किया। वहाँ उनके शिष्यों की एक बड़ी संख्या हो गई। उनकी इस धर्म-चर्चा पर जोगजीत जी की ये पंक्तियाँ अच्छा प्रकाश डालती हैं—

नर नारी दर्शन को आवें। तिनको हरि की भक्ति दृढ़ावें ॥
कथा कीर्तन होय दुबारे। सबको लागें प्राण पियारे।
इन आचरणन कर सुख पाये। तारन तरन जु संत कहाये ॥[1]

एक बार उन्हें गुरु-चरणों के दर्शन की इच्छा हुई और वे दिल्ली चले गये। किसी प्रकार उनकी पत्नी को पता चल गया और वे भी रोती-बिलखती चरणदास जी के स्थान में आईं। उन्होंने पति के साथ रहने का हठ किया। चरणदास जी ने इसकी छूट दे दी। अंततः—

सो भी संत भई सुखकारी। हरि की भक्ति करन अधिकारी ॥
× × ×
.....जोगजीत तिरिया पुरष, भक्ति करें निहकाम ॥[2]

लखनऊ (दौलतगंज) का थाँभा—

उन दिनों लखनऊ में सुखविलास 'मस्तराम', हँसमुखदास, नन्ददास, लालदास, मुक्तानंद परमार्थी आदि चरणदास जी के कई शिष्यों का जमघट था। प्रसिद्ध है कि वहाँ चरणदासियों के १६ स्थान थे। चौक बाजार के पास ठाकुरगंज नामक मुहल्ले में चरणदासियों के कई मंदिर थे। लखनऊ के सब्जीमण्डी और डालीगंज में भी इस संप्रदाय के मंदिर बने हुए थे। यहाँ रस्तोगी टोले का मंदिर अब भी अच्छी स्थिति में वर्तमान हैं। सं० १९४९ वि० की बसन्तदास जी (गद्दी-गोसाईं जुगतानंद–दिल्ली के तत्कालीन महंत) की डायरी में यहाँ के एक साधु का पता इस प्रकार लिखा हुआ है—मुरलीधर साधु, मुहल्ला–थाना दौलतगंज, (सखी जी का मंदिर)–लखनऊ। इससे अनुमान होता है कि दौलतगंज में भी कोई चरणदासी स्थान था।

---

१. लीलासागर : पृ० २९२।
२. वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुप्रसाद जी ने यदि कुछ बानियाँ रची होंगी तो वे अभी तक अनुपलब्ध हैं।

(३६) सुखविलास 'मस्तराम'— ये जाति के सारस्वत ब्राह्मण थे। लाहौर इनका जन्मस्थान था, लेकिन उन दिनों लखनऊ में ही रहते थे। ये बचपन से ही सत्संगी और साधु-प्रेमी थे। घर का अन्न वस्त्र तक वे साधुओं को दे डालते थे। घर वाले इन्हें पागल समझने लगे थे। इनका परिवार पर्याप्त धनाढ्य था। चरणदास जी के शिष्य श्री गुरुमुखदास इनके यहाँ प्रायः आते-जाते थे। उन्हीं के प्रभाव से प्रेरित होकर इन्हें श्री चरणदास के दर्शन की इच्छा उत्पन्न हुई। अन्ततः ये गुरुमुखदास जी के साथ दिल्ली आये और गुरु दर्शन तथा उनके उपदेश-श्रवण से उनका भक्तिभाव दृढ़ हो गया। वहीं कुछ दिनों तक रहने के पश्चात् गुरु से दीक्षा लेकर वे लखनऊ चले आये और वहीं रम गये। वहाँ गुरुमुखदास जी तथा मुक्तानंद परमार्थी आदि के साथ भक्ति-प्रचार में वे आजीवन लगे रहे।[1] ये स्वभाव से मनमौजी और मस्तमौला थे इसीलिये इनका नाम 'मस्तराम' पड़ा था। लखनऊ के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति इनके शिष्य हुए। लखनऊ आने के पूर्व ये दिल्ली में प्रायः बहुरूपिया-वेश में बाहर निकला करते थे। इनका यह बहुरूपियापन इनके गुरु को भी उलझन में डालने वाला सिद्ध हो रहा था, फलतः उन्होंने मस्तराम को कहीं अन्यत्र चले जाने की राय दी।[2] इनकी ज्ञान, योग और भक्ति समन्वित साधना के सम्बन्ध में 'लीलासागर' की उक्ति इस प्रकार है—

भक्ति करी अरु योगहु कीना। ज्ञान मध्य अति भये जु लीना॥
बड़े-बड़े उपदेश करावे। निधरक ले वैराग दृढ़ावें॥
इन सों मिल इनका हो जावे। जो कुछ कहे सो रीत करावे॥

लखनऊ (फतहगंज) का थाँभा—

इनके थाँभे पर एक बार चरणदास जी पधारे भी थे।[3] इस थाँभे की शिष्य

---

१. इन्हीं की प्रेरणा से श्री गुरुमुखदास और श्री सुखविलास के छोटे भाई हरिदेवदास जी भी चरणदास जी के शिष्य बने थे।

२. कभी हाथी घोड़े चढ़ि आवें। कभी पालकी रथ चढ़ि धावें॥
गाज बाज संग सैन बजावें। द्रव्य लाय भूषण पहनावें॥
यह ढंग ताको देखकर, बोले कृपा निधान।
और शहर जा वास कर, चले जु आज्ञा मान॥
—लीलासागर : पृ० १९१।

३. अद्भुत लीला की एक ओरे। फतेहगंज लखनऊ के धोरे॥
तामें चरणदास प्रगटाये। इक अप संग दस साधु उपाये॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम्परा व्यवस्थित रूप से प्राप्त नहीं होती। सं० १९१९ वि० में इनके प्रशिष्य लोचनराम जी तथा सं० १९५२ वि० में म० कन्हैया राम माचल के मेले में पधारे थे। किसी उपयुक्त सूत्र के अभाव में संप्रति इस गद्दी की शिष्य परम्परा का पूरा वृत्त सुलभ नहीं हो सका है।

ये अच्छे कवि थे। श्री जगदीश जी राठौड़ ने इनकी एक बानी कहीं से प्राप्त की है, जो इस प्रकार है—

॥ होरी का पद ॥

बनवारी पिचकारी मारी निपट अनारो मोरी आँखन में।
बरज रही बरज्यो नहिं माने ऐसो ढीठ भला लाखन में॥
बहियाँ मरोरी अरु झकझोरो जादू कियो कछु हांकन में।
सुखविलास बलि नंद के ढोटा उझक झरोखे झांकन में॥

(३७) भजनानन्द जी—श्री श्यामसरन बड़भागी और लखनऊ के चरणदासी गुरुभाइयों के साथ इनके घनिष्ट सम्बन्धों को देखते हुए कहा जा सकता है कि ये भी सम्भवतः लखनऊ या कानपुर के निवासी थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनके माता-पिता का देहान्त इनके बचपन में ही हो गया था। ये बड़े सिद्ध महात्मा थे। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि इन्होंने बांदा के नवाब और उनकी शाहजादी को तालाब के जल की ऊपरी सतह पर चादर बिछाकर दीक्षा दी थी। पहले तो वे उनकी परीक्षा लेना चाहते थे परन्तु उनके इस चमत्कार से अभिभूत होकर उनके शिष्य हो गये। इतने पहुँचे हुए महात्मा का 'लीलासागर' और 'गुरुभक्तिप्रकाश' में उल्लेख न होना आश्चर्यजनक है।

बुन्देलखण्ड के चित्रकूट, चरखारी और रायपुर में श्री भजनानन्द का बड़ा प्रभाव था। हरभजनदास जी और भजनानन्द जी को लोग प्रायः एक ही व्यक्ति मानते हैं। ये दोनों सज्जन एक दूसरे से खूब घुले-मिले थे और एक दूसरे के स्थानों पर लम्बी अवधि तक निवास करते थे। अपने जीवन का अन्तिम काल भजनानन्द जी ने श्री बड़भागी के बिठूर वाले आश्रम में ही व्यतीत किया। बिठूर में वह गुफा अब भी सुरक्षित है, जिसमें रहकर ये साधना और भजन में लीन रहते थे। इनकी समाधि भी वहीं बनी हुई है। इनका प्रभाव हिन्दू-मुसलमान-

---

—शिष्य किये ता ठांव विशेषा। कंठीतिलक दिये उपदेशा॥
यही खबर लखनऊ आ साजा। फतेहगंज आये महाराजा॥
चले शिष्य सुनि धरजु हुलासा। गुरुप्रसाद और हंसमुखदासा॥ आदि
—लीलासागर : पृ० २६९–७०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों पर समान था। अनेक मुसलमान परिवार भी उनके मुरीद (शिष्य) थे। इनके कुछ शिष्यों ने दार्जिलिंग में भी गद्दी स्थापित की थी।

१. चित्रकूट और चरखारी के थाँभे—ये प्रायः चित्रकूट में ही रहा करते थे। चरखारी के तत्कालीन राजा इनका बड़ा सम्मान करते थे। चरखारी के गंगा मन्दिर के निकट ही उन्होंने एक मन्दिर बनवाया था, जो अब भी वर्तमान है। चित्रकूट के परवर्ती महन्त वहाँ से थोड़ी दूर स्थित संग्रामपुर नामक गाँव में रहा करते थे। प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि इनके चित्रकूट वाले थाँभे पर रजधान (कानपुर) के हरभजनदास वाले थाँभे का ही नियन्त्रण बना रहा। इसीलिए यहाँ से स्वतन्त्र रूप से कोई महंत मेलों में उपस्थित नहीं हुआ। सं० १९५२ वि० में महंत बिहारीदास के यहाँ से ज ने का उल्लेख मिलता है लेकिन उनका पता संग्रामपुर ही दिया गया है। सम्भवतः वे कानपुर के ही किसी स्थान के महंत थे, जो उस समय वहाँ पर वर्तमान थे।

२. रायपुर का थाँभा—यह स्थान हमीरपुर जिले में चरखारी और महोबा के निकट चंदेला तहसील के अन्तर्गत रायपुर नामक गाँव में निर्मित हुआ था। सम्भवतः चरखारी नरेश ने जागीर में यह गाँव भजनानन्द जी या हरभजनदास जी में से किसी एक को दी थी। यहाँ की शिष्य-परम्परा इस प्रकार मिलती है—भजनदास जी (—सं० १९०० वि० तक वर्तमान)—रतनदास जी (सं० १९००–१९३० वि०)—युगलशरण जी (१९३०–१९३५ वि०)—जमुनादास जी (सं० १९३५–१९७६ वि०)—गिरिधारीदास जी (१९७६–२००० वि०)। आगे सम्भवतः गृहस्थ गद्दी ही चल रही है।

म० रतनदास जी हरभजनदास जी के शिष्य थे और रजधान (कानपुर) के महंत थे। परन्तु ऐसा लगता है कि सं० १९१९ वि० में वे रायपुर में चले आये थे। इसी प्रकार युगलशरण जी बिठूर के महंत श्यामशरण बड़भागी की शिष्य-परम्परा से सम्बद्ध थे। इस थाँभे के अन्य महंत भी कानपुर के विभिन्न थाँभों से ही आये थे। अतः कहा जा सकता है कि रायपुर का यह थाँभा कानपुर के अनेक थाँभों से सम्बद्ध था। सं० १९१५ वि० में महंत जमुनादास ने एक मेले का आयोजन यहाँ किया था।

भजनानन्द जी की मधुर भावोपासना के पदों का एक संग्रह 'ब्रज सारावली' के नाम से जयपुर के सरसकुंज के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

(३८) श्री मुक्तानंद परमार्थी—मुक्तानन्द जी चरणदास जी के प्रभावशाली और योग्य शिष्यों में से थे। ये स्वभाव से बड़े परोपकारी और सेवाभाव वाले महात्मा थे। इनकी आचार-विचारगत विशेषताओं को देखकर ही इनके गुरु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चरणदास जी) ने इनका उक्त नामकरण किया था।[1] इनका व्यक्तिगत परिचय अज्ञात है। जोगजीत जी ने इन्हें उच्चकोटि का उपदेशक और धर्मप्रचारक बताया है। इनके विषय में 'लीलासागर' की ये उक्तियाँ यहाँ उद्धरणीय हैं —

परमारथ को रामत धारी। उपदेशे बहु नर अरु नारी ।।
राम औ गुरु की भक्ति दृढ़ावें। जीवन भव जल पार लगावें ।।
परमारथ से प्रीत लगाई। सब जीवन की करें भलाई ।।[2]

ये संभवतः दिल्ली के आस-पास के ही निवासी थे। ये आरंभ में गुरु-चरणों में ही रहे। बाद में गुरु के आदेश से लखनऊ वासी अपने दो गुरुभाइयों—श्री सुखविलास मस्तराम और हँसमुखदास जी के साथ लखनऊ आकर भक्ति-प्रचार में रत हुए। लखनऊ में उन दिनों श्री चरणदास के अनेक शिष्यों ने स्थान निर्माण किये थे। इनमें श्री सुखविलास मस्तराम, हँसमुखदास जी और श्री मुक्तानंद के अतिरिक्त श्री नंददास, लालदास और गुरुप्रसाद विशेष उल्लेखनीय हैं।

लखनऊ (ठाकुरगंज) का थाँभा—

मुक्तानंद जी ने भी लखनऊ में आकर वहाँ अपना स्वतंत्र स्थान (ठाकुरगंज नामक मुहल्ले में) बना लिया था। उस समय लखनऊ में फतेहगंज, ठाकुरगंज अलीगंज और सब्जीमण्डी स्थित थाँभों सहित छोटे-बड़े थाँभों की संख्या १६ थी। इतने अधिक स्थानों का एक नगर में केन्द्रित हो जाना बड़े महत्व की बात थी। इसीलिए संभवतः चरणदास जी ने स्वयं यहाँ की यात्रा की थी।[3] लखनऊ के चरणदासियों में एक घटना प्रसिद्ध है, जो यहाँ के अलीगंज मुहल्ले में जमुना के तट पर स्थित हनुमान मंदिर के बिषय में है। यह चरणदासी मंदिर है। कहते हैं कि अवध के नवाब मुहम्मद अली शाह (सं० १८४९–१८५९ वि०) की बेगम राबिया को कोई सन्तान न थी। किसी चरणदासी महात्मा ने बेगम को राय दी कि वे इस्लामबाड़ी के टीले की परिक्रमा करें और संतान के लिए प्रार्थना करें। बेगम ने ऐसा ही किया। फलतः उन्हें संतान की प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् उक्त टीले के पास ही बेगम ने हनुमान जी का मंदिर निर्मित कराया। मुक्तानंद जी पर चरणदास जी की विशेष कृपा थी। 'लीलासागर' में आये एक वृत्त के अनुसार दिल्ली के जमुना स्नान के समय एक बार मुक्तानंद जी कठिनाई में फँस गये थे। एक ग्राह उनका पैर पकड़ कर उन्हें गहरे पानी में ले जा रहा था, तभी चरणदास

---

१. चरणदास महाराज ने, ये अंग तामें जानि।
मुक्तानंद परमार्थी, धरो नाम पहिचानि ।।—लीलासागर : पृ० २३७।

२. वही : पृ० २३७।

३. वही : पृ० २९६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी ने गुप्ती से उस पर प्रहार करके इन्हें मुक्त किया था। अतः इनके मुक्तानंद नाम के मूल में इसी घटना के निहित होने की कल्पना की जा सकती है।

ये एक अच्छे महात्मा तो थे ही, साथ ही अच्छे कवि भी थे। इनकी कुल तीन रचनाएँ अब तक ज्ञात हो सकी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) ज्ञान निरूपण (अंग), (२) जाप महातम (अंग) और (३) स्फुट पदावली। इनमें से प्रथम दो कृतियाँ वृन्दावन के 'वृन्दावन शोध संस्थान' में हैं। इनकी स्फुट पदावली सरसकुंज–जयपुर में तथा गामड़ी के चरणदासी मंदिर में उपलब्ध हैं। परमार्थी जी को कतिपय मात्रिक छंदों यथा दोहा, छप्पय, कुंडलिया आदि में विशेष निपुणता प्राप्त थी। इनके पद भी अच्छे बन पड़े हैं।

कवि ने अपने गुरु श्री चरणदास की समत्व भावना की प्रशंसा करते हुए कहा है—

छप्पय—कलियुग में अवतार पार कर जीव उबारे।
आतम ज्ञान प्रकाश करम के फंद निवारे॥
भक्ति योग बैराग्य दिये बहु अधम उधारे।
ऊँच नीच नहिं गिनत सबहिं इकदृष्टि निहारे॥
मुक्तानंद तिनकी सरन दीन जान किरपा करो।
चरणदास महराज जी भव जल की बाधा हरो॥[1]

गुरु की स्तुति में कही गई निम्न पंक्तियाँ बरबस ही कबीर और दादू जैसे संत कवियों की उक्तियों की याद ताजा कर देती हैं—

दोहा—गुरु पारस भृंगी गुरु, गुरु दीपक उजियार।
मलयागिरि सम होय करि, जीव किये बहु पार॥
सतगुरु ने किरपा करी, जाप बतायो सार।
निसि बासर जासूँ लग्यो, टूटे ना छिन तार॥
चरणदास सतगुरु दियो, सुमिरन भेद अखंड।
मुक्तानंद नासे सभी, जनम मरण जम दंड॥[2]

इनका 'त्रिभंगी' छंद में रचित श्री शुकदेव मुनि की इस स्तुति में भाषा का प्रवाह प्रशंसनीय है—

श्री शुकदेवा लहै न भेवा सेवा कौन प्रकार करें।
श्री अवधूता गुना अतीता जीता निरगुण धार परे॥

---

१. स्फुट पदावली (पांडुलिपि) : पद्य सं० ५।
२. वही : दोहा सं० ९-१० एवं ३२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री शुकचरना अद्भुत सरना धरना हिय में ध्यान सही ।
श्री अति करना सब दुख हरना बरना बेद प्रमाण यही ।।

इनका 'ज्ञाननिरूपण' तथा 'जाप महातम' नामक दोनों ग्रंथ क्रमशः अध्यात्म एवं नाम जप के महत्त्व एवं स्वरूप निरूपण से संबद्ध हैं ।

(३९) सहजानंद जी—ये मुजफ्फरनगर के काँधला नामक स्थान के एक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे । चरणदास जी की इन पर बड़ी कृपा थी । एक बार रामत के क्रम में जोगजीत जी तथा अन्य कई शिष्यों के साथ श्री चरणदास इनके स्थान पर गये थे । उन्हीं दिनों एक दिन स्नान के लिए जाते समय मार्ग में एक विषधर साँप ने इन्हें काट लिया और सभी प्रकार के उपचार के बावजूद वे प्राणहीन हो गये । अंततः चरणदास ने श्री शुकदेव मुनि का स्मरण किया और मोरछल से कई बार स्पर्श करके उन्हें जीवित कर दिया । इस चमत्कार का वहाँ की जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा ।[1] यह जोगजीत जी की आँखों देखी घटना है । अतः इसकी सत्यता में सन्देह के लिए स्थान नहीं है ।

आश्चर्य है कि काँधला के बड़े थाँभे की शिष्य-परम्परा प्राप्त नहीं होती । सम्भव है कि श्री सहजानंद के शिष्यों या प्रशिष्यों ने वह स्थान छोड़ दिया हो और अन्यत्र स्थान-निर्माण करके रहने लगे हों । मेलों की बहियों में अनेक ऐसे बड़े थाँभों का उल्लेख है, जिनको मूलतः वहाँ स्थापित नहीं किया गया था । अतः स्पष्ट है कि वे केन्द्र अपने मूलस्थान से हटकर ही वहाँ पहुँचे हैं ।

सहजानंद जी स्वयं तो कवि थे ही, उनके शिष्य श्री सेवादास भी कवि थे । सेवादास जी द्वारा रचित 'शुभ सार' नामक ग्रंथ प्राप्त है । सहजानंद जी की फुटकल बानियाँ मिलती हैं । इनमें से एक माधुर्य भाव से युक्त पद यहाँ उद्धृत है—

।। राग भैरवी ।।

अनोखा तू है रे नन्दलाला ।
सुन्दर वारो मुख उजियारो कमल दल नैन बिसाला ।।
वृन्दावन की कुंज गलिन में संग लिये नव बाला ।
सहजानंद चरण की चेरी रीझ दई मोहिं माला ।।

—(राठौड़ जी के संग्रह से)

(४०) स्वामी ठंडीराम जी—स्वामी ठंडीराम जी का जन्म खरखौदा (जिला मेरठ) के निकटवर्ती असौदा नामक ग्राम में एक ब्राह्मण कुल में हुआ

---

१. लीलासागर : पृ० ३०१ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। यह स्थान वृहत्तर दिल्ली के निकट है।[1] इनके परिवार के लोग अब भी असौदा में वर्तमान हैं। ठंडीराम जी के दो शिष्यों—श्री विष्णुदास और कमलदास की प्रचुर मात्रा में बानियाँ उपलब्ध हैं। ठंडीराम जी की केवल एक रेखता प्राप्त है, जो इस प्रकार है—

॥ उपदेश का पद ॥ ॥ रेख्ता ॥

जगत है रैन का सपना समझ दिल कोई नहिं अपना।
कठिन है लोभ की धारा बहा सब जात संसारा॥
घड़ा ज्यूं नीर का फूटा पत्ता ज्यूँ डार से टूटा।
ऐसैं नर जान जिन्दगानी अहो क्यूं न चेत अभिमानी॥
भूले जनि देख तन गोरा जगत में जीवना थोरा।
तजो मद लोभ चतुराई रहो निस्संक हो भाई॥
कुटुंब परिवार सुत दारा एक दिन होयगें न्यारा।
निकस जब प्राण जावेंगे नहिं कोई काम आवेंगे॥
लगाओ स्याम से नेहा सदा थिर ना रहे देहा।
कहे ठंडीराम जन तेरा कटे जम जाल का घेरा॥

—(राठौड़ जी के संग्रह से)

असौदा, खरखौदा और अजराड़ा के थाँभे—

असौदा में ठंडीराम जी के स्थान के अतिरिक्त रामरूप जी का भी एक थाँभा था, जिसकी गणना छोटे थाँभे के रूप में की जाती थी। इनकी खरखौदा की गद्दी चल रही है, लेकिन सं० १९५० वि० के पश्चात् से यह स्थान श्री रामरूप के थाँभे से नियंत्रित हो रहा है। रामरूप जी वहाँ गये भी थे। सं० १९७० वि० में यहाँ से श्री रामरतनदास एक मेले में गये थे। ठंडीराम जी का थाँभा अजराड़ा, थाना खरखौदा, तह० हापुड़, जिला मेरठ) में था, जिसकी शिष्य परंपरा इस प्रकार

---

१. ठंडीराम जी के व्यक्तिगत परिचय का जितना सूत्र जोगजीत जी ने 'लीला सागर' में दिया है, उससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं है। 'लीलासागर' के अनुसार—

स्वामी ठंडीराम गियानी। चरणदास के शिष्य सुखदानी॥
गुरु आज्ञा में नित्य रहाये। तन मन बचन करें गुरु भायें॥
तर्क वाद अभिमान बिसारे। गुरु मारग में दृढ़ पग धारे॥
खरखौदे अस्थान कराये। गुरु गुरुभाई संत पुजायें॥

इस विवरण में महत्वपूर्ण बात यह है कि जोगजीत जी जैसे समकालीन गुरुभाई और इतिहासकार भी ठंडीराम जी को 'स्वामी' की उपाधि दे रहे हैं। यह विशेषण ही इनके गुणों का द्योतक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—ठंडीराम जी (सं० १८७० वि०)—विष्णुदास जी (सं० १८७०–१९२१ वि०)—रामप्रताप जी (सं० १९२१–१९४० वि०)—सालकदास जी (सं० १९४०–१९५० वि०)—लछमनदास जी (१९५०–१९७२ वि०)—जसवंतदास जी (सं० १९७२–२०११ वि०)—अज्ञात ।

श्री ठंडीराम के शिष्य विष्णुदास जी का रुक्मिणी मंगल काव्य—

आलोच्य संप्रदाय के कवियों दारा प्रस्तुत विपुल साहित्य भंडार में 'रुक्मिणी मंगल' नामक दो काव्य-कृतियाँ उपलब्ध हैं। जिनमें से एक का उल्लेख गोसाईं जुगतानंद के संदर्भ में किया जा चुका। जुगतानंद जी के नाम उल्लिखित रचना उनकी कोई स्वतंत्र कृति नहीं है, प्रत्युत यह उनके 'श्रीमद्भागवत भाषा' नामक ग्रंथ के दशम स्कंध के अन्तर्गत अध्याय सं० ५२ से ५४ तक के अंश का इस विशिष्ट शीर्षक से एवं स्वतंत्र चयन है। परन्तु श्री ठंडीराम के शिष्य एवं अजराड़ा के प्रथम महंत श्री विष्णुदास की यह रचना एक उच्चकोटि का मौलिक प्रबन्ध काव्य है। इसकी पांडुलिपि महंत प्रेमदास जी (गद्दी श्री रामरूप जी) के यहाँ है। यह २१ पत्रों (४२ पृष्ठों) की रचना है, जिसमें सब मिलकर ५१ दोहा–चौपाई और शेष पद हैं। छंदों की अपेक्षा पदों की संख्या अधिक है और सभी पद गेय हैं। इसका रचनाकाल इस पांडुलिपि में उल्लिखित नहीं है फिर भी कहा जा सकता है कि अनुमानतः यह कृति सं० १८६० वि० के आस-पास की है। नागरी-प्रचारिणी सभा के 'संक्षिप्त विवरण' में इनका 'रुक्मिणी मंगल' किसी अन्य विष्णु-दास (गोपाचलगढ़–ग्वालियर के राजा डोंगरसिंह के आश्रित विष्णु कवि) के नाम के समक्ष लिखा गया है, जो विचारणीय है। आलोच्य विष्णुदास को इस विवरण में झाझर–जिला रोहतक का निवासी बताया गया है। इसमें इनके गुरु का नाम 'ठंढी रामसुख' अंकित है, जो स्पष्टतः ठंडीराम का रूपान्तर है। इन्हें सं० १८५१ वि० के लगभग वर्तमान बताया गया है और इनकी रचना के रूप में 'बारह खड़ी' उल्लिखित है।[1]

इनके गुरु श्री ठंडीराम सं० १८७० वि० में परलोकगत हुए थे और उसी वर्ष विष्णुदास जी अजराड़ा की गद्दी के महंत बनाये गये थे। सं० १९२१ वि० तक ये महंत–पद पर रहे, उसके पश्चात् उनके शिष्य रामप्रसाद जी उनके स्थानापन्न हुए। अतः यह मानने में कोई आपत्तिजनक बात नहीं है कि श्री विष्णुदास सं० १९२१ वि० तक जीवित रहे। इनके जन्मकाल, कुल, गोत्र और आरंभिक जीवन संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनकी बानियों में कहीं-कहीं इनका नाम वैष्णव-

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त खोज विवरण—भाग २, पृ० ३९६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास भी मिलता है।[1]

इस काव्य का वर्ण्य-विषय रुक्मिणी और श्री कृष्ण के विवाह तथा परस्पर आनन्द-विलास से संबद्ध है। यह शृंगार रस प्रधान रचना है। श्री विष्णुदास ने कथानक से संबंधित प्रत्येक घटना का उन्मुक्त भाव से वर्णन किया है। यद्यपि उन्हें इस बात का भान सद बना रहता है कि उसके काव्य के चरितनायक श्री कृष्ण परब्रह्म के लीला-विग्रह हैं परन्तु उनका कवि-कर्म गोसाईं तुलसीदास की भाँति मर्यादा-बाधित न होकर कालिदास की भाँति उन्मुक्त है। अपवाद रूप में कवि का मात्र एक मर्यादित लीला-वर्णन द्रष्टव्य है, जिसमें उसने शृंगार-वर्णन की उन्मुक्तता पर सहसा रोक लगा दी है—

महलन मोहन करत विलास।
कनक भवन में केलि करत हैं और न कोई पास॥
रुकमिनि चरन सिरावत पिय के पूजै मन की आस।
जो चाहै थी सो अब पायो प्रभु पति देवकी सास॥
तुम बिन और कौन थो मेरो चरन पताल अकास।
पल पल सुमिरन करत तिहारो सुन पूरन परगास॥
घट-घट व्यापक अन्तर्यामी त्रिभुवन स्वामी सब सुख रास।
विष्णू प्रभु रुक्मिनि अपनाई जनम-जनम की दास॥[2]

ऐसे स्थल इस काव्य में कम ही हैं। कवि ने कथानक-क्रम को तोड़ने-मरोड़ने का प्रयास नहीं किया है। विवाह के पूर्व और पश्चात् की स्थितियों का उसने यथावत् वर्णन किया है। इस कथन की पुष्टि नीचे उद्धृत पद से हो जाती है, जिसमें विवाहोपरान्त रुक्मिणी की सखियों द्वारा श्री कृष्ण को औपचारिक तथा अवसरोचित गाली सुनाई जा रही है—

अब गारी द्यौ सब मिल बाल री।
ये स्याम सुन्दर गोपाल री॥
देवी सुभद्रा बहिन लला की गई अर्जुन की नाल री।
देवी कुन्ती फूआ लला की क्वारी ने जायो लाल री॥
देवी द्रौपदी भाभी लला की पांच पति कियो ततकाल री।
ब्रज बधुवन को बस्तर लेके चढ़ बैठो द्रुम डार री॥
रानी तो चेरी करि राखी लौंडी लाई घर घाल री।

---

१. बनड़ो सुन्दर स्याम किसोर।
तुर्रा पेंच औ कलँगी की छबि सिर पर सोहै मोर॥
पट भूषन अंग कहा बखानौं लाजत काम करोर।
वैष्णवदास राधा वर प्यारो बरबस लै चित चोर॥

२. रुक्मिणी मंगल काव्य पांडुलिपि : छंद सं० ३०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोय बाबा जाके दो महतारी चारों बहुत बेताल री ।।
विष्णुदास प्रभु बंसी बजाके नार करी बेहाल री ।।[1]

उपर्युक्त दोनों पदों के आधार पर कहा जा सकता है कि कवि की भाषा भावानुगामिनी तथा प्रवाहमयी है। रागबद्धता के कारण पदों की पंक्तियों में कहीं-कहीं मात्रा-भेद दिखाई देता है, लेकिन संगीत और लय के क्षेत्र में ये बातें स्वाभाविक हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री विष्णुदास एक उच्चकोटि के कवि हैं और उनकी कृति 'रुक्मिणी मंगल' एक प्रशंसनीय प्रबन्धात्मक काव्यकृति है। श्री विष्णुदास की 'बारहखड़ी' की पांडुलिपि की एक प्रति सरसकुंज–जयपुर में भी देखने को मिली थी। 'बारहमासी' नामक काव्य रूप को इसमें उन्होंने नया स्वरूप प्रदान किया है। यह नवीनता इस बात में है कि अक्षरादि क्रम के प्रत्येक अक्षर से प्रारम्भ पदों को बारहमासों की अनुभूतियों के वर्णन का माध्यम बनाया गया है। तात्पर्य यह कि वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर से १२ महीनों के लिए १२-१२ पदों की रचना की गई है। 'राग मलार' में रचित इनकी इस बारहमासी पद को उदाहरण के रूप में यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

चचा चैत सुहावनो सूख सबज भये रूख।
तृष्णा बाढ़ी पीव की बिरहा दीनों दूख ।। १ ।।
चैत आयो सुन सखी री चाह चतुरभुज की भई।
दिन रैन तरफत बीते मोको जाने कब आवे दई ।। २ ।।
अवधि के दिन बीते आली धीर कहो कैसे धरूँ।
बिसनदास पी श्याम आशा सोच मैं सूखा करूँ ।। ३ ।।...आदि ।।

इनके कुछ स्फुट पद भी यत्र-तत्र संग्रहों में प्राप्त होते हैं। सरसकुंज (जयपुर) की जिल्द सं० ३९६ में एक ही पांडुलिपि में स्वामी सिद्धराम, सुश्री बीबादासि, दयाबाई जी तथा श्री विष्णुदास के पद संकलित हैं। विष्णुदास जी के पदों में स्वाभाविकता और अनुभूति की बेलाग अभिव्यक्ति प्रशंसनीय है। इनका चेतावनी तथा उपदेशमूलक निम्न पद द्रष्टव्य है—

मन अपनी ओर लगा ले प्रभु मेरे पाँचों को समझा दे।
नैंना सदा दरस के प्यासे सुन्दर रूप दिखा दे ।।
नाक सुगंध बासना चाहै अंतर गुलाब सुँघा दे।
कान मनोरम स्वर के बाँधे नीको राग सुना दे ।।
जीभ चटोरी हो रही औरी मेवा मिसरी खिला दे।
रिदै विषय करन को चाहै मनमत भोग भुगा दे ।।

---

१. रुक्मिणी मंगल काव्य (पांडुलिपि) : छंद सं० २५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चील मीन मृग पतंग जु भौंरा एक-एक के बाँधे।
विष्णुदास के पाँचों चिमटे किरपा करके छुड़ा दे॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री विष्णुदास एक उच्चकोटि के कवि थे।

कमलदास जी—ये भी ठंडीराम जी के एक सिद्धहस्त कवि शिष्य थे। इनका व्यक्तिगत परिचय प्राप्त नहीं होता। सं० १८४० वि० तक इनके वर्तमान होने का प्रमाण मिलता है। श्री जगदीश राठौड़ ने इनके चार ग्रंथों की प्राप्ति की सूचना दी है। इन ग्रंथों के नाम हैं—(१) बारहमासी (२) बारह खड़ी (३) संत कल्पतरु और (४) शब्द। नागरीप्रचारिणीसभा के खोज विवरण में इनकी एक अन्य रचना भी उल्लिखित है, जिसका नाम 'ज्ञानमाला' है। इसमें इनके सं० १८८० वि० तक वर्तमान होने का उल्लेख है।[1] इनके 'संत कल्पतरु' में श्री राधाकृष्ण युगल के अनेक हाव-भाव, स्वरूप, लीला-विनोद आदि के सुन्दर वर्णनों का समावेश है। यह रचना मुख्यतः चौपाइयों में है। बीच-बीच में दोहा तथा अन्य छंद भी गुंफित हैं। युगल शृंगार का एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है—

चौपाई—सुन्दर स्याम स्वरूप पियारा। सोभा का कछु बार न पारा॥
गिलम बिछौने रेशम गादी। सुबरन सिंहासन आदि अनादी॥
नीको तकिया छत्र स्वरूपा। झिलमिल झिलमिल महल अनूपा॥
अद्भुत पैजन पगन मँझारी। कटि काछनि काछे हैं मुरारी॥
निर्मल नीमा सोभ अपारा। झलक पिताम्बर कौन निहारा॥
मुकुट लटक सोभा अति सोहे। हीरा लाल मनी मन मोहै॥
श्रवनन कुंडल झलकत न्यारे। माला मोती अजब पियारे॥
फूल माल बैजन्ती प्यारी। नुहसत छाप कर अँगुरिन धारी॥
श्याम भुवंगम जुलफें मोहैं। मनि मुक्ताहल सुंदर सोहैं॥
सोभा सागर रूप उजारा। कमलदास बरने क्या सारा॥

इस प्रकार यह वर्णन कई पृष्ठों तक चलता है। श्री कमलदास का वस्तु वर्णन अद्भुत है। इन्हें शृंगार, आभूषण और वस्त्रादि के विविध प्रकारों का प्रगाढ़ ज्ञान है। साथ ही भाषा का प्रवाह और अभिव्यक्ति का वैविध्य आदि भी इनके काव्य को पठनीय बनाते हैं। यदि श्री कमलदास की रचनाएँ प्रकाशित हो जायँ तो निस्संदेह इन्हें पाठक वर्ग का प्रभूत आदर प्राप्त होगा।

(४१) नंदराम (दास)—आलोच्य सम्प्रदाय के आधारभूत ऐतिहासिक ग्रंथों के साक्ष्यानुसार दूसर भार्गव कुलोत्पन्न श्री नन्दराम ही चरणदास जी के प्रथम

---

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण—भा० १, पृ० ११६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य सिद्ध होते हैं। इस तथ्य की पुष्टि 'लीलासागर' और 'गुरुभक्तिप्रकाश', इन दोनों प्रामाणिक (नन्दराम के समकालीन गुरुभाइयों की) कृतियों से होती है। इस परम्परा के वर्तमान अधिकांश विद्वान् इस मत को स्वीकार करते हैं।

प्राप्त तथ्यों के आधार पर श्री नन्दराम दिल्ली के परीक्षितपुरा नामक मुहल्ले की दूसरों की गली में रहते थे। सुश्री सहजोबाई के पिता हरिप्रसाद जी इनके दादा थे। चरणदास जी जब ब्रज-यात्रा में गये थे, तभी उन्हें दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) में रहकर धर्म प्रचार की प्रेरणा मिली थी। तदनुसार ये दिल्ली में आकर कुछ दिनों तक अपनी माता कुंजो देवी के यहाँ रहने के उपरान्त नन्दराम जी के निवेदन पर उनके दादा हरिप्रसाद जी (जो चरणदास जी के फूफा थे) के यहाँ आकर भजन-भाव करने लगे। यहाँ उनके निवास के समय उनके उपदेशों से हजारों नर-नारी लाभान्वित हुए। श्री नन्दराम, हरिप्रसाद जी, दासकुँवर, गंगाविष्णु जी आदि हरिप्रसाद जी के ४ पुत्र एवं सहजोबाई जी (हरिप्रसाद जी की पुत्री), आतमराम, आतमराम की पुत्री तूपीबाई आदि लगभग ३० शिष्य उस अवधि में उनके शिष्य बने।[1]

जिस समय नन्दराम जी प्रथम शिष्य के रूप में दीक्षित हुए उस समय उनकी अवस्था १३–१४ वर्ष की थी। उनमें विरक्ति के संस्कार बचपन में ही जागृत हो गये थे। संतशिरोमणि चरणदास जैसे महात्मा के दर्शन, सान्निध्य-लाभ और उपदेश-श्रवण से उनकी इस भावना में गहराई और भी बढ़ गई। श्री नन्दराम के इस आचार-विचार का उनके सम्बन्धियों और अन्य दूसरे भार्गवों पर भी प्रभाव पड़ा तथा बड़ी संख्या में वे लोग श्री चरणदास की ओर आकर्षित हुए।

नन्दराम जी अपने गुरु श्री चरणदास के अत्यन्त प्रिय शिष्यों में से थे। उनमें गुरु के प्रति प्रगाढ़ सेवा-भाव था। दीक्षोपरांत उन्होंने योग सम्बन्धी साहित्य का गहन अध्ययन किया और कठोर अभ्यास करके उन्होंने अनेक सिद्धियाँ अर्जित कीं। उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः दिल्ली क्षेत्र तक ही सीमित रहा लेकिन गुरु के आदेश से उन्हें दो-तीन वर्षों तक जयपुर में भी रहना पड़ा था।

नन्दराम जी का साहित्य—

नन्दराम जी एक अच्छे सत्संगी और भजनानंदी साधु के अतिरिक्त उच्चकोटि के योगी और कवि भी थे। इनकी एक रचना 'योगसार' अब तक उपलब्ध हुई है। यह १६२ युग्मकों का ग्रंथ है। इसमें योगविद्या के प्रायः सभी अंगों-उपांगों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। दोहा, चौपाई, छप्पय, सोरठा आदि छंदों में गुरु-शिष्य सम्वाद के माध्यम से योगशास्त्र के तत्त्वों को काव्यबद्ध रूप से प्रस्तुत

---

१. शिष्य तीस गिन-गिन जो कीये। पूरी टेक देख जिन लीये॥
—लीलासागर : पृ० १९९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा और योगविद्या के प्रगाढ़ ज्ञान का एकसाथ परिचय दिया है। इनका योग सम्बन्धी ज्ञान केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित न होकर स्वानुभव के ऊपर आधारित है। वर्ण्य और वर्णन की विश्वसनीयता असंदिग्ध है। वर्ण्य-विषय के शास्त्रीय पक्ष पर अधिक ध्यान होने के कारण छंद और भाषा-प्रयोग में कवि अपेक्षित सावधानी नहीं रख पाया है। फलतः मात्रा एवं शब्द-प्रयोग की कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। इनकी योगपरक बानी का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

अथ गुरुबचन (चौपाई)—

इड़ा पिंगला सुषमन धारो। आसन ब्रज नागनी टारो॥
द्वादस अंगुल गहो बंध। षट चक्कर लीजै।
जब बाजे अनहद तूर। वहाँ मन निज करि दीजै।
खेचर मुद्रा त्रिकुटी आवै। अमृत पिये परम सुख पावै॥
मेरु दंड को प्राण चलावो। सुन्न सिखर तब नगरी पावो॥
जा नगरी में चंद न भान। पहुँचे साधू चतुर सुजान॥
जहाँ जातिपांति नांव नहिं नाता। सेत स्याम पीत नहि राता॥
जोग जग्य तप तहाँ न दाना। तीरथ बर्त जहाँ नहिं न्हाना॥
किरिया कर्म नहीं जहाँ पूजा। मैं हूँ न तूं है एक न दूजा।
जहाँ सांझ द्यौस नहिं राता। एकै ब्रह्म अखंड विधाता॥
नन्दराम राम की घाटी। पहुँचै गुरु मत सूरा।
औ भी बुद्धवाद बहु ठानैं। करनी करै सो पूरा॥[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्दराम जी भी योग सम्बन्धी प्रायः उन्हीं उक्तियों का आश्रय ले रहे हैं, जो गोरखनाथ, जलंधरनाथ आदि नाथसिद्ध और कबीर-दादू आदि संत कवि पहले ही अपनी बानियों में प्रयुक्त कर चुके थे।

'ब्रह्मविद्यासागर' में नन्दराम जी का 'योगसार' भी सम्मिलित है। यह संग्रह सं १८१९ वि० में तैयार हुआ था। इसमें चरणदासी महात्माओं की बानियाँ संगृहीत हैं। इसकी पांडुलिपि दिल्ली स्थित सहजोबाई जी की गद्दी के दिवंगत महंत गंगादास जी के यहाँ देखने को मिली थी। 'ब्रह्मविद्यासागर' का प्रकाशन प्रथम बार लाहौर से सन् १८९० ई० (सं० १९४७ वि०) में थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा हुआ था। 'योगसार' के रचना काल के सम्बन्ध में उक्त आधार पर कहा जा सकता है कि सं० १८१९ वि० के पूर्व यह कृति रची जा चुकी थी। सम्भवतः इसी को 'हठयोग' नाम देकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के हस्तलेख

१. योगसार (हस्तलिखित) : पत्र सं० ३३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रहालय में सूचीबद्ध किया गया है और इसे आषाढ़ बदी २, सोमवार, सं० १८०६ वि० की रचना बताया गया है। अतः विभिन्न कारणों से इसका रचना काल सं० १८०६ वि० ही तर्कसंगत प्रतीत होता है।

(४२) गुसाईं नागरीदास जी—इनके व्यक्तिगत परिचय को जानने का कोई सूत्र उपलब्ध नहीं होता। जोगजीत जी और रामरूप जी ने इनका जो यत्किंचित् वृत्त दिया भी है, वह चरणदास जी द्वारा इन्हें दी गई दीक्षा के पूर्व और पश्चात् की चमत्कारिक घटनाओं से आवृत्त है। प्राप्त परिचय के अनुसार ये जाति के ब्राह्मण और प्रारम्भ में बल्लभमतानुयायी थे। ये वृन्दावन के पास (तत्कालीन भरतपुर राज्यान्तर्गत) स्थित कामावन के निवासी थे। इनकी दीक्षा से सम्बद्ध जो घटना रामरूप जी ने 'गुरुभक्तिप्रकाश' में वर्णित की है, जोगजीत जी के 'लीलासागर' का वृत्त उससे भिन्न है। रामरूप जी के कथनानुसार ये मूलतः वृन्दावन के निवासी थे लेकिन दीक्षोपरांत कामावन में रहने लगे थे। दीक्षाग्रहण के पूर्व एक बार उनके मन में पुरी (उड़ीसा) जाकर जगन्नाथ जी का दर्शन करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई। कुटुम्ब का मोह छोड़कर वे पुरी की दिशा में चले। फिरोजाबाद में पहुँच कर जब वे रात्रि में सो रहे थे, स्वप्न में स्वयं जगन्नाथ जी ने दर्शन दिया और उन्हें बताया—

कहा कि तुम दुख काहे धारो। बहुत दूर अस्थान हमारो॥
अब तुम उलटे दिल्ली जाओ। हुवाँ तुम दरसन मेरा पावो॥
अंस आपना प्रगट कर, लिया सन्त अवतार।
नाँव धरा चरणदास ही, रूप वैष्णव धार॥
चिन्ह चक्र सबही कहे, और बताई ठाँव।
जोगी तब निश्चय करी, उलटा दिल्ली जावँ॥
—भक्तिराज के निकटे आया। जगन्नाथ सम दरसन पाया॥
वही मुकुट कुण्डल वही, वहि बैजन्ती माल।
रूप साँवरी पीत पट, दरश गये तत्काल॥[1]

इस प्रकार भगवान् जगन्नाथ जी की चतुर्भुजी मूर्त्ति के दर्शन पाकर नागरीदास निहाल हो गये। फिर थोड़ी ही देर में चरणदास जी उनके समक्ष अपने प्रकृत रूप—'सिर पर टोपी सोहनी, तन में चोला पील' वेश में प्रकट हुए।

जोगजीत जी उन्हें मूलतः कामावन का ही निवासी मानते हैं। उनके वर्णनानुसार नागरीदास ने जब यह सुना कि श्री चरणदास को शुकदेव जी ने साक्षात् प्रकट होकर शिष्य बनाया और तब से वे बड़े चमत्कारी महात्मा हो गये हैं—

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १८८–८९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके मन में चरणदास जी का शिष्य बनने की तीव्र इच्छा जागृत हो गई थी। अन्तर्यामी चरणदास जी ने उनकी इस मनःस्थिति को जान ली और स्वप्न में ही उन्हें कंठी बाँधकर मंत्र और तिलक प्रदान किया। प्रातः उठने पर इन दीक्षा चिह्नों को प्रत्यक्ष देखकर वे अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुए। तदुपरांत दिल्ली स्थित चरणदास जी के आश्रम में आकर कुछ दिन व्यतीत करने के बाद वे पुनः भक्तिप्रचार में लग गये।

प्रायः सभी इस बात से सहमत हैं कि दीक्षा के पश्चात् नागरीदास नाम धारण कर ये कामावन में रहने लगे थे। यहाँ किसी स्वतन्त्र गद्दी का निर्माण उन्होंने किया था, इसका पता नहीं चलता। इनके बाद वहाँ की शिष्य-परम्परा चली या नहीं, इसे जानने के प्रमाण प्राप्त नहीं होते। फिर भी ५२ बड़ी गद्दियों की सूची में कामावन की गणना होती है।

श्री नागरीदास का साहित्य—

१. भाषा भागवत—सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में इनका योगदान भले ही कम रहा हो परन्तु साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में इनका स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इन्होंने 'भाषाभागवत' नामक एक विशालकाय ग्रंथ की रचना की है। यह मूलतः श्रीमद्भागवत के आरम्भिक नौ स्कंधों का भावानुवाद है। नागरीदास जी द्वारा रचित इस कृति की रचना मिति वैशाख शुक्ल तृतीया सं० १८३२ वि० से आरंभ हुई थी। इसकी समाप्ति का वर्ष सं० १८४५ वि० से पूर्व होना चाहिए। इनके आश्रयदाता एवं शिष्य तुल्य श्री छाजूराम हल्दिया का निधन सं० १८४५ वि० में हुआ था। यह ग्रंथ उन्हें ही समर्पित है अतः इसकी समाप्ति का काल उसके पूर्व ही मानना तर्कसंगत है। इसकी रचना अलवर के समीपस्थ राजगढ़ के राव राजा प्रतापसिंह नरूका के दीवान (जयपुर राज्य के दीवान राव खुशाली राम हल्दिया के पिता) श्री छाजूराम जी के निवेदन पर हुई थी।[1] छाजूराम जी ने नागरीदास जी को हाथी, घोड़े और प्रभूत दान-दक्षिणा देकर अपना गुरु बनाया था।

---

१. कूरम कुल मधि प्रगट नृपति जोरावर सिंह वर,
अंबरीष ज्यूं भक्तिवान जनन में करुनाकर।
भये मुहब्बतसिंह पुत्र तिनके जु महारत,
राजा राव प्रतापसिंह तिन सुत सम पारथ।
अरि प्रबल निबल कीन्हें जु निशि,
निज भुजदंड प्रताप करि।
भनी नागर अटल सुरेश ज्यों,
रहोसदा सिर छत्र धरि॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके श्लोकबद्ध अनुवाद न होकर मात्र भावानुवाद होने की ओर कवि ने स्वयं इन शब्दों में संकेत दिया है—

श्री शुक चरणदास के, बैठ चरण की नांव।
रे मन अलि भज पार हो, भलो बन्यो है दाव ॥
श्री शुक चरणदास के, चरण सरोज मनाय।
आशय श्री भागौत को, भाषा कियौ बनाय ॥

इसकी प्रथम प्रतिलिपि सं० १८५८ वि० में हुई थी। इसकी कई पांडुलिपियाँ ज्ञात हैं—(१) वैरिगढ़ में (२) बख्शी लक्ष्मणराम हल्दिया (जयपुर) (३) चौथमल सर्राफ (कलकत्ता) के यहाँ। इसकी पांडुलिपि वृन्दावन के स्व० रूपमाधुरीशरण जी के स्थान में भी है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसकी रचना में प्रयुक्त सभी छंद वार्णिक हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं, जिनका प्रयोग काव्य में सामान्यतया हुआ ही नहीं है, जैसे अमृतवल्ली, मोतीदान, मधुभार, सारूप, लक्ष्मीधर और वाचहारी आदि। इससे पता चलता है कि नागरीदास गोसाईं काव्य-रचना में पूर्णतः पटु और सिद्धहस्त थे। प्रायः अत्यन्त जटिल और अप्रयुक्त छंदों का प्रयोग करके उन्होंने अपने छंद शास्त्रज्ञ होने एवं भाषा पर प्रभूत अधिकार प्राप्त करने की क्षमता प्रमाणित कर दी है।

'मधुभार छंद' का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है—

जय जय अनंत जिनको न अंत। बल अति प्रचंड सत सो अखंड।

'सारूपा छंद' का उदाहरण—

चोरी गोरी बाला जै। पहने इतने माला जै ॥
ताको नाथा मारचो तैं। तो पावों को वंदे हौं ॥

इसके प्रत्येक अध्याय के अंत में ये दो पंक्तियाँ अविकल रूप से लिखी गयी हैं—

सुखदेव मुनि की कला कलि हरि चरनदास सुनाम।
तिन धरचो नागरीदास सिर कर सकल पूरनकाम ॥

इसकी अनुवाद की शैली भावानुवाद की है और व्याख्यापरक भी है। उन्होंने मूल पाठ से केवल उन्हीं श्लोकों का अनुवाद किया है, जो इनकी दृष्टि में अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत हुई हैं। 'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' वाले गीता के श्लोक का इनके द्वारा किया गया अनुवाद इस प्रकार है—

छंद पद्धरी— जब जब सुधर्म को नाश होत, मन करत पाप सबके उदोत।
तब तब सुईश अवतार लेत, हनि असुरन सुख साधून देत।
हरि को न जन्म करि काज कोय, नहिं कर्म नरूँ कर हेत होय।
यह सब हरि की माया सुजान, सबके द्रष्टा प्रभु को सुमान ॥[1]

१. भाषा भागवत (पाण्डुलिपि) : ८।२४।४६–४७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञातव्य है कि पूर्व सूचित चार स्थानों के अतिरिक्त इनकी 'भाषा भागवत' की पाण्डुलिपियाँ कई अन्य स्थानों पर भी बिखरी हुई हैं। इस ग्रंथ के नवम् स्कन्ध की एक पाण्डुलिपि दिल्ली में महंत प्रेमदास जी के यहाँ भी है। इसके प्रतिलिपिकर्त्ता सहजोबाई जी के प्रशिष्य (अगमदास जी के शिष्य) श्याममनोहर जी हैं।

गुसाईं नागरीदास जी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। संस्कृत, खड़ीबोली और ब्रजभाषा के मिश्रित भाषा-रूप को अपना कर इन्होंने अपनी काव्य-भाषा का रूप निर्मित किया था। इनकी रचना में उर्दू फारसी शब्दों के प्रयोग बिलकुल नहीं हैं। यह ग्रंथ सर्वतोभावेन पठनीय एवं प्रकाश्य है।

२. श्रीमद्भागवत गीता भाषा—'श्रीमद्भागवत भाषा' की ही भाँति नागरीदास जी ने राव खुश्यालीराम हल्दिया के पठनार्थ सं० १८३६ वि० (ज्येष्ठ सुदी ९, रविवार) में गीता का भी पद्यबद्ध अनुवाद किया था। यह गीता का श्लोकबद्ध अनुवाद है।[1] इसके आरम्भ में कवि ने जयपुर नरेश सवाई श्री प्रतापसिंह जी की वंशावली दी है। तत्पश्चात् खुश्याली राम जी की प्रशंसा इन शब्दों में की है—

श्री प्रतापसिंह भूप के, मन्त्री राव खुश्याल।
अरि भक्षक पक्षक सुहृद, सरनागत प्रतिपाल॥
ससि सम सीतल निज जनन, बैरिन दुसह सुभान।
विप्र बैस्नवन को सदा, करे अधिक सनमान॥
बेद पुरानन के बचन, जाको दृढ़ विश्वास।
सदा धरम में चित बसै, हरि भक्तन को दास॥

इस रचना में नागरीदास जी ने आश्रित कवियों की भाँति राजगढ़, अलवर और जयपुर के तत्कालीन नरेशों की प्रशस्ति के साथ-साथ श्री छाजूराम हाल्दिया के वंश में उत्पन्न भूत और समकालीन महापुरुषों का जमकर गुणगान किया है।

सब मिलाकर कहा जा सकता है कि गुसाईं नागरीदास जी चरणदासी प्रारंभिक कवियों में तथा दरबारी कवियों की टक्कर में भी श्रेष्ठ प्रमाणित होते हैं।

---

१. राव खुस्याली राम की, गीता पाठ सु प्रीति।
कही नागरीदास सूं, निज सुहेत की रीति॥
सलोक सलोक की कीजिए, भाषा दोहा माँहि।
गीता नाइक कृष्ण के, समझे हम पे जाहि॥
—भाषा श्रीमद्भागवत गीता (पाण्डुलिपि) : दोहा सं० ४–५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नागरीदास गोसाईं कृत 'बानी' संज्ञक एक रचना की सूचना नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के हस्तलिखित पुस्तकों के संक्षिप्त खोज विवरण में है।[1] यह बानी संग्रह इन्हीं नागरीदास का है, ऐसा मानने का आधार यह है कि इसका सूचित प्राप्तिस्थान (बाबू जगन्नाथप्रसाद, प्रधान अर्थ लेखक—छतरपुर) वही स्थान है, जहाँ से पचासों चरणदासी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। अतः यह मानने का पूरा आधार है कि इनके यहाँ से प्राप्त यह कृति नागरीदास गोसाईं की ही रचना है।

(४३) दयाबाई—ढूसर भार्गव वंशीय सुश्री दयाबाई इस सम्प्रदाय में उच्चकोटि की कवयित्री हुई हैं। इनकी और सहजोबाई जी की बानियाँ बेलेवेडियर प्रेस, प्रयाग से बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी हैं। सन्त कवयित्री के रूप में इन दोनों को हिन्दी साहित्य में निर्विवाद रूप से मान्यता प्राप्त हुई है। इनके गुरु चरणदास जी सगुण साधक थे या निर्गुण इस प्रश्न पर विवाद हो सकता था परन्तु दयाबाई जी को निर्गुण सन्त के रूप में ही माना जाता है। यही बात सहजोबाई जी के लिए भी है। सुश्री दयाबाई और सहजोबाई के परिवार एक दूसरे से सम्बन्धित थे। चरणदास जी भी ढूसर थे और ये दोनों देवियाँ उनके सम्बन्धियों के परिवारों से थीं। सम्भवतः इसी कारण श्री चरणदास को निकट से देखने-परखने का इन्हें अवसर मिला था और भली-भाँति समझ-बूझकर ही इन लोगों ने उन्हें गुरु रूप में स्वीकार किया था। अपने अन्य शिष्यों की भाँति इन दोनों की दृष्टि में भी चरणदास जी का स्थान भगवान से कम न था।

दयाबाई जी का विस्तृत व्यक्तिगत परिचय अप्राप्त होना अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। इनके माता-पिता तथा परिवार आदि के विषय में इनके समकालीन एवं वरिष्ठ गुरुभाई राजरूप जी और जोगजीत जी ने अपनी संत-लीलावर्णन परक कृतियों में कोई संकेत नहीं किया है। इनके पदों में 'दयाकुँअर' और 'दयादास' की छाप मिलती है। अनेक प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि ये आजीवन कुँआरी रहीं। इन्होंने बचपन में ही गुरु-दीक्षा ग्रहण कर ली थी और विरक्त भाव से रहने लगी थीं। श्री जोगजीत ने इनके स्वभाव और साधनागत उपलब्धियों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए इनके लिए इस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया है—

ढूसर कुल में प्रगट भई, दयाबाई सिरताज।
शरण लई गुरुमुख भई, कृपा पात्र महाराज॥

---

१. हस्तलिखित-हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त खोज विवरण : भाग १, पृ० ४८९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालापन में गुरु अपनाई। जग में पगन नेक नहिं पाई।
हरि रंग में गुरु रंग दीनी। ज्ञान ध्यान में पूरण कीनी॥
प्रेमा परा भक्ति प्रगटाई। श्री हरिगुरु से लगन लगाई।
सर्व सुलक्षण जगत उजागर। शील क्षमा जत सत को सागर॥[1]

इनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः कानपुर, बिठूर और प्रयाग था। इन स्थानों पर इनके अन्य कई गुरुभाई भी स्वतन्त्र स्थान बनाकर धर्मप्रचार में रत थे। इनकी समाधि कानपुर के पास रमेल नामक स्थान में बनी हुई है। इनके कुछ शिष्यों ने बिठूर और प्रयाग में भी स्थान बनाये थे।[2]

कानपुर में सुश्री दयाबाई से सम्बन्धित अनेक स्थान निर्मित हुए थे, जिनमें से अभी भी कुछ सुरक्षित हैं। कानपुर चौक स्थित बिहारी जी का मन्दिर भी आगे चलकर इनकी शिष्य-परम्परा के नियन्त्रण में आ गया था। बिठूर और उसके आस-पास दयाबाई जी के अनेक मठ-मन्दिर और उपासना स्थल स्थापित हुए थे इनमें से निम्न विशेष उल्लेखनीय हैं—(१) धर्मशाला शाह जी (ब्रह्मावर्त घाट पर बारादरी में स्थित और सम्प्रति भुवननाथ पण्डा के वंशजों के अधीन) (२) शम्भु जी का मन्दिर (सुश्री दयाबाई की प्रधान गद्दी का स्थान और ब्रह्मावर्त घाट पर निर्मित भव्य मन्दिर) (३) हिकेतराम का मन्दिर (शम्भु जी के मन्दिर के सामने स्थित मन्दिर) (४) मन्दिर शंकर भगवान (बिठूर के निकट स्थित परिहर गाँव में निर्मित मन्दिर, जिसमें जीवन के अन्तिम काल में दयाबाई ने निवास किया था।) (५) बाँके बिहारी जी का मन्दिर (बिठूर बसस्टेशन से ब्रह्मावर्त घाट की ओर जाने वाली सड़क पर स्थित, सम्प्रति शिवदत्त पुजारी की देख-रेख में) और (६) रमेल गाँव का स्थान, जहाँ दयाबाई जी की समाधि एवं छत्री आदि बनी हुई हैं।

इनके जन्म और निधनकाल के संबंध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का आधार मौजूद है। श्री जोगजीत जी ने 'लीलासागर' की रचना सं० १८११ वि० में आरंभ की थी। सं० १८१९ वि० में इसकी रचना पूर्ण हो गई थी। इस अवधि तक दयाबाई की बहुत सी बानियाँ रची जा चुकी थीं और इन्हें जोगजीत जी ने भलीभाँति पढ़ा भी था। उन्होंने किसी की भी बानी के संबंध में विस्तार से नहीं लिखा है। दयाबाई जी अपवाद हैं। उनकी बानियों की चलते रूप में प्रशंसा

---

१. लीलासागर : पृ० २२८।

२. इनके एक शिष्य हीरादास जी को मिति फागुन बदी ४, शनिवार सं० १८४५ वि० को 'भक्तिसागर' की एक हस्तलिखित प्रति भेंट की गई थी। यह ग्रंथ संप्रति चरणदास जी के प्रधान थाँभे के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र न करके उन्होंने विस्तार से उनका परिचय भी दिया है। 'लीलासागर' की रचना सं० १८१९ वि० में पूर्ण हो चुकी थी परन्तु उसका प्रचार अपने परलोकवास तक गुरु द्वारा रोक दिया गया था; अत दयाबाई जी के कवि रूप का अभ्युदय सं० १८१९ और १८३९ वि० के बीच में हुआ, ऐसा मान भी लें तो भी कोई अन्तर नहीं आता। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि सहजोबाई जी का जन्म सं० १७८२ वि० में हुआ था। सं० १८०० के आस-पास उनकी बानियाँ प्रसिद्ध होने लगी थीं। अतः यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि दयाबाई जी का जन्म सं० १७८५ वि० के आस-पास हुआ होगा। सहजोबाई जी की प्रेरणा से वे संत जीवन में आई होंगी और उनकी भी बानियाँ सं० १८१० वि० के आस-पास प्रसिद्धि को प्राप्त हो गई होंगी।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इनका स्वर्गवास काल सं० १८३० वि० माना है। उन्होंने इसके लिए 'संतमाल' नामक ग्रंथ के एतत्संबंधी कथन को साक्ष्य रूप में स्वीकार किया है। इस 'संतमाल' का रचयिता कौन है, कब की रचना है—इन प्रश्नों का समाधान चतुर्वेदी जी ने नहीं दिया है। 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' की पुस्तक सूची में इसका नामोल्लेख नहीं है।

यदि सं० १८४० वि० के पूर्व दयाबाई जी का निधन हुआ होता तो श्री जोगजीत ने 'लीलासागर' में इसका उल्लेख अवश्य किया होता। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ये सं० १८५० वि० तक अवश्य जीवित थीं। इसी प्रकार चतुर्वेदी जी की यह मान्यता कि उन्होंने सं० १७५० वि० से लेकर १७७५ तक सत्संग किया था, दयाबाई जी के जन्मकाल को सं० १७४० वि० के आस-पास ले जाती है, जो माने योग्य नहीं है।[1] सं० १७६० वि० में तो चरणदास जी का ही जन्म हुआ था अतः इनका जन्मकाल सं० १७८० वि० से पूर्व मानना तर्क-संगत नहीं है। 'दयाबोध' की रचना का काल कवयित्री ने स्वयं दे दिया है। इसके अनुसार यह चैत्र सुदी सात, सं० १८१८ वि० है। सं० १८१९ वि० में 'ब्रह्मविद्यासागर' नामक इस संप्रदाय का प्रथम बानी संग्रह तैयार हुआ था। इसमें अन्य चरणदासी कवियों के साथ ही दयाबाई जी की बानियाँ भी संगृहीत हैं।

सुश्री दयाबाई की बानियों का एक संग्रह उस समय तक 'दयाबोध' के नाम से तैयार हो चुका था, जिसकी प्रशंसा उनके गुरुभाई श्री जोगजीत अपने 'लीलासागर' में इस प्रकार कर रहे हैं—

दयाबोध शुभ ग्रंथ बनायो। संत महंतन के मन भायो॥
दोहा चौपाई की रचना। अमृत मई मनोहर बचना॥

---

१. उत्तरी भारत की संत परंपरा : द्वितीय संस्करण, पृ० ७२२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अंग गुरु वर्णन कीनो । सुमिरन को पुनि रचो नवीनो ।।
सूरातन को अंगहु गायो । प्रेम अंग उत्तम प्रगटायो ।।
बैरागहु को अंग सुनि, कथन कियो निरधार ।
श्रवण करे से स्वप्न सम, दीख पड़े संसार ।।
साधु अंग आनंद मई, वर्णन कीनो खूब ।
सन्तन की सेवा किये, मिले कृष्ण महबूब ।।
अजपा जप के अंग में, दई बात सब खोल ।
सुरति श्वाँस से होत है, सुमिरन अति अनमोल ।।[1]

इस प्रकार जोगजीत जी ने 'दयाबोध' के विविध अंगों के नामकरण की भी सूचना दे दी है । साथ ही प्रत्येक अंग में समाविष्ट साखियों और बानियों के प्रभाव के विषय में भी उन्होंने बतलाया है । अन्त में 'दयाबोध' के अध्ययन मनन की फलश्रुति भी उन्होंने इन शब्दों में दे दी है—

पढ़े सुने जो प्रेमी प्यारा । उपजे हिय आनंद अति भारा ।।
सूक्षम वाणी अर्थ अपारा । वेद पुरान शास्त्र को सारा ।।
दयाबोध वार्णा विदित, पढ़े प्रीत कर कोय ।
श्री हरिगुरु की भक्ति दृढ़, तिनको प्रापत होय ।।[2]

छन्द और भाषा प्रयोग की दृष्टि से जोगजीत जी के शब्दों में यह 'दयाबोध' 'वाणी अमल गुण अनन्त अधिकाय' के रूप में सब प्रकार से निर्दोष कृति है ।

श्री आतमराम इकंगी के शिष्य श्री लच्छीदास के साथ ही दयाबाई जी की कुल १३६ साखियाँ श्री 'लक्षिदास ग्रंथावली' में संगृहीत हैं, जो सरसकुंज–जयपुर में उपलब्ध है । अंगानुसार इसकी साखियों की संख्या का विवरण इस प्रकार है—

१. गुरुदेव को अंग	२२	साखियाँ ।
२. सुमिरन को अंग	८	,, ।
३. सूरातन को अंग	९	,, ।
४. प्रेमप्रीत को अंग	२०	,, ।
५. वैराग को अंग	१५	,, ।
६. साध को अंग	१८	,, ।
७. अजपा को अंग	४५	,, ।
कुल सं०	१३६	,, ।

१. लीलासागर : पृ० २२८ ।
२. वही : पृ० २२८–२९ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगों के नामकरण का यह क्रम श्री जोगजीत द्वारा वर्णित क्रम से पूरा-पूरा मेल खाता है। अतः स्पष्ट है कि 'दयाबोध' मात्र १३६ साखियों का ग्रंथ है। फिर भी इसको पर्याप्त महत्व दिया गया है। बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ने 'दयाबोध' को प्रकाशित किया ही, साथ ही 'संतबानी संग्रह' में भी इनकी चुनी हुई साखियों का समावेश करके उन्हे अन्य संत कवियों के समान आदर प्रदान किया।

कहा जाता है कि सुश्री दयाबाई को 'अजपा' सिद्ध थी। इस ओर संकेत करते हुए जोगजीत जी ने कहा भी है—

कर माला मुख की करी, तासे ना कछु काम।
लगी रहै इकरस सरस, निस दिन आठो जाम॥[1]

अपने सद्गुरु में इनकी गहन श्रद्धा थी। वे उन्हें ईश्वर के समान मानती थीं। उनके विचार से सभी लोगों को अपने गुरु के लिए ऐसी ही दृष्टि इष्ट है। जो अपने सद्गुरु को मानव मानता है वह पशु-तुल्य है।[2] जन साधारण की सामान्य मनोवृत्ति यह है कि वह साधु पुरुष को शंका की दृष्टि से देखता है और बिना सोचे-समझे उसकी निंदा में प्रवृत्त होता है। यही सच्चे साधु की परीक्षा होती है। यदि वह निंदा-स्तुति से विचलित रहेगा तब उसे साधना मार्ग में सफलता नहीं मिलेगी। उसे तो युद्ध क्षेत्र में जूझ रहे शूरमा का आदर्श सामने रखकर दृढ़ भाव से आगे बढ़ना है, तब उसे उसके आराध्य की प्राप्ति हो सकेगी।[3]

सुश्री दयाबाई ने आध्यात्मिक प्रेम-विरह की बड़ी ही मार्मिक अनुभूति व्यक्त की है। उनकी अभिव्यक्ति में गहरी विरह-भावना का कारुणिक चित्र उभरता है। उस पीड़ा को वही समझ सकता है, जिसने स्वयं उसको झेला हो। उनकी विरह व्यथा का एक शब्द-चित्र द्रष्टव्य है—

काग उड़ावत थक्यो कर, नैन निहारत बाट।
प्रेम सिंधु में परयो मन, ना निकसन को घाट॥
बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवै केहि ओर।
छिन उट्ठूं छिन छिन गिरूँ, राम दुःखी मन मोर॥

---

१. लीलासागर : पृ० २२९।

२. सद्गुरु ब्रह्मसरूप हैं, मानुष भाव मत जान।
देह भाव माने दया, ते हैं पसू समान॥
—संत बानी संग्रह–भाग १, पृ० १६८।

३. सूरा सनमुख समर में, घायल होत निसंक।
जो यों साधू संसार में, जग के सहै कलंक॥ —वही : पृ० १७९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहूँ धरत पग परत कहुँ, डगमगात सब देह।
दया मगन हरि रूप में, दिन दिन अधिक सनेह ॥[1]

जहाँ साधक दीन भाव से अपने प्रियतम को पुकारता और अपना विरह-निवेदन सुनाता है, वहीं जब उसे लगता है कि उसकी पुकार नहीं सुनी जा रही है और उपेक्षा हो रही है तो वह खरी-खोटी सुनाने पर भी उतर आता है। ऐसी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं—

कब को टेरत दीन ह्वै, सुनत न नाथ पुकार।
की सरवन ऊँची सुनो, की बिर्द दियो बिसार ॥
सीस नवों तो तुमहिं कूँ, तुमहिं सूँ भाखूँ दीन।
जो झगरों तो तुमहिं सूँ, तुम चरनन आधीन ॥[2]

नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरण में दयाबाई को जिन दो ग्रंथों का रचयिता बताया गया है उनमें से 'दयाबोध' के अतिरिक्त उनका दूसरा ग्रंथ है—'विनयमालिका'।

सहजोबाई जी की दिल्ली स्थित गद्दी के कुछ दिनों पूर्व दिवंगत महंत गंगादास जी के यहाँ दयाबाई जी की 'बानी' नामक एक बानी संग्रह की पाण्डुलिपि है, जिसमें साखियों के अतिरिक्त इनके कुछ पद भी संकलित हैं। सम्भवतः यही 'विनयमालिका' की पांडुलिपि है।

इस 'विनयमालिका' में सुश्री दयाबाई के स्फुट पदों का संग्रह है। जहाँ 'दयाबोध' इनके सन्त कवयित्री होने का भ्रम पैदा करता है और उसी के आधार पर इन्हें सन्त या निर्गुण परम्परा में परिगणित किया गया है, वहीं 'विनयमालिका' में श्रीकृष्ण और राधा के लीलागान सम्बन्धी पदों का ही समावेश है। इनमें से अधिकांश पदों में उन्होंने अपने नाम के साथ 'सखी' या 'दासी' शब्द का भी प्रयोग किया है, जो चरणदासी कवियों की परम्परा में सुपरिचित विशेषण है। इनके 'शृंगार-विरह' का एक पद इस प्रकार है—

॥ राग माँझ ॥

श्याम रंग अरु नयन सलोने अलक रही बल खाई।
मोर मुकुट सिर अधिक बिराजे मुरली मधुर बजाई ॥
मुक्ताहल नासा बिच राजे लाल अधर पर वारी।
दासी दया दरस की प्यासी किरपा करो बिहारी ॥

---

१. दयाबोध—प्रेमप्रीत को अंग, दोहा सं० १२–१४।
२. सन्तबानी संग्रह : भाग १, पृ० १७७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शैली का इनका एक अन्य पद द्रष्टव्य है—

॥ राग माँझ ॥

मोहन मो पै कही न जाई दिव्य दृष्टि अति प्यारी।
बसि गई हिरदय माँहि हमारे निकसत नाँहि निकारे॥
कहा करूँ कित जाउँ सखी री हरि बिन रह्यो न जाई।
दासी दया चरण पर वारी आनि मिलो सुखदाई॥

'राग धमाल' में रचित निम्न पद में श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है—

कोई बतलाओ री मुरली वाला कान्ह।
बिन देखे घनश्याम के मेरे महा विकल हैं प्रान॥
मुरली मधुर बजाइया री जाकी अद्भुत घोर।
धुनि सुनि कर मन बस भयो मेरे चित को लै गयो चोर॥
मोर मुकुट माथे बन्यो री अलक रही बल खाय।
साँवरि सूरत लाल की मेरे हिय में रही समाय॥
पीताम्बर को चोलना री गल बैजन्ती माल।
केसर तिलक सोहावनो सोभा बनी बिसाल॥
चरणदास चेटक कियो री ऐसो रूप बताइ।
दासी दया इस साँवरे की छबि ऊपर बलि जाइ॥

इस प्रकार के अनेकानेक उद्धरणों से सिद्ध किया जा सकता है कि सुश्री दयाबाई सगुण वैष्णव भक्त थीं, निर्गुण या सन्त कवयित्री नहीं थीं।

(४४) दाताराम जी—दाताराम जी संत चरणदास जी के प्रिय शिष्यों में से थे और उनके जीवनकाल में ही उन्होने नारनौल जिले के लुजीड़ा नामक स्थान में अपना स्वतंत्र आश्रम स्थापित कर लिया था। इनका पूर्ववृत्त अज्ञात है। इनके गुरुभाई जोगजीत जी ने इनके स्वभाव और स्वरूप की प्रशंसा करते हुए बताया है कि ये अत्यन्त मृदुभाषी और आकर्षक व्यक्तित्व के महात्मा थे। यों तो वे पूर्ण अनासक्त तथा उच्चकोटि के साधक थे परन्तु उनकी सुन्दरता के कारण अनेक महिला सत्संगियों का उनकी ओर आकर्षित होना लोकापवाद मूलक था। 'लीलासागर' के अनुसार इनकी प्रसिद्धि से प्रभावित होकर कोई राजपुरुष इनका शिष्य बन गया था। इनके आश्रम में सुन्दर स्त्रियों की भीड़ देखकर उसे इनके चरित्र के संबंध में शंका होती थी। एक बार उसने चरणदास जी से जाकर इनकी इस विषय में निन्दा भी की। जब यह बात दाताराम जी को ज्ञात हुई तो उन्होंने अपनी पुरुषेन्द्रिय को ही काटकर उस शंकालु शिष्य के समक्ष रख दी, जिससे उसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी ग्लानि हुई। उसने अपने ऊपर लगे इस पाप से मुक्त होने के लिए बड़ी दान-दक्षिणा दी और यज्ञादि का आयोजन किया। अंततः दाताराम जी ने अपने उपदेश द्वारा उसे आश्वस्त किया।[1]

जोगजीत जी के अनुसार इनकी साखियाँ मनोमुग्धकारी और प्रभावोत्पादक थीं। दाताराम जी सदा भक्ति में तल्लीन रहने वाले और अच्छे वक्ता थे।[2] उनके आश्रम में भजन-कीर्तन की अविरल धारा प्रवाहित होती थी और आस-पास के नर-नारी उमड़े पड़ते थे। जहाँ एक ओर इनकी इतनी ख्याति और समृद्धि थी, वहीं वे स्वयं फक्कड़ फकीर की भाँति रहते थे और दूसरों को भी उसी प्रकार रहने का उपदेश देते थे। उनकी बानी की एक बानगी द्रष्टव्य है—

भाई खिन खूब फकीरी लीजै।
आड़बन्ध दृढ़ शील कछौटी शब्द गांठ कर लीजै॥
चोला ग्यान छमा की टोपी तिलक उन्मनी कीजै।
जत की तोड़ा पांव बिराजै सत की सेली कीजै॥
अकल की चादर मुक्ति बिछौना सुषमन तकिया कीजै।
दाताराम चरणदास दया सूं प्रेम पियाला पीजै॥[3]

दाताराम जी का यह पद 'ब्रह्मविद्या सागर' नामक संग्रह से लिया गया है। चरणदासी संतों की बानियों का यह संग्रह मूलतः सं० १८१९ वि० में तैयार हुआ था। तब चरणदास जी वर्तमान थे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि तब तक दाताराम जी अच्छे साधक और बानी-रचयिता के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि उनका जन्मकाल सं०

---

१. नर नारी बहुतक जहाँ आवें। कथा कीर्त्तन तिन्हें सुनावें॥
हाकिम वहाँ का सिष भया जोई। देखि तियन मन दुविधा होई॥
कहि इन गुरु कर शोभा नाहीं। जिन्हें त्रियन को संग सुहाई॥
यों ही उन जा कही हुजूरे। त्रियन संग करें, नहिं पूरे॥
सुनि तिन मन में ग्लानि उपाई। भया विमुख अज्ञान पराई॥
काटि सु लिंग इन्द्री कर लीनी। बहुरी हाथ वाके में दीनी॥
देखि सहम परा चरण अयाना। धिक-धिक आपन को बहु माना॥
—लीलासागर : २९३।

२. साखी तिनकी लागे प्यारी। सुनकर मोद बढ़ावन हारी॥
निसदिन जिन्हें हरि भक्त पियारी। रहें ज्यूं मीना नीर मंझारी॥
—वही : पृ० २९३।

३. ब्रह्मविद्यासागर (पांडुलिपि) : पत्र सं० ४०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७८०–९० के बीच होगा। ये मूलतः नारनौल जिले के लुजीड़ा नामक स्थान के निवासी रहे होंगे। गुरु से दीक्षा लेने के कुछ दिनों पश्चात् उन्होंने वहीं अपना कार्यक्षेत्र बनाया होगा।

इनकी 'बानी' महंत प्रेमदास (दिल्ली) के यहाँ है। मुझे अभी तक इसे देखने का अवसर नहीं मिला। 'ब्रह्मविद्यासार' में संगृहीत पदों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी भाषा स्वच्छ तथा शसक्त है। 'राग केदारा' में रचित गुरुमहिमा गान विषयक इनका निम्न पद इस तथ्य की संपुष्टि करता है—

गुरु सम जग में कौ। उदार।
अवगुण तज गुण देत शिष्य को करन हेतु निस्तार॥
शिष्य लोह पारस सम सतगुरु परसत कंचन होवै॥
गुरु उपदेस हृदय में धारौ ज्यों किरपण धन राखै॥
दाताराम भजौ निसि बासर चरणदास गुरु भाखै॥

—(जगदीश जी राठौड़ द्वारा संगृहीत)

लुजीड़ा का थाँभा—

लुजीड़ा (जिला–नारनौल) स्थित इनकी प्रधान गद्दी का वृत्त प्राप्त नहीं होता। फिर भी सं० १९५२ वि० तक इसके चलते रहने का प्रमाण उपलब्ध है। सं० १९५२ वि० में माचल के महंत सेवादास द्वारा आयोजित सत्रहवीं के मेले में यहाँ के महंत गोपालदास अपने एक अन्य थाँभे (संभवतः जैनाबाद थाँभे के) के महंत के साथ उपस्थित हुए थे। संभवतः ये दाताराम जी के पौत्र शिष्य रहे होंगे। इस गद्दी का सं० १९६० वि० के पश्चात् का वृत्त न मिलने का एक कारण यह भी है कि इस थाँभे के महंतगण रिवाड़ी के पास ग्राम जैनाबाद (जिला–महेन्द्रगढ़) के स्थान पर आ गये थे। इस परंपरा के वर्तमान महंत श्री लालदास जी अभी भी यहाँ रहकर संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में रत हैं।[1] जैनाबाद की महंत परंपरा की वंशतालिका इस प्रकार है—

गद्दी जैनाबाद (ग्राम एवं पोस्ट जैनाबाद, जिला–महेन्द्रगढ़)

दाताराम जी (श्री चरणदास के शिष्य)—ऊधोदास जी—श्री राधाकृष्ण दास—बालकदास जी—लेखरामदास जी—श्री गाहड़दास—सेवादास जी—लालदास जी (वर्तमान)। यहाँ का मन्दिर महंत ऊधोदास जी द्वारा बनवाया गया है। इसलिए इसका नाम 'मन्दिर बाबा ऊधोदास जी' पड़ गया है। यहाँ प्रत्येक होली के दूसरे

---

१. रिवाड़ी (नईबस्ती) के वर्तमान चरणदासी महात्मा श्री हरिदास की के दिनांक २६–११–८१ के एक पत्र द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर दाताराम जी के जैनाबाद थाँभे की जानकारी प्राप्त हुई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन बहुत बड़ा मेला होता है। इस मेले में अब भी अनेक चमत्कारों के प्रदर्शन होते हैं।

(४५) जोवनदास जी—दिल्ली की घास की मंडी नामक मुहल्ले के ढूसर भार्गववंशीय श्री जीवनदास जी एक सम्पन्न गृहस्थ थे। ये चरणदास जी के प्रिय शिष्य श्री आतमराम इकंगी के पिता एवं चरणदास जी की शिष्या नूपीबाई जी के दादा थे। अपने पुत्र आतमराम इकंगी और अपनी पौत्री नूपीबाई की भाँति स्वयं भी वे चरणदास जी के शिष्य हो गये थे। जब उनके पुत्र आतमराम ने चरणदास जी का शिष्यत्व धारण कर लिया और दिल्ली के अनेक ढूसरवंशीय गृहस्थ उनसे दीक्षा ग्रहण करने एवं सत्संग में रुचि लेने लगे तो इन्हें भी चरणदास जी की शरण में आने की प्रेरणा मिली। इनके सम्बन्ध में जोगजीत जी की यह उक्ति यहाँ उद्धरणीय है—

पूरे सन्त भए सुखदाये। ज्ञान ध्यान सब गुरु समझाये॥
महाराज के आज्ञाकारी। तारन तरन भये अधिकारी॥

× × ×

जग जंजालहि त्याग के, सन्त भए सुख चैन।
जोगजीत सुमिरा करें, गुरु गोविन्द दिन रैन॥[1]

जिस समय ये गृहस्थ जीवन में थे, चरणदास जी इनके यहाँ प्रायः आया-जाया करते और निवास किया करते थे। इनका पूरा परिवार ही उनका शिष्य था। दीक्षा ग्रहण करके विरक्त बाना धारण करने के उपरान्त अपने गुरुभाई सबगतराम (प्रथम) के साथ ये दिल्ली के समीपस्थ बाभनौली नामक ग्राम के एक बगीचे में आश्रम बनाकर रहा करते थे। सबगतराम (प्रथम) का जन्म यहीं हुआ था। इनके स्थान पर श्री जोगजीत जी, रामरूप जी और अन्य कई गुरुभाइयों के जाने और सत्संग करने का उल्लेख मिलता है। ये स्वभावतः साधु सेवी और साधन-संपन्न थे।[2]

बाभनौली का थाँभा—

तह० बड़ौत, जिला मेरठ के इस स्थान की शिष्य परम्परा सम्भवतः आगे नहीं चली। इनके दूसरे सहयोगी श्री सबगतिराम ने अपना स्वतंत्र स्थान मेरठ नगर के पाड़ामल के बाड़ा में स्थापित किया था। अनुमानतः जोवनदास जी के परलोकवास के पश्चात् श्री सबगतिराम ने बाभनौली का वह स्थान छोड़ दिया और अपने स्वतंत्र स्थान को ही निवास-स्थल बना लिया। जीवनदास भी कवि थे,

१. लीलासागर : पृ० ३०६।
२. नवसंतमाल : पृ० ७०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु इनकी बानियों का अभी तक पता नहीं चल पाया है। अन्तः एवं वहिसाक्ष्यों के आधार पर इनका परलोकवास अनुमानतः सं० १८५० वि० के आस-पास और जन्मकाल सं० १७७५ वि० के लगभग माना जा सकता है। इनके सुपुत्र आतमराम ही इनकी ज्येष्ठ सन्तान थे या नहीं, इसका पता नहीं चलता परन्तु उनका जन्मकाल सं० १८०३ वि० निश्चित है। उस समय जीवनदास जी की आयु २८ वर्ष की रही होगी। यदि इनके दीक्षा-काल के समय पर विचार किया जाय तो यह कहना अनुचित न होगा कि इन्होंने सं० १९२७-२८ वि० के लगभग दीक्षा ग्रहण की होगी। सं० १९०६ वि० में २३ वर्ष की आयु में श्री आतमराम ने दीक्षा ली थी। श्री जीवनदास ने उनके एक दो वर्ष बाद ही गृहत्याग किया होगा।

अपने पिता के जीवनकाल में आतमराम इकंगी बाभनोली प्रायः आते-जाते रहते थे। फिर भी श्री जीवनदास का आश्रम थाँभा का रूप नहीं ले पाया और इसकी शिष्य परम्परा भी नहीं चली क्योंकि आतमराम जी और नूपीबाई—दोनों जयपुर में रहते थे और अन्य कोई योग्य शिष्य ऐसा नहीं मिला होगा जो इसे आगे बढ़ाता।

(४६) मधरीदास (मथुरादास)—इनका जन्म स्थान भरतपुर राज्य का भुसावल नामक गाँव था, जो मध्यप्रदेश के भुसावल से भिन्न है। इनका एक नाम मथुरादास भी मिलता है। 'लीलासागर' में इनका नामोल्लेख नहीं है। यद्यपि इस बड़े थाँभे की शिष्य परम्परा क्रमबद्ध रूप मे नहीं मिलती, परन्तु सं० १९७० वि० तक इस थाँभे की सक्रियता का प्रमाण मिलता है। सं० १९२० से १९५२ वि० के बीच मथुरादास जी के शिष्य सेवादास जी यहाँ से विभिन्न मेलों में आते रहे और उनके बाद सं० १९६० वि० तक महन्त चेतनदास (सम्भवतः उनके शिष्य) की उपस्थिति का पता चलता है। इसके आगे अनुमान है कि यह स्थान किसी गृहस्थ शिष्य के हाथ में जाकर समाप्त हो गया।

(४७) श्री गुरुमुखदास – सम्भवतः ये भी लखनऊ या उसके आस-पास के ही निवासी थे और सुखविलास मस्तराम की प्रेरणा से चरणदास जी के शिष्य बन गये थे। गुरु के आदेश से ये द्वाब क्षेत्र के मुजफ्फरनगर के निकट तीसा नामक स्थान में आश्रम बनाकर धर्म-प्रचार करते थे। तीसा में गंगा के तट पर इनकी गुफा आज भी सुरक्षित है, जिसमें रहकर ये साधना और सत्संग किया करते थे। इनके आश्रम में गुरुभाइयों तथा शुकतार जाने-आने वाले चरणदासी संतों का बड़ा आदर-सत्कार होता था। सम्भवतः जोगजीत जी भी वहाँ गये थे। इनके सम्बन्ध में उनकी यह उक्ति इस तथ्य की पुष्टि करती है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुमुखदास साँचे गुरु इष्टी। त्यागी बैरागी सम दृष्टी ॥
ग्यान ध्यान करनी में पूरे। जोग जुगुति में सावन्त सूरे ॥
गुरु भाइन सो बहु हित धारें। हर्षवचन तिहुँ ताप निवारें ॥[1]

जोगजीत जी ने इनके एक चमत्कार का भी वर्णन किया है, जिसके अनुसार एक यज्ञ का आयोजन कराकर तथा तदुपरान्त वर्षा कराकर उन्होंने वहाँ की अकालग्रस्त जनता की रक्षा की थी।

हेजरपुर का थाँभा—

कहा जाता है कि तीसा में इन्होंने अपना थाँभा स्थापित नहीं किया था। इनका प्रधान थाँभा नजीबाबाद के निकट हेजरपुर नामक स्थान में था। सम्भवतः यहाँ की परम्परा सं० १९०० वि० के बाद नहीं चली, क्योंकि उसके पश्चात् वहाँ पर किसी भी महन्त के वर्तमान होने का संकेत नहीं मिलता। इतना अवश्य पता चलता है कि गुरुमुखदास जी के प्रशिष्य नारायणदास जी सं० १९१९ वि० में वहाँ वर्तमान थे। आगे चलकर श्रीगुरुमुखदास का थाँभा गो० जुगतानन्द की शिष्य-परम्परा के आधीन हो गया था। हेजरपुर नामक ग्राम बिलनौर जिले के नगीना और नजीबाबादस्टेशनों के मध्य नगीना से लगभग ४–५ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ के मन्दिर के साथ ४० बीघे का एक बगीचा भी संलग्न था। सम्भवतः गुरुमुखदास के शिष्य नाराणदास और उनके शिष्य हरिदास तक ही यहाँ की शिष्य-परम्परा चली। इसके पश्चात् गो० जुगतानंद जी की दिल्ली की गद्दी के महन्त बसन्तदास जी ने सं० १९७० वि० में यहाँ की व्यवस्था सँभाल ली। इनके भाई गोकुलदास जी यहाँ परमहंसवृत्ति से रहते थे। म० हरिदास जी सखीभाव के साधक थे। यहाँ की शिष्य-परम्परा इस प्रकार मिलती है—गुरुमुखदास जी—नारायणदास जी—हरिदास जी—रामरतन सिंह (नहटोर के)।

(४८) **स्वामी हरिदेवदास जी**—ये उक्त गुरुमुखदास जी के छोटे भाई थे और १३ वर्ष की अवस्था में ही उनके (गुरुमुखदास) द्वारा गुरु-चरणों में समर्पित कर दिये गये थे। वे बचपन से ही सत्संगानुरागी और बाल-चापल्य से रहित थे। उनके सन्त सुलभ आचरण का पता चलते ही श्री चरणदास ने उन्हें अपने यहाँ बुलवा लिया और उन्होंने विधिवत दीक्षा प्रदान की। ये ज्ञान-ध्यान में पूर्ण थे। इसीलिए जोगजीत जी ने इन्हें स्वामी की संज्ञा दी है।[2]

धाराहेड़ी का थाँभा—

इन्होने मुजफ्फरनगर स्थित शुकताल (जहाँ शुकदेव मुनि ने श्री चरणदास को दीक्षा दी थी) के निकट धाराहेड़ी नामक ग्राम में अपना थाँभा स्थापित किया

१. लीलासागर : पृ० २७३। २. वही : पृ० २७४–७५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। यह स्थान मुजफ्फरनगर से १६ मील दूर है। कहा जाता है कि यह वही स्थान है जहाँ शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित को 'श्रीमद्भागवत' की कथा सुनाई थी। यद्यपि धाराहेड़ी का स्थान बड़ा थाँभा था परन्तु इसकी शिष्य-परम्परा क्रमिक रूप से प्राप्त नहीं होती। अभी कुछ वर्षों पूर्व स्वामी कल्याणदेव ने इस स्थान का जीर्णोद्धार कराया था। इस सम्प्रदाय के इतिहास को देखते हुए इस स्थान का ऐतिहासिक महत्व है पर यहाँ किसी व्यवस्थित थाँभे का न होना आश्चर्यजनक है। सम्भव है कि कालान्तर में यह थाँभा ब्रह्मप्रकाश जी के धनौरा वाले प्रधान थांभे से सम्बद्ध हो गया हो।

(४९) योगी विद्यानाथ—स्वामी चरणदास से दीक्षित होने के पूर्व ये शामली (मुजफ्फरनगर के पास का एक कस्बा) के कनफटा योगी थे। कुछ नानकपन्थियों से यह सुनकर कि चरणदास जी बड़े चमत्कारी और सिद्ध महापुरुष हैं, इन्हें भी उनसे मिलने और उन्हें परखने की इच्छा हुई। श्री विद्यानाथ ने परीक्षा लेने के विचार से चरणदास जी के आश्रम में स्थित एक आँवले के वृक्ष से मुहरों की वर्षा कराने का आग्रह किया और श्री चरणदास जी ने गुरु का स्मरण करके ७०० मुहरों की वर्षा करा दी। इससे चमत्कृत होकर वे उनके शिष्य हो गये। उन्हें तथा उनके कतिपय योगी वेशधारी शिष्यों को अपने पूर्व चिह्नों सहित पीला चोला और टोपी धारण करने का आदेश गुरु द्वारा दिया गया था। तात्पर्य यह कि उनकी वेश-भूषा में उनका योगी वाला रूप भी बना रहा।

शामली का थाँभा—

योगी विद्यानाथ स्वयं भी सिद्ध महात्मा थे। उनके चमत्कारों से प्रभावित होकर मुजफ्फरनगर के अनेक सेठ-साहूकार उनके शामली स्थित आश्रम में आकर उनके शिष्य बने।[1] इनका प्रधान थाँभा यद्यपि शामली में ही था तो भी उसकी शिष्य-परम्परा नहीं मिलती। यह भी सम्भव है कि उन्होंने अपनी परम्परा चलाई ही न हो और न तो किसी स्वतन्त्र स्थान का ही निर्माण किया हो।

(५०) रामघड़ल्ला जी—ये मुजफ्फरनगर के निकटवर्ती ग्राम सिलसिली के आस-पास के निवासी थे। सिलसिली में चरणदास जी के शिष्य श्री भगवानदास का थांभा था। रामघड़ल्ला आरम्भ में वहाँ के एक योगी और जादूगर के हृष्ट-पुष्ट और उद्दण्ड शिष्य थे। उनका आचरण जनसामान्य के लिये भयोत्पादक था।[2]

---

१. लीलासागर : पृ० २४५ तथा गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १८०।

२. एक चेला ताको बलदाई। गाँव गैल में धूम मचाई॥
गृहस्थन के घर में चढ़ जावे। दूध दही पावे सो खावे॥
खेतन छाक जो तिये ले जांई। ताहू को लूटे अरु खाई॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकबार जब कि चरणदास जी अपने शिष्यों के साथ सिलसिली जा रहे थे तो उन्हें भी लूटने के विचार से उक्त योगी का वह शिष्य बर्छी लेकर और पथ रोक कर खड़ा हो गया। चरणदास जी भी चुपचाप खड़े रहे। कुछ देर तक उनकी ओर देखते रहने के बाद उस लुटेरे के हृदय में विचित्र परिवर्तन हुआ। वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ की स्थिति में कुछ समय तक स्तब्ध बने रहने के बाद श्री चरणदास के चरणों पर गिर गया। श्री चरणदास ने उसे शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया और रामधड़ल्ला नाम देकर उसे झंडा-वाहक (झंडाबरदार) का काम सौंप दिया, जिसका उन्होंने गुरु के जीवनकाल पर्यन्त निर्वाह किया। श्री रामधड़ल्ला स्वयं भी सिद्ध महात्मा हुये। जोगजीत जी के कथनानुसार उनकी वाणी सिद्ध थी, जो कहते वही घटित हो जाता।[1]

श्री रामधड़ल्ला का थाँभा कहाँ था, यह कहना कठिन है। ऐसा कहा जाता है कि करनाल शहर के आस-पास कहीं इनका थाँभा था। परन्तु इस थाँभे के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। उस समय करनाल के आस-पास कई चरणदासी थाँभे थे। सम्भव है यहाँ का थाँभा रामधड़ल्ला जी के स्वर्गवास के पश्चात् किसी निकटवर्ती थाँभे के द्वारा हस्तगत हो गया हो। अनेक बार ऐसा भी होता है कि योग्य शिष्य या उत्तराधिकारी के अभाव में, अथवा आश्रम के साथ संलग्न पूजा-उपासना एवं जीविकोपार्जन के साधन के अभाव में थाँभे का चलना कठिन हो जाता है और उस थाँभे का शिष्य किसी अन्य गुरुभाई के स्थान पर जाकर कालक्षेप करता है। इस प्रकार एक-दो पीढ़ी के पश्चात् उक्त परम्परा का स्वतः अन्त हो जाता है।

(५१) श्री साधुराम (प्रथम)—चरणदास जी के १०८ शिष्यों में साधुराम (दोऊ) नामक दो शिष्य बताये जाते हैं। आलोच्य साधुराम (प्रथम) का व्यक्तिगत परिचय अज्ञात है। ५२ शिष्यों में इनकी गणना का भी कोई कारण समझ में नहीं आता। 'लीलासागर' के अनुसार जयपुर में आश्रम स्थापित करने वाले गुरुभाइयों में ये सर्वप्रथम हैं। यह तथ्य इन पंक्तियों में संकेतित है—

कर सहती (बर्छी) लिये घूमहीं, मस्त बनो गज अंग।
नर नारी लख कम्पहीं, कहैं कहा करे रंग॥
—लीलासागर : पृ० २७६।

१. राम धड़ल्ला नाम प्रशंसा। तुरतई काग पलट कियो हंसा॥
जै जै कहैं चरणदास धन, सब गाँवन के लोय।
महाप्रेत सोइ सिध कियो, मुख भाषै जोइ होय॥
—वही : पृ० २७७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधुराम साधू शुभ लक्षण । चरणदास को शिष्य विचक्षण ।।
जयपुर में अस्थान बनाई । प्रथम वहाँ जस उन प्रगटाई ।।
इकरस ताको नित निर्वाही । गुरु मारग में रहा अड़ा ही ।।
गुरु मुख के जो लक्षण कहिये । सो तो वामें सबही लहिये ।।[1]

इस प्रकार श्री जोगजीत ने उनके स्वभाव और रहन-सहन की पवित्रता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । उनके विषय में उन्होने एक उल्लेखनीय बात यह बतायी है कि वे स्वभावतः आत्माराम, आत्मसन्तोषी, साधुसेवी, विनम्र, अनहंकारी, सहनशील, आत्मलीन, भक्त और परोपकारी होने के साथ-साथ एक ही स्थान पर बने रहने वाले थे । वे अपने आश्रम से बाहर बहुत ही कम आते-जाते थे । उन्होने अधिक रामत (यात्राएँ) भी नहीं कीं और न तो चंक्रमण उन्हें प्रिय ही था । उनके आश्रम में जो कोई आ गया उसकी यथासम्भव सेवा करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे ।[2]

इतना सब कुछ लिखने के बाद जोगजीत जी ने यह भी स्वीकार किया है कि उनके विषय में जो कुछ उन्होंने कहा है, वह श्रुति के आधार पर कहा है न कि प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर । अन्य सूत्रों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि जयपुर नगर की जनता पर इनका बहुत अच्छा प्रभाव था । गुरुछौना जी, श्री भातमराम इकंगी तथा दौलतराम जी आदि गुरुभाइयों का जयपुर में प्रभाव स्थापित करने में इनका बहुत बड़ा योगदान था । जयपुर के तत्कालीन महाराजा, क्रमशः सवाई ईश्वरी सिंह और सवाई प्रताप सिंह स्वयं भी धार्मिक मनोवृत्ति के राजा थे और चरणदास जी के भक्त थे । साधुराम दास जी की अखैराम जी पर बड़ी कृपा थी । ये प्रायः उन्हीं के यहाँ रहा करते थे । श्री चरणदास के प्रशिष्य और जयपुर के सम्मानित महात्मा श्री अखैराम जी के थाँभे को समृद्ध करने में उनका भी महत्वपूर्ण सहयोग था ।

यह तथ्य बड़ा ही संभ्रमकारी है कि जयपुर के तत्कालीन इतने प्रभावशाली और गुरु के परम प्रिय शिष्य साधुराम जी उस समय कहाँ थे, जब स्वामी चरणदास की बहुत दिनों से प्रस्तावित जयपुर की यात्रा सं० १८३८ वि० के अन्त में दल-बल सहित सम्पन्न हुई थी । कहते हैं कि इस यात्रा में उनके साथ १०–१५ हजार साधु और शिष्य जयपुर पधारे थे । इस यात्रा में ३ महीने का समय लगा

---

१. लीलासागर : पृ० ३०९ ।

२. वृत्त माफिक जैसा बनि आवै । साधु सन्त की सेव करावै ।।
रहै अमानी मान जु देवा । सहनशीलता में सब भेवा ।।
—वही : पृ० ३०९ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था और लगभग एक मास तक इस मण्डली ने जयपुर और उसके आस-पास निवास भी किया था। सम्भवतः इस यात्रा में जोगजीत जी भी साथ रहे होंगे। रामरूप जी तो साथ में थे ही। परन्तु इन दोनों ने श्री साधुरामदास का उक्त सन्दर्भ में उल्लेख नहीं किया है। सम्भव है कि तब तक उनका परलोकवास हो गया हो। इनका साहित्य अभी तक अप्राप्त है।

(५२) श्यामरूप जी— ये बड़े ज्ञानी महात्मा थे। ये जिज्ञासु के रूप में चरणदास जी के पास आये थे। इनके तर्कों का जब उन्होंने सब प्रकार से समाधानात्मक उत्तर दिया तो वे उनके समक्ष नतमस्तक हो गये। वे अनेक वर्षों तक गुरु के साथ ही बने रहे। कभी-कभी रामत के लिए भी निकल जाते थे और अनेक लोगों को शिष्य बनाकर पुनः गुरुद्वारे में लौट आते थे। आगे चलकर उन्होंने वृन्दावन के जुगलघाट पर ही अपना स्थान बना लिया और आजीवन श्रीमद्भागवत पढ़ते-पढ़ाते और तत्सम्बन्धी प्रवचन करते रहे। वृन्दावन में वे पूर्ण विरक्त की भाँति रहते हुए अनेक साधुओं का मार्गदर्शन करते थे। उनकी शिष्य-परम्परा यद्यपि विधिवत नहीं मिलती परन्तु जुगलघाट वाला इनका स्थान किसी न किसी रूप में अब तक बना हुआ है। भले ही वह उनकी परम्परा के अन्तर्गत न हो परन्तु कोई न कोई चरणदासी सन्त वहाँ रहता ही रहा है।

श्यामरूप जी संस्कृत के अच्छे विद्वान् तो थे ही साथ ही लोक भाषा कवि के रूप में भी ख्यात थे। इनके बहुत से स्तोत्र और पद प्राप्त होते हैं। इन पदों में सामासिक एवं तत्सम पदावली का प्रयोग इन्हें संस्कृतज्ञ सिद्ध करता है। इनकी वानियाँ वृन्दावन में प्रवहमान श्री राधारस से प्रभावित हैं। श्रीमद्भागवत के पंडित होने के कारण भी ऐसा सम्भव हुआ। यहाँ इनका एक हिंडोरे का पद उद्धृत है—

॥ राग मल्हार ॥

हिंडोले झूले छबीले किसोर।
मुदित झुलावें अपने औसरें ठाढ़ी सखि चहुँ ओर॥
उमड़ि घुमड़ि बादर झुकि आये बिजुरी चमके जोर।
हरि हरि भूमि भई वृन्दावन सुक पिक बोलें मोर॥
छवि की तरंग उठत रस बाढ़्यो सुरति समुद्र हिलोर।
स्याम रूप लखि रूप अनूपम सदा बसो मन मोर॥

श्री श्यामरूप का 'नाम महिमा' सम्बन्धी एक पद इस प्रकार है—

श्यामा श्याम नाम धन साँचो।
ज्यों ज्यों खरचत होत सवायो अवर देत नहिं जाँचो॥
भायो स्वाद भजन संचय कर गाइ गिरा गुन जाँचो।
रसिकन संग करो दिन राती उनहीं के रंग राँचो॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम भक्ति उर बाढ़ो निसि दिन जग प्रपंच तें बाँचो।
श्यामरूप चरणदास कृपा सूँ अब नाहिन मन काँचो ।।

जिस समय श्यामरूप जी ने वृन्दावन में निवास का निश्चय किया उस समय वहाँ गुसाई नागरीदास (चरणदास के शिष्य) भी रहा करते थे। उन्हीं दिनों वहाँ के जुगलघाट पर श्री अखैरामदास ने चैनबिहारी जी का मन्दिर निर्मित कराया था। ग्वालियर वालों की कुंज में गो० जुगतानन्द के शिष्य श्री वृन्दावनदास निवास करते थे। वृन्दावन से थोड़ी दूर डीग में पूरणप्रताप जी (चरणदास के शिष्य) का आश्रम था। वृन्दावन के सिरसियाघाट और कामावन में भी चरणदासियों के स्थान थे। तीर्थाटन के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों से चरणदासी महात्मा आते रहते थे। इस प्रकार श्यामरूप जी को वृन्दावन में एक आत्मीयतापूर्ण परिवेश मिला। इन्हीं महात्माओं के आशीर्वाद से वृन्दावन आज भी चरणदासी सम्प्रदाय का एक सक्रिय केन्द्र बना हुआ है। अभी कुछ दिनों पूर्व तक श्री रूपम धुरीशरण और वर्तमान में श्री प्रेमस्वरूप ब्रह्मचारी आलोच्य सम्प्रदाय के ऐसे महात्माओं में से हैं, जिन्होंने वृन्दावन को चरणदासी विरक्तों तथा गृहस्थों के आकर्षण का केन्द्र बनाये रखा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

छोटी गद्दियों की शिष्य परम्पराएँ और उनका साहित्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे थाँभों के शिष्यगण —

१.	सुश्री नूपीबाई	दिल्ली
२.	श्रीहरिप्रसाद	,,
३.	श्री राधाकृष्णदास	,,
४.	,, गंगाविष्णुदास	,,
५.	,, दासकुँअर	,,
६.	,, हरिनारायण	,,
७.	,, हरिदास	लखनऊ एवं अलीगढ़
८.	,, मुरली मनोहर	,,
९.	,, मुरली बिहारी	,,
१०.	,, लालदास	हाथरस
११.	,, रामकरन	लुहारी
१२.	,, राममौना	कंधार
१३.	,, जैरामदास	काशी
१४.	,, अमरदास	दिल्ली
१५.	,, परमानन्ददास	बीरबल की गढ़ी
१६.	,, मधुवनदास	अज्ञात
१७.	,, गुरुसेवक	दिल्ली
१८.	,, रामगलतान	,,
१९.	,, प्रेमदास	वृन्दावन
२०.	,, जुगलदास	दिल्ली
२१.	,, प्रेमधन	,,
२२.	,, चरणखाक	चोरमऊ
२३.	,, माधवदास	वृन्दावन
२४.	,, गिरधरदास	दिल्ली
२५.	,, गरीबदास	उज्जैन
२६.	,, दौलतराम	दिल्ली
२७.	,, प्रेमसनेही	मुर्शिदाबाद (बंगाल)
२८.	,, पुसालदास	दिल्ली (गुरुचरणों में)
२९.	,, रामदास (१)	खेड़ी (जिला—मेरठ)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०.	श्री रामदास (२) दिल्ली के आस-पास के किसी स्थान के महन्त।	
३१.	,, आसानन्द	गढ़ी सिढ़ाना
३२.	,, हरिस्वरूप	दिल्ली
३३.	,, रामसनातन	,,
३४.	,, सबगतिराम (२)	,,
३५.	,, सुखरामदास (२)	छपरौली
३६.	,, हरिविलास	दिल्ली
३७.	,, रामहेत	सुलहेड़ा
३८.	,, नन्ददास	लखनऊ
३९.	,, हँसमुखदास	,,
४०.	,, हुलासदास	दिल्ली
४१.	,, गोपालदास	,,
४२.	,, हरिभक्त	कामावन
४३.	,, सेवकदास	परिचय अज्ञात
४४.	,, श्यामनिरंजनदास	,,
४५.	,, अतीतराम	,,
४६.	,, साधुराम (द्वितीय)	,,
४७.	,, हरिकृष्णदास	,,
४८.	,, सागरदास	,,
४९.	,, नारायणदास	,,
५०.	,, मय्यादास	,,
५१.	,, मनमोहन या मदनमोहनदास	,,
५२.	,, बलरामदास	,,
५३.	,, शोभानन्द	,,
५४.	,, माणकदास	,,
५५.	,, टीकमदास	,,
५६.	,, महारामदास	,,
५७.	,, मँगनीराम	,,

(१) नूपीबाई (आतमराम इकंगी की पुत्री)—इस नाम की दो ढूसर-वंशीय चरणदासी कवयित्रियों का उल्लेख मिलता है। प्रथम नूपीबाई या नूपीदेवी सुश्री सहजोबाई की माता थीं, जो अपने पति, चार पुत्रों और एक पुत्री के साथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी की शिष्या हो गई थीं। दूसरी नूपीबाई श्री आतमराम इकंगी की पुत्री थीं। सम्भवतः अपने पिता-माता की एक मात्र सन्तान थीं और पिता के साथ ही अल्पायु में श्री चरणदास से दीक्षित हो गई थीं। गुरु की शिक्षा-दीक्षा के अन्तर्गत उन्होंने राजयोग और ध्यान में दक्षता प्राप्त की थी। वे अविवाहित रहकर दिल्ली, जयपुर और वृन्दावन के बीच घूम-फिर कर स्त्रियों में भक्तिप्रचार करने में रत रहीं। अपने दादा जीवनदास के बामनौली आश्रम में, पिता के जयपुर स्थित आतमकुंज में और वृन्दावन के सेवाकुंज में भी वे काफी समय तक रही थीं। उन्हें समाधि में निपुणता प्राप्त थी। उनकी साधना-पद्धति मुख्यतः सखीभाव की थी।[1] 'लीलासागर' के रचयिता और उनके गुरुभाई श्री जोगजीत ने इन्हें 'जोगजीत श्री गुरु की प्यारी ! नूपीबाई बहन हमारी'—कहकर इनकी बड़ी प्रशंसा की है।

इन्होंने किसी स्वतन्त्र स्थान का निर्माण नहीं किया था। यदि किया भी हो तो उसका पता नहीं चलता। इनके काव्य में निर्गुण पद्धति की बानी की झलक के साथ ही रसिक साधना के प्राधान्य की भी झलक मिलती है। इनका सखी नाम 'नूपीसखी' था। इनकी बानी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मेरे प्रेमनगर में बसत कंथ। जाकी औघट घाटी विकट पंथ॥
मैं परसन चाली प्यारो पीव। कर दीप लियो बिन बाती घीव॥
ह्वै सुषमन मारग चढ़ी धाय। निज कुंज पिया की पहुँची जाय॥
जहाँ सखी भाव भीतर को जाय। रसकेलि करे निज धाम माहिं॥
जिहिं रंगमहल के आस-पास। बहु सन्त सखा राखें निवास॥
जहँ अद्भुत लीला अति अगाध। तहँ बाजे बाजें संख नाद॥
जहँ अमृत बरसे काम धेन। लखि कल्पवृक्ष मन भयो चैन॥
जहाँ कई रंग के फूले फूल। कोई निरखै जन जग व्याधि भूल॥
गुरु चरनदास दीन्हों बताय। सो "नूपी बाई" लीन्हो पाय॥[2]

सरस निकुंज–जयपुर के ग्रन्थागार में एक ऐसी पाण्डुलिपि सुरक्षित है जिसमें आतमराम जी, उनके शिष्य श्री लक्षिदास तथा नूपीबाई जी (आतमराम जी की सुपुत्री एवं चरणदास जी की शिष्या) की बानियाँ एक साथ संगृहीत हैं। इसी प्रकार अखैराम जी की शिष्या एवं जयपुर निवासिनी खुशालाबाई जी एवं आलोच्य सुश्री नूपीबाई की बानियाँ एक साथ संगृहीत मिली हैं। इसी संग्रह में

---

१. योग ध्यान महाराज सिखायो। राज योग हिय में प्रगटायो॥
--श्रीमत् दम्पति की मनमेली। सेवा निज कर भई सहेली॥
—लीलासागर : पृ० २२९।

२. शुक सम्प्रदाय-सिद्धान्त-चन्द्रिका : पृ० १२७–१२८ पर उद्धृत।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयाबाई जी की भी बानियाँ संकलित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि चरणदास जी की तीनों शिष्याओं—सुश्री सहजोबाई, दयाबाई तथा तूपीबाई में आपसी तालमेल बहुत अच्छा था और वे एक दूसरे से सम्बन्धित भी थीं। तूपीबाई जी की योग में निपुणता की प्रशंसा रामरूप जी, जोगजीत जी, अखैराम जी, जसराम उपकारी जी तथा अन्य समकालीन चरणदासी महात्माओं ने की है। वर्तमान-कालीन चरणदासी वृत्तकारों में श्री सरसमाधुरीशरण अग्रगण्य हैं। उन्होंने तूपीबाई जी के सम्बन्ध में निम्न प्रशंसात्मक उक्ति कही है—

चरणदास स्वामी सरनागति तूपीबाई जी गुन ग्राम।
गुरुमुख भई सरन गुरु आई तनया श्रीमत् आतमराम॥
सुखमन मारग चढ़ी गगन में पहुँची तुरत पिया के धाम।
रस केली कुंजन मिलि हेली करत रहत जहँ स्यामा स्याम॥
सदा बसन्त कलपतरु सोभित नित नाना सुमन खिले अभिराम।
सरस माधुरीसरन सलोनी दीजे चरन कमल विसराम॥

तूपीबाई जी के अधिकांश पद अष्टयाम शृंगार की शोभा के वर्णन से युक्त एवं तत्तद् अवसरों के लिए गेय हैं। शृंगार के समय युगल श्यामा-श्याम का स्वरूप वर्णन करते हुए वे कहती हैं—

हमारे प्यारे श्यामाश्याम बिराजे।
रतन जटित सिंहासन ऊपर अद्भुत सोभा छाजे॥
गौर स्याम सुन्दर मनभावन निरखि काम रति लाजे।
निज जन जीवन प्राण अधारे देख दूर दुख भाजे॥
हँसि हेरत चित चोर रसीले पट भूषण तन साजे।
तूपीबाई दासि चरन की गावत सहित समाजे॥

इस पद्धति पर रचित श्री श्यामा श्याम के हिंडोला झूलने की इनकी शब्दमयी झाँकी भी देखने योग्य है—

झूलत जुगलबिहारी आज।
नख सिख सजि सिंगार सुहावन पधराये सिरताज॥
नान्हीं बूँदन मेहा बरसे मधुर मधुर घन गाज।
गावत गीत मल्हार मनोहर सज्यो रंगीलो साज॥
झोंटा लेत देत बलिहारी झुलवत श्री महाराज।
तूपीबाई निरखि यह सोभा छाक्यो सकल समाज॥

इनकी साखियाँ भी बड़ी ही मनोहारी हैं। इनका भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार है। अनावश्यक या भर्ती के शब्द इनकी कविता में कहीं भी नहीं है। ये परम गुरुभक्ता थीं और गुरु को साक्षात् अवतार मानती थीं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव उधारन आइया, रूप सन्त को धार।
नूपी निश्चय जानिया, चरनदास अवतार॥
बलिहारी गुरुदेव की, सरबस डारूँ वार।
जनम जनम की आपदा, सबही दीनी टार॥
जीती बाजी जनम की, सतगुरु के परताप।
नूपी निरभय हो रही, गया सकज सन्ताप॥

इनके द्वारा रचित श्री चरणदास की बधाई का निम्न पद तो आज भी चरणदास जी के जन्म दिन पर चरणदासी मन्दिरों में बड़ी तल्लीनता के साथ गाया जाता है—

सखी री गावो आज बधाई।
प्रगट भये चरणदास दयानिधि सन्तन के सुखदाई॥
भादों सुदी तीज दिन सुन्दर मंगलवार सुहाई।
सात घड़ी दिन चढ़े अवतरे कुंजो कूँख सूँ आई॥
मंगल कलश खंभ कदली के बन्दनवार बँधाई।
हिल मिल नारी नाचें गावें भीर न भवन समाई॥
प्रागदास के आनंद छायो मुरलीधर अँगनाई।
बोल बोल दें दान सबन को याचक जन तृसाई॥
जै जैकार होत डहरे में भई सबकी मन भाई।
नूपीबाई अपने गुरु पर सरबस दे बलि जाई॥

इनकी प्रेमाभक्ति की अनन्यता एवं गम्भीरता को देखते हुए श्री सरस-माधुरीशरण के विचार से इन्हें निकुञ्ज में झाँझ बजाने की सेवा मिली है। तात्पर्य यह कि वे अब भी अपनी इस सेवा में सूक्ष्म रूप से संलग्न हैं।

(२) हरिप्रसाद जी—ये दिल्ली के परीक्षितपुरा मुहल्ले के निवासी और ढूसरवंशीय सम्पन्न गृहस्थ थे। सुश्री सहजोबाई की प्रेरणा एवं चरणदास जी के सतत् सम्पर्क से प्रभावित होकर ये सपरिवार उनके शिष्य बन गये थे। अपनी पत्नी नूपी देवी एवं चारो पुत्र (राधाकृष्ण, गंगाविष्णु, कुँअरदास और हरिनारायण) तथा कनिष्ठतम पुत्री सहजोबाई सहित इन्होंने श्री चरणदास से दीक्षा ग्रहण की थी। यद्यपि ये सम्बन्ध में चरणदास जी के फूफा थे और वे साधना की अवस्था में इनके यहाँ रहकर ध्यान-धारणा तथा भजन-पूजन में रत रहा करते थे, फिर भी उनकी सिद्धावस्था में उन्हें एक महापुरुष मानकर ये सपरिवार उनके शिष्य बने। यद्यपि ये अधिकांशतः दिल्ली में ही रहे और अपना कहीं कोई स्वतन्त्र थाँभा उन्होंने स्थापित नहीं किया फिर भी उनकी पुत्री सुश्री सहजोबाई और सुपुत्र—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिनारायण जी के स्वतन्त्र थाँभे विख्यात थे। सहजोबाई जी के विविध थाँभों और उनकी शिष्य-परम्पराओं का उल्लेख उनके प्रसंग में किया जा चुका है। श्री हरिनारायण जी कहाँ के महन्त थे, इसका पता नहीं चलता। सम्भव है कि सहजोबाई के ही थाँभों में से किसी एक के व्यवस्थापक या महन्त रहे हों। ये अपने भाइयों में सबसे छोटे और सहजोबाई जी के बड़े कृपापात्र थे। इनके ग्रन्थ 'शब्दबोधिनी' में इन्हें महन्त महाराज कहा गया है जो इनके महन्त होने का परिचायक है। ये सभी भाई कवि थे। सहजोबाई जी का तो कहना ही क्या है? जोगजीत जी ने इनके परिवार की साधनागत उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए कहा भी है—

हरिप्रसाद बड़े बड़भागी। चारूँ पुत्रन अधिक सुभागी।
राधाकृष्ण दया के सागर। गंगा विष्णु जु भक्ति उजागर।।
तीजा दासकुँअर जो प्रेमी। चौथा हरिनारायण नेमी।।
पाँचवीं बहिन जु सहजोबाई। सील छिमा में सरस सदाई।।[1]

स्वामी रामरूप जी के 'गुरुभक्तिप्रकाश' तथा जोगजीत जी के 'लीलासागर' में वर्णित वृत्त के अनुसार वृन्दावन के वंशीवट पर शुकदेव जी के प्रत्यक्ष दर्शन और उनके साथ गोष्ठी का अवसर मिलने के उपरान्त उनसे भक्तिप्रचार करने का आदेश पाकर चरणदास जी जब दिल्ली आये तो परीक्षितपुरा में रहने का सर्वप्रथम आमन्त्रण उन्हें नन्दराम जी से मिला। नन्दराम जी उनसे प्रभावित थे और उनके प्रथम शिष्य बने। हरिप्रसाद जी भी नन्दराम के दादा थे। हरिप्रसाद जी के यहाँ चरणदास जी को सब प्रकार की सुविधा मिली और वहाँ उनके निवास के समय ही आतमराम इकंगी और उनकी पुत्री नूपीबाई सहित अनेक लोग उनके शिष्य बने। सहजोबाई जी के विवाह में विघ्न पड़ने की जो भविष्यवाणी चरणदास जी ने की थी, वह यथार्थ प्रमाणित हुई थी। फलतः उनकी सिद्धियों से प्रभावित होकर हरिप्रसाद जी सपरिवार उनके शिष्य हो गये थे।

आयु में छोटे होने एवं पद में भतीजा होने के बावजूद भी अपनी साधना और सिद्धियों के कारण चरणदास जी अपने फूफा हरिप्रसाद जी को अपना शिष्य बनाने के योग्य हुए थे। इसे चरणदास जी की महानसिद्धि का परिचायक माना जाय या हरिप्रसाद जी की गुणग्राहकता और गहन विरक्ति का प्रमाण माना जाय, यह कुछ उलझनपूर्ण प्रश्न है। हरिप्रसाद जी की बानियाँ गुरु के प्रति गहन विनय और कृतज्ञता का भाव लिये हुए हैं और उनमें कहीं भी इस बात की झलक नहीं है कि एक अभिजात स्तर का वरिष्ठ व्यक्ति अपने भतीजे के प्रति अपने उद्गार

१. लीलासागर : पृ० १६३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्त कर रहा है, बल्कि एक भावविभोर शिष्य का गुरु के प्रति समर्पण भाव ही उनकी बानियों द्वारा ध्वनित है।

अपने सद्गुरु श्री चरणदास की महिमा का गान करते हुए वे कहते हैं—

हमारे सतगुरु परम उदार।
कहाँ शक्ति उनके गुन बरनूँ मैं अति मूढ़ गँवार॥
वे दयाल करुणा के सागर किरपा सिंधु अपार।
शरण पड़े को तुरत उबारे कर भव से निस्तार॥
प्रेम भक्ति बैराग ज्ञान का कर जग में बिस्तार।
जीव अनेक उबारे जग के चरणदास औतार॥
दीन जान निज सरने लीनो कीन्हों भव जल पार।
हरिप्रसाद तुमरो सरनागत सतगुरु प्राणाधार॥

इन पंक्तियों के रचयिता चरणदास जी के फूफा हरिदास जी हैं; इसकी झलक हमें कहीं नहीं मिलती। प्रत्युत ये उद्गार उस कृतज्ञ शिष्य के हैं जो अपने गुरु का कृपापात्र है और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर रहा है। उन्हें तो इस बात का गर्व है कि ढूसर वंश में कोई ऐसा भी महापुरुष अवतरित हुआ जिससे इस पीड़ित समाज का उद्धार सम्भव है। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने चरणदास जी को अवतारी महापुरुष मानने में तनिक भी सन्देह व्यक्त नहीं किया है।[1]

जहाँ तक हरिप्रसाद जी की काव्य निपुणता का प्रश्न है, उन्हें कविता अपने परिवेश से एवं स्वतः स्फुट रूप से प्राप्त हुई थी। इनकी दुहिता सहजोबाई तथा इनके चारों पुत्र कवि थे। यदि कुछ और गहन शोध किया जाय तो उनकी पत्नी सुश्री नूपीदेवी की भी बानियाँ प्राप्त हो जायँगी। यह सब चरणदास जी के सान्निध्य और सत्संग का प्रभाव था कि उनके सभी शिष्य बानीकार हुए।

---

१. ॥ राग मल्हार ॥ ॥ बधाई ॥

साधो धन धन कुंजो माता।
धन डेहरा धन सोभन कुल है प्रगटे जित सुख दाता॥
ढूसर जात धन्य हुई जग में मुरली सुत प्रगटाये।
भादों शुक्ला तीज धन्य अति हरि नर बपु धरि आये॥
प्रागदास घर नौबत बाजी आनंद मंगल छाये।
वा अवसर की अद्भुत सोभा मोपै कही न जाये॥
श्री सुख चरण कमल के सेवक श्री रणजीत गोसाईं।
हरिप्रसाद तिनके चरणों पर बार बार बलि जाई॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) राधाकृष्णदास—ये हरिप्रसाद जी के सबसे बड़े लड़के थे। इन्हें 'लीलासागर' में 'दया के सागर' कहा गया है। अपने पिता के साथ ही इन्होंने भी चरणदास जी से दीक्षा ग्रहण की थी। इनके विषय में अन्य वृत्त अज्ञात है। चरणदास जी के १०९ शिष्यों की कुछ सूचियों में इनका नाम नहीं गिना गया है। इसका कारण सम्भवतः यह भी हो सकता है कि दीक्षा के उपरान्त भी ये गृहस्थ जीवन में ही रहे होंगे। जब कि महन्त गंगादास ने इन्हें :५२ वरिष्ठ शिष्यों की सूची में स्थान दिया है। ये अच्छे कवि थे और सहजोबाई जी को मिली विभिन्न जागीरों एवं चल-अचल सम्पत्तियों की देख-रेख करते थे।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इनकी बानियाँ स्व० महन्त गंगादास जी को प्राप्त नहीं हो सकी थीं। जब कि उन्होंने सहजोबाई जी के सभी परिवार-जनों की बानियों का संग्रह बड़े श्रम के साथ किया था। श्री जगदीश जी राठौड़ की सूचना के अनुसार बीकानेर के प्राच्य विद्या संस्थान में इनकी बानियाँ उपलब्ध हैं।

ये भी बड़े गुरुभक्त थे। गुरु के प्रति निवेदित इनकी दैन्य भावना ने इनकी इन पंक्तियों को बड़ा ही मार्मिक बना दिया है—

सतगुरु परम सुहेला पाया।
जनम मरण के बन्धन काटे परमातम दरसाया॥
संसय दूर किये सब मन के जम भय दूर भगाया।
काम क्रोध मद मोह लोभ ठग तिन सूं मोहि बचाया॥
ममता मोह की बेड़ी काटी जग सों मुक्ति कराया।
निर्भय हुआ सरण में आकर दास जान अपनाया॥
चरणदास महाराज गुरू ने यह निज मन्त्र बताया।
राधा कृष्ण भजो निसि बासर छाँड़ि जगत की माया॥

इनका भाषा पर अच्छा अधिकार प्रतीत होता है। इनकी अभिव्यक्ति एक मँजे हुए कवि के समकक्ष है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए निम्न पद को उदाहरण के रूप में उद्धृत करना अनुचित न होगा—

सतगुरु दीन शरण मैं तेरी।
जनमत मरत बहुत मैं थाक्यौ भुगती योनि घनेरी॥
कहँ लगि कहूँ कष्ट योनिन को चौरासी भरमायो।
बड़े भाग सूं नर तन पाकर सरण तिहारी आयो॥
काम क्रोध तृस्नादिक जरिया जब से तुम अपनायो।
राधा कृष्ण भजो अब निरभय चरणदास गुरु पायो॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) श्री गंगाविष्णुदास—इन्हने दिल्ली में ही रहकर धर्मप्रचार किया परन्तु इनका जीवन वैराग्यपूर्ण था। इनकी भक्ति की दृढ़ता को लक्षित करके ही जोगजीत जी ने इन्हें 'भक्तिउजागर' कहा है। इनकी बानियाँ महंत गंगादास (गद्दी सहजोबाई) के यहाँ प्राप्त हैं। सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में इनका कोई उल्लेखनीय योगदान प्रतीत नहीं होता। सम्भव है कि उक्त दोनों भाइयों ने सुश्री सहजोबाई की विभिन्न गद्दियों और उनसे सम्बन्धित सम्पत्ति आदि की व्यवस्था में रहने के कारण ही अपनी स्वतन्त्र शिष्य-परम्परा नहीं चलाई।

श्री गंगाविष्णु जी की श्री आतमराम इकंगी से बड़ी घनिष्टता थी। वे प्रायः साथ-साथ ही रहा करते थे। सम्भव है कि ये इकंगी जी की आतमकुंज—जयपुर स्थित गद्दी के स्थान में भी कुछ दिन रहे हों। इनमें वैराग्य भाव बड़ा ही प्रबल था। सांसारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों तथा वैभवों की निस्सारता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उनका यह कथन बड़ा ही यथार्थमूलक है—

कर ले हरि सों नेह अरे मन बावरे।
सुत नारी कोई काम न आवे जब जम खेले दाव रे॥
माल खजाना धन अरु दौलत कोई साथ नहिं जाव रे।
कूंच करे जब तूं दुनिया सूं ये यहीं पड़ा रह जाव रे॥
जिन कारण तूं पचि पचि मूवा लिया न हरि का नाम रे।
वही जार तोहिं छार करेंगे आवें नाहिन काम रे॥
गंगा विष्णु भजो नित हरि को ये अवसर नहिं आव रे।
चरनदास समरथ गुरु पाया मिटें कष्ट सब रावरे॥

इसी वैराग्यमूलक या वैराग्य भावोत्तेजक चेतावनी की कड़ी को कुछ और सशक्त बनाते हुये उनका यह दूसरा पद भी द्रष्टव्य है—

अरे मन मूरख क्यों इतरावे।
ये संसार हाट बनिये की इक आवे इक जावे॥
गरब करे क्या धन जौबन की नाहक ऐंठ दिखावे।
जग सराय में सभी मुसाफिर कोई रहन न पावे॥
अजहुँ चेत समझ मन मूरख क्यों नहिं हरि गुन गावे।
झूठी दुनियाँ में मन लाकर हरि कूँ क्यों बिसरावे॥
चरणदास गुरुदेव कृपा सूं गंगा विष्णु बतावे।
नाम हरी तत सार जगत में अन्त काम यहि आवे॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर श्री गंगाविष्णुदास एक अच्छे बानीकार तथा कवि सिद्ध होते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) श्री दासकुँअर—ये आतमराम इकंगी के मित्र थे और उन्हें श्री चरणदास का शिष्यत्व स्वीकार कराने में इनकी बहुत बड़ी भूमिका रही है। ये उच्चकोटि के कवि थे परन्तु उन्होंने कोई थाँभा भी बनाया था, इसका पता नहीं चलता। सम्भवतः ये घर पर ही रहकर भजन-कीर्त्तन और भक्ति-साधना में रत रहते थे। इनकी बानी सहजोबाई जी की गद्दी (दिल्ली) के स्व० महन्त गंगादास जी के यहाँ देखने को मिली थी। इनकी बानियों में कबीर का सा अक्खड़पन और ज्ञान की गुरुता के दर्शन होते हैं। भाषा में पंजाबीपन अधिक है। थियोसोफिकल सोसाइटी, लाहौर से सन् १८९० ई० (सं० १९४७ वि०) में प्रकाशित 'ब्रह्मविद्यासागर' में इनके ४० पद संगृहीत हैं। ज्ञातव्य है कि इस संग्रह को सं० १८१९ वि० अर्थात् सन् १७६२ ई० में ही तैयार किया गया था। सहजोबाई जी का जन्मकाल सं० १७८२ वि० है। इस आधार पर श्री दासकुँअर का जन्मकाल सं० १७७५ वि० के आस-पास मान सकते हैं। ये अपने पिता की तीसरी सन्तान थे और सहजोबाई जी पाँचवीं सन्तान थीं। जिस समय यह संग्रह तैयार किया गया उस समय इनकी (श्री दासकुँअर की) आयु अनुमानतः ४०–५० वर्ष के बीच रही होगी। जिस संग्रह में अन्य कवियों की रचनाएँ अल्प मात्रा में ही संगृहीत हों, उसमें किसी एक कवि के ४० पदों का संग्रह उस कवि की महत्ता को सिद्ध करने का प्रबल कारण है। अब तक इनके ६० पद उपलब्ध हैं। श्री जगदीश जी राठौड़ ने ५० पदों का संग्रह किया है।

इनकी बानियों में वैराग्य, ज्ञान और भक्ति के स्पष्ट और उच्चकोटि के तत्वों का अभिनिवेश मिलता है। इन्हें सांसारिक कर्म-जाल के खोखलेपन का तात्विक ज्ञान था। इसीलिए इनकी बानी में फकीरी की झलक दिखाई देती है। एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

साधो भाई दुखिया यह संसारा।
उदै अस्त सुख काहू न देखा किया विवेक विचारा॥
काहू दुख सन्तान जगत् में काहू माया चहिये।
काहू मैड़ी मंडप कूआँ इहि बिधि सबकूँ लहिये॥
…काहू भोग को रोग लगो है काहू नेम अचारा।
तपसी तन तावत दिन बीते तऊ न होत अनन्दा।
आसा धारि नाहि कछु पावैं समझै ना मतिमंदा॥
मन जीतन और इन्द्रिय निग्रह सुरनर मुनि सिरभारा।
चरणदास ने दास कुँअर सूँ कहिया तत्त बिचारा॥[1]

---

१. ब्रह्मविद्यासागर, शब्द सं० ३०४ : (हस्तलिखित प्रति)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के संत कवियों की रूपक और प्रतीक शैली की पद रचना में भी ये सिद्धहस्त हैं। इनका इस शैली का एक पद यहाँ उद्धृत है। इसमें अन्तर्मुखी साधना की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देते हुए कवि का कथन इस प्रकार है—

बागों जिन जारे तेरी काया मैं गुलजार।
माली मन परिचायकै रे संजम कीं कर बार॥
करनी क्यारी कीजिये रे रहन रख रखवार।
दया पौध सूखै नहीं रे छिमा सील जल डार॥
ज्ञान गुलाब चितव मन मेरे राख सुमत व्यौहार।
केवड़ा कँवल परमसुख रे फूले तब फुलवार॥
दुर्मत काग उड़ाय के रे देखै क्यों न बहार।
मुक्ति कली तामें खिलै गूँथ पहर उर हार॥
सहस्रदल के कमल ऊपर रूप अगम अपार।
दास कुँअर चरणदास चरनन परस दिस्ट निहार॥[1]

(६) श्री हरिनारायण—ये हरिप्रसाद जी के सबसे छोटे पुत्र और सहजोबाई जी के चार भाइयों में से कनिष्ठतम थे। इन्होंने निश्चित रूप से कोई स्वतन्त्र स्थान दिल्ली में बनाया था क्योंकि इन्हें इनके ग्रंथ 'शब्दबोधिनी' में 'महंत महाराज' के विशेषण से अलंकृत किया गया है। संभवतः इनका स्वतन्त्र थाँभा दिल्ली में ही कहीं पर रहा होगा। इनकी 'शब्दबोधिनी' १२१ पत्रों (२४२ पृष्ठों) का शब्द संग्रह है। स्व० महंत गंगादास (दिल्ली) के यहाँ इसकी जो पाण्डुलिपि है, वह अपूर्ण है। इसका अर्थ यह है कि इसमें पत्रों की संख्या और अधिक होनी चाहिए। हरिनारायण जी के कुछ पद 'ब्रह्मविद्यासागर' (संकलन—वर्ष सं० १९१८ वि०) के पश्चात् सं० १९२८ वि० में संकलित होने वाले पद-संग्रह 'ब्रह्मज्ञानसागर' में भी संगृहीत हैं। इस संग्रह की पाण्डुलिपि महंत गंगादास के स्थान में है।

ब्रह्मज्ञानसागर में संगृहीत इनके अधिकांश पद निर्गुण वाणी की पद्धति पर रचित हैं। लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अपने वरिष्ठ गुरुभाइयों की भाँति ये भी सगुण-निर्गुण के बीच उलझे हुए नहीं थे। इनकी 'लघुबोधिनी' की बानियाँ दोनों प्रकार की साधनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। एक ओर जहाँ वे जीव-ब्रह्म के एकत्व और ब्रह्म की अनिर्वचनीयता, गुण-रूप-हीनता की बात करते हैं, वहीं वे शिव, गणेश और श्री राम-कृष्ण का भी स्तुति-गान करते हैं।[2]

---

१. ब्रह्मविद्यासागर : शब्द सं० २९०।

२. आदि पुरुष मतिमान तुम कूँ सीस नवाय।
हरिनारायणदास की सब विधि करो सहाय॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार की उलझनपूर्ण स्थिति तत्कालीन प्रायः सभी चरणदासी संतों में मिलती है। इनकी निर्गुणपरक बानी के दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

साधो समझो अलख कृपा।
गुप्त सूँ गुप्त परगट सूँ परगट ऐसो है निज रूपा॥
भीजे नाहिं नीर सूँ वह तत् ताहि सस्त्र नहिं काटै।
छोटा मोटा होय न कबहूँ नहीं घटै नहिं बाढ़ै॥
पवन कभी नहिं सोखै ताकू पावक तेज न जारै।
शीत उष्ण दुख सुख नहिं व्यापै ना वह मरै न मारै॥
एकरस चेतन अचरज दरसै जा समतुल नहिं कोई।
ता पटतर कोई दृष्टि न आवै वही वही पुनि वोई॥
भीतर बाहर पूरि रह्यो है अंड-पिंड सूँ न्यारा।
चरणदास गुरु भेद बतायो हरिनारायण तापर वारा॥

॥ रेखता ॥

तज के जगत की रीति कूँ करि अपनी ततबीर।
इस जग भरोसे ख्वार हो सुनि यार मन, यार मन गये साह अमीर॥
इक दम करारी है नहीं छिन छिन में फेरे रंग।
कबहूँ तो हेरत सुख घना सुनि यार मन यार मन चले बिचल बेढंग॥
हशमत बशौकत फिर नहीं मति देख तो मगरूर।
ठहराव ताको है नहीं सुनि यार मन यार मन भगल बड़ाई धूर॥
जाहिं स्वासा सब चले ज्यों आव दर गिरवाल।
याद गोविंद की करो सुनि यार मन यार मन सुमिरि हरि हरि हाल॥
चरनदास कहे सतगुरु मुझे कायम बताया स्याम।
हरिनारायण चित्त धरो सुनि, यार मन यार मन जपा आठों जाम॥[1]

हरिनारायण जी की भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है। ये गूढ़ से गूढ़ तत्वों का निरूपण बड़ी ही सरलता और स्पष्टता से करने में निष्णात् प्रतीत होते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन्हें भी ब्रह्म के निर्गुण और सगुण—दोनों स्वरूप मान्य हैं। ये कबीर दादू और पलटूदास आदि की भाँति शुद्ध निर्गुणवादी

नमस्कार गुरुदेव कूँ संतन सीस नवाय।
परम भक्त शिव आदि कूँ नमस्कार मम जाय॥
गौरि गनेश मनाइये पूर्ण होय सब काम॥
—शब्दबोधिनी : पत्र सं० १।

१. राठौड़ जी के बानी संग्रह से साभार।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हैं। इनका ब्रह्म निर्गुण के साथ-साथ सगुण और अवतार धारण करके लीलाओं का रचयिता भी है। इनके इसी भाव की पुष्टि यहाँ उद्धृत इस पद से हो रही है—

ब्रह्म अरूप धरे बहु रूप कहाँ कोऊ कैसो सरूप कहै।
सब में है और सबसे न्यारा है कैसे कोई भेद अनूप लहै॥
कहुँ कहुँ मूरष गूँग भयो है कहुँ कहुँ बकता बेद पढ़ै।
कहुँ कहुँ राव रंक दुख सुख है कहुँ कहुँ भोगी भोग करै॥
कहुँ कहुँ राधे को रूप बनायो कहुँ कहुँ मोहन रास रचे।
मुड़ मुड़ जावे फेर मनावै प्यार प्रीत को चाव चहै॥
कहुँ कहुँ सूरत मोह की मूरत कहुँ कहुँ लालच फंद परै।
कहुँ कहुँ मधुवा कहुँ कहुँ प्याला कहुँ कहुँ पीवत प्रेम भरे॥
कहुँ कहुँ ग्यान को नाना बानी कहुँ कहुँ भरम में भूलि परै।
चरणदास गुरु हो समझावै हरिनारायण चरण गहै॥[1]

(७) श्री हरिदास (द्वितीय)—'लीलासागर' में श्री लालदास के साथ गिनाये गये संत चतुष्टय में इनका भी नाम है।[2] इनका व्यक्तिगत परिचय किसी भी माध्यम से प्राप्त नहीं होता। अधिकांश परिचयात्मक सूत्रों में 'दोऊ हरिदास' कहकर डूडाहेड़ा और बलियाणा के महंत श्री हरिदास (प्रथम) के साथ इनका भी नाम जोड़ दिया गया है। वस्तुस्थिति यह है कि श्री हरिदास (प्रथम) के साथ इनका निवास करना या संयुक्त रूप से मत-प्रचार करना सिद्ध नहीं होता। ये मूल निवासी कहाँ के थे इसका तो पता नहीं चलता परन्तु प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि लखनऊ और अलीगढ़ इनका कार्यक्षेत्र अवश्य था।

अलीगढ़ का थाँभा—

अलीगढ़ के दूसरों के मुहल्ले में श्री हरिदास ने अपना स्थान निर्मित किया था। यहाँ के महंतों की गणना छोटे थाँभे के महन्त रूप में होती थी। सं० १९००

---

१. ब्रह्मज्ञानसागर (पाण्डुलिपि) : पृ० ४१९।

२. लालजी दास हरिदास जी, मुरली मनोहर दास।
मुरली बिहारी जी लखौ, साधु चतुर सुखरास॥
× × ×
चरणहिदास के साधु, चारों भजनानन्द भारे।
प्रेमी परम पुनीत लिये, लक्षण अधिकारे॥
—लीलासागर : पृ० ३१८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से १९७० वि० के बीच क्रमशः जमुनादास जी और टीकमदास जी की महन्तपद पर उपस्थिति का प्रमाण मेलों में सम्मिलित महन्तों की सूची से प्राप्त होता है। यहाँ का स्थान सं० १९७० वि० के आस-पास तक चल रहा था। अलीगढ़ जिले के कोयल नामक स्थान का बड़ा थाँभा जैदेवदास जी द्वारा स्थापित किया गया था और पर्याप्त सक्रिय था। विविध साम्प्रदायिक मेलों में सं० १९७० वि० तक यहाँ से भी महन्त जाते रहे हैं। इस गद्दी के संस्थापक तथा इनके परिवर्ती महंतों का साहित्य उपलब्ध नहीं है।

(८) श्री मुरलीमनोहर—ये भी श्री चरणदास के १०८ शिष्यों की सूची में परिगणित किये जाने वाले एक विरक्त महात्मा थे। श्री लालदास के साथ गिनाये गये सन्त चतुष्टय में इनका नाम है। संभवतः ये लखनऊ के ही निवासी थे परन्तु इनका कार्यक्षेत्र हाथरस था। वहाँ रहकर श्री लालदास (चरणदास जी के शिष्य) के साथ ही संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में रत थे। इनके सम्बन्ध में विशेष कुछ पता नहीं चलता। हाथरस में ठठेरों का मुहल्ला नामक स्थान में श्री लालदास का थाँभा था। अतः वहाँ की शिष्य-परम्परा लालदास जी के साथ दी गयी है। इन्होंने भी बानियों की रचना की ही होगी परन्तु वह प्राप्त नहीं है।

(९) श्री मुरलीबिहारी—ये लखनऊ के मूल निवासी थे। सुखविलास मस्तराम जी और श्यामशरण बड़भागी जी के प्रभाव से दिल्ली आकर सन्त चरणदास के शिष्य हो गये थे। गुरु के जीवनकाल में ये दिल्ली में ही रहे और उसके बाद लखनऊ में ही रहकर साधनारत रहे। इनका विशेष वृत्त अप्राप्त है।

(१०) श्री लालदास—'लीलासागर' में लालदास जी का नाम तीन अन्य महात्माओं अर्थात् हरिदास, मुरलीमनोहर और मुरलीबिहारी के साथ 'चतुर सन्तन को व्याख्यान' शीर्षक से रखा गया है। इन चारों महात्माओं को भजनानंदी, परमप्रेमी और सर्वगुणसम्पन्न आदि विशेषणों से अलंकृत वर्णित किया गया है।[1] जहाँ तक लालदास जी के परिचय का प्रश्न है, अन्य प्राप्त सूत्रों से ज्ञात होता है कि ये भी लखनऊ के ही निवासी थे। इनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः लखनऊ और हाथरस था।[2] लखनऊ के १६ स्थानों में से कौन इनका था, यह कहना कठिन है। ऐसा लगता है कि ये अधिकांशतः हाथरस में (ठठेरों के मुहल्ले में) ही रहा करते थे।

---

१. लीलासागर : पृ० ३२०।

२. ज्ञान ध्यान अरु प्रेम मधि, पूरे सन्त सुजान ही।
जोगजीत लालदास जी, बसें लखनऊ स्थान ही॥—वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथरस का थाँभा—

यहाँ के ठठेरबाड़ा मुहल्ले में स्थित ठठेरों का मंदिर इन्हीं का बनवाया हुआ है। यहीं इनकी छतरी और पादुका भी बनी हुई है। इससे अनुमान होता है कि इनका निधन भी यहीं हुआ था। इनका यहाँ का थाँभा व्यवस्थित रूप से चल रहा था। इस नगर में एक स्थान सुश्री सहजोबाई की शिष्य-परम्परा का भी बताया जाता है। सम्भव है कि लालदास जी की शिष्य-परम्परा में योग्य शिष्य का अभाव देखकर सहजोबाई जी की परम्परा का कोई व्यक्ति बुला लिया गया हो। इस गद्दी से मेलों में उपस्थित होने वाले दो महन्तों के नाम मिलते हैं परन्तु यह कहना कठिन है कि वे सहजोबाई जी की परम्परा से सम्बद्ध थे अथवा लालदास जी की परम्परा से। सं० १९३९-५२ वि० के बीच वंशीदास जी और उसके उपरांत सं० १९५७ वि० में रामदास जी के इस स्थान पर उपस्थित होने के प्रमाण मिलते हैं। अधिक सम्भावना यही है कि श्री रामदास के पश्चात् सुश्री सहजोबाई की दिल्ली की शिष्य-परम्परा की देख-रेख में यह थाँभा आ गया होगा। श्री लालदास का अन्य वृत्त अज्ञात है।

(११) श्री रामकरन जी—आरम्भ में ये किसी उच्चकुल के एक सत्संगी सद्गृहस्थ थे। इनका जन्म ग्वालियर राज्य के तत्कालीन दमोह परगने के पिडौरा नामक गाँव में हुआ था। साधु होने के पूर्व ही उन्होंने अपना जन्मस्थान छोड़ दिया था और गढ़ नामक स्थान में रहने लगे थे। यह स्थान दिल्ली के आस-पास ही कहीं था। वहाँ चरणदासी सन्तों का आवागमन बना रहता था। उनसे प्रभावित होकर वे चरणदास जी के आश्रम में दिल्ली आ गये और उनसे दीक्षित होने के उपरान्त कुछ दिनों तक जलालाबाद नामक स्थान में रहे। कुछ समय पश्चात् भजन-कीर्त्तन और रामत के क्रम में वे झाँसी जिले के देवा तहसील में स्थित लुहारी नामक गाँव में आये और वहीं उन्होंने अपने आश्रम का निर्माण किया। लुहारी उन दिनों ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत था। श्री रामकरन का एक अन्य थाँभा कल्होली (तह० सबलगढ़, जिला—मोरैना, ग्वालियर राज्य) नामक स्थान में भी था। लुहारी और कल्होली के थाँभे संयुक्त रूप से चलते थे क्योंकि इन दोनों की स्थापना रामकरन जी द्वारा हुई थी।

लुहारी और कल्होली की शिष्य-परम्परा—

श्री रामकरन (सं० १८३०–१८७० वि०)—मनोहरदास जी (सं० १८७०–१९१५ वि०)—गंगादास जी (सं० १९१५–१९३० वि०)—गोपालदास[1] जी

---

१. महन्त गोपालदास प्रायः सं० १९३०–५२ वि० के बीच सभी मेलों में उपस्थित हुए थे। सं० १९८० वि० तक यहाँ राधिकादास जी महन्त थे। गोपालदास जी के गुरु का नाम श्री बल्लभदास बताया जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सं० १९३०–९२ वि०)। म० गोपालदास जी के दो शिष्यों—(१) गिरिवरदास जी, (२) दयादास जी का उल्लेख मिलता है। सम्भव है कि म० गोपालदास के बाद गिरिवरदास या दयादास में से कोई महन्त रहा हो।

लुहारी और कल्होली—दोनों स्थानों पर चरणपादुका और छतरियाँ बनी हुई हैं। कल्होली में श्री राधाकृष्ण का मन्दिर अब भी वर्तमान है। इस मन्दिर में निर्मित एक छतरी में मुकुटानन्द जी का नाम लिखा हुआ है। एक मुकुटानन्द या मुकतानन्द स्वामी रामरूप जी के शिष्य थे। सम्भव है कि यह नामोल्लेख उन्हीं से सम्बन्धित हो। यहां की गद्दी अभी भी चल रही है।

(१२) राममौला जी—ये कन्धार (अफगानिस्तान) के एक पठान थे। शाहमौला के नाम से एक सूफी साधु के रूप में ये बड़े ही प्रख्यात फकीर थे। ये फारसी के साथ ही संस्कृत और हिन्दी के भी ज्ञाता थे। इनसे शास्त्रार्थ करने में पंजाब के अनेक हिन्दू-मुसलमान विद्वान् हार चुके थे। श्री चरणदास का नाम सुनकर ये दिल्ली आये और उनसे भी इनका शास्त्रार्थ हुआ परन्तु वे उनसे पराजित होकर उनके शिष्य बन गये। इन्हें विधिवत् दीक्षा देकर चरणदास जी ने इनका नाम राममौला रखा। कुछ दिनों तक दिल्ली में रहने के बाद वापस कन्धार जाकर इन्होंने अपने गुरु के विचारों का खूब प्रचार किया। चरणदास जी के परलोकवास के १०–१५ वर्षों के उपरान्त महंत जुगतानन्द जी के यहाँ कन्धार से अनेक घुड़सवार चरणदासी आये थे, जो राममौला जी द्वारा दीक्षित थे। वे लोग कुछ दिनों तक 'अस्थल' में रहकर सत्संग का लाभ उठाने के पश्चात् वापस चले गये। कहते हैं कि सं० १९०० वि० तक वहाँ के लोग दिल्ली आते रहे। इस थाँभे की गणना बड़े थाँभों में होती थी परन्तु इसकी शिष्य-परम्परा नहीं मिलती।

(१३) जैरामदास जी—कहा जाता है कि ये काशी की पंचक्रोश की परिक्रमा में पड़ने वाले शाहपुर (स्यापुर ?) नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार के सदस्य थे। परन्तु इनके गुरुभाई और प्रेरणादाता जोगजीत जी ने 'लीलासागर' में इन्हें दिल्ली के आस-पास के एक खूबड़ू नामक ग्राम का निवासी बताया है। उनके दिये हुए परिचय के अनुसार ये एक गृहस्थ भक्त थे। एक बार जब साधुओं की मण्डली के साथ जोगजीत जी बास और खूबड़ू (दोनों दिल्ली के निकटवर्ती) नामक गाँवों में टिके हुए थे। उस समय उनका प्रवचन सुनने के लिए जैरामदास भी आते थे। अन्ततः उनकी इच्छा साधु होने की हुई। परिवार वालों ने उनके इस विचार का बड़ा विरोध किया। स्वयं जोगजीत जी ने भी ऐसा करने से उन्हें मना किया।

इधर जोगजीत की मंडली भट्ट गाँव में चली गई और उधर जैरामदास घर से पलायित होकर दिल्ली चले गये। उनको खोजते हुए घर के लोग दिल्ली में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत चरणदास जी के आश्रम में पहुँचे। चरणदास जी को जब सब बातों का पता चला तो उन्होंने जैरामदास जी को घर जाकर भजन करने का आदेश दिया। मूत्रत्याग का बहाना बनाकर एकान्त में जाकर जैरामदास ने अपना लिंग ही काट लिया और घर के लोगों के समक्ष उपस्थित कर दिया। इस बात से उनके संबंधी और घर के लोग बहुत दुखी हुए। उनकी इस दृढ़ता से प्रभावित होकर चरणदास जी ने उनका उपचार कराकर घाव ठीक कराया और उन्हें शिष्य बना लिया।[1]

दीक्षित साधु होने के पश्चात् गुरु से रामत करने का आदेश पाकर वे सर्वप्रथम अपने गाँव ही गये और वहाँ उन्होंने अनेक लोगों को भक्ति की ओर उन्मुख किया तथा शिष्य बनाया। आगे चलकर वे काशी चले गये और पंचकोशी की सड़क पर स्थित शाहपुर नामक ग्राम में आश्रम बनाकर रहने लगे। यहाँ वे बड़े नामी महात्मा हुए। उनकी गणना श्री जोगजीत ने शूरमा की कोटि में किया है। इसी कोटि के एक दूसरे चरणदासी थे दाताराम जी (लुजीड़ा के)। उन्होंने भी अपना इन्द्रिय काट डाला था।

इनके शाहपुर वाले थाँभे से कोई भी महंत किसी भी मेले में नहीं गया था। इससे अनुमान होता है कि यह थाँभा उनके जीवनकाल तक ही चला। काशी में जिस स्थान पर इनके थाँभा होने की बात कही जाती है, वहाँ से इस बात की कोई पुष्टि नहीं होती। यहाँ के कुछ पुराने लोगों ने बताया कि कुछ दिनों पूर्व तक काशी में दुर्गा जी के मंदिर और मानस मंदिर के सामने स्थित नवाब के बगीचे का स्थान ही जैराम जी का स्थान था। कालान्तर में यह स्थान अवध के नवाबों की संपत्ति बन गया था। वर्तमान में यहाँ आवास विकास परिषद् की कालोनी बन गई है।

(१४) अमरदास जी—इनका भी व्यक्तिगत परिचय अज्ञात है। ये अनन्य गुरुभक्त और गुरु में परमेश्वर की भावना रखने वाले महात्मा थे। इनके सम्बन्ध में जोगजीत जी की यह उक्ति द्रष्टव्य है—

चरणदास ही दास को, जाप जपत लौ लाइये।
अमरदास अमरा जु पद, मन बच कर्म समाइये ॥[3]

'एकादशी माहात्म्य' नामक एक ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा के संक्षिप्त खोज विवरण में उल्लिखित है, जो सम्भवतः इन्हीं की कृति हो सकती है। इसमें इन्हें

---

१. लीलासागर : पृ० २९४, नवसंतमाल : पृ० ६०।

२. एक शाहपुर अलवर जिले में भी है, जहाँ छीतरमल जी का थाँभा था और जिसकी परम्परा चल रही है। कुछ लोग इन्हें उत्तरकाशी जिले के कासीपुर नामक स्थान के थाँभे का संस्थापक मानते हैं न कि वाराणसी का।

३. लीलासागर : पृ० ३१५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १८१५ वि० के लगभग वर्तमान बताया गया है।[1] चरणदासी सम्प्रदाय के अनेक महात्माओं ने इस शीर्षक से ग्रंथ-रचना की है, अतः उक्त ग्रंथ को इनकी रचना मानने में संदेह का कोई कारण नहीं है। सम्भवतः ये लखनऊ के आस-पास कि हीं किसी गाँव के निवासी थे और इन्होंने गुरुद्वारे (दिल्ली) में ही रहकर भक्तिप्रचार करते हुए अपना जीवन यापन किया।

(१५) श्री परमानन्ददास—ये बीरबल की गढ़ी (दिल्ली के समीपस्थ एवं रोहतक जिले में स्थित) के निवासी तथा ब्राह्मणकुलोत्पन्न थे। श्री चरणदास से दीक्षा लेने के उपरान्त ये वहीं आश्रम बनाकर रहने लगे और सन्तसेवा तथा धर्माचरण में रत रहे।[2] आगे चलकर यह स्थान गोसाईं जुगतानन्द की प्रधान गद्दी के अधीनस्थ हो गया। इसलिए सं० १९०० वि० के बाद के अभिलेखों में इसका नामोल्लेख स्वतन्त्र थाँभे के रूप से नहीं मिलता। इनके लिए 'स्वामी' शब्द का प्रयोग करके जोगजीत जी ने इनकी महत्ता की ओर संकेत किया है। कहा जाता है कि ये बड़े ही रँगीले और रसिक सन्त थे। इनका आस-पास के क्षेत्र में बड़ा प्रभाव था।

(१६) मधुवनदास (नागा)—मधुवनदास जी आरम्भ में नागा वैष्णव साधु थे और बालानन्द जी के रामभक्ति आन्दोलन में सम्मिलित थे। कई नागा और अन्य मतों के साधक श्री चरणदास के चमत्कारों से प्रभावित होकर उनके शिष्य हो गये थे। उनमें विद्यानाथ योगी और नागा मधुवनदास विशेष उल्लेखनीय हैं। ये स्वभाव से निर्मोही, राग-द्वेषहीन, संतोषी, आनन्दी और वासनारहित थे। यहाँ तक कि वे सिद्धि और मुक्ति से भी निस्पृह थे।[3] इन्होंने कोई स्वतंत्र स्थान नहीं बनाया। ये मुख्यतः गुरु चरणों में ही रहे।

---

१. नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त खोज विवरण' : भाग १, पृ० ३०।

२. हरि गुरु संतन माँहि लगन तिन गइ अधिकाई।
लोक लाज कुछ कानि सु तृन ज्यों तोरि बगाई॥
रहै बीरबल की गढ़ी निर्भय हरि गुण गाइये।
स्वामी परमानन्द ही भये परम सुखदाइये॥
—लीलासागर : पृ० ३१८।

३. नागा मधुवनदास ने, इमि हरिगुरु लौ लाय।
ज्यों मद पी मतवार ने, तन की सुधि बिसराय॥
···निर्मोही निर्वैर राग अरु दोष निवारे।
संतोषी सुखरासि वासना मनो बिसारे॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१७) गुरुसेवक जी—अपने नाम के अनुसार ही ये अनन्य गुरुसेवी महात्मा थे। जब तक गुरु का महाप्रयाण नहीं हुआ, उन्होंने इस नियम का बराबर निर्वाह किया कि ये रामत के लिए दिल्ली के १०–२० कोस से दूर नहीं जाते थे और रात्रि में अस्थल में वापस आ जाते थे। ये गुरु की प्रत्येक इच्छा का आलस्य-विहीन होकर पालन करते थे और जब कभी गुरु उन पर क्रोध करते थे, उसे भी वे संतोष एवं धैर्य के साथ सहन करते थे। गुरु की इहलीला के पटाक्षेप के पश्चात् भी वे अस्थल के पास ही बने रहे और दिल्ली के बाहर नहीं गये।

(१८) रामगलतान—रामगलतान जी के सम्बन्ध में केवल इतना ही पता चलता है कि ये अच्छे साधक और राम के उपासक थे। भक्ति की मस्ती में कभी-कभी नृत्य भी करने लगते थे और कभी युगल के ध्यान में मग्न हो जाते थे। उन्हें लम्बे समय तक समाधि लगाने का अभ्यास था।[1] सम्भवतः दिल्ली और उसके आस-पास रहकर ही उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया और किसी स्वतंत्र स्थान का निर्माण नहीं किया।

(१९) परमानन्ददास (परमदास या प्रेमदास)—साम्प्रदायिक साहित्य में इनके ये तीनों नाम मिलते हैं। इसी प्रकार परमसनेही, प्रेमसनेही और परमदास नामक कुछ महात्माओं के नाम श्री चरणदास की शिष्य-सूची में सम्मिलित हैं। इनमें से आलोच्य कवि श्री परमानन्ददास को पहचान पाना एक कठिन काम है। अनेक उलझनपूर्ण तथ्यों के विवेचन से जो निष्कर्ष निकलता है, उसके अनुसार ये एक दूसरवंशीय संत थे। चरणदास जी के आरम्भिक एतज्जातीय शिष्यों में से ये भी एक थे। 'लीलासागर' में इनका नामोल्लेख 'समुदाई संतन के चरित्र' शीर्षक के अन्तर्गत कई लोगों के साथ किया गया है लेकिन इनका कोई भी व्यक्तिगत परिचय नहीं दिया गया है।[2] केवल इतना ही संकेत किया गया है कि

सिद्धि मुक्ति की आदि लों, तिनकी इच्छा ना रही ॥

—लीलासागर : पृ० ३१६।

१. राम गलतान जु राम में, निस दिन यों लौलीन।
ज्यों इक छिन जल सों जुदी, होय सकै नहिं मीन ॥

× × ×

राम गुरु के भजन ध्यान में यों लौ लाये।
ज्यों निर्धन धन पाय नहीं ताको बिसराये ॥

—वही : पृ० ३१९।

२. इस शीर्षक के अन्तर्गत श्री चरणदास के जिन दूसर शिष्यों के नाम गिनाये गये हैं, उनमें श्री प्रेमदास ब्रह्मचारी, दासकुँअर जी, हरिनारायण जी,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये आजीवन विरक्त एवं ब्रह्मचारी रहे। इसीलिए इनके नाम के साथ 'ब्रह्मचारी' उपाधि जुड़ी हुई है। 'लीलासागर' में प्रेमदास या परमदास और परमानंददास या प्रेमदास ब्रह्मचारी नामक दो महात्मा उल्लिखित हैं। इनमें से प्रथम का कार्य-क्षेत्र और जन्मक्षेत्र पुरी (उत्कल) के आस-पास था और वे जाति से ब्राह्मण थे जब कि आलोच्य प्रेमदास या परमानंददास ढूसरकुलोत्पन्न संत थे और इनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः दिल्ली एवं वृन्दावन था। 'लीलासागर' के अनुसार प्रथम प्रेमदास ने भी कुछ समय तक वृन्दावन में रहकर धर्मप्रचार किया था। अतः कहा जा सकता है कि कुछ समय के लिए दोनों प्रेमदास वृन्दावन के वासी रह चुके थे।

परमानन्द जी का व्यक्तिगत परिचय अप्राप्त है। इनकी मुख्य गद्दी बीरबल की गढ़ी (जिला–रोहतक) में थी। इनके कुछ फुटकल पद और कवित्त आदि मिले हैं। श्री जगदीश जी राठौड़ ने अपने बानी संग्रह में इनकी १०–१२ बानियाँ संगृहीत की हैं। इनके आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि कविरूप में श्री परमानंददास अपने सम्प्रदाय के अच्छे कवियों की श्रेणी में गिने जाने के योग्य हैं। अपने कुछ दोहों में इन्होंने अपने विषय में जो संकेत दिये हैं उनसे पता चलता है कि ये पूर्णज्ञान प्राप्त संत थे।[1] इनका भाषा पर अच्छा अधिकार था। इनकी अभिव्यक्ति खूब निखरी हुई और स्पष्ट है। उदाहरण के रूप में गुरु के ध्यान सम्बन्धी इनका यह पद यहाँ प्रस्तुत है—

सहस्र कमल दल स्वेत सिंहासन शोभा अद्भुत साजे।
नीमा जरद जनेऊ सोहै माला गले बिराजे॥

नंदराम जी, नारायणदास जी, प्रेमघन जी, जुगलदास जी, महादास जी, सेवकदास जी, चरणसहाय जी, नन्दलाल जी, श्यामरूप जी, निरंजनदास जी, अतीतराम जी, जयदेवदास जी, गरीबदास जी और श्री हरिकृष्णदास के नाम सम्मिलित हैं।

१. चरणदास गुरुदेव ने, किरपा करी अपार।
'परमानंद' आनंद भयो, मिटे जु सकल बिकार॥
दीन जान शरणै लियो, मेटे सब दुख द्वंद।
भवसागर सों पार करि, काटे यम के फंद॥
उनके चरणप्रताप से, पायो पूरण ज्ञान।
'परमानंद' गुरु कृपा बिन, मैं था निपट अजान॥
गुरु स्तुति कहँ लग करूँ, मो पै कही न जाय।
ह्वै अनाथ शरणै गयो, लियो मोहिं अपनाय॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँकी मूछें नयन रसीले मनहर रूप सलोना।
निरखत ही भवताप मिटे सब जानत है कछु टोना ॥
तिलक भाल भृकुटी पर सोहैं सिर इकपेंचा नीको।
श्री चरणदास दियो परमानंद कूँ अटल भक्ति को टीको ॥

ये केवल पद रचना या दोहा-रचना में ही निपुण नहीं थे, प्रत्युत इस सम्प्रदाय के अन्य कवियों की लीक से हटकर इन्होने कवित्त भी बनाये हैं। इन कवित्तों के माध्यम से ये एक अच्छे कवि के रूप में दिखाई देते हैं। गुरु के प्रति प्रणति-निवेदन के क्रम में रचित उनका निम्न कवित्त यहाँ उद्धृत किया है—

॥ कवित्त ॥

करहुँ उपास श्री चरणदास चरण की
पूरन करि आस मैं सुनी सुबान तेरी है।
दीजै सतसंग ढिग बैठि रहूँ साधुन के
गहूँ अंग साधु संत आसा यह मेरी है ॥
भर्म तम मेटि डारि बिनती यह करौ पारि
बिरद बिचारि निज कहौ काहे देरी है।
कहै जन परमानंद काटि देहु जक्त फंद
मनसा यह मेरी तेरे दासन की चेरी है ॥

इस कवित्त के अन्तिम चरण में अपने को 'दासन की चेरी' कहकर परमानंद-दास जी ने अपनी रसिक भावना की भक्ति का भी संकेत दिया है।

(२०) जुगलदास जी—यद्यपि इनकी जाति के सम्बन्ध में 'लीलासागर' की उक्ति स्पष्ट नहीं है, लेकिन इन्हें भी ढूसरवंशी संतों के क्रम में गिनाया गया है, इससे इनके ढूसर होने की बात प्रमाणित होती है। चूँकि इन्हें भी श्री हरिनारायण, श्री नन्दराम और नारायणदास आदि के साथ रखा गया है। अतः मानना चाहिए कि इनका भी कार्यक्षेत्र दिल्ली और वृन्दावन तक ही सीमित रहा।[1]

ये आरंभ में गुरु के आश्रम में ही रहकर योग और साधना में अभ्यासरत थे परन्तु चरणदास जी के परलोकवास के उपरान्त श्रीधाम (वृन्दावन) में रहकर अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में तल्लीन हो गये। इनकी कुछ स्फुट बानियाँ शुक-सम्प्रदाय के कवियों के बानी संग्रहों में उपलब्ध होती हैं। संग्रहकर्त्ताओं ने अधिकांशतः इनकी ऐसी बानियों का संग्रह किया है, जो हिंडोला,

---

१. लीलासागर : पृ० ३२१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगल भोग, सांझी और अन्यान्य उत्सवों में गाये जाने योग्य हैं। इनमें से कुछ बानियाँ नमूने के रूप में यहाँ उद्धृत हैं—

(१) ॥ राग मल्हार ॥ ॥ हिंडोरा पद ॥

झूलत श्री दंपति सुख रास।
सुन्दर स्यामल गौर अनूपम अंगन रूप प्रकास॥
हरित भूमि भई उमड़ि घुमड़ि घन बरसत सावन मास।
कोकिल मोर पपइया धुनि सुनि सुख उपजत अनिआस॥
झोंटा देत झुलावत सखियाँ मन में मोद हुलास।
जै जै बोल लेत बलिहारी लख सुख बिपिन बिलास॥
यह रस मोहि करि कृपा दिखायो सतगुरु श्री चरणदास।
जुगलदास निरखि छबि छाकी पूरण मन अभिलाख॥

(२) ॥ राग रामकली ॥ ॥ मंगल भोग ॥

जेंवत मंगल भोग पियारे।
अरस परस हँसि स्वाद बखानत दंपति छबिनिधि रस मतवारे॥
सामग्री ले सखी सयानी ठाढ़ी सनमुख रूप निहारे।
रुचि लखि परसत कर कमलन सों लै लै सामा नाम उचारे॥
जुगलदासि है दासि चरण की अपनो तन मन सरबस वारे॥

(३) ॥ सांझी ॥

श्री राधे वृषभान लली के सांझी आज भली बनि आई।
बरन बरन के फूल बीन के अपने हाथ बनाई॥
नन्दगांव से सखी भेष धरि आये कुँअर कन्हाई।
जुगलदास सांझी के पूजत तन मन नैन सिराई॥

(२१) प्रेमघन जी—इनके नाम के पूर्व 'महाराज' उपाधि जुड़ी मिलती है, इससे अनुमान होता है कि ये अच्छे महात्मा थे। ये भार्गववंशीय थे। इनका भी नाम 'लीलासागर' में दूसरे जाति के महात्माओं के क्रम में उल्लिखित है।[1] इनका जन्म तथा कर्मक्षेत्र दिल्ली को ही मानना चाहिए।

---

१. प्रेमदास ब्रह्मचारी जो, दासकुँवर सुख रास।
हरिनारायण नंदराम जू, दूसर कुलहि प्रकास॥
चरणदास के संत दूसर नन्द जु रामा।
और नारायणदास प्रेमघन सुख के धामा॥ आदि।
—लीलासागर : पृ० ३२१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) प्रेमघन जी की बानियों में कहीं-कहीं इनके नाम की छाप 'प्रेमाघन' भी मिलती है। सरसनिकुंज–जयपुर की एक पांडुलिपि में इनके २०–२२ पद संगृहीत हैं। सन् १९२१ ई० में प्रकाशित 'भजनमाला' नामक पुस्तक में श्री प्रेमघन के दो पद संकलित हैं. जो इस प्रकार हैं –

चार बरण में वही बड़ा जिन राधेकृष्ण को रटा रटा।
वहाँ से आया कौन बचन कर यहाँ क्यूँ डोलै नटा नटा॥
यह दम हीरा लाल अमोलख पल पल जावै घटा घटा।
काहे को जोड़ै माल खजाना काहे चिनावे तूँ ऊँची अटा॥
जब आवे तलब लेने जमपुर से छोड़ जाय सब माल पटा।
सब अपने मतलब के साथी ये स्वारथ में बोलें मीठा मीठा॥
तन तज हंसा जब करे पयाना सबही को लागे खटा खटा।
सब लोग कुटुंब के डरपन लागे जब देखे नैना फटा फटा॥
प्रेमाघन चरणदास श्याम को भज कानों में कुंडल मुकुट जटा॥

(२) ॥ होरी का पद ॥ ॥ राग काफी ॥

मत मारो श्याम पिचकारी मैं तो भीज गई हूँ सारी।
अतलस लहँगा चुँदरिया भीजी जाकी जरद किनारी॥
श्री राधा की अँगिया भीजी भीजै फूल हजारी।
हार सिंगार सभी कुछ भीजै भीजै कुसुमल सारी॥
हा हा अब घर जान दै मोहन मानो बात हमारी।
सास बुरी मोरि ननद हठीली हाँसी करैगी सारी॥
प्रेमाघन चरणदासि कहत है तुम जीते हम हारी॥

इन पदों के आधार पर कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति कौशल, भाव सारल्य और भाषा के सुष्ठु प्रयोग के क्षेत्र में प्रेमघन जी एक परिपक्व एवं सिद्ध कवि प्रतीत होते हैं। इनकी अन्य बानियाँ शोध्य हैं।

(२२) श्री चरणखाक—ये चरणधूर और चरणरज की ही भाँति गुजरौट के गूजरवंशी साधु थे। सम्भवतः चरणरज जी के चोरमऊ (मेरठ) वाले थाँभे पर ये उन्हीं के साथ रहा करते थे। इन्होंने अपना कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं बनाया था। ऐसा कहा जाता है कि ये श्री चरणरज के बालसखा थे और उन्हीं के साथ दीक्षित भी हुए थे।[1] गुजरौट क्षेत्र के तीनों महात्माओं के नाम समानार्थी रखे गये हैं—यथा चरणधूर, चरणरज और चरणखाक। सम्भवतः इन तीनों के विनम्र स्वभाव के कारण ऐसा नामकरण हुआ था।

---

१. लीलासागर : पृ० ३२१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री चरणखाक की कोई भी बानी प्राप्त नहीं है। इतना अवश्य है कि ये एक उच्चकोटि के साधक थे। 'लीलासागर' में इन्हें द्विजकुलोत्पन्न सागरदास जी, मयादास और हरिदास के साथ 'चारो साधु शुभ अंग' कहकर उल्लिखित किया गया है। इससे अधिक इनका परिचय अप्राप्त है।

(२३) माधवदास (मध्यादास)—इनका निवास मुख्यत वृन्दावन में ही रहा। वृन्दावन के समीपस्थ कीकर वास नामक स्थान में इनकी छतरी बनी हुई है। रामरूप जी अपनी वृन्दावन और मथुरा की यात्राओं में यहाँ रुका करते थे। माधोदास जी का 'बानी' शीर्षक बानी-संग्रह सरसकुंज—जयपुर में जिल्द सं० ७१२ में संगृहीत है। इनकी बानियों की एक पाण्डुलिपि महन्त प्रेमदास जी (दिल्ली) के यहाँ भी है, जो रामसखी की बानियों के साथ संलग्न है।

(२४) श्री गिरधरदास—इनका कार्यक्षेत्र दिल्ली तक ही सीमित रहा। सं० १९१९ वि० तक इनके जीवित रहने का प्रमाण मिलता है, क्योंकि ये उस वर्ष हुए एक मेले में दिल्ली से ही गये थे। इनका एक अपर नाम गिरधारीदास भी मिलता है।

(२५) श्री गरीबदास—'लीलासागर' में जोगजीत जी ने २०–२२ गुरु-भाइयों का नाम एक साथ गिना दिया है और उनका कोई भी व्यक्तिगत परिचय नहीं दिया है। इनमें एक नाम गरीबदास जी का भी है, फिर भी उन्होंने इनके उज्जैन-निवास की ओर ('गरीबदास उज्जैन में' कहकर) संकेत किया है।[1] कहा जाता है कि उज्जैन के थावरा मुहल्ले में अब भी इनका बनवाया हुआ श्री शुकदेव मंदिर वर्तमान है। इनका नाम ढूसरवंशीय संतों में गिनाया गया है। मूलतः ये दिल्ली के ही निवासी रहे होंगे। परीक्षितपुरा में अपने निवास के समय जिन ३० शिष्यों को चरणदास जी ने दीक्षा दी थी, उनमें से एक ये भी होंगे।

(२६) श्री दौलतराम जी—ये जाति के भार्गव थे। इनका जन्म परीक्षित-पुरा (दिल्ली) में हुआ था। इनके पिता का नाम राजाराम था। 'गुरुभक्ति-प्रकाश' के साक्ष्य के अनुसार ८ वर्ष की अवस्था में ये रात को सोते समय अपने तिमंजिले मकान की छत से जब नीचे गिर रहे थे तब तत्काल श्री चरणदास ने वहाँ साक्षात् उपस्थित होकर उनके भूमि पर गिरने से पूर्व ही उन्हें रोक लिया।[2] इस घटना का पता चलने पर इनके अभिभावक संत चरणदास से इतने प्रभावित हुए

---

१. लीलासागर : पृ० ३२१।

२. ढूसर राजा राम ही, दौलत वाका पूत।
तिषने सो गिरते लिया, बिगड़ी महँदी सूत॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १७९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि इन्हें उनकी सेवा में समर्पित कर दिया। गुरु के देहत्याग के पश्चात् दौलतराम जी कुछ दिनों तक जयपुर में ही रहे, जहाँ उन्हें दरबार की ओर से पर्याप्त आदर मिला।[1] इन्होंने यदि कोई स्वतंत्र स्थान बनाया हो तो उसका पता नहीं चलता।

(२७) प्रेमसनेही जी—इनका व्यक्तिगत परिचय अज्ञात है। ये कहाँ के मूल निवासी थे, इसका पता नहीं चलता। इनका व्यक्तिगत परिचय अज्ञात है। इनका कार्यक्षेत्र बंगाल का मुर्शिदाबाद नामक नगर था। वहाँ के गंगातट पर इनका आश्रम बना हुआ था। इनके शिष्य अलखसनेही के शिष्य रामसनेही ने सं० १८५३ वि० में ज्ञानानन्द निर्वाणी के 'दशमस्कन्ध भाषा' को लिपिबद्ध किया है। इनकी शिष्य-परम्परा इस प्रकार मिलती है—

प्रेमसनेही —अलखसनेही—रामसनेही—अज्ञात।

(२८) षुसाल(दास)– इनका नामोल्लेख 'लीलासागर' और 'नवसंतमाल' में नहीं है परन्तु गोसाईं जुगतानंद जी के प्रबुद्ध शिष्य रामचेरा जी की श्री चरणदास के १०८ शिष्यों की सूची में यह नाम सम्मिलित है। इनका कोई परिचय प्राप्त नहीं है।

(२९) रामदास जी (प्रथम)—चरणदास जी के १०८ मुख्य शिष्यों में इस नाम के दो शिष्य गिनाये गये हैं। साम्प्रदायिक सन्त सूची में इन्हें 'रामदास दोऊ' की संज्ञा दी गयी है। इनमें से आलोच्य रामदास खेड़ी गाँव (जिला–मेरठ) के निवासी थे। ये स्वभाव से त्यागी, वैराग्य-सम्पन्न, निरभिमानी, संतोषी एवं गुरुवाणी को लिखने-पढ़ने में संलग्न रहने वाले महात्मा थे। ये कवि भी थे। इनकी 'बानी' श्री जुगतानंद की गद्दी (दिल्ली) में सुरक्षित पाण्डुलिपियों की जिल्द सं० ४१ में संकलित है।

(३०) रामदास जी (द्वितीय)—जोगजीत जी ने इनका जन्मस्थान बाबागाँव बताया है, जो अनुमानतः दिल्ली के आस-पास ही कहीं होना चाहिए। अन्तर्साक्ष्यों के अनुसार ये एक वैभव-सम्पन्न गृहस्थ थे। लेकिन अन्ततः सब कुछ त्याग कर साधु हो गये थे।[2] ये भी रामदास (प्रथम) की भाँति एक सिद्ध

---

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का विवरण—भाग १ (ना० प्र० सभा) में जयपुर के एक दौलतराम का उल्लेख है जो परमात्मप्रकाश (गद्य) के रचयिता हैं और उनका काल भी सं० १८२३–३० के आस-पास है, जो उपर्युक्त दौलतराम जी का भी समय है।

२. कहते हैं कि इनके गाँव का चौधरी बड़ा क्रूर और दुष्ट था। उससे तंग आकर उन्होंने अपने गाँव का त्याग कर दिया और वे श्री चरणदास के शिष्य हो गये। —लीलासागर : पृ० ३१२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा थे और मुख्यतः दिल्ली एवं उसके निकटस्थ क्षेत्र में ही भक्ति-प्रचार करते थे। इन्होने कोई स्वतंत्र स्थान नहीं बनाया।[1] कहते हैं कि इन्होंने १४ गाँवों की चौधराई त्याग दी थी और उनके स्थान पर जो चौधरी हुआ, उसने उन्हें बहुत पीड़ित किया। जिसके परिणामस्वरूप इन्हें गृहत्याग करना पड़ा।

(३१) आसानन्द जी—इनका जन्म गाजियाबाद के एक वैश्य कुल में हुआ था। सत्संग और साधुसेवा में इनकी बड़ी रुचि थी। इनकी पत्नी इनके इस कार्य में बाधक थी। अतः इनकी बड़ी इच्छा थी कि किसी प्रकार वह मर जाती तो वे मुक्त रूप से विचरण करते और सत्संग का लाभ उठाते। संयोगवश इनकी यह कामना पूरी हुई और वे चरणदास जी के शिष्य बन गये। इनके नामकरण के मूल में इनकी यही आशा निहित है।

ये तह० सोनीपत, जिला-रोहतक के गढ़ी सिढ़ाना नामक स्थान में आश्रम बनाकर रहते थे। इनका यह स्थान आगे चलकर रामरूप जी के प्रधान थाँभे से संबद्ध हो गया। इस स्थान पर कुछ भूसंपत्ति भी इन्हें प्राप्त हुई थी, जो अब भी सुरक्षित है।

(३२) श्री हरिस्वरूप जी—हरिस्वरूप जी की प्रशस्ति में जोगजीत जी ऐसे भाव-विभोर हो गये हैं कि उनका कोई भी व्यक्तिगत परिचय वे न दे सके। इनके वर्णन से ऐसा लगता है कि वे इनसे अत्यधिक प्रभावित थे। वर्णन की भाषा द्रष्टव्य है—

लरजै रसना हरिस्वरूप की करत बड़ाई।
लक्षण तामें अधिक सु तो कहि नाहिं सकाई॥
नाम मात्र ही लेत हियो मेरो हुलसायो।
हितकारी गुरुभाई मेरे मन में अति ही भायो॥
हिय में ऐसी होय उमंग कब मिलिहैं सुखदाय ही।
हरिस्वरूप चरणदास शिष्य लक्षण अति अधिकाय ही॥[2]

---

१. इन दोनों रामदासों के लिए जोगजीत जी की यह उक्ति इनके आचार-विचार की परिचायिका है—

'गुरु की भक्ति माँहि दोऊ साँचे। पतिव्रता ज्यों पति रंग राँचे॥
साधु दोऊ त्यागी वैरोगी। जिनकी प्रीति राम सूं लागी॥'

पुनश्च—निरभिमानी दोऊ सूचे। प्रेम लगन में अति हो रूचे॥
गुरु की वाणी सों हित लावें। पढ़ पढ़ सुन सुन मोद बढ़ावें॥
सुखदाई संतोषी भारे। लक्षण धारी संत निहारे॥

—लीलासागर : पृ० ३१२।

२. वही : पृ० ३१६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभवतः इन्होंने किसी स्वतंत्र थाँभे का निर्माण नहीं किया था। यदि किया भी हो तो उसका पता नहीं चलता। इनकी बानियाँ भी अप्राप्त हैं।

(३३) रामसनातन जी—इनका कोई भी व्यक्तिगत परिचय नहीं मिलता। ये राम और गुरु में अतिशय भक्ति रखने के कारण ही गुरु द्वारा रामसनातन नाम से अभिहित किये गये थे।[1] संभवतः इनका निवास दिल्ली स्थित गुरुद्वारे में ही रहा।

(३४) सबगतिराम द्वितीय—सबगतिराम नामक दो व्यक्ति चरणदास जी के शिष्य थे। दोनों समशील एवं समवयस्क थे। एक सबगतराम का कार्यक्षेत्र मेरठ जिले का बाभनौली नामक स्थान था और आलोच्य सबगतिराम का जन्म और कर्मक्षेत्र दिल्ली नगर के आस-पास का क्षेत्र ही रहा। श्री चरणदास के परलोकवास के कुछ पहले ही सबगतराम जी परलोकवासी हो गये थे। ये राम के भक्त थे और सबमें राम के दर्शन करते थे।[2]

(३५) सुखरामदास (द्वितीय)—जैसा कि प्रथम सुखरामदास के संदर्भ में बताया गया है, इनका जन्म और कर्म स्थल छपरौली (जिला–मुजफ्फरनगर) था। ये प्रारंभ में गुरु के आश्रम में ही रहे परन्तु आगे चलकर छपरौली में इन्होंने स्वतंत्र स्थान बनाया। चरणधूर जी वहाँ पहले से ही प्रसिद्ध महात्मा हो गये थे। संभवतः ये भी जाति के गूजर थे। श्री सुखराम (द्वितीय) की स्वतन्त्र शिष्य-परम्परा का पता नहीं चलता। संभव है कि इनका स्थान इनके परलोकवास के उपरान्त या तो समाप्त हो गया हो अथवा चरणधूर जी के चिरचिटा या चोरमऊ के थाँभे के अन्तर्गत आ गया हो क्योंकि छपरौली में किसी स्वतन्त्र थाँभे का अस्तित्व सं० १९०० वि० के बाद के मेलों के अभिलेखों में नहीं मिलता। ये आत्माराम और भजनानंदी महात्मा थे। गूजर समाज में इनका बड़ा आदर था। ये प्रायः एक ही स्थान पर रहते थे और यथालाभ संतोषी थे।

(३६) हरिविलास—यों तो जोगजीत जी की अपने गुरुभाइयों के प्रति

---

१. हरि गुरु ही के ध्यान में, रामसनातन इमि पगे।
जोगजीत कहँ लौं कहै, भाग पुरबले ही जगे॥
—लीलासागर : पृ० ३२७।

२. राम रमैं सब ठाँ पहिचाने। और भाव दूजा नहिं आने॥
जड़ चेतन स्थावर अरु जंगम। सब ठाँ लखे राम को संगम॥
रामहिं धरनि राम आकासा। रामहिं चंद सूर परकासा॥
ब्रह्मा शेष महेश्वर रामा। लख चौरासी में विश्रामा॥
—वही : पृ० २९९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहन श्रद्धा एवं प्रशंसा-दृष्टि ही सर्वत्र देखने को मिलती है लेकिन हरिविलास जी के सम्बन्ध में उन्होंने अत्युक्तिपूर्ण विशेषणों का प्रयोग करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यद्यपि ये जाति के ब्राह्मण तथा विद्वान् एवं सम्पन्न व्यक्ति थे परन्तु इन सब के कारण होनेवाले अहंकार का पूर्णतः त्याग करके उन्होंने हरिभक्ति में अपने आपको तल्लीन कर लिया था।[1] इस प्रकार वे एक अच्छे महात्मा और गुरुसेवी साधक थे। इन्होंने कोई स्वतन्त्र स्थान-निर्माण भी कहीं पर किया था या नहीं, इसका पता नहीं चलता। ये राधा-कृष्ण की युगलोपासना में रुचि रखने वाले भक्त थे। उनके ज्ञान, टेक, विनम्र स्वभाव और आत्मसमर्पणमय भक्ति की श्री जोगजीत ने 'लीलासागर' में भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

ये अच्छे बानीकार थे। इनकी बानियों में गम्भीर मार्मिकता एवं हृदय-ग्राहिता निहित है। इनके दो पद यहाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

(१) ये अँखियाँ मोहन सूँ अँटकी।
एक दिना की बात श्याम की सुधि नहिं भूलत बंसीवट की॥
डोलत फिरत दिये गलबहियाँ त्रिविध पवन कालिंदी तट की।
कबधौं भर भर नैन सखी री हम देखें छबि नागर नट की॥
तब तें भोर जात वृन्दावन सीस धरूँ गोरस की मटकी।
निसि दिन आठों याम अली री बैरिन बंशी धुन उर खटकी॥
हरि बिलास सब सुधि बुधि त्यागी कुल मर्याद लाज घूँघट की॥

(२) ॥ राग बिहाग ॥
बरज्यो नहिं मानत बार बार।
जब मैं जात सखी दधि बेचन भाजत कंकर मार मार॥
लै लकुटी मटकी महिं पटकत घूँघट देखत टार टार।
हरवा तोरत गरवा लागत करत कचुकी तार तार॥
कपटी कुटिल कठोर स्याम घन देखत छबि तरु डार डार।
हरि बिलास ब्रजराज हठीलो बैठ गई मैं हार हार॥

(३७) श्री रामहेत या रामहेतु—इनका जन्म और कार्यक्षेत्र दिल्ली के निकट स्थित सुलहेड़ा नामक स्थान था। सुखी गृहस्थ जीवन बिताने के पश्चात् विरक्त होकर ये चरणदास जी के शिष्य हुए थे। श्री रामहेत अनेक कलाओं के

---

१. हरिबिलास अभिमान नसायो। चरणदास सतगुरु सरनायो॥
× × ×
चरनदास शिष साधु जु पूरा। ज्ञान ध्यान रहनी में सूरा॥
—लीलासागर : पृ० ३००।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्मज्ञ थे। इनकी साधना रसिक परम्परा की थी। इनके रामहेत नामकरण का मुख्य कारण जोगजीत जी के अनुसार यह है कि ये अपने गुरु को राम के ही समान समझते थे। इनकी अन्य विशेषताओं का अच्छा चित्र 'लीलासागर' की इन पंक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है—

ज्ञान ध्यान लक्षण अधिकारे। प्रेम लटक माहीं मतवारे॥
कबहूँ प्रेम मगन गुण गावे। कबहूँ मुरली अधर बजावे॥[1]

(३८) श्री नंददास—ये लखनऊ के कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे। जब अपनी रामत के क्रम में चरणदास जी लखनऊ गये थे, उस समय श्री नन्ददास ने उनसे वहीं दीक्षा देने का आग्रह किया था परन्तु गुरु के आदेश से श्री श्यामशरण बड़भागी के साथ उन्हें दिल्ली आना पड़ा।[2] उनकी सेवा-परायणता और निष्ठा से प्रसन्न होकर गुरु ने उन्हें दीक्षा दी थी। योग में उन्हें सिद्धि प्राप्त थी। दीक्षोपरान्त बहुत दिनों तक दिल्ली में रहकर वे वापस लखनऊ आये और भक्तिप्रचार में लग गये। इनका कार्यक्षेत्र अधिकांशतः लखनऊ और कानपुर के बीच था। श्री श्यामशरण बड़भागी से इनकी अच्छी मित्रता थी। उस समय कानपुर और बिठूर में बड़भागी जी का बड़ा प्रभाव था।

श्री नन्ददास एक अच्छे कवि थे। भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। इनकी भाषा में अवधी तथा फारसी का पुट है। इनकी भक्ति भावना में दैन्य का प्राधान्य है। अपने प्रभु से कृपा की भिक्षा माँगते हुए श्री नन्ददास कहते हैं—

॥ राग सोरठ ॥

सरण आयाँ की अर्ज सुनीजै।
मैं तो हूँ प्रभु औगुणगारो मो अपराध को माफ करीजै॥
भक्त बछल को बिरद कहावै मो पापी पर किरपा कीजै॥
नन्ददास अरदास करत है दरसन देइ अभै पद दीजै॥

श्री नन्ददास की भक्तिभावना सर्वसमर्पणमयी है। वे ऐसे एकनिष्ठ साधक हैं जिन्हें अपने परम प्रियतम द्वारा दिया गया सभी प्रकार का दुःख या सुख अंगीकार है। वे हर हाल में सुखी हैं। इस भाव को उन्होंने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है—

ज्यों भावै त्यों राख गुसाईं।
हमरे संकट काटो जी साँवरे कृपा करो प्रहलाद की नाईं॥
तोहिं त्याग और जो सुमिरे सो नर परहिं नरक के माँहीं।
नन्ददास को दीजै अभैपद चरण कमल राख्यो मन माँहीं॥

---

१. लीलासागर : पृ० २१२।
२. वही : पृ० २८७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३९) श्री हँसमुखदास—इनका भी जन्मस्थान लखनऊ ही था। श्री चरणदास ने अपनी लखनऊ की यात्रा में इनके निवास पर ही इन्हें दीक्षित किया था। इन्होंने लखनऊ के चौक बाजार में अपना स्वतन्त्र स्थान बनाया था। इनके यहाँ दूर-दूर के चरणदासी महात्मा एकत्रित होकर सत्संग और भंडारे का आयोजन करते रहते थे। इनकी एक विशिष्ट टेक का वर्णन 'लीलासागर' में आया है। इसके अनुसार इन्होंने एक दिन निश्चय किया कि लखनऊ में आकर चरणदास जी इनके यहाँ जब तक दुग्ध पान नहीं कर लेंगे तब तक वे अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। इनकी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए अन्ततः चरणदास जी को चमत्कारिक रूप से वहाँ प्रकट होना पड़ा। इनके द्वारा दिये हुए दूध को पीने के उपरान्त श्री चरणदास ने इन्हें पुनः ऐसा हठ न करने का आदेश दिया था।[1] लखनऊ के बड़े थांभों के संस्थापक गुरुप्रसाद जी और श्री मुक्तानन्द परमार्थी से इनकी घनिष्ट मैत्री थी। लखनऊ के १६ थांभों में से नंददास जी और हँसमुखदास जी का अपना-अपना थांभा कहाँ था, इसका निर्धारण बड़ा कठिन काम है। चूँकि इन दोनों थांभों के महन्तगण अपना स्थान बदलते रहते थे इसीलिए उनकी शिष्य-परम्परा भी व्यवस्थित नहीं मिलती।

इनकी प्राप्त अनेक बानियों में से श्री जगदीश जी राठौड़ ने दो पदों का संग्रह अपने बानी संग्रह की पाण्डुलिपि में किया है। ये दोनों पद निम्नलिखित हैं—

(१) ॥ श्री श्यामचरणदास की बधाई ॥ ॥ राग रसिया ॥

सखि दूसरपति औतार डहरे में जन्म लियौ ॥
भक्ति करावन पार लगावन शरणागत रखवार।
भादों शुक्ला तीज सुहाई शुभ है मंगलवार ॥
मातु पिता अरु सकल कुटुंब में बाढ़्यौ हर्ष अपार।
सात घड़ी सूरज चढ़ि आयो तब प्रगटे सुकुमार ॥
नर नारी प्रफुलित भये सारे कर रहे जै जै कार।
कोई जाय पंडित को लायो कर में पोथी धार ॥
भाई बन्धु सब लिये बोलाई रोरी आदि सँभार।
हँसमुखदास सबन को दीने बीड़ी पान सुपार ॥

(२) ॥ राग रसिया ॥

सखि सोभा बरनि न जाय कुंजो भवन की।
धन्य भाग है कुंजो तेरे पुत्र हुए हरि आय।
हम अबला ठाढ़ी सब द्वारे सुत के दरस कराय ॥

---

१. लीलासागर : पृ० २७०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब जब भीर परे संतन पै तब ही करे सहाय।
लीलासागर परम उजागर कृष्ण जन्म लियो आय॥
कुंजो रानी तूं बड़भागिन हरी को गोद खिलाय।
हँसमुखदास मगन हो नारी तारी दै दै गाय॥

(४०) हुलासदास जी—यद्यपि 'लीलासागर' में इनके नाम का उल्लेख नहीं है, फिर भी ये चरणदास के १०८ शिष्यों में थे, यह निश्चित है। इनकी 'हुलासदास जी की बानी' शीर्षक बानीसंग्रह प्राप्त है जिसके आरंभ में गीता के १८ अध्यायों का पद्यानुवाद है और अंत में कुछ स्फुट पद संकलित हैं। इनकी यह कृति स्वामी रामरूप जी की गद्दी (दिल्ली) में सुरक्षित है। इसमें कवि ने अपने को चरणदास का शिष्य कहा है। संपूर्ण गीता का इतना अच्छा पद्यानुवाद इस संप्रदाय के किसी अन्य कवि ने प्रस्तुत नहीं किया है।

(४१) श्री गोपालदास—ये मूलतः दिल्ली के ही निवासी थे। श्री चरणदास में उनकी गहरी आस्था थी। इनकी गुरुभक्ति के सम्बन्ध में 'लीलासागर' का कथन इस प्रकार है—

गुरु की भक्ति माहिं अति पूरा। ज्यों रण में ललकारे सूरा॥
सतगुरु जी का संत नवेला। प्रेममगन देखे अलबेला॥[1]

ये प्रायः गंगा और जमुना के बीच द्वाब-क्षेत्र में ज्ञानोपदेश देते हुए सदैव रामत करते रहते थे। इनको जोगजीत जी ने उच्चकोटि के भक्त के रूप में वर्णित किया है। उन्होंने सुन्दरता में इन्हें साक्षात् कृष्ण जी की प्रतिमूर्ति बताया है। इनके शिष्य श्री हरगोपाल ने 'ज्ञानमाल' नामक सुन्दर काव्य की रचना की है। श्री गोपालदास का एक नाम जनगोपाल भी मिलता है। इनके इसी छाप से युक्त एक विनय का पद राठौड़ जी ने अपने बानी संग्रह में संकलित किया है, जो इस प्रकार है—

मो सम और न कोउ बुरो।
त्रिविध गुनन सूं देह बनी है ममता पाप घुरो॥
सेवा भजन भाव में आलस सन्तन को निदरो।
जगत प्रपंच में राचि रह्यो नित जासुं तुम्हें बिसरो॥
ऐसी गति ह्वै रही है मेरी अब कैसे निबरो।
जनगोपाल चरण को दासो कृपा सु दृष्टि करो॥

(४२) हरिभक्त जी—ये वृन्दावन के निकट स्थित कामावन (जहाँ नागरीदास गुसाईं का कार्यक्षेत्र था) के निवासी तथा जाति के भाँट थे। शिष्य

१. लीलासागर : पृ० ३०७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने के पूर्व चरणदास जी की ख्याति के कारणों की परीक्षा लेने के लिये ही ये उनकी नई बस्ती (दिल्ली) स्थित गद्दी पर गये थे और वहाँ अनेक साधुओं को उस दिन बिना भोजन के व्यतीत करने की स्थिति को देख इनमें श्री चरणदास के प्रति अनास्था उत्पन्न हुई थी। जब वे उनके प्रति अविश्वास के भाव से पूर्ण होकर होकर लौटते हुए आश्रम के मुख्य द्वार पर आये तभी उन पर एक शेर ने आक्रमण कर दिया और वे पुनः भयभीत होकर अस्थल में चले आये। बाद में चरणदास जी ने उन्हें बताया कि उनका अविश्वास ही शेर के रूप में उपस्थित हुआ था। तब से वे उनके अनन्य भक्त हो गये।[1] इस वृत्त के अतिरिक्त इनका अन्य परिचय अप्राप्त है। संभवतः इनका भी कार्यक्षेत्र मथुरा-वृन्दावन के आस-पास ही रहा।

वे शिष्य, जिनका कोई वृत्त नहीं मिलता—

(१) सेवकदास, (२) श्यामनिरंजनदास, (३) अतीतराम (संभवतः जन्म तथा कर्मक्षेत्र जयपुर), (४) साधुराम (द्वितीय), (५) हरिकृष्णदास (अलवर के आस-पास के निवासी), (६) सागरदास (ब्राह्मणी खेड़ा, दिल्ली के निकटस्थ, के निवासी), (७) नारायणदास (संभवतः ढूसरवंशीय एवं दिल्ली के निवासी), (८) मय्यादास (मयादास),[2] (९) मनमोहन या मदन मोहन, (१०) बलरामदास, (११) शोभानन्द, (१२) मँगनीराम, (१३) माणकदास, (१४) टीकमदास और (१५) महादास (महारामदास)।

गोसाईं जुगतानंद जी के शिष्य श्री रामचेरा जी ने १५ दोहों में चरणदास जी के शिष्यों की जो सूची दी है उसमें १०९ शिष्यों में उन सात समदों (डाकुओं) की भी गणना की गयी है, जो श्री चरणदास की सिद्धियों से चमत्कृत होकर उन्हें लूटने के स्थान पर उनके शिष्य बन गये थे।[3] इसी प्रकार लक्खीराम जी की सूची और 'नवसंतमाल' की सूचियों में भी यह संख्या १०० से कम है। यद्यपि इन दोनों में शिष्यों की संख्या १०९ बताई गई है परन्तु इनकी सूचियों में समाविष्ट नामों की संख्या ८४ से १०० तक ही रह जाती है। इनके अतिरिक्त 'लीलासागर' तथा अन्य सूत्रों के आधार पर चरणसहाय, गिरधरदास, श्यामरूप या श्यामरंग, भक्तिदास, बावलदास, लटकनदास, बलरामदास जैसे कुछ और नाम मिलते हैं परन्तु बड़े

---

१. लीलासागर : पृ० ३०८।

२. मय्यादास (मयादास ?) का नाम श्री जीगजीत ने ४ साधुओं—मयादास, हरिदास, गिरिधरदास और चरणखाक के साथ एक ही वाक्य में लिखा है। वही : पृ० ३२१।

३. वही : पृ० २४७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोच-विचार और तर्क-वितर्क के बाद इन नामों को उक्त १०९ शिष्यों की सूची से अलग करना पड़ा।

उपर्युक्त १५ नामों की सूची में से (१) नारायणदास, (२) महादास, (३) सेवकदास, (४) निरंजनदास, (५) अतीतराम, (६) हरिकृष्णदास, (७) सागरदास, (८) मयादास और (९) गिरधरदास—ऐसे नाम हैं, जिनका नामोल्लेख 'लीलासागर' में मिलता है परन्तु उसमें इनका कोई भी परिचय नहीं दिया गया है। ये नाम 'समुदाई सन्तन को चरित्र' शीर्षक के अन्तर्गत गिनाये गये २२ नामों में सम्मिलित हैं। इस सूची के शेष शिष्यों का परिचय जोगजीत जी ने 'लीलासागर' में कहीं न कहीं दे दिया है।[1] जिन कवियों (चरणदास जी के १०९ शिष्यों की सूची में सम्मिलित) का वृत्त किसी भी सूत्र से उपलब्ध नहीं हुआ उनका यहाँ मात्र नामोल्लेख करके ही संतोष करना पड़ा है। यदि इस दिशा में शोधकार्य होता रहा तो भविष्य में इनकी बानियाँ भी प्राप्त हो सकती हैं और इनके परिचय के सूत्र भी हाथ लग सकते हैं।

---

१. लीलासागर : पृ० ३२१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम अध्याय

तत्वचिन्तन और साधना का स्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदासी संप्रदाय : तत्वचिंतन और साधना का स्वरूप—

(अ) आराध्य का स्वरूप—

उपास्य के मूलस्वरूप में ब्रह्म, ॐकार तत्व, ब्रह्म और माया, ब्रह्म और जगत् का पारस्परिक संबंध, परमात्मा और आत्मा, निर्गुण का सगुण रूप, पुरुषोत्तम रूप और अमरलोक या निजवृंदावन धाम, आराध्य का सगुणात्मक स्वरूप—परब्रह्म के अवतार के कारण, चौबीस अवतार, युगलोपासना, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण : आराध्य रूप में, परमाराध्या श्री राधा, गोपी, सहचरी, सखी आदि, रामनाम का रहस्य, आलोच्य संप्रदाय में मुक्ति का स्वरूप और मुमुक्षु के लक्षण, भाग्यवाद और पुनर्जन्मवाद ।

(ब) साधना का स्वरूप—

ज्ञानमार्ग और उसकी निस्सारता, कर्म मार्ग एवं नवधाभक्ति, भक्ति ज्ञान और योग से बड़ी, मानसोपचार सेवा, वैधीभक्ति, अष्टयाम सेवा विधि, सर्वोत्तमा (प्रेमा) भक्ति और भक्त, प्रेमाभक्ति और सखी भाव, शुक संप्रदाय (चरणदासी संप्रदाय) में योग साधना का स्वरूप—अष्टांग योग, योगांग (यम, नियम, आसन, प्रत्याहार आदि) प्राणायाम-साधना, अनाहतनाद, षट्कर्म, मुद्राएँ, धारणा और समाधि ।

(स) भक्ति के साधक एवं साधक तत्त्व—

(१) साधक तत्त्व—गुरु तत्व, निगुरा की स्थिति, आदिगुरु श्री शुकदेव-मुनि, संत और सत्संग, मानव काया के रहस्य का यथार्थ ज्ञान, जगत् और सामाजिक संबंधों का यथार्थ ज्ञान, आत्मबोध और वैराग्य, ज्ञानी कौन, ब्रह्मचर्य और नारी त्याग, शील और दया ।

साधना के बाधक तत्व—क्रोध, मोह, लोभ, अभिमान, असज्जनता आदि ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अ) तत्वचिंतन और आराध्य का स्वरूप—

इस संप्रदाय के साहित्य का सम्यक् अध्ययन करने के पश्चात् प्रायः इसी निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि इसका दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैत सिद्धांत के बहुत निकट है। शुकसंप्रदाय के साधनामूलक अध्यात्म चिन्तन में सामान्यतया ब्रह्म और माया के संबंध में जो विचार व्यक्त किये गये हैं, उनमें अद्वैत और द्वैत—दोनों मतों के सामंजस्य की स्थिति दिखाई देती है। कहीं-कहीं ऐसे विचारों से भी हम टकरा जाते हैं, जिनसे अचिंत्य भेदाभेद और विशिष्टाद्वैत मतों की मान्यताओं का भी समर्थन होता दिखाई देता है। परन्तु गोसाईं जुगतानंद, रामरूप जी, सहजोबाई जी और जोगजीत जी ने अपनी-अपनी कृतियों में अपने गुरु चरणदास जी के एतत्संबंधी विचारों का जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया है, वह निर्भ्रांत रूप से 'द्वैताद्वैत सिद्धान्त' का ही पोषक है।[1] इस संप्रदाय के वर्तमान आचार्यों की भी प्रायः यही मान्यता है। अतः यहाँ इसी आलोक में इस संप्रदाय के दार्शनिक मान्यताओं का विवेचन किया जायगा।

(१) उपास्य के मूल स्वरूप में ब्रह्म की स्थिति—सामान्यतया इस संप्रदाय में ब्रह्म के मूल स्वरूप में कोई भ्रांति नहीं है। अधिकांश कवियों ने ब्रह्म को त्रिगुणातीत, निराकार, निर्वाण रूप, निर्गुण, मूलप्रकृति से युक्त, मन-वाक् से अगोचर, अरूप, अनाम, अखंड, अद्वय, निर्लेप और न ज्ञाता न ज्ञान और न ज्ञेय, त्वं एवं तत्पद से रहित, छायाविहीन, सच्चिदानंदमय, निराधार, निरालंब, अकथ्य, असीम, न सूक्ष्म और न स्थूल, न्यूनाधिक्यरहित, मात्र आंशिक रूप से अनुभवगम्य तथा आकाश की भाँति सर्वव्यापक आदि विशेषणों के साथ वर्णित किया है।[2] इस ब्रह्म का स्वरूप वर्णन सुश्री सहजोबाई के शब्दों में द्रष्टव्य है—

जाके रस अरु रूप ना, गंध नहीं वा ठौर।
शब्द नहीं सपरस नहीं, सहजो वह कछु और॥
गुण तीनों से परे है, तामें रूप न रेख।
बोधरूप सहजो कहै, ब्रह्मदृष्टि कर देख॥[3]

ॐकार तत्व—

उपनिषदों में ब्रह्मतत्व मुख्यतः प्रणवतत्व के रूप में प्रतिष्ठापित है। आत्मा-

---

१. सूरदास सर्गुन कथे, निरगुन कथे कबीर।
चरनदास दोनों कथे, पूरन पुरुष गंभीर॥
—शुकसंप्रदाय सिद्धान्त चंद्रिका : सरसमाधुरीशरण कृत, पृ० १२४।

२. उदाहरणार्थ द्रष्टव्य : गुरुभक्तिप्रकाश (गुरु-शिष्य-गोष्ठी), पृ० १०५।

३. सहजप्रकाश : पृ० ६०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा के बीच की कड़ी के रूप में भी वह स्वीकृत दिखायी देता है। 'मांडूक्योपनिषद्', प्रश्नोपनिषद्' और 'कठोपनिषद्' में ॐकार को परब्रह्म का वाचक माना गया है।[1] वस्तुतः यह उपनिषदों का प्रमुख वर्ण्य-विषय ही है। चरणदास जी ने भी हंसनादोपनिषद्, सर्वोपनिषद्, तत्वयोगोपनिषद्, योगशिखोपनिषद् और तेजविन्दूपनिषद्—इन ५ उपनिषदों के सारांश के माध्यम से उपनिषदों में चर्चित विषयों का संक्षेप सरल, सुबोध और प्रभावशाली शैली में सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने भी उनके ज्ञान का लाभ उठाकर अपने-अपने ढंग से अपनी वानियों में ब्रह्मतत्व और ॐकारतत्व का निरूपण किया है।

श्री चरणदास ने ॐ के अ, उ और म् अर्थात् अकार, उकार और मकार के के अन्तर्गत तीनों वेदों, तीनों देवों (त्रिदेवों) त्रिलोकों, तीन प्रकार की अग्नियों और तीनों गुणों का अस्तित्व समाहित बताया है।[2] उनके विचार से इस रूप की व्याप्ति के अन्तर्गत ही सारा ब्रह्माण्ड समाविष्ट है। उससे बाहर कुछ भी नहीं है—

अक्षर साढ़े तीन प्रणव के माहिं है।
सब वस्तू वा माहिं बाह्य कछु नाहिं है॥
ऐसे रह वा माहिं पुष्प में गंध ज्यों।
जैसे तिल में तेल दूध में घीव त्यों॥
जैसे पाहन माहिं जु कनक बताइये।
ऐसे ही ॐकार में सबको पाइये॥[3]

सहजोबाई जी के विचार से ब्रह्म न तो निर्गुण है और न सगुण, न साकार है और न तो निराकार ही; अस्ति-नास्ति दोनों से परे है, न उसका कोई नाम है और न धाम, वह प्रगट भी है, गुप्त भी; तात्पर्य यह कि वह सर्वतोभावेन वर्णना-

---

१. प्रणवोह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः।
अपूर्वोऽनन्तरो वाह्योऽपर प्रणवोव्ययः॥
(इसी आशय की उक्तियाँ क्रमशः प्रश्नोपनिषद्—श्लोक सं० २ तथा कठोपनिषद् श्लोक सं० १५ में भी कही गयी हैं।)

२. तीनों अक्षर माहिं जो तीनों वेद हैं।
ऋग्यजुवेदरु साम तिहूँ जो भेद हैं॥
तीनों अक्षर माँहि तिहूँ जो देव हैं।
ब्रह्मा विष्णु महैश बड़े जो अभेव हैं॥
—भक्तिसागर (तत्वयोग) : पृ० १७४।

३. वही (तत्वयोगोपनिषद्), पृ० १७४–१७५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीत है।[1] वह अनाम होकर भी सर्वनाम है और अरूप होकर भी सर्वरूप है। उस परब्रह्म को निर्गुण-सगुण से परे मानना ही श्रेयस्कर है—

निर्गुण सर्गुन भेद न दोई। आदि अंत मध्य एकहि होई।
गूंगे के सपने सम बाता। सहजो करै कौन के साथा॥
निर्गुण सर्गुण एक प्रभु, देखा समझ विचार।
सतगुरु ने आंखें दई, निश्चय किया निहार॥[2]

ब्रह्म के संबंध में इन्हीं अन्तर्विरोधों को देखते हुए उसके स्वरूप-विवेचन में प्राय मौनावलम्बन ही एक मात्र उपाय बचता है। परन्तु इस अनिर्वचनीय को भी मन और वाणी का विषय मानकर उसका यदि स्वरूप निरूपित करना ही हो तो वह इस प्रकार है—

ब्रह्म के गांव न ब्रह्म के ठांव न ब्रह्म के नांव न रूप उजारी।
ब्रह्म के तन्न न ब्रह्म के मन्न न ब्रह्म के बुद्धि न साधन हारी॥
ब्रह्म के भेव न ब्रह्म के लेव न ब्रह्म के हेव न प्रीति करारी।
जुगतानंद जू अद्वैत मनै तहां सूक्षम थूल न हलको न भारी॥[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शुक-संप्रदाय के आरंभिक आचार्यगण अपने आराध्य के मूल स्वरूप को द्वैताद्वैत विलक्षण सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं।

(२) ब्रह्म और माया—(पुरुष और प्रकृति)—इस संप्रदाय के आचार्यों की मान्यता है कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म की इच्छा ही प्रकृति या शक्ति है। इसी से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। तात्पर्य यह कि ब्रह्म की इच्छा शक्ति ही सृष्टि की जनयित्री, कारयित्री या आदि कारण है। अपनी सृष्टि में ही ब्रह्म की व्याप्ति है। सब करता हुआ भी वह मूलतः निर्लेप या निरंजन है। ब्रह्म के मुख्यतः तीन स्वरूप हैं—(१) सूक्ष्म रूप—जो चराचर में अव्यक्त रूप से वर्तमान रहता है, उसे केवल ज्ञानी ही जान पाते हैं। (२) विराट रूप—इसी रूप में वह इस सृष्टि का धारण-कर्त्ता है, जो ब्रह्म के इस रूप से परिचित हो वह जीवन्मुक्त हो सकता है। (३) व्यापक रूप—यह उसका सच्चिदानन्द रूप है, जो वाणी और बुद्धि से अगम्य-अगोचर है।

---

१. निराकार आकार सूं, निरगुण अरु गुणवंत।
है नाहीं सूं रहित है, सहजो वह भगवंत॥
नाम नहीं अरु नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि परगट हरि गूप॥
—सहजप्रकाश : पृ. ९१।

१. वही : पृ. ९३–९४।

२. गो० जुगतानंद कृत भक्तिप्रबोध (पांडुलिपि) : पत्र सं० १००।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह त्रिरूप परब्रह्म वाह्यतः माया के आवरण से आविष्ट है। जैसे पानी में विकार रूप शैवाल आदि उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार माया ब्रह्म का विकार है। माया दृश्य है, ब्रह्म अदृश्य है। फिर भी ब्रह्म उस दृश्य माया में उसी प्रकार रहता है जैसे दूध में घृत या काष्ठ में अग्नि का अस्तित्व है। मूल प्रकृति ही स्थूल रूप धारण कर ब्रह्माण्ड हो गयी है। त्रिगुणों के विविध समन्वय या मेल के ही परिणाम रूप में नाना प्रकार के पिंडों का उद्भव हुआ है। इस सृष्टि के हर घट में जीव के रूप में या चैतन्य रूप में ब्रह्म का निवास है।[1]

इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय माया के ही कार्य हैं। परब्रह्म सर्वदा एकरस रहता है। उसमें किसी भी प्रकार की गति या क्रियात्मकता का नितांत अभाव है।[2] माया बड़ी गुणवती और प्रवीण है। यह कभी सत्य आभासित होती है तो कभी असत्य। यह त्रिगुणात्मिका आदिशक्ति अपने राजस गुण से जगत् का आविर्भाव, सात्विक गुण से पालन और तामस गुण से संहार का कार्य करती है। यह बड़ी चतुरा है। इसने बाह्यतः हरि-पथ को अवरुद्ध कर दिया है। कंचन, वस्त्र, कामिनी-कंत, हाथी, घोड़ा, सुन्दर मंदिर, राजा और अनेक प्रकार की प्रजा, हीरा-मोती, मणि, अष्टधातु और अन्य अनेक प्रकार की सामग्री आदि के रूप में माया का ही विस्तार है। ब्रह्म सबमें रमा होने पर भी पूर्णतः निरंजन रूप है। जादूगर को जादू का चमत्कार मोहित नहीं करता परन्तु दूसरे मोहित हो जाते हैं।[3]

माया ही आपस की लड़ाई-भिड़ाई और उत्पात का कारण है। यही गर्व मोह, लोभ, प्रेम, द्रोह, काम, आशा, वासना, इन्द्रियस्वाद, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, नरक-स्वर्ग, बालक-तरुण-वृद्ध, तपस्या, कामना, मंत्र, योग-भोग आदि अनेक रूपों में व्यक्त होती है। जगत् के सभी रंग-रूप-नाम आदि मायाकृत ही हैं। यहां तक कि अकर्म-सुकर्म, नवधा भक्ति, विद्या, पांडित्य, नेत्र, श्रवण, मुख आदि भी इसी के रूप हैं।[4]

---

१. गुरुभक्ति प्रकाश : पृ. १०७-१०८।

२. निरकार तो ब्रह्म है, माया है आकार।
दोनों पद ही को लिए, ऐसा पुरुष निहार॥
—भक्तिसागर (अमरलोक अखंडधाम), पृ० १७।

३. जैसे बालक संग मिलि, वृद्ध करैं बहु षेल।
आपन खेल बँधैं नहीं, बालहेत सब षेल॥
यों परमातम ने धरचो, सुंदर श्याम सरूप।
भक्ति प्रीति बस होय करि, लीला करी अनूप॥
—भक्तिप्रबोध (गो० जुगतानंदकृत) : पत्र सं० ७२

४. कहीं भक्ति नवधा भई, रंग लगावन हार।
कहीं विद्या पंडित भई, अरथ बिचार बिचार॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह माया मुख्यतः दो प्रकार की है—(१) बंधन स्वरूपा माया और (२) मुक्तिस्वरूपा माया। मूल प्रकृति ही 'आसुरी' और 'ईश्वरी'—इन दो रूपों में प्रकट हुई है। अपने आसुरी रूप से वह प्रवृत्तिमयी है और भक्तिमार्ग की अवरोधिका है जब कि दैवी रूप में वह निवृत्तिमयी होकर मुक्तिदायिनी है। आसुरी माया ही जीव को अधःपतन की ओर ले जाती है। यही जीवों को पंच विषयों में फँसाती है। इन्द्रिय-स्वाद की ललक, कुटुंब-प्रेम, अहंकार, अज्ञानांधकार, कर्मजाल, आपत्तियों की मार और अनेक प्रकार के विकार आसुरी माया की ही देन हैं।

इसके विपरीत ईश्वरी माया बन्धनों से मुक्ति दिलाने वाली, राम से मिलाने वाली, सतोगुणी, सुलक्षणी, सत्संगतिरूपिणी; शील, दया, संतोष, निर्दोषता, त्याग, विराग, ज्ञान-विवेक और परमगति प्रदान करने वाली है।[1] आसुरी माया से प्रभावित जीवों की स्थिति का एक चित्र द्रष्टव्य है—

जग जंजाल मोह का जाला। कुल नाते अरु सुंदर बाला।
सुत पुत्री अरु सब परिवारा। ममता धरा शीश पर भारा॥
काम क्रोध की ज्वाला भारी। तामें सुलगें नर अरु नारी॥
लोभ काज इत उत को दौरें। गर्व करत नहीं लाजें बौरें॥
हिंसा करें दया नहिं जानें। जहां तहां झगरो ही ठानें॥
महा अशौच और व्यभिचारी। झूठ वचन कहें सभा मँझारी॥
जग व्यौहार सभी पहिचानौ। कला खेल आसुरी जानौ॥
महा अयोगी भक्ति बिन, इंद्री वश नर नारि।
जाने ना परलोक को, लोक भोग में ख्वार॥[2]

यह आसुरी माया जीवों को सत्संगति से विरत करती है; कुमति एवं भ्रम उत्पन्न करती है; नरक में ले जाती है और पुनः चौरासी लाख योनियों में चक्कर कटाती है। यह सभी जन्मों में साथ लगी रहती है। कभी अलग नहीं होती। यह कनक-कामिनी की चकाचौंध से जन सामान्य को ऐसा विकल कर देती है कि संत और हरि की ओर जाने की उसमें प्रवृत्ति ही नहीं पैदा होने पाती। यदि कोई

नैन देख सरवन सुनै, मुख से कहै जु बाक।
सबही माया जानिये, यों बेदन की साख॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १०८।

१. वही : पृ० ११२।
२. वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग-ध्यान की ओर जाना भी चाहता है तो वह रोग होकर उसे पछाड़ देती है। यह ज्ञानी और जिज्ञासु को भी विषय-रस से सिक्त कर देती है। यदि कोई भक्ति मार्ग पर चलता है तो यह दंभ के रूप में उनके मन को वशीभूत कर लेती है। इसके इस स्वरूप का वर्णन रामरूप जी के शब्दों में इस प्रकार है—

तपसी को फल होकर आशा। बाके मन में करे निवासा ॥
वैरागी को मोह लगावे। त्यागी को लालच उपजावे ॥
यह हत्यारी कहूँ न छोड़े। बहुत भाँतिही जी को गोड़े ॥[1]

यद्यपि इस माया का कोई आकार-प्रकार नहीं है, फिर भी यह सर्वत्र व्याप्त है और सब जीवों को अपने मोहपाश में जकड़े हुये हैं।[2] इससे मुक्ति, ज्ञान, ध्यान, समाधि, दया, क्षमा, मनोनिग्रह और भगवत्भक्ति आदि की सहायता से ही मिल सकती है।

(३) ब्रह्म, माया और जगत् का पारस्परिक संबंध—माया के स्वरूप-धारण के पूर्व ब्रह्म अद्वैत, शुद्ध, अखंड और अद्वय था परन्तु उसकी अन्तर्निहित सुषुप्त इच्छा-शक्ति की जागृति के परिणाम-स्वरूप माया अस्तित्व में आ गयी। माया का साथ हो जाने के कारण ब्रह्म ने परमपुरुष या ईश्वर का रूप धारण किया। इसी परम पुरुष रूप धारी ब्रह्म ने जगत् की सृष्टि की। उसने अपने एक अंश को जीव-रूप में परिणत करके कई कोटि जीवों की रचना की। पुनः यह जीव रूप धारी अंश शरीर के संयोग से इसमें (शरीर में) लिप्त हो गया, जब कि ईश्वर मुक्तस्वरूप ही रहा। अतः कहा जा सकता है कि यह जगत् ईश्वर की लीला है। जीव इस लीला के प्रभावस्वरूप अपने मूल स्वरूप को भूल गया। उसने देह, नाम, कुल आदि को ही अपना आश्रय बना लिया। ब्रह्म के अंश रूप जीव ने शरीर में आते ही तृष्णा में अपने आपको फँसा दिया। निष्कर्ष रूप मे ब्रह्म-माया-जगत् के परस्पर संबंधों को रामरूप जी की निम्न पंक्तियों द्वारा भलीभाँति इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं—

प्रथम ब्रह्म अद्वैत था, शुद्ध अखंड अछेद।
इच्छा ही के करत ही, भया जु माया भेद ॥

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ११४।

२. जेते सुख संसार के, सबही माया जार।
तामें दो कणका धरे, एक द्रव्य एकनार ॥
लालच लागे चाव सूं, गिरे आय करि लोय।
फँसे आपसूं आपही, गहि नहिं लाया कोय ॥
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : माया अंग वर्णन, पृ० २३८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माया ही को संगले, धरो पुरुष का रूप।
ता ही को ईश्वर कहत, सुन्दर अधिक अनूप ॥
धरि के पुरुष स्वरूप ही, रच्यो सकल संसार।
जीव अंश दियो आपनो, फैलो बहु विस्तार ॥
जीव जु बंध स्वरूप है, ईश्वर युक्त स्वरूप।
ताही ते स्वाधीन है, भेद कहूँ यह गूप ॥
कारण माया ईश्वरी, सूक्षम जाको अंग।
लीला कौतुक करन को, ईश्वर ने लई संग ॥
कारण सो कारज भई, भया जो मोटा अंग।
ताको कहिये आसुरी, चंचल अरु बेढंग ॥[1]

जिस प्रकार मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तनों का निर्माण होता है, और फूट जाने पर इन बर्तनों का अवशेष मिट्टी-रूप ही रह जाता है; आदि, मध्य और अंत में मिट्टी ही रहती है, इसी प्रकार जगत् के आदि, मध्य और अंत में ब्रह्म ही व्याप्त रहता है। केवल कुछ समय के लिए कर्म विषयक विपाक से आत्मा शरीर रूप धारण करके अपनी क्षणिक लीला का प्रदर्शन करने के उपरांत पुनः अपने पूर्व-रूप में समा जाती है।[2]

तात्पर्य यह है कि जनसामान्य की साधारण दृष्ट्या वास्तविक प्रतीत होने वाला जगत् मूलतः भारी भ्रमजाल, स्वप्नवत्, मृगतृष्णावत्, रज्जु-सर्प सदृश भ्रमोत्पादक और मूलतः अनस्तित्व है। जैसे स्वप्न में कोई राजा रंक होकर दुःखी हो जाता है परन्तु जागृतावस्था में वस्तुतः वैसा कुछ नहीं रहता उसी प्रकार यह जगत् यथार्थ आभासित होकर भी यथार्थ नहीं है। यह जैसा दिखाई देता है मूलतः वैसा है नहीं। अतः इस लीलामय जगत् के मूल सूत्रधार की खोज ही ज्ञानी और साधक का इष्ट है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि शुकसंप्रदाय की मान्यता के अनुसार ब्रह्म

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ११६–११७।

२. आदि अंत है ब्रह्म ही, बीच-बीच में भर्म।
ऐसे ही जग जानिये, समझ गुरू का मर्म ॥
कहने मात्र जु जगत है, जगत् जु ब्रह्म का रूप।
जैसे लहर समुद्र है, ज्यों सूरज अरु धूप ॥
ज्यों तरंग जल में उठे, ज्यों धरती पर रेख।
जैसे पुतली थंभ में, ऐसे जग कूं देख ॥
—वही : पृ० १४१–१४२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चित् शक्ति माया इस जड़-चेतनमय जगत् का निर्माण ब्रह्म की इच्छा या प्रेरणा से करती है। आरंभ में तो वह भी ब्रह्म की सत्ता में लीन ही रहती है परन्तु ब्रह्म की ब्रह्माण्ड सृष्टि की इच्छा के उदित होते ही वह त्रिगुणात्मिका रूप में एक भिन्न सत्ता धारण करके सक्रिय हो जाती है। अपने त्रिगुण स्वरूप से ही वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव और दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि का रूप-सृजन करती है। साथ ही वह जड़, चेतन और जड़-चेतनमय, इन तीनों प्रकारों की सृष्टि भी कर देती है। पाँच तत्व, तीन गुण, दश इंद्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, नाना प्रकार-आकार की करोड़ों जीव योनियाँ, नानाप्रकार के रंग, चमक-दमक, विद्युत आदि का अनंत विस्तार, समस्त दृश्य जगत् की स्थिति और लय आदि सभी माया के कार्य हैं।[1]

४. परमात्मा और आत्मा—शुक संप्रदाय के सिद्धान्त प्रतिपादकों में से एक एवं वरिष्ठ आचार्य कवि रामरूप जी के विचार से मनुष्य का वास्तविक स्वरूप उसका शरीर न होकर उस शरीर या घट के अन्दर वर्तमान ब्रह्मांशभूत आत्मा है।[2] शरीर मूलतः जड़ है परन्तु आत्मा चैतन्य है; शरीर रूपमय है और आत्मा अरूप है; जीवात्मा नित्य, क्षेत्रज्ञ, अक्षर, गुह्य, अलेख, सच्चिदानन्दमय, एकरस, अमर, अशोक, अविनाशी, निर्विकार, निर्लिप्त, निस्त्रैगुण्य और निर्बन्ध है। जबकि शरीर अनित्य, प्रकट, क्षेत्र, क्षर, लक्ष्य, वर्ण-जाति-कुल-गोत्रादि में विभक्त, उत्पत्ति एवं विनाशशील, नानारोगों से ग्रस्त, अनेक विकारों से युक्त, त्रैगुण्य और माया के प्रवाह में पड़ा रहने वाला है।[3]

चौबीस तत्व और त्रिगुण मानव काया को सदा वशीभूत रखते हैं। यह इनसे स्वतंत्र नहीं हो पाता। विषय-वासना और इन्द्रियस्वाद ही इस शरीर के मुख्य बन्धनकारक हैं। इन्हीं के कारण विषयी व्यक्ति शरीर की आसक्ति में फँसा रहता

---

१. उपजावे पाले हने, माया बाजी जान।
आतम नित इकरस रहै, तामें लाभ न हान॥
घटै बढ़ै वाकी कला, ससियर की थिर जोय।
ऐसे पुरुष प्रकृति हैं, समझै ज्ञानी होय॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १०७।

२. यह जो तेरी देह है, सो आपन मत मान।
तू तो आतम रूप है, अपनी करि पहिचान॥
—वही : पृ० १३६।

३. वही : पृ० १३६–१३७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सुख-दुःख का भोक्ता भी शरीर ही है, आत्मा इनसे मुक्त है, लेकिन भ्रमवश लोग आत्मा को ही इनसे प्रभावित मानते रहे हैं। अतः रामरूप जी का यह उपदेश यहाँ प्रासंगिक है—

जो तू चाहे मुक्ति ही, इन्द्रिन के रस छोड़।
तीनों गुण के संग सूं, मन को लावो मोड़॥[1]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जहाँ तक जीवात्मा और परमात्मा के संबंधों के निरूपण का प्रश्न है, चरणदास जी के विचार निंबार्क संप्रदाय के 'अचिन्त्य भेदाभेद' सिद्धान्त से मिलते हैं। परन्तु यही बात उनके ब्रह्मनिरूपण के विषय में लागू नहीं है। वहाँ वे द्वैताद्वैती दिखाई देते हैं। ब्रह्म के अंश रूप में माया की व्याप्ति का संकेत करते हुए चरणदास जी कहते हैं—

काया मंदिर आप रमायो। ताते राम नाम धरवायो॥
देह संजोग राम कहलायो। चरणदास शुकदेव बतायो॥
सूरज चींटी आदि दे, लघु दीरघ के माहिं।
सबमें पोई आत्मा, बाहर कोई नाहिं॥
छोटे भांड़े में करै, छोटा ही परकाश।
बड़े जु भांड़े में करै, जेता होय उकाश॥
ज्ञानवन्त कूं मैं दियो, दीपक को दृष्टान्त।
जो वह समझै चाव सूं, मिटै तिमिर अरु भ्रांति।
आप लखे ते वाकूं पावै। जो पे सतगुरु भेद बतावै॥[2]

शरीरस्थ आत्मा की खोज शरीर के बाहर करना अज्ञान का द्योतक है। ब्रह्म का अंशीभूत यह आत्मा सभी घटों में व्याप्त है। इस बात की पुष्टि करते हुए जुगतानंद जी का यह कथन मननीय है—

जैसे मृग की नांभि में, कस्तूरी की बास।
जब तक पावै नाहिं तेहिं, हेरत फिरे उदास॥
बन बन में ढूंढत फिरै, बिना खोज किये आप।
ऐसे बिन आतम लखे, सठ कूं सदा संताप॥[3]

(५) निर्गुण का सगुण रूप धारण—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ब्रह्म अपनी माया के आश्रय से इस जगत् का विस्तारक है। उसका माया शबलित रूप ही 'ईश्वर' कहा जाता है। ब्रह्म का ईश्वर रूप धारण करना भी उसकी इच्छा

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १३७।
२. भक्तिसागर (भक्ति पदार्थ) पृ० २०६।
३. भक्तिप्रबोध : पत्र सं० ६६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ही परिणाम होता है।[२] ईश्वर के रूप में ब्रह्म अपनी माया कृत सृष्टि में अव्यक्त रूप से व्याप्त रहता है। उसका यह रूप भी त्रिधा विभक्त है, जिसे हम ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में जानते हैं। माया की ही ओट में परब्रह्म अपने इन तीन प्रतिनिधियों या स्वरूपों के द्वारा जगत् की सृष्टि, उसका पालन और संहार करता है[१]। इतना होते हुए भी वह माया के आधीन नहीं है। वह जब चाहे माया को प्रकट करे या उसे समेट ले। वह इस प्रकार के खेल अनादिकाल से अनेक बार कर चुका है। चतुरानन, शिव, नारद, इन्द्र तथा असंख्य देवता, मुनि एवं उपासक उस परम तत्व का ध्यान करते हैं, स्तुति एवं गुणगान करते हैं फिर भी उसका अन्त नहीं पाते।

ब्रह्म के उस स्वरूप को समझते हुए भी इस सम्प्रदाय के आचार्यों की मान्यता है कि ऐसा निर्गुण-निराकार-निर्विकल्प ब्रह्म भी भक्तों पर या भक्ति पर आपत्ति आने पर पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार धारण करके पृथ्वी पर स्वयं आता है। ऐसे स्वरूप वाले ब्रह्म को ही स्वामी रामरूप जी अपना आराध्य मानते हैं—

भीर परे जब सबन पै, धर आवैं अवतार।
मर्यादा के कारने, पृथ्वी भार उतार॥[२]

इस तथ्य की पुष्टि सुश्री सहजोबाई इस प्रकार कर रही हैं—

निर्गुण से सर्गुण भयो, संत उधारन हार।
सहजो की दंडवत है, ताकूं बारंबार॥
जाके रूप अनन्त हैं, जाके नाम अनेक।
ताके कौतुक बहुत हैं, सहजो नाना भेख॥[३]

परब्रह्म की यह लीला अवर्णनीय है, इसे पूरी तरह कोई जान भी नहीं सकता। उसका ईश्वर रूप काल के लिए भी कालस्वरूपी है, दुष्टों के लिए यह भयरूप है और भक्तों के लिए भगवान् है। भक्तों के हृदय में ईश्वर का निवास होता है और

---

१. ब्रह्म अपनी इच्छा सहित, धरी जु ईश्वर रूप।
जग उपजावन कारने, सरगुन भये सरूप॥
माया ही के बीच में, आप किया परवेस।
घरे तीन जहँ रूप ही, ब्रह्मा विष्णु महेश॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ११९।

२. वही : पृ० १२०।

३. सहजप्रकाश : पृ० ९१–९२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे उनके सर्वतोभावेन रक्षक होते हैं।[1] निष्कर्ष रूप में ब्रह्म के स्वरूप-निरूपण संबंधी 'लीलासागर' की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

निर्गुण सो तिर्गुण से न्यारा। वाणी बुद्धि सो अगम अपारा॥
तिर्गुण से जग को बिस्तारै। उपजावै पालै अरु मारै॥
गुण लिये ईश्वर रूप धरो है। जग विस्तारण हेतु करो है॥
ध्यावत हैं ब्रह्मादिक देवा। पर वाको पावत नहिं भेवा॥
यातें सगुण स्वरूप कहलाया। माया सहित पुरुष बन आया॥
ताको माया आज्ञाकारी। भाँति भाँति लीला विस्तारी॥
निर्गुण रूप ब्रह्म को जानो। तिर्गुण परे ताहि पहिचानो॥
सो वह कहन सुनन में नाहीं। ठहरत है अनुभव के माहीं॥[2]

ऐसा सदसद्विलक्षण, वर्णनातीत, जगत् कारणभूत, भक्तजनहितैषी माया-पुरुष परब्रह्म ही विविध अवतार धारण करके अनेक कौतुक एवं लीलाओं का प्रदर्शन करता है। वही राम और कृष्ण के रूप में अवतरित हुआ, इस बात को सहजोबाई निर्भ्रान्त रूप से इस प्रकार कह रही हैं—

निराकार आकार सब, निरगुण अरु गुणवन्त।
है नाहीं सूँ रहित है, सहजो वह भगवन्त॥
—वही आप परगट भया, ईश्वर लीला धार।
माहि अयोध्या और बृज, कौतुक किये अपार॥
चार बीस अवतार धर, जन की करी सहाय।
राम कृष्ण पूरण भए, महिमा कही न जाय॥[3]

ऐसे सगुणात्मक निर्गुण परब्रह्म का स्मरण श्री चरणदास जी इस प्रकार कर रहे हैं—

जै जै जगपति सिरजन हारा। व्यापि रह्यो जीव जंतु मझारा॥
जै जै त्रपुधारी चौबीस। लीला कारण त्रिभुवन ईश॥
जै जै कृष्ण मनोहर गाता। नैन विशाल प्रेम के दाता॥
जै जै निरगुण सरगुण रूप। नाना भाँती अधिक अनूप॥[4]

---

१. भक्तों के हृदय विषे, सदा बिराजें आय।
तन छूटे वा संत को, लेवें धाम बुलाय॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १२०।

२. लीलासागर : पृ० १८६।

३. सहजप्रकाश : पृ० ९१।

४. भक्तिसागर (शब्दवर्णन) : पृ० ३७३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे परब्रह्म ने ही त्रिदेव का रूप धारण कर जगत् का विस्तार किया। उसने ही समय-समय पर मत्स्य, बासुकि, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम और कृष्ण जैसे २४ पुराण प्रसिद्ध अवतारों को धारण किया। उसी ने रामावतार में भीलनी के बेर खाये, कृष्णावतार में विदुर के घर शाक का भोजन किया, सुदामा के तन्दुल खाये, कर्मा की खिचड़ी खाई और इन सबको परम पद का लाभ प्रदान किया।

(६) परब्रह्म का पुरुषोत्तम रूप और अमरलोक—ब्रह्म का यही परात्पर रूप इस सम्प्रदाय में पुरुषोत्तम के रूप में स्वीकृत है। पुरुषोत्तम का यह रूप निम्न पंक्तियों में निर्भ्रान्त रूप से चित्रित है—

निराकार तो ब्रह्म है, माया है आकार।
दोनों पद ही को लिये, ऐसा पुरुष निहार॥
माया जीव दोउ तें न्यारा। सो नित कहिये पीव हमारा॥
क्षर अक्षर निहअक्षर तीनों। गीता पढ़ि सुनि इनको चीन्हों॥
गीता अक्षर जीव बतावै। क्षर माया सोइ दृष्टि दिखावै॥
निरअक्षर है पुरुष अपारा। ज्ञानी पंडित ल्योह विचारा॥
जीव आत्म परमातम दोऊ। परमातम जानत है कोऊ॥
आतम चीन्हि परमातम चीन्हो। गीता मध्य कृष्ण कहि दीन्हो॥
पारब्रह्म पुरुषोतम जानो। चरणदास के सो मन मानो॥
अमरलोक बिच पुरुष है, ब्रह्म जु सबके माहिं।
माया दरसत है सबै, ब्रह्म दीखते नाहिं॥[1]

शुकसंप्रदाय का उपास्य पुरुषोत्तम तत्व है न कि ब्रह्म। ब्रह्म और पुरुषोत्तम में अंतर यह है कि ब्रह्म सर्वव्यापी है जब कि पुरुषोत्तम अमरलोक नामक एक

---

१. है जग के करतार तेरी कहा अस्तुति कीजै।
तू ही एक अनेक भयो है अपनी इच्छा धार॥
तू ही सिरजै तू ही पाले तू ही करै संहार।
जित देखूं हित तूही तू है तेरा रूप अपार॥
तू ही राम नारायण तूही तूही कृष्ण मुरार।
साधों की रक्षा के कारण युग युग ले अवतार॥
दानव देव तोहीं सूं प्रगटे तीन लोक विस्तार।
चरणदास शुकदेव तूही है जीवन प्राण अधार॥
—भक्तिसागर (शब्द वर्णन) : पृ० ३८२।

१. वही : अमरलोक अखंडयाम वर्णन : पृ० १७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्ट लोक का वासी है। इस लोक का बड़ा ही विशद वर्णन चरणदास जी के 'अमरलोक अखंडधाम वर्णन' नामक ग्रंथ में किया गया है।[२] यह अमरलोक तेजपुंज के ऊपर वर्तमान है। इस तेजपुंज को कुछ लोक सूर्यलोक भी कहते हैं। इस लोक पर पहुँचने वाले शूरमा साधक को सूर्यलोक को पार करके जाना पड़ता है। वहाँ कोटि सूर्यों की प्रभा विराजमान है। यह स्थान तीन लोकों और सात भुवनों से भी परे है। यहाँ पाप-पुण्य, सुख-दुःख आदि का नितांत अभाव है।

उस लोक में एक महा अगोचर एवं गुप्ततम स्थान है, जहाँ भगवान् विराज रहे हैं। इस लोक को अमरलोक, गोलोक, चौथा पद, निर्वाणपद, अगमपुरी और बेगमपुर आदि के नामों से अभिहित किया जाता है। यह श्वेत आकार के पुष्पों का द्वीप है और सब ब्रह्माण्डों से विशिष्ट है। जो वहाँ जाता है उसका पुनरागमन नहीं होता। वहाँ के निवासी सदा १६ वर्ष की अवस्था के किशोर ही बने रहते हैं। वहाँ भौतिक शरीर नहीं होता। वहाँ के निवासियों की काया तत्वरूपी है और उनमे बालक, युवा-वृद्ध आदि अवस्थाएँ नहीं होतीं। इस लोक का वर्णन वेद-पुराण की पहुँच के बाहर है। वेदों में इसे असीमित मात्र कहा गया है। इस लोक के रहस्य का कुछ-कुछ आभास ध्यान और समाधि की स्थिति में हो सकता है।[१]

चरणदास जी इस तत्त्व के निरूपणकर्त्ता की उलझन इस प्रकार व्यक्त करते हैं--

हद्द कहूँ तो है नहीं, बेहद कहूँ तो नाहि।
ध्यान स्वरूपी कहत हौं, बैन सैन के मांहि॥[२]

उस लोक में हीरे और मणियों के प्रकाश से चकाचौंध हो रही है। वहाँ अनेक प्रकार के अक्षय फल वाले वृक्ष हैं। वहाँ के कल्पवृक्षों पर अनेक वर्ण के फल-फूल और पत्ते लदे हुए हैं। उस लोक में वृक्षों के नीचे-नीचे महल बने हुये हैं और अगणित मठ-मंदिरों की स्थापना हुई है। हर मंदिर पर ध्वजा-पताका लहरा रहे हैं और सभी मंदिरों पर पुरुषोत्तम पुरुष का नाम लिखा हुआ है। इनके रत्न-जटित प्रांगण में चलने वालों का चित्त प्रसन्न हो जाता है। इस लोक में काम, क्रोध, लोभ, असंतोष, आलस्य, निद्रा, तंद्रा, भूख, प्यास, म्लानता, पसीना, आँसू, संशय, शोक, रोग आदि का अस्तित्व ही नहीं है।

यहाँ के निवासियों में अद्भुत रूप-वय-गति साम्य है। वहाँ किसी भी प्रकार का भेद-भाव अस्तित्व में नहीं है। सभी दिव्य वस्त्र और आभूषणधारी तथा श्यामवर्ण के सुन्दर रूप वाले हैं। वे अत्यन्त रूपवान और श्रृंगारपूर्ण हैं। साथ ही सभी पूर्णतः

१. भक्तिसागर : पृ० १७।
२. वही (अमरलोक अखंड धाम) : पृ० १९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतुष्ट हैं, वहाँ किसी प्रकार का क्लेश नहीं है। इसी परिवेश में भक्तों से घिरा हुआ वह परमपुरुष विराजमान रहता है—

आस पास हरिजन रहैं, मध्य ईश दरबार।
रसिक केलि बहु कुंज हैं, ललित द्वार हैं चार॥
राजमहल जनपति रहैं, कापै वरण्यो जाय।
गिनत शारदा छवि अधिक, गौरी सुत थकि जाय॥

—सखा भाव पहुँचत वहिं ठाईं। सखी भाव भीतर को जाईं॥
धरैं स्वरूप अनुपम भारी। सदा सुहागिनि हरि पिय प्यारी॥
परम पुरुष पुरुषोत्तम पावैं। निकट रहैं नित केलि बढ़ावैं॥[1]

इसी क्रम में आगे के वर्णनों से यह सिद्ध हो जाता है कि यह अमरलोक या अखंडधाम वस्तुतः वृंदावन का ही सूक्ष्म रूप है। इस लोक का अधिष्ठाता परम-पुरुष या पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का ही प्रतिरूप है।[2] यह सूक्ष्म लोक और यहाँ का अधिष्ठाता केवल ध्यानगम्य है तथा हंसत्व प्राप्ति के उपरान्त ही उसे जाना जा सकता है। इस निज वृंदावन धाम (अमरलोक) का स्वरूप वर्णन स्वामी रामरूप जी इस प्रकार रहे हैं—

साथी झिलमिल नूर निहारा है।
सतगुरु मोको कला बताई, जब निरखी गुलजारा है।
कोटि भानुसों अधिक उजेरा, जगमग ज्योति अपारा है॥
सदा अखंडित अनहद बाजे, ऐसी नौबत द्वारा है।
ताके निकट बहुत है निस दिन, तिरबेनी की धारा है॥
स्वेत द्वीप जहाँ नगरी साधो, रंग महल चमकारा है।
तामें एक सिंहासन ऊपर, राजत पीव हमारा है॥
चेतन पुरुष महल है चेतन, चेतन बाग बहारा है।
फल अरु फूल लगे सब चेतन, चेतन सबै पसारा है।
पाँच तत्व गुण तीनों नहीं, वहाँ ताको वार न पारा है।
सोई जन जाय लहैं वा पद को, धड़ से सीस उतारा है।
रामरूप भया आनन्द आनन्द, रहा न और विचारा है।[3]

---

१. भक्तिसागर : पृ० २०।

२. निज वृंदावन है वह ठाहीं। सदा बसो मेरे मन माहीं॥
—भक्तिसागर : पृ० २१।

४. मुक्तिमार्ग : पृ० २५१–२५२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस धाम या स्थान का वर्णन चरणदास जी ने अनेकशः किया है। इनके 'व्रजचरित्र वर्णन' और 'अमरलोक अखंडधाम वर्णन' नामक दो स्वतंत्र ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक 'शब्दों' में और उन्हीं के अनुकरण पर उनके अन्यान्य शिष्य-प्रशिष्यों की बानियों में इस लोक का वर्णन अपने-अपने ढंग से विशद रूप में किया गया मिलता है। यह वर्णन कल्पना की सुंदरतम उपज है। इस मानव लोक में जितना कुछ स्पृहणीय है और जो मानव मस्तिष्क में मात्र कल्पनाओं तक ही सीमित है, उन सबकी प्रचुरता इस अमरलोक में बताई गई है। समृद्धि तथा सुन्दरता संबंधी सारी कल्पना इस लोक में साकार है। इस आशय को संकेतित करने वाली कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

एक एक सौं आगरो, महिमा कही न जाय।
अनंत रँगीले महल में, आपहिं बैठे आय॥

अनंत रँगीले महल बनाये। तामें आप रामहीं आये।
नाम रूप गुण न्यारे न्यारे। गिनत शारदा गणपति हारे॥
मंदिर रूप बहुत छवि सोहे। जहाँ तहाँ मेरो मन मोहे।
हरे श्वेत पीत अरु लाले। पिसताको[1] ऊदे[2] अरु काले॥
बेलदार लहरा छबि बूटे। चीतमताले[3] और तिखूटें॥
रँगा रंग बहु चित्तरकारी। कहूँ कहाँ लौं मो बुधि हारी॥
दो पाये अरु पुनि चौपाये। बहु पाये कछु कहै न जाये॥
वृक्षरूप अरु पक्षी नाना। कीट पतंगा थिर चर जाना॥
जल में मीन बहुत परकारे। चरणदास शुकदेव विचारे॥[4]

यहाँ की प्रकृति भी परिवर्तन-रहित एवं सर्वदा शोभामयी बनी रहने वाली है। यहाँ ऋतुएँ परिवर्तित नहीं होतीं और सदैव बसन्त ऋतु की शोभा बनी रहती है।

(७) आराध्य का सगुणात्मक स्वरूप—इस संप्रदाय के आचार्यों के मतानुसार जिस प्रकार सूर्य एक स्थान पर स्थित है परन्तु उसकी धूप या उसका प्रकाश सर्वव्यापी है, उसी प्रकार भगवान् का दिव्य विग्रह निजधाम में स्थित है परन्तु उसका प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। उसे ही ब्रह्म की संज्ञा दी जाती है।

---

१. पिसताकी = पिश्ता के रंग का हरा।
२. ऊदे = जामुन के रंग का।
३. चीतमताले = चितकबरे रंग का।
४. भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ वर्णन) : पृ० २०५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार गंगा जी के तीन स्वरूप हैं—(१) जल रूप (२) पवित्र करने की शक्ति और (३) उनका दिव्य विग्रह, जो केवल भक्तों को ही दृष्टि-गोचर होता है। उसी प्रकार ब्रह्म के भी तीन स्वरूप हैं—(१) निर्गुण-निराकार रूप (२) ब्रह्म का मायामय स्वरूप, जो दृश्य है और (३) निर्गुण-सगुणात्मक स्वरूप, जो भक्तों का काम्य है। यह तथ्य इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से ध्वनित है—

निराकार तो ब्रह्म है, माया है आकार।
दोनों पद ही को लिये, ऐसा पुरुष निहार॥
अमरलोक विच पुरुष है, ब्रह्म जु सबके माहिं॥
माया दरसत है सबै, ब्रह्म दीखते नाहि॥[1]

इस प्रकार त्रिविध शक्तियों से युक्त परमाराध्य एक ही है जो विकल्प से सगुण और निर्गुण दोनों हैं। सद्गुरु की कृपा से दोनों ही रूपों के दर्शन हो सकते हैं।[2] परन्तु शुक-संप्रदाय में दुविधारहित ढंग से ब्रह्म के राधा-कृष्ण युगलरूप को ही उपास्य या आराध्य घोषित किया गया है। किसी को यह भ्रान्ति न हो कि राधा और कृष्ण की सगुणोपासना में इस संप्रदाय के लोग इतने तल्लीन हो गये हैं कि उनके मूलस्वरूप का उन्हें ज्ञान ही नहीं है। संदेह की उस संभावना को ध्यान में रखते हुए सहजोबाई जी यह याद दिला रही हैं—

नेति नेति कहि वेद पुकारे। सो अधरन पर मुरली धारे॥
जाकू ब्रह्मादिक मुनि ध्यावे। ताहि पूत कहि नंद बुलावें॥
शिव सनकादिक अंत न पावें। सो सखियन संग रास रचावें॥
संयम साधन ध्यान न आवै। सो ग्वालन संग खेल मचावै॥
अनन्त लोक मेटै उपजावै। सो मोहन वृज राज कहावे॥
निराकार निर्भय निर्वाणा। कारन संत धरै तन नाना॥
निरगुन सरगुन भेद न दोई। आदि अंत मधि एकहि होई॥[3]

गोसाईं जुगतानंद की निम्न पंक्तियों से भी इसी तथ्य का समर्थन हो रहा है—

निरगुन सोई सरगुन हो, ब्रज में करी किलोल।
कबहूँ नाचत गाइया, मंद हास मृदु बोल॥
धनि सबहू ब्रज देश को, धनि नर धनि ब्रजनारि।
जिनको अंग सपरस कियो, पूरन ब्रह्म निहारि॥

---

१. भक्तिसागर (अमरलोक अखंडधाम वर्णन) : पृ० १७।
२. सहजप्रकाश : पृ० ९४।
३. वही : पृ० ९३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरगुन सगुन सरूप की, भिन्न जो माने कोय।
सो नहिं पावै मोक्ष पद, जाय अधोगति सोय ॥[1]

वैसे तो ब्रह्म मूलतः निर्गुण ही है परन्तु अपने उस रूप में वह बुद्धि तथा वाणी से भी ग्राह्य नहीं है, फिर उसकी इन्द्रियग्राह्यता की बात ही क्या है; तथापि उसके प्रकट-प्रत्यक्ष रूप की भावना अपने सद्गुरु में करके उन्हीं के माध्यम से भक्ति की जा सकती है। रामरूप जी का विचार कुछ इसी प्रकार का है—

निर्गुण मेरा रूप जो, बुध बानी सों दूर।
सरगुण रूप स्वरूप है, जानत ना सो कूर ॥
नाम जो मेरा कुछ नहीं, ना कोई आकार।
भक्ति करावन काज ही, गुरु तन धरा साकार ॥
भक्ति करावन काज ही, ध्यान हमारा होय।
गुरु का जपे जो नाम ही नाम हमारा सोय ॥[2]

इस पृष्ठभूमि में हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि इस संप्रदाय का परमतत्व संबंधी चिंतन द्वैताद्वैतवाद से मिलता-जुलता है। इस संप्रदाय के अधिकांश आचार्य ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूपों के अस्तित्व को मानते हैं और यह भी स्वीकार करते हैं कि निर्गुण ही आवश्यकता पड़ने पर सगुण रूप धारण कर लेता है, जिसके राम-कृष्ण या कोई भी स्वरूप हो सकते हैं। ये अवतार या स्वरूप भी मूलतः ब्रह्म ही हैं।[3]

(८) परब्रह्म के अवतार के कारण—श्रुतियों, स्मृतियों एवं धर्म ग्रंथों में परमतत्व का स्वरूप कोटिसूर्य सम तेजोमय, सर्वदर्शी, निर्गुण तथा ब्रह्मा-विष्णु रुद्रादि शक्तियों और अन्यान्य प्रजाओं की उत्पत्ति का कारणभूत बताया गया है। इसके समर्थन में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं परन्तु 'गीता' का यह एक ही श्लोक यहाँ पर्याप्त होगा—

---

१. भक्तिप्रबोध : पत्र सं० ७३–७४।

२. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २२८–२९।

३. नया पुराना होय ना, घुन नहिं लागे जासु।
सहजो मारा ना मरे, भय नहिं व्यापे तासु ॥
रूप बरण जाके नहीं, सहजो रंग न देह।
माता पिता बाके नहीं, जाति पाँति नहिं गेह ॥
निर्गुण से सर्गुण भयो, संत उधारन हार।
सहजो की डंडौत है, ताकू बारंबार ॥
—सहजप्रकाश : पृ० ८८–९१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजोऽपि सनव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।।[1]

आगे के श्लोक द्वारा श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने अवतार का कारण बताते हुए कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।[2]

इस प्रकार परब्रह्म के स्वमाया के सहयोग से अवतरित होने के तीन उद्देश्य स्पष्ट रूप से बताये गये हैं—(१) दुष्टों द्वारा सज्जनों का जब दमन होने लगता है तो उनकी रक्षा हेतु (२) पीड़ाकारक दुष्टों का दलन और (३) धर्म के विकृत स्वरूप के पुनस्संस्कार के लिए ।

अवतार ग्रहण करने पर लीला के लिए अवतारीस्वरूप या शरीर को सामाजिकों के समान ही आचरण करना पड़ता है इसीलिए जन सामान्य को पता नहीं चल पाता कि उक्त प्राणी कोई असामान्य तत्व है । केवल तत्वज्ञानी ही उसके जन्म-कर्म की दिव्यता से परिचित रहते हैं । इसकी पुष्टि में 'रामचरितमानस' से एक उदाहरण पर्याप्त होगा ।

बनवासी भगवान् रामचन्द्र को पर्णकुटी बनाकर निवास करते एवं कन्द-मूलाहार करते देखकर गाँवों के लोग या बनवासी उन्हें कोई दिव्य पुरुष स्वीकार नहीं कर पाते परन्तु ज्यों ही रामचन्द्र जी भरद्वाज, अत्रि आदि ऋषियों के समक्ष जाते हैं उन्हें भगवान् मानने में वे तनिक भी सन्देह नहीं करते । यहाँ तक कि स्वयं दशरथ, जनक, परशुराम, बालि आदि भी उन्हें ठीक से नहीं समझ पाये । परन्तु जो इस तथ्य को भली-भाँति समझ लेता है, उससे भगवान् के प्रति कोई त्रुटि नहीं होती और वह उनको प्राप्त हो जाता है अथवा उनका सान्निध्य प्राप्त करता ही है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्तितत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्मनैति मामैति सोऽर्जुनः ।।[3]

माँ देवकी के गर्भ से पैदा हुए श्रीकृष्ण का स्वरूप कितना दिव्य है, यह 'श्रीमद्भागवत' के इस श्लोक में द्रष्टव्य है—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम् ।
श्री वत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्र पयोदसौभगम् ।।[4]

---

१. श्रीमद्भगवद्गीता : ४।६ ।
२. वही : ४।८ ।
३. वही : ४।९ ।
४. श्रीमद्भागवत : १०-३-९ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका उत्पन्न होना भी कितना दिव्य है। वे साधारण बालक की भाँति जन्म धारण न करके सीधे १६ वर्ष के किशोर रूप में अवतरित हुए और माता देवकी के विनय करने पर बाल रूप धारण कर सामान्य बाल-लीला का प्रदर्शन करने लगे।

यह आवश्यक नहीं है कि ब्रह्म का अवतार किसी एक निश्चित समय, स्थान और विग्रह के ही होगा। उसके अनेक रूप हो सकते हैं। जब जैसी आवश्यकता होती है, वह अपने उस अंश या शक्ति को विभिन्न रूपों में संसार में उतारता रहता है। मरीचि आदि ऋषि उसके अंशावतार हैं; कपिल और कूर्म उसकी कला के अवतार हैं; परशुराम आवेशावतार हैं; क्षीरसागर में शयन करनेवाले नारायण उसके विलासावतार हैं, या विलास के रूप भेद हैं; श्री शुकदेव, नारद और सनकादि उसके भक्तावतार हैं; उसी प्रकार नृसिंह, राम और कृष्ण आदि उसके पूर्ण अवतार हैं। इनमें भी श्रीकृष्ण को उनके भक्त पूर्णतम मानते हैं और उनमें १६ कलाओं का अभिनिवेश बताते हैं।[1]

अपने इसी आराध्य श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप का परिचय देते हुए श्री रामसखी का कथन है—

निर्गुण सर्गुण के परे, इनको रूप अपार।
कैसे वर्णन कीजिए, रसना सो उच्चार॥

× × ×

प्रगटचौ ईश्वर हो इन्हें, ये परमेश्वर जान।
नित्य विहार के कारणे, जामें होय न हान॥[2]

(९) चौबीस अवतार और श्रीकृष्ण—समय-समय पर धर्म और समाज के विनाशक तत्वों से रक्षार्थ परमतत्व की दिव्य शक्तियाँ अपने लीला-विस्तार के साथ अवतरित होती रही हैं। इस तथ्य की ओर गीता की 'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' या गोस्वामी तुलसीदास की "जब जब होहिं धरम की हानी" जैसी पंक्तियों द्वारा संकेतित है। इस प्रकार के अवतार तो असंख्य होंगे परन्तु २४ अवतारों की प्रसिद्धि सर्वाधिक है। एक प्रकार से अवतारों के साथ २४ की मिथ-

---

१. ये १६ कलाएँ इस प्रकार हैं—
(१) श्री, (२) भू, (३) कीर्ति, (४) इला (५०) कान्ति, (६) विद्या, (७) विमला, (८) उत्कर्षिणी, (९) ज्ञाना, (१०) क्रिया, (११) योगा, (१२) प्रह्वी, (१३) सत्या, (१४) ईशाना, (१५) लीला और (१६) अनुग्रहा।

२. भक्तिरसमंजरी : दोहा सं० १३१, १३३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीय संख्या जुट गई है, जिसे चरणदास जी ने भी स्वीकार किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में कई बार इन २४ अवतारों का उल्लेख किया है। इनके कई शिष्यों और प्रशिष्यों ने भी 'चौबीस अवतार कथा' नाम से स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की है। इन चौबीस अवतारों को अपनी प्रणति निवेदित करते हुए चरणदास जी कहते हैं—

अलख निरंजन अगम अपार।
एक अनेक भेष बहु कीन्हें सुन्दर रचना रची सँवार॥
निरगुन हरि सरगुन हो खेलौ अचरज लीला करि विस्तार।
अपनो चरित आपही देखै अद्भुत कौतुक धार॥
रूप वराह[१] पकरि हिरण्याक्षहि धरती लाये ताहि संहार।
यज्ञपुरुष[२] अरु दत्तात्रेयो[३] अरु श्रीबद्रीपतिहि[४] विचार॥
सनत्कुमार[५] ऋषभदेव[६] ध्रुव[७] अरु पृथू[८] मच्छ[९] कूर्म[१०] उदार।
हयग्रीवा[११] अरु हंसरूप[१२] ही महाबली नरसिंह[१३] बलधार[१४]॥
हरि परगट ह्वै गजै छुड़ायो वामन[१५] कपिल[१६] सरस गुण सार।
मन्वन्तर[१७] धन्वन्तर[१८] प्रगटे परशुराम[२०] रामचंद्र[२१] मुरार॥
पूरण कला ईश तिहुँपुर को कृष्ण[२१] प्रकट हो कंस पछार।
वेदव्यास[२२] अरु बोध[२३] कलंकी[२४] ये सब भये चौबीस अवतार॥
युग युग माहिं आप परगट ह्वै दुष्ट दलन संतन रखवार।
चरणदास शुकदेव श्याम की बांकी गति को वार न पार॥[१]

इनमें भी श्रीकृष्ण को पूर्णावतार बताते हुए कवि ने इन चौबीस अवतारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानकर उन्हें अपने आराध्य के रूप में स्वीकार किया है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इस साधना मार्ग में ब्रह्म के सगुण रूप में अवतरित होने की मान्यता पूर्णतः स्वीकृत है। अवतारों में भी कई प्रकार के अवतार हैं—यथा (१) अंशावतार, (२) कलावतार, (३) आवेशावतार, (४) लीलावतार, (५) आदेशावतार, (६) विलासावतार (७) भक्तावतार और (८) पूर्णावतार। आलोच्य संप्रदाय में भगवान् का पूर्णावतार ही मान्य है। श्री रामचन्द्र पूर्णावतार माने जाते हैं। परंतु श्रीकृष्ण को कृष्ण भक्ति संप्रदायों

१. भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ वर्णन): पृ० १७७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इससे भी आगे पूर्णतमावतार मानने का आग्रह है। श्री चरणदास को भी यही अवतार मान्य है। उनके अमरलोक अखंड धाम वर्णन के श्रीकृष्ण और वृंदावन के श्रीकृष्ण प्रायः एक ही हैं। अंतर यही है कि एक की लीला अप्रत्यक्ष है और दूसरे की प्रत्यक्ष। भक्तों के लिए दोनों प्रत्यक्ष हैं जब कि सामान्य दृष्ट्या केवल वृंदावन की लीला ही प्रत्यक्ष है। चरणदास जी और उनकी परंपरा ने तो प्रत्यक्ष वृंदावन को भी नित्यवृंदावन मानकर इस अमरलोक अखंडधाम के ही तदाकार माना है। इस समूची मान्यतया का स्वरूप चरणदास जी की इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

जै जै पारब्रह्म परधान। जाकूं पावै गुरु के ज्ञान॥
ब्रह्म पुरुष को धरो सरूप। सौं तो कहिये अधिक अनूप॥
जै जै ॐ जै जै त्रैदेव। जै जै दस अवतार अभेव॥
जै जै वृंदावन निज धाम। जै जै गोकुल और नंद ग्राम॥
जै जै गोपी जै जै ग्वाल। जै जै सदा बिहारी लाल॥
जै जै कुंज गली नंदलाल। मोर मुकुट मुरली बनमाल॥
जै जै राधे कृष्ण मुरार। जै जै व्यास वेद उच्चार॥
जै जै महाविदेह जनक जी। जै जै श्री शुकदेव दयाल॥
इनको नाम जपे जो कोय। प्रेमभक्ति पावत है सोय॥
चरणदास सुखवास लहैं। हरि चरणन के निकट रहैं॥[1]

प्रस्तुत पद इस संप्रदाय की साधना संबंधी समस्त प्रमुख विषयों के विशिष्ट सिद्धान्तों का संकेतक है। इससे यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि इस संप्रदाय में परब्रह्म को सर्वप्रधान मानकर उसके परमपुरुष या ब्रह्मपुरुष रूप को उसकी सत्ता का रूपान्तरण माना गया है। तदनुसार इस ब्रह्मपुरुष ने ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक त्रिदेवों का रूप धारण किया था। पुनः विष्णु के दश अवतार हुए।[2] इन अवतारों में वृंदावन और गोकुल की लीला के आधारस्वरूप श्री राधाकृष्ण भी अवतरित हुए। उक्त पद में श्री वेदव्यास की इसलिए स्तुति की गई है कि उन्होंने इस संप्रदाय के सर्वमान्य एवं गुरुग्रंथस्वरूप महापुराण 'श्रीमद्भागवत' की रचना की थी। विदेह एक विरागी, भक्त एवं शुकदेव जी के गुरु रूप में प्रख्यात हैं। उनका जीवनादर्श ही

---

१. भक्तिसागर (शब्द वर्णन) : पृ० ३७७।

२. हरि हैं एक रूप बहु धारे। निराकार आकार नियारे॥
दश अवतार आरती गाऊँ। निरभै होय अभैपद पाऊँ॥
चरणदास शुकदेव बताये। निरगुण हरि सरगुण ह्वै आये॥
—वही : पृ० ३७४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संप्रदाय का आदर्श है। श्री शुकदेव मुनि इस संप्रदाय के संस्थापक या प्रतिष्ठापक हैं। उन्हीं के नाम पर इस संप्रदाय का शुक-संप्रदाय नामकरण हुआ है। प्रेमाभक्ति ही इस संप्रदाय की इष्ट भक्ति साधना है और 'चरणदास हरिचरणन के पास रहै'—की उक्ति सामीप्य मुक्ति की मान्यता सिद्ध कर रही है।

निज वृंदावन धाम में इस साधना संप्रदाय के इष्टदेव श्रीयुगल अर्थात् किशोर और किशोरी जी अपने सखी परिकर के साथ कैसी छटा के साथ विराजमान हैं इसका एक चित्र रामरूप जी की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

निज वृंदावन देखिया, नित अखंड जहाँ रास।
पिय प्यारी बिहरत सदा, जा पहुँचे ह्वाँ दास॥

रतन जटित जहाँ भूमि निहारी। चहूँ ओर देखी गुलजारी॥
वृक्षन की कुंजें अति सोहैं। लिपटी लता अधिक मन मोहैं॥
जाड़ा गरमी पावस नाहीं। नित बसंत ताही के माहीं॥
चौंसठ खंभा मध्य विराजे। अद्भुत रूप अधिक छवि छाजे॥
तामें सिंहासन की शोभा। देखत उपजै आनंद गोभा॥
नाचे ललित लाल अरु प्यारी। लीला करहीं बहुतक नारी॥[1]

(१०) युगलोपासना—जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, शुकसंप्रदाय एक वैष्णव साधना सप्रदाय है। इसमें राधाकृष्ण का युगलरूप आराध्य है। इसकी साधना पद्धति में योग, कर्म, ज्ञान और नवधाभक्ति का सुन्दर सामंजस्य है। यद्यपि इस परंपरा में राधा और कृष्ण को समान रूप से आराध्य माना गया है परन्तु जब साधना पद्धति और इस सप्रदाय के कवियों की उक्तियों पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि उनका झुकाव श्री कृष्ण की अपेक्षा श्री राधा की ओर अधिक है। अधिकांश महात्माओं के सखी नामों को देखते हुए भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वे सखी संप्रदाय की साधना से प्रभावित हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे सखी भाव के उपासक थे। अपने गुरु की चरणदास की रसिकभावापन्न साधना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते समय रसिकाचार्य श्रीरामसखी ने यह स्वीकार किया है कि चरणदास जी की साधना संबंधी मान्यता में पर्याप्त लचीलापन था। उन्होंने योग, ज्ञान, भक्ति, प्रेमलक्षणा और सखी भाव की भक्ति—इन पाँचों पद्धतियों को स्वीकार किया था और अपने शिष्यों को उनकी पात्रता के अनुसार उनमें से किसी एक या एकाधिक को अपनाने का आदेश दिया था। तात्पर्य यह कि इस संबध में उनका कोई दृढ़ आग्रह नहीं था और योग्यता एवं पात्रता के अनुरूप साधना करने

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ९७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उन्होंने अपने अनुयायियों को छूट दे रखी थी। रामसखी जी की इन पंक्तियों से यही तथ्य ध्वनित हो रहा है—

काहू योग ज्ञान काहू को, कोई भक्ति निधि पाई।
काहू वै प्रेमलक्षणा दीनी, काहू वै केलि दृढ़ाई॥
निजनिज भाग्य सूत्र पूरव के, जिन जैसी करी कमाई।
लखि अधिकार सबन को दीन्हों, करिके कृपा महाई॥[1]

'श्रीमद्भागवत' इस संप्रदाय का गुरुग्रंथ है। उसमें इन सभी साधना मार्गों के समर्थन में तर्क, और दृष्टांत प्राप्त होते हैं इसीलिए चरणदास जी की दृष्टि साधना-स्वरूप के निर्धारण में पर्याप्त उदार रही है। साथ ही वृंदावन के समसामयिक साधना-प्रवाहों से भी वे अलिप्त नहीं रहना चाहते थे, इसलिए रसिक भावापन्न साधना के पक्ष में भी उनकी बानियों में प्रभूत संकेत वर्तमान हैं।

मथुरा-वृन्दावन की कृष्ण भक्ति-साधना में राधा का महत्व श्री हितहरिवंश गोस्वामी के प्रभावस्वरूप स्थापित हुआ था। उन्होंने युगलोपासना में राधा की प्रधानता के पक्ष में ऐसे तर्क दिये हैं कि वे प्रायः अकाट्य हैं। इसीलिए कृष्ण भक्तों के लिए वे तर्क ग्राह्य भी हुये। उनकी शिष्य परंपरा ने राधा को इतना ऊपर उठाया कि एक समय तो यह आशंका प्रकट की जाने लगी कि कहीं यह शाक्त मत न हो आय।[1] परन्तु साथ ही राधावल्लभी और हरिदासी परंपरा ने इस बात का भी ध्यान रखा कि राधा के प्रति उनका पक्षपात उसी सीमा तक रहे, जहाँ तक उस पर शक्तिवाद का आरोप न लग सके।

कृष्णभक्ति साधना के रसिकाचार्यों की मान्यता है कि युगल के मिले बिना, अकेले श्रीकृष्ण या श्री राधा से मधुर भक्ति रस की निष्पत्ति संभव नहीं है। अतः रसिक संप्रदायों की मान्यता है कि इन दोनों में एक क्षण को भी वियोग नहीं होता। इनके प्राण एक हैं केवल विग्रह या स्वरूप ही दो हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व ही नहीं है :

(११) पुरुषोत्तम कृष्ण : आराध्यरूप में—यह परमपुरुष और कोई नहीं प्रत्युत श्रीकृष्ण ही हैं जो अपने दिव्य रूप से परमधाम में (वृंदावन में) विराज

---

१. भक्तिरसमंजरी : पत्र सं० ३१, पत्र सं० ५६।

२. प्रेम्णः सन्मधुरोज्ज्वलस्य हृदयं शृंगार लीला कला।
वैचित्री परमावधि भगवतः पूज्यैव कामी सता॥
ईशानी च शची महासुख तनुः शक्तिः स्वतंत्रापरा।
श्री वृंदावननाथ पट्टमहिषी राधैव सेव्या मम॥
—श्रीहितहरिवंशकृत 'राधासुधानिधि' : श्लोक ७८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। उनके साथ उनकी लीलासंगिनी श्री राधा और उनकी सखियां भी वर्तमान हैं। उस छटा की एक झांकी द्रष्टव्य है—

अजर पुरुष पुरुषोत्तम स्वामी। सब जीवन को अन्तरयामी ॥
पारब्रह्म अविचल अविनाशी। बायें अंग रूप की राशी ॥
गोरी राधा कृष्ण श्याम घन। सिंहासन पर ललित मुदित मन ॥
खंभ खंभ ढिग सखी सहेली। चौदह खड़ीं ईश[1] अलबेली ॥
और सखी बहुतक वहि ठाऊँ। शोभा जिनकी कहत लजाऊँ ॥
नित्य किशोरी गोरी सारी। पाँच तत्व त्रैगुण तैं न्यारी ॥
निज वन चौंसठि खंभे माहीं। होत अखंड रास वहि ठाहीं ॥
झुंड सबै यों बनि बनि आवैं। हुलसि हुलसि लालन ढिग धावैं ॥
रास केलि खेलैं बहु रंगा। सदा बिहार करैं पिय संगा ॥[2]

इस अलौकिक सुन्दरतापूर्ण परिवेश में श्री राधा-कृष्ण और उनके सखी परिकर का अद्भुत रास-विलास इतना मनमोहक और चित्ताकर्षक है कि भक्त हृदय चरणदास जी के इन शब्दों में अपने प्रभु से यह निवेदन करने को विवश हो जाता है—

आस पास बहु कुंज हैं, बीच लाल को धाम।
चरणदास को दीजिये, सखियन में विश्राम ॥[3]

श्रीचरणदास की यही कामना उनके शिष्य परिकर और शिष्य-प्रशिष्य परंपरा में माधुर्य भाव की उपासना का मूलाधार प्रदान करती है।

(१२) परमाराध्या श्री राधा—भारतीय रसिकता अपने विस्तृत इतिहास में जिन सौन्दर्य प्रतिमाओं के समक्ष नतमस्तक हुई है उनमें श्री राधा सर्वश्रेष्ठ हैं। अपने 'श्री राधार क्रम विकास' (श्री राधा का क्रम विकास) नामक ग्रंथ में श्री शशिभूषणदास गुप्त ने यह सिद्ध किया है कि १६वीं शताब्दी के पूर्व ब्रजरानी एवं नित्यकिशोरी राधिका का कहीं पता नहीं था। 'पद्मपुराण,' 'देवी भागवत,' 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' और 'मत्स्य पुराण' में श्री राधा और उनकी रासक्रीडा आदि का जो वर्णन मिलता है, वह प्रक्षिप्त है।

राधावल्लभीय संप्रदाय के यशस्वी कवि श्री हरिराम व्यास ने वृंदावन के रसमय वैभव और राधा-माधव के प्रेम का प्रथम उद्गाता श्री जयदेव को माना है। उन्होंने 'गीतगोविन्द', श्री राधा के स्वरूप-दर्शन और प्रेमकेलि का प्रथम प्रस्थान माना है। १६वीं शती में गौड़ीय संप्रदाय में श्री राधा-माधव की प्रेमलीला

---

१. ईश = यूथेश्वरी।
२. भक्तिसागर (अमरलोक अखंडधाम) : पृ० २३–२६।
३. वही : पृ० २३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रशस्तिगान अवश्य किया गया परन्तु उसमें प्रधानता श्रीकृष्ण की ही रही। इधर राधावल्लभी संप्रदाय ने राधा के परम उज्ज्वल रूप की प्रतिष्ठा की और कृष्ण की अपेक्षा राधा को ही उपास्य पद पर स्थापित किया। श्री हित हरिवंश ने प्रथम बार सशक्त रूप से अपनी राधा-निष्ठा की घोषणा की थी। उन्होंने अपने संप्रदाय के प्रवर्त्तक और अपने गुरु रूप में राधा जी को ही बताया है। रसिकों को परम आह्लादित और प्रेमरसमग्न करने वाला सेवाकुंज भी इन्हीं का कृतित्व है।[1]

राधावल्लभी संप्रदाय की राधा श्रीकृष्णराध्या, सर्वांगसुन्दरी, अवर्णनीय माधुर्य से युक्त, पुंजीभूत रसामृत, प्रेमानंदघनाकृति, निखिल निगमागम अगोचर, वृषभानुकुलमणि, रतिकेलिविलासपेशला और प्रेमोल्लास की चरम सीमा आदि कही गयी हैं। उनकी सहज शोभा का वर्णन करते हुए श्री हितहरिवंश जी इस प्रकार कहते हैं—

सुभग सुन्दरी सहज शोभा सर्वांग प्रति सहज रूप वृषभानु नंदिनी।
सहजानंद कादंबिनी सहज विपिन वर उदित वंदिनी॥[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री राधा भारतीय काव्य, दर्शन और साधना के क्षेत्र की एक महत्तम उपलब्धि हैं। वे तारुण्य और लावण्य की मनोरम मूर्त्ति के साथ-साथ भक्ति और अनुरक्ति की भी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति हैं। वे रासेश्वरी तथा श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं। दार्शनिकों के लिए वे चिन्मयविग्रहवती, पराशक्ति, नवकिशोरी, जगदानंददायिनी और गोविन्दहृदयोद्भवा हैं।

महाकवि सूरदास की किशोरी राधा में मानिनी का प्रेममूल्य, कुलवधू का शील-संकोच और उन्मादिनी का उद्दाम वेग वर्तमान है। उनका देवत्व सूर साहित्य में अपनी प्रकृति भूमि पर है। वे बरसाने में, गोप-गोपी समाज में, वृंदावन की कुंज गलियों मे, मधुबन और यमुना की कछारों में—सर्वत्र मानवीय स्तर पर ही चित्रित हैं। राधा और कृष्ण का परिचय तथा उसका क्रमशः प्रगाढ़ होना गहन प्रेम-बंधन में बँधे हुए एक प्रेमीयुगल की स्वाभाविक मनोभूमि तथा उसके क्रियाकलापों की पृष्ठभूमि है।

श्री चरणदास ने राधा जी को श्री कृष्ण की साक्षात् आत्मा या हृदयोद्भवा माना है। श्रीकृष्ण आह्लादरूप हैं और श्री राधा उनकी शक्ति हैं, इसीलिये उन्हें

---

१. राधावल्लभी वृन्दावन को रसमय वैभव पहिले सबनि सुनायो॥
ता पाछें औरन कछु पायो सो रस सबन चखायो॥
—साधन की स्तुति।

२. सेवक वाणी : ७१६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति भी कहा गया है। शक्ति और शक्तिमान अथवा आत्मा और परमात्मा में अंतर ही क्या है? अपनी आत्मा में कौन नहीं रमण करता? इसीलिए राधिका का रूप भी अत्यंत रमणीय माना गया है। वे नित्यकिशोरी और १२ वर्ष की स्थिर अवस्था वाली चिर संगिनी हैं और श्रीकृष्ण के साथ उनकी नित्यलीला चलती रहती है।[1] उनकी रूपराशि का वर्णन चरणदास जी इस प्रकार कर रहे हैं—

रंगमहल यों छिप्यो गोसाईं। जैसे लाली मेहदी माहीं॥
नित विहार जहँ करैं विहारी। कृष्ण कुँअर अरु राधा प्यारी॥
गौर रूप वृषभानु दुलारी। श्याम रूप हैं कृष्ण मुरारी॥
नीलाम्बर ओढ़े सँग राधा। दिव्य आभूषण रंग अगाधा॥[2]

(१३) गोपी, सहचरी, सखी, किंकिरी आदि—श्री राधावल्लभी संप्रदाय में गोपियाँ तथा रास परिकर की सहचरियाँ सामान्य नारियाँ नहीं हैं प्रत्युत परात्पर प्रेम की विशेष साधिका के रूप में हैं। राधा-कृष्ण के प्रेम-विहार की ये साधिकाएँ हैं। ये साक्षात् प्रेरणामूर्त्ति के रूप में शुक संप्रदाय में भी स्वीकृत हैं। इनकी सेवा तत्सुखी भाव की है। अपने स्वामी और स्वामिनी युगल के सुख में ही इनका सुख निहित है। ये इन दोनों के प्रेम सम्बन्धों में हित-सन्धि-कारक हैं। इन सखियों की आसक्ति और सेवा का विषय युगलरति ही हैं।[3] ये युगल की इच्छा शक्ति और उनके प्रेमरति की प्रयोक्तृ हैं।[4] इनकी लीला-प्रयोजकता स्वयं सिद्ध है। इनका सुख युगल के सुख के साथ सम्बद्ध है। उन्हीं के आनंद में उनका

---

१. नित्य किशोर अरु नित्त किशोरी। द्वादश बरस अवस्था भोरी॥
राधे भूषण छबि कह गाऊँ। नाँव लेत मन में शरमाऊँ॥
बहुत सखी जिनके निज संगा। रासकेलि खेलैं बहुरंगा॥
—भक्तिसागर (व्रजचरित्र वर्णन): पृ० १०।

२. वही: पृ० ९।

३. लाल लाड़िली प्रेम तैं, सरस सखिन को प्रेम।
अटकी हैं निजु प्रेम रस, परसत तिनहिं न नेम॥
—श्री ध्रुवदासकृत 'प्रेमलता' से।

४, कुँअरि अधर प्रिय अधरनि लावैं। रूप बदन नैननि दरसावैं॥
प्रिय के कर लै उरज छुवावैं। मनो मैन को खेल खिलावैं॥
उर सौं उर मिलि भुजनि भरावैं। चरन पलोटि सेजि पौढ़ावैं॥
ऐसी भाँति नव लाड़ लड़ावैं। ताही सौं अपनौ जिय ज्यावैं॥
—ध्रुवदासकृत 'रतिमंजरी' से।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना आनंद निहित है। यदि युगल प्रिया प्रिया-प्रीतम के सुख में आत्मसुख की बात न होती तो उनका स्वयं का यौवन, रूप, रूपमद, स्नेहमद और रसमद इस युगल के प्रेम में बाधक बन जाता। इसलिये ये पूर्णतया समर्पित प्रेम की प्रतिमूर्ति मानी गयी हैं। उनके लिए अपना कुछ है ही नहीं।

इस प्रकार गोपियाँ या सखियाँ एक निःस्वार्थ सेविका के रूप में दिखाई देती हैं। उनकी सेवा मात्र सेवा के लिए ही है। सेवा ही उनकी उपलब्धि है। ये सखियाँ युगल की सेवा (१) पुत्र भाव (२) मित्र भाव (३) पतिभाव और (४) आत्मवत भाव—इन चारों भावों से करती हैं। अतः इन भावों से सम्बद्ध सभी प्रकार की सेवा में वे निरन्तर लगी रहती हैं।

आलोच्य सम्प्रदाय में राधा और उनकी सखियों का रूप इसी स्तर पर स्वीकृत है। इसीलिये इस सम्प्रदाय के कवियों, अनुयायियों और आचार्यों द्वारा स्वीकृत एवं अनुपालित साधनापद्धति में अंशतः सखी भाव की भक्ति की भी झलक मिलती है। राधावल्लभी सम्प्रदाय की भाँति इस सम्प्रदाय में भी प्रेम के आदर्श रूप में युगल सरकार की सखियाँ ही प्रमाण हैं। इनमें भी इन आठ सखियों का उल्लेख इस सम्प्रदाय के साहित्य में अनेकशः मिलता है—(१) ललिता (२) विशाखा (३) रंगदेवी (४) चित्रा (५) तुंगविद्या (६) चंपकलता (७) इन्दुलेखा और (८) सुदेवी। इनमें भी गौर वर्ण की सखियाँ राधा के अधिक निकट और श्याम वर्ण की सखियाँ कृष्ण के निकट मानी गई हैं। युगल केलिरस की अपारधारा कहाँ समा जाती है, इसका उत्तर श्री ध्रुवदास जी ने इस प्रकार दिया है—

मैंड़ तोड़ि रस चल्यौ अपारा। रही न तन मन कछू सँभारा॥
सो रस कहै कहा ठहरानो। सखियन के उर नैन समानो॥
तिहिं अवलम्ब सबै सहचरी। मत्त रहत 'ठाढ़ी रंग भरी॥
सखियन सरन भाव धरि आवैं। सो या रस के स्वादहिं पावैं॥[1]

श्री राधा की सखियाँ निःस्वार्थ प्रेमाभक्ति के लिए आदर्श रूप हैं। वैष्णव भक्ति साधना में इसी कोटि की भक्ति को उत्तमा भक्ति या उज्ज्वल रस की भक्ति की संज्ञा दी गयी है। चरणदासी सम्प्रदाय में भी इसी भक्ति को काम्य मानकर इसे प्रतिष्ठा दी गयी है। श्री चरणदास जी जब यह कहते हैं—

सखा भाव पहुँचत वहि ठाईं। सखी भाव ऊपर को जाईं॥[2]

तो वे सख्य भाव की भक्ति से सखी भाव की भक्ति को उच्च स्थान देते हैं।

---

१. स्वामी ध्रुवदास कृत 'रतिमंजरी' : छंद सं० १२।
२. भक्तिसागर (अमरलोक अखंडधाम) : पृ० २१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके शिष्य गुरु छौना जी सखीभाव को ही भगवान् को प्रसन्न करने का एक मात्र साधन मानते हैं—

सखी भाव राधा भजे, सो पहुँचे निज धाम ।
टहल लहै सामीपता, तब रीझें घनश्याम ।।[1]

इस प्रकार चरणदासी सम्प्रदाय के साहित्य से सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें तत्तद् कवियों ने सखी भाव की साधना को ही सर्वोच्च साधना पद्धति स्वीकार किया है और स्वयं भी इसी को अपनी साधना का आधार बताया है। उन्होंने अपना सखीनाम भी धारण किया है और राधा तथा उनकी अंतरंग सखियों का भूरिशः गुणगान किया है। उन्होंने 'श्री राधा से प्रार्थना भी की है कि वे उन्हें अपने सखी-परिकर में स्थान दें।

(१४) राम नाम का रहस्य ('राम' शब्द श्रीराधाकृष्ण का वाचक)— 'भक्तिसागर' में राम का नाम बार-बार प्रयुक्त हुआ है परन्तु चरणदास जी की प्रत्यक्ष उपासना राधा-कृष्ण की ही थी। वे ही उनके आराध्य थे। अतः उनके कथन में मिलने वाले अन्तर्विरोध के विषय में जब उनके प्रिय शिष्य रामसखी जी ने पूछा तो उनके उत्तर का निष्कर्ष इस प्रकार था—

राम इन्हें सब कहत हैं, ताको अर्थ रसाल ।
'रा' अक्षर श्री राधिका, 'म' मनमोहन लाल ।।[2]

तात्पर्य यह कि राम शब्द में राधा और श्याम दोनों समाहित हैं परन्तु प्रगट में या प्रत्यक्ष रूप से उनका नाम न लेकर 'राम' जैसे गुप्त नाम द्वारा उन्हीं का स्मरण किया जाता है। अपने आराध्य का नाम प्रकट रूप में बार-बार नहीं लेना चाहिए। जिस प्रकार पतिव्रता अपने पति का नाम नहीं लेती या छद्मरूप से लेती है उसी प्रकार चरणदास जी भी अपने आराध्य के लिए प्रतीकात्मक शब्द अर्थात् 'राम' शब्द का प्रयोग करते हैं। हाँ, यदि कोई अधिकारी पात्र मिल जाय तो उसके सामने वास्तविक नाम लेने में कोई हानि नहीं है। इस सम्बन्ध में रामसखी जी का कथन द्रष्टव्य है—

युग्म नाम प्रत्यक्ष में, कह्यो नहीं यह हेत ।
अधिकारी बिन राम रस, बनत न कैसेहु देत ।।
द्वितीय हेतु यह जानिये, स्वामी पति को नाम ।
बार बार नहिं भाषबो, प्रगट बनत अभिराम ।।

---

१. स्वामी अखैराम कृत 'ज्ञानसमूह ग्रंथ' में गुरु-शिष्य-गोष्ठी का प्रसंग ।
२. भक्तिरसमंजरी : दोहा सं० २१६ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रा' जै जै राधा प्रगट, 'म' मनमोहन रूप।
राम नाम में गुप्त दोउ, मम भावते स्वरूप ॥
दृष्टि बचावन जगत हित, तामें राखे ढांप।
हौं ही देखत यत्न करि, ज्यों मणि देखत सांप ॥[1]

(१५) मुक्ति का स्वरूप और मुमुक्षु के लक्षण—मुक्ति के सम्बन्ध में भारतीय चिन्तन धारा में दो प्रकार के विचार मिलते हैं—(१) मरणोपरान्त मिलने वाली मुक्ति (२) जीवन्मुक्ति। सामान्यतया मरण सभी कष्टों का अन्त माना जाता है, इस अर्थ में भी मुक्ति का ग्रहण होता है। इसी प्रकार सभी इन्द्रियों और मन का निगृहीत होना जीवन्मुक्ति है। मुख्यरूप से चार प्रकार की मुक्तियों की कल्पना की गयी है, जिनके नाम हैं—(१) सालोक्य मुक्ति, (२) सारूप्य मुक्ति, (३) सामीप्य मुक्ति और (४) सायुज्य मुक्ति। परन्तु सन्त चरणदास के प्रिय एवं वरिष्ठ शिष्य गुरुछौना जी ने अपने 'षट्रूप मुक्ति ग्रन्थ' नामक कृति में छः प्रकार की मुक्तियों का विस्तृत विवेचन किया है। इसमें उक्त चार प्रकार की मुक्तियों के साथ ही 'जीवन्मुक्ति' और 'विदेहमुक्ति' नामक दो और मुक्तियों पर प्रकाश डाला गया है। तात्पर्य यह कि इस सम्प्रदाय में छः मुक्तियाँ मान्य हैं जिनमें सामीप्य मुक्ति ही अधिक इष्ट मानी गयी है। चरणदास जी ने इसी मुक्ति की कामना व्यक्त की है—

अखंड धाम लीला अमर, नित वृन्दावन रास।
नितबिहार जहँ होत है, चरणदास को वास ॥[2]

अधिकांश कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों के अनुयायी भगवत्लीला की तल्लीनता के साथ अनुभूति करते रहना ही मुक्ति मानते हैं क्योंकि उससे उनको सामीप्य का अनुभव होता रहता है। इस मुक्ति के पूर्व लक्षणों के रूप में मुमुक्षुओं के आचरण की कुछ विशेषताएँ बताई गई हैं, जिनके अनुसार मन का स्थिर होना ही योग, ज्ञान और भक्ति है, अतः मनोनिग्रह मुक्ति का प्रथम सोपान है। इसके अतिरिक्त सन्तोष, आशा-तृष्णा का अभाव, ज्ञानेन्द्रियों से कर्मेन्द्रियों का नियमन, मन से पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का नियन्त्रण, बुद्धि से मन का निरोध, ध्यान में लीनता या लौ, वैराग्यधारण, क्रोध-संकल्प-विकल्प का सन्तोष तथा धैर्य से अवरोध, निद्रा-भय-मन की वासना-इन्द्रियजनित भ्रान्ति और निन्दा आदि को ध्यान-धारणा तथा समाधि से निरुद्ध करना, कनक-कामिनी की प्रीति से विरत रहना, भोजन में सावधानी, लोभ का त्याग, नैष्कर्म्य भाव अथवा कर्मफलत्याग, संग्रहवृत्ति तथा संसारी जनों

---

१. भक्तिरसमंजरी (पाण्डुलिपि) : पत्र सं० ६६, दोहा सं० १६, १८–२०।
२. भक्तिसागर (अमरलोक अखंडधाम वर्णन) : पृ० २७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की संगति को छोड़ देना, दया की सहायता से दण्ड और अभिमान का परित्याग, अपने शरीर में अपनेपन के भाव का न होना और अविद्या का विनाश आदि सामीप्य मुक्ति के साधक आचार-विचार हैं।[1]

स्वामी रामरूप के विचार से मुक्ति-पद की प्राप्ति तब तक सम्भव नहीं है जब तक पाप-पुण्य रूपी दोनों बन्धनों का विनाश नहीं हो जाता। ये दोनों अपने आप में बन्धन हैं। उनकी बेड़ी से मुक्त होना ही वास्तविक अर्थ में मुक्ति है।[2] कर्मफल-त्याग भी मुक्ति के कारकों में से एक प्रमुख कारक है। इसी को गीता में संन्यास और नैष्कर्म्य भाव की संज्ञा दी गई है। कर्मफल में आसक्ति बन्धनमूलक है, जो इसे त्याग देता है वह ब्रह्मरूप हो जाता है। ऐसा साधक पूर्णतः समद्रष्टा होता है। सर्वभूतों में उसकी आत्मदृष्टि होती है। जिस प्रकार दीपक प्रकाश प्रदान करने में ठाकुरद्वारे और श्वपच-गृह में भेद नहीं करता उसी प्रकार सभी घटों को एक समान समझना समद्रष्टा का लक्षण है। तात्पर्य यह कि सच्चा आत्मद्रष्टा वह है जिसमें किसी प्रकार का द्वैत भाव नहीं है। ऐसा ही व्यक्ति मुक्ति या मोक्षपद का अधिकारी है।

(१६) मुमुक्षु के लक्षण—मोक्ष-प्राप्ति की पहली सीढ़ी मनोन्मनी है। मन का ऊर्ध्वीकरण ही बुद्धि के परिष्कार और स्थैर्य का कारणभूत है। मन और बुद्धि की स्थिरता से ही योग, ध्यान, भक्ति और ज्ञान आदि सिद्ध होते हैं। संतोष भी इस दशा के सहायकों में से एक है। इसकी सहायता से आशा, तृष्णा, राग तथा द्वेष पर विजय प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञानेन्द्रियों से कर्मेन्द्रियों का नियन्त्रण भी मोक्ष-धर्म का एक विशिष्ट लक्षण है। जब ध्यान ध्याता और ध्येय में एकत्व स्थापित हो जाता है तो ब्रह्मानंद की अनुभूति होती है। फलतः संसार के प्रति मोह विगलित होता है और वैराग्य की उत्पत्ति होती है। यही वैराग्य मुक्ति-पद का प्रदाता है।[3]

मुमुक्षु का कर्त्तव्य है कि वह सन्तोष के कुल्हाड़े से क्रोध का मूलोच्छेदन करे, फिर मन के संकल्पों-विकल्पों तथा निद्रा एवं भय का त्याग करे। उसके लिए वासना, द्रोह, मन की चंचलता, इन्द्रियजनित भ्रान्ति, निन्दा, काव्य और संगीत

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १३४–१३६।

२. पाप पुण्य दो बन्ध हैं, याको छूटा जान।
मुक्ता जबहीं होयगा, निर्मल उपजै ज्ञान॥
दोनों बेड़ी काटकर, यासों बाहर आय।
लोहे सों लोहा कटै, सो मैं देहुँ बताय॥—वही : पृ० १३८।

३. वही : पृ० १३४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसिकता, कनक-कामिनी प्रीति आदि सर्वथा त्याज्य हैं। संसारी लोगों की मैत्री, आशा, आश्रमव्यवस्था का व्यामोह, अभिमान, तृष्णा और वाद-विवाद आदि भी मुमुक्षु के लिए अकार्य एवं अग्राह्य हैं।[2]

अतः मुमुक्षु का कर्त्तव्य कर्म जोगजीत जी के शब्दों में इस प्रकार है—

सिमटि लगे हरि ओर ही, जग से नाता तोड़।
पाँचों इन्द्री स्वाद से, मन को लेवै मोड़॥
मोह कुटुंब परिवार ही, मोह देह अरु नार।
नेह न काहू से करै, बँधे न जग व्यवहार॥[2]

(१७) भाग्यवाद और पुनर्जन्मवाद—आलोच्य सम्प्रदाय में कर्मवाद, भाग्यवाद और पुनर्जन्मवाद—ये तीनों सिद्धान्त मान्य हैं। शुभाशुभ कर्मों के विपाकों अथवा परिणामों के सम्बन्ध में भारतीय चिन्तन परम्परा में निहित मान्यताओं या विश्वासों पर इस सम्प्रदाय की पूरी आस्था है। इस सम्प्रदाय के आचार्य मानते हैं कि शुभकर्मों से स्वर्ग की ओर खोटे कर्मों से नर्क-सन्ताप की प्राप्ति निश्चित रूप से होती है।[3] नर्क और स्वर्ग का क्या स्वरूप है, इसका विस्तृत वर्णन स्वामी चरणदास ने 'नासकेतलीला वर्णन' नामक अपने ग्रंथ में बड़े स्पष्ट शब्दचित्रों के साथ किया है।

खोटे कर्मों के फलस्वरूप मानव देही को बार-बार जन्म-मरण का कष्ट भोगना पड़ता है। आवागमन का यह चक्र उसे तीनों भुवनों में घुमाता-फिराता रहता है। इसके विपरीत शुभकर्मों से खोटे कर्मों का विपाक नष्ट हो जाता है। शुभ कर्मों से ही नैष्कर्म्य की प्राप्ति होती है, जिसे कर्मफलन्यास या कर्मफलत्याग कहा जाता है। यह जीवन्मुक्ति की प्रदायिका स्थिति का सूचक है।

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १३५–१३६।

२. लीलासागर : पृ० ६१।

३. शुभ कर्मन को लहत है, स्वर्गों के फल जाय।
पुण्य क्षीण हो गिरत है, मृत्यु लोक में आय॥
खोटे कर्मन के किये, लहत नरक सन्ताप।
फिर आवै मृत्युलोक में, क्षीण होय जब पाप॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १३८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ब) चरणदासी सम्प्रदाय में माग्य साधना का स्वरूप—

आलोच्य सम्प्रदाय की साधना 'श्रीमद्भागवत' में निरूपित सगुणमार्गी वैष्णव रीति की वह भक्तिसाधना है, जिसमें योग, कर्म, ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय है।[1] इतना अवश्य है कि इन चारों साधना मार्गों में भक्ति ही विशेष काम्य मानी गई है और शेष साधना-मार्ग उसके साधन मात्र हैं या अंगीभूत माने गये हैं। अपनी साधना की विशिष्टता की ओर निर्देश करती हुई सुश्री सहजोबाई कहती हैं—

नमो नमो शुकदेव गुसाईं। परगट करी भक्ति जग माहीं ॥
श्रीमद्भागवत भानु परकासा। पढ़ सुन कटै तिमिर के फाँसा ॥
ज्ञान योग की नौका कीनी। चरणदास केवट को दीनी ॥
बहुतक पापी जीव चढ़ाये। भवसागर से पार लगाये ॥
कलियुग में सतयुग बिस्तारा। रामभक्ति का खोल दुवारा ॥[2]

चरणदासी महात्माओं की बानियों में सर्वत्र इस तथ्य को उजागर किया गया है कि उनकी साधना में योग, कर्म और ज्ञान का निषेध नहीं है प्रत्युत ये सभी भक्ति-प्राप्ति के साधन मात्र हैं। इस बात को और भी स्पष्टता से रामरूप जी के 'मुक्तिमार्ग' नामक कृति में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें गुरु (चरणदास) की ओर से शिष्य को उपदेशात्मक शैली में 'नवधाभक्ति' को ग्रहण करने का आदेश इस प्रकार दिया गया है—

ज्ञान तपस्या सूँ अधिकाई। सो उपजै नवधा सूँ भाई ॥
प्रेम भक्ति नवधा सूँ पावै। परमेश्वर ता बस हो जावै ॥
नवधा कलियुग माँहि बखानी। वेद पुराणन सूँ यों जानी ॥
नवधा कलियुग में बनि आवै। अधिक तपस्या सूँ फल पावै ॥
रामरूप यह हिरदय धारो। चरणदास कहैं वचन हमारो ॥[3]

चरणदास जी ने अपनी बानियों में सर्वत्र योग और ज्ञान मार्ग की कठिनाइयों, उनसे होने वाले कायक्लेशों और इन मार्गों के अवरोधक तत्त्वों का उल्लेख किया है। इन दोनों की स्वयं की साधना से प्राप्त स्वानुभव के आधार पर उन्होंने प्रथम नवधा भक्ति को और तदनन्तर उसकी परिपक्वता होने पर प्रेमाभक्ति को अपनाने

---

१. ज्ञान योग वैराग ही, भक्ति सहित अंग चार।
चरणदास के पाय है, भिक्षुक भिक्षा द्वार ॥
—लीलासागर : पृ० ३५०।

२. सहजप्रकाश : पृ० ३–४।

३. मुक्तिमार्ग (नवीन संस्करण) : पृ० १८७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जोर दिया है। अतः उनकी साधनामूलक विचारधारा का चरम उद्देश्य प्रेमाभक्ति ही है, इसमें सन्देह को कोई स्थान नहीं है।

वस्तुतः वृन्दावन में रासलीला का प्रत्यक्ष दर्शन करने और गुरु श्री शुकदेव जी से ज्ञान गोष्ठी करने के उपरान्त उनसे भक्ति प्रचार के लिए आदेश प्राप्त होने पर ही वे इस ओर प्रवृत्त हुए थे। अन्यथा उनका आरम्भिक झुकाव योग और ज्ञान की ओर ही था। परन्तु जब गुरु ने आदेश के रूप में उनसे यह कहा—"भक्ति चलावो जगत् में, जग के जीव उबार। बैठि भजन की नाव में, भवजल उतरें पार॥"—तो उनके लिए इसके अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं था।[1] कृष्णभक्ति का प्रचार करने का आदेश उन्हें गुरु से तो कई बार मिला ही था, स्वयं भगवान् कृष्ण से भी वे इसके लिए निर्दिष्ट थे।[2]

(१) ज्ञानमार्ग और उसकी निस्सारता—चरणदास जी ने भक्ति साधना की ओर उन्मुख होने के पूर्व उपनिषदों के ज्ञानमार्ग का गहन अध्ययन-मनन किया था। इसका प्रमाण उनका 'पंचोपनिषद्' का अनुवाद करना है। यही कारण है कि ज्ञान-मार्ग के प्रत्यूहों का भी उन्हें पूर्ण अनुभव था वे इसकी असाध्यता और सर्वजनदुर्लभता से भलीभांति परिचित थे। 'गुरुभक्तिप्रकाश' में अपने शिष्य रामरूप जी को ज्ञानमार्ग की साधना का विस्तृत परिचय देते हुए उन्होंने सर्वप्रथम ज्ञानी की तीन कोटियाँ बताई हैं—(१) ब्रह्मज्ञानी, (२) ब्रह्मदर्शी और (३) ब्रह्मभोगी। ब्रह्मज्ञानी वह है, जो ब्रह्म के रहस्य को जानता हो और इन्द्रियजित् हो। ब्रह्मदर्शी वह है, जिसके ज्ञानचक्षु खुले हों और जिसे ब्रह्म के प्रत्यक्ष दर्शन हुए हों। ब्रह्मभोगी वह है, जिसकी लौ सर्वदा ब्रह्म में ही लगी हो, जिसे परमानंद की अनुभूति हो रही हो, जगत् का जिसे कोई भान न हो तथा जिसके मन में बन्धन या मुक्ति की कोई कामना शेष न हो।[3]

ऐसे ज्ञानी के लिए ब्रह्म स्व में और साथ ही सर्वत्र दृष्टिगत होता है। वह निर्वैर, हर्ष-शोक विहीन, निर्भय, अनाश्रित, जन्म-मरण के विवाद से मुक्त, गत अहंकार, दग्धवासना, कर्म बंधन से भी मुक्त, इन्द्रिय-विषयों से अनासक्त, सहजा-

---

१. लीलासागर : पृ० १८९।

२. तब बोले श्रीकृष्ण जी, सुनो चरण ही दास।
ध्यान हिये में राखियो, रहूँ तुम्हारे पास॥
जो हमने आज्ञा दई, कारज कीजे सोय।
भक्ति फलावो जगत् में, जीवन की गति होय॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ९६।

३. वही : पृ० १४३–१४४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्द में लीन, सकल कामनारहित और जीवन्मुक्त होता है। उसकी दृष्टि में चार वर्ण और चार आश्रम का भी भेद नहीं होता। यहाँ तक कि उसके लिए गुरु-शिष्य का भेद भी मिट जाता है।[२]

ज्ञान मूलतः वैराग्यमूलक होता है। मानव-तन की निस्सारता, सामाजिक संबंधों की स्वार्थपरता, सांसारिक या भौतिक समृद्धियों की क्षणभंगुरता और दृश्य जगत् के प्रति व्यापक भ्रान्ति का यथार्थतः ज्ञान आदि मनुष्य के मन में विरति या निरति का भाव उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः स्व, पर, जीव, जगत्, परम-तत्व और मानव जीवन संबंधी अन्य रहस्यों को परमार्थतः या यथार्थतः जानना ही ज्ञान है। इसके विपरीत अज्ञान मोह और बंधन का कारण है। तात्पर्य यह कि ज्ञान वैराग्य का जनक है और वैराग्य ज्ञान, योग और भक्ति-साधना का प्रबल साधक तत्व है।

ज्ञान मुख्यतः बौद्धिक और तर्कप्रधान होने के कारण कभी-कभी संदेहग्रस्त और शारीरिक-मानसिक दुर्बलताओं से आवेष्ठित हो जाता है। इसमें प्रत्यावर्तन की संभावनाएँ निहित हैं। इसीलिए भक्ति-साधना के क्षेत्र में इसे भी साध्य या काम्य न मानकर साधन ही माना जाता है। ज्ञान के प्रति यही दृष्टिकोण इस संप्रदाय का एक स्वीकृत तथ्य है।

जहाँ हिन्दी की ज्ञानमार्गी साधना में शास्त्रीय और पारंपरिक ज्ञान को अनुभूत ज्ञान (अनभौ) से हीन माना गया है, वहाँ चरणदासी संप्रदाय में ज्ञान के सभी स्रोतों के प्रति आदर का भाव है। यह परंपरावादी या सनातनवादी और शास्त्रवादी होते हुए भी समय के साथ गतिशील साधना संप्रदाय है। चूँकि वृंदावन और दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों में राधा-कृष्ण युगल प्रेमोपासना का प्राधान्य था अतः देशकालानुसार यह संप्रदाय भी उसी धारा में प्रवाहित दिखाई देता है।

ज्ञानदशा का लक्षण बताते हुए संत चरणदास जी का कथन है कि सद्गुरु और संतों की कृपा से जब किसी साधक में ज्ञानदृष्टि का आगम होता है, तब सब आपा मिट जाता है और मन ब्रह्म में स्थिर हो जाता है। फिर तो ज्ञानी के लिए ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की एकाकारता या तदाकारता स्थापित हो जाती है तथा बन्धन और मुक्ति का भी अभेद हो जाता है। इस स्थिति में साधक या ज्ञानी के लिए वैरी-मित्र, पाप-पुण्य, और सुख-दुःख का अंतर स्वतः समाप्त हो जाता है। इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए चरणदास जी कहते हैं—

तब कोई बैरी मित्तर नाहीं। पाप पुण्य की परै न छाहीं॥
हरष सोक सम हो जा दोऊ। रक्षा करो कि मारो कोऊ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोऊ हाथ में भोजन दे जा। कोई छीनकर यों ही ले जा ॥
दोनों एक बराबर वाके। जग व्यवहार कछू नाहिं जाके ॥
ज्ञानदशा ऐसी करि गाई। चरणदास शुकदेव बताई ॥
ज्ञानदशा आवन कठिन, बिरला जाने कोय।
ज्ञानदशा जब जानिये, जीवत मृत्यक होय ॥[1]

समाज में वाचक ज्ञानियों की भरमार है। लक्षज्ञानी या वास्तविक तत्व-ज्ञानी बिरले ही होते हैं। ज्ञानमार्ग क्षुर-धारा के समान सूक्ष्म है। इसपर चलने वाले के लिए स्खलन की प्रभूत संभावनाएँ हैं। ज्ञानी के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा विषय-वासनाएँ हैं। काम और क्रोध सभी अवगुणों के जनक हैं। ज्ञानी का अहंकार भी बड़ा स्फीत होता है। ज्ञान जब भ्रष्ट हो जाता है तो वह कथनी और करनी में असमंजस्य उत्पन्न कर देता है, जिसके परिणाम-स्वरूप छल-बल, झूठ, अहंकार, वाद-विवाद और पापकर्म की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है।[2] इन्हीं विषमताओं को देखते हुए चरणदास जी ने नवधा भक्ति को ग्रहण करने का उपदेश दिया है।

(२) कर्ममार्ग एवं नवधा भक्ति—श्री चरणदास स्वामी ने अपने 'धर्मजहाज' नामक ग्रंथ में कर्ममय जीवन की प्रशंसा और कर्मरहित जीवन की निंदा की है। आलसी और निश्चेष्ट जीवन को साधना के क्षेत्र में भी अच्छा नहीं माना गया है—

करनी बिन थोथा रहै, कछू न पावै भेद।
विभव प्राप्त कुछ होय ना, कहैं जु यों शुकदेव ॥[3]

परन्तु यहाँ कर्म या करनी का तात्पर्य निष्काम कर्म से है। यह प्रकारान्तर से नवधा भक्ति का मूल स्वरूप है। इसके बिना नवधा भक्ति चल ही नहीं सकती।

वैसे तो चरणदास जी ने नवधा भक्ति को अपनाने की राय दी है, लेकिन प्रेमाभक्ति को सर्वोपरि मानते हुए उन्होंने इसे उसका सोपान मात्र माना

---

१. भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० २०७।

२. ज्ञानी बिगड़े विषयी होई। कथै एक और चालै दोई ॥
बुरे करम औगुण चित लावै। भले करम गुण सब बिसरावै ॥
विषय वासना के रंग राती। झूठ कपट छल बल मद माती ॥
इन्द्रीवश मन हाथ न आवै। पाप करन सों नाहिं डरावै ॥
ज्ञान कथै अरु बाद बढ़ावै। रहन गहन का भेद न पावै ॥
—वही : पृ० २०७।

३. भक्तिसागर (धर्मजहाज वर्णन) : पृ० ५९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।[1] तात्पर्य यह कि नवधा साध्य नहीं प्रत्युत साधन है, जबकि प्रेमा भक्ति काम्य है।[2]

इसके पूर्व इसी संदर्भ में नवधा को उन्होंने वेद का फूल और योग-ज्ञान-वैराग्य सभी का मूल बताया है, लेकिन इसको सर्वोत्कृष्ट साधना मानकर इसी तक सीमित रह जाना उन्हें स्वीकार नहीं है। उनकी इसी मान्यता की पुष्टि रामरूप जी की इन पंक्तियों द्वारा हो रही है—

करत नवधा नेम निशदिन नेह डोर लगाय।
फेर प्रेमा होय परगट आपा आप नशाय॥
फिरे मतवारो जगत में कर्म काट बहाय।
तनु छुटै धर दिव्य देही अमर लोक बसाय॥[3]

नवधा भक्ति वस्तुतः कर्मफलत्याग और निष्काम कर्मयोग की अभिव्यक्ति है। यह साधक को एकाग्रचित्तता, कर्त्तव्यबोध, अनालस्य, कर्म—निष्ठा, कर्मफल में अनासक्ति, दृढ़ निश्चय एवं अध्यवसाय का पाठ पढ़ाती है। उसके आचरण और अभ्यास से प्रेमाभक्ति की पूर्वपीठिका तैयार होती है। यह वस्तुतः साधक को प्रेमाभक्ति तक पहुँचने की मानसिकता के निर्माण का सोपान है। इस प्रकार की भक्ति बड़ी ही धैर्यपरीक्षक, श्रमसाध्य और साधक के दृढ़ निश्चय की परिचायिका है।

(३) भक्ति—ज्ञान और योग से भी बड़ी—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्य संप्रदाय में ज्ञान और योग दोनों से भक्ति को अधिक इष्ट

---

१. नवधा भक्ति सँभारि, अँग नव जान ले।
सरवण चितवन और, कीर्तन मान ले॥
सुमिरन वंदन ध्यान, और पूजा करो।
प्रभु सों प्रीति लगाय, सुरति चरणन धरो॥
होकर दास ही भाव, साध संगति रलो।
भक्तन की करि सेव, यही मत है भलो॥
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ वर्णन) : पृ० २०८।

२. प्रेम भक्ति का तात, ताप तीनों नसें।
अर्थ धर्म काम मोक्ष, सकल तामें बसें॥
जो राखे मन माहिं, विवेक विचार सों।
पावै पद निर्वाण, बचै जग भार सों॥—वही।

३. मुक्तिमार्ग : पृ० २७४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना गया है। रामरूप जी का विचार है कि ब्रह्म के निकट पहुँचने का इससे सुगम और सुरक्षित अन्य कोई भी मार्ग नहीं हैं।[1]

इसमें भी सगुण भाव की भक्ति ही अधिक ग्राह्य है, क्योंकि ब्रह्म का निर्गुण रूप तो ज्ञानियों के लिए भी दुर्ग्राह्य है।[2] इसीलिए स्वामी चरणदास जी ने श्री रामरूप को यह आदेश दिया था—

भक्ति करो करवाइयो, करो विचार न और।
मैं जाऊँ निज धाम को, तू रह याही ठौर॥[3]

भक्ति ही ज्ञान, वैराग्य और योग की धात्री है। जिसमें इसका आगम हुआ, उसमें समस्त सद्गुणों सहित ये तीनों भी स्वतः ही आ जाते हैं। यह भगवान् को सर्वाधिक प्यारी है। इससे दया, क्षमा, दीनता, त्याग, वैराग्य, जीवन्मुक्ति, मनोनिग्रह, ज्ञान और विवेक, आदि सभी शुभलक्षण साधक में स्वतः आ जाते हैं। इस प्रकार भक्ति इन गुणों के अभिनिवेश के साथ ही सुनिश्चित रूप से मोक्षदात्री है। ऐसी भक्ति अनेक जन्मों के संस्कारों और पुण्यों का फल होती है।[4]

अतः भक्ति को छोड़कर किसी भी अन्य साधना मार्ग को अपनाना निरर्थक है। जिस प्रकार मातृविहीन बालक पथ-भ्रष्ट हो जाता है, वैसे ही ज्ञानी और योगी भी भ्रष्ट हो सकते हैं।[5] भक्ति साधक की ऐसी रक्षिका है, जो उसे कुमार्ग पर जाने से रोकती है। यह ऐसी पूँजी है, जिसकी विपरीत गति नहीं है। यह घाटे का सौदा कभी नहीं है और इसमें लगाई गई साधना की पूँजी सदा सुरक्षित रहती है, जब कि अन्य साधना मार्ग पथभ्रष्ट होने पर समूल नष्ट हो जाते हैं। भक्ति के संस्कार पुनर्जन्म में भी अक्षुण्ण रहते हैं।[6]

इस संप्रदाय के आचार्यों ने भक्ति की महत्ता को स्वीकार करने के मूल में 'श्रीमद्भागवत' की इन उक्तियों को प्रमाणभूत माना है—

---

१. भक्ति बड़ी है योग तें, परमेश्वर वश होय।
करे आपने रूप ही, दुविधा रहे न कोय॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २२८।

२. निर्गुण मेरा रूप जो, बुध बानी सों दूर।
सर्गुण रूप सरूप है, जानत ना सो कूर॥—वही।

३. वही : पृ० २२९।

४. वही : पृ० १११।

५. जैसे माता के बिना, बालक भ्रष्टल होय।
भक्ति बिना ज्ञानी जना, निश्चय भ्रष्टल सोय॥—वही : पृ० १२८।

६. वही : पृ० १४७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता ।।
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः शुद्धयाऽऽत्माप्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।।[1]

(४) मानसोपचार-सेवा (आत्मपूजा)—जहाँ इस संप्रदाय में वैधी पूजा का अष्टयाम विधान मान्य है वहीं संत-परंपरा में स्वीकृत मानसिक उपासना के विधान का भी निषेध नहीं किया गया है। इसके अनुसार 'माहैं चंदन पाती, माहैं पूजा माहैं देवा'—जैसी मान्यता को समर्थन मिलता है। इस प्रकार की उपासना की पुष्टि स्वयं चरणदास जी और उनके शिष्यों में रामरूप जी तथा सहजोबाई जी आदि की उक्तियों से होती है। इस विधि के अनुसार साधक को सर्वप्रथम गुरु की ही मानसी पूजा-सेवा करनी है। तत्पश्चात् विभिन्न अंगों में चंदनादि लगाने के बाद १६ ऊँकार ध्वनि के साथ पूरक, ६४ ऊँकार के साथ कुंभक और ३२ ऊँकार के साथ रेचक करते हुए प्राणायाम की विधि पालन करना है। इस प्रकार के प्राणायाम २४ बार करणीय हैं।[2] यदि किसी प्रकार इतना न हो सके तो कम से कम १२ बार अवश्य करना चाहिए। बारी-बारी से बायें-दायें से पूरक और रेचक का क्रम चलाना चाहिए अर्थात् प्रथम बार बायें से श्वास खींचकर दाये से छोड़ना और दूसरी बार दायें से खींचकर बायें से छोड़ना चाहिए।[3] इस संबंध में स्वयं चरणदास जी का निर्देश इस प्रकार है—

इस विधि बारी बारी करिये। सुरति-निरति त्रिकुटी में धरिये ।।
ताके पीछे और सँभारो। श्रीकृष्ण का ध्यान बिचारो ।।
सुन्दर मन्दिर नीके रचिये। गोल सिंघासन तामें सजिये ।।
पाये अष्ट कँवल आकारो। कंचन का नग जटित निहारो ।।
तापै श्री राधा-श्याम सुजाना। वा छबि को निरखे करि ध्याना ।।
फूलन की माला पहिरावै। चन्दन तिलक ललाट चढ़ावै ।।
सकल सौंज सों पूजा सरै। तन मन धन न्यौछावर करै ।।
दे परिक्रमा शीश नवावै। चरणन सो दोइ नैन छुवावै ।।

कहै कि यह किरपा करो, लीजै मोहि उबार।
भक्ति आपनी दीजिए, प्रभुजी बारंबार ।।[4]

---

१. श्रीमद्भागवत् : ११।१४।२०–२१।
२. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ५३–५४।
३. शुकसंप्रदाय सिद्धान्त चन्द्रिका : पृ० ९०–९१।
४. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ५४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मानसी उपासना का समर्थन चरणदास जी के अनेक पदों से होता है। उनका निम्नलिखित पद इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है—

ए मन आतम पूजा कीजै।
जितनी पूजा जग के माहीं, सबहुन को फल लीजै॥
जो जो देही ठाकुर द्वारे, तिनमें आप बिराजे।
देवल में देवत है परगट, आछी विधि सो राजे॥
त्रैगुण भवन सँभार पूजिये, अनरस होन न पावै।
जैसे को तैसा ही परसो, प्रेम अधिक उपजावै॥
घट घट सूझै कोई एक बूझै, गुरु शुकदेव बतावै।
चरणदास यह सेवन कीन्हें, जीवन मुक्त फल पावै॥[1]

इस प्रकार की पूजा भी नवधा ही है परन्तु वह अन्तर्मुखी है और उसका सारा उपचार सूक्ष्म और अन्तर्मन में ही निहित है।

आरती रमता राम की कीजै। अन्तर्द्धान निरखि सुख लीजै॥
चेतन चौकी सत को आसन। मगन रूप तकिया तजि दीजै॥
सोहं थाल खैंचि मन धरिया। सुरति निरति दोउ बाती बरिया॥
योग युगति सूँ आरति साजी। अनहद घंट आप सूँ बाजी॥
सुमति साँझ की बिरिया आई। पाँच पचीस मिलि आरति गाई॥
चरनदास शुकदेव को चेरो। घर घर दर्शै साहब मेरो॥[2]

(५) वैधी भक्ति—यह सम्प्रदाय एक आस्तिक, परम्परावादी और शास्त्रोक्त पूजा-उपासना पद्धतियों में आस्थावान सम्प्रदाय है। इसमें सगुण उपासना की प्रायः सभी पूजा पद्धतियाँ किसी न किसी रूप में मान्य हैं। इसका निर्देश स्वयं शुकदेव मुनि ने अपने शिष्य चरणदास जी को इस प्रकार दिया था—

सुन्दर मन्दिर नीके रचिये। गोल सिंहासन तामें सजिये॥
पाये अष्ट कँवल आकारो। कंचन का नग जटित निहारो॥
तापै राधा श्याम सुजाना। वा छबि को निरखै करि ध्याना॥
फूलन की माला पहिरावै। चंदन तिलक ललाट चढ़ावै॥
सकल सौंज सों पूजा सरै। तन मन धन न्यौछावर करै॥
दे परिक्रमा शीश नवावै। चरनन से दोउ नैन छुवावै॥
ताकें पीछे दशही माला। गुरु मन्त्र जप होय निहाला॥
ताके पीछे तर्पण कीजै। यह पूजा की विधि सुनि लीजै॥
भोग लगाकर भोजन खइये। सन्ध्या भोर आरती गइये॥[3]

---

१. भक्तिसागर : पृ० ५०९।
२. वही : पृ० ३८४।
३. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ५४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजा की उपर्युक्त विधि के अतिरिक्त इस संप्रदाय में तुलसी की माला का धारण, शालिग्राम-शिलामूर्त्ति का पूजन, उनका चरणामृत पान, श्री शुकाष्टक, हरिनामाष्टक और आचार्याष्टकों का पाठ, श्री चरणदासकृत 'अमरलोक' तथा 'ब्रजचरित्र' का पठन-पाठन, सायं-प्रातः की आरती और श्री जी (राधा जी) के चित्र का पूजन आदि भी नित्य नैमित्तिक पूजन के आवश्यक आचार माने गये हैं।[1]

इन विधियों के साथ ही भक्तों और साधकों के लिए विस्तृत दिनचर्या भी निर्धारित की गयी है, जो सभी पुराण-शास्त्रोक्त हैं और स्मार्तों के लिए भी विहित हैं। इनमें से अधिकांश शरीर के अन्दर तथा बाहर की स्वच्छता, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य संबंधी नियमों के पालन और व्यावहारिकता की दृष्टि से औचित्यपूर्ण आचरणों से संबद्ध हैं। इन्हीं से संबंधित इस संप्रदाय में मान्य विधिनिषेधों की एक सूची के साथ ही अष्टयाम सेवा विधान का परिचय इसी क्रम में प्रस्तुत किया गया है।[2]

इस प्रकार की सकाम या वैधी पूजा इष्ट नहीं प्रत्युत प्रेमाभक्ति का साधन तथा सोपान मात्र है। साधक को यहीं तक नहीं रुकना है। उसे सकाम भक्ति से निष्काम भक्ति या पराभक्ति तक, राजसी पूजा से मानसी पूजा तक पहुँचना है। इस तथ्य की ओर इन पंक्तियों से अच्छा प्रकाश पड़ता है—

पाती फूल जु भाव सों, सह सुगन्ध करि धूप।
कहैं शुकदेव यों कीजिये, पूजा अधिक अनूप॥

नवधा भक्ति सँभार अँग नौ जानिले।
सरवण चितवन और कीरतन मानिले॥
सुमिरण बंदन ध्यान और पूजा करो।
प्रभु सों प्रीति लगाय सुरति चरणन धरो॥
होकर दासहिं भाव साध संगति रलो।
भक्तन की कर सेव यही मत है भलो॥
यह जो मैंने कहा बेद का फूल है।
योग ज्ञान वैराग्य सभन का मूल है॥

---

१. श्री शुकसंप्रदाय सिद्धान्तचंद्रिका : पृ० ८४–८६।

२. इस सूची में परिगणित आचारों की विस्तृत जानकारी के लिए द्रष्टव्य: श्री शुकसंप्रदाय सिद्धान्त चंद्रिका : पृ० सं० ८७–९० तथा पृ० सं० २०७–२१४ तक।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम भक्ति का तात ताप तीनों नसैं।
अर्थ धर्म काम मोक्ष सकल तामें बसैं।।[1]

परन्तु जब तक प्रेमा की स्थिति नहीं आती तब तक तो मूर्तिपूजा षोड़शोपचार विधि से करनी ही है। इसके लिए प्रथमतः भगवान् के साकार विग्रह के विधिवत पूजन का विधान किया गया है। यह प्रतिमा पाषाणमयी, धातुमयी, काष्ठमयी, लिपी हुई, लिखी हुई, मिट्टी या बालुका की बनी हुई, मणिमयी और मनोमयी में से कोई भी हो सकती है। श्रीकृष्ण और राधा के मूर्त्तिस्वरूप को केशर, चन्दन, तुलसी पत्र, पुष्प तथा मालादि चढ़ाना, वस्त्र एवं अलंकारादि से विभूषित करना, नाम जपना, कीर्त्तन करना, नृत्य-वाद्यसहित प्रभु के गुणगान करना, उनसे सम्बद्ध कथा का वाचन करना और जहाँ कहीं ऐसे आयोजन हो रहे हों उनमें सम्मिलित होना आदि मूर्त्तिपूजा के आवश्यक अंग हैं। इनमें भी नामजप का बड़ा महत्व है क्योंकि यह सभी साधनाओं का तत्वरूप है। जो बिना इसके रहस्य को समझें ही नामजप करता है उसके भी सब पाप मिट जाते हैं और जो समझ कर जपता है, वह मुक्ति-पद का अधिकारी होता है।[2]

'श्रीमद्भागवत' में नामजप का बहुत बड़ा गुणगान किया गया है। प्रभु के नामजप से अनेक पातकों के नष्ट होने का तथ्य इसमें उद्घोषित है।[3] इसी के प्रभावस्वरूप श्री चरणदास, रामरूप जी, रामसखी जी तथा अन्य चरणदासी महात्माओं ने नाम महिमा का भूरिशः यशोगान किया है।

मूर्त्ति की प्रतिष्ठा और मन्दिर के निर्माण की भी 'श्रीमद्भागवत' में बड़ी

---

१. भक्तिसागर (अष्टांग योग वर्णन) : पृ० ९ तथा (भक्तिपदार्थ) वर्णन : पृ० २०८।

२. बिन समझें पातक नशैं, समझ जपे हो मुक्त।
चरनदास यों कहत है, जो कोई जाने युक्त।।
अचरज साधन नाम का, भक्तियोग का जीव।
जैसे दूध जमाय के, मथ करि काढ़ा घीव।।
—वही : पृ० २१५–२१६।

३. स्तेनः सुरापो मित्रघ्न ब्रह्महा गुरु तल्पगः।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये चे पातकिनोऽपरे।।
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः।।
—श्रीमद्भागवत : ६।२।९–१०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिमा कही गयी है।[1] मूर्त्ति की पूजा भी त्रिविध बतायी गयी है—(१) अर्चा, (२) मानसीपूजा, (३) आत्मपूजा। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, चरणदास जी के सम्प्रदाय में इन तीनों प्रकार के पूजनों का विधान मान्य है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नवधा भक्ति (जिसमें वैधी भक्ति भी सम्मिलित है) ही जनसाधारण के लिए श्री चरणदास की दृष्टि में उपयुक्ततम साधना मार्ग तथा उपासना पद्धति है। इस मान्यता को आचरणरूप देने का उनका निर्देश इस प्रकार है—

साधो नवधाभक्ति करो रे।
कलियुग में यह बड़ी पदारथ गहि गहि ताहि तरो रे॥
जन प्रहलाद तरो सुमिरन तें बन्दन सों अक्रूर।
चरणकमल की सेवा सेती लक्ष्मी रहत हजूर॥
चन्दन चर्चत हू प्रथिराजा उतरो भव जल पारा।
बलि राजा तन अर्पण कीन्हीं सदा रहैं हरिद्वारा॥
परमदास हनुमत हूँ उबरो उत्तम पदवी पाई।
सखा सुभाव तरो है अर्जुन ताकी महिमा गाई॥
मुक्त भयो है परीक्षित राजा सुनि भागौत पुराना।
श्री शुकदेव मुनी से वक्ता हुए रूप भगवाना॥
ज्ञान योग वैराग्य सबन सूँ प्रेम प्रीति है न्यारी।
चरनदास ने गुरु किरिपा सों साँची बात बिचारी॥
नवो अंग के साधते, उपजे प्रेम अनूप।
रणजीता यों जानिये, सब धर्मन का भूप॥[2]

(६) अष्टयाम सेवा-विधि—इस सम्प्रदाय की पूजा-उपासना-पद्धति निम्बार्क, राधावल्लभी, गौड़ीय तथा हरिदासी आदि वृन्दावनीय समकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में मान्य परम्पराओं का सम्यक् समर्थन करती है। इसमें अष्टयाम पूजा पद्धति का जो विधान किंचित् अन्तर के साथ प्रचलित है, वह इस प्रकार है—

प्रथम याम या प्रहर—उषाकाल में बिस्तर का त्याग, दक्षिण दिशा में शौच के लिए गमन, शरीर में मृत्तिका-मर्दन, गंगा-यमुना के आवाहन मन्त्र सहित कूप, जलाशय या नदी में स्नान, तिलक मुद्रादि तथा स्वच्छ वस्त्र धारण, दण्डवत के साथ मन्दिर में प्रवेश और घंटी बजाकर युगल सरकार को जगाना, बासी

---

१. श्रीमद्भागवत : ११।२०।११–१२।
२. भक्तिसागर (भक्ति पदार्थ वर्णन) : पृ० २०६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल-मालाओं को हटाकर मन्दिर के बर्तनों की सफाई करना, सेवा-पूजा के समय अधिकांशतः मौन धारण तथा शास्त्रीय दृष्टि से अर्घ्य-वस्त्र-पुष्प-सुगन्धि और नैवेद्य सहित पूजन करना आदि इस काल-खण्ड के विहित आचार हैं। पूजनोपरांत अर्पित किये जाने वाले भोग भी ७ प्रकार के बताये गये हैं—(१) मंगल भोग, (२) कलेऊ, (३) श्रृंगारभोग, (४) राज भोग, (५) उत्थापन भोग, (६) सन्ध्या भोग और (७) शयन भोग। ये विभिन्न यामों की पूजा के भोग हैं। इन भोगों को अर्पित करने का भी विस्तृत विधान है। इन भोगों के समानान्तर ही श्रीराधा-कृष्ण युगल की नित्यलीला और दिनचर्या भी चलती है।

द्वितीय प्रहर—शुद्धता से बनी रसोई से राजभोग लगाना, पुष्प आरती उतारना, माला आदि उतार कर शयन कराना आदि इस प्रहर के कर्त्तव्य हैं। हैं। तत्पश्चात् प्रसाद-भक्षण और भगवान के विरह की अनुभूति भी इस प्रहर के आवश्यक आचार हैं।

तृतीय प्रहर—दो घड़ी दिन रहने पर भगवान् का उत्थापन करना, यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो स्नान कराना अन्यथा मुखादि का प्रक्षालन कराना, फलादिक का भोग अर्पण करना और पान का बीड़ा देना, पुष्प-आरती करना, भगवान् के सान्निध्य में कीर्त्तन गान करना आदि इस प्रहर के आचार हैं।

चतुर्थ प्रहर या सन्ध्या काल—इस प्रहर की सेवा में मिष्ठान्न भोग, सन्ध्या-आरती और स्तुति गान आदि करने के पश्चात् ९ बजे रात्रि में शयन भोग अर्पित करना और भगवान् को शयन कराना—पूजा विधान के रूप में मान है।

इस प्रकार चार प्रहर या अष्टयाम की पूजा-उपासना विधि के पालन के अतिरिक्त शरीर एवं मनः शुद्धिः, नास्तिकों से वार्तालाप न करना, लौकिक व्यवहार सीमित रखना, संतोष धारण करना, आवश्यकतानुसार ही धनार्जन करना तथा कोई ऐसा काम न करना जिससे भजन में विघ्न पड़े—ये कुछ अन्य आचार हैं जो निरापद भक्तिसाधना के आवश्यक विधान हैं।[1]

(७) प्रेमस्वरूपा भक्ति और भक्त—आलोच्य संप्रदाय में अनन्या हरिभक्ति ही साध्य मानी गयी है। ऐसे भक्त से अपेक्षा की गयी है कि वह निष्काम हरि-प्रेमी होगा। वह अपने प्रभु में सतत् लौ लगाये हुए उनके स्मरण में तल्लीन रहेगा।[2]

---

१. शुक संप्रदाय सिद्धान्त चन्द्रिका : पृ० ९७–९८।

२. प्रेम लता जब लहरै। मन बिना योग ही ठहरै॥
कोइ चतुर खिलारी खेलै। वह प्रेम पियाला झेलै॥
वह पहुँचे हरि के पासा। यों कहें चरण ही दासा॥

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी अन्य देवी-देवता की ओर उन्मुख नहीं होगा चाहे उस ओर जाने में उसे प्रचुर धन-धान्य और अष्ट सिद्धियाँ ही क्योंन प्राप्त हों। वह हरि के भक्तों से स्नेह रखेगा और किसी भी भय के सम्मुख नतमस्तक नहीं होगा। उसकी रहनी की ओर संकेत करते हुए रामरूप जी का कथन इस प्रकार है—

ध्यान करे प्रभु ओर का, रसना प्रभु का नाम।
गुणावाद गावत रहे, सदा रहे निष्काम॥
लेवे प्रेम बिसाहि कर, देवे शीश अकोड़।
मुड़े नहीं प्रभु ओर सों, यत्न करो कोई क्रोड़।[1]

ऐसा निरभिमानी और अपरिग्रही राजसम्मान, धनागम और स्वर्ग के लोभ को भी ठुकराता है। उसकी सांसारिक कामनाएँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। भक्त स्वभावतः दयावंत होता है और दूसरों को भी बंधनमुक्त करने में रत रहता है। उसके साथ जो कोई भी आकर बैठता है वह भी उसी रंग में रंग जाता है।

इस संप्रदाय में भक्ति जिस रूप में स्वीकार की गयी है वह मूलतः नवधा न होकर 'दशधा भक्ति' है जो इस प्रकार है—(१) श्रवण, (२) कीर्त्तन, (३) स्मरण, (४) चरण सेवा, (५) राजसी और मानसी पूजन, (६) वंदन, (७) आत्मनिवेदन, (८) सख्य, (९) दास्य और (१०) प्रेमा। इनमें भी दास्य और प्रेमा भक्ति पर ही इस संप्रदाय के आचार्यों ने अधिक बल दिया है।

स्वामी रामरूप जी के विचार से भक्ति-साधना में रत व्यक्ति यदि किसी कारणवश पथ-भ्रष्ट जो जाता है तो भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। वह मरणोपरांत पुनः मनुष्य योनि में ही जन्म लेता है और एक, दो, तीन या पाँच मनुष्य-जन्मों के पश्चात् अंततः मुक्त हो ही जाता है।[2] अतः वर्तमान युग में भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ साधना मार्ग है।

पी पी करते दिन गया, रैन गई पिय ध्यान।
बिरहिनि के सहजैं सधै, भक्ति योग अरु ज्ञान॥
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ वर्णन) : पृ० २१०, २१२।

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १२१–२३।

२. करते करते भक्ति के, कभी भ्रष्ट हो जाय।
फिर उत्तम कुल जन्म ले, करे भक्ति ही जाय॥
एक जन्म कै दूसरे, तीन चार कै पाँच।
अंत मुक्ति ही को लहे, भक्ति किये कहुँ साँच॥
—वही : पृ० १४७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति के बिना की गई योगसाधना ही तपस्या कहलाती है, जिससे अभीष्ट की स्थायी सिद्धि संभव नहीं है। बिना भक्ति के ज्ञान-चर्चा करने वाला भी भ्रष्ट ज्ञानी है। वह निश्चय ही एक दिन विषयी होकर अज्ञान-कूप में पड़ेगा। जैसे माता के बिना बालक बिगड़ जाता है वैसे ही भक्ति के बिना ज्ञानी भी दिग्भ्रमित हो जाता है। तात्पर्य यह कि भक्ति के अभाव में योग और ज्ञान, ये दोनों निष्फल हैं। अतः भक्ति सभी साधना मार्गों में शिरोमणि तुल्य है। ऐसी भक्ति से जो वंचित है वह अनेक दुर्गुणों में फँसकर अपना जीवन निरर्थक खो देता है।

भक्ति के निरापद स्वरूप और उसकी सफलता के पक्ष में तर्क देते हुए श्री जोगजीत जी का यह कथन यहाँ विचारणीय है—

औरो सुनो धार मन धीरा। योग ग्यान वैराग शरीरा॥
ये तीनों नररूप हैं, माया नारि स्वरूप।
बिना भक्ति इनको छले, करिले अपने रूप॥

माया भक्ति दोऊ हरि नारी। भक्ति देखि माया बलिहारी॥
नारायण को भक्ति पियारी। तातें माया डरपत भारी॥
पुरुष नारि को देखि लुभाई। नारि न नारि के फंद पराई॥
तातें भक्ति लिये होय तीनों। जाको माया मोह न चीनों॥[1]

इसमें भी प्रेम-भक्ति का विशेष महत्व है। माया के तीव्र प्रवाह से बचने के लिए यह अधिक शक्तिशाली साधन है। जब यह भक्ति प्राप्त हो जाती है या अपना ली जाती है तो साधक चारों प्रकार की मुक्तियों की कामना से भी विरत हो जाता है, फिर सांसारिक भोगों की बात ही क्या है? ज्ञान, योग और वैराग्य का आधार ग्रहण कर शिव सनकादिक भी भटकते रह गये परन्तु हरि की प्राप्ति अंततः भक्ति से ही हुई—

नवो अंग के साधते, उपजे प्रेम अनूप।
रणजीता यों जानिये, सब धर्मन को भूप॥

सब मत अधिकी प्रेम बतावें। योग युगत सूं बड़ा दिखावें॥
प्रेमहिं सूं उपजे वैराग। प्रेमहिं सूं उपजे अति त्याग॥
प्रेम भक्ति सूं उपजे ज्ञाना। होय चांदना मिटै अज्ञाना॥
दुरलभ प्रेम जु हाथ न आवै। हरि किरपा करि दें तो पावै॥
प्रेम प्रीत के वश भगवाना। सकल शास्तर कियो बखाना॥
किसी भक्त हिय प्रेम जो जागे। तौ हरि दरशन रहैजु आगे॥

---

१. लीलासागर : पृ० ३३८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम बराबर योग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम भक्ति बिन साधिबो, सब ही थोथा ध्यान ॥
प्रेम छुटावै जगत कूं, प्रेम मिलावै राम।
प्रेम करै गति और ही, लै पहुँचे हरि धाम ॥[1]

भगवान को भक्ति प्यारी है। भक्ति और प्रेम के क्षेत्र में सब प्रकार का अभेद है। इसमें जाति, धर्म, कुल और आर्थिक विषमता आदि जनित कोई भी भेद मान्य नहीं है। भगवान ने भूतकाल में भी केवल प्रेम ही पहचाना है, अन्य किसी बात पर ध्यान नहीं दिया है। यहाँ चरणदास जी का यह कथन इस तथ्य की पुष्टि करता है—

सुनु रामभक्ति गति न्यारी है।
योग यज्ञ संयम अरु पूजा, प्रेम सबन पर भारी है ॥
जाति बरण पर जो हरि जाते, तौ गणिका क्यों तारी है।
शबरी सरस करी सुर मुनि में, हीन कुचील जो नारी है ॥
टेढ़ी लौंड़ी कंसराज की, दीन्हों रूप करारी है।
एक सूं एक अधिक ब्रजनारी, कुब्जा कीन्हीं प्यारी है ॥
दास कबीरा जात जोलाहा, ब्राह्मणन मिल की ख्वारी है।
बनिजारा होवालिद धरि लाये, ताको करी सँभारी है ॥
साखि सुनी रैदास चमारि सो, सब जग में उजियारी है।
कनक जनेऊ काढ़ि दिखायो, विप्र गये सब हारी है ॥
अजामील सदना तिरलोचन, नामा नाम अधारी है।
धन्नाजाट कालू अरु कूबा, बहुत किये भवपारी है ॥
प्रीति बराबर और न देखै, वेद पुराण बिचारी है।
चरणदास शुकदेव कहत है, ता वश आप मुरारी हैं ॥[2]

ऐसे प्रेमी साधक की स्थिति का निम्न वर्णन द्रष्टव्य है—

सुबकी रोवै होय उदासा। गदगद वाणी कंठ उसासा ॥
कभी मगन ह्वै रूप निहारै। कबहूँ तन की सुरति बिसारै ॥
कबहूँ हँसै जिमी पर लोटै। वाके शरम सकुच नहिं ओटै ॥
कबहूँ अकबक बानी बोलै। कबहुँ अचक रह आँखें खोलै ॥
कबहूँ दृग मूंदे हिये माहीं। बड़ी बार लौं वा सुधि नाहीं ॥

---

१. लीलासागर : पृ० २१०।
२. भक्तिसागर (शब्दवर्णन) : पृ० ३९६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम अवस्था यह कही, को इक पावै संत।
ऐसे प्रेमी भक्त के, वश ही हो भगवंत ॥
भक्तिशिरोमनि सबन में, चतुर सुहागिनि नार।
अपनी अधिकी प्रीति सौं, वश कीन्हें करतार ॥[1]

अपने प्रेमियों तथा भक्तों के लिए ही भगवान को अनेक प्रकार कष्ट उठाने पड़ते हैं। उन्हीं के लिए वे जन्म धारण करते हैं और उनके सदैव ऋणी रहते हैं। यहाँ तक कि कई बार तो उन्हें पशु शरीरधारी भी होना पड़ा। चरणदास जी के भगवान् की यह वाणी यहाँ उद्धरणीय है—

जिनके कारण मैं रच्यौ, अद्भुत यह संसार।
उनही की इच्छा धरूँ, हर युग में अवतार ॥
प्रेमी को ऋणियाँ रहौं, यही हमारी सूल।[2]
चारि मुक्ति दई व्याज मैं, दे न सकौं अब मूल ॥
सर्वस दीन्हीं भक्त को, देख हमारो नेह।
निर्गुण सों सगुण भयो, धरी पशू की देह ॥
मेरे जन मों में रहें, मैं भक्तन के माहिं ॥
मेरे अरु मेरे संत के, कछु भी अंतर नाहिं ॥[3]

(८) प्रेमाभक्ति और सखीभाव—जैसा कि अब तक हम जान चुके हैं चरणदासी संप्रदाय या शुकसंप्रदाय प्रधानतः एक वैष्णव संप्रदाय है न कि निर्गुण संत संप्रदाय। इसमें राधाकृष्ण के युगल रूप की वैधी रीति से उपासना का विधान है। चरणदास जी अवतारवाद, कर्मवाद, भाग्यवाद, जीवन्मुक्ति, सामीप्य मुक्ति, मरणोपरान्त प्राप्य स्वर्ग-नर्क-सिद्धान्त, पुनर्जन्मवाद, मूर्ति या विग्रह पूजा, शास्त्रोक्त लोक-व्यवहार तथा साधना, द्वैताद्वैत वर्णन सिद्धान्त आदि के समर्थक थे। इस संप्रदाय के उपास्य सखी परिकर सेवित राधाकृष्ण युगल हैं। इसमें पुरुषोत्तम तत्व को परात्पर तत्व माना गया है। जिसे चरणदास जी ने ॐ कार तत्व कहा है वह वस्तुतः उनकी व्याख्या के अनुसार नित्य, सगुण और साकार स्वरूप है। उनके द्वारा वर्णित अमरलोक अखंड धाम में राधाकृष्ण की लीला अनवरत हो रही है। इस लीला की सुखानुभूति ही उनका इष्ट है।

जहाँ उन्होंने पुरुषोत्तम तत्व को निर्गुण कहा है वहाँ उनका तात्पर्य यह है कि उसमें माया के गुणों का नितांत अभाव है। इसके साथ ही उसमें दिव्य कल्याण-

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १२७।
२. सूल = उसूल, सिद्धान्त।
३. भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० १९७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी गुणों का सर्वथा अभाव भी नहीं है। यदि वे ऐसा न मानते तो परम तत्व के सगुण वैष्णव रूप की उनकी मान्यता खण्डित हो जाती। उनका इस संदर्भ में यह कथन तर्कसंगत प्रतीत होता है—

वहि निरगुन सरगुण वही, वहि दोनों से न्यार।
जो था सो जाना नहीं, सोचा बारंबार॥
अनन्त शक्ति लीला अनंत, गुण अनंत बहु भाव।
कौतुक रूप अनंत हैं, चरणदास बलि जाव॥
नाम भेद किरिया अनंत, अनंत धरे अवतार।
बीस चार तिनमें अधिक, कहे शुकदेव बिचार॥
राम कृष्ण पूरण कला, चौबीसों में दोय।
निरगुण से सरगुण वही, भक्तों कारण होय॥[1]

जहाँ तक इस संप्रदाय की भक्ति के स्वरूप का प्रश्न है, निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ज्ञान, कर्म और योग से पोषित भगवद्विषयिणी सर्व समर्पणमयी अनन्या रति ही चरणदास जी की भक्ति का आदर्श और काम्य है। भक्तिरहित किसी भी प्रकार की साधना उनकी दृष्टि में व्यर्थ है।[2] उनके नेत्रों में राधा-कृष्ण की जो छवि बसी है, उसी को केन्द्र मानकर अपनी साधना का पथ उन्होंने निर्धारित किया था। वह छवि सखीभाव की भक्ति का उत्प्रेरक है, जो जोगजीत जी के शब्दों में इस प्रकार है—

चौंसठ खंखा मध्य ही, निरखौं अद्भुत ख्याल।
आस-पास निरतें सखी, मध्य लाड़िली लाल॥
अवरज लीला हिये निहारी। ता छबि की कछु अंत न पारी॥
श्री शुक मुख भागौत बखानी। तिनहूँ कहि संक्षेप बखानी॥
पृथ्वी के कणिका गिनि आवै। ता छबि को सो अंत न पावै॥[3]

---

१. भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ वर्णन) : पृ० २०४।

२. रहे अचाह न उपजे चाहा। केवल भक्ति करे हरि लाहा॥
सकल जगत को मिथ्या जाने। हरि बिन भाव न दूजा ठाने॥
भक्ति योग वैराग्य जु ज्ञानी। साधु कर्म यह वेद बखानी॥
औरों सुनो धरो मन धीरा। योग ज्ञान वैराग्य शरीरा॥
ये तीनों नर रूप हैं, माया नारि स्वरूप।
बिना भक्ति इनको छले, करि ले अपने रूप॥
—लीलासागर : पृ० ३३८।

३. वही : पृ० ३२२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भक्ति को पाने के लिए अनन्य शरणागति आवश्यक है।[1] इस प्रकार की कृष्ण-भक्ति का उपदेश और आदेश उन्हें उनके गुरु से प्राप्त हुआ था—

पीत बसन सब राखियो, माटी का रंग होय।
गहियो मत भागवत का, धर्म वैष्णव सोय।[2]

वैष्णव धर्म में भी इस संप्रदाय ने प्रेमाभक्ति या रसिक भाव की भक्ति को ही प्रशस्त माना है। यह भक्ति अपनी सूक्ष्मता और अन्तर्मुखता में रहस्यवाद के निकट तक पहुँच जाती है। यद्यपि यह संप्रदाय से किसी भी प्रकार संबद्ध नहीं था परन्तु उससे प्रभावित अवश्य था। वृंदावन में श्री राधा और कृष्ण के सखी परिकर सहित रास-विलास का जो प्रत्यक्ष दृश्य अपनी वृन्दावन की यात्राओं में चरणदास जी ने देखा था, उनके मस्तिष्क पर उसकी अमिट छाप पड़ी थी। तभी से वे अपने आराध्य श्री कृष्ण से प्रार्थना करने लगे थे—

आस पास बहुकुंज हैं, बीच लाल को धाम।
चरणदास को दीजिये, सखियन में विश्राम॥[3]

इनकी इस इच्छा के मूल में उनका यह स्वानुभव है कि परमपुरुष के स्थान या निवास तक किसी अन्य रूप में पहुँचना अत्यन्त दुर्लभ है। केवल सख्य भक्ति में ही वह शक्ति है कि वह उनके द्वार तक पहुँचा सकती है परन्तु इसके आगे जाना उसके लिए भी अशक्य है। अतः मात्र सखीभाव और सखी रूप ही वह साधन है, जो आराध्य देव के राजमंदिर के भीतर प्रविष्ट होने की क्षमता रखता है। इसलिए उनका यह कथन उपयुक्त है—

सखा भाव पहुँचत वहि ठाईं। सखी भाव भीतर को जाईं॥
धरे स्वरूप अनूपम भारी। सदा सुहागिनि हरि पिय प्यारी॥
परमपुरुष पुरुषोत्तम पावैं। निकट रहैं नित केलि बढ़ावैं॥
चारों मुक्ति तहाँ कर जोरे। भाव बताय तान बहु तोरे॥[4]

श्री चरणदास जी के ही विचारों को उनके शिष्य गुरुछौना जी इस प्रकार व्यक्त कर रहे हैं—

---

१. थाल किया दोऊ हाथ का, धरा शीश तिहि माहिं।
तुम चरणन पर वारिया, मैं कुछ रहा जु नाहिं॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ४८।

२. वही : पृ० ५६।

३. भक्तिसागर (अमरलोक अखंडधाम वर्णन) : पृ० २१३।

४. वही पृ० २१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निज वृन्दावन रंग महल, राजत प्यारी पीय ।
अष्टसखी शोभित टहल, बहुत मंजरी तीय ।।
सखी भाव राधा भजे, सो पहुँचे निज धाम ।।
टहल लहै सामीपता, तब रीझें घनश्याम ।।[1]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सखीभाव की वह साधना इस सम्प्रदाय में प्रशंसित एवं अनुमोदित है, जो प्रेमाभक्ति या उज्ज्वल रस की भक्ति का एक परिष्कृत रूप है ।

चरणदास जी सखी सम्प्रदाय या सखीभाव की भक्ति की ओर उन्मुख थे, इसे सप्रमाण कहा जा सकता है । ऐसा उल्लेख मिलता है कि श्री चरणदास भी कभी-कभी सखीरूप धारण कर लिया करते थे । ऐसे ही एक वृत्त का वर्णन श्री जोगजीत ने इस प्रकार किया है—

शहर पुराने थे इक बारी । आवें तहाँ बहुत नर नारी ।।
सखी भेष चरणदास जु धारे । चूड़ी माँग सिंदूर सँवारे ।।
कर मेहँदी पग कंकण साजें । सखी भेष पट भूषण राजें ।।
कपटी भगल[2] कहैं मन भायो । चरणदास तिया भेष बनायो ।।[3]

इस प्रसंग में ऐसे लोगों की जोगजीत जी ने आलोचना की है, जो उनके गुरु का स्त्री-वेश धारण निन्दास्पद समझते थे । ऐसे तुच्छ बुद्धि के लोगों को चरणदास जी का उत्तर इस प्रकार था—

चरणदास तिनसे कही, पुरुष एक भगवान् ।
हम निश्चय हैं इस्त्री, सब लो साँची मान ।।

चरणदास जी के शिष्य रामसखी जी तो सर्वदा स्त्री वेश में ही रहते थे (यद्यपि इसके लिए कारण भी था) और उनकी साधना भी मुख्यतः सखीभाव की ही थी । उनकी 'भक्तिरसमंजरी' तो सखीभाव की भक्ति का एक सिद्धान्त ग्रंथ ही है । वे इस प्रकार की भक्ति के एक निर्विवाद आचार्य हैं । चरणदास जी के शुकदेवपुरा वाले स्थान में उनकी उपस्थिति में रासलीला के आयोजन होते थे जिसमें वे स्वयं (चरणदास जी) गोपी का वेश धारण करते थे । रामसखी जी प्रायः ऐसे आयोजनों के संयोजक होते थे । उनके द्वारा आयोजित रास में स्त्री और पुरुष—दोनों प्रकार के भक्त समान रूप से भाग लेते थे । उनके कई शिष्य

---

१. अखैराम कृत 'ज्ञानसमूह ग्रन्थ' में गुरु-शिष्य गोष्ठी प्रसंग ।
२. भगल = अपशब्द या निन्दा ।
३. लीलासागर : पृ० २६१ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनकी शिष्य-परम्परा के भक्त अपना एक सखीनाम भी रखते थे। यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण है।

श्री चरणदास के 'भक्तिसागर' में संगृहीत अनेक पदों से उनके सखी साधना के प्रति लगाव का संकेत मिलता है, यथा 'चरणदास सखी पर शुकदेव गुरु कृपा कीनी बाँको सो बिहारी एक पल में दिखायो है।' अथवा 'चरणदास कहै सखी तिहारी मिल जा छानी हो', 'गोपी कहै चरणदास श्याम की सौं सुख हमें दिखायो हो' आदि। उनके होरी, बसन्त, माँझ, सोरठ आदि पदों में इस आशय की अनेक पंक्तियाँ हैं।

श्री रामसखी ने श्री शुकदेव मुनि के भी आठ सखीनाम गिनाये हैं और यह भी बताया है कि ये सूक्ष्मरूप धारण करके सदैव युगल सरकार के सखी परिकर के सतत गतिमान रास-विलास की सहचरी बने रहते हैं। उनके अष्ट सखी नाम इस प्रकार बताये गये हैं—(१) शुकसखी, (२) सुखदा, (३) आह्लादिका (४) कलैवनिका, (५) आनंदा, (६) रसपुंजिका, (७) प्रेमप्रभा और (८) प्रमुदा।[1]

शुक शब्द का अर्थ ही राधा और कृष्ण के संयुक्त रूप का वाचक है। शुक शब्द का मूलार्थ या धात्वर्थ परमानन्द अथवा आह्लाद है। सायुज्य, सामीप्य आदि मुक्तियाँ आनन्ददायिनी होने के कारण इसी अर्थ में समाहित हैं। यह श्री शुकदेव की अन्तर्निहित शक्ति है। इसमें 'स' और 'क' दो वर्ण हैं, जिनमें से प्रथम का अर्थ संधिनी या जोड़ने वाली है और 'क' कृष्णचन्द्र का सूचक है। इस प्रकार शुक शब्द राधा-कृष्ण युगलरूपात्मक है। अतः श्री शुकदेव मुनि का प्रकृत्या सखीभाव की ओर झुकाव है।[2]

इसी सन्दर्भ में उन्होंने चरणदास जी के भी ८ सखीनाम गिनाये हैं, जो अष्टयाम या प्रहर के क्रमानुसार हैं। ये नाम साभिप्राय हैं और सखी या सहचरी या किंकिरी के रूप में की जा रही सेवा के सूचक हैं। उदाहरण रूप में द्वितीय सखी नाम 'गन्धर्वा' इसलिए उन्होंने धारण किया कि इस प्रकार की लीला में चरणदास जी की सेवा गायन द्वारा प्रिया-प्रीतम को रिझाने की थी। इसी प्रकार अन्य नामों के साथ भी विशिष्ट प्रयोजन जुड़े हुए हैं। अस्तु, ये आठ याम के आठ नाम

---

१. जैति जैति जय सुखसखी, सुखदा हित की रूप।
आह्लादिनी कलवेनका, आनंदा जु अनूप॥
रस पुंजा रसरूपिणी, प्रेमप्रभा अभिराम।
अष्टम प्रमुदा नाम शुभ, तिनको कोटि प्रणाम॥
—भक्तिरसमंजरी (पाण्डुलिपि) : दोहा सं० २२-२३।

२. शुकसम्प्रदायसिद्धान्तचन्द्रिका : पृ० ४७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निम्नलिखित हैं--(१) प्रेममंजरी, (२) गन्धर्वा, (३) प्रमोदिनी, (४) मधुरास्वरा, (५) सहजानन्दिनि, (६) गुणप्रकाशिका, (७) जुगतानन्दिनि और (८) प्रमुदमंगला ।[1]

(३) शुक सम्प्रदाय में योग साधना का स्वरूप तथा महत्व—आलोच्य सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री चरणदास ने अपनी प्रेमाभक्तिसाधना की यात्रा योग से ही आरम्भ की थी। यह तथ्य उनके जीवनचरित्र से भलीभांति प्रकट होता है। उन्होंने छः वर्ष की अवस्था में ही योगसाधना का अभ्यास आरम्भ कर दिया था। गुरु-दीक्षा प्राप्ति के पूर्व तक उनका यह अभ्यास अव्यवस्थित तथा अपरिपक्वावस्था में था। शुकतार में गुरु से भेंट होने पर उनसे दीक्षा-प्राप्ति के समय उन्हें इस विषय का व्यापक ज्ञान प्राप्त हुआ। गुरु ने उन्हें अष्टांग योग सहित ज्ञान और भक्ति के भी सभी अंगों का ज्ञान प्रदान किया था।[2]

दीक्षित होकर दिल्ली में वापस आने के उपरान्त उन्होंने उन्नीस से इकतीस वर्ष की अवस्था तक दिल्ली की एक पहाड़ी गुफा में कठोर तपस्या और योग-साधना की। उनके इन बारह वर्षों की योगाराधना के क्रम का विस्तार के साथ वर्णन करते हुए श्री चरणदास के परम विश्वस्त शिष्य श्री जोगजीत इस प्रकार कह रहे हैं—

यम अरु नियम पहिले आराधें। चौरासी आसन फिर साधें ॥
प्राणायाम किया विधि सेती। प्रत्याहार सँभाला हेती ॥
और धारना का अंग धारा। शून्य ध्यान में मन को मारा ॥
अठवीं अंग समाधि लगाई। पाप पुण्य की व्याधि मिटाई ॥

---

१. प्रेम मंजरी[1] नाम है, गन्धर्वा[2] गुणग्राम।
प्रमोदिनी[3] मधुरा स्वरा[4], सहजानन्दिनि[5] बाम ॥
गुणप्रकाशिका[6] जानिये, जुगतानन्दिनि[7] बाल।
प्रमुदमंगला[8] जू सखी, रूप राशि छबि जाल ॥
—शुकसंप्रदाय सि० चं० : पृ० ५१।

२. पहिले भक्तियोग बतलाया। सो सुनि के मन में ठहराया ॥
राजयोग की विधि सब जानी। शुकदेव कृपा सों सब पहिचानी ॥
सांख्य योग दोनों हरि हेता। समझायो सबही था जेता ॥
सुरति योग हठयोग बखाना। चरणदास शिष ने सब जाना ॥
यम अरु नियम जु प्रत्याहारो। ध्यान धारणा पंच अंग धारो ॥
आसन प्राणायाम सु जानो। अष्टम लै समाधि पहचानो ॥
औरो अंग बहुरि समझाये। चौरासी आसन दिखलाये ॥
—लीलासागर : पृ० ९७-९८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँचों मुद्रा भी सधि आई। तीनों बन्ध सधे सुखदाई ॥
महाबन्ध साधा बल जोधा। पाँचों वायु लई परमोधा ॥
प्राण जो और अपान मिलाई। सुषुमन मारग माँहि चलाई ॥

षट् चक्कर को छेद करि, चढ़े गगन को धाय।
परमानंद समाधि में, दसवें रहे समाय ॥[1]

अपने गुरु के इस योगसिद्धि रूप का वर्णन चरनदास जी के शिष्य गुरुछौना जी ने इस प्रकार किया है—

गंग जमुन के बीच, जहाँ निज डेरा दीना।
मन माता बहुरूप, खेंचि अपवस कर लीना ॥
उठा सबद घनघोर, नूर अनहद धुनि बाजा।
जीते पाँच पचीस, भयो सब पूरन काजा ॥
अष्ट जोग कूँ साधि तुम, भये रूप अदभुत बरन।
जन छौना परनाम करि, सु चरनदास तारन तरन ॥[2]

इस विस्तृत भूमिका का लक्ष्य मात्र इतना ही बताना है कि श्री चरणदास द्वारा प्रचारित साधना मार्ग में योग को साधना का अनिवार्य तत्व माना गया है और यह उनकी प्रेमाभक्ति का आवश्यक सोपान है। इस सम्प्रदाय का साहित्य योग सम्बन्धी वर्णनों से भरपूर है। सगुणपरक उक्तियों से भी ज्ञान और योगपरक उक्तियों की मात्रा अधिक है। योग और तज्जनित अनुभूति के वर्णन-विस्तार के कारण सामान्यतया इस सम्प्रदाय को निर्गुण सम्प्रदाय मानने की भूल हो जाती है। इसके साथ ही आलोच्य सम्प्रदाय में ज्ञान और भक्ति की भी प्रसंगतः जी खोल कर प्रशंसा की गयी है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि योग इस संप्रदाय की साधनापद्धति का साधन मात्र है, साध्य नहीं। योग की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि इससे चित्तप्रवृत्तियों के निरोध की सिद्धि होती है। बिना इसके ज्ञान और बिना ज्ञान के भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसीलिये सभी साधना मार्गों में इसकी उपयोगिता निर्विवाद रूप से स्वीकृत है।

अष्टांग योग—योग जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने की प्रक्रिया और उसका साधन है। योग के तीन स्तर होते हैं जो क्रमशः सिद्ध होते हैं। वे स्तर हैं—१. सविकल्प योग, २. निर्विकल्पयोग और ३. कैवल्य या निर्बीज योग। इसी के अनुसार योगी की भी मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति और अतिक्रान्त—

---

१. लीलासागर : पृ० १११–११२।
२. ब्रह्मविद्यासागर (हस्तलिखित प्रति) : पत्र सं० २१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन श्रेणियां हैं। योग ८ प्रकार का होता है जिसे अष्टांग योग की संज्ञा दी गयी है और जिसकी साधना चरणदास जी ने भी की थी। योग के ये आठ प्रकार हैं—१. प्रेमयोग, २. भक्तियोग, ३. सांख्ययोग, ४. ज्ञानयोग, ५. कर्मयोग, ६. हठ-योग, ७. राजयोग और ८. मन्त्रयोग। अपने 'अष्टांगयोग वर्णन' नामक ग्रंथ में चरणदास जी ने विस्तार से इन योगों के कारकों और अनुभूतियों आदि का वर्णन किया है। अपने अन्य ग्रंथ 'योगसंदेहसागर' में भी उन्होंने योग से सम्बद्ध समस्याओं पर प्रश्नोत्तर के ढंग से प्रकाश डाला है। तात्पर्य यह कि योग के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय के महात्माओं की बड़ी ऊँची पहुँच है।

योगांग—योग सम्बन्धी जिन आचार-विचारों पर ध्यान देना और उनके नियमों का पालन करना साधक के लिए आवश्यक माना जाता है उन्हें योगांग कहते हैं। इनकी संख्या भी आठ है—१. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान और ८. समाधि।

(१) **यम**—संत चरणदास की योग सम्बन्धी मान्यताएँ पातंजलयोग-दर्शन की अनुकृति हैं। कहीं-कहीं उन्होंने अपनी मौलिक अनुभूतियों का भी उपयोग किया है। (१) उदाहरण के रूप में कह सकते हैं कि जहाँ महर्षि पतंजलि ने ५ ही यमों का उल्लेख किया है, श्री चरणदास ने इनकी संख्या १० बताई है। यथा—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य, ५. अपरिग्रह, ६. क्षमा, ७. धैर्य, ८. दया, ९. आर्जव और १०. शौच। इनमें से अन्तिम पाँच इनकी मौलिक उद्भावनाएँ हैं। उन्होंने इनका शास्त्रीय वर्णन मात्र ही नहीं किया बल्कि इन्हें अपने जीवन में भी उतारा था और अपने शिष्यों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया था।

(२) **नियम**—इसके अन्तर्गत सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजा, लज्जा या ह्री और जप जैसे आचारों को चरणदास जी ने मान्यता दी है, जब कि पातंजल योग में केवल ५ ही नियम बताये गये हैं।

(३) **आसन**—निश्चल रूप से किसी एक ही स्थिति में देर तक बैठने का अभ्यास आसन कहलाता है। यों तो इनकी संख्या ८४ बताई जाती है परन्तु चरणदास जी ने स्वानुभव के आधार पर सिंहासन और पद्मासन को ही अधिक श्रेयस्कर माना है।[1]

---

१. चौरासी लख आसन जानो। योनिन की बैठक पहिचानो॥
तिनमें दोय अधिक परधानैं। तिनको सब योगेश्वर जानैं॥
—भक्तिसागर (अष्टांग योग वर्णन) : पृ० ७१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) प्राणायाम—योगशास्त्र में आसनों की सिद्धि के उपरान्त ही प्राणायाम-साधना का क्रम आता है। यह मन को साधने या निगृहीत करने का उपाय है। प्राणायाम सम्बन्धी चरणदास जी की मान्यताएँ पातंजल योग के स्थान पर 'शिव संहिता' की मान्यताओं से अधिक मेल खाती हैं।[1]

पूरक, रेचक और कुंभक में चरणदास जी द्वारा निर्धारित मात्राएँ इस प्रकार हैं[2]—

प्राणायाम	पूरक की मात्रा	कुंभक की मात्रा	रेचक की मात्रा
निकृष्ट प्राणायाम में	४	१६	८
मध्यम प्राणायाम में	८	३२	१६
उत्तम प्राणायाम में	१६	६४	३२

(५) नाड़ियाँ—प्राणायाम का सद्यः प्रभाव शरीरस्थ ७२८६४ मानी जाने वाली नाड़ियों या स्नायुमंडलों पर पड़ता है और इससे इनकी शुद्धि हो जाती है। इनमें भी १० नाड़ियाँ प्रधान हैं जिनके नाम हैं—(१) शंखिनी, (२) किरवल, (३) पोषा, (४) नसनी या यशस्विनी, (५) गांधारी, (६) हस्तिनी, (७) लम्बका, (८) पिंगला, (९) इड़ा और (१०) सुषुम्ना। इनमें भी अन्तिम तीन नाड़ियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। चरनदास जी ने इनके स्थानों का भी परिचय दिया है। सुषुम्ना नाड़ी के अधोभाग में स्थित कुंडलिनी के प्रबुद्ध होने में प्राणायाम और नाड़ी साधना का सर्वाधिक योगदान होता है। कुंडलिनी-जागरण अनेक सिद्धियों का माध्यम होता है।

(६) वायु—प्राणायाम-साधना मुख्यतः शरीरस्थ १० वायुओं को नियंत्रित करने में सहायक होती है। १० वायुओं के नाम और उनके स्थान 'अष्टांग योग वर्णन में' इस प्रकार बताये गये हैं—

प्राणवायु[1] हिरदय के ठाहीं। बसै अपान[2] गुदा के माहीं॥
वायु समान[3] नाभि अस्थाना। कंठ माहिं बाई उद्याना[4]॥

१. शिवसंहिता : तृतीय पटल : २४–२६।
२. सोलह मात्रा पूरक लीजै। चौसठ कुंभक में जप कीजै॥
रेचक फिर बत्तीस उतारै। धीरे धीरे ताहि निवारै॥
—भक्तिसागर (अष्टांगयोग वर्णन) : पृ० ७९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यान[५] जु व्यापक है तन सारे। नाग वायु[६] सो उठै डकारे ॥
पलक उघाड़े कूरम[७] बाई। देवदत्त[८] सूँ होय जँभाई ॥
किरवल[९] वायु जू भूख लगावे। मुए धनंजय[१०] देह फुलावे ॥
सब में प्राणवायु मुख जानो। सो हिरदय के मध्य पिछानो ॥[१]

(७) षट्चक्र—श्री चरणदास ने चक्रों की संख्या ६ मानी है—(१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूरक, (४) अनाहत, (५) विशुद्ध और (६) आज्ञा। इन चक्रों का स्थान, रंग, दलों की संख्या, इनके देवता और इनकी आकृति आदि का उन्होंने बड़ी ही स्पष्टता के साथ परिचय दिया है। इनका यह विवेचन मुख्यतः 'शिवसंहिता' पर आधृत है।

कुंभक के आठ भेद उनके द्वारा इस प्रकार बताये गये हैं—(१) सहित, (२) सूर्यदेव, (३) उज्जायी, (४) शीतली, (५) भस्त्रिका, (६) भ्रामरी, (७) मूर्च्छा और (८) केवली। इन सभी का परिचय उनके अष्टांग योग नामक ग्रंथ में द्रष्टव्य है।

(८) अनहद या अनाहत नाद—कुंभक के आठों भेदों के सिद्ध हो जाने पर यह स्थिति स्वयं आ जाती है। संत चरणदास के स्वानुभव के अनुसार जिस प्रकार नाड़ियों में सुषुम्ना, कुंभक में केवल या केवली और मुद्रा में खेचरी श्रेष्ठ है, वैसे ही वाद्यों में अनाहत नाद की स्थिति है, क्योंकि जीव के ब्रह्मत्व की स्थिति का बोध इसी से होता है। उनके कथनानुसार सुषुम्ना अनाहत नाद की माता है, केवल नामक कुंभक उसका भाई है और खेचरी उसकी बहिन है।[२] 'अष्टांगयोग वर्णन' नामक अपने योगनिरूपक ग्रंथ में उन्होंने अनाहत ध्वनि के उत्पन्न होने का क्रम इस प्रकार बताया है—(१) चीं (चिड़िया की ध्वनि), (२) चीं-चीं, (३) क्षुद्र घंटिका, (४) शंखनाद, (५) वीणाध्वनि, (६) तालध्वनि, (७) मुरलीध्वनि, (८) पखावज, (९) नफीरी और (१०) सिंह गर्जन।[३]

---

१. भक्तिसागर (अष्टांगयोग) : पृ० ७३।

२. नाड़िन में सुषमन बड़ी, सो अनहद की मात।
कुंभक में केवल बड़ा, सो वाही का तात ॥
मुद्रा बड़ी जु खेचरी, वाकी बहिनी जान ॥
अनहद सा बाजा नहीं, और न या सम ध्यान ॥
—वही : पृ० ७८।

३. वही : पृ० ७६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) षट्कर्म—यह हठयोग साधक के कर्त्तव्याकर्त्तव्य की विधि संहिता है। 'घेरण्ड संहिता' में वर्णित इन ६ कर्मों के अतिरिक्त चरनदास जी ने ४ और कर्म बताये हैं। इस प्रकार इनकी संख्या १० हो जाती है—(१) धौति, (२) बस्ति, (३) नेती, (४) न्यौली या नौली, (५) त्राटक, (६) कपालभाति, (७) धौंकनी, (८) बाधी, (९) शंखपखाल और (१०) गजकरिणी या गजकर्म। इन सबका उन्होंने बड़ा ही बोधप्रद वर्णन किया है और इनके भेदोपभेदों पर भी प्रकाश डाला है।[1] शुकसंप्रदाय के कई महात्माओं के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्हें गजक्रिया या गजकारिणी सिद्ध थी।

(१०) मुद्रायें—कुंडलिनी जागरण की क्रिया में इन मुद्राओं का बहुत बड़ा योगदान होता है। इन मुद्राओं की संख्या १० मानी गयी है, जो इस प्रकार हैं—

(१) महामुद्रा, (२) महाबन्ध, (३) खेचरी, (४) मूलबंध, (५) उड्डीयान, (६) जालंधर बंध, (७) विपरीतकरणी, (८) बज्रोली, (९) शक्तिचालिनी और (१०) महाबंध। 'घेरण्ड संहिता' में इनकी संख्या २४ बतायी गयी है।[2] जब कि चरणदास जी ने इनमें से केवल खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी और उनमनी—इन्हीं पाँच का विवेचन किया है। इनमें भी उनका सर्वाधिक ध्यान खेचरी मुद्रा पर ही केन्द्रित है। 'अष्टांगयोग वर्णन' में जहाँ अन्य ४ मुद्राओं के लिए १८ छंदों की रचना हुई है, वहीं अकेले खेचरी के लिए २८ छंदों का विस्तार किया गया है।[3]

(११) प्रत्याहार—चित्त के निरुद्ध हो जाने पर जब इन्द्रियाँ भी उसकी वशवर्तिनी हो जाती हैं और जब उसी के अनुसार संचालित होती हैं, तो इस स्थिति को प्रत्याहार की संज्ञा दी जाती है। जहाँ प्राणायाम मन को संयमित करता है, प्रत्याहार से इन्द्रियाँ नियंत्रित होती हैं। इसकी इस स्थिति का निरूपण चरणदास जी द्वारा इस प्रकार किया गया है—

---

१. भक्तिसागर (अष्टांगयोग वर्णन) : पृ० १०४–१०५।

२. महामुद्रा नमोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबंधं महाबंधं महाबंधश्च खेचरी॥
विपरीतकरिणी योनिर्बज्रोली शक्तिचालिनी।
तडागी मांडवी मुद्रा शांभवी पंच धारणा॥
अश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी।
पंचविंशति मुद्रा वै सिद्धिदाश्चैव योगिनाम्॥
—घेरण्डसंहिता–तृतीतोपदेश : श्लोक सं० १–३।

३. भक्तिसागर (अष्टांगयोग वर्णन) : पृ० १०६–११०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोकि रोकि इन्द्रिन को लावै। ध्यान आतमा माहिं लगावै।
जैसे कछुआ अंग समेटै। रंक शीतकाला में लेटै॥[1]

(१२) ध्यान—"इस चंचल एवं दुराग्रही मन को निगृहीत करना बड़ा कठिन काम है, फिर भी अभ्यास और वैराग्य से इसकी सिद्धि सम्भव है"—गीता का यह कथन सार्थक है।[2] इसके लिए ध्यान की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। ध्यान के प्रकार-भेदों के जहाँ योगसम्बन्धी अन्य ग्रन्थों में—(१) निर्गुण-निराकार, (२) सगुण-निराकार, (३) निर्गुण-साकार और (४) सगुण-साकार जैसे नाम बताये गये हैं, श्री चरणदास ने इनका सर्वथा मौलिक नामकरण किया है।

उन्होंने ध्यान के ४ प्रकार बताये हैं—(१) पदस्थ, (२) पिंडस्थ, (३) रूपस्थ और (४) रूपातीत।[3]

(१३) धारणा—किसी विन्दु या वस्तुविशेष पर ध्यान को केन्द्रित करना धारणा है। योगशास्त्र में धारणा के १० स्थान बताये गये हैं—(१) नाभि, (२) हृदय, (३) वक्षःस्थल, (४) कंठ, (५) मुख, (६) नासिकाग्र, (७) नेत्र, (८) भ्रूमध्य, (९) मूत्रस्थान और (१०) प्राण। चरणदास जी ने इससे सर्वथा भिन्न प्रकार से इनका विभाजन किया है। जैसे—(१) पृथ्वी तल की धारणा, (२) जलतत्व की धारणा, (३) पावकतत्व की धारणा, (४) वायु-तत्व की धारणा और (५) व्योमतत्व की धारणा।[4]

समाधि—यह मन की संकल्प-शून्यता, परमानन्द, जीवात्मा-परमात्मा के लय और पूर्णतः अभेद की स्थिति है। इस स्थिति के अनुभव का वर्णन महात्माओं ने अनेकशः किया है। इसके लिए अनेक विशेषण प्रयुक्त होते हैं। स्वयं चरणदास जी ने बड़े विस्तार से इसकी उदात्तता, अलौकिक उपलब्धियों एवं अनुभूतियों का वर्णन किया है।[5] 'घेरण्ड संहिता' में निम्न छः प्रकार की समाधियों का उल्लेख किया गया है—(१) ध्यानयोग समाधि, (२) नादयोग समाधि, (३) रसा-

---

१. भक्तिसागर (अष्टांगयोग वर्णन) : पृ० ९२।

२. असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते॥
—श्रीमद्भगवद्गीता : ६।३५।

३. भक्तिसागर : पृ० ९७–९८।

४. वही : पृ० ९४–९५।

५. जबहीं लगै समाधि योगी आनंद लहै।
योग भया सिध जानि क्रिया कोई ना रहै॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंदयोग समाधि, (४) लयसिद्धियोग समाधि, (५) भक्तियोग समाधि और (६) राजयोग समाधि।[1] चरणदास जी ने केवल तीन ही प्रकार की समाधियाँ मानी हैं—(१) भक्तिसम्बन्धी, (२) योगसम्बन्धी और (३) ज्ञानसम्बन्धी।

भक्तियोग और ज्ञान की, त्रैविध कहूँ समाधि।
गुरु मिलै तो सुगम है, नाहीं कठिन अगाध ॥[2]

मिलि ध्याता अरु ध्यान एक होवै जहाँ।
दूजा रहै न भाव मुक्ति बर्तै जहाँ॥
निरउपाधि निरवेद ऐसा वह देश है।
करम भरम अरु धरम नहीं कोई लेश है॥
—भक्तिसागर (अष्टांगयोग) : पृ० ८६।

१. 'घेरण्डसंहिता' (सप्तमोपदेश) : श्लोक सं० ७–२२।
२. भक्तिसागर : पृ० २०२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स–१) साधना के साधक तत्व—

(अ) गुरुतत्व—'कुलार्णव तन्त्र' में गुरु शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 'गु' शब्द अन्धकार का वाचक है और 'रु' अन्धकार को दूर करने का, इस प्रकार (अज्ञान के) अन्धकार को नष्ट करने के कारण गुरु शब्द का प्रयोग होता है ।[1] एक अन्य स्थान पर गुरु को विष्णुपद का अधिकारी बताते हुए कहा गया है—

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तः रेफः पापस्य वाहकः ।
उकारो विष्णुरित्युक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः ।।[2]

अतः कुलार्णव तन्त्र के अनुसार यदि ध्यान करना हो तो गुरु की मूर्त्ति का ही करना चाहिए और पूजा करनी हो तो गुरु के चरणों की ही करनी चाहिए । उनके उपदेश ही मन्त्र हैं, उनकी कृपा ही मोक्ष है, साधक की सभी क्रियाएँ गुरुमय होनी चाहिएँ । इस प्रकार नित्यप्रति की सेवा से सिद्धियाँ निश्चित प्राप्त होती हैं ।[3] लेकिन गुरु भी कोई जैसा-तैसा व्यक्ति नहीं हो सकता । उसे सर्वागार्थ-तत्वज्ञ, सर्वमन्त्रविधानवित् , लोकसम्मोहक, प्रियदर्शन, देवोपम, सुमुख, सुलभ, स्वच्छ, भ्रमनाशक, प्राज्ञ, तर्कपटु, अन्तर्लक्षी, सूक्ष्मद्रष्टा, सर्वज्ञ, देशकालवित् , निग्रहानुग्रहक्षम, बोधक, शान्त, दयालु, जितेन्द्रिय, षडारिवर्ग-जेता, पात्रापात्र-ज्ञाता, निर्मल, नित्यसन्तुष्ट, साधुप्रिय, शिष्यवत्सल, शिष्यसाधक, राग-द्वेषभय-क्लेश-दम्भादि परित्यागी, स्वविद्यानुष्ठानरत, गुण-दोष-विभेदक और स्वार्थरहित होना चाहिए । तभी वह गुरु पद का अधिकारी हो सकेगा ।

सिद्ध सरहपा ने अज्ञानी गुरुओं को सम्बोधित करते हुए कहा भी था—

जब लौं आप न जानिये, तब लौं सिख न करेइ ।
अन्धा काढ़े अन्ध तिमि, दोऊहिं कूप पड़ेइ ।।[4]

---

१. गु शब्दस्त्वन्धकारस्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकार निरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ।।
—कुलार्णव तन्त्र, प्रथम उल्लास : १७–१ ।

२. कुलार्णवतन्त्र, प्रथम उल्लास : १७।८ ।

३. ध्यानमूलं गुरोः मूर्त्तिः, पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा ।।
गुरुमूलं क्रिया सर्वा, लोकेऽस्मिन् कुलनायिके ।
तस्मात् सेव्या गुरुर्नित्यं, सिद्ध्यर्थं भक्तिसंयुते ।।
—वही : २२।१२–१४ ।

४. हिन्दी काव्यधारा (संपादक—राहुलसांकृत्यायन) : पृ० २ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य यह कि हिन्दी काव्य की निर्गुण और सगुण काव्यधारा ने जिस आध्यात्मिक वातावरण से अपना जीवन-रस ग्रहण किया था, वह गुरुतत्त्व के प्राधान्य से पूर्णतः ओतप्रोत था। इस धारा के प्रारम्भिक सन्तों यथा नामदेव, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी प्रभृति के ऊपर भी इस वातावरण की पूरी छाप पड़ी थी। इसी परम्परा के फलस्वरूप भक्ति सम्प्रदायों में आगे चलकर लगभग १०० से अधिक पन्थ प्रवर्तित हुए।

मध्यकालीन साधना सम्प्रदायों में गुरु की यह महत्ता परिस्थितियों, परंपराओं और आवश्यकताओं की देन थी। गुरु सम्बन्धी मान्यता का मूल हम वैदिक साहित्य से ही खोज सकते हैं। भारत का सारा वैदिक, औपनिषदिक, पौराणिक तथा अन्य प्रकार के समृद्ध तथा वैविध्यपूर्ण साहित्य का अस्तित्व मुख्यतः मौखिक ही रहा है और उसका आदान-प्रदान, संशोधन, परिवर्द्धन भी इसी पर आधारित रहा। सारा ज्ञान गुरुमुख था और उसे योग्य शिष्यों को प्रदान कर उसके प्रचार-प्रसार करने की परम्परा थी अतः उसी समय से गुरु का महत्व निर्विवाद हो गया था। लेखन-कला और साधनों की खोज तथा उनके विकास के बाद भी गुरु का स्थान ज्यों का त्यों बना रहा। इतना अवश्य हुआ कि गुरु को शिष्यों की धर्म भावना से जोड़कर गुरु का स्थान ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य देवी-देवताओं के समकक्ष स्थापित कर दिया गया। इसका उद्देश्य शिष्यों के बीच गुरु की अनिवार्यता और उसकी अलौकिकता का भाव समय की माँग के अनुकूल पैदा करके गुरु की महत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखना था।

इस पृष्ठभूमि में देखें तो आलोच्य संप्रदाय भी इसका अपवाद नहीं है। इसमें भी गुरु का स्थान वही है जो किसी भी गुरुभक्त संप्रदाय में हो सकता है। इस संप्रदाय के कवियों की बानियों का चतुर्थांश तो हम गुरु परतत्व गान में ही समाहित पाते हैं। इस संप्रदाय की गुरुनिष्ठा या गुरु के प्रति दृष्टि पूर्णतः सात्विक, गहन और निर्विवाद है। इस मान्यता का पालन चरणदास जी से लेकर आज तक अर्थात् २०० वर्षों के अन्तराल में भी ज्यों का त्यों बना हुआ है।

सद्गुरु के लिए इस परंपरा के साहित्य में अनेक विशेषणों का प्रयोग मिलता है। चरणदास जी ने गुरु के लिए शूरमा, पारधी (शिकारी), पंजापक्षी, क्रौंच, कछुआ, कुम्हार, कल्पवृक्ष, कामधेनु, गंगा, शशि, सूरज, शिव, ब्रह्मा, विष्णु और परब्रह्म आदि प्रतीकात्मक अभिधानों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार गुरु के उपदेशों के लिए प्रेम का गोला, शब्द बाण, तेग, सेल, नावक का तीर आदि विशेषण उनके साहित्य में प्रयुक्त हैं।[1] चरणदास जी के मतानुसार हरि का स्थान

१. भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० १८७–९५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मदात्री माता से भी १०० गुना अधिक है और हरि से भी सौगुनी अधिक महिमा गुरु की है, अतः हरि और गुरु में यदि चुनाव करना हो तो गुरु को प्रथम स्थान देना उचित होगा। यदि हरि रूठ भी गये तो कोई चिंता की बात नहीं है परन्तु गुरु को रुष्ट नहीं करना चाहिए।[1]

गुरु में अथाह ज्ञान होना चाहिए, ताकि वे योग, भक्ति, ज्ञान और कर्ममार्ग संबंधी शिष्य की किसी भी जिज्ञासा का समाधान कर सकें। यह गुरु का ही बल है कि रामरूप जी निर्भय होकर यह कह सकते हैं—

बचे काल की चोट सूं, यम कूं धक्का दीन।
रामरूप गुरु ज्ञान सूं, माया चेरी कीन॥
बन बन छूटा भटकना, बक बक सुनना कान।
रामरूप आशा तजी, सतगुरु लागा बान॥[2]

सुश्री सहजोबाई ने गुरु की ४ कोटियाँ बताई हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) पारसरूप गुरु, (२) दीपकरूप गुरु, (३) मलयागिरि रूप गुरु और (४) भृंगरूप गुरु।[3] इनमें से प्रथम कोटि के गुरु अपने शिष्य में गुणात्मक परिवर्तन करते हैं और लौहवत शिष्य को स्वर्णवत बहुमूल्य बना देते हैं। दूसरी कोटि के गुरु दीपक की भाँति अज्ञान के अंधकार से आच्छन्न शिष्य को अपने ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। मलयागिरि गुरु क्लेशों और दुर्गुणों से ग्रस्त शिष्य के हृदय को अपने ज्ञानोपदेशों से शीतलता प्रदान करते हैं और चौथी कोटि के गुरु भृंगकीट-न्याय से अपने शिष्य को ताद्रूप्य प्रदान करते हैं।[4]

---

१. माता सों हरि सौगुना, जिन से सो गुरुदेव।
× × ×
हरि रुठे कुछ डर नहीं, तू भी दे छुटकाय।
गुरु को राखो शीश पर, सब विधि करें सहाय॥
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० १९४।

२. मुक्तिमार्ग, गुरुदेव, को अंग, दोहा सं० ३९,६३।

३. सहजप्रकाश : पृ० ५।

४. लोहै कू पारस हो लागे। कंचन करें वेर नहिं ताके॥
सिष पलास चंदन करि डारें। मलयागिरि हो कारज सारें॥
कीट समान शिष्य जो आवे। भृंगी गुरु निज रूप बनावे॥
बिना लोय दीपक शिष परसे। हो दीपक तिनहूँ कूं दरसे॥
बकसे अपनी ज्योति उजारा। होय चाँदना भवन मँझारा॥
चरणदास गुरु समरथ ऐसे। सहजो बाई भाषत जैसे॥
—वही : पृ० ६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु द्वारा दिया हुआ ज्ञान निम्न चारों प्रकार की बुद्धि वालों का संस्कार-परिवर्तन करता है। ये चार प्रकार की बुद्धियाँ हैं—(१) जल-लीक के समान (२) रास्ते की लीक के समान (३) पाहन-रेखा के समान और (४) जल में तेल की बूंद की भाँति। इनमें से प्रथम कोटि के मनुष्यों की बुद्धि में सद्गुरु के उपदेशों का क्षणिक प्रभाव होता है। जिस प्रकार पानी में खींची हुई रेखा तत्काल मिट जाती है, उसी प्रकार ऐसे लोगों के मस्तिष्क में गुरु के उपदेशों का प्रभाव शीघ्र समाप्त हो जाता है।

दूसरी कोटि वालों की बुद्धि पथ की लीक के समान होती है, जो उस पर चलने वालों को उनके गंतव्य तक पहुँचाती है। तीसरी कोटि की बुद्धि पत्थर पर खिंची हुई रेखा के समान होती है, जिस पर गुरु के ज्ञान का यदि प्रभाव पड़ गया तो वह चिरस्थायी जो जाता है। इतना अवश्य है कि उस प्रभाव का विकास नहीं होता। चौथी बुद्धि के लिए सहजोबाई जी का कथन है कि—

चौथी बूंद तेल जलमाँही। फैलत फैलत फैलत जाई।
छोटी से दीरघ परकासे। बरन बरन के रंग निकासे॥
तीन बुद्धि जग में दरसावै। चौथी बुद्धि कोई बिरला पावै॥

इस प्रकार नाना विधि से इस संप्रदाय के महात्माओं ने गुरु-महिमा का गान किया है। इन सबमें, सुश्री सहजोबाई परम गुरुभक्ता के रूप में प्रख्यात थीं। रामरूप जी को गुरु भक्तानंद की उपाधि प्राप्त थी। इस संप्रदाय में अनेक गुरु-भक्त थे जिनका नामकरण ही गुरुछौना, गुरुप्रसाद, गुरुमुखदास, गुरुसेवक आदि के रूप में हुआ था।

यों तो इस संप्रदाय की शिष्य परंपरा के प्रायः सभी कवियों ने अपने-अपने गुरु की स्तुति अवतार मानकर ही की है परन्तु चरणदास को अवतार के रूप में स्थापित करने का इस संप्रदाय के कवियों का सामूहिक प्रयास अपने उद्देश्य में सफल सिद्ध हुआ है। यह अपने आप में उदाहरणीय प्रयास है और अन्य संप्रदाय वालों के लिए चुनौती स्वरूप है।

(आ) निगुरा की स्थिति—मध्यकालीन भारतीय भक्ति साधना के क्षेत्र में पढ़ने-लिखने से ज्ञानी माने जाने की मान्यता को स्वीकृति नहीं मिली थी। ज्ञान और अज्ञान का संबंध स्वानुभूतिजनित और सत्संग से प्राप्त ज्ञान को धारण करने तथा आचरण के भावाभाव से है। यदि पढ़ने-लिखने के बाद भी किसी का आचार-विचार व्यावहारिक एवं साधना क्षेत्र में अपढ़ जैसा ही है और किसी अपढ़ का स्वानुभूति या सत्संग से अर्जित ज्ञान के आधार पर परिष्कृत आचार-विचार है, तो इनमें से प्रथम गँवार या मूढ़ की कोटि में है और द्वितीय को व्युत्पन्न माना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगा। ज्ञानार्जन के लिए स्वाध्याय, गुरु और संतों की संगति मुख्य कारक माने गये हैं। जिन्हें इन तीनों का लाभ नहीं मिला है उनकी दुर्गति का चित्र स्वामी रामरूप के शब्दों में इस प्रकार है—

पै गुरु को ढूंढत नहीं, ऐसे मूढ़ अयान।
राते माते जग विषे, नेकु नहीं पहचान॥
कित सों आया कौन हूँ, किन करमन के बंध।
जन्म दियो है कौन वै, यह नहीं जानें अंध॥

आन देव पूजत फिरैं, धन पुत्तर के हेत।
श्याम करन को चहत हैं, कर नहिं जानें सेत॥
मैली इनकी बुद्धि है, मन है डांवाडोल।
तन बौरा भया विषय में, कहें जु बहकी बोल॥

जग व्योहारन में पगे, छके जो इंद्री स्वाद।
बनजारे हूये फिरैं, आवें जावें लाद॥
रोग भये बहु कष्ट ही, दारुण पावें दुक्ख।
विषय भोग संसार के, कभी न होवे सुक्ख॥[1]

(इ) संप्रदाय के आदिगुरु श्री शुकदेव मुनि—आलोच्य संप्रदाय के आचार्य-कुल परंपरा में (नादकुल परंपरा और बिन्दुकुल परंपरा—दोनों में) श्री शुकाचार्य का स्थान महर्षि वेदव्यास के उत्तराधिकारी रूप में मान्य है। शुकदेव मुनि के प्राकट्य की कथा महाभारत के शांतिपर्व (मोक्षधर्म) में विस्तार से वर्णित है। उन्होंने अपने पिता श्री देवव्यास की कृति 'श्रीमद्भागवत' का पिता से अध्ययन करके राजा परीक्षित को श्रवण कराने के व्याज से उसका जगत् में प्रकाशन किया। ये शुकमुनि अरणी संभूत और अयोनिज हैं। वे नारद, सनत्कुमार, श्री वेदव्यास आदि की भाँति श्रीकृष्ण के आचार्यावतार हैं।

इनके जन्मकाल और स्वरूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए श्रीसरसमाधुरी शरण कहते हैं—

धन्य वैसाख मास मावस तिथि सुख की रास
धन्य सोमवार सर्व सुर नर मुनि जान्यों है।
प्रगट भये स्वयं कृष्ण मुनिको स्वरूप धारि
वेद व्यास को कुमार ऋषिन कहि बखान्यों है।

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १३२–१३३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैस है किशोर चितचोर रसिक चूड़ामणि
मुनिन माहिं महामुनि संतन पिछान्यों है।
कहै सरस माधुरी सुअंग श्याम सुख को
धाम शुकाचार्य सर्वपूज्य मेरे मन मान्यों है ।।[1]

श्री शुकदेव मुनि सर्वदा किशोर रूप और श्याम वर्ण के माने गये हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और मोहक बताया गया है। उनके इस रूप का एक शब्दचित्र स्वामी रामरूप के शब्दों में इस प्रकार है—

नाँगे तन कौपीन बिराजै। श्याम सरूप अधिक छवि छाजै ।।
शीश बावरी घूँघरवारी। नैन बड़े शोभा अति भारी ।।
नैन अरुण माथा दिपे, तेजवन्त अधिकाय।
माधुरी मूरति सोहनी, सोंही लखी न जाय ।।[2]

अन्यत्र वे शुकदेव मुनि का और भी स्पष्ट चित्र दे रहे हैं—

लखो अचानक पुरुष ह्वाँ, लघु तरवर की छाँहि।
किशोर अवस्था साँवरी, तन में बस्तर नाहिं ।।
आसन पदम महा दृढ़ कीये। बैठे नैनन के पट दीये ।।
मन को हरि की ओर लगाये। ध्यान माहिं अस्थिर छक छाये ।।
—आजानु बाहु बिम्ब गोल विराजै। दोऊ हाथ घुटनों पै साजै ।।
मुख दुति गोल अधिक उजियारे। बड़े नैन सुन्दर रतनारे ।।
सनकादिक सम बाबरी राजैं। मधुर सरीर निरखि दुःख भाजैं ।।[3]

इस प्रकार अपने-अपने ढंग से चरणदासी सम्प्रदाय के प्रायः सभी कवियों ने श्री शुकदेव मुनि के रूप और गुणों की चर्चा की है। उनके कथनों के अनुसार शुकमुनि प्रेमाभक्ति या पराभक्ति के आद्याचार्य हैं। वे वैराग्य, जप, तप, ज्ञान और प्रेम-भक्ति के परम आदर्श हैं। वृन्दावन की सहज माधुरी के वे प्रथम उद्गाता हैं।

शुक शब्द के 'स' कार को सखी परिकरयुक्त श्री प्रिया जी या राधा जी का और 'क' कार को श्री कृष्णचन्द्र का वाचक माना गया है। इस प्रकार श्री शुकदेव जी राधाकृष्ण युगल के वाचक हैं। अतः उनका नाम-जप और उनकी पूजा आदि से युगल सरकार की ही उपासना होती है।[4] श्री रामसखी ने उन्हें कहीं

१. शुकसम्प्रदाय सिद्धान्त चन्द्रिका : पृ० २६।
२. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ११।
३. वही : पृ० ४५–४६।
४. शुकसम्प्रदाय सिद्धान्तचन्द्रिका : पृ० ४७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ब्रह्मरूप' कहा है तो कहीं श्रीकृष्ण का स्वरूप। इस सम्बन्ध में उनकी निम्न पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

ब्रह्मरूप शुक जानिए, सच्चिदानंद स्वरूप।

× × ×

साक्षात् श्रीकृष्ण वपु, प्रगटे धरि मुनि रूप ॥[1]

आलोच्य सम्प्रदाय के कवियों ने श्री शुकमुनि की जन्म बधाई, उनके रूप सौंदर्य, सखीरूप, अष्ट सखी नाम, श्री राधाकृष्ण रास परिकर में उनकी अष्टयाम सेवा आदि का विवरण, साधक और नित्य किशोर रूप आदि का भूरिशः वर्णन किया है। इनके ८ से लेकर १०८ तथा एक सहस्र नामों तक की माला रची गयी है। उनके ध्यान रूप और मानसी रूप का भी विशद वर्णन किया गया है। तात्पर्य यह कि श्री शुकदेव के माध्यम से अपने आराध्य राधाकृष्ण के स्वरूप का स्मरण करके इस सम्प्रदाय के कवियों ने हरि और गुरु—दोनों का एक साथ ही स्मरण किया है।

इसी प्रकार 'गुरुभक्तिप्रकाश' में सर्व प्रथम स्वामी रामरूप जी ने चरणदास जी के १०८ नामों की माला प्रस्तुत की है।[1] इसके बाद तो इस सम्प्रदाय में श्री शुकमुनि, श्री चरणदास और अपने-अपने गुरु के १०८ नामों की माला की रचना करने की परम्परा ही बन गई। 'सहस्रनाम स्तोत्र' भी रचे गये, जिनमें इन दोनों आचार्यों के नामों की माला दी गयी है।

(ई) संतजन और सत्संग—साधना के क्षेत्र में गुरु और संत—इन दोनों का बहुत बड़ा योगदान होता है और ये दोनों ही उसके अनिवार्य अंग हैं। दोनों अपने-अपने ढंग से ज्ञानचक्षु का उन्मीलन करते हैं और साधक के मन को मोह-जाल से मुक्त करके उसको धीरे-धीरे हरि की ओर उन्मुख करते हैं। इनकी संगति का सर्वप्रथम प्रभाव यह होता है कि साधक कुबुद्धि और असद्विचारों से मुक्ति प्राप्त करता है। बिना इसके आगे की गति नहीं है। गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान का अभ्यास और उसकी संपुष्टि साधुओं की संगति में ही संभव है।

संसार सागर में डूबते हुए असहाय लोगों के लिए संत एक सुदृढ़ नौका के तुल्य हैं। इससे सज्जन-असज्जन, ऊँच-नीच सभी लाभान्वित होते हैं। संतों की

---

१. भक्तिरसमंजरी (प्रथम प्रकरण) : दोहा सं० १५ और १८।

२. सौ और आठ नाम की माला जन रामरूप कही।

—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० ७२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगति से इस भवसागर के उस पार पहुँचने का पूरा विश्वास रखते हुए सहजोबाई जी कहती हैं—

सत संगति की नाव में, मन दीजे नर नार।
टेक वली दृढ़ भक्ति की, सहजो उतरै पार ॥[1]

साधु अपने आप में समूची फुलवारी हैं, जो उसके निकट जाता है उसे निश्चित रूप से सुगन्धि और शीतल छाया का लाभ मिलता है। यदि साधु वृक्ष है तो उसकी वाणी कली है और उसके सान्निध्य में सतत् चल रही हरि-गुरु चर्चा ही नाना प्रकार की पुष्पावली है, जो मनुष्य को ज्ञान-पिपासा, मनोमालिन्य और शारीरिक-मानसिक रोगों से मुक्त कर देने वाली है। इसमें नाना प्रकार के फल भी लगे हुए हैं—

साधु वृक्ष वाणी कली, चरचा फूले फूल।
सहजो संगति बाग में, नाना फल रहे फूल ॥[2]

सहजोबाई जी की दृष्टि में साधु वह है जो काया को सिद्ध किये हुए है और जिसमें आलस्य, वाद-विवाद, विकलता, कुवाच्य-वाचन एवं लोभ आदि दोष नहीं हैं। साधु पद का अधिकारी वही है जो क्षमावन्त, धैर्यशाली, पंच ज्ञानेन्द्रियों को वश में करने वाला, झूठ वचन एवं आचरण का त्यागी, स्थिरचित्त, लोक-भोग से उदासीन, तन-मन-वचन से सर्वसुखदायी तथा समत्व बुद्धि से युक्त हो। साधु के अन्य लक्षणों में उसका निर्द्वन्द्व, निर्वैर, क्रोधरहित, सहजरूप, संतोषी, निर्मल बुद्धि, पराई वस्तु से नैराश्य, ज्ञान-ध्यान में मग्न रहना, मान-बड़ाई आदि से दूर रहना, कनक-कामिनी का पूर्णतः त्यागी होना आदि गुण भी हैं।[3] सच्चे साधु पुरुष की दिनचर्या सहजोबाई जी की दृष्टि में इस प्रकार होनी चाहिए—

जो सोवै तो शून्य में, जो जागे हरिनाम।
जो बोले तो हरि कथा, भक्ति करे निष्काम ॥
तन को साधे ही रहें, चित्त को राखे हाथ।
सहजो मन को यों गहे, चले न इन्द्रिन साथ ॥
रागद्वेष से रहित नित, वैरागी निर्द्वन्द्व।
सहजो इच्छा ना रही, माया ब्रह्म की संध ॥[4]

---

१. सहजप्रकाश : पृ० ३७।
२. वही : पृ० ३८।
३. वही : ४०–४३।
४. वही : पृ० ४३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी ऐसे साधु या हरिजन को 'चारि बरण सों हरिजन ऊँचे। भये पवित्तर हरि के सुमिरे तन के उज्ज्वल मन के सूँचे'—कह कर समाज में सबसे ऊँचा स्थान देने के पक्ष में हैं। ऐसे संत 'आप तरै तारै औरन को बहुतक पापी पार लगाये'—की स्थिति में होते हैं।[1]

चरणदास जी ने सन्तों की महिमा का गान स्वयं भगवान के मुख से इस प्रकार कराया है—

सन्त हमारे माई बाप। संतहि को मन राखूँ जाप॥
सन्त को ध्यान धरों दिन रैन। संत बिना मोहि परै न चैन॥
सन्त हमारी देही जान। संतहि की राखूँ पहचान॥
सन्तहि हेतु धरूँ अवतार। रक्षा कारण करूँ न बार॥[2]

संतोंका जीवन ही परमार्थ के लिए होता है। वे दिग्भ्रान्तों को सही दिशा का निर्देश करते हैं और अभावग्रस्तों का अभाव दूर करते हैं। यही उनके जीवन की सार्थकता है। रामरूप जी ने उनकी तुलना वृक्ष, नदी, और मेघ से की है, जिनका आविर्भाव समान रूप से सबकी सेवा करने के लिए ही होता है—

वृक्ष नदी अरु मेघजल, ये परमारथ रूप।
रामरूप त्यों साधु हैं, देवे नाम अनूप॥[3]

ऐसे संत भगवन्नाम के दाता, साक्षी रूप, कंचन-कांच को समान रूप से देखने वाले, शीतल स्वभाव के, शांतचित्त, सबके मित्र, स्तुति-निंदा को समान रूप से ग्रहण करने वाले, त्यागी, निरभिमानी, किसी से द्रोह न करने वाले, राव-रंक में समदृष्टि रखने वाले, संतोषी, सच्चे, बेपरवाह, सतत हरिस्मरण में लीन, जग की चाह से रहित और परोपकार-निरत होते हैं।[4]

ऐसे साधु का सत्संग कभी निष्फल नहीं जाता। परन्तु साधु की संगति में रहना शूली के कांटे पर चलने के समान दुष्कर है। तथापि रामरूप जी के विचार से संतों की संगति अवश्य करनी चाहिए। क्योंकि इससे दुर्मति का नाश होता है और सुमति विकसित होती है। वे कहते हैं—

हित सूँ संगति साधु की, रामरूप कर लोय।
दुरमति नाशै सुमति उर, हुरमत दूनी होय॥

---

१. भक्तिसागर (शब्द) : पृ० २८९।
२. वही (शब्द वर्णन) : पृ० ३९२।
३. मुक्तिमार्ग : पृ० २३।
४. वही : पृ० १०४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृथा बन बन भटकना, कबहुँ न मिलहीं राम ।
रामरूप सतसंग बिनु, सबै क्रिया बेकाम ।।[1]

जैसे दूध से मिलकर पानी भी दूधिया रंग का हो जाता है; उसमें कुछ गुणोत्कर्ष भी हो जाता है, वैसे ही सत्संग से जनसाधारण के सामान्य गुणों का भी उदात्तीकरण हो जाता है। जो भी भगवत्शरण में आ जाता है उनमें उज्ज्वल गुणों का अभिनिवेश हो जाता है। कोई उच्चकुल में जन्म लेकर ही क्या करेगा यदि उसमें तदनुकूल गुण नहीं हैं ?[2]

प्रत्येक आत्मोत्कर्ष में लीन व्यक्ति को साधु को घर आता देखकर उसका गद्गद् भाव से स्वागत करना चाहिए और जिस घड़ी साधु का आगमन हुआ उसको, अपने को और अपने भाग्य को धन्य समझना चाहिए। जिसके घर संतजनों का आगमन नहीं होता, उसका घर रामरूप जी के विचार से श्मसान तुल्य है। जहाँ साधु रहते हैं वह भूमि धन्य है; वहाँ दिन-दिन आनंद बढ़ता है और दारिद्र्य का विनाश होता है। जिसने गृहागत साधु का सत्कार नहीं किया उसका जन्म वृथा है—

साधु न आयो पाहुने, नयो न तिनको सीस ।
चरण न धोये प्रीति सूं, डूबो बिस्वे बीस ।।
साधुन की सेवा करे, हित कर पूजे पाँय ।
सुफल जन्म तानैं कियो, जम कूं दियो गँवाय ।।[3]

अन्य साधना संप्रदायों की भाँति आलोच्य संप्रदाय में भी सत्संगति की बड़ी महिमा गयी गयी है। यहाँ तक कि इसे गंगा, पारस, मलयागिरि, चंदन, अमर

---

१. मुक्तिमार्ग : पृ० १०५।

२. नीच ऊँच कुल भेद ना, हरि सुमिरै परवान ।
हरि भक्ता की जाति नहिं, अच्युत गोती जान ।।
हरि सुमिरै ऊँचो भयो, गयो नीच पन दूर ।
रामरूप वा संत की, जाति बखाने कूर ।।
ऊँचे कुल कूं क्या करै, जहाँ न हरिको नाम ।
उज्वल कूंवा जल बिना, रामरूप किस काम ।।
जो हरिजन हो नीच कुल, तो भी उत्तम जान ।
रामरूप शबरी सदन, भक्तों में परमान ।।
—वही : पृ० १०७–१०८।

३. वही : पृ० १०८–१०९

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद की दात्री, जप-तप-संयमादि से श्रेष्ठ, कामधेनु, कल्पवृक्ष आदि तक कहा गया है। इसके समक्ष मुक्ति को भी तुच्छ मानने की राय दी गई है—

साधु संगत सुख एक घड़ी जो मुक्ति न तासु समाना।
इन्द्रादिक सुख तो ता आगे कछू वस्तु नहिं जाना॥
चरणदास कहि रामरूप सूँ यह चित दे सुनि लीजै॥
निज उपदेश यही तोहिं देहूँ संगति माहिं रहीजै॥[1]

(उ) मानव-काया के रहस्य का यथार्थ ज्ञान— संत-महात्माओं की इस दुर्लभ मानव देह-यष्टि के प्रति जो दृष्टि है वह जनसाधारण से सर्वथा भिन्न है। जिसे सामान्य दृष्टि से बड़ा सम्मोहक और सुख-दुःखात्मक कार्यों का मुख्य कारण एवं भोक्ता माना जाता है, वह ज्ञान दृष्टि से देखने पर इससे पूर्णतया भिन्न दिखाई देता है। एक ज्ञानी की दृष्टि में इस शरीर का स्वरूप इस प्रकार है—

जहाँ तहाँ नाड़ी लिपटाई। रुधिर मांस की भीत बनाई॥
त्वचा छाति तेहि ऊपर छाई। कुमति कुबुधि पट दिये लगाई॥
ता माहीं दुर्गन्ध जु आवै। भाँति-भाँति के रोग जनावै॥
भिष्ठा मूतर तासु मँझारा। ता वश होय जन्म सब हारा॥
अज्ञान बुढ़ापा चिंता तामें। ऐसें अवगुण दीखें जामें॥
...तन को कछू भरोसो नाहीं। रहत सदा भव जल के माहीं॥
छिन में डूबे वाहि डुबावे। ताते काहे चित्त लगावे॥[2]

यह शरीर यथार्थतः क्षणभंगुर, बीभत्स, अनाकर्षक, व्याधिमूल और सब प्रकार से अलिप्त होने योग्य है। इस शरीर के लिए हम जिस परिवार, समाज, मित्रमंडल और घर-बार का संग्रह करते हैं, वह भी इतना ही गर्हित है। यह शरीर कभी भी अपना नहीं है। वह क्षण-प्रतिक्षण विनाश की ओर अग्रसर होने वाला अस्तित्व है।[3] इसकी वृत्तियों को वशीभूत करने के प्रयत्न सामान्यतया

---

१. मुक्तिमार्ग : पृ० २१५।

२. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १३१–१३२।

३. पहले बालक फिर हो ज्वाना। सहज सहज बूढ़ो हो जाना॥
बाल अवस्था माँ के बस में। तरुण भये नारी के रस में॥
बूढ़ा भये पुत्र ही थामें। नाना रोग बसत है तामें॥
भय अरु चिंता दुख बहु भारी। याही सों हैं सुत अरु नारी॥
याही लीये फँसत है, कुटुंब जाल के माहिं।
—इन्द्रिन को सुख चहत हैं, सो सुपने हूँ नाहिं॥
—वही : पृ० २२२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असफल ही होते हैं। जिसे संसारी लोग सुख कहते हैं वह घोर कष्ट की प्रतिच्छाया है। बार-बार विषयरस में आसक्त होने के कारण जीव की ८४ लाख योनियों में भ्रमण करने की नियति निश्चित हो जाती है। बार-बार जन्म-मरण के चक्र में फिरना कितना कष्टदायी है, इसका एक चित्र स्वामी रामरूप जी की इन पंक्तियों में देखने योग्य है—

देह प्रीति करि गर्भ मंझारी। आवत है वह बारंबारी॥
ऊपर को पग मुख तल ओरी। मल मुत्तर निश्चय वा ठौरी॥
अग्नि तपावे इकरस आँचा। देह नेह करि दुख में राँचा॥
देह नगरिया बीच ही, बसे क्रोध अरु काम।
रहे मोह मद लोभ ही, नहीं ऊँच का काम॥
हाड़ मास अरु चाम ही, मल मुत्तर जा माहिं॥
रक्त और कफ भरा है, कछू पवित्तर नाहिं॥[1]

इसके आगे की कथा सहजोबाई जी इस प्रकार कह रही हैं—

पापी जीव गर्भ जब आवे। भवन अँधेरे अति दुख पावे।
तल मुंडी ऊपर को पाऊँ। मुख लंगी अरु भिष्ठा ठाऊँ॥
खट्टा मीठा माता खावे। लगे छुरी सी बहु दुख पावे॥
आप दुखी माता दुख पाया। दसें महीने जग में आया॥
जग जंजाल देखकर रोया। नर नारी मिलि सभी भलोया॥[2]

बालक के पैदा होते ही अनेक सामाजिक एवं पारिवारिक संबंध भी अस्तित्व में आ जाते हैं। कोई कहती है कि मैं इसकी माँ हूँ, तो कोई दादी। वह किसी का बेटा है तो किसी का पौत्र। कोई उसका चाचा है तो कोई फूआ। कोई भाई है तो कोई बहिन। इस प्रकार मामा-नाना, मामी-नानी आदि अनेक नाते जन्म लेते ही उसे घेर लेते हैं। इसके साथ ही देवी, देवता, गोत्र, ग्रह, नक्षत्र, टोना-टोटका आदि भी उसके पीछे लग जाते हैं। छुटपन में उसे अनेक रोगों-व्याधियों से भी पीड़ित होना पड़ता है। कुछ बड़ा होने पर उसका मन खेल में अधिक लगता है जब कि पिता-माता और गुरु उसे पढ़ाने के लिए नाना प्रकार की प्रताड़नाएँ एवं प्रलोभन देते हैं। उसकी तरुण अवस्था का एक चित्र द्रष्टव्य है—

मूछ मरोड़ अकड़ता डोले। काहू से मीठा नहीं बोले॥
कहै बराबर मेरी नाहीं। बुद्धिमान कोई या जग नाहीं॥
महादुखी सुख मान लियो है। माँहें अमल अज्ञान पियो है॥

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० २२२–२२३।
२. सहजप्रकाश : पृ० ५५–५६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रव्यहीन सबका मुख जोहै । जाति बरण देखे नहिं को है ।।
बेटी व्याह योग्य घर माहीं । द्रव्यहीन कहु कित सों खाईं ।।[1]

इसी प्रकार वृद्धावस्था में बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ती है । आँखों में जल भरा रहता है, दांत हिलने लगते हैं, पैरों में बात-विकार उत्पन्न हो जाता है, खाँसी और कफ भी कष्ट देते हैं, खों-खों करता हुआ रात भर जागना पड़ता है, दूसरे भी उसके कारण सोने नहीं पाते; सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, लकड़ी हाथ में लेकर झुक-झुक कर उसे चलना पड़ता है और अनेक आधि-व्याधियों से ग्रस्त होकर दुर्दशा झेलनी पड़ती है ।[2] पुत्र-पौत्र भी दुर्गन्ध के कारण उसके आस-पास जाने में झिझकते हैं । कभी सेवा कर भी देते हैं, तो नाक-भौं चढ़ाते रहते हैं । सारे रोम श्वेत हो जाते हैं, देह सूखी लकड़ी के समान हो जाती है और अंततः एक दिन वह इस संसार को छोड़कर चल बसता है । और तब के बाद का एक शब्द चित्र सुश्री सहजोबाई जी इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं—

सहजो मृत्यू आइया, लेटा पांव पसार ।
नैन फटे नारी छुटी, सोंही रहा विहार ।।
घुटर घुटर जब करने लागा । चेतनता सब तन का भागा ।।
सकल कुटुंबी घिर घिर आये । थोथा अपना नेह जताए ।
कोई कहै कछु द्रव्य बताओ । धरा ढँका कुछ कर्ज दिखाओ ।।
वाको सुधि नहिं अपने तन की । यम किंकर मारत है घन की ।।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोच्य संप्रदाय में मानव-काया को केवल पाँच तत्वों और तज्जनित पचीस प्रकृतियों का संघात मानकर इसे आवश्यकता से अधिक महत्व न देने की ही मान्यता स्वीकृत दिखाई देती है ।[4] साथ ही यह सर्वथा उपे-

---

१. सहजप्रकाश : पृ० ६२ ।

२. लागी बिरध अवस्था चौथी । सहजो आगे मौत ही मौती ।।
हाथ पैर सिर कांपन लागे । नैन भये बिन ज्योति अभागे ।।
श्रवणन से कुछ सुनत जु नाहीं । दांत दाढ़ नहिं मुख के माहीं ।।
कंठ रुके कफ बायू घेरी । हाड़ हाड़ सब दुख में पेरी ।।
बात कहै घर बाहर हांसो । कुटुंब दियो मिल पौरी बासो ।।
जिन कारण पचिया दिन राती । प्यार करें नहिं कुटुंब संघाती ।।

३. वही : पृ० ६६ ।

४. पाँच तत्वों की प्रकृतियाँ—
(१) वायु की प्रकृतियाँ —१. चलन, २. वलन, ३. धावन, ४. प्रसारण तथा ५. आकुंचन ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षणीय भी नहीं है क्योंकि मानव काया की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ और अनेक सुकृतियों का परिणाम है।[1] अतः इसकी उपलब्धि को निरर्थक न होने देने के प्रति सतत जागृत तथा प्रयत्नशील रहना चाहिए। क्योंकि यह क्षणभंगुर है और काल गतिशील है।[2]

(ऊ) जगत और विविध सामाजिक संबंधों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान—नित्य ब्रह्म की सृष्टि होकर भी यह जगत अन्ततः अनित्य ही है।[3] ज्ञानी और रहस्य वेत्ता के लिए यह संसार झूठा, स्वप्नवत् एवं भ्रमजाल है जब कि अज्ञानी के लिए यह परम आकर्षक और सत्य है। इसकी अनित्यता के विषय में सहजोबाई की यह उक्ति तर्कसंगत है—

जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस का, पानी अँजुली माहिं॥
धुँआँ का सा गढ़ बना, मन में राख सजोय।
झाँई माई सहजिया, कबहूँ साँच न होय॥
जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस का, पानी अँजुली माहिं॥

---

(२) अग्नि की प्रकृतियाँ —१. क्षुधा, २. तृषा, ३. आलस्य, ४. निद्रा तथा ५. कांति।

(३) आकाश की ,, —१. काम, २. क्रोध, ३. शोक, ४. मोह तथा ५. मद।

(४) जल की ,, —१. वीर्य, २. रक्त, ३. लार, ४. मूत्र और ५. श्वेद।

(५) क्षिति की ,, —१. अस्थि, २. मांस, ३. त्वचा, ४. नाड़ी तथा ५. लोभ।

१. खेलो बसंत अब के सँभार। यह अवसर नहिं बार बार॥
चौरासी लष जोनि बीर। सकल भुगत करि कढ़ो तीर॥
—शब्द काव्य (गो० जुगतानंद कृत) : पत्र सं० ८७, शब्द सं० २०।

२. ओला पाला त्यों तन तेरो। तापर मूरष चहत बसै सो॥
नीर बुदबुदे दूध उफाना। नाचि कूदि फिर जाहिं समाना॥
यों तन यही अचंभो जानो। बिगस जाय छिन माहिं हिरानो॥
—भक्तिप्रबोध (गो० जुगतानंदकृत) : पत्र सं० २७।

३. सहजो जगत अनित्य है, आतम नित्य पिछान।
—सहजप्रकाश : पृ० ८७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे ही जग झूठ है, आतम को थिर जान।
सहजो काल न खा सके, ऐसा रूप पिछान ॥[1]

इस जगत के सबसे बड़े बन्धन कारक हैं—स्त्री-पुत्र, कुल-परिवार, जाति-समाज आदि के सम्बन्ध। वस्तुतः ये सम्बन्ध क्षणभंगुर और स्वार्थपरक हैं। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों और वर्गों के सर्वथा अपरिचित व्यक्ति भी जब एक लंबे मार्ग के पदयात्री होते हैं तो उनमें आवश्यकतावश जान-पहचान और स्वार्थपरक सामयिक सगापन का सम्बन्ध हो जाता है लेकिन कुछ समय बाद अलग-अलग गंतव्य होने के कारण एक दूसरे को सम्बन्ध विच्छेद के लिए बाध्य होना पड़ता है, संसार के पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्धों में भी प्रायः यही स्थिति दिखाई देती है।[2] इन सम्बन्धों के मोह में पड़ा हुआ मानव अपने लक्ष्य और प्राप्य से विरत होकर भारी कष्ट उठाता है। अन्ततः ये सम्बन्ध निस्सार ही सिद्ध होते हैं—

देखो मती इन मूढ़न की नहिं सुमिरत हैं गोपाल पियारो।
मातु पिता सुत आय धरो चित जोबन देखि भयो मतवारो ॥
काल अचानक आवत है सठ ज्यों तीतर को बाज सिधारो।
जुक्तानंद कहै समझ सिताबी हरि के चरन कँवल चित धारो ॥[3]

(ए) आत्मबोध और वैराग्य—भक्ति के दो मुख्य अंग हैं—(१) सुरति और (२) निरति। सुरति या भगवान् के प्रति सुष्ठु रति, तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि साधक में इस संसार के प्रति वैराग्य या निवृत्ति-भाव उत्पन्न न हो। दोनों एक दूसरे के आश्रित हैं। निरति के लिए भी सुरति आवश्यक है, बिना इसके निरति सम्भव ही नहीं। मन को निवृत्त करने के लिए जगत् की रीति-नीति का यथार्थ बोध होना अनिवार्य है। यही ज्ञान की पहचान है। जीवन और जगत् तथा अपने वास्तविक स्वरूप को यथार्थतः जानना ही आत्मबोध का सूचक है। जब आत्म बोध होता है तो सम्बुद्ध साधक पाता है कि इस जगत् का व्यवहार बड़ा ही छलपूर्ण है। इस मायामय दृश्य जगत् के जितने नाते-रिश्ते हैं, सभी

---

१. सहजप्रकाश : पृ० ८७–८८।

२. नाव बटाऊ बहु चढ़े, देस देस के आनि।
वैसे जगत् मिलाप सब, आप आपको जानि ॥
जगत् षेद नित दुषमयी, कहौं तोहिं समुझाय।
रे मूरख नर अंध मति, ताते हरिगुन गाय ॥
—भक्तिप्रबोध (गो० जुगतानंदकृत) : पत्र सं० ३०।

३. जुगतानंद कवित्त : पत्र सं० १५१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वार्थ पर आधारित हैं। अन्त तक कोई साथ देने वाला नहीं है। यहाँ तक कि जिसे जीवनसंगिनी का पद दिया गया है, वह भी अन्तिम यात्रा में साथ छोड़ देती है।[1]

जीव का अन्तिम साथी तो उसका कर्म ही है। अपने कर्म का फल भी मानव को स्वयं ही भुगतना पड़ता है। उसका नाम, गाँव, वंशपरम्परा, कुल आदि अन्ततः काम नहीं आते। यदि परिवार में कोई कुपुत्र पैदा हो गया तो वह सारे कुटुंब को विपत्ति में डाल देता है। मनुष्य जीवन भर कुटुंब और घर-गृहस्थी की सेवा में लगा रहता है पर देह छूटने के बाद उसकी कोई खोज-खबर नहीं लेता—

मेरा मेरा कहते आये। कहत कहत पुनि छाँड़ि सिधाये॥
यह न किसी का कोई न उसका। हरि को भूला था यह जिसका॥
प्रभु बिन और न याको साथी। और सभी अन्तर के घाती॥
अपनी अपनी ओर लगावें। मुक्त होन की राह भुलावें॥
बहुविधि रोग बढ़ावन हारे। भीर पड़े सब हो जा न्यारे॥[2]

इसलिये आवश्यक है कि हम उस परमपिता परमेश्वर को सतत् याद करें जिसने गर्भ-वास में रक्षा की; वहाँ भोजन पहुँचाया और जठराग्नि से गर्भस्थ शिशु को बचाया; सही-सलामत जिसने गर्भ से बाहर निकालकर, माता के स्तन में दूध लाकर सब प्रकार से जीवनदान दिया।[3]

(ऐ) ज्ञानी कौन—रामरूप जी के विचार से ज्ञानी वह है जो ब्रह्म के भेद को जानता है। जिसे यह ज्ञात है कि शरीरस्थ जीवात्मा इन्द्रिय गुणों से अस्पर्शित एवं परे है। ऐसे ज्ञानी की ज्ञान दृष्टि या अन्तर्दृष्टि खुली रहती है और उसकी सुरति उसी परमतत्व में लगी रहती है। ऐसा परमानन्दी जीव मुक्ति के नाम पर भी हँसता है। उसके समक्ष मुक्ति जैसी काम्य वस्तु भी नगण्य है। वह व्यक्ति ज्ञानी है, जो हर्ष, शोक, भय, अहंकार, वासना, सांसारिक विपत्तियाँ, द्वैत भाव और लोभ-मोहादि से पूर्णतः अनासक्त है। जिसे दीर्घायु होने या इन्द्र का सा वैभव प्राप्त करने का कोई लोभ नहीं है। जो सहजानंद में लीन है।

---

१. बाप ददा ताऊ चचा, स्वारथ के सब मीत।
अपने अपने सुख सगे, झूठे नाते प्रीत॥
जीव अकेला आवे जावे। चौरासी में बहु दुख पावे॥
—लीलासागर : पृ० ५७।

२. वही : पृ० ५८–६०।

३. वही : पृ० ६०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धियाँ और स्वर्ग-सुख भी जिसके काम्य नहीं हैं।[1] ज्ञानावस्थित व्यक्ति की स्थिति का एक शब्द चित्र इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

मरने से पहिले मरै, ताहि विनाशै कौन।
पीसे से कैसे पिसे, पानी हो गया लौन॥
ज्ञान अवस्था यह कही, मृतक की ज्यों देख।
चार चरन आश्रमन का, कोई न देखे भेष॥
गुरु-शिष्य वाके नहीं, साहिब नाहीं दास।
काहू सुख को हर्ष ना, दुख पावै न उदास॥[2]

इसके विपरीत ढोंगी ज्ञानियों की स्थिति है, जो जनसाधारण के बीच ज्ञानी बनकर ठगते हैं।[3] उनका ज्ञान मात्र वाचक ज्ञान है और उनकी भक्ति दम्भपूर्ण होती है। उनका अपने मन पर कोई नियन्त्रण नहीं होता परन्तु वे अपने से बड़ा ज्ञानी किसी को नहीं मानते। ऐसे ज्ञान-विमुख फिर भी ज्ञानी का स्वांग रचने वालों के प्रति सुश्री सहजोबाई अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई कह रही हैं—

साधु कहावें जगत् में, चलें दुष्ट की चाल।
दंभ भरे फूले फिरे, बहुत बजावें गाल॥
बे मुख विषयी ज्ञान उचारें। पाँचों जीत न मन को मारें॥
दारा सुत को हरि गुरु जानें। तन मन विषय वास लिपटानें॥
पाप पुण्य को झूठ बतावें। पर नारी परधन चित लावें॥
ऐसे अपराधी बजमारे। तृष्णा काम क्रोध के जारे॥
डूबे लोभ लहर के माहीं। स्वप्ने क्षमाशील हिय नाहीं॥
हिंसा अकस भरी मन माहीं। मुख देखे नहिं सहजोबाई॥[4]

(ओ) ब्रह्मचर्य और नारी-त्याग—आलोच्य सम्प्रदाय के आचार्य श्री चरणदास ने स्वयं तथा उनके प्रायः सभी प्रमुख शिष्यों ने भक्ति साधना के मार्ग में नारी को बहुत बड़ी बाधा के रूप में बताया है और तन-मन से ब्रह्मचर्य का

---

१. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १४३–१४४।
२. वही : पृ० १४४।
३. बाहर कुछ अन्दर कछू, तन उज्ज्वल मन मैल।
बात बनावें जग ठगें, शिष्ट लगावें गैल॥
कैसे होवै ब्रह्म ही, अहंकार बस येह।
ब्रह्मज्ञान मुख सों कथें, आप हो रहे देह॥
—वही : पृ० १४६।
४. सहजप्रकाश : पृ० २३–२४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन करने पर जोर दिया है। यद्यपि साधकों के समक्ष घर-गृहस्थी और उसके केन्द्र में निहित स्त्री साधना के लिए परमावश्यक तत्त्व अर्थात् गृहत्याग तथा वैराग्य-धारण में सबसे बड़ी बाधा के रूप में उपस्थित होती है परन्तु इससे भी बड़ी बात है ब्रह्मचर्य धारण की समस्या, जो मन की स्थिरता और शरीर की स्वस्थता-सबलता से सम्बद्ध है। जब तक मन योग, ज्ञान और भक्ति की साधना में स्थिर नहीं होगा और शरीर साधना-मार्ग की कठिनाइयों को झेलने में सक्षम नहीं होगा, किसी भी साधना पद्धति पर चलकर सफलता प्राप्त करना असम्भव है। चूँकि ब्रह्मचर्य की सिद्धि नारी-सम्पर्क-निषेध से जुड़ी हुई है और नारी, पुत्र एवं परिवारकारक है फलतः प्रकृत्या बंधनमूलक है। अतः योगियों, ज्ञानियों, सन्तों और भक्तों ने नारी को ही सब प्रकार के बन्धनकारक आचार-विचारों का मूल मानकर उसे ही त्यागने की भावना उत्पन्न करने के लिए अपनी बानियों में नारी की जम कर निन्दा की है।[1] यह नारी निन्दा मुख्यतः नारी के कामिनी रूप की है न कि माता रूप की।

नारी जहाँ एक ओर भगिनी और जननी है वहीं दूसरी ओर भोग्या और अनेक अनर्थों की जड़ भी है। यह अनुभव स्वयं गृहस्थों को भी होता है, फिर त्यागियों और मुमुक्षुओं की तो बात ही और है। परन्तु इससे यह नहीं मानना चाहिए कि इस संप्रदाय में नारियों के प्रति किसी प्रकार की घृणा अथवा भेद-दृष्टि थी। यदि ऐसी बात होती तो सहजोबाई, दयाबाई, नूपीबाई, कोकिला बाई, मलनीबाई, मैनाबाई, खुशालाबाई और इसी प्रकार की अनेक उच्चकोटि की भक्त कवयित्रियाँ इस परंपरा में न हुई होतीं। यहाँ तक कि तीन आचार्य गद्दियों में से एक की आचार्या सुश्री सहजोबाई ही थीं, जिनसे यह संप्रदाय आज भी गौरवान्वित है। नारी का कामिनी या भोग्या रूप साधना-मार्ग का सर्वाधिक प्रबल शत्रु है। उसका संपर्क ध्यान-धारणा की सिद्धि में तो बाधक है ही संत-महात्माओं और साधकों के सम्मान को भी प्रभावित करता है। समाज उनसे यह उपेक्षा नहीं करता कि उनके आचार-विचार में भी वही दोष हों जो जनसाधारण में होते हैं। यदि उसकी दृष्टि में गुरु के समान पूज्य साधकों में स्त्री-संग से उत्पन्न दोषों का आगम या आरोपण होता है तो समाज की श्रद्धा को ठेस लगती है और साधना के

---

१. बन्धु नारि सुत कुटुंब सब, यम की फाँसी जान।
तोहिं छुड़ावें राम सूँ, इनका कहा न मान॥
खैंचि पकड़ ह्वाँ राखिहैं, जहाँ मोह का जाल।
जीवत दुख बहु भाँति के, मुये नरक तत्काल॥
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० २७१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति अनास्था का भाव जगता है। अतः उनसे आशा की जाती है कि उनके चरित्र और रूप में लोकोत्तरता अपेक्षाकृत अधिक होगी।

जैसा कि पहले कहा चुका है मन की स्थिरता साधना मार्ग की सबसे बड़ी उपलब्धि है, जो नारी संपर्क से साध्य नहीं है, इसलिये नारी के त्याग के उपदेश के साथ ही ब्रह्मचर्यव्रत के पालन पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है। यह ब्रह्मचर्य शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक स्तर पर भी होना चाहिए। ब्रह्मचर्य के आठ प्रकारों पर प्रकाश डालते हुए संतप्रवर चरणदास जी ने उनके सम्यक् पालन पर जोर दिया है।[1]

कामिनी रूप में नारी के संबंध में सबसे बड़ी चिंता की बात यह है कि वह परिवार-वृद्धि और तज्जनित कर्म-जाल का मूल केन्द्र है। उसी को लेकर मनुष्य समाज से बँधता है, क्योंकि उसका संपर्क सुत-पुत्री का कारण है। जब संतनोत्पत्ति हुई तो कितने प्रपंच उसके साथ ही प्रारंभ हो गये, इसका एक चित्र चरणदास जी के शब्दों में द्रष्टव्य है—

सुत पुत्री बनिता सूँ जानौ। * समधाने वासूँ पहिचानौ ॥
और बँधै बहुतै बँधवार। नाईं ब्राह्मण बहु परिवार ॥
सेढ़ मसानी देवी भूत। ग्रह नक्षत्रहु लगै बहूत ॥
चौथ *अहोई लागे सौन *। तिरिया कारण साजो भौन ॥
औरों बहुत बखेड़े जान। नारी सेती ही पहचान ॥
कहि शुकदेव चरणहि दास। सभी कुटुंब है नरक निवास ॥[2]

---

१. यती होय दृढ़ काँछ गहीजै। वीर्य क्षीण नहिं होने दीजे ॥
मैथुन कहूँ अष्ट परकारा। ब्रह्मचर्य रहे इनसे न्यारा ॥
सुमिरन तिरिया को नहिं करिये। श्रवणन सुरति रूप नहिं धरिये ॥
रस शृंगार पढ़ै नहिं गावै। नारिन सों नहिं हँसै हँसावै ॥
दृष्टि न देखे विष नहिं दौरै। मुख देखै मन हो जा औरे ॥
बात इकन्त करै नहिं कबहीं। मिलन उपाय जु त्यागै सबहीं ॥
स्पर्श जु अष्टम निकट न आवै। काम जीति जोगी सुख पावै ॥
अष्ट प्रकार के मैथुन जानों। इन्हें तजै ब्रह्मचर्य पिछानों ॥
—भक्तिसागर (अष्टांग योग वर्णन) : पृ० ६५।

* समधाने = साज-सामान। सेढ़ = शीतला। अहोई = कार्तिक कृष्णाष्टमी को पूजित होने वाली देवी। सौन = शकुन।

२. भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० २७६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः साधक के लिए या वास्तविक आनन्दान्वेषी के लिए नारी सर्वथा त्याज्य है।[1] इसीलिए चरणदास जी ने अपनी माँ से अपने विवाह का निषेध करते हुए निवेदन किया था—

जो तुमको है पीर हमारी। व्याह सगाई करो निवारी ॥

× × ×

जो माता मो पर हित कीजै। व्याह करन को नाम न लीजै ॥[2]

नारी के प्रति भक्तों के दृष्टिकोण को जोगजीत जी की ये पंक्तियाँ बहुत अच्छी तरह व्यक्त कर रही हैं—

छुटवावे भगवान कूँ, फांसे माया जार ॥ (जाल)
सोच बढ़ावे निसि दिवा, ऐसी दुर्जन नार ॥[3]

गृहस्थ जीवन का एक पहलू यह भी है कि विवाह होते ही घर के लोग देवी-देवता मनाने लगते हैं कि नई बहू की गोदी भरनी चाहिए। बिना संतान के घर में सुख और प्रकाश नहीं है। घर सूना-सूना सा लग रहा है। बिना पुत्र के घर के पित्रों की गति नहीं होगी और वंशपरंपरा नहीं चलेगी। युवावस्था में पत्नी से सुख मिलेगा और वृद्धावस्था में लड़का सहारा होगा—आदि। समाज का यह सामान्य चिन्तन और व्यवहार स्वार्थप्रेरित है। सभी पुराणों में ऐसे ऋषियों की कथा मिलती है जिन्होंने घोर तपस्या के उपरांत भी विवाह किया और संतानोत्पत्ति की। अतः इससे गृहस्थ जीवन का महत्व अवश्य सिद्ध होता है। सभी देवताओं और ऋषियों के साथ कोई न कोई संगिनी जुटी हुई है, फिर सामान्य लोग नारी को त्याज्य कैसे मानें? ब्रह्मा-विष्णु-महेश जैसे श्रेष्ठतम देवताओं के साथ भी नारियाँ हैं। सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग में अनेक ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने अपनी पत्नी सहित तपस्या या साधना करके सिद्धि प्राप्त की है। कबीर, नरहरि, रैदास, जैदेव, नरसी भगत, कालू, कूबा, रंका और बंका आदि अनेक विख्यात भक्त ऐसे हुए, जो मुख्यतः गृहस्थ ही थे।

नारी के बिना घर की शोभा नहीं है; अच्छा भोजन प्राप्त नहीं होता। यहाँ तक कि किसी से ऋण माँगने जाओ तो लोग विरक्त या नारीविहीन व्यक्ति का

---

१. नारि किये दुख बहुत हैं, बन्धन बँधे अनेक।
जो सुख चाहे जीव का, तिरिया कूँ मत देख ॥
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० २७२।

२. लीलासागर : पृ० ६५ तथा ४०।

३. वही : पृ० ४०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास नहीं मानते। नारी और भी अनेक प्रकार से अपने पति की सेवा करती है और उसे सुखी बनाती है। इसीलिए वह जीवन-संगिनी और अर्द्धांगिनी कही जाती है। वह हर सुख-दुःख में साथ देनेवाली होती है।[1]

गृहस्थ जीवन के पक्ष में दिये गये उक्त तर्क के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जिसने नारी को साथ लिया उसने बड़े-बड़े कष्ट उठाये। श्री रामचंद्र, गौतम मुनि, जमदग्नि ऋषि, शृंगी ऋषि आदि इसके उदाहरण हैं। इन सभी को अपनी-अपनी पत्नियों के कारण ही अपमान और कष्ट झेलना पड़ा।[2]

नारी से जुड़ा हुआ यह परिवार एक साधक की दृष्टि में कभी भी अपना नहीं है। सारा कुटुंब-परिवार मूलतः एक ठगसमूह के रूप में है। इनमें भी कंचन और कामिनी–दोनों परस्पर संबद्ध एवं प्रबलतम हैं। अतः चरणदास जी का कहना है कि प्रत्येक कल्याणकामी को सबसे पहले नारी से बचना चाहिए और फिर कंचन से।[3]

(औ) शील और दया— चाहे कोई कितना ही सुन्दर, गुणी और धनवान हो परन्तु यदि उसमें सच्चरित्रता से युक्त शील नहीं है, तो वह सब व्यर्थ है। शील के अभाव में तप, दान, योग, जप-तप, पूजा-संयम-नियम तथा यज्ञ आदि सभी निष्फल हो जाते हैं। जिसमें शील है, जीवनकाल में उसका यश बढ़ता है और मरणोपरान्त उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अतः श्रीचरणदास की अपने शिष्यों और भक्तों को इस संबंध में इस प्रकार का आदेश है—

---

१. जाके साथ होय जो नारी। सोइ कहावैं बहु इतबारी॥
रोग आय तिय छाँड़ि न जावे। लोग लुगाई पास न आवें॥
सुख दुख संग लागी ही रहै। विपता पड़े तो मिलकर सहै॥
अर्ध शरीर और तन सुखदाई। आछी जानो करो सगाई॥
—लीलासागर : पृ० ४२–४३।

२. वही : पृ० ४४।

३. या प्राणी कूँ ठग लगै, सकल कुटुंब परिवार।
तिनमें दो बलवंत हैं, एक द्रव्य एक नार॥
नारि किये दुख बहुत हैं, बंधन बंधे अनेक।
जो सुख चाहै जीव का, तिरिया कूँ मत पेख॥
द्रव्य माहिं दुख तीन हैं, यह तूँ निश्चय जान।
आवत दुख राखत दुखी, जात प्राण की हान॥
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० २७२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शील सरोवर न्हाय करि, करो राम की सेव।
या सम तीरथ और ना, कहिया गुरु शुकदेव।[1]

शील एक व्यापक अर्थ का वाचक है। यह विनम्रता, अनहंकार, मधुरभाषी होना, निर्लोभता, अक्रोध, परोपकारिता तथा निर्वैरता आदि अनेक सद्गुणों का संघात है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, चित्तचांचल्य, मनका मालिन्य, पर-द्रोह और दुःशीलता आदि इसके विरोधी आचार-विचार हैं।

दया—परमार्थसाधक सदाचारों में दया का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है।[2] इससे सर्वभूत के प्रति निर्वैरता का भाव उत्पन्न होता है। दयालु व्यक्ति मनुष्य जाति ही नहीं बल्कि किसी भी स्थावर, जंगम एवं कीट-पतंग तक को पीड़ित नहीं करता। यहाँ तक कि भोजन-पानी ग्रहण करने और वृक्ष-वनस्पतियों की पत्तियों-टहनियों को तोड़ने में भी दया का प्रश्न है।

निर्वैरता, मधुरवाणी, दूसरों को अपने मन-वाणी और कर्म से सुख पहुँचाना, कोमलता का व्यवहार, परपीड़ा का निवारण, सज्जनता, निर्दोषता—ये सब दया के ही अंग हैं।

इसके विपरीत कठोर बचन बोलना, दूसरों को वाणी या कर्म से पीड़ित करना या दूसरों को अपनी अपेक्षा हीन समझ कर उन्हें अपमानित करना, दया के अभाव में हिंसा तथा चोरी आदि भावों से आक्रान्त होना और कथनी-करनी में सामंजस्य का न होना आदि दया के विरोधी आचार विचार हैं। दया का साधक के मन में इतना विकास होना चाहिए कि वह दुर्जन को भी दया का पात्र समझकर उससे दयालुता का व्यवहार करे। दया एक ऐसा मनोभाव है कि इसके समक्ष काम क्रोध-मोहादि स्वयं पलायित हो जाते हैं—

काम क्रोध लोभ मोह ये, गरब आदि भजि जाहिं।
चरणदास कहै दया जो, घट में पहुँचे आहिं॥[3]

(द) साधना के बाधक तत्व—

भक्ति, योग और ज्ञान की साधना में मानव मन के षड्विकार सबसे बड़े बाधक माने गये हैं। वस्तुतः त्रिगुणात्मिका माया का मूल स्वभाव इन्हीं के द्वारा व्यक्त होता है। अतः मायाजित् होने के पूर्व काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और

---

१. भक्तिसागर : पृ० २३४।

२. दया ज्ञान का मूल है, दया भक्ति का जीव।
चरणदास यों कहत है, दया मिलावै पीव॥—वही : पृ० २३५।

३. वही : पृ० २३५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्सर रूपी षड्रिपुओं पर नियंत्रण पाना परमावश्यक है। इनमें भी क्रोध और काम सबसे बड़े विकार हैं, जो मन की रजोगुणी प्रवृत्ति के परिणाम हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्हें शत्रुवत मानने की राय दी है।[1] इनमें से काम या नारी-वासना की चर्चा 'नारी और ब्रह्मचर्य' शीर्षक के अन्तर्गत की जा चुकी है अतः यहाँ इसका पुनर्विचार अनावश्यक है।

(१) क्रोध—अपने 'भक्ति पदार्थ' नामक ग्रंथ में क्रोध को ही चरणदास जी ने सबसे बड़ा चाण्डाल मानकर विकारों में सर्वप्रथम स्थान दिया है। अधिकांश चरणदासी संतों ने इस बहुचर्चित धर्मरिपु से बचने और इसके विनाशक स्वभाव से सावधान रहने की बात में अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन साधना संप्रदायों के महात्माओं की राय का जोरदार समर्थन किया है। चरणदास जी ने क्रोध को महाचाण्डाल, भूत, हत्यारा, नीच, विपरीत बुद्धि उत्पन्न करने वाला, आत्मघाती, अश्लील भाषा का प्रयोग करनेवाला, दूसरों को पीड़ा कारक, सन्मार्ग का विरोधी, कृतघ्न, नर्क में ले जाने वाला, गुरु एवं परोपकारी का भी अहित करने वाला, कमीना और घातक बताते हुए इससे दूर रहने की राय दी है—

क्रोध महाचाण्डाल है, जानत है सब कोय।
—वह बुद्धि भ्रष्ट करि डारै। वह मारहिं मार पुकारै॥
वह गुरु से बोले बेंड़ा। साधों सूं डोलै ऐंड़ा॥
वह नीच कमीना कहिये। ऐसे सूं डरता रहिये॥
वह निकट न आवन दीजै। अरु क्षमा अंक भर लीजै॥[2]

(२) मोह—मोह अज्ञान का परिणाम है और विनाश मोह का परिणाम है। इससे समस्त मानवीय सद्वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इसका जालतंतु बड़ा ही सूक्ष्म, सबल और व्यापक है। यह अपने आकर्षण शक्ति से खींच कर बड़े-बड़ों को अपने जाल में फँसा लेता है और उससे छूटने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।[3] मोह शहद के समान मधुर और चिपचिपा होता है। माधुर्य के

---

१. काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विध्येनं इह वैरिणम्॥—गीता ३।३७।

२. —भक्तिसागर : पृ० २२५।

३. माया मोह बिछाइया, जाल सँभारि सँभारि।
आप आप तामें फँसे, बहुत पुरुष नर नारि॥
छूट सकै नहिं जाल सों, मिरगा ज्यों अकुलाय।
कूद कूद निकसो चहै, ज्यों ज्यों उरझत जाय॥
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० २२६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ इसमें बन्धनकारक गुण भी वर्तमान हैं। मोह जीव को राम से छुड़ाकर पुनर्जन्म और नर्क में ले जाता है।

मोह के सबसे बड़े अभिकर्त्ता (एजेंट), स्त्री और परिवार हैं। उनके साथ ही वस्त्राभूषण, वाहन, धन-संपत्ति आदि भी मोह के केन्द्र हैं।[1] मकान, भूमि और नाम या यश का आकर्षण भी कम प्रभावशाली नहीं होता। मोह ही स्वार्थवृत्ति, पक्षपात, अन्याय, अदूरदर्शिता, बुद्धिभ्रंश, स्वाभिमानहीनता तथा ऐसी ही अनेक अपमानजनक परिस्थितियों एवं मनःस्थितियों का जनक है। अतः यह सर्वथा त्याज्य है। ऐसे लोगों के लिए स्वामी चरणदास का यह उपदेश सार्थक एवं उपयोगी है—

जगत माहिं ऐसे रहो, ज्यों जिह्वा मुख माहिं।
घीव घना भक्षण करै, तौ भी चिकनी नाहिं॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अंबुज सर माहिं।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहिं॥[2]

(३) लोभ—यह मोह का छोटा भाई है और निस्पृहता तथा संतोष का शत्रु है। यह महापाप की खानि तुल्य है। इसका मंत्री असत्य और इसकी पत्नी तृष्णा है। ये दोनों बड़े अधर्मी और अज्ञानमूलक हैं। दंभ, मक्कारी, छल, भ्रष्टता और कलह आदि इसके संगी-साथी हैं।

लोभी व्यक्ति कभी भी भक्त नहीं हो सकता।[3] संतोष, त्याग, सत्य, कलह निवारण वृत्ति अर्थात् मित्रभाव आदि इसके विपरीत आचार-विचार हैं। लोभी व्यक्ति कभी भी किसी का सच्चा हितैषी नहीं हो सकता। लोभी का मन सदा द्रव्य में ही रहता है। लोभी पाप करने और धोखा देने में भी नहीं हिचकता। लोभ सम्मान-विनाशक, दैन्य भाव जागृत करने वाला, बुद्धि और कर्म को भ्रष्ट करने वाला और आत्महंता है। लोभवृत्ति का शमन धैर्य और संतोष से हो सकता है। इसके वास्तविक स्वरूप का चित्र श्री सहजोबाई के शब्दों में इस प्रकार है—

---

१. तिरिया मोह महा बलदायी। मोह संतान सदा दुखदायी॥
द्रव्य लाल अरु हीरा मोती। सब मिलि मोह लगावैं गोती॥
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० २२६।

२. वही : पृ० २२७।

३. लोभी भक्त होय नहिं कबहीं। साधु पुराण कहत हैं सबहीं॥
लोभी सती न होवै शूरा। लोभी दाता संत न पूरा॥
—वही : पृ० १९७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीच लोभ जा घट बसै, झूठ कपट सों काम ।
बौराया चहुँ दिसि फिरै, सहजो कारण दाम ।।
द्रव्य हेतु हरि को भजे, धन ही की परतीत ।
स्वारथ ले सबसों मिलै, अंतर की नहीं प्रीत ।।[1]

चरणदास जी ने अपने शिष्यों से अनेकशः कहा था कि वे किसी से कुछ पाने की आशा न रखें और किसी के आगे हाथ न फैलायें। यदि कोई कुछ देना चाहे तो भी स्वीकार न करें। उन्होंने स्वयं अपने आचरण से इसका (निर्लोभता का) आदर्श प्रस्तुत किया था। उनके कुछ ऐसे भी शिष्य थे जिन्होंने हाथ से भी द्रव्य का स्पर्श नहीं किया और वे आजीवन निस्पृह बने रहे।

(४) अभिमान—यह विनम्रता का विरोधी एवं पतनकारी दुर्गुण है। इसमें ऐंठ, अँकड़, झूठ, कपट, दंभ, उद्दण्डता, अभिनय और अज्ञान की अधिकता होती है। गर्व अनेक कारणों से होता है—यथा रूप, यौवन, धन, प्रभुता, कुल, जाति, विद्या, मद, मात्सर्यजनित आदि। नम्रता को धारण करके इन सबसे उत्पन्न अभिमान का प्रतिरोध किया जा सकता है।[2] 'गुरुभक्तिप्रकाश' की ये पंक्तियाँ यहाँ उद्धरणीय हैं—

जगत् वासना में फँसे, नेक न करे उपाव ।
भूला फूला ही फिरे, हमरा भला बनाव ।।
कबहूँ देखे द्रव्य को, कबहूँ यौवन ओर ।
कबहूँ देखे महल को, कबहूँ अपना जोर ।।
कबहूँ देखे नारि को, सुन्दर अधिक अनूप ।
कबहूँ देखे सुतनको, कबहूँ मितर भूप ।।
कबहूँ अपना कुल लखै, बाप ददा को नाँव ।
उनके अपने किये को, देखे ऊँची ठाँव ।।
ऐसे अभिमानी भये, रहैं जु मन के माहिं ।
लगी मोहता मछरता, निरखैं अपनी छाहिं ।।[3]

---

१. सहजप्रकाश : पृ० ८१ ।

२. मन में लाय विचार कूँ, दीजै गर्व निकार ।
नान्हापन जब आय हैं, छूटे सकल विकार ।।
—भक्तिसागर (भक्तिपदार्थ) : पृ० १९९ ।

३. गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १२८–२९ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) असज्जनता—सज्जनों और उत्तम चरित्र वालों के विरोधी या पर पीड़क प्रत्येक सभ्य समाज में असज्जन की कोटि में माने जाते हैं। ऐसे लोग कुकर्म-जाल में उलझे हुए और वासना के वशीभूत होते हैं। वाणी और कर्म से हिंसक प्रवृत्ति वाले और झूठा व्यवहार करने वाले ये दुष्ट जन समाज के लिए चिंता का विषय होते हैं। दुष्टों की प्रवृत्ति चोरी, परनारीविदूषण, पराई निन्दा और दूसरों के अपमान की ओर अधिक होती है। ये लोग दूसरों को दुःखी देखकर प्रसन्न होते हैं और पापकर्म से भयभीत न होकर उससे आनन्दानुभूति ग्रहण करते हैं। वे स्वभावतः-कंचन-कामिनी के दास तथा छलकपट-झपट एवं परधनापहरण में अधिक रुचि रखने वाले होते हैं।

उन्हें पाप-पुण्य का कोई विवेक नहीं होता। ये गर्व की गद्दी पर विराजमान होकर दूसरों को तुच्छ समझते हैं।[1] इन दुष्टों के कार्य तो कष्टकारी होते ही हैं, साथ ही इनकी वाणी भी कम पीड़ादायी नहीं होती। इनकी वाणी के १२ प्रकारों का उल्लेख सहजोबाई जी ने इस प्रकार किया है—(१) पाहन बोली, (२) कटु बोली, (३) विष-भुजंग बोली, (४) अग्निस्वरूप बोली, (५) अँकड़े-खटक बोली, (६) हिया वेध बोली, (७) तीव्र बोली, (८) झूठी बोली, (९) निर्गुण बोली, (१०) कपट बोली, (११) निंदाप्रद बोली और (१२) डिग-मिगाट बोली।[2]

प्रायः हर देश, काल और समाज में सज्जन और असज्जन दोनों प्रकार के लोग होते रहे हैं। दोनों ही किसी भी समाज के अनिवार्य अंग हैं। इनमें उपयुक्त समानुपात या संतुलन समय-समय पर बनता-बिगड़ता रहता है। तदनुसार ही सबद्ध समाज का सामाजिक और आध्यात्मिक उत्थान-पतन भी होता है।

जहाँ सज्जन व्यक्ति दैवी संपत् या सदाचरणों एवं सद्विचारों की प्रतिमूर्ति होता है वहीं असज्जन या दुष्ट व्यक्ति गर्हित (आसुरी) आचार-विचारों की जीवित समाधि के रूप में होता है। सभी साधना संप्रदाय इस बात से सहमत हैं कि जहाँ सज्जन सत्संग के योग्य है, वहीं दुर्जन और उसकी छाया तक त्याज्य है।

---

१. गद्दी गरब बिछाय कर, तापर बैठे फूल।
आपन को ऊँचा गिनैं, सभी गँवावैं मूल॥
काम क्रोध मोह लोभ का, हित सों पलँग बिछाय।
आशा की डोरी बुनी, सोवत है मन लाय॥
—गुरुभक्तिप्रकाश : पृ० १३१।

२. सहजप्रकाश : पृ० ३५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

जैसा कि इस पुस्तक के 'विषय प्रवेश' में कहा जा चुका है, चरणदासी संप्रदाय (शुक संप्रदाय) का उदय और विकास मुख्यतः सं० १७६० से १९०० वि० के अन्तर्गत आने वाले काल-खण्ड में हुआ है। सं० १७६४ वि० में मुगलवंश के अंतिम सम्राट् औरंगजेब का निधन हुआ, जो भारतीय इतिहास में एक युग-परिवर्तन का सूचक है। सं० १७६० वि० में आलोच्य संप्रदाय के आद्याचार्य चरणदास का आविर्भाव हुआ। सं० १७६० से १८५० वि० के बीच का काल जहाँ मुगलवंश और उसके साथ ही भारत में इस्लामी साम्राज्य के क्रमशः पतन का युग था, वहीं मराठों, सिक्खों और अंग्रेजों के उत्कर्ष का भी युग था। हिन्दू-मुसलमान-मिश्रित तत्कालीन समाज और संस्कृति में पश्चिम की सभ्यता अंग्रेजी शक्ति के माध्यम से भारत में अपना स्थान बना रही थी। ऐसे ही संक्रान्ति काल में स्वामी चरणदास ने योग, ज्ञान और कर्म से सम्पुष्ट भक्तिमार्ग का अवलम्बन ग्रहण कर जनता में अपने धर्म और पारम्परिक जीवन मूल्यों के प्रति पुनर्जागरण का सन्देश सुनाया। उन्होंने निर्गुण काव्यधारा के सन्तों, नाथपन्थी परम्परा के योगियों और वैष्णवों की कालोचित मान्यताओं के साथ नवधाभक्ति तथा वृन्दावन की रसिक साधना को सम्मिलित करके एक सर्वथा प्रासंगिक साधनामूलक आचार-विचारों और जीवन मूल्यों की स्थापना की, जो तत्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पूर्णतः उपयुक्त थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी के जीवनकाल में तथा उसके पश्चात् हुए उनके शिष्य-प्रशिष्यों, शिष्य-परम्परा के अन्यान्य सन्त-महन्तों तथा सामान्य अनुयायियों में प्रायः यह मान्यता स्वीकृत थी कि वे श्रीकृष्ण के अंशावतार हैं। उन्हें ५ वर्ष की अवस्था में पुराणप्रसिद्ध मुनि श्री शुकदेव ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर भक्तिमार्ग में नियोजित किया था। पुनः १९वें वर्ष की आयु में किशोर रणजीत को शुकताल (शुक्रताल, मुजफ्फरनगर) में उन्होंने विधिवत दीक्षा प्रदान करके उन्हें श्यामचरणदास नाम प्रदान किया। ये शुकदेव मुनि इस सम्प्रदाय में स्वयं भी श्रीकृष्ण के एक ऐसे विशिष्ट स्वरूप माने गये हैं, जो चिरकिशोर, श्याम वर्ण एवं योगिराज रूप में सर्वदा अव्याहत गति वाले हैं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इस बुद्धिवादी एवं तर्कप्रधान युग में अधिकांश लोगों को ये बातें अविश्वसनीय लगती हैं परन्तु इस सम्प्रदाय के कवियों, अनुयायियों और आचार्यों ने इन तथ्यों को इतने पुष्ट प्रमाणों से यथार्थ सिद्ध किया है कि सहसा उनकी बातों की उपेक्षा असम्भव प्रतीत होती है।

चरणदासी सम्प्रदाय अपने पूर्व विस्तार की अपेक्षा क्षेत्र संकोच की ओर अग्रसर होने पर भी आज एक जागृत, संगठित और आचारनिष्ठ साधना-सम्प्रदाय है। इसकी पारम्परिक मान्यताओं पर बिना खूब सोचे-विचारे कोई आपत्तिजनक बात कहना तथा बिना किसी ठोस प्रमाण का आधार लिये इस सम्प्रदाय की आचार-विचार सम्बन्धी मान्यताओं के लिए अश्रद्धा और अविश्वास का आश्रय ग्रहण करना अनावश्यक विवाद को निमन्त्रण देने के तुल्य है। सामान्य बुद्धि से जो तथ्य अविश्वसनीय हैं, वे मुझे भी वैसा ही न लगे हों, ऐसी बात नहीं है। परन्तु जब यह देखा जाता है कि श्री चरणदास के समकालीन, उनके अन्तेवासी तथा प्रबुद्ध शिष्य श्री रामरूप, जोगजीत, जसराम उपगारी, सुश्री सहजोबाई, दयाबाई जी, गुरुछौना जी, गो० जुगतानन्द जी आदि तथा कतिपय अन्य शिष्य-प्रशिष्यों ने अपनी रचनाओं में एक जैसी ही बातें लिखी हैं तो वे पूर्णतः अविश्वसनीय कैसे कही जा सकती हैं? चरणदास जी के तीन वरिष्ठ शिष्यों (स्वामी रामरूप जी, जोगजीत जी तथा जसराम उपगारी) ने क्रमशः 'गुरुभक्ति-प्रकाश', 'लीलासागर' और 'भक्ति बावनी' नामक कृतियों में अपने सम्प्रदाय का इतिहास प्रस्तुत किया है। इन सबने चरणदास जी और उनके गुरु श्री शुकदेव मुनि को श्रीकृष्ण का अंशावतार, अलौकिक महापुरुष, त्रिकालदर्शी तथा चमत्कृत करने वाली सिद्धियों से युक्त चित्रित किया है। इनके कथनों का खण्डन होता हो ऐसी कोई पारम्परिक कृति मेरे देखने में अब तक नहीं आयी है।

श्री जोगजीत ने 'लीलासागर' में तथा रामरूप जी ने 'गुरुभक्तिप्रकाश' में अपने गुरु चरणदास जी के उदात्त, एवं लोकविस्मयकारी चरित्रों का और उसके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही अपने गुरुभाइयों का भी इतना विशद वर्णन किया है कि उसमें कथित तथ्यों को सहसा निराधार या अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: यही दोनों कृतियाँ ऐसी हैं, जो अपने सम्प्रदाय और साथ ही युग का समग्र चित्र प्रस्तुत करती हैं। इन दोनों कृतियों में भी 'लीलासागर' के द्वारा हमें चरणदास जी के अतिरिक्त उनके १०८ शिष्यों में से लगभग ९० शिष्यों का लघु-दीर्घ परिचय प्राप्त होता है। रामरूप जी का 'गुरुभक्तिप्रकाश' यों तो केवल १५–१६ गुरुभाइयों का ही वृत्त अंकित करता है परन्तु इसे चरणदासी सम्प्रदाय का सर्वप्रमुख सिद्धान्त-व्याख्याता या सिद्धान्त-प्रतिपादक एवं आधारभूत ग्रन्थ माना जा सकता है। श्री जसराम उपगारी कृत 'भक्तिबावनी' सहित ये तीनों आकर ग्रन्थ अपने सम्प्रदाय के प्रादुर्भावकालीन ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का एक स्पष्ट चित्र अंकित करने में पूर्णतः सक्षम हैं। चूंकि ये तीनों ही चरणदास जी के लोकविश्रुत शिष्य थे अतः उनके द्वारा वर्णित वृत्तों और तथ्यों को अप्रामाणिक मानना तब तक उचित नहीं है, जब तक कि उनके द्वारा अंकित वृत्तों को खण्डित करने वाले तथ्य उपलब्ध नहीं होते।

चरणदास जी के जन्म और कर्म की दिव्यता, उनके लोकोत्तर चरित्र की उदात्तता, उनकी सिद्धियों तथा तज्जनित चमत्कारों आदि की विस्तृत गाथाएँ आदि उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में पाठकों के मन में श्रद्धामिश्रित चमत्कृति एवं श्रद्धा का भाव उत्पन्न करती हैं। जो नादिरशाह जैसे दुर्दान्त एवं क्रूर आक्रामक को नतमस्तक कर दे, अहमदशाह अब्दाली की सेनाओं द्वारा समूची दिल्ली के लूटे जाने पर भी उससे अपने समृद्ध आश्रम की रक्षा करने में सफल रहा हो, जिसके चरणों में तीन मुगल बादशाहों, अनेक नवाबों-सूबेदारों तथा राजस्थान, हरियाणा और पंजाब के अनेक राजाओं के मस्तक झुके हों, उसको साधारण मानव कैसे माना जाय? जिसने अपने सम्पर्क में आने वाले बड़े-बड़े अहम्मन्य पण्डितों, ज्ञानगर्वित निर्गुनियों, सिद्धियों के बल पर सन्त्रासकारी चमत्कार प्रदर्शित करने वाले नाथ सिद्धों एवं कनफटा योगियों, उद्दण्ड नाथपन्थी साधुओं, प्रचण्ड शास्त्रार्थकारी सूफियों और एक मात्र तलवार के बल पर इस्लाम को स्वीकार करने का दम भरने वाले कठमुल्लों को भी अपने चरण चूमने को बाध्य कर दिया था, क्या ऐसे साधक के प्रति हमारे मन में श्रद्धा का भाव नहीं पैदा होता?

यह सोचने की बात है कि सन्त चरणदास में वह कौन सी शक्ति थी, जिसने समाज के हर वर्ग, वर्ण, स्तर और क्षेत्र के स्त्री-पुरुषों को अपनी ओर खींचा। उनकी विशाल शिष्यमण्डली में राममौला जैसे कन्धार के निवासी सूफी फकीर थे, तो शामली के योगी विद्यानाथ जैसे नाथपन्थी थे, मधुवनदास जैसे नागा थे,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीदास एवं जैदेवदास जैसे वैष्णव महात्मा थे, रामधड़ल्ला तथा सात समदे (डाकू) जैसे लुटेरे थे, चरणधूर-चरणखाक और चरणरज जैसे विनम्र किसान थे, श्यामशरण बड़भागी, हरिप्रसाद जी, जीवनदास जी तथा गुरुछौना जी जैसे अनेक सम्भ्रान्त नागरिक थे, पूर्णप्रताप जैसे राजकुमार थे तथा सहजोबाई, दयाबाई जैसी अत्यन्त प्रबुद्ध साध्वियों का समाज था। उनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा उदाहरण तो यह है कि सं० १८३८ वि० में जयपुर नरेश सवाई महाराज प्रतापसिंह के निमंत्रण पर जब उन्होंने जयपुर की यात्रा की थी उस समय उनके साथ ३० हजार साधु तथा अन्य श्रद्धालु सज्जन उनकी मण्डली में सम्मिलित थे। तत्कालीन अनेक राजपूत, मुगल, सिक्ख, मराठा, जाट और पठान सेनानायकों, शासकों, सूबेदारों मनसबदारों, मुसाहबों, अमीरों और वजीरों के अतिरिक्त फकीरों, मौलवियों, पण्डितों, सौदागरों, दुकानदारों, नागरिकों, ग्रामीणों तथा समाज के प्रायः हर वर्ग एवं स्थिति के लोगों के साथ ही जब परम भयंकर विदेशी आक्रमणकारियों और हिंस्र पशुओं को भी हम चरणदास जी के समक्ष विनयावनत देखते हैं तो मानना पड़ता है कि वे कोई युगावतार अथवा युगपुरुष अवश्य थे। वस्तुतः वे अपने आप में एक महापुरुष नहीं बल्कि एक समष्टि थे। वे ज्ञानियों में पूर्ण ज्ञानी, योगियों में परम योगी, भक्तों में महान् भक्त, कर्मयोगियों में उच्च कोटि के कर्मयोगी, रसिक कृष्णभक्तों में प्रिया-प्रीतम परिकर की अन्तरंगिनी सखी-रूप में, शिष्य मण्डली में आदर्श गुरु, मार्गदर्शक एवं उपदेष्टा के रूप में, गृहस्थों में एक सामान्य सेवक तथा सहायक के रूप में, विरक्तों में परम विरक्त, भूपों में भूप और कंगालों में उनसे बढ़कर अकिंचन थे। जिसके व्यक्तित्व के इतने रूप हों उसका वास्तविक रूप क्या था, यह कहना कठिन है।

स्वयं चरणदास जी तथा उनके शिष्यों में सहजोबाई, दयाबाई, गुरुछौना जी, रामरूप जी, गो० जुगतानन्द जी, दाताराम जी, भगवानदास, हरीदास, बेगमदास, दासकुँअर, आतमराम इकंगी, प्रेमगलतान और ठंडीराम आदि की बानियों के आधार पर निष्कर्षतः क्या यह नहीं कहा जा सकता है कि इस सम्प्रदाय का मुख्य साधना मार्ग क्या है? प्रथम बार सर जार्ज ग्रियर्सन ने इस सम्प्रदाय को वैष्णव मत बताया था।[1] परन्तु हिन्दी साहित्य के किसी भी विद्वान् ने उनके मत का समर्थन नहीं किया। प्रायः सबने, यहाँ तक कि चरणदास जी के सम्बन्ध में प्रथम बार स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना करने वाले डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने भी

---

१. जेम्स हेस्टिंग्स द्वारा सम्पादित : 'इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स'—भाग ३ में सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन का एतत्सम्बन्धी लेख : पृ० ३६५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें सन्त या निर्गुनिया और इनके संप्रदाय को ज्ञानाश्रयी सन्त शाखा के अन्तर्गत माना है।[1] इतना अवश्य है कि चरणदास जी तथा उनके शिष्यों की रचनाओं में जब अधिकांशतः श्रीकृष्णलीला सम्बन्धी बानियों का ही प्राधान्य पाते हैं तो डॉ० दीक्षित स्वयं भी उलझन में पड़ जाते हैं और अपने ग्रन्थ में परस्पर विरोधी बातें कहने लगते हैं। इस ग्रन्थ में चरणदास जी के विषय में उनकी स्थिति साँप-छँछूदर की-सी हो गई है। इसका मुख्य कारण सम्भवतः यह है कि हिन्दी के विद्वानों के समक्ष या तो बेलवेडियर प्रेस–इलाहाबाद से प्रकाशित चरणदास जी, सहजोबाई जी और सुश्री दयाबाई की निर्गुणपरक बानियों के संग्रह रहे हैं अथवा अधिक से अधिक चरणदास जी का 'भक्तिसागर' नामक ग्रन्थ रहा है। थियोसोफिकल सोसाइटी, लाहौर ने सन् १८८०–१८९० ई० के बीच इस सम्प्रदाय के कुछ वाणी संग्रहों को प्रकाशित किया था, जिनमें 'ब्रह्मज्ञानसागर' और 'ब्रह्मविद्यासागर' विशेष उल्लेखनीय हैं, परन्तु इनमें मुख्यतः निर्गुणपरक बानियों का ही संग्रह किया गया था। यही कारण है कि इस सम्प्रदाय के मूल सिद्धान्तों के विषय में व्यापक भ्रम पनपता चला आया और विद्वानों ने इस सम्प्रदाय की मौलिक कृतियों को देखने का कष्ट नहीं उठाया।

यदि इस सम्प्रदाय के साहित्य और सिद्धान्तविवेचक ग्रन्थों का सम्यक् अनुशीलन किया जाय तो सैकड़ों बार यह तथ्य सामने जायेगा कि इस सम्प्रदाय का नाम शुकसम्प्रदाय है। इसके आचार्य श्री चरणदास हैं और इसके प्रादुर्भावकर्त्ता श्री शुकदेव मुनि हैं। चरणदास जी का दिल्ली स्थित 'अस्थल' (आश्रम) इस सम्प्रदाय का गुरुद्वार (गुरुद्वारा) है। यह सम्प्रदाय श्रीमद्भागवतानुमोदित वैष्णवी भक्ति (सरस वैधी भक्ति) को अपने साधना-सिद्धान्त के रूप मानता में है। राधाकृष्ण युगल इसके आराध्य हैं और श्रीमद्भागवत इसका आधारभूत ग्रन्थ है। वृन्दावन, शुकतार, डहरा तथा बहादुरपुर इसके मुख्य तीर्थस्थान हैं,[2] परन्तु वैष्णवों

---

१. सन्त चरनदास (डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित) : हिन्दुस्तानी एकेडेमी–प्रयाग, सन् १९६१ ई०।

२, सम्प्रदाय शुकदेव की, आचारज रणजीत।
द्वारे निकस अनेक ही, भक्ति प्रकट कर दीत॥
जै जै श्री शुकदेव, सम्प्रदा तासु कहाई।
भागवत धर्म बखान, जगत में भक्ति चलाई॥
शिष्य कियो रणजीत, सर्वगति ईश अचारज।
भये अभय बहु जीव सबन के सारे कारज॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मान्य सभी तीर्थ, नदियां, उपासनास्थल और पवित्र पर्व इस सम्प्रदाय में सम्मिलित हैं।

इस संप्रदाय को ज्ञान, योग और कर्म तीनों साधना मार्ग स्वीकार हैं परन्तु नवधा या दशधा भक्ति तथा उसके भी आगे प्रेमाभक्ति इसका विशेष रूप से इष्ट है। अतः ये सभी प्रेमाभक्ति के सोपान, उपकरण तथा सहायक रूप में ही ग्राह्य हैं। स्वयं चरणदास जी ने लगभग ४० वर्षों तक कठोर तपश्चर्या और योगसाधना की थी। अन्ततः वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि योग साधना का अभ्यास मन की चंचलता को नियंत्रित करने, शरीर को स्वस्थ एवं दीर्घायु बनाने, इन्द्रियों को वशीभूत करने तथा चमत्कारों की सिद्धि प्राप्त करने के साधन रूप में चाहे जितना उपयोगी क्यों न हो परन्तु इससे भगत्प्राप्ति दुर्लभ है क्योंकि इस मार्ग में काय-क्लेश, विचलन एवं अनेक प्रकार की न्यूनताएँ वर्तमान हैं।

इसी प्रकार उन्होंने अथर्ववेद और सभी उपनिषदों के अनुवाद करने तथा वेदांत-पोषित विचारों के सम्यक् मनन के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला था कि इनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञानमार्ग तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में श्रेयस्कर नहीं रह गया था। ज्ञानमार्ग में स्वभावतः अनेक प्रत्यूह और कठिनाइयाँ तो हैं ही, साथ ही इसमें माया के प्रति स्खलनशीलता अत्यधिक है। अतः यह भी सुरक्षित साधना मार्ग नहीं है। इसे केवल भक्ति-साधना के सहायक रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है। अपने वैराग्यमूलक गुण के कारण ही यह उपयोगी है परन्तु यही चरमलक्ष्य या प्राप्य नहीं हो सकता। भक्ति के लिए योग और ज्ञान अनिवार्य नहीं हैं, फिर भी यदि ये सोपान के रूप में रहें तो इससे अधिकाधिक लाभ संभव है। इनसे भक्ति-साधना और अधिक निखरती है।

यह सम्प्रदाय पाँचवीं, द्वारे हैं बहु भाँति ही।
रामरूप लागो सरन, जब मन आई शांति ही॥

—मुक्तिमार्ग : पृ० २९८।

तथा

सम्प्रदाय शुकदेव मुनि, भक्ति अनन्य अकाम।
मत भागवत अपेल दृढ़, ताको कोटि प्रणाम॥
गुरु द्वारो चरणदास को, पीत बसन अभिराम।
तुलसी कंठ ग्रीवा जुगल, माल ललित छबि धाम॥
चिन्ह चन्द्रिका नाम प्रिय, श्री तिलक बिच भाल।
जपिये मुख निसदिन सदा, श्री राधा बल्लभ लाल॥

—भक्तिमंजरी (प्रथम प्रकरण) : दोहा सं० २५२–५४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी की भक्ति संबंधी परिकल्पना के भी कई स्तर हैं। योग और ज्ञान से होकर प्रेमाभक्ति की ओर अग्रसर होती हुई साधना के पथ में सर्वप्रथम नवधा भक्ति सोपान के रूप में प्रस्तुत होती है। अतः भक्तिमार्गी शिष्यों एवं अनुयायियों को सबसे पहले चरणदास जी के इस उपदेश का पालन करना आवश्यक बताया गया है —

नवधा भक्ति सँभार, अंग नव जानि ले।
श्रवण चिंतवन और, कीर्तन मान ले॥
सुमिरन बंदन ध्यान और पूजा करो।
प्रभु सों प्रीति लगाय सुरति चरणन धरो॥
होकर दास ही भाय साध संगति रलो।
भक्तन की करि सेव यही मत है भलो॥[1]

चरणदास जी के जीवन-काल में ही उनके १०८ शिष्यों ने अपनी स्वतंत्र गद्दियाँ स्थापित कर ली थीं, जो पूर्व में बंगाल के मुर्शिदाबाद से लेकर पश्चिम में कन्धार एवं काबुल तक, उत्तर में हरिद्वार से लेकर दक्षिण में नागपुर तक फैली हुई थीं। इनमें भी ५२ बड़ी गद्दियाँ और ५६ (कुछ लोग ५७ मानते हैं) छोटी गद्दियाँ कहलाईं। सं० १८३९ वि० में जब चरणदास जी की इहलीला समाप्त हुई उस समय उनके विरक्त शिष्यों की संख्या उनके शिष्य जसराम उपगारी की 'भक्ति बावनी' के अनुसार ५००० थी और गृहस्थ शिष्यों की संख्या अगणित थी। बड़ी गद्दियों में चरणदास जी के सर्वाधिक योग्य और निकटतम तीन शिष्यों की दिल्ली-स्थित गद्दियों को 'आचार्य गद्दी' की उपाधि प्राप्त हुई थी। ये गद्दियाँ सुश्री सहजोबाई, रामरूप जी और गो० जुगतानंद की थीं। इनमें भी अधिकाधिक साहित्य सृजन एवं शिष्य संख्या में प्रसार करके प्रथम स्थान प्राप्त करने की होड़ थी, जो चरणदास जी के परमधाम पधारने के उपरान्त भी कई वर्षों तक बनी रही। अन्ततः गोसाईं जुगतानंद को 'महन्तान् महंत' की मान्यता चरणदासी संप्रदाय ने प्रदान की।

इस तीनों आचार्य गद्दियों ने अन्य बड़ी-छोटी गद्दियों का व्यवस्था और समन्वय की दृष्टि से अच्छा संगठन किया। आगे भी इन गद्दियों के शिष्यों और उनकी शिष्य-परम्परा ने स्थान-निर्माण या नई-नई गद्दियों की स्थापना का क्रम जारी रखा। फलतः सं० १९०० वि० तक चरणदासी गद्दियों की संख्या १५०० तक पहुँच गई। चूँकि दिल्ली की आचार्य गद्दियों को गुरुद्वारा की मान्यता प्राप्त थी, अतः उनके द्वारा अपने सम्प्रदाय की उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र में फैली इन

१. भक्तिसागर : पृ० १८०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्दियों का नियमन होता रहा और इन सबसे सम्पर्क बना रहा। सन् १८५७ ई० (सं० १९१४ वि०) में हुए गदर में सक्रिय रूप से सहभागिता के कारण यह सम्प्रदाय अत्यधिक प्रभावित हुआ और इसकी प्रगति मन्द पड़ गई तथा केन्द्रीय नियन्त्रण भी शिथिल हो गया। इस सम्प्रदाय के अनेक मठ-मन्दिर उजड़ गये, उनके पुस्तकागार और वैभव के साधन छिन्न-भिन्न हो गये। यह ऐसा झटका था जिससे उबरने में इस सम्प्रदाय को लगभग ५० वर्ष लग गये।

दिल्ली की आचार्य गद्दियों द्वारा चरणदास जी का जन्मोत्सव, निर्वाणोत्सव, बसन्त पंचमी तथा इसी प्रकार के अन्य वर्षोत्सव मनाये जाते थे, जिनमें निकट के तथा दूरस्थ थांभों के महन्त अपनी साधु मण्डली के साथ उपस्थित होते थे। इस प्रकार इन महात्माओं का परस्पर मिलना-जुलना, सत्संग और विचार विनिमय होता रहता था।

इसके अतिरिक्त किसी नये महंत की गद्दीनशीनी अथवा पुराने महंत की मृत्यु के पश्चात् आयोजित सत्रहवीं के समय इस सम्प्रदाय के प्रायः सभी महंतगण आमन्त्रित होते थे। दिल्ली की आचार्य गद्दियों के महंतों द्वारा इन आयोजनों में उपस्थित महंतों का लेखा-जोखा तैयार करके सुरक्षित रख लिया जाता था। इसी व्यवस्था ने 'सं० १८३९ से २०४० वि० तक के बीच की लगभग २ शताब्दियों की अवधि का इतिहास सुरक्षित रखा है। अन्यथा विभिन्न गद्दियों का वृत्त और इस सम्प्रदाय का समग्र चित्र प्राप्त होना अत्यन्त कठिन होता।

स्वयं चरणदास जी, उनके १०८ प्रमुख बानाधारी एवं गद्दियों के संस्थापक शिष्यों और इन शिष्यों की शिष्य परम्पराओं ने सम्प्रदाय के संवर्द्धन, प्रचार-प्रसार, सिद्धान्त-निरूपण और अन्य प्रकार के विकास कार्यों के साथ ही साहित्य-सर्जन के प्रति भी अनुकरणीय कर्त्तव्य निष्ठा का परिचय दिया। उन्होंने केवल साधना सम्बन्धी, साम्प्रदायिक तथा उपदेशमूलक साहित्य रचकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझी हो, ऐसी बात नहीं है। इस परम्परा में हुए सिद्धान्त-निरूपकों तथा काव्य रचयिताओं में लगभग २०० ऐसे कवि हुए जिनकी रचनाओं को ललित साहित्य एवं शुद्ध काव्य की कोटि में स्थान दिया जा सकता है। आजकल एक प्रथा सी चल पड़ी है कि सन्तों या भक्तों द्वारा रचित साहित्य को उपदेश-मूलक, योग, ज्ञान या भक्तिप्रधान तथा असाहित्यिक कोटि का काव्य मानकर उसे बिना पढ़े ही साहित्य कहे जाने के अधिकार से खारिज कर दिया जाता है, अथवा यह कहकर उसे किनारे रख दिया जाता है कि आज के सन्दर्भों में जो रोटी-रोजी के साधन रूप में उपयोगी न हो वह अप्रासंगिक है। इस मनोवृत्ति का शिकार नवयुवक एवं तथाकथित बौद्धिक वर्ग वस्तुतः अप्रासंगिकता की आड़ में अपने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञान, पढ़ने-लिखने के प्रति रुचि का अभाव और अपनी अकर्मण्यता को छिपाने का एक अच्छा एवं सम्मानजनक साधन मानने लगा है। इनके साथ ही कुछ स्वनामधन्य आचार्य भी झंडा लेकर निकल पड़े हैं जो किसी भी रचना को बिना पढ़े या उसके निकट गये ही कह देते हैं कि यह साहित्य की कोटि में परिगणित होने योग्य नहीं है। इसी मनोवृत्ति का परिणाम आज यहाँ तक प्रकट हुआ है कि अब सूर-तुलसी का साहित्य भी साहित्य की कोटि में और पठन-पाठन के क्षेत्र में कब तक बना रहेगा, यह कहना कठिन हो गया है।

विद्वत् समाज में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो समूचे मध्यकालीन साहित्य या मध्यकालीन शैली के साहित्य को कूड़े में फेंक देने के पक्षधर हैं। जब श्री जयशंकर 'प्रसाद', मुंशी प्रेमचंद या अज्ञेय पर एक-एक सौ शोध प्रबंध लिखे जा सकते हैं तो गड़े मुर्दे उखाड़ने, पाण्डुलिपियों को खोज-खोजकर उन्हें पढ़ने, उनके अर्थ और उद्देश्य को व्याख्यायित करने तथा इस प्रकार के कार्यों में आँख फोड़ने और माथापच्ची करने की क्या आवश्यकता है? यह स्थिति बड़ी ही अराजकतापूर्ण है। इस पर साहित्य में रुचि रखने वाले तथा इस क्षेत्र में काम करने वाले समझदार लोगों का चिन्तित होना स्वाभाविक है। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि अप्रासंगिकता का फतवा देने या सस्ती नारेबाजी से दूर रहकर अनुशीलन और अध्ययन-मनन में रुचि रखने वाले यदि मुट्ठी भर लोग भी सन्त, भक्ति और रीति आदि पुरातन कहे जाने वाले साहित्य के उद्धार में अपने-आपको खपाते रहेंगे तो यह हिन्दी साहित्य की बहुत बड़ी सेवा होगी। वैसे भी खोजियों, मर्मियों, नवोन्मेषियों, मनीषियों और सच्चे अर्थ में विद्वान् कहे जाने वाले व्यक्तियों की संख्या अधिक नहीं हुआ करती। यदि दो-चार गिने-चुने लोग भी इस दिशा में प्रवृत्त बने रहे तो यह बहुत बड़ी साहित्य सेवा कही जायगी।

आज ऐसे ही खोजों तथा अनुशीलन में रुचि रखने वालों के लिए मतलब की सूचना यह है कि चरणदासी सम्प्रदाय में हुए लगभग २५० कवियों की कृतियों का अब तक पता चल चुका है। इतने ही कवियों की रचनाएँ अभी तक शोध्य बनी हुई हैं। इस विशाल साहित्य-भंडार का अपना एक स्वतंत्र इतिहास बन सकता है। जब कि स्थिति यह है कि चरणदास जी, सुश्री सहजोबाई, दयाबाई और अखैराम जी के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय का अन्य कोई भी कवि हिन्दी साहित्य के इतिहास में उल्लिखित नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस सम्प्रदाय का अधिकांश साहित्य इसके विभिन्न कालों और स्थानों में हुए महन्तों द्वारा रचित है। उनकी वाणियाँ अपनी-अपनी शिष्य परम्परा में पूजा की वस्तु मानी जाती रही हैं और भगवान के विग्रह के साथ पूजी भी जाती रही हैं। अतः वे प्रकाश में नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ सकीं। यहाँ यह भी बता देना अनुचित नहीं होगा कि इस सम्प्रदाय का अधिकांश साहित्य दिल्ली की तीनों आचार्य गद्दियों तथा जयपुर एवं वृन्दावन के चरणदासी केन्द्रों के ग्रंथ-संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इस सम्प्रदाय के कवियों की वाणियों का संग्रह इन गद्दियों में आरम्भ से ही होता आया है और यह प्रवृत्ति आज भी अक्षुण्ण है। इतना ही नहीं बल्कि अन्यान्य साधना सम्प्रदायों तथा स्वतंत्र वृत्ति के काव्य सर्जकों की कृतियाँ भी इन केन्द्रों पर उपलब्ध हैं।

इन गद्दियों के वर्तमान महन्त अपने सम्प्रदाय के साहित्य को प्रकाश में लाने के प्रति जागरूक हैं और वे इसे गोप्य नहीं मानते। इनके साथ ही स्वर्गीय आचार्य सरसमाधुरीशरण और रूपमाधुरीशरण के एतत्सम्बन्धी प्रयास श्लाघ्य हैं। इन दोनों महापुरुषों ने अपने सम्प्रदाय के बचे-खुचे स्थानों पर घूम-घूम कर अपने जयपुर और वृन्दावन स्थित स्थानों के संग्रहों में प्रचुर साहित्य संगृहीत कर रखा है और विधिवत सबका विवरण भी तैयार किया है। जहाँ तक मेरा अनुमान है कि इस सम्प्रदाय के साहित्य पर लगभग १०० अच्छे शोधप्रबन्ध लिखे जा सकते हैं। तत्तद् कवियों के संक्षिप्त परिचय के साथ इस ग्रंथ में लगभग ५०० छोटे-बड़े प्राप्त ग्रंथों का परिचय दिया भी गया है। स्थानाभाव के कारण इन कवियों या उनकी रचनाओं का अधिक परिचय देना सम्भव नहीं था। फिर भी, इतना तो स्पष्ट ही है कि इस सम्प्रदाय की अब तक ज्ञात रचनाओं में काव्य की प्रायः सभी विधायें मिलती हैं। इनमें चरितकाव्य, महाकाव्य, पौराणिक प्रबन्ध, खण्डकाव्य, मुक्तक और गीत आदि के साथ पद्यबद्ध नाटकों, अख्यायिकाओं, सिद्धान्त निरूपक अवतरणों, बारहमासा-चौमासा, गोष्ठी, कीर्तन, नाममाला, स्तोत्र, माहात्म्य, अनुवाद तथा उलटवासियों आदि सभी काव्य रूपों के नमूने विद्यमान हैं।

इन कवियों में कुछ तो आचार्य पद के अधिकारी हैं, क्योंकि उन्होंने विशुद्ध काव्य की अपेक्षा सिद्धान्त-निरूपण तथा अपने सम्प्रदाय के इतिहास को अधिक महत्व दिया है। इनमें स्वामी रामरूप, गो० जुगतानंद, रामसखी जी, जोगजीत जी, गुरुछौना जी और जसराम उपगारी का महत्व सर्वाधिक है। दूसरी कोटि में आचार्य कवियों की गणना करनी चाहिए। इन कवियों में सिद्धान्त विवेचनपरक तथा साधनामूलक साहित्य के साथ ही विशुद्ध काव्य का भी सर्जन किया है। इनमें स्वयं चरणदास जी, सुश्री सहजोबाई, दयाबाई, कोकिलाबाई (उपनाम बीबादास), नूपीबाई, आतमराम इकंगी, अखैराम जी और दाताराम आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस सम्प्रदाय के अधिकांश कवि इसी कोटि में हैं। विशुद्ध कवियों में श्री नवनदास, वृन्दावनदास, निर्भयराम, अजपादास, कर्त्तानन्द, सबगतिराम, बेगमदास, हरिनारायण जी, ज्ञानानन्द निर्वाणी, लक्षिदास, मानदास और प्रेमगलतान आदि का नाम लिया जा सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेप में, इस सम्प्रदाय का साहित्य बहु आयामी, समृद्ध, समकालीन साहित्य में प्रचलित अधिकाधिक काव्यरूपों को समाविष्ट करने वाला, ललित, प्रेम और विरहानुभूतियों का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करने वाला, सभी रसों-छन्दों-अलंकारों-काव्यगुणों से युक्त, अपने युग में प्रचलित प्रायः सभी राग-रागिनियों को अपना लेने वाला, लोक-तत्व और शास्त्रीय पक्ष के सुन्दर सामंजस्य से युक्त, नाना शैलियों, विधाओं तथा भाषा-प्रयोगों से समन्वित तथा सब प्रकार से पठनीय है। जहाँ इस विपुल साहित्य की प्रचुरता पाठक और अनुशीलनकर्त्ता को चमत्कृत करती है, वहीं अपने गुणात्मक वैशिष्ट्य के कारण उसमें प्रचुर आकर्षण भी वर्तमान है। इस सम्प्रदाय के प्रारम्भिक खेवे के कुछ कवि काव्यकौशल की दृष्टि से भक्तिकाल और रीतिकाल के उच्चकोटि के कवियों से तुलनीय हैं।

इस सम्प्रदाय के साहित्य में कहीं तो हमें सधुक्कड़ी भाषा में रचित सन्तबानी शैली की रचनाएँ मिलती हैं, तो कहीं वृन्दावन के कृष्णभक्त तथा राधाभक्त कवियों की रसिक शैली के मधुर साहित्य का अस्तित्व मिलता है। एक ही कवि की रचनाओं में संत और कृष्ण या राधाभक्त कवियों की रचना शैली के साथ ही नाथ पंथी योगियों की अभिव्यक्ति पद्धति की भी झलक पाकर इन कवियों की धारणा शक्ति पर आश्चर्य होता है। ऐसा संभवतः इसलिए हो सकता है कि इस संप्रदाय में ब्रह्म का जो स्वरूप मान्य है वह उसके मूलतः परात्पर और निर्गुण-निराकार रूप का सगुण, साकार और सोपाधि ब्रह्मत्व रूप से होता हुआ रास-बिहारी वृन्दावनवासी श्रीकृष्ण तक व्याप्त है। इस संप्रदाय के आराध्य राधा-कृष्ण युगल चिरकिशोरी और किशोर हैं। उनके इस रूप में उनका ईश्वरत्व, विष्णुत्व और ब्रह्मत्व—ये तीनों ही समाहित हैं। श्री राधा-कृष्ण की सारी लीला और उनका सारा स्वरूप अपने समस्त परिकर और परिवेश के साथ ब्रह्म की अपनी माया के साथ (जो ब्रह्म से अभिन्न है अथवा उससे अलग न होकर उसी की शक्तिस्वरूपा तथा उसी में निहित है) नित्य या शाश्वत लीला विग्रह के स्वरूप में है। इसे जनसाधारण मानवी लीला मानते हैं, भक्त भगवान् की लीला के रूप में दिव्यता के साथ इसे जानने और देखने को उत्सुक रहते हैं और ज्ञानी इसे परब्रह्म की नित्यलीला मानते हैं। यह अन्तर वस्तुतः दृष्टि भेद का है न कि दृश्य पदार्थ का। वह तो एक ही है परन्तु चर्मचक्षुओं, ज्ञानचक्षुओं और दिव्यचक्षुओं के भेद से वह भिन्न-भिन्न रूप में दिखाई देता है।

अस्तु, कहा जा सकता है कि स्वामी चरणदास जी द्वारा वर्णित ब्रह्म का पुरुषोत्तम रूप, उसका नित्य धाम अथवा नित्यवृन्दावन या अमर अखंड धाम तथा वहाँ हो रहे नित्यलीला-बिहार में ही उनके ब्रह्मसंबंधी चिन्तन का सारांश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाविष्ट है। उन्होंने जिस राधा और कृष्ण युगल की लीलाओं का गान किया है, वे बरसाने और गोकुल के गोपाल परिवार में उत्पन्न राधा-कृष्ण नहीं हैं। वे तो पुरुषोत्तम रूप परब्रह्म के मानवी नाम हैं और लीला वर्णन के लिए एक आधार मात्र हैं। इनमें भी उनका झुकाव राधा की ओर मात्र इसलिए नहीं है कि वे श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति हैं, बल्कि इसलिए है कि शक्तिस्वरूपिणी राधा ही ब्रह्मस्वरूपी कृष्ण को अस्तित्व और सक्रियता प्रदान करने वाली हैं। शक्ति के अभाव में शक्तिमान (ब्रह्म) वैसा ही है जैसे प्राणों के बिना शरीर।

इसी विचार भूमि पर इस संप्रदाय का दार्शनिक चिन्तन आधारित है। योग के क्षेत्र में अष्टांग योग इस संप्रदाय को मान्य है। ज्ञान का वैराग्यमूलक स्वरूप भी यहाँ स्वीकृत है। विरक्त और गृहस्थ दोनों के लिए नवधा भक्ति का विधान इस संप्रदाय का कर्ममार्ग है। इस प्रकार अपनी कुछ मौलिकताओं और विशिष्ट रुझानों के साथ यह संप्रदाय मुख्यतः परम्परावादी है। वैष्णव मतों में दैनिक चर्या तथा अष्टयाम उपासना का जो भी विधान स्वीकृत है, इस संप्रदाय में उसे पूर्णरूप से स्वीकार किया गया है। इसके बाह्याचारों के निर्धारण में परंपरा से चले आते लोकमान्य आचार-विचारों के साथ श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, पद्मपुराण और स्कन्दपुराण आदि में वर्णित आचार-संहिता के समन्वित रूप का विशेष महत्त्व है। इसका प्रमाण यह है कि इस संप्रदाय के अनेक कवियों ने श्रीमद्भागवत और गीता का अपने-अपने ढंग से अनेकशः अनुवाद किया है। पद्म-पुराण और स्कंदपुराण के आधार पर अनुवादरूप में या स्वतंत्र रूप में 'अगहन माहात्म्य, 'कार्तिक माहात्म्य', 'माघ माहात्म्य', 'वैसाख माहात्म्य' और 'एकादशी माहत्म्य' जैसे ग्रंथों की बड़ी संख्या में उनके द्वारा रचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं।

सतत् परिवर्तित हो रहे जीवनमूल्यों और धार्मिक वृत्ति के ह्रास से आहत होने पर भी यह एक जीवित, जागृत, सावधान और अपने स्वरूप की रक्षा में सतत प्रयत्नशील साधना संप्रदाय है। कालचक्रानुसार अपने आपको ढाल लेने की इसमें अद्भुत शक्ति है। इसकी समृद्ध विरक्त गद्दियाँ पिछले पचास वर्षों से तीव्र-गति से गृहस्थ गद्दी या व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में परिवर्तित होकर अपना अस्तित्व खोती जा रही हैं। ऐसा प्रायः सभी संप्रदायों के साथ हो रहा है। इस चाकचिक्य और अनास्था के युग में ब्रह्मचर्य व्रत और विरक्ति का पालन अत्यन्त कठिन हो गया है। आज का कृत्रिम शहरी वातावरण साधनापूर्ण जीवन का विरोधी है। यहाँ पग-पग पर काँटे और भौतिक आकर्षण के जाल बिछे हुए हैं। तन-मन की पवित्रता की रक्षा असंभव होती जा रही है। अर्थिक समृद्धि के प्रति लोभ-मोह में सतत् वृद्धि हो रही है। फिर भी निराशा की कोई बात नहीं है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन महात्माओं की बानियाँ हमें बराबर यह स्मरण दिलाती रहती हैं कि हम क्या थे, हमें क्या होना चाहिए और हम कहाँ जा रहे हैं ? यदि हमारी चित-वृत्तियों को स्वच्छ रखने में इनकी वाणियों का तनिक भी उपयोग हो तो उनका कृतित्व सार्थक एवं प्रासंगिक माना जायगा। यदि अपनी पूर्व परम्परा द्वारा रचित साहित्य की सुरक्षा और उसके प्रकाशन की समुचित व्यवस्था की ओर बची-खुची गद्दियों के महन्तगण ध्यान दें तो इस संप्रदाय के लिए एक शुभ बात होगी।

आज की सामाजिक समस्याएँ भी प्रायः वही हैं, जो चरणदास जी के युग में थीं। वैसी ही अन्धश्रद्धा-अश्रद्धा और अविश्वास के बीच आज भी उलझन और टकराव की स्थिति है। पारिवारिक स्नेह के बंधन क्षुद्र स्वार्थपरता के झटकों से टूट रहे हैं, परिवार की परिभाषा बदल रही है और मर्यादाओं, अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के बंधन अत्यन्त शिथिल हो रहे हैं। यह अर्थ-पिशाचों, कालाबाजारियों, भ्रष्टाचारियों, पदलोलुपों, सिद्धांतहीनों, नैतिक रूप से पतितों, परंपराओं की अच्छी बातों का भी प्रगतिशीलता के नाम पर विध्वंस करने वालों, मर्यादा भंग करने वालों, आलसियों, वाग्जालियों, धूर्तों, लुटेरों, गुंडों, सफेदपोशों, कुकर्मियों, नियम-कानून के उल्लंघनकारियों, विद्वेषियों, परावलम्बियों या परोपजीवियों, नक्कालों और धर्मविदूषकों के प्राधान्य का युग है। यही स्थिति चरणदास जी के काल में भी थी। गोसाईं तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में वर्णित कलियुग की स्थिति से भी अधिक संत्रासदायक परिस्थिति उनके समक्ष थी, जो आज और भी खराब है। इस परिस्थिति से जनसाधारण को उबारने के लिए दयार्द्र होकर श्री चरणदास ने एक विशाल शिष्य समुदाय के सहयोग से जिन परिष्कारक उपायों को निर्देशित किया था और वे स्वयं जिस मार्ग पर चले थे, वे आज भी अनुकरणीय तथा प्रासंगिक हैं।

स्पृश्यास्पृश्य, वर्ग-भेद, वर्ण-भेद और धर्मभेद की खाईं निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसने आज की राजनीति अर्थव्यवस्था और शिक्षा आदि प्रायः सभी क्षेत्रों को ग्रस्त कर रखा है। आज का समाज वर्गसंघर्ष, जातिसंघर्ष, धर्मसंघर्ष, व्यक्तिसंघर्ष और न जाने कितने संघर्षों के क्रूर चक्र के नीचे पिस रहा है। आज का मानव रक्तपिपासु, रक्तशोषक और रक्तरंजित है। उसे धर्म, समाज, शासन और यहाँ तक कि ईश्वर का भी भय नहीं रह गया है। वह इन सबसे तो भयरहित है परन्तु अपने कुकर्मों के परिणामस्वरूप होने वाले दुष्परिणामों से अपने आप में ही संत्रस्त है। जो बाहर के किसी भी दण्ड से अपनी रक्षा करने में समर्थ है, वह उद्दण्ड व्यक्ति आत्मदण्ड के भय से इतना पीड़ित है कि वह नाना मनोरोगों से ग्रस्त होकर घोर नैराश्य और संत्रास की स्थिति में पहुँच गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज भी इस पीड़ित मानवता को संतों के उपदेश ही त्राण दिला सकते हैं। इसीलिए बीच-बीच में ऐसे संतों-महात्माओं का प्रादुर्भाव होता रहता है, जो दिग्भ्रमित तथा पथभ्रष्ट मनुष्य को श्रेयस्कर मार्ग दिखा सकें। स्वामी चरणदास का सारा जीवन और कर्तृत्व इसी सदुद्देश्य से प्रेरित था। उनकी और उनकी शिष्य-परम्परा के लगभग ढाई सौ कवियों की बानियाँ इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। आवश्यकता इस बात की है कि प्यासा स्वयं कूप के पास जाय।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट–१

चरणदासी सम्प्रदाय : माधुर्योपासना के तत्त्व एवं स्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदासी सम्प्रदाय : माधुर्योपासना के तत्त्व एवं स्वरूप

युगावतार स्वामी श्री चरणदास जी की उपासना संबंधी दृष्टि पूर्णतः उदार थी और उनके साधना-सिद्धान्त में प्रभूत लचीलापन था। उनका यह दृढ़ मत था कि ज्ञान, योग, भक्ति और प्रेम आदि अलग-अलग एवं एक साथ मिलकर (दोनों रूपों में) साधक के कल्याण में सक्षम हैं। हाँ, इतना वे अवश्य स्वीकार करते हैं कि ज्ञान और योग में स्खलन की संभावनाएँ अधिक हैं और ये साधना मार्ग सबके लिए सुगम भी नहीं हैं। इसलिए उन्होंने अपने पाँच हजार भेखधारी या बानाधारी शिष्यों (जिनमें १०८ महन्त शिष्य भी सम्मिलित थे) तथा गृहस्थों को उनकी पात्रता एवं परिस्थिति के अनुसार ही अलग-अलग साधना पद्धति को अपनाने का निर्देश दिया था। इस तथ्य की ओर इङ्गित करते हुए रसिकाचार्य श्री रामसखी जी कहते हैं—

काहू योग ज्ञान काहू को, कोउ भक्ति निधि पाई।
काहू वै प्रेमलक्षणा दीनी, काहू वै केलि दृढ़ाई॥
निज निज भाग्य सूत्र पूरब के, जिसने जैसी करी कमाई।
लखि अधिकार सबन को दीनो, करिके कृपा महाई॥[1]

इससे स्पष्ट है कि चरणदास जी ने किसी को योग मार्ग की, किसी को ज्ञान मार्ग की, किसी को नवधा भक्ति की, किसी को प्रेमलक्षणा भक्ति की तो किसी को निकुञ्ज रस की उपासना में उसकी पात्रता एवं क्षमता के अनुसार नियोजित किया था।

पाँचों प्रकार की ये साधनाएँ 'श्री मद्भागवत' में किसी न किसी प्रसङ्ग में प्रशंसित एवं स्वीकृत हैं। ये सभी मोक्ष एवं जीवकल्याण के लिए सक्षम हैं। फिर भी स्वयं श्रीमद्भागवत योग, ज्ञान और नवधा भक्ति को प्रेमलक्षणा भक्ति का सहयोगी एवं सोपान मानता है। चरणदास जी के गुरु श्री शुकमुनि द्वारा उद्गीत एवं उनके पिता (और गुरु भी) श्री व्यास द्वारा प्रणीत श्रीमद्भागवत ही उनके साधना-सिद्धान्तों का आधार या प्रमाणस्वरूप है।

यह बात स्वयं उनके द्वारा तथा उनके प्रायः सभी शिष्यों द्वारा भूरिशः उद्घोषित है। इसीलिए उनके सम्प्रदाय का नाम 'शुकसंप्रदाय' था। श्री रामसखी ने इस संप्रदाय के सिद्धान्तों को सूक्तरूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

---

१. भक्तिरसमंजरी (पाण्डुलिपि) : पत्र सं० ३१, पद सं० ५६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संप्रदाय शुकदेव मुनि, भक्ति अनन्य अकाम।
मत भागवत अपेल दृढ़, ताको कोटि प्रणाम ॥
गुरुद्वारो चरणदास को, पीत वसन अभिराम।
तुलसि कंठ ग्रीवा जुगल, माल ललित छबिधाम ॥
चिह्न चन्द्रिका नाम प्रिय, श्री तिलक विच भाल।
जपिये मुख निसि दिन सदा, श्री राधा वल्लभ लाल ॥[1]

इस संप्रदाय की गुरु-परम्परा प्रायः वही है, जो राधा वल्लभ मत में तथा वृन्दावन के अन्य वैष्णवी साधना संप्रदायों में स्वीकृत है।[2] तदनुसार निकुंज रस या माधुर्य रस की साधना के सर्वप्रथम उपदेष्टा स्वयं श्री नारायण हैं। उनका यह ज्ञान ब्रह्मा को मिला, ब्रह्मा ने इसे नारद को दिया, नारद ने व्यास मुनि को इस रसोपासना के रहस्य से अवगत कराया, पुनः शुक मुनि ने उनसे इसे प्राप्त किया और शुकमुनि ने इसे वृन्दावन के अन्य आचार्यों की भाँति चरणदास जी को भी कृपापूर्वक दिया। रसिकों के बीच इस उपासना को अमूल्य धरोहर के रूप में एवं गोप्य माना गया है। इसीलिए चरणदास जी ने अपने प्रिय शिष्य रामसखी जी तथा अन्य निकुंज रस प्रेमियों को इस रस का रहस्य बताने के साथ-साथ यह चेतावनी भी दे दी है—

महागुप्त अधिकार लखि, तो सों कह्यो सुनाय।
रखियो याको जतन करि, दीजो नाहिं लुटाय ॥[3]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सामान्यतया चरणदास जी जिस भक्ति-सिद्धान्त का व्यापक प्रचार करना चाहते थे, वह योग और ज्ञान तथा वैधी भक्ति साधना से संपुष्ट प्रेमाभक्ति-मार्ग था।

जिन साधकों की साधना सम्बन्धी प्रगति अच्छी थी उन्हें वे प्रेमलक्षणा भक्ति या प्रेमा भक्ति को ही अपनाने की राय देते थे। जिनकी गति उससे भी आगे

---

१. भक्तिरस मंजरी (प्रथम प्रकरण): दोहा सं० २५२–५४।

२. नारायण विधि कौं दियो, रस निकुंज सुख मूल।
ब्रह्मा नारद को दियो, यह धन गोप्य अतूल ॥
श्री नारद मुनि व्यास को, व्यास श्री शुकदेव।
श्री शुक मोकों कृपा करि, दियो रस अगम अभेव ॥
वही: दोहा सं० २४९–५०।

३. वही: दोहा– सं० २५१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, उन्हें उनसे निकुंज रस में निमग्न होने की राय प्राप्त होती थी। तात्पर्य यह कि उनकी साधना-सम्बन्धी मान्यता के अनुसार साधनागत सोपान का क्रम कुछ इस प्रकार था :—(१) योग (२) ज्ञान (३) नवधा भक्ति (४) प्रेमा और (५) निकुंजोपासना।

यह प्रमाणसिद्ध तथ्य है कि श्रीमद्भागवत द्वारा निर्दिष्ट प्रेमलक्षणा भक्ति ही सामान्यतया चरणदासी (शुकसंप्रदाय) सम्प्रदाय द्वारा स्वीकृत भक्ति साधना है। इसे ही अनन्या भक्ति, रसरूपा भक्ति और अकाम भक्ति भी कहा गया है। परन्तु इस सम्प्रदाय में यह साधना यहीं तक नहीं रुकती बल्कि इससे आगे जाकर यह वृन्दावन रस, अनन्य रस, ललित रस, सखी भाव, व्रज रस, उज्ज्वल रस, मधुर रस, निजरस तथा रसोपासना आदि रसिक सम्प्रदायों में प्रचलित रसिकोपासना के भावों को समेटती हुई निकुंज रस की उपासना में समाहित हो जाती है। अतः भक्ति साधना के चरमोत्कर्ष पर स्थित शुक सम्प्रदाय की रस साधना को निकुंज रसोपासना की संज्ञा दी जा सकती है। कम से कम रसिकाचार्य श्री रामसखी तो यही कहते हैं और इसके प्रमाणस्वरूप वे स्वामी हरिदास, श्री हरिव्यास देव और श्री हित हरिवंश जी की वाणियों को प्रमाण मानते हैं।[1] इस प्रकार वे अपने साधनामार्ग (निकुंजोपासना) को सीधे सखी संप्रदाय, राधा बल्लभी मत और निंबार्क संप्रदाय की वृन्दावनीय ललित कृष्णोपासना मार्गों से जोड़ रहे हैं।

रामसखी जी अपनी 'भक्तिरस मंजरी' में जिसे 'रस निकुंज' या निकुंज रस कह रहे हैं, वह उनके द्वारा निरूपित तत्त्वों के आधार पर सिद्धान्ततः सखी भाव की ही भक्ति है। साथ ही स्वयं उनके द्वारा चरणदास जी के जिस भक्ति सिद्धान्त का वर्णन किया गया है, वह सखी भाव की साधना का ही निरूपण है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रमाण हैं, जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि चरणदास जी रस साधना की ओर उन्मुख थे, लेकिन परिस्थितिवशात् वे केवल इसी साधना मार्ग को अपना लेने के पक्ष में नहीं थे। इसके अनेक कारण थे। उनके शिष्य वर्ग में सभी साधना मार्गों के लोग सम्मिलित थे। अतः श्री मद्भागवतानुमोदित प्रायः सभी साधना मार्गों को स्वीकृति देने को वे बाध्य थे। इतना अवश्य है कि उनको सखी

---

१. श्री स्वामी हरिदास जी, रसिक महा हरिव्यास।
कृष्णदास अरु हित अली, इन मारग सुखरास ॥
सोई मेरो मार्ग है, महामोद की खान।
उन्नत परम निकुंज रस, तिन बानी परमान ॥

भक्तिरस मंजरी (प्रथम प्रकरण) : दोहा सं० २४६–४७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव की उपासना भी मान्य थी।[1] इसी आधार पर उनकी वृद्धावस्था में उनको जयपुर से लिखे गये पत्र में श्री वंशी अली जी के शिष्य श्री किशोरी अली जी (श्री जगन्नाथभट्ट) ने उनके सखी रूप को लक्षित किया है। उनकी एतत्संबन्धी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

स्वस्ति श्री राधा रमण, चरण सेय सुख धाम।
पायो याहीं ते सरस, चरणदास यह नाम॥
जगन्नाथ तिनको करत, बारंबार प्रणाम।
जातें सत्वर होत है, मन के पूरण काम॥
श्री शुकमुनि जिनको दई, निज सम्पति अपनाय।
तिनकी महिमा कहन को, काकी मति ठहराय॥
ज्ञान चाहि ज्ञानी कहें, योगी योग विचार।
भोगी भोगी मानहीं, लहत न कोउ निरधार॥
कृपा तिहारी सों हमें, जान पड़ी यह लाग।
परम तत्व के प्राण में, है मन को अनुराग॥
श्री मुख को यह वचन है, राधा जीवन प्राण।
तिनकी छबि को निरखि के, है रही सहज बिकान॥
ता स्वामिनि को सखी ह्वै, सेवा पाई आप।
प्रिया चरण सेवन करत, मिली चरण की छाप॥
चरणदास यह नाम धरि, प्रगट जगत में आय।
जे जे जन सनमुख भये, ते लीने अपनाय॥[2]

चरणदास जी के कई शिष्यों ने उन्हें श्री राधा या किशोर युगल की सखी के रूप में स्मरण किया है। स्वयं चरणदास जी ने भी अपने कई पदों में अपने नाम के साथ 'सखी' शब्द जोड़ा है। जैसे 'चरणदास यह सखी तिहारी मिल जा छानी हो', 'चरणदास सखी सदा झूलै कोई न पावै भेव', 'युगलकिशोर निरखि नैनन सों चरणदास सखि बलि-बलि जावै', 'चरणदास सखी पर गुरु शुकदेव कृपा कीन्हीं बाँके सो विहारी एक पल में मिलायो है', 'चरणदास यह सखी तिहारी हो शुकदेव दयाल', 'चरणदास सखि निसिदिन तलफै ज्यों मछली बिन नीर, आदि।[3] ज्ञातव्य है कि चरणदास जी का सखी नाम 'प्रेममंजरी' था।

---

१. सखा भाव पहुँचत वहि ठाईं। सखी भाव भीतर को जाईं।
धरै स्वरूप अनूपम भारी। सदा सुहागिन हरि पिय प्यारी॥
आस पास बहु कुंज हैं, बीच लाल को धाम।
चरणदास को दीजिए, सखियन में विश्राम॥ भक्तिसागर: पृ० २१, २३

२. शुक संप्रदाय सिद्धान्त चन्द्रिका (सरसमाधुरीशरण जी कृत): पृ० ५५।

३. भक्तिसागर (नवीन संस्करण) क्रमशः पृष्ठ सं० ४२२, ४०६, ३७६, ४०३, ४२४ तथा ४२९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दो अपवादों को छोड़कर चरणदास जी के शिष्यों-प्रशिष्यों में प्रायः सभी ने अपने नाम के साथ कतिपय बानियों में सखी शब्द का प्रयोग किया है। चरणदास जी की सखी भाव की साधना भी श्रीमद्भागवतानुमोदित है, अतः इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये कि अन्य साधना सिद्धान्तों की भाँति निकुंज रस की साधना भी उन्हें मान्य थी और इसका उदाहरण या आदर्श भी उन्होंने कुछ समय के लिये प्रस्तुत किया था। उन्हीं की प्रेरणा से सखी भाव की उपासना का गुणगान उनके अनेक शिष्यों ने अपनी बानियों किया है।[1]

चरणदास जी के निकुंज रस के आश्रय श्री राधा और कृष्ण हैं, जो नित्य किशोर हैं। वे नित्य एवं अजन्मा हैं, अवतार नहीं हैं। वे प्रकृति-पुरुष भी नहीं हैं। ये मूलतः परस्पर परब्रह्म होकर भी भक्तों के रंजनार्थ वृन्दावन में अनवरत विहाररत हैं। उनके इस स्वरूप का वर्णन करते हुए श्री रामसखी कहते हैं—

अवतारी अवतार नहिं, ये दोऊ नित्य किशोर।
नित अखण्ड विहरत विपिन, नहिं जानत रजनी भोर॥
पर तें पर हैं ये दोऊ, इन तें पर नहिं आन।
भयो है न नहिं होयगो, दूजो इनहिं समान॥
प्रकृति पुरुष ये हैं नहीं, ये दोऊ एक स्वरूप।
युगल अनादि विराजहीं, वृन्दावन के भूप॥[2]

इस पुरुषोत्तम तत्त्व या परब्रह्म ने ही युगल किशोर रूप धारण करके व्रज में विलास किया था और वे अब भी अपने भक्तों की मनोकामना पूर्ण कर रहे हैं। इनकीभृकुटी के विलास मात्र से ईश्वर सहित ब्रह्माण्ड का सर्जन, पालन तथा संहार होता है। वृन्दानेश्वरी श्री राधा और रसेश्वर श्री कृष्ण एक ही तत्त्व के दो स्वरूप हैं। अतः दोनों में अभेद है। परब्रह्म से श्री कृष्ण के स्वरूप धारण तक के

---

१. गुरु छौना जी (चरणदास जी के वरिष्ठ शिष्य) अपने शिष्य अखैराम जी के समक्ष सखी भाव की साधना की श्रेष्ठता का गुणगान इन शब्दों में कर रहे हैं—

अखैराम सुनि कहत हौं, गुह्य कथा है तात।
सतगुरु इष्ट सो इष्ट मम, कहौं इष्ट की बात॥
सखी भाव राधा भजे, सो पहुँचे निज धाम।
टहल लहै सामीपता, तब रीझें घनश्याम॥
परम गुरू सुखदेव जी, मंत्रगुरू चरणदास।
प्रेममंजरी इष्ट गुरु, ले गई ललिता पास॥

अखैराम कृत ज्ञानसमूह ग्रन्थ (पांडुलिपि)

२. भक्तिरस मंजरी (प्रथम प्रकरण) दोहा : सं० १९६–१९७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम की ओर संकेत करते हुए चरणदास जी ने अपने इस पद में जो कुछ कहा है, वह इस प्रकार है—

जै जै पारब्रह्म परधान । जाकूँ पावै गुरु के ज्ञान ॥
ब्रह्म पुरुष को धरो स्वरूप । सो तो कहिये अधिक अनूप ॥
जै जै ऊँ जै जै त्रैदेव । जै जै दस औतार अभेव ॥
जै वृन्दावन जै निज धाम । जै जै गोकुल और नन्दग्राम ॥
जै जै गोपी जै जै ग्वाल । जै जै सदा विहारी लाल ॥
जै जै कुंज गली नँदलाल । मोर मुकुट मुरली बनमाल ॥
जै जै राधे कृष्ण मुरार । जै जै व्यास वेद उच्चार ॥
जै जै महा विदेह जनक जी । जै जै श्री शुकदेव दयाल ॥
इनको नाम जपै जो कोय । प्रेमभक्ति पावत है सोय ॥
चरणदास सुखवास लहै । हरिचरणन के पास रहै ॥[1]

उद्धृत पंक्तियों में सर्वोच्च सत्ता से कुंजविहारी के स्वरूप में आने तक के बीच का क्रम इस प्रकार बनता है—(१) परब्रह्म (२) पुरुषोत्तम (३) ऊँ (४) त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) (५) दश अवतार (जिनमें राम और कृष्ण भी सम्मिलित हैं) (६) वृन्दावन, गोकुल, नन्द गाँव, कुंजगली, गोपी, ग्वाल आदि ।

इस प्रेमाभक्ति की गुरु-परम्परा में विदेह जनक जी, श्री शुकदेव जी और चरणदास जी क्रमशः उल्लिखित हैं । अस्तु, चरणदास जी से प्रेमाभक्ति शिष्य-प्रशिष्य परम्परा को प्राप्त हुई, जो इस सम्प्रदाय में अब तक चली आ रही है ।

रसिक साधना में नित्य किशोरी और किशोर (श्री राधा और श्री कृष्ण) की नित्य प्रणय लीला ही आराध्य है । इस लीला की सहयोगिनी सखियों की भी कई कोटियाँ और संज्ञाएँ हैं । इन्हें सखी, मंजरी, सहचरी, किंकिरी, कान्ता, गोपी आदि अनेक नाम दिये गये हैं । परन्तु रामसखी जी ने इनके ४ भेदों का ही नामोल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

अली मंजरी सखी सहचरी भेद सुहाये ।[2]

रामसखी जी के माध्यम से चरणदास जी ने जिस 'निकुंजरस' की साधना का प्रचार किया है वह रस की परिभाषा में श्रृंगार रसात्मक है परन्तु मधुरा भक्ति है । के रूप में यह सामान्य श्रृंगार से भिन्न है । जहाँ सामान्य श्रृंगार में वासना

---

१. भक्तिसागर (शब्द वर्णन) : पृ० ३७७ ।
२. भक्तिरस मंजरी : पत्र सं० ५० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या प्राकृत काम क्रीडा की भावना वर्तमान है, वहाँ निकुंज रस इससे पूर्णतः मुक्त है।[1]

रामसखी जी ने इसी निकुंज रस को 'दासी रस' कहकर एक सर्वथा नवीन नाम दिया है। वस्तुतः सखी भाव की साधना सामान्य अर्थ में स्वीकृत शृंगार रस या प्रेम का पर्याय नहीं है बल्कि निःस्वार्थ सेवा का रूप है।[2] इसीलिये स्वयं शुकदेव मुनि ने भी सेवार्थ ही सखी रूप धारण किया था।[3] युगल किशोर की निकुंज सेवा के लिये उन्हें तीन रूप धारण करने पड़े थे। प्रथम में वे शुकाचार्य के रूप में जगत् में विचरण करते हैं। द्वितीय रूप में वे शुकी बनकर नित्य किशोर-किशोरी की नित्य वृन्दावन निकुंज में चल रही नित्य प्रणयलीला के प्रत्यक्षदर्शी हैं। क्षण मात्र भी वे इस लीला को दृष्टि से ओझल नहीं होने देते।[4] तृतीय रूप उनका सखी वेश धारी है। सखी रूप में वे अष्टयाम लीला में आठ नाम, रूप और वेशादि धारण करके युगल की भिन्न-भिन्न प्रकार की सेवा में लगे रहते हैं। इस बात को रामसखी जी इन पंक्तियों द्वारा बता रहे हैं—

अष्टनाम मुनिराज के, अष्टै भाव स्वरूप।
अष्टयाम सेवा युगल, अष्ट शृंगार अनूप॥[5]

'शुक संप्रदाय सिद्धात चंद्रिका' के अनुसार श्री शुकदेव जी के आठ नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं—

जैति जैति जै सुख सखी, सुखदा हित की रूप।
आह्लादिनि कलवैनका, आनन्दा जू अनूप॥

---

१. सकल रसन में मुख्य है, उत्तम रस शृंगार।
तामें लय सब होत हैं, नीके लिये विचार॥
प्राकृत क्रीड़ा काम की, नेक नहीं जहँ बास।
किंचित कोर कटाक्ष सों, कोटि मदन ह्वै नास॥
भक्तिरस मंजरी (प्रथम प्रकरण) : दोहा सं० २२५, २२७।

२. सकल रसन में मुख्य है, दासी रस सिरताज। —वही : दोहा सं० ४१।

३. सेवा दंपति हित सदा, करत सुखन आगार। —वही : दोहा सं० २५।

४. दूजो तन श्री शुकी को, मध्य केलि की कुंज।
पंछी ह्वै रस माधुरी, पियत रहत रस पुंज॥
निमिष मात्र पिया पीउ को, छाँड़ सकत है नाहिं।
प्रीति नीर की मीन यह, मगन दरस ही माहिं॥
—वही : दोहा सं० ३२-३३।

५. वही : दोहा सं० २०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस पुंजा रस रूपिनी, प्रेमप्रभा अभिराम ।
अष्टम प्रमुदा नाम शुक, तिनको कोटि प्रनाम ।।[1]

इस संप्रदाय में श्री शुकदेव मुनि के जो आठ नाम प्रसिद्ध हैं और ऊपर की पंक्तियों में गिनाये गये हैं, वे हैं—(१) शुक सखी, (२) सुखदा, (३) आह्लादिनी, (४) कलवैनिका, (५) आनन्दा, (६) रस पुंजिका, (७) प्रेमप्रभा और (८) प्रमुदा ।

उनकी अष्टयाम सेवा क्रमशः इन्हीं नामों से होती है और भिन्न-भिन्न याम की उनकी सेवा भी भिन्न-भिन्न है । प्रथम याम में जब कुछ रात्रि अवशिष्ट रहती है तो 'शुकसखी' मंगलगान द्वारा ललितादि सखियों को जगा देती हैं और अपने-अपने काम में नियोजित कर देती हैं ।

द्वितीय याम में श्री शुकसखी 'सुखदा' के नाम से जानी जाती हैं । श्री सुखदा सखी की अवस्था ११ वर्ष की बताई गई है । श्रृङ्गार सभा और राजभोग के समय उनका काम वीणा वादन द्वारा प्रिया–प्रियतम को रिझाने का है । तृतीय याम में 'आह्लानदी' नाम से वे दम्पति को पंखा झलने का कार्य करती हैं । चतुर्थ याम में जब किशोरी-किशोर का वन-विहार का कार्यक्रम होता है, उस समय उनकी सेवा तंबूरा बजाकर नाचने-गाने और सबको प्रसन्न करने की है । इसीलिए इस याम का उनका नाम 'कलबैनिका' है । पञ्चम याम में जब सब सखियाँ बनी-बना की विवाह लीला आयोजित करती हैं तो दूल्हा-दूल्हन को सजाने का काम उनका ही है, इसीलिये इस याम में उन्हें 'आनन्दा' के नाम से पुकारा जाता है ।

षष्ठ याम में ८ सखियाँ और ८ किंकरियाँ मिलकर रास मण्डल की रचना करती हैं । इसमें श्रीशुकसखी जी 'रसपुंजिका' या 'रसपुंजा' नामक सखी का रूप धारण करके चँवर डुलाने और मृदंग बजाने की सेवा करती हैं । सप्तम याम का उनका नाम 'प्रेमप्रभा' है । प्रेमप्रकाश निकुंज में जब दंपति विश्राम करते हैं, या चौसर खेलते हैं, उस समय उस कुंज की अधिकारिणी प्रेमप्रभा जी ही होती हैं । अष्टम याम में दम्पति के शयन कुंज की रक्षा का भार भी उन्हीं पर होता है और उस समय का उनका नाम 'प्रमुदा' है । इस प्रकार आचार्य रूप में और सखी रूप में उनका द्विविध रूप सदा सेवारत है ।[2]

---

१. भक्ति रस मंजरी : दोहा सं० २२–२३ ।

२. एक आचार्य रूप भूतल पर, एक रहत विच सहचरि वृन्द ।
आपै जुगल रूप धरि बिहरत, मण्डल कुंज ललित मुख चंद ।।
—वही (द्वितीय प्रकरण) : पद सं० १ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठों यामों की सेवा में गुरुदेव (शुकी) के साथ चरणदास जी भी सारिका रूप में और सखी वेशधारी गुरुदेव के साथ सखी या किंकिरी वेश में रहते हैं। चरणदास जी को भी अष्टयाम की सेवा में अष्ट नामों से निकुंज में उपस्थित बताया गया है। उनके ये नाम श्री सरसमाधुरीशरण जी द्वारा 'भक्तिरस मंजरी' के प्रमाणानुसार इस प्रकार बताये गये हैं—

प्रेममंजरी नाम है, गंधर्वा गुणग्राम।
प्रमोदिनी मधुरास्वरा, सहजानन्दनि बाम ॥
गुणप्रकाशिका जानिये, जुगतानन्दिनि बाल।
प्रमुदमंगला जू सखी, रूप राशि छबि जाल ॥[1]

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि श्री शुकमुनि की भाँति चरणदास जी के भी आठ नाम भिन्न-भिन्न यामों के अनुसार ही थे और उनकी सेवा भी तदनुसार भिन्न-भिन्न थी। याम, तदनुसार उनके नाम और उनकी सेवा के क्रम का विवरण इसप्रकार है :—

याम	सखी नाम	सेवा
प्रथम याम	प्रेममञ्जरी (चरणदासि)	मंगल गान
द्वितीय ,,	गंधर्वा	गायन-वादन।
तृतीय ,,	प्रमोदिनी	चरण सेवा।
चतुर्थ ,,	मधुर सुरा	मोरछल ढोरना।
पंचम ,,	सहजानन्दिनि	तंबूरा बजाना।
षष्ठ ,,	गुणप्रकाशिका	घंटा नाद करना और विवाहोत्सव लीला में विवाह गीत गाना।
सप्तम ,,	जुगतानन्दिनि	कोक वाक्य रचना सुनाना और मनोरंजन करना।
अष्टम ,,	प्रमुदमंगला	सारङ्गी वादन एवं आरती।

वृन्दावनीय रसोपासकों की मान्यता है कि विभिन्न यामों की लीलायें और सेवायें भिन्न-भिन्न कुंजों में होती हैं। तदनुसार इनके आठ नाम भी गिनाये गये हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) रंग महल एवं मंगला कुंज, (२) श्रृंगार कुंज, (३) पुष्प कुंज, (४) प्रमोद कुंज, (५) हिंडोल कुंज, (६) आनन्द कुंज, (७) सेवाकुंज और (८) प्रेमप्रकाश निकुंज।

---

१. शुकसंप्रदाय सिद्धान्त चंद्रिका : पृ० सं० ५१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सम्प्रदाय में श्री शुकमुनि की भाँति ही चरणदास जी के भी ये तीन रूप मान्य हैं—(१) सारिका रूप, (२) आठों यामों में अष्टनाम सखी के रूप में और (३) आचार्य एवं गुरु रूप में।

रसिक सम्प्रदायों में श्री राधा के प्रायः तीन रूप माने गये हैं—

(१) व्रजवासिनी राधा, (२) रास-विलास की राधा (३) निकुंज की राधा। श्री ललित किशोरी जी ने भी श्री राधा के तीन ही रूप बताये हैं। वे कहते हैं—

एक रधा व्रज में बसें, एक राधा रास विलास।
तीजी राधा कुंज में, दुलरावै हरिदास॥ (रस के पद, सं० २०)

श्री राधा-कृष्ण युगल (दम्पति) की नित्य निकुंज लीला की सहयोगिनी एवं प्रत्यक्षदर्शी सखियों, सहचरियों और गोपियों के इस युगल के प्रति पुत्र भाव, मित्र भाव, पति भाव और आत्मभाव इन चार भावों के अस्तित्व की मान्यता है। विविध रसिक साधना सम्प्रदायों में सखी, मंजरी, किंकरी, सहचरी, गोपी, कान्ता आदि स्वरूपों को भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इन सबका विवरण यहाँ प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा। यहाँ मात्र यह बता देना आवश्यक है कि आलोच्य सम्प्रदाय में 'सखी' और 'मंजरी' का अर्थ भेद पर्याप्त स्पष्ट है। जब रामसखी जी कहते हैं—'अष्ट सखी अरु अष्ट मंजरी, इनके नाम जो गावैं'—तो इनमें किसी प्रकार का स्तर भेद न मानते हुए भी वे बताना चाहते हैं कि अष्ट सखियाँ तो श्री राधा जी से सम्बन्धित हैं और अष्ट मंजरियाँ श्री कृष्ण से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार लीला का यह अन्तरंग परिवार १६ सखियों का है। उनके अनुसार राधा जी की सखियों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) ललिता, (२) चम्पक लता, (३) विशाखा, (४) चित्रा, (५) इन्दुलेखा, (६) तुंग विद्या, (७) रंग देवी और (८) सुदेवी।

इसी प्रकार श्री कृष्ण लीला सहयोगिनी सखियों (मंजरियों) के नाम हैं—(१) लवंग मंजरी, (२) रूप मंजरी, (३) गुण मंजरी, (४) रतिमंजरी, (५) श्री मंजरी (६) अली मंजरी, (७) कस्तूरि मंजरी और (८) मंजुल मंजरी। इन सोलहों की यूथ शिरोमणि ललिता जी हैं और यूथेश्वरी श्री राधा जी। इनमें तत्त्वतः अभेद है।[1]

---

१. अष्ट सखी सब एक हैं, इनमें तनक न भेद।
परिकर मुख्य हैं प्रिया की, तिन्हें न जानत वेद॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामसखी जी ने किंकरी को मंजरी या सखी से अलग माना है। अतः उनकी मान्यता के अनुसार सखी समुदाय में यह तीसरी कोटि है। इसे ही उन्होंने सहचरी का पर्याय माना है जबकि निंबार्क, राधावल्लभी तथा सखी सम्प्रदाय में इसके भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। किसी ने सखी और सहचरी को एक दूसरे का पर्याय माना है तो किसी ने किंकरी, गोपी, सखी और कान्ता में अभेद बताया है। अस्तु शुक संप्रदाय में किंकरियों की भी संख्या आठ बताई गई है। इनके नाम इस प्रकार हैं—(१) चन्दन कला, (२) धनिष्ठा, (३) भरणी, (४) इंदुप्रभा, (५) गुणमाला, (५) तड़ित्प्रभा, (७) शोभा और (८) रंभा।

जहाँ तक सखियों का प्रश्न है इनका नित्य प्रेमलीलारत किशोर-किशोरी के प्रति तत्सुखी भाव होता है, लेकिन इस भाव की पूर्ण परिणति स्वसुख तथा तत्सुख की सीमा से आगे जाकर आत्मभाव में होती है। यद्यपि इस सम्प्रदाय में श्री राधा स्वामिनी होकर भी श्री कृष्ण की अंगीभूत एवं आह्लादिनी शक्ति हैं लेकिन कुछ ऐसे प्रसङ्ग भी वर्णित हैं जहाँ राधाबल्लभी सम्प्रदाय की भाँति श्री राधा की सत्ता श्रीकृष्ण से ऊपर अर्थात् उनकी स्वामिनी के रूप में दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में वे मात्र सहचर या अनुचर ही रह जाते हैं। उदाहरण रूप में राम सखी जी की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

अनुदिन लालहु रहत हैं, सदा प्रिया आधीन।
तेहि रस में सहचरि सकल, रहत मगन जिमि मीन॥

× × × ×

प्यारे को नचवत प्रिया, कबहुँ लकुट लै त्रासि।
जैसे सिखवत लाड़िली, नाचत तैसहिं लाल॥[1]

सखी सम्प्रदाय में श्री राधा और श्री कृष्ण नित्य किशोर-किशोरी, समरूप एवं समकक्ष हैं। वहाँ कोई किसी की स्वामिनी या कोई किसी का स्वामी नहीं है। अतः ऐसे ही कुछ उद्धरणों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है कि चरणदासी सम्प्रदाय की रसिक भाव की साधना में निंबार्क, गौड़ीय, राधा बल्लभीय और सखी सम्प्रदाय की कतिपय मान्यताएँ एक दूसरी के साथ गड्डमगड्ड हैं।

जहाँ तक इस सम्प्रदाय में गोपी भाव तथा गोपियों की स्थिति का प्रश्न है, इसका सीधा उत्तर कहीं उपलब्ध नहीं है। अर्थात् यहाँ गोपियों को कोई विशेष

अष्ट सखी हैं लाल की, आनन्दादिक नाम।
भेद शून्य सब जानहूँ, तिनको कोटि प्रणाम॥
—भक्तिरसमंजरी : दोहा सं० ११३-११४।

१. वही : दोहा सं० ९२ तथा १४१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्व नहीं दिया गया है। निंबार्क संप्रदाय में इन्हें सखियों से अभिन्न माना गया है। वहाँ ये नित्यकांता एवं स्वकीया के रूप में स्वीकृत हैं। यहाँ तक कि गोपियों को भी श्री राधा की ही भाँति श्री कृष्ण के साथ रतिलीला की अधिकारिणी माना गया है क्योंकि दोनों में कांता भाव की विद्यमानता है। इस संप्रदाय में सखियों के भी ५ भेद बताये गये हैं जो इस प्रकार हैं—(१) सखी, (२) नित्य सखी, (३) प्राण सखी, (४) प्रिया सखी और (५) परम श्रेष्ठी।

संत चरणदास जी और उनके शिष्य रामसखी जी ने इन कृष्णांशभूता एवं श्रीकृष्ण की शक्ति स्वरूपा गोपियों के स्थान पर सख्य भाव की कुछ 'उपासिकाओं' का नामोल्लेख अवश्य किया है जिन्हें संभवतः उन्होंने गोपियों के प्रतिनिधि रूप में माना है। उनके विचार से ये भी निकुंज रस-लीला में सहयोगिनी हैं। इनमें से कुछेक के नाम इस प्रकार हैं—

आनंदा, विमला, वृन्दा, चंद्रावली, यमुना, कुमुदा, शीला, सुषमा, श्यामला, श्यामा, कामा, रसिका, मधुरा, चंपा, भामा, कमला, चन्द्रा, अतुला, तारा, सुमना, करुणा, रत्ना, मैना, रूपा, हंसा, रंग और कुंजा आदि।

वस्तुतः ये श्री राधा परिकर की सहायिकाएँ हैं। इनके अतिरिक्त श्री कृष्ण के सखा मंडल द्वारा भी किशोर युगल की लीलाओं में सहयोग प्राप्त होता है। इस सखा मंडल के कुछ सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं—

सुबाहु, कुन्द, वृषभमणि, बंध, मिलिन्द, कुसुमापीड़, करंधम, चन्दन, कुलिक, पुण्डरीक, अंशु, श्रीदामा, भद्रसेन, विकटाक्ष, प्रियंकर, पीठमर्द, अर्जुन, सुबल, वसन्त, सनन्दन, कोकिल और गन्धर्व आदि।

श्री रूप गोस्वामी के गौड़ीय संप्रदाय में भी गोपी भाव और सखी भाव को प्रायः एक ही माना गया है, अतः उनके विचार से गोपियाँ ही सखियाँ हैं। इनमें चन्द्रावली सर्व प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सखियों में विशाखा, ललिता, श्यामा, पद्मा, शैव्या, भद्रा, तारा, विचित्रा, गोपाली और धनिष्ठा के नामों का समावेश है। इनमें से विशाखा, ललिता, चन्द्रावली और तारा को छोड़कर अन्य नाम श्री रामसखी जी की सखी, सहचरी, किंकिरी और अन्य सहयोगिनियों की सूची में नहीं हैं। तात्पर्य यह कि उनकी सखी भाव की भक्ति सम्बन्धी धारणा गौड़ीय मत से उतना प्रभावित नहीं है जितना श्री हरिदास जी की सखी सम्प्रदाय, राधा बल्लभी सम्प्रदाय और निंबार्क सम्प्रदाय से।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस सम्प्रदाय में सखी, मंजरी, किंकरी और गोपी (उपासिका) में तत्त्वतः कोई स्तरभेद नहीं माना गया है। कार्य या सेवा की दृष्टि से उनके समूह भिन्न-भिन्न अवश्य हैं लेकिन सभी का उद्देश्य निकुंज लीला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अधिकाधिक सेवा प्रदान करने का ही है। इस तथ्य को श्री रामसखी निम्न पंक्तियों द्वारा व्यक्त कर रहे हैं—

सखी मंजरी सहचरी, अनगिन जुत्थ अपार ।
मुख्य सेव निज कुंज सब, मानत जुगल बिहार ॥
नित्योत्सव सब मंडलन, सकल जुत्थ आनन्द ।
सेवा सबकी मानहीं, जीवन घन मुद कंद ॥[1]

इनमें भी ललितादि राधा जी की अष्ट सखियों और लवंग मंजरी आदि श्री कृष्ण की अष्ट सखियों में तो पूर्णतः अभेद है। यहाँ तक कि स्वयं श्री राधा और कृष्ण के साथ भी इनका अभेद है क्योंकि ये सभी इन दोनों की 'अंगजा' हैं। जिस प्रकार सभी अंग अंगी की सेवा में होते हैं, वैसे ही ये सखियाँ भी युगल किशोर-किशोरी की सेवा करती हैं।[2]

ज्ञातव्य है कि श्री रामसखी ने अपने सम्प्रदाय को रस सम्प्रदाय, प्रेमलक्षणा भक्ति सम्प्रदाय और शुक सम्प्रदाय—इन तीन नामों से अभिहित किया है। उनके निष्कर्षानुसार इस सम्प्रदाय का धाम वृंदावन है, ग्राम नन्दग्राम है, मायका बरसाना है, पिता वृषभानु हैं, माता कीर्तिजी हैं, बहिन सखियाँ हैं और भाई बरसाना निवासी हैं।[3]

---

१. भक्ति रस मंजरी (प्रथम प्रकरण) : दोहा सं० १९१–१९२।

२. सोडस सखी हैं अंगजा, पिय प्यारी की जान ।
सब अंगन को कार्य यह, अंगी सेव प्रधान ॥
—वही : दोहा सं ११५।

३. वही : पत्र सं० ६९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट–२

चरणदासी संप्रदाय का वर्तमान परिप्रेक्ष्य
और
कतिपय उल्लेखनीय विभूतियाँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदासी सम्प्रदाय का वर्तमान परिप्रेक्ष्य

वर्तमान शतीश्री शुकसंप्रदाय (चरणदासी संप्रदाय) के विकासावरोध की शती है। इसके अनेक कारण हैं। इन पर इस ग्रन्थ में यथा स्थान प्रकाश डाला जा चुका है। इस ह्रासोन्मुखता के क्रम में भी इस सम्प्रदाय में कुछ ऐसी विभूतियाँ समय-समय पर उभरती रहीं, जिन्होंने इसे मुमूर्ष होने से अथवा इसके दीपक को निर्वाण प्राप्त होने से बचाये रखा है। वर्तमान में इस संप्रदाय में जो जागरण और पुनर्जीवन के लक्षण दिखाई दे रहे हैं, उसके मूल में श्री सरस माधुरी शरण जी का आविर्भाव एवं उनके प्रयत्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। वे वर्तमानकालीन शुक सम्प्रदाय के एक ऐसे स्तंभ के रूप में अधिष्ठित दिखाई देते हैं, जिस पर टिका हुआ इस सम्प्रदाय का मंदिर अभी भी सक्षम, स्थिर, सार्थक और प्रासंगिक है। क्या साहित्य, क्या दर्शन, क्या सरस भक्ति-सिद्धान्त निरूपण, क्या साधना और सिद्धि तथा क्या संगीत काव्यादि ललित कलाएँ—सभी क्षेत्रों को उनकी देन अमूल्य तथा महनीय है।

जयपुर का सरस निकुंज उनका कीर्ति मन्दिर है। प्राचीन साहित्य का जो अद्भुत संग्रह श्री सरस माधुरी शरण जी ने यहाँ सुरक्षित रख छोड़ा है यह सरस्वती का साक्षात् मन्दिर है। यह सैकड़ों शोधार्थियों तथा विद्या-व्यसनियों का कल्याण करने में सक्षम है। उन्होंने आचार्यों की जयन्ती महोत्सवों की जो परम्परा प्रारम्भ की वह आज भी अक्षुण्ण है और उससे इस सम्प्रदाय के अनुयायियों को सतत् प्रेरणा मिलती रहती है। डहरा का जन्मोत्सव, तीर्थ यात्राओं की समवेत योजना, अपने संप्रदाय के कवियों के साहित्य का प्रकाशन, जयपुर में रासलीला मण्डली की स्थापना, अनेक साहित्यिक-धार्मिक-सामाजिक-सांस्कृतिक संप्रदायों के आविर्भाव के साथ ही पहले से स्थापित ऐसी संस्थाओं का मार्गदर्शन आदि उनके अनेक ऐसे कार्य हैं, जो चिरस्मरणीय हैं। वे अपने आप में एक व्यष्टि नहीं बल्कि समष्टि थे।

इस लेख में उल्लिखित तथा ऐसी ही अन्य शताधिक विभूतियाँ इन्हीं प्रातः स्मरणीयश्री सरसमाधुरीशरण की देन है। श्री रूपमाधुरीशरण, सुश्री प्रेममाधुरी बाई जी, सुश्री किशोरी बाई, पं० रामगोपाल शास्त्री, मास्टर गङ्गाबख्श जी, श्री प्रेम अलीशरणजी, विहारी दासजी, प्रो० हरिनारायण जी, मास्टर मूलचन्द जी, प्रोफेसर गोविन्दप्रसादजी, प्रोफेसर प्यारेलालजी, श्री रामनारायण जी ठेकेदार, श्री राधेश्याम जी बी०ए०, कन्हैयालाल जी (अलवर), मदन जी, श्री हरिनारायण जी तोशनीवाल आदि सैकड़ों प्रबुद्ध शिष्यों की भीड़ में श्री गुप्त जी और मुहम्मद याकूब सनम जैसे इतर धर्मी शिष्य भी थे, जिनकी गुरुनिष्ठा और सरस भाव की भक्ति सराहनीय है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके अतिरिक्त अनगिनत दुःखदग्ध मानवों को उन्होंने हरिभक्ति पथ पर चला कर उनका कल्याण किया था। संप्रति यहाँ उनके केवल कुछ ही शिष्यों एवं प्रशिष्यों के साम्प्रदायिक तथा साहित्यक योगदान पर प्रकाश डालना अभीप्सित है।

१. सुश्री प्रेममाधुरी बाई—उच्चकोटि की साधिका, सरस भक्तिरसभाव-सिक्ता त्यागमूर्ति, गुरुभक्ता एवं रससिद्ध कवयित्री श्री प्रेममाधुरी बाई जी का पूर्वनाम धनवन्ती बाई था। जयपुर दरबार के पारिवारिक चिकित्सक एवं आर्यसमाजी विचारधारा के अनुगामी श्री नारायण दास माहेश्वरी इसके पिता थे। इनका जन्म चैत्र शुक्ल सप्तमी सं० १९५६ सन् (१९०० ई०) को जयपुर में हुआ था। अल्पायु में परिणीता श्रीमती धनवंती बाई का वैवाहिक जीवन उनकी १६ वर्ष की किशोरावस्था में ही वैधव्य को अर्पित हो गया। धीरे-धीरे श्रीकृष्णानुराग ने उनके जीवन की रिक्तता को भरना आरम्भ किया। उनकी विरक्ति भावना तथा सत्संग-निष्ठा को उनके आर्यसमाजी अभिभावकों ने पसन्द नहीं किया। अतः उनकी ओर से अवरोध उपस्थित होने लगा। श्वसुरालय में भी उन्हें साधना-आराधना में अनुकूलता नहीं प्राप्त हुई। अतः पिता एवं श्वसुर गृह से विरक्त होकर उन्होंने वृन्दावन में ही भजन-भाव में रत रहने का निश्चय किया। इसके पूर्व उन्होंने श्री सरसमाधुरी शरण जी से दीक्षा प्राप्त कर ली थी।

उनके मौसेरे भाई, बाल ब्रह्मचारी, परम वैष्णव एवं विरक्त महात्मा श्री रूपमाधुरी शरण जी महाराज पहले से ही वृन्दावन के युगल घाट पर रहकर साधनालीन थे। उनकी बड़ी अच्छी ख्याति थी और वृन्दावनीय महात्माओं में उनका सम्मानपूर्ण स्थान था। वे स्वयं भी श्री सरसमाधुरीशरण जी के शिष्य थे। उन्हीं की प्रेरणा से वैधव्योपरान्त हरिभक्ति की ओर उन्मुख होने के लिये बाई जी ने श्री सरसमाधुरी शरण जी से दीक्षा ली थी।

वृन्दावन में निवास का निश्चय करने के उपरान्त दुःखी धनवन्ती बाई ने श्री रूपमाधुरीशरण से विरक्त वेश प्राप्त किया। विरक्त दीक्षा ग्रहण के साथ ही उनका हरि संबन्धी नाम प्रेममाधुरी बाई रखा गया। यह नाम उनकी उपाससा पद्धति का भी संकेतक है। वे वृन्दावन में जिस स्थान पर रहती थीं, वहाँ इतनी जगह नहीं थी कि जयपुर से वृन्दावन की यात्रा पर आये गुरु भाई तथा बहनों को सुविधापूर्वक रखा जा सके अतः अपनी विरक्ति यात्रा के क्रम में अपने पास की एक मात्र संपत्ति (कुछ स्वर्ण निर्मित चूड़ियाँ) को बेचकर उन्होंने उससे एक ऐसे स्थान के निर्माण का निश्चय किया, जहाँ शुक संप्रदायानुयायी कुछ दिनों तक रुककर यदि भजन-पूजन करना चाहें तो उन्हें स्थान का अभाव न हो।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये श्री रामनारायण जी ठेकेदार के नाम से वृन्दावन के दुस्सायत मुहल्ले में २२ अप्रैल सन् १९४० ई० को एक भूखंड क्रय किया गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

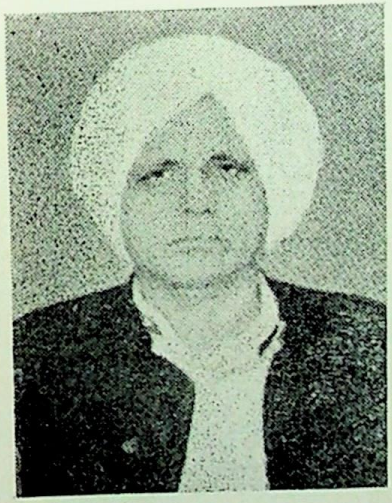

स्वामी सेवादासजी
(डहरा, अलवर)

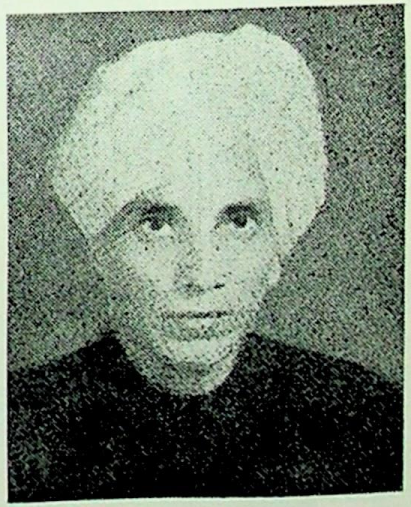

भूतपूर्व महन्त श्री प्रेमदासजी
(दिल्ली)

(पृ० ९४६)

श्री स्वामी पूरनदासजी (बहादुरपूर)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ श्री पं० रामगोपालजी शर्मा, (वृन्दावन)

(पृ० ७४६)

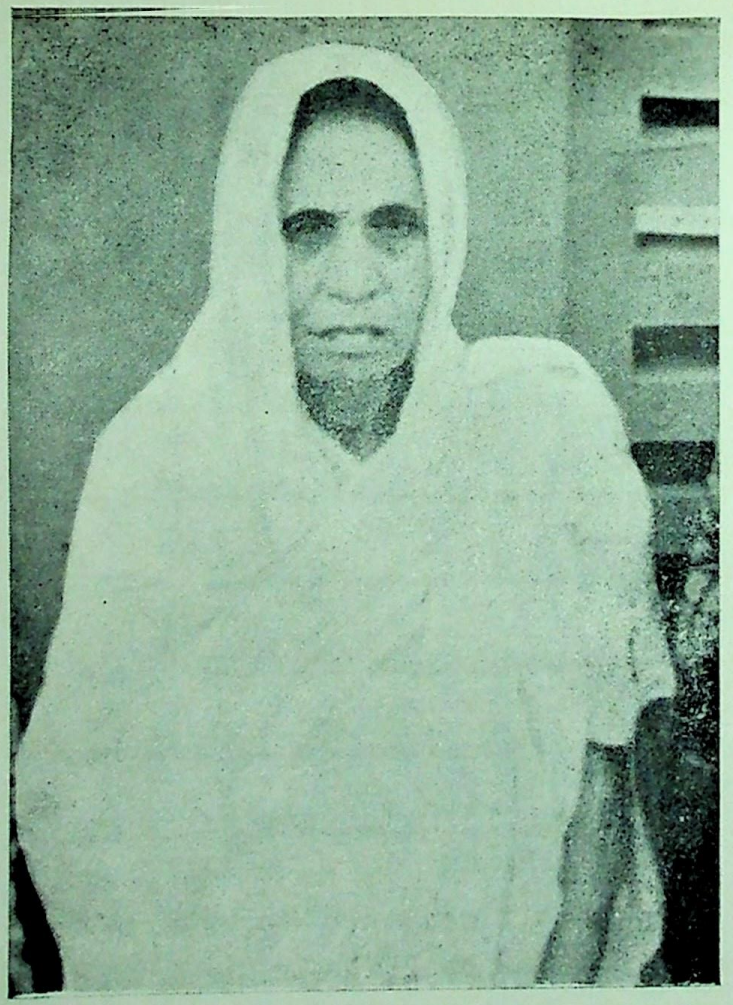

श्रीमती प्रेममाधुरीबाईजी (वृन्दावन)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुश्री प्रेममाधुरी बाई ने सुश्री किशोरी बाई (आसलपुर-जयपुर) श्रीमती ज्ञानवती बाई (धर्मपत्नी प्रभुदयाल जी लोईवाल, जयपुर) तथा रामनारायण जी ठेकेदार की सहायता से अपने गुरु श्री सरसमाधुरीशरण जी महाराज की स्मृति में एक स्थान का निर्माण कराया जिसका नाम 'शुकभवन' रखा गया। भूमिक्रय में अधिक योगदान देने के साथ ही बाई जी ने इस भवन में एक कमरा, एक पूजा गृह, बरामदा सहित एक रसोई घर तथा एक कूप अपने पैसों से निर्मित कराया। इसी प्रकार सुश्री किशोरी बाई तथा ज्ञानवती बाई जी ने इसमें बरामदा सहित एक-एक कमरा बनवाया। बाबू रामनारायणजी ठेकेकार ने भूमिक्रय में आंशिक योगदान से लेकर ५ कमरों, एक बड़ा रसोई घर, पाखाना, पेशाब खाना, खाली जमीन पर चहारदीवारी, मूर्ति स्थापना, पूजा की व्यवस्था तथा उत्सवादि पर होने पाले व्यय का भार स्वयं उठाया। आगे भी स्वयं तथा उत्तराधिकारियों द्वारा यह भार उठाते रहने का उनका संकल्प अभी भी क्रियान्वित हो रहा है।

श्री शुकभवन का निर्माण सन् १९४१ ई० में हुआ था। मिति वैशाख सुदी ५, सं० १९९९ वि० (सन् १९४२ ई०) को इस भवन के एक कक्ष में श्री शुकदेव मुनि की प्रतिमा शास्त्रीय विधि से एवं ससमारोह विराजमान कराई गई। सन् १९४५ ई० तक तो इसकी प्रबन्ध व्यवस्था सामूहिक रूप में चलती रही परन्तु नवम्बर सन् १९८६ में इसकी व्यवस्था निम्न सदस्यों से बने एक ट्रस्ट को सुपुर्द कर दी गई—

(१) श्री राधेश्याम जी (सुपुत्र श्री सरसमाधुरी शरण जी, जयपुर), (२) श्री मास्टर गङ्गा बख्श जी (हरिसंबन्धी नाम युगलमाधुरीशरण जी, जयपुर), (३) श्री मास्टर मूलचन्द्र जी (उपनाम श्री श्रीमतिशरण जी, वृन्दावन) (४) प्रभुदयाल जी लोईवाल (जयपुर) और (५) श्री रामनारायण जी ठेकेदार (सुपुत्र सेठ चुन्नीलाल जी अग्रवाल, जयपुर)। १० वर्षों तक तो इन ट्रस्टियों ने येन-केन प्रकारेण शुकभवन की व्यवस्था को सँभाला। फिर ५ जुलाई सन् १९५६ ई० को श्री सरस निकुंज—जयपुर में हुई ट्रस्ट की बैठक में श्री प्रेमस्वरूप जी (विरक्त चरणदासी वैष्णव—जयपुर) को इस भवन की प्रबन्ध व्यवस्था संबन्धी कार्य भार सँभालने के लिए 'मुख्तार आम'(सर्वाधिकारी)के रूप में मनोनीत किया गया।[1] तब

---

१. "अतः हम ट्रस्टीयान उक्त श्रीफूलचन्द जी उर्फ प्रेमस्वरूप जी विरक्त चरणदासी संत साकिन जयपुर को अपनी ओर से मुख्तार आमः (सर्वाधिकारी) नियुक्त करते हैं और उनको अधिकार देते हैं कि वे हम ट्रस्टियों की ओर से श्री शुक भवन ट्रस्ट वृंदावन के सम्बन्ध में समस्त दीवानी व फौजदारी व माल व समस्त सरकारी महकमों और दफ्तरों में और म्युनिसिपैलिटी व दीगर लोकल अथारिटि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सन् १९८१ तक (२५ वर्षों तक) लगातार उन्होंने बड़े श्रम, त्याग और लगन के साथ अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया। यद्यपि अस्वस्थता के कारण वे अब पहले की भाँति परिश्रम नहीं कर पा रहे हैं लेकिन तब भी वे यथासंभव सहयोग देते रहते हैं। यह श्री प्रेमस्वरूप जी की ही कर्मठता का परिणाम है कि श्री शुक भवन आज वृन्दावन में चरणदासियों का एक सक्रिय केन्द्र है।

बाई जी का वृन्दावननिवास एवं उनकी निकुंजोपासना—सन् १९४०-४२ ई० की अवधि में, जब कि बाई जी श्री शुकभवन के निर्माण की योजना को कार्यान्वित कर रही थीं, उनके गुरुभाई (शिष्य श्री सरसमाधुरीशरण) मास्टर मूलचन्द जी भी वृंदावन में रहकर भजन-भाव में तल्लीन थे। सन् १९४१ ई०में उन्होंने आग्रहपूर्वक बाईजी को दीक्षा देने हेतु तैयार किया। इसके पूर्व बाईजी का यही निश्चय था कि वे किसी को विरक्त दीक्षा नहीं देंगी। लेकिन उनके प्रति मास्टर साहब में इतनी गहन श्रद्धा थी कि वे उन्हें दीक्षा देने को विवश हो गईं। मास्टर मूलचन्द जी अवस्था में उनसे लगभग २० वर्ष बड़े थे, इसलिये शिष्य होने पर भी बाई जी ने उन्हें सर्वदा पूज्य की ही भाँति सम्मान दिया। गुरु-शिष्य दोनों उच्च कोटि के साधक थे, दोनों वृन्दावन रस में पगे हुए थे और साधना में सिद्धावस्था को प्राप्त थे।

उस समय वृदावन में दो श्रेष्ठ महात्मा थे—(१) ग्वारिया बाबा और (२) गौरांगदास जी। ये दोनों सिद्ध महात्मा बाई जी और श्रीमति शरण जी (मास्टर मूलचन्द जी) पर बड़े कृपालु थे। इन लोगों का परस्पर सतसङ्ग घण्टों होता रहता था। गौरांगदास जी के विषय में प्रसिद्धि है कि इनकी कथा जहाँ होती थी वहां देव शक्तियाँ पशु-पक्षी के रूप में उपस्थित होकर कथा का रसपान करती थीं। स्वयं बाई जी की ही साधना इस अवस्था को प्राप्त थी कि उन्हें एकाधिक बार श्री शुक-मुनि, श्री राधाकुमारी, श्री कृष्ण जी और बालरूपधारी गिरिराज जी के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे। भावना में विविध प्रकार की लीलाओं और उनके विविध लीला विग्रहों के दर्शन तो उन्हें होते ही रहते थे।

सन् १९४१ से १९५४ ई० तक दोनों गुरु शिष्य श्री शुकभवन में ही भजन-पूजन तथा साधना करते रहे। फिर वे सन् १९६२ ई० तक अर्थात् ८ वर्षों तक गौतम पाड़ा (वृंदावन) में रहे। तदुपरान्त १० वर्षों तक (सन् १९७२ ई० तक) ये लोग बरसाना और नन्दगाँव के मध्य स्थित प्रेमसरोवर नामक रमणीक स्थान में

के दफ्तरों में पैरवी करें·····तात्पर्य यह कि तमाम आवश्यक कार्य हम ट्रस्टीयान की तरफ से श्री शुकभवन ट्रस्ट वृन्दावन के सम्बन्ध में करें।

ता० २२ जुलाई सन् १९५७ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहकर शुद्ध सहचरी भाव से मानसी एवं दैहिक सेवा करते रहे। उस समय वहाँ रह रहे श्री प्रियाशरण जी के सतसंग का भी उन्हें लाभ मिलता रहा। सन् १९७२ ई० में दोनों गुरु-शिष्य पुनः श्री शुकभवन (वृंदावन) आ गये। वहीं रहते हुये आश्विन शुक्ल चतुर्दशी सं० २०३३ वि० (सन् १९४६ ई०) को ७६ वर्ष की अवस्था में बाई जी को निकुंज प्राप्ति हो गई।

बाई जी की साहित्यिक साधना —ये स्वभावतः स्वाध्याय प्रिय एवं कवि हृदया थीं। इन्होंने श्री शुक मुनि, श्री चरणदास जी, गुरुदेव श्री सरस माधुरी शरण जी, श्री रूपमाधुरीशरण जी तथा अन्य आचार्यों के जन्मोत्सवों के लिये अवसरोचित बधाई के अनेक सुन्दर पदों की रचना की थी। इनमें से श्री सरसमाधुरीशरण जी से संबंधित बधाई गीतों में से मात्र १८ पदों का ही प्रकाशन अब तक हुआ है।[1] इनकी शेष वाणियाँ शोध्य एवं प्रकाश्य हैं।

बधाई के ये प्रकाशित पद इस बात के साक्षी हैं कि ये उच्च कोटि की कवयित्री थीं। राग, ताल और लयबद्ध इन पदों में भाषा तथा भाव का बड़ा ही मंजुल सामंजस्य दिखाई देता है। उदाहरण रूप में इनका निम्न पद द्रष्टव्य है—

आली मोकों अति प्यारी लागे यह मावस हरियारी।
सावन मास सुहावन सजनी देखो है मङ्गलकारी॥
रिमझिम रिमझिम मेहा बरसे फूली फुलवारी।
घन गरजें अरु बिजुरी चमके पवन चले सुखकारी॥
प्रगटे श्री महराज सरस गुरु भक्तन हितकारी।
रस निकुंज को दान करन हित आये जगत मँझारी॥
सरस रूप को नित्य नैन भर जै जै कहि बलिहारी।
तन मन धन न्यौछावर करके भई प्रेम मतवारी॥[2]

बाई जी के इन पदों में 'प्रेम' और 'प्रेममाधुरी' दोनों नामों की छाप मिलती है। इनके संगीतात्मक साँचे में ढले शब्द और प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा प्रयोग ने राग-रागिनी निबद्ध इन पदों में प्रभूत आकर्षण तथा प्रवाह भर दिया है। इस

---

१. श्री सरस चरितामृत (लेखक, श्री श्रीमतिशरण)—प्रेमधाम प्रेस, वृन्दावन, सं० २०११ वि०।

तथा

श्री सरस बधाई संग्रह (प्रकाशक—श्री अलबेली माधुरीशरण) : सरसनिकुंज, दरीबा पान, जयपुर।

२. सरस बधाई संग्रह : पृ० ७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य की सिद्धि के लिये उन्होंने अवधी भाषा के शब्दों का भी बेखटक प्रयोग किया है, जैसा कि निम्न पद में हम देखते हैं—

आई मोरी सजनी कैसी यह आनन्द की घरी।
तरु बेली लता सब फूली फली है भूमि भई है हरी ॥
अमवा की डार कोयलिया बैठी बोले उमंग भरी।
सीतल मन्द सुगन्ध पवन चले मेहा लगाई झरी ॥
अभय हस्त मस्तक पर धर के परिकर मांहि वरी।
तन मन धन न्यौछावर करिके प्रेम के सिन्धु ढरी ॥[1]

सम्प्रदाय और साहित्य को बाई जी की देन अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। उनकी प्रेरणा, सहायता और योजना से निर्मित शुकभवन वर्तमान काल में सम्प्रदाय के विकासोन्मुखी उद्देश्यों की पूर्ति का सक्रिय केन्द्र है।

२. श्री श्रीमतिशरणजी (मास्टर मूलचन्द जी)—यद्यपि इन्हें भी गुरुमंत्र श्री सरसमाधुरीशरण जी से ही मिला था लेकिन विरक्त दीक्षा एवं भेष इन्होंने सुश्री प्रेममाधुरी बाईजी से ही प्राप्त किया था। येएक योग्य-गुरु के योग्य शिष्य, उच्चकोटि के साधक, प्रबुद्ध कवि एवं लेखक थे। ये श्रीमद्भागवत, अन्य आर्ष ग्रंथों एवं शुक सम्प्रदाय के आचार्यों की वाणियों के मर्मज्ञ पाठक थे। स्वाध्याय में इनकी इसी गहन रुचि को देखते हुए उनके इष्ट मित्र इन्हें 'किताबी कीड़ा' कहा करते थे।

मास्टर साहब का जन्म सन् १८९१ ई० में हिसार जिले के रतेरा नामक ग्राम के निवासी एक प्रतिष्ठित भार्गव कुल में हुआ था। जैसा कि सर्वविदित है, इस कुल-कमल के दिवाकरस्वरूप श्री चरणदास ने अपने अविर्भाव से पहले ही इस कुल को दीप्त कर दिया था। इनके पिता श्री प्रभुदयाल जी जयपुर के एक विद्यालय में अध्यापन करते थे। बचपन से ही मास्टर साहब में साधुसेवा और सत्संग के प्रति आकर्षण था। संयोग से उनके पैतृक निवास के पास ही शुक संप्रदाय के प्रख्यात महापुरुष श्री सरसमाधुरी शरण जी का पानदरीबा स्थित आवास था, जिसको 'सरस निकुंज' के नाम से जाना जाता है। रसिक गृहस्थ संत श्री सरसमाधुरी शरण जी आशु कवि एवं उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। वे श्री राधाकृष्ण युगल की नित्य लीला के चिन्तन में निरन्तर रत रहने वाले महात्मा थे। उनके यहाँ बड़े-बड़े उत्सव, रात्रि-जागरण, बड़ी-बड़ी वैष्णव सेवाएँ (भोज पंगतियाँ) एवं भजन-कीर्तन के आयोजन प्रायः होते रहते थे। जिज्ञासा और उत्सुकता वश बालक मूलचन्द सरस निकुंज में हो रहे सत्संग, नित्यविहार के पद गायन और श्रोता को देहानुसंधान रहित कर देने वाले

---

१. सरस चरितामृत : पृ० १५१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत आदि का आनन्द लेते रहते थे। धीरे-धीरे उन पर श्री सरस माधुरीशरण जी महाराज की कृपादृष्टि पड़ी। फलतः १८ वर्ष की अवस्था में ही मूलचन्द जी ने उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरु की ओर से उन्हें श्री राधाकृष्ण युगल की प्रतिमा सेवार्थ प्रदान की गई जिसे उन्होंने आजीवन लाड़ लड़ाया।

मास्टर साहब का गार्हस्थ्य जीवन अल्पकालिक ही रहा। गुरु के आदेश एवं आग्रह के कारण अपत्यार्थ (संतान हेतु) उन्होंने तीन शादियाँ कीं। प्रथम दो पत्नियाँ तो निसन्तान ही सिधार गईं। तीसरी पत्नी सन्तानवती तो हुई परन्तु १॥ वर्ष की अवस्था में ही वह बालक जाता रहा। इसके कुछ समय पश्चात् तीसरी पत्नी के चिर वियोग ने उनके वैराग्य भाव को ऐसा दृढ़ कर दिया कि सन् १९३६ ई० में चालीस वर्ष की ही अवस्था में उन्होंने वृन्दावन निवास अपना लिया।

उनकी शिक्षा उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के साथ बी० ए० तक हुई थी। जयपुर के त्रिपोलिया बाजार स्थित अग्रवाल स्कूल में ४० रु० मासिक वृत्ति पर उन्होंने प्रधानाध्यापक पद से आजीविका-वृत्ति का आरंभ किया था। प्रकृत्या त्यागी और साधु सेवी होने के कारण वे सदैव अर्थ कृच्छ्रता में ही रहे। उनका जीवन सादगी का आदर्श था। गृहत्याग करके वृन्दावन में निवास हेतु आने पर भी उन्होंने १० वर्षों तक भेषधारण नहीं किया। सामान्य वेशभूषा में रहते हुए भजन-भाव, ठाकुर सेवा और अध्ययन मनन में ही वे कालक्षेप करते रहे। इस अवधि में उनका निवास श्री गदाधर जी भट्ट के मंदिर-परिसर में रहा। यह स्थान भी श्री राधा बल्लभ जी के मन्दिर के निकट है।

दिनांक २५ दिसम्बर सन् १९४० ई० को उन्होंने सुश्री प्रेममाधुरी बाई से विरक्त बाना धारण किया। तब से उनका हरिसंबन्धी नाम 'श्रीमतिशरण' हुआ। वृन्दावन वास की अवधि में नित्य यमुना स्नान, श्री विहारी जी तथा श्री राधा बल्लभजी के दर्शन और अष्टयाम रीति से ठाकुर जी की सेवा उनकी दिनचर्या के अंग थे। रसिक साधना में स्वीकृत आचार-विचार, यथा—आचार्य निष्ठा, श्रीमद्भागवत निष्ठा, नवधा भक्ति, धर्मनिष्ठा; संतसुलभ अन्तर्मुखता, समभाव, सर्वभूत के प्रति करुणा, परोपकार भावना, सहनशीलता, शान्ति, मुदिता (निश्चिंतता), अपरिग्रह, अमानित्व, शिष्य वत्सलता, सुशीलता और औदार्य आदि उनमें यथोचित मात्रा में वर्तमान थे।

सन् १९७२ ई० में अपने परमादरणीय गुरु सुश्री प्रेममाधुरी बाई जी के निकुंज लाभ के पश्चात् वे अपने एक कृपापात्र श्री नन्दलाल जी पारीक (गुडगांव निवासी) के यहाँ अपने ठाकुर जी के साथ चले आये। ३ जुलाई सन् १९८७ ई० (आषाढ़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्ल सप्तमी, सं० २०४४ वि०) शुक्रवार को ९७ वर्ष की आयु में ऐहिक शरीर त्याग के पूर्व वे मुख्यतः वहीं रहे। बीच-बीच में वे शिष्यों एवं अन्य प्रेमी सज्जनों के साथ अपने आचार्य पीठों (शुकतार, डहरा, वृंदावन, दिल्ली, जयपुर आदि) में आयोजित होने वाले उत्सवों में भी भाग लेते रहे। अपने जीवन काल में उन्होंने अनेक बार आचार्य जयन्तियों, रात्रि जागरणों, भंडारों, समाज गायनों आदि का सोल्लास आयोजन किया।

सन् १९४२ ई० से ही वे पद-रचना करने लगे थे। उनकी बानियों की ५० कापियाँ श्री नन्दलाल पारिक के यहाँ सुरक्षित बताई जाती हैं। इन बानियों से युक्त बानी संग्रहों के प्रकाशन की योजना कार्यान्वित करने की दिशा में प्रयत्न हो रहा है। संप्रति इनका 'सरस चरितामृत' नामक ग्रंथ प्रकाशित है। इसमें श्री सरस माधुरीशरणजी का जीवन चरित्र वर्णित है। इसके अन्त में श्री प्रेममाधुरी बाई जी के १८ बधाई के पद भी संकलित हैं, जो उनके गुरु श्री सरस माधुरीशरण जी की जन्मबधाई के रूप में रचित हैं। इस कृति का प्रकाशन सन् १९५४ ई० में वृन्दावन से हुआ था।

३. श्री युगल मनोहर शरण जी (मास्टर श्री गङ्गाबख्श जी)—वर्तमान शताब्दी में आलोच्य सम्प्रदाय की जो उल्लेखनीय विभूतियाँ प्रादुर्भूत हुई हैं, उनमें मास्टर साहब का स्थान बड़ा ही सम्मानपूर्ण है। इस संप्रदाय के पुनरुद्धारक श्री सरसमाधुरीशरणजी के जिन योग्य शिष्यों ने सम्प्रदाय के बहुमुखी विकास में भरपूर योगदान किया, उनमें इनका नाम अविस्मरणीय है। श्री युगल मनोहर शरण जी एक सिद्ध महापुरुष थे। उनकी वाणी सिद्ध थी। वे अनाहतनाद-श्रवण, भूत-भविष्य-वर्तमान दर्शन, सूक्ष्म रूप तथा ध्वनि तरङ्गों के वेत्ता एवं दिव्य गन्ध के अनुभूति कर्त्ता थे। संक्षेप में वे अदृष्ट-द्रष्टा थे। जीवन के उत्तर काल में वे प्रायः चिन्मय जगत् में ही रहा करते थे। उनमें देहाभिमान का पूर्णतः अभाव था। कभी-कभी अवधूत वेशधारी स्वरूप में और कभी-कभी दिगम्बर वेश में भी रहा करते थे। उनका जीवन त्याग और समर्पणमय था।

ऐसे अलोकसामान्य व्यक्तित्व के धनी श्री युगल मनोहर शरण जी का जन्म जयपुर के एक प्रतिष्ठित अग्रवाल कुल में मार्गशीर्ष कृष्ण ६, सं० १९३९ वि० तदनुसार सन् १८८२ ई० में हुआ था। उनका आरम्भिक नाम श्री गङ्गाबख्श था। इसके पिता श्री महादेव जी छिगनी वाले अपने एक सम्बन्धी के साझे में कपड़े की दुकानदारी करते थे। मात्र चार वर्ष के शिशु (गङ्गाबख्श जी) को छोड़कर ममतामयी जननी स्वर्ग सिधार गईं। मातृविहीन बालक का पालन पोषण दादी जी द्वारा सम्पन्न हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. श्री युगलमनोहरशरणजी महाराज, (वृन्दावन)

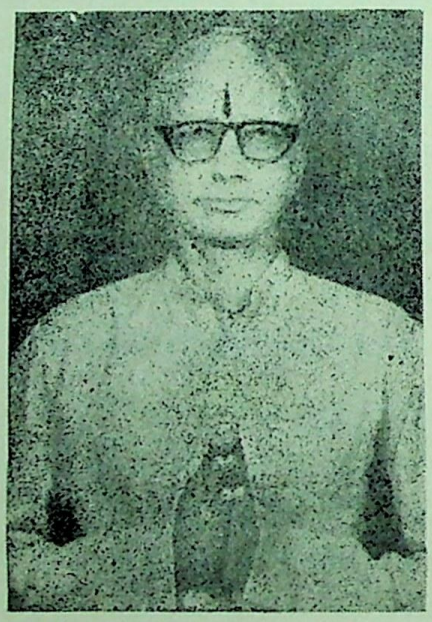

श्री नारायणलालजी माथुर
(जयपुर)

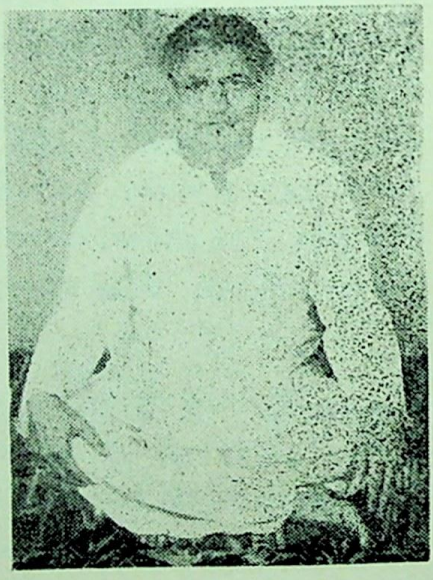

श्री प्रह्लाददासजी शर्मा
(जयपुर)

(पृ० ७५३ ।)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक गङ्गाबख्श प्रारम्भ से ही मेधावी छात्र रहे। उनके श्रम और बुद्धि-वैलक्षण्य के फलस्वरूप सन् १९०० ई० में इलाहाबाद बोर्ड द्वारा ली गई मैट्रिक की परीक्षा में उन्हें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। उनकी इस सफलता के लिये जयपुर दरबार की ओर से उनका सम्मान किया गया तथा उन्हें पुरस्कृत किया गया। उसी वर्ष उन्होंने कलकत्ता बोर्ड की भी परीक्षा दे दी और योग्यता सूची में ११ वाँ स्थान प्राप्त किया। उन्होंने सन् १९०५ ई० में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसी वर्ष से राजकीय शिक्षा में सहायक अध्यापक पद पर नौकरी आरम्भ की। वे प्रायः अंग्रेजी, गणित, भूगोल, और विज्ञान विषय पढ़ाते थे। वे बड़े ही लोकप्रिय अध्यापक थे। अपनी सादगी और भक्तिसाधनोन्मुखता के कारण अध्यापकों और छात्रों द्वारा 'भगत जी' के नाम से पुकारे जाते थे।

श्री मास्टर साहब बड़े ही शिष्यवत्सल, निर्लोभी और सत्यनिष्ठ महापुरुष थे। उनका विवाह छोटी अवस्था में ही हो गया था। परन्तु यह उनके लिये बन्धन-कारक नहीं बन सका। २७ वर्ष की अवस्था तक तो वे निस्संतान ही थे। उसके कुछ समय उपरान्त श्री राधेश्याम जी (उनकी प्रथम संतान) का जन्म हुआ। इसके पश्चात् उत्पन्न ३ पुत्रों और १ पुत्री में से सभी जाते रहे। जैसे मास्टर साहब अपने पिता-माता की इकलौती संतान थे वैसे ही श्री राधेश्याम जी भी हो गये। वे (राधेश्याम जी) एम० ए० तक शिक्षित थे और सरकारी नौकरी में बजट आफिसर के पद से सेवा निवृत्त हुए। अपने पिता की भाँति वे भी धर्मनिष्ठ सद्-गृहस्थ थे। श्री शुकभवन वृंदावन के कार्यक्रमों में इनका भी पर्याप्त सहयोग मिलता रहा। श्री मास्टर साहब बड़े ही एवं स्वाध्याय प्रेमी व्यक्ति थे। वे षट्शास्त्र, गीता, उपनिषद्, पुराण, इतिहास एवं पाश्चात्य दर्शन के अच्छे ज्ञाता थे। भारतीय दर्शन तो उनके अध्ययन का मुख्य विषय ही था। इसी के फलस्वरूप भक्ति वैराग्य और साधना के प्रति उनमें किशोरावस्था से ही आकर्षण था। १८ वर्ष की अवस्था में ही एक बार वे घर-बार छोड़कर वृंदावन चले गये थे। बड़ी कठिनाई से मनाकर उन्हें घर वापस लाया गया था। वे यथालाभ संतुष्ट तथा साधुसेवी सन्त थे।

३६ वर्षों तक राजकीय शिक्षा विभाग में सहायक अध्यापक के रूप में सेवा करने के उपरान्त वास्तविक सेवा निवृत्ति काल के २ वर्ष पूर्व ही सन् १९४१ ई० में उन्होंने पदत्याग कर दिया था। उस समय उनको मासिक पेंशन के रूप में ७५ रुपये मिलते थे। वे वृन्दावन में चले आये और सन् १९४२ ई० में शुक भवन (वृंदावन) में रहकर सेवा उपासना में रत सुश्री प्रेममाधुरी बाई तथा उनके शिष्य श्रीयुत श्रीमतिशरणजी की प्रेरणा से उन्होंने सामान्य वेश त्याग कर शुक सम्प्रदाय में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विहित वस्त्रादि धारण कर लिया। विरक्त स्वरूप स्वीकार कर करने के पूर्व ही अपने परम स्नेही श्री हरिनारायण जी तोषनीबाल की प्रेरणा से वे सरस परिकर सर्वस्व श्री सरसमाधुरी शरण जी से मंत्र दीक्षा प्राप्त कर चुके थे।

श्री युगल मनोहर शरण जी की सेवा अर्त्तावतार की थी। गोपी प्रेम (जिसमें विरहानुभूति की प्रधानता है) उनकी साधना का आदर्श था। साधना की परिपक्वावस्था में वे प्रायः विरहावेश में हो जाया करते थे। फलस्वरूप तन-मन की सुधि बिसरा कर वे परम विरहानुभूति की स्थिति में हो जाते थे। यहाँ तक कि उनके परम रसिकाचार्य गुरु श्री सरस माधुरी शरण जी भी उनकी इस स्थिति से कभी-कभी उनके लिये चिन्तित हो जाते थे। उन्हें प्रायः भोजन, वस्त्र एवं दैनिक चर्य्या आदि का भी भान नहीं रहता था। उनकी अन्तर्वृत्ति निर्मल थी अतः उस पर अंकित सूक्ष्म भावों का उन्हें सहज ही ज्ञान हो जाता था। उन्होंने अपने कतिपय कृपापात्र शिष्यों के साथ व्रज के तीर्थों के अतिरिक्त काशी, प्रयाग, अयोध्या, बद्रीनाथ, द्वारिकापुरी, श्रीनाथद्वारा तथा अन्य अनेक पुण्यस्थलों की एकाधिक बार यात्रा की थी। स्वास्थ्य अनुकूल न होने पर भी शुक सम्प्रदाय में स्वीकृत उत्सवों एवं जयन्तियों के आयोजन में उनकी विशेष रुचि थी। उन्हें समय-समय पर अनेक अलौकिक अनुभव हुआ करते थे। उनके ऐसे कई चमत्कारपूर्ण अनुभवों का उल्लेख श्री प्रेमस्वरूप जी ने अपने आदर्श संत नामक पुस्तक में किया है।

इस महापुरुष का नित्यलीला प्रवेश सत्तर वर्ष की अवस्था में मिति वैशाख शुक्ल एकादशी सं० २००९ (५ मई सन् १९५२ ई०) को हुआ। ये सरलता, सहिष्णुता, समता, उदारता, दया, क्षमा, परोपकारिता, आराध्यनिष्ठा, कर्मठता, और विद्वत्ता की प्रतिमूर्ति थे। इन्हीं की विचार-आचार वल्लरी इनके शिष्यों प्रेमस्वरूप जी, नारायण लाल जी माथुर और प्रह्लाद दास जी शर्मा आदि शिष्यों में पुष्पित पल्लवित होकर अपनी सुगन्धि और छाया आज भी वितीर्ण किये हुए है।

इनमें जाति, धर्म, संप्रदाय या अन्य किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। वे निस्संकोच होकर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और अन्य धर्म एवं सम्प्रदायावलम्बियों के अच्छे-अच्छे धार्मिक आयोजनों में सम्मिलित होते थे। श्री लिआकतहुसैन (बाल्यकाल के मित्र) की कव्वालियाँ और कबीरपंथियों तथा नाथ सन्तों के भजन वे बड़े चाव से सुनते थे। काली कमलीवाले बाबा जी से उनकी अच्छी पहचान थी। श्री रामानुजी आचार्यों, निम्बार्क, रामानन्दी और अयोध्या के रसिक रामभक्त, योगिराज स्वामी माधवानन्द जी; जयपुर के मुसलमान संत श्री मस्त बाबा, गलता के परमहंस जी, वृंदावन के श्री ग्वारिया बाबा आदि अनेक समकालीन संत-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्माओं के साथ उनका सत्संग होता था। बरसाना के श्री हंसदास जी उनके विशेष आदर के केन्द्र थे। तात्पर्य यह कि वे बड़े ही सत्संगी और प्रेमी महात्मा हुए हैं।

४. श्री रामगोपालजी शास्त्री—श्री युगलमनोहर शरण जी के गुरुभाइयों में श्री रामगोपाल जी शर्मा उनके विशेष श्रद्धा-भाजन एवं प्रेमी थे।[1] ये संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे और जयपुर के राजकीय विद्यालय में संस्कृत के अध्यापक थे। आरंभ में श्री सरस माधुरी शरण जी के स्थान 'सरस निकुंज में होने वाले विविध उत्सवोंमें वे मात्र दर्शक के रूप में उपस्थित होते थे। धीरे-धीरे उनसे दीक्षा लेने की इच्छा बलवती होती गई और उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके उपरांत उन्होंने जयपुर के कोलाहलपूर्ण वातावरण को छोड़कर व्रज में वास करने का निश्चय किया। उन्होंने कुछ वर्षों तक श्री गोवर्द्धन में रहकर भजन भाव के साथ-साथ वहाँ के संस्कृत विद्यालय में अध्यापन कार्य भी किया।

वे प्रायः युगलमनोहर शरण जी के साथ ही रहा करते थे। दोनों गुरुभाइयों में प्रगाढ़ स्नेह-भाव था। उन्हें श्रीमद्भागवत की पोथी कंठस्थ थी। उनकी कथा में अच्छे-अच्छे लोग जुटा करते थे। कथा के माध्यम से जो द्रव्य-प्राप्ति होती थी, उसे वे संतों की आवभगत एवं दान-दक्षिणा में खर्च कर देते थे। स्वयं अत्यन्त सादगी से रहते थे। ९० वर्ष की अवस्था में सं० २०२१ वि० (सन् १९६४ ई०) में उन्हें निकुंज प्राप्ति हुई। उनकी कुछ फुटकल बानियाँ सरस निकुंज (जयपुर) के पुस्तकालय में देखने को मिली थीं। उन पर श्री सरस माधुरीशरण और श्री युगल मनोहर शरण जी की विशेष कृपा थी अतः एक विद्वान्, साधक, कवि, वक्ता, कथावाचक और सन्त के रूप में व्रज में उन्हें बहुत अच्छी ख्याति मिली। इससे शुक सम्प्रदाय को भी लाभ हुआ और अनेक लोगों ने उनसे मार्गदर्शन प्राप्त किया।

५. प्रेमस्वरूप जी—श्री श्रीमतिशरण जी के शिष्यों की नामावली प्राप्त नहीं हो सकी है। अनुमानतः श्री प्रेममाधुरी बाई जी की ही भाँति ये भी शिष्य दीक्षा देकर शिष्य बनाने में रुचि नहीं रखते थे। श्री प्रेमस्वरूप जी इनके प्रख्यात शिष्य हैं। यद्यपि उन्होंने प्रारम्भिक गुरुमन्त्र दीक्षा श्री युगल मनोहर शरण जी से प्राप्त

---

१. श्री रामगोपाल जी शर्मा का जन्म गोविन्दगढ़ (राजस्थान) में सं० १९३१ में हुआ था। उन्होंने शास्त्री कक्षा तक संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की थी। आरंभ में वे गृहस्थ रूप में रहते हुए ही भजन-पूजन एवं सत्संग आदि में लगे रहे परन्तु पत्नी के देहावसान के पश्चात् उन्होंने विरक्त चरणदासी वैष्णव वेश भूषा धारण कर ली।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की थी परन्तु विरक्त वेश सन् १९५३ ई० में इन्हीं से ग्रहण किया। इसलिए श्री प्रेमस्वरूप जी की इन दोनों गुरुओं के प्रति अगाध श्रद्धा है। इसका सबसे उपयुक्त उदाहरण यह है कि इन्होंने श्री युगल मनोहर शरण जी (मास्टर साहब श्री गंगा बख्श जी) के जीवन चरित्र तथा उनके तत्वोपदेश से युक्त 'आदर्श सन्त' शीर्षक लगभग २७५ पृष्ठों का उच्च कोटि का चरित ग्रन्थ प्रकाशित कराकर गुरु चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।[1] इसी प्रकार अपने गुरु के विरक्त दीक्षा गुरु महनीया श्री प्रेम माधुरी बाई जी की इच्छा को स्वीकार करते हुए उनकी प्रेरणा तथा सहायता से निर्मित उनके गुरुदेव (श्री सरसमाधुरी शरण जी महाराज) के स्मृति चिह्न स्वरूप श्री शुकभवन (वृन्दावन) की प्रबन्ध व्यवस्था का भार २५ वर्षों तक अनवरत न केवल वहन किया प्रत्युत उसका और उसके माध्यम से शुक सम्प्रदाय का बहुमुखी विकास भी किया।

वर्तमान काल के सर्वाधिक प्रबुद्ध एवं विरक्त चरणदासी वैष्णव सन्त श्री प्रेम स्वरूप जी का जन्म संवत् १९७० वि० (सन् १९१३ ई०) में सवाई माधोपुर (जयपुर राज्यान्तर्गत) में हुआ था। इनके पिता श्री रामनारायण जी एक सम्पन्न एवं बल्लभकुल में दीक्षित ब्रह्मखत्री कुलभूषण थे। इनकी माता सुश्री हीराबाई जी एक धर्मप्राण गृहिणी थीं। इनका बचपन का नाम फूलचन्द था। चूँकि इनके नाना को कोई पुत्र संतति नहीं थी, अतः श्री फूलचन्द की आरम्भ से मैट्रिक तक की शिक्षा उन्हीं के यहाँ पूर्ण हुई।

इनमें भक्ति के अंकुर १० वर्ष की अवस्था में ही परिलक्षित होने लगे थे। इसलिए मैट्रिक से आगे की शिक्षा प्राप्त करने के प्रति इनमें कोई रुचि नहीं थी। सत्संग की खोज में १९ वर्ष की अवस्था में ही वे नाना के यहाँ से (बाराँ–कोटा राज्य) जयपुर चले आये। जीविका और संत–समागम साथ–साथ चलते रहें, इस उद्देश्य से प्रारम्भ में कुछ समय के लिये उन्होंने एक व्यापारी के यहाँ नौकरी कर ली और व्यापार का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर लेने के उपरांत श्री फूल चन्द ने अपना स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ कर दिया।

घर-गृहस्थी के प्रति पहले से ही लगाव नहीं था परन्तु स्वजनों के आग्रह पर २२ वर्ष की अवस्था में उनको शादी करनी पड़ी। कुछ ही कालोपरांत इनकी गृह

---

१. आदर्श सन्त (श्री युगल मनोहर शरण जी महाराज, आरम्भिक नाम–मास्टर साहब श्री गंगा बख्श जी का जीवन चरित्र व तत्वोपदेश)—लेखक, प्रेम-स्वरूप जी, प्रकाशक श्री राधेश्याम अग्रवाल, १२३०, कोटावालों का रास्ता, जयपुर (राजस्थान) संवत् २०३४ वि०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मी ने तीन वर्ष के एक मात्र शिशु को असहाय छोड़कर परलोक सिधार गईं। यह बालक वर्तमान में एक कुशल अभियन्ता के रूप में अमेरिका में भारत के गौरव की अभिवृद्धि में अपना योगदान कर रहा है। पत्नी से चिरवियोग के बाद, सत्संग और चिन्तन-मनन की ओर इनकी आसक्ति बढ़ती गई। फलतः सन् १९४२ ई० में जयपुर के परम तेजस्वी चरणदासी सन्त श्री युगल मनोहर शरण जी से उन्होंने मन्त्र दीक्षा प्राप्त कर अनासक्त जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। सन् १९५२ ई० में उन्होंने गृहस्थी का त्याग कर दिया।

सन् १९५३ ई० में श्री शुक भवन (वृंदावन) की निर्माणकर्त्री एवं सिद्ध वृन्दावनरसोपासिका सुश्री प्रेममाधुरी बाई जी से उन्होंने विरक्त भेष ग्रहण कर लिया। तब से श्री फूलचन्द प्रेमअली शरण अथवा प्रेमस्वरूप के नाम से विख्यात हुए। सन् १९५६ ई० में श्री शुकभवन ट्रस्ट के ट्रस्टियों द्वारा उक्त ट्रस्ट के मुख्तार आम (सर्वाधिकारी) के रूप में उनका मनोनयन हुआ। इस भवन की प्रबन्ध व्यवस्था को संभालने के साथ ही उन्होंने शुक सम्प्रदाय की अभिवृद्धि के लिए जो भी आवश्यक था, सब कुछ किया। सन् १९८१ ई० से अस्वस्थता के कारण श्री शुक भवन से इनका लगाव कुछ कम हुआ है और वे अपना अधिकाधिक समय स्वाध्याय, मानसी सेवा, चिंतन, मनन और सम्प्रदाय से सम्बन्धित साहित्य को प्रकाशित करने की दिशा में दे रहे हैं।

आप बड़े ही विनीत, मधुभाषी, बहु पठित, प्रगतिशील विचारक, श्रीमद्भागवत एवं गीता के मर्मज्ञ, शुकसंप्रदाय के आचार्यों की वाणियों के प्रकाशक तथा प्रचारक, विज्ञ, संप्रदाय सिद्धान्त व्याख्याता, प्राचीन पाण्डुलिपियों के अनुभवसिद्ध संपादक-मीमांसक, सम्प्रदायोद्धारक, विविध सांप्रदायिक एवं पारम्परिक उत्सवों-आयोजनों के पुरस्कर्ता, लेखक, वक्ता और व्यावहारिक हैं। शुक सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्यों, कवियों, सन्त-महन्तों एवं गृहस्थ अनुयायियों के ये मार्गदर्शक रूप में सम्मानित हैं।

श्री प्रेमस्वरूप जी के कारण ही जयपुर में चरणदासी संप्रदाय आज भी जागृत एवं समुन्नत है। उनके जिन गुरुभाइयों अर्थात् श्री युगलमनोहर शरण जी के शिष्यों ने इस सप्रदाय के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान दिया है उनमें श्रीशिवराम शर्मा, फूलचन्द आलवाले, हनुमान सहाय जी पुरोहित, प्रहलाद दास जी शर्मा, प्रभुदयाल वकील, नारायण लाल जी माथुर, दुर्गाप्रसाद माथुर, गोपाल लाल खत्री, द्वारिकादास तोषनीवाल, श्याम बाबू माथुर, सीताराम माथुर, घनश्याम माथुर, दामोदर जी बायती, प्रभुनारायण शर्मा और श्रीमती उत्तमबाई आदि के नाम विशेष उल्लेखनीन हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. श्री नारायणलालजी माथुर—श्री प्रेमस्वरूप जी महाराज के गुरुभाइयों में श्रीनारायणलाल जी माथुर शुक संप्रदाय के सिद्धान्त तथा साहित्य के बड़े अच्छे जानकार हैं।[1] ये उच्चकोटि के कवि भी हैं। माथुर जी बड़े ही संवेदनशील एवं भावुक भक्त हैं। अपने संप्रदाय के आचार्यों, कवियों और उनकी वाणियों के प्रति इनकी अटूट श्रद्धा है। ये परम सत्संगी तथा बहु पठित व्यक्ति हैं। इनकी बानियाँ काव्य एवं कथ्य की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। इनकी प्रतिभा बहु आयामी है। लेखन, संपादन, प्रकाशन तथा तत्संबंधी कार्यों में इनकी गहन रुचि है।

७. प्रह्लाद दासजी शर्मा—प्रेमस्वरूप जी के दूसरे गुरुभाई (युगल मनोहर शरण जी के शिष्य) श्री प्रह्लाद दास शर्मा (जयपुर) एक अच्छे कवि तथा संस्कारी व्यक्ति हैं।[2] यद्यपि ये अभी गृहस्थी में हैं और अध्यापन कार्य करते हैं परन्तु भगवत्सेवा और काव्य रचना का कार्य इनका नित्य नैमित्तिक कार्य है। इस प्रकार ये गुरु के प्रत्यक्ष एवं ध्यान की स्थिति में दिये गये आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन कर रहे हैं। इन्हें गुरुदेव का स्वप्न में आदेश प्राप्त हुआ था कि एक पद रचना के बाद ही भोजन ग्रहण करें। इनके अधिकांश पदों में इनके कवि नाम 'अन्तर्स्नेही' और 'प्राणसखी' की छाप मिलती है। इनकी प्रमुख रचनाओं के शीर्षक इस प्रकार हैं—

(१) श्रीमद्भगवद्गीता का स्वरचित पद्यानुवाद।

---

१. श्री नारायण लाल जी माथुर का जन्म २१ जनवरी सन् १९३१ ई० को चाँदपोल बाजार जयपुर में हुआ था। इनके पिता श्री इन्दर लाल जी जयपुर रियासत में स्थित चौमू के निकटस्थ रावल सामोद के खजाँची थे। श्रीमाथुर साहब बी० काम० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् जयपुर के पारिख कालेज में स्टेनो टाइप के इन्स्ट्रक्टर पद पर नियुक्त हुए थे, जहाँ से अब वे सेवा निवृत्त हैं। इन्होंने १० वर्ष की अवस्था में ही श्री युगल मनोहर शरण जी से दीक्षा ले ली थी। इनके दोनों सुपुत्र संप्रति राष्ट्रीय जलविद्युत संस्थान में अभियन्ता पद पर कार्यरत हैं। श्री नारायणलाल जी और अन्य गुरुभाइयों में बहुत अच्छा संबंध है।

२. श्री प्रह्लाद दास शर्मा का जन्म सं० १९८९ वि० (सन् १९३२ ई०) में नाहरगढ़ रोड, जयपुर में हुआ था। इनका भगवत्संबंधी नाम श्री अन्तर्स्नेही प्राणसखी है। इनकी शिक्षा एम० ए०, बी० एड० तक है। इनके पिता श्री भौरोलाल जी मिश्र जयपुर राज्य के राजघराने में भगवत्सेवा का कार्य करते थे। विवाह के पूर्व ही २२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने श्री युगल मनोहर शरण जी से दीक्षा ले ली थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) श्रीनारायण कवच का पद्यानुवाद।

(३) सद्गुरु तत्व प्रकाश।

(४) अन्तर्स्नेही तत्व प्रकाश।

श्री शर्मा जी को त्राटक साधना का बहुत अच्छा अभ्यास है। इनको भावावेश में अनेक बार अवधूत वेशधारी गुरु तथा भगवत्स्वरूप के दर्शन प्राप्त हो चुके हैं। इस प्रकार ये एक उच्चकोटि के कवि तथा साधक हैं। ये गृहस्थ होकर भी विरक्त हैं। सत्संग, साधु-अतिथि सेवा और पद-रचना करना इनका व्यसन है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सरस परिकर से संबद्ध महानुभावों, उनके शिष्य-प्रशिष्यों तथा इन सबसे प्रभावित सद्गृहस्थों की सक्रिय भूमिका के फलस्वरूप आज के जयपुर, अलवर एवं राजस्थान के कुछ अन्य नगर तथा ग्रामीण अंचल चरणदासी सम्प्रदाय में हुए आचार्यों, कवियों एवं सन्त-महन्तों की वाणियों तथा उनके द्वारा दिये गये संदेशों से अनुप्राणित और अनुगुंजित हैं। चरणदास जी के जीवन काल तथा उसके पश्चात् लगभग १०० वर्षों तक इस संप्रदाय का केन्द्र दिल्ली महानगर था लेकिन अब यह जयपुर में है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य

व्यक्तिनामानुक्रमणिका

[अ]

अकबर (बादशाह)—११, १९, ३५।
अकबर (औरंगजेब का बेटा)—३, ४।
अकबर द्वितीय (शाह आलम का पुत्र) —११।
अखैरामदास (अक्षय राम)—२५, ३४, ८६, ८७, १६४, १८२, ३८४, ३८७, ३९१–४३०, ५०३, ५३५, ५:७, ५८२, ५९०।
अगमदास निर्मोही—१६४, ३४९, २५५, २६७-२६८, ५६७।
अचलदास—३४९।
अजपादास—१६४, २४३, २७६, २७७, २८१, २८७, ३२८–३३०।
अजयपाल—४२।
अजीतसिंह—८, ९।
अजीमुश्शान—५, ७।
अडिगराम—३५०।
अतीतराम—२२८, ५८८, ६०६, ६१८-६१९।
अधीन—३५१।
अब्दुल्ला खाँ—७।
अदुब्ल समद खाँ—१९।
अबुल फजल—५३।
अभयसिंह—२६।
अमरदास (च. दा. के शिष्य)— २२२, २२८, ३००, ६०३-६०४।
,, (स्वामी रामरूप के शिष्य) २७६, २७८, ३४२।
,, (गुरुछौना जी के शिष्य) ३९१, ३९८–४०२, ४२५।
अमरा—२२३।
अयोध्यादास—३७९, ५१६, ५४४।
अयोध्याप्रसाद—५१६।
अरजनदास—४६९।
अर्जुनदास—२५२।
अर्जुन देव (सिख गुरु)—१९।
अलख प्रताप—२७७, २८२-८३।
अलख सनेही (रामरूप जी के शिष्य) ३००।
,, (प्रेम सनेहीजी के शिष्य) ५२७, ६११।
अलबेली शरण (श्री हीरालाल भार्गव) ४०७, ४७७।
अलबेलीमाधुरीशरण—२४०, ३१५, ३१८।
अली गौहर—१५, १६, ८५, ९५, १०१, १२१।
अली वर्दी खाँ—२६।
अवधविहारी शरण—५४४।
असद खाँ—८।
अहमदशाह अब्दाली—१०, ११, १५–१८, २०, २७, ३९, ६३, ९५, १४३।
अहमदशाह शानी—१०, १४-१६, २०, २७, ८५।

[आ]

आज्ञादास—३५३, ३८०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मानन्द—४७८ ।
आत्माराम इकंगी (आतमराम, आतम सखी आदि) ९७, ९८, १२०, १६४, १६८, २२१, ३८७, ३९०, ४३१-४६५, ५११, ५६२, ५७१, ५७८, ५८२, ५८८, ५८९, ५९२, ५९५, ६१३ ।
आदीराम—४२२ ।
आनन्द निवास—३५० ।
आनन्द विनोद—३४९ ।
आलमगीर द्वितीय (बादशाह)—१०, १५, १६, २७, ६३, ८५, ९५, १०१, १०३, १७८ ।
आसाजीत—३५१ ।
आसानन्द—२२२, २२८, ३४०, ५८८, ६१२ ।

[इ]

इन्द्रसिंह—२४ ।
इब्राहीम गर्दी खाँ—२८ ।
इमादुल्मुल्क—१५ ।

[ई]

ई० डो० मैक्लेगन—७२ ।
ईश्वरीदास—२५१ ।
ईश्वरीसिंह (जयपुरनरेश) १८, ३०, ८२, ८४, ८६, ९४, १००, ११७, १२१, १४३, १७२, ५३५ ।

[उ]

उत्तमचन्द्र माहेश्वरी—३१४ ।
उत्तमदास—३२२ ।
उत्तम बाई—३३९ ।

[ऊ, ए, ओ, औ]

ऊधोदास—५७६ ।
एच० एच० विल्सन—७८, १०४, १८५ ।
ओंकारदास—४६७ ।
औरंगजेब—३, ४, ५, १९, २५, २८, ३०, ३४-३७ ।

[क]

कँवलदास—३७५ ।
कन्हैया गलतान—४९७ ।
कन्हैयादास—२३३, ३००, ३९७-३९८, ४३४, ४९७ ।
कन्हैयाराम—५५२ ।
कन्हैयालाल भार्गव—३१५ ।
कबीरदास—२३, ३९, ५५, ११९, १८६, १८७, १८९, २६०, २८९, २९०, २९१, २९३, ३०७, ३५९, ४०६, ४०८, ४०९, ४२४, ४६१, ४८१, ४८३, ४९९, ५५५, ५६३, ५९६, ५९८ ।
कमलदास—५५७, ५६१ ।
कर्तानन्द—१६४, २४३, २४९, २५६, २६९-२७२ ।
कल्याणदास—३०२, ४०२ ।
कादरबख्श—१२, ६७, ११० ।
कान्हड़दास—३८१, ४७९ ।
कामबख्श—२, ४, ५, ६, ७, १० ।
कालिदास—३०६, ५५९ ।
काशीदास—२८८, ३४९ ।
कासीदास—४९७ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशनदास (रामरूप जी की परंपरा) —३३१, ३४१।
,, (त्यागीरामजी की परंपरा)—५०७।
,, (केवलकृष्णदास)—३०४, ३३८।
,, (हरिदास द्वितीय की परंपरा) —५३२।
किशुनदास—३३४।
किशोरदास (गो० जुगतानंदजी की परपरा)—३४९।
,, (जसराम उपकारी की परंपरा)—४८१।
किशोरी माधुरी बाई (किशोरीबाई) —३१४।
किशोरीशरण—५४४।
कीनाराम (संत)—४७।
कुँअरिकिशोरीशरण—३१५।
केवलदास (चरणदास जी के शिष्य) —१६४।
,, (आत्माराम की परंपरा) —४३४-३५, ४४०, ५३३।
केशवदास (गुरुछौना जी की परंपरा)—४०२, ४०३।
,, (गोस्वामी)—३०३, ४२३।
केशोदास (गो. जुगतानंद की परंपरा) —३०२, ४२३।
,, (निर्वाणी जी की परंपरा) —५०७।
कोकिला बाई (बीबादास, विविदासी, बीबीदासी आदि)—२८१, ३००, ३०३—३०९।
कृष्ण कृपाल—३५१।
कृष्ण गोपाल—३५१।
कृष्णचमन (कृष्णदयाल) ३००।
कृष्णदास—३४९—३५०, ३५३।
कृष्णदास पयहारी—४८।
कृष्णप्रसाद (जुगतानंद की परंपरा) —३७२।
,, (बल्लभदास की ,,)—५१६।
,, कृष्ण विनोद—३४९।
कृष्ण विलास—३५४, ३८०।
कृष्णबिहारीशरण—५४४।
कृष्णस्वरूप—३७३।
कृष्णानन्द—३५१।
कृपानिवास—१६४।
कृपालदास—३७६, ३७७।
कृपासखी—३५०।

[ख]

खुश्याली राम (हल्दिया)—९७, ५६५, ५६७।
खुशालदास—२२८, ५८७, ६११।
खुशाला बाई—१६४; ३९२; ३९४, ३९५; ४१२; ४२६-४२७, ५८९।
खुसरो (शाहजादा)—१९।
खूबदास (जुगतानंद के शिष्य)—३४९।
,, (गुरुछौना जी की परंपरा) —४००, ४०४।
,, (खूबीदास; जुगतानंद की परंपरा) —३८०; ५२७।
खेमदास (संत)—४७।
,, (जुगतानंद की परम्परा)—३८३।

[ग]

गंगनदास—३९२, ४१२, ४१४, ४२२; ४२७।
गंगादास (महन्त)—१०६, १६४,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७८, २२४, २४०, २४८, २४९, २५३-२५५, २६१, २६६, २६९, २७२, ३०१, ५९४, ५१७।
,, (रामकरनजी की परंपरा)-- ६०१।
गंगादास बूढ़े-३५४, ३७२, ३७४।
गंगाबख्श (युगलमनोहरशरण)-- ३२१-३२२।
गंगाविष्णुदास--९३, १६९, २२८, २४६, २६०, ५८७, ५९१, ५९२, ५९५-९६।
गंगासरनदास--३१०, ३५०, ३५४, ३६३, ३७२।
गणेशदास—३०२।
गदाधर भट्ट-४८।
गनेशसरूप—३७६।
गरीबदास (संत)-४७, १२६, १८९।
गरीबदास (चरणदासजी के शिष्य)- १६९, २२२, २२८, ५८७, ६०६, ६१०।
गरीबदास (गुरुछौनाजी की परंपरा)- ४०५।
गाजीउद्दीन हैदर (इमादुल्मुल्क)— १०, २७।
गाहड़दास—५७६।
गिरधरदास--६४, २२२, २२८, ३५१, ६१०, ६१८।
गिरधरशरण--५४३।
गिरधारीदास (रामरूपजी की परंपरा) —३१०, ३४१।
,, (हरभजनदास ,,)—५४९, ५५३।
गिरिवरदास (संत)—४७।
,, (रामकरन की परम्परा) ६०२।
,, (रामरूपजी के शिष्य)-३००, ३०९-३१०।
गुमानीदास—१२६।
गुरुचरनदास—२५७।
गुरिन्दर कौर—४००, ४०१।
गुरुछौना जी—८६, ८७, १२०, १६४, १६६, २१२, २२६, २५९, ३८४, ३८७, ३९१-४१०।
गुरु निवास—२४९-५०, २५६-५७।
गुरुप्रसाद—२२०, २२१, २२७, २३०, ५४९-५५०।
गुरुमुखदास—२२१, २२८, ५५१, ५७८ ५७९।
गुरुशरण—५४४।
गुरुसरनदास—१६४, ३८७, ४३४, ४३८, ४४४-४४६, ५८२।
गुरुसेवक दास—२२२, २२८, ५८७, ६०५।
गुलाबदास (महंत)—१७७, २१३, ३४६, ३५२, ३७३, ३७४, ३७९, ३८३।
गुलाम कादिर रुहेला—१६, २१, २८।
गेंदीलाल—३१५।
गोकुलदास—३५३।
गोपालदास (जुगतानंद की परंपरा) —३७३, ३७७।
,, (चरणदासजी के शिष्य)— २२२, २२८, ५८८, ६१७।
,, (रामरूपजी की परंपरा)—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०१, ३३९ ।
,, (वल्लभदास की ,,)–५१६ ।
,, (रामकरनजी की ,,)–६०१-६०२ ।
,, (गुरुछौनाजी की ,,)–४३० ।
गोपालजी दास (सहजोबाई की ,,) —२५९ ।
गोपाल विनोद—३४९ ।
गोपीदास—४०० ।
गोबरधनदास (सहजोबाई की परंपरा) —२५६ ।
,, (गुरुछौनाजी की ,,)—४३४ ।
,, (डंडौतीरामजी की ,,)–५३८ ।
गोमतीदास (जुगतानंद की परंपरा) —३५२, ३७४, ३७५·३७६ ।
गोमतीदास–(निर्मलदास की परपरा) — ५४०, ५४९ ।
गोरखनाथ (नाथ सिद्ध)–५६३ ।
गोविन्ददास (सहजोबाई की परंपरा) २५०, २५९, ३३८, ३४३, ३५०, ३९३ ।
,, (गुरुछौनाजी की परंपरा)–४००, ४०१, ४०४, ४०५, ४०६ ।
गोविन्द निवास—५४४ ।
गोविन्दभजन–३७७ ।
गोविन्द योगी—१९३ ।
गोविन्द राम—२७७, २८३, ३१५ ।
गोविन्द शरण—५४३-५४४ ।
गोविन्द साहब (संत)—४७ ।
गोविन्द सिंह (सिक्ख गुरु)—१९ ।
गोविन्दानंद—८७ ।
गोड़पाद—१९३ ।
गौरांग महाप्रभु—३१६ ।
गौरीदास—५१८-५३९ ।

[घ]

घनश्यामदास (चरणदास के शिष्य)–२२१, २२७, ३१८, ५१८, ५२० ।
,, (जुगतानंदजी की परंपरा)—२४, ३४, २३२, ३५२, ३५३, ३७२, ३७४, ३८१-३८२ ।
,, (सहजोबाई की परंपरा)–२५३ ।
घनानन्द—४८ ।

[च]

चंदनसिंह–४०१ ।
चंददास (चंद्रसखी)—४३८-४३९, ४४८ ।
चत्रदास (संत)—४७ ।
चतुरदास (संत)—४७ ।
चतुरदास (चरणदासजी के पूर्वपुरुष) –६४ ।
,, (सिद्धराम जी की परंपरा) —३००, ३०३ ।
,, (बल्लभदास की ,,)—३२८ ।
,, (रामरूप जी की ,,)—३३१, ३३५, ३४२ ।
चतुर्भुजदास—५१५ ।
चतुर्भुज सहाय—२४८ ।
चरणखाक—२२२, २२८, ६०९ ।
चरणदास (श्यामचरणदास, रणजीत)–१२-१८, २३, २४, २९, ३०, ४१, ४२, ४८, ५१, ५४, ५५, ६३–१८०,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९०–२००, २०६, २११, २२३, २२८, २३३, २४५-६१, २६४, २६५, २७४, २८२, २८४, २९६, २९९, ३०८, ३१७, ३२०, ३३३-३३७, ३४६, ३४८, ३७२, ३८०, ५३७, ६००, ६१७।
चरणधूर–१०३, २२२, ५२३, ५३५, ६०९, ६१३।
चरणरज—१०३, २२२, २२७, ५२३, ६०९।
चरणसहाय—२२४, ६०६।
चितरामदास—३३१, ३४१।
चित्रदास—३३२।
चिनकिलिच खाँ—२०।
चुनीदास (गो. जुगतानंद की परंपरा) —३३४, ३५३।
,, (गुरुछौना जी की ,,)—३८०, ४०२।
चेतनदास (सहजोबाई की परंपरा) —२५४।
,, (रामरूपजी की ,,)–३३७।
,, (चेतनराम, चेतराम; गुरुछौना जी की ,,)–१६४, ३८७, ३९३, ३९५, ३९७, ४०२, ४०४, ४२८-४२९।
चेतनराम–२७७, २८३।
चैतन्य महाप्रभु—४१, १९५।
चैनराम—२७८।

[छ]

छबीलाराम नागर—९।
छाजूराम (हल्दिया)—४१४, ५६५, ५६७।
छिगनसरूप–२७७, २८३, ३४९।
छित्रमलदास–५३९, ५४०।
छीतरमल—१६७, २२०, ३२४, ३२६, ३८८।

[ज]

जगजीवन दास–४७।
,, साहब–४७।
जगतराम–३४२।
जगदीशजी राठौड़–१३५, २६६, ३१०, ३२१, ३२४, ३३८, ४१९, ४२५, ४४७, ५४४, ५७६, ५९६, ६१६।
जगनदास–६४, ९३।
जगन्नाथ दास (संत)—४७।
,, (डंडोतीरामजी की परंपरा) –५४०।
जगन्नाथ भट्ट—८७।
जनखुसाल—२२१, २२८।
जन बेगम—४१७।
जमुनादास (सहजोबाई की परंपरा) २५२, २५६, २५७, २७०, २७२।
,, (छौना जी की ,,)—२३३, ४०२।
,, (हरिदास द्वितीय ,,)६००।
,, (रामरूपजी की ,,)–३३१।
,, (भजनानंदजी की ,,) ५५३।
,, (गो. जुगतानंद की ,,) ३८२।
जयदेव—७९।
जयनारायण—३१४, ३३२।
जयराम दास—(जय जय राम दास) २८७, २८१, २८२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयसिंह (सवाई)--२६, ३०, ८३, २६४, ३५२, ४१४।
जवाँबख्त--१७।
जलन्धरनाथ--५६३।
जसराम उपकारी--१०२, १२३, १२६, १३२, १३५, १३८, १४०, १६४, १६६, १८७, २२१, २२६, ३८७, ४७९-४८५।
जसवंत दास--५५८।
जसवंत राव होल्कर--२९, ३२।
जस्सासिंह कलाल--२०।
जहाँगीर (बादशाह)--१९।
जहाँ शाह (बादशाह मुहम्मदशाह)९।
जहाँदार शाह--७, ८, १२, १५।
जानकी दास (सहजोबाई की परंपरा)--२५२, २५६, २५९, २७२-७३।
,, (महंत गंगादास के गुरुभाई) --२५३।
,, (रामरूपजी की परंपरा)-३३१, ३४१।
,, (गो जुगतानंद की परंपरा) --३७१।
,, (गुरुछौनाजी की ,,)--३४, ३९९।
जाबिता खाँ--१७।
जार्ज टामस--२१।
ज्ञानकिशन--२७७, २७८।
ज्ञानदास--(कबीरपंथी)--२१५।
,, (सहजोबाईजी की परंपरा) --२५५।
,, (रामरूपजी की परंपरा)-- २७७, २८३।
ज्ञानवती बाई--३००, ३४२।
ज्ञानस्वरूप--२७६, २७८, २८१, ३३४।
ज्ञानानन्द निर्वाणी--१६४, २७८, ३४२, ३८८, ५०६-५१०।
ज्ञानाबाई (ज्ञानमतीबाई)--४३३।
जियाउद्दीन (फकीर खुदा रशीद)-३९६।
जिनदत्त सूरि--४२, ४३।
जीवनदास (आत्माराम इकंगी के पिता)--१६९, २२४, २२७, २३०, ४३१, ५७७-७८, ५८९।
,, (सहजोबाई की परंपरा)-- २५३
,, (रामरूपजी की ,,)--३००, ३२८।
जीवनराम--२७७, ३००।
जुगतानन्द (गोसाई) देखें-युक्तानंद।
जुगलदास (शिष्य रामरूपजी)-- २७८।
,, (शिष्य श्री चरणदास)— १६८, २२२, २२८, ३५०, ६०७-६०८।
जुगलमाधुरीशरण—३१४, ३१८, ३१९।
जुगलमनोहरशरण (देखिए--युगल मनोहरशरण)-३१५, ३२१-२२, ७४७, ७५२-५५।
जुल्फिकार खाँ—७।
जेम्स हेस्टिंग्स--२४८, ३२०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैकिसनदास—३४४ ।
जैदास (जैदासीजी)–१६४, ४३३, ४५२–४५४ ।
जेदेवदास–२२०, २२७, ३८८; ५४२; ६००, ६०६ ।
जैराम दास (चरणदास के शिष्य)–२२१, २२८, ६०२-६०३ ।
,, छौना जी की परम्परा)–४०२ ।
,, (रामरूपजी के शिष्य)–२७७, २८१, ३०१ ।
,, (जुगतानंद जी ,,)—३८२ ।
जोगजीत—१३, ५१, ६३, ६७, ६८, ७३, ७६, ७८, ८८, ९०, ९५, १०२, १०५, ११०, ११२, ११५, १२०, १२२, १२८, १४०, १६४, १७८, १९४, २००, २०८, २१७, २२३, २२६, २४७, २७४, २८६, २९६, ३४३, ३४५, ३४८, ३८७, ३८९, ४६५—४७६; ५३१, ५५४, ५८९, ६००, ६०२, ६०७, ६६९ ।
जोगीदास—४७ ।

[ट]

टीकम दास (चरणदास के शिष्य)–२२१, २२८, ५८८, ६१८ ।
,, (सहजोबाई की परम्परा)—२५५ ।
,, (च० दा० के शिष्य हरीदास की परंपरा)—६०० ।
टीकाराम—२७८ ।
टीकाराम दास–(स्वामी रामरूप की परंपरा)–३४१ ।

[ठ]

ठंडोराम दास–१६४, २२१, २२७, ५२३, ५५६–५६१ ।
ठाकुरदास (रामरूप की परंपरा)—२४३, २८२, ३११-१२ ।
,, (सहजोबाई की परंपरा)–२५९ ।
,, (व्यापक दास की ,,)—३३१, ३४१ ।

[ड]

डंडोती राम–२२४, ५२३, ५३५–५४० ।
डब्लू क्रुक्स—७२, १०३ ।
डेढ़ राज (संत)–४७ ।

[त]

तारा बाई—२५, २६ ।
तिरखा राम—२७८, २७९, २८३ ।
तुलसीदास (गोस्वामी)–११९, १२९, ३०६, ३०७, ३५८, ५५९ ।
,, (रामरूपजी की परम्परा)–३००, ३६३, ५२८ ।
तुलसीबाई–३०१ ।
तुलसी साहब (हाथरस वाले)–४७, ११९ ।
तेगबहादुर (गुरु)–१९ ।
तैमूर–२०, ९५ ।
तोताराम–३३१, ३३२ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागीराम–१६४, २२१, २२७, ३३५, ३८८, ३९०, ५०६-५०७।
त्रिलोक चंद–५४४।
त्रिलोकी नारायण दीक्षित (डॉ०)–१०५, १२८, १३७, १३८, १४९, १४८, १५०, १५३, १६७, १७९।
दंपति माधुरी शरण––३१५।
दया दास–६०२।
दयाबाई (दयादासी, दयाकुँअर)–२९, ४१, १०३, १६४, १६९, २२४, २२७, २३०; ५२३, ५४८, ५६०, ५६८–५७४, ५८९; ५९०।
दयाराम–२७७।
दयालदास—४००।
दरियादास (संत)—४१, १८९।
दरिया साहब (संत)—४७।
दाताराम—१६४, २२०, २२१, २२७, २८६, ३०१, ५७४–७६, ६०३।
दादूदयाल (संत)—२३, ४१, ४९, १८९, २२५, २६०, २८८, ३१६, ३५९, ३६१, ४२०, ५५५, ५६३।
दास कुँअर (कुँअर दास)–९३, १६४, १६८, २२२, २३०, २४६, २५९, २६०, ४३१, ५८७, ५९१, ५९२, ५९६-९७, ६०५, ६०८।
दीनदास—४७।
दुखभंजन दास—२७८।
दुखहरन साहब (संत)—४७।
दुर्गादास (जुगतानंद की परम्परा)–२७३।
,, (वल्लभदास की ,,)–५१६।
दूलनदास (संत)—४७।
देवकीनन्दन (संत)—४७।
देवमुरारी—२५२।
देवादास (दीवाराम, देवादासि)—३२४-२५।
देवानन्द—१९३।
देवीदास (संत)—४७।
दौलतराम हल्दिया—४१३।
दौलतराव (सिन्धिया)–२१, ३७६।
दौलतराम––८७, १००, २२८, ३४८, ५८२, ५८७, ६१०-११।
द्वारकादास (रामरूपजी की परम्परा)–३३५।
,, (गुरुछौना जी की परम्परा)–२३२, ३०९, ३९७।
,, (जुगतानंद की परम्परा)—३५३, ३७५।

[ध]

ध्यानदास (गुरुछौना जी की परम्परा)––२५, ३८२, ३८७, ३९३, ३९५, ३९८, ४०१।
,, (रामरूप जी की ,,)–३१२, ३१३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

,, (गो० जुगतानंद की परंपरा) —३८२ ।
ध्यानस्वरूप–२५५ ।
धरनीदास (संत)–४७ ।
धर्मदास (संत)–४७ ।
,, (धरमदास)––चरणदास जी के शिष्य) २२१, २२२, २२६, ३३६, ३३७, ५२३, ५२८ ।
,, (सहजोबाईजी की परम्परा)–२५७ ।
,, (स्वामी रामरूप की ,,)–२८१, ३३६ ।
ध्रुवदास (वैष्णव आचार्य)–४९ ।

[न]

नंद गोपाल––२५६, ३४९, ३८१ ।
नंददास––४८ ।
,, (चरणदास जी के शिष्य)–२२८, ३८३, ५२८, ५५४, ६१५ ।
नंद द्राविड़–१९३ ।
नंद राम–८४, ९२, ९३, ९७, १३८, १६४, १६९, २२२, २२४, २२७, २३०, ३१२, ३१३, ५२३, ५३५, ५६१–६४, ५९२, ६०६ ।
,, (हल्दिया)–४१४ ।
नंदराम दास–३११ ।
नंद लाल (छौनाजी की परम्परा)–४०८ ।
,, (चरणदास जी के शिष्य)–१६८, २२२, २२६, ३४१, ५२३, ५२८, ६०६ ।
नजीबुद्दौला–१७ ।
नत्थूदास–५३९ ।
नरसिंह दास–२५६ ।
नरोत्तम दास–३५०, ३५१ ।
नलनी बाई (मलनीबाई)––२४३, २४९, २५०, २५६-५७ ।
नवनदास––१२२, १६४, २४३, ३४८, ३४९, ३५६, ३६५–७०, ५८४ ।
नवनिधि दास–३०९ ।
नवरंग स्वामी (संत)–४७ ।
नवलदास––२७७, २७८, २८१, २८३, ३२५ ।
नागरीदास (गोसाईं)–९५, १००, १०१, १२०, १६४, २२२, २२७, २३०, ५२३, ५६४–६८ ।
नादिरशाह––१०, १२, १३, १४, १९, ३७, ३८, ३९, ६३, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ९०, १०३, ११७, १२०, १५४, १६७ ।
नानक देव (गुरु)––१८, २३ ।
नाभादास––२५२, ५४२ ।
नाम परायण––३५१ ।
नारायण दास (चरणदास के शिष्य–) १६७, २२१, २२२, २२९, ३३६, ३४९, ३५०, ५५८, ६०६, ६०८, ६१७ ।
,, (जुगतानंदकी परम्परा)–३८३ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

,, (धरमदास की परं०)-५२८।
,, (बल्लभदास की ,,)—५१५।
,, (गुरुमुखदास की ,,)-५७९।
नारायणलाल माथुर—३२२, ७५७, ७५८।
नारायण स्वामी—१२६।
निंबार्काचार्य—४१, ४८, १९२, १९५, ३१६, ४१९।
निकरादास—२८२।
निकोसियर—९।
निगमदास—२२७, ३३४, ५२३, ५२४-२५।
निगाराम—२७८, २७९, २८२।
निजामुल्मुल्क—९; ८०, ८१।
नित्यानन्दशरण-५४२, ५४३, ५४८।
निपटदास (संत)—४७।
निरंजनदास—२२२; ६०६, ६१९।
निरलम्भी मोहनदास—२५५।
निर्भय गोपाल—२५६।
निर्भेदास—४३८।
निर्भेराम (निर्भेदास, अभैराम, अभैदास; निर्भेसखी आदि)-१६४, २४३, २७८, २८१, २८२; ३२५, ३२७, ३७४।
निर्मलदास—२९, २२०, २२२, २२७, ५२६; ५४०-५४२।
निश्चल दास—४७, ३०१; ३४९।
नूपीदेवी—५८९।
नूपी बाई—९१; १०३; १६४, १६८, २२४, २२८, २४६, ४३२, ४३४, ५७७, ५७८, ५८७, ५८८—५९१।
नेहानन्द—३५०; ३५१।
नैना जी—३५१।

[प]

पंचमलाल—५८४।
पन्नालाल-३७६।
परबीनदास—३४९, ३५५, ३८०।
परमदास (प्रेमदास)—१२०, २२१; २२७, ५८७, ६०५-०६।
परम सनेही (प्रेम सनेही)—२२१, २२६, २२७, ५२६-२७, ५८७, ६११।
परमानन्द दास (चरणदास के शिष्य)-२२२, २२७; ५८७, ६०४।
,, (गो० जुगतानंद की परम्परा)-३७४।
परमेश्वर दास-३४२।
परमेश्वरीदास-२३२; २५०, २५२, २६९।
परशुराम चतुर्वेदी-१०६, ५७०।
पलटूदास (संत)-२८८।
पानप दास (संत)-४७।
पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल-७२।
पीपा दास (संत)-४८१।
पुरी दास-२८२।
पुरुषोत्तम दास (रामरूपजी की परं०) -३०१।
,, (गो. जुगतानंदजी की ,,)-३७९।
पुष्कर दास-३३७।
पूजानन्द-३००।
पूरणप्रताप-९६, १०१, १६४, २२१, २२६, ३८८, ५०४-०६, ५८४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरनदास–३६७ ।
पूरन निवास–२५६; २५९ ।
पूरणानन्द (पूर्णदास)–३४९, ३७९, ४०२ ।
पूर्णचन्द्र–८४ ।
पूर्णदास (आत्माराम की परम्परा)–४३३, ४३८, ४६०-६१ ।
,, (डंडौतीरामजीकी ,,) २४०, ५३८ ।
पोहकरदास–३३२; ३४१ ।
पृथ्वी सिंह (सवाई महाराज जयपुर)–३० ।
प्यारे लाल–३१४ ।
प्रकाशानन्द–३५३, ३७९, ५०३ ।
प्रताप सिंह (जयपुरनरेश)–१८, ३०, ६३, ८६, ८७, १७२, ३९३, ३९५, ४१२, ४१४, ४७५ ।
प्रभुदयाल (वकील, जयपुर)–३१४ ।
प्रभुदास–३५० ।
प्रवीणदास (महन्त)–३५२, ३५३, ३५८, ३६२, ३६३, ३७१ ।
प्रहलाद दास–५४३ ।
,, (भार्गव)–३१४ ।
प्रागदास–६४, ६५, ६६ ।
प्रागदास (गो० जुगतानंद की परम्परा)–३७९ ।
प्रियादास (सहजोबाई की परम्परा)–२६८ ।
,, (गुरुछौना की ,,)–३९८ ।
प्रीतम (अली मुहिब्ब खाँ)–४८ ।
प्रीतम दास––३३६ ।
प्रेमअलीशरण–३१४ ।
प्रेमगलतान–१०१, १६४, २२१, २२६, ३८८, ३९०, ४९६–५०२ ।
प्रेम गोपाल––३०१, ३४९ ।
प्रेमघन (प्रेमाघन)–१६८, २२७, ५८७, ६०६, ६०८-०९ ।
प्रेमदास ब्रह्मचारी––१६८, २२२, २२७, ६०५, ६०८ ।
प्रेमदास (महन्त) (रामरूपजी की ,,)–२६१, २६८, २८६, ३०२, ३२६, ३३९, ३६२, ३७१, ४१४, ४८८, ५३९, ५७६ ।
,, (गो० जुगतानंद की परम्परा)–३५० ।
प्रेमविवास–२८२ ।
प्रेमपूरण––२७६, २८३ ।
प्रेमप्रकाश–२५९ ।
प्रेममाधुरी बाई–३१४, ३२३ ।
प्रेम विनोद–३४९ ।
प्रेम सवेही–५२६–२७ ।
प्रेम सवेही–५२६–२७ ।
प्रेमसुख–३५१ ।
प्रेमसुख दास–३२९ ।
प्रेमस्वरूप (विरक्त वैष्णव चरणदासीय)–२४०, २७०, ३२२, ४६२, ५८४, ५५५–५७ ।
प्रेमहुलास–२२१, २२२, २२३ ।

[फ]

फिरोज जंग–५ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिरोज शाह–२५ ।
फर्रुखसियर–७, ८, ९, १२, १९ ।

[ब]

वंदा बहादुर–१९, २० ।
बड़भागी––द्रष्टव्य श्यामशरण बड़भागी ।
बदरुद्दीन अहमद–२५३ ।
वद्री गलतान–४९७ ।
बद्रीदास (गुरुछौना जी की परम्परा) ––३९३, ३९९, ४००, ४२५ ।
बदली दास (संत)–४७ ।
बनखंडी दास–२७७, २८३ ।
बनवारी दास (डंडौतीराम जी की परम्परा)–२३१, २३२, ५३८ ।
,, (गुरुछौना जी की परम्परा)–४२७ ।
बनारसी दास–४४ ।
बलदेबचरण–३४३ ।
बलदेवदास (सहजोबाई की परंपरा) —२५६ ।
,, (रामरूपजी की ,,)—३०५, ३११, ३१२, ३३८, ३७३ ।
,, (खाकी बाबा) (चरणघूर की परंपरा)—५३७ ।
,, (हरीदास जी की ,,)–५३२ ।
बलदेवशरण दास—३७८, ५०२, ५३२, ५३९ ।
बलबीर दास—३४१, ३७६ ।
बलराम दास—२२१, २२२, ५८८, ६१८ ।
बलवंत सिंह—३५६ ।
बलिराम दास—३२८, ५३२ ।
बल्लभ दास (चरणदास जी के शिष्य)—२२२, २२६, ३८८, ५१३—५१८, ५२९, ६०१ ।
,, (रामरूपजी की परम्परा)–३४१, ३४५ ।
बल्लभाचार्य (स्वामी)—४१, ४८, १९३ ।
बसन्तदास—२३१, २३२, ३३९, ३५२, ३५३, ३५६, ३७९, ५०३ ।
बसन्त निवास—२२७ ।
बहादुर बुंदेला—६ ।
बहादुर शाह–५, ६, १२, ३४७ ।
,, (द्वितीय)—११ ।
बाकर खान (मुहम्मद)—६३, ९३, ९६ ।
बाणजी—३५१ ।
बावर—११ ।
बायजा बाई—द्रष्टव्य बैजाबाई ।
बालक दास (कबीर पंथी)—२२५ ।
,, (सहजोबाई जी की परम्परा)–२५६, २५० ।
,, (बुलकीदास, रामरूप जी की परम्परा) —२७८, २७९, २८१, ३२२, ३३४ । ४६८, ५२५ ।
,, (गो० जुगतानंद की ,,)–३७९, ५७६ ।
,, (गुरुछौना जी की ,,)—४०३ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल गोपाल—२२१, २२७, ३८८, ५१९-२० ।
बालविहारी शरण—३१५ ।
बालमुकुन्द दास (रामरूपजी की परम्परा)-३२० ।
,, (त्यागीराम जी की परम्परा)—५०७ ।
बाबालाल—४८ ।
बालाजी बाजीराव (प्रथम)—२६, २७, २८ ।
बावल दास—२२१, २२२, २२३, ६१८ ।
बालानन्द—८७, ६०४ ।
बालाबाई सीतो दे—२३१ ।
वासुदेव दास—२२२, २३२, ३५२, ३५३, ३७५-७६ ।
बिट्ठल नाथ (गोसाईं)—४८ ।
विष्णु दास—५५८-५६० ।
बिसन सरन—५१५ ।
बिसराम—३५० ।
बिसराम दास—२५६ ।
बिसाल दास—२८२ ।
बिहारी दास—३११, ३१४, ३१५ ।
,, (छित्रमल की परम्परा)—५०२, ५४० ।
बीरू साहब (संत)—४७ ।
बीसनदास—४०१ ।
बुधिप्रकाश—५०७ ।
बुधिविनोद—३५३, ३५५ ।
बुधिराम—२७८, २७९, २८१ ।
बुरहानुल्मुल्क—७९, ८०, ८१ ।
बुलाकीदास (द्रष्टव्य बालकदास) ।
बेगमदास—१६४, ३८७, ३९२, ४१२, ४१७-४१९ ।
बेगम राबिया—५५४ ।
बेदारवख्त—५, ६ ।
बेलीलाल—५४४ ।
बैजाबाई—१८, २०, ३७७ ।
ब्रजदास—३९८ ।
ब्रजमोहन दास—२५६ ।
ब्रजेन्द्र बलदेव सिंह—३२८ ।
ब्रह्मदास (वल्लभदास की परम्परा)—१२२, ५१५ ।
,, (रामरूपजी की ,,)—३००, ३४०, ५३२ ।
,, (गो० जुगतानंद की ,,)—३७१ ।
,, (गुरुछौना की ,,)-४०३ ।
ब्रह्मनिवास—१६४, २७६, २७८, २८१, ३३४, ३३५, ३३९, ५२७ ।
ब्रह्म परसाद—४६७ ।
ब्रह्म प्रकाश—१६७, २८१, २२३, २२४, ३८७, ४७६-७९, ५०२, ५८० ।
ब्रह्म स्वरूप—२१७ ।

[भ]

भक्त गोपाल (रामरूप जी की परंपरा)—२७७, २७८ ।
,, (सहजोबाई की परंपरा)—२५६ ।
भक्तिदास—६१८, ३०१ ।
भक्तिविनोद—३४९, ३५५ ।
भक्तिस्वरूप—२८२ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान दास (निरंजनी)—४७, ३४२ ।
,, (आया पंथी संत)—४८ ।
,, (चरणदास जी के शिष्य)—१६४, २२१, २२६, २२७, ३९०, ४८६-८८ ।
,, (निर्मोही, सहजोबाई के शिष्य) २५०, २५६, २५९ ।
,, (रामरूप जी की परम्परा)—२७७, ३२७ ।
,, (गो० जुगतानंद की ,,)—३४९ ।
भगतदास—५०२ ।
भगत प्रकाश—४७७ ।
भगतहुलास—३२७, ३४९ ।
भगतानंद दास—५०७ ।
भगवान सनेही—५२६ ।
भजन गोपाल—३४९, ३५३, ३८० ।
भजनदास—(सहजोबाई जी की परम्परा) २५६, २५९ ।
, (रामरूपजी की परम्परा)—२७७, २८३ ।
भजनपरायण—३५१ ।
भजनविनोद—३४९ ।
भजन विलास—३५१, ३८० ।
भजनानन्द (चरणदास के शिष्य)—१६४, २२१, २२७, ५४३, ५४८, ५५२-५३, ५९९ ।
भजनानन्द दास—२९ ।
भजनानन्द राम—३५० ।
भजमनदास—३४९ ।
भरपुरदास—४७७ ।
भाऊ राव—१६ ।
भावमाधुरीशरण (भगवानदास भार्गव) —३१५ ।
भालदास—३३६ ।
भिखारी दास—६६, ६९, ८७ ।
भीखा साहब (संत)—४७ ।
भोजो भगत—४८ ।
भोलादास (रामरूप जी की परम्परा)—२८६, ३०२, ३४० ।
,, (गो० जुगतानन्द की परम्परा)—३४९ ।

[म]

मंगलदास (जुगतानंद जी की परंपरा)—३३८, ३७५ ।
,, (रामरूप जी की ,,)—३०१ ।
,, (गुरुछौना जी की ,,)—४०२ ।
,, (त्यागीराम जी की,,)—५०७।
,, (नंदलाल जी की ,,)—५२९, ५३२ ।
मंसूर अली खाँ—९९ ।
मँगनीराम (चरणदास जी के शिष्य)—२२१, २२३, ५८८, ६१८ ।
,, (रामरूपजी के शिष्य)—२७८, २७९, २८३, ३४२ ।
मगनसरूप—३४८, ३५५, ३७५, ३७८-३७९ ।
मटरदास—३३२ ।
मथुरादास (रामरूपजी की परंपरा) २७६ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

,, (जुगतानंदजी की परं०)--३४५ ।
,, (भगवानदास की ,,)--४८६, ४८७ ।
,, (डंडौतीराम जी की ,,)--५३८ ।
,, (परमसनेही की ,,)--५२७ ।
मदन मोहन--२२१, ५८८, ६१८ ।
,, (तोषनीवाल)--३५४, ४६९ ।
मधुरदास--२७७ ।
मधुरीदास (मथुरादास)--२२१, २२५, ५२४, ५७८ ।
मधुवनदास (नागा)--१०३, २२२, २२९, ५८७, ६०४ ।
मध्यादास (माधवदास)--२२२, २२९, ६१० ।
मध्वाचार्य--४०, ४८, १९५ ।
मनमोहनदास--१६४, २४३, २६८, ३०३-३०९, ३३८ ।
मनसादास--३५०, ३५५, ३८२ ।
मनीरामदास--५०७ ।
मनोहरदास (संत)--४७ ।
,, (भगवानदास की परंपरा)-४८७ ।
,, (रामरूपजी की ,,)--३०१, ३०३ ।
मलूकदास (संत) ४१, ४६ ।
,, (रामरूप जी की परंपरा)--१२२, २४३, २७९, २८२, २९६, ३००, ३०१, ३२८, ३४४ ।
मयादास--२२२, २२९, ५८८, ६१०, ६१८ ।
मय्यादास--५०७, ५०८ ।
मस्तनाथ (नाथपंथी)-१२५ ।
मस्तराम (सुखविलास)--द्रष्टव्य सुखविलास ।
मस्तराम दास-३३०, ३३१ ।
महरदास-३४१ ।
महादजी सिन्धिया--२१, २८ ।
महादास-१६८; २२९, ६०६, ६१८।
महाबीर प्रसाद शर्मा (डॉ०) ४९३, ४९४ ।
महाराज दास-१६८; २२१, ५८८, ६०६, ६१८ ।
महीराम दास-५०७, ५०८ ।
महेन्द्रसिंह (महाराज)-३५२, ३८२ ।
माखनदास-२८२ ।
माँगीराम--२८२ ।
माणिकदास--(चरणदास जी के शिष्य)-२२१, २२२, २२३, २२९, ५८८, ६१८ ।
,, (आतमराम की परंपरा)-४०१ ।
माधोदास (चरणदास जी के शिष्य)-२२१, ५८७ ।
,, (निर्मलदास की परंपरा)-५४१, ५४९ ।
,, (सहजोबाई जी की परंपरा)-२५७ ।
,, (रामरूपजी की ,,)-३३८, ३४१ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

,, (जुगतानंदजी की परम्परा)–३७५ ।
,, (आत्मारामजी की ,,)–४३८, ४५०, ४५७-४५८ ।
,, (त्यागीरामजी की ,,)–५०७ ।
माधोसरन–३७२ ।
माधोसिंह (जयपुरनरेश)–३०, ८६, ४१४ ।
मानदास–१६४, ४३३, ४५०–४५२, ४५४, ४५५, ४५७, ४५९ ।
मास्टर जयदेव—३१४ ।
मिर्जा नजफ खाँ—१७ ।
मीतदास—२७७, २८३ ।
मीर कासिम—३० ।
मीर बख्शी (इमादुल्मुल्क)—१५ ।
मीराँबाई—२७० ।
मुअज्जम (बहादुरशाह) ३, ४, ५ ।
मुइजुद्दीन—४ ।
मुकुंद गोपाल—३८१ ।
,, दास—२३२, २५१-२५२ ।
,, शरण—२६७ ।
मुकुट दास—३८१ ।
मुकुटानंद—६०३ ।
मुक्तानन्द परमार्थी—१०१, १२०, १६४, २२०, २२१, ५५०, ५५३–५५५, ६०२ ।
मुक्तिदास–(रामरूप जी की परंपरा)–२७९, ३०१, ३३३ ।
मुक्ति निवास—२४३, २७७, ३३४, ५२५ ।
मुक्तिराम–(मुकुटराम)–२७७, २८३ ।
मुबारक–४८ ।
मुरलीदास–(सहजोबाई की परंपरा)–२५०, २५६ ।
,, (जुगतानंद जी की ,,)–३०९ ।
मुरलीधर–६४, ६५, २४६ ।
मुरली बिहारी—२२२, २२७, ५३१, ५८७, ५९९, ६०० ।
मुरली मनोहर–२२१, २२२, २२९, ५३१, ५८७, ६०० ।
मुरारदास–४७३ ।
मुसद्दीखाँ—३८, ९६, १३० ।
मुहम्मद अजीमुद्दौला (आलमगीर द्वितीय)–२४ ।
,, अमीन खाँ–९, १९ ।
,, अलीशाह–५५४ ।
,, आजम–४ ।
,, याकूब सनम–३२३ ।
,, शाह (रँगीले) ९, १२, १४, २६, ३८, ३९, ७८–८५, ९०, ९५, १०३, ४७५, ५८० ।
,, शुजा—३ ।
मूलचंद (मास्टर) अन्य नाम श्रीमति शरण–३१४, ३२१, ३२४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७५०–७५२ ।
मैनाबाई–३०२, ३०३ ।
मोतीदास–४८७ ।
मोतीराम–(रामरूप जी की परंपरा)–२७७, २८३ ।
,, (गुरुछौना जी की परंपरा)–४२२ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहनदास (गुरुछौनाजी की परंपरा)—२५, १६४, ३८७, ३९०–३९५, ४०४, ४१० ४२५।
,, (चरणदास जी के शिष्य)—२७७, २७८, २८१।
,, (रामरूप जी की परंपरा)—२७७, २७८, २८३, ३४२।
,, (जोगजीतजी की ,,)—४६७, ४७३।
,, (सबगतिराम जी की परं०)—५१२।
मोहन निवास (निरंलभी)—१६४, २२५।
मोहनमाधुरी शरण (मोहनलाल चौधुरी)—३१५।
मोहन शरण—५४३।

[य]

यारी साहब—४७।
युक्तानंद (गोसाईं जुगतानन्द)—१७, १८, २४, ३०, ३४, १२२, १३२, १६४, १७३, १७८, १७७, १८७; २१८, २२१, २३१, २३३, २४१; २४३, २५०, २५९, २८४, ३२८; ३४६–३८४; ४०२, ४११, ५२८।
युगलदास—२७७, २८२।
युगल मनोहर शरण (मास्टर गंगाबख्शजी)—३१४, ३२१, ३२२, ७४६, ७४७, ७५२–७५४।
युगल माधुरी शरण (गोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव)—३१४, ७४६।
युगलशरण—५५४।

[र]

रघुदास—४६७।
रघुनाथ दास—२५२।
रघुनाथ सनेही—२४९, २५०, २५६, २५८, २५९।
रघुबर दास (सहजोबाई जी की परंपरा)—२५०।
,, (जुगतानंद जी की ,,)—३८१।
,, (चरणधूरजी की ,,)—५३०।
रणजीत (श्यामचरणदास)—द्रष्टव्य चरणदास।
रणजीत सिंह (महाराजा)—१८, २१, २४, ३२, ४००।
रतन गलतान—४९७, ५०१।
रतन गोपाल (प्रथम)—३४९।
,, ,, (द्वितीय)—३४९।
रतनदास (रामरूपजी की परंपरा)—३००।
,, (हरभजनदास की ,,)—५४९, ५५३।
,, (जोगजीत की ,,)—४६७, ४६८, ४६९।
रफीउद्दरजात—८, ९, १२।
रफीउद्दौला—९, १२।
रफी उश्शान (पूर्वनाम रफी उल कद्र) ६, ८, ९।
रमताराम—३५१।
रसखान—४८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसिकशरण—५४४-५४७ ।
रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना)—४८ ।
राघवानन्द—१९३ ।
राघोजी (रघुनाथ राव)—२७ ।
राघोदास—४७ ।
राघकादास—२५९ ।
राधाकृष्णदास (चरणदास के शिष्य)—२२९, २४६, ५८७, ५९१, ५९३-५९४ ।
,, (दातारामजी की परंपरा)—५७६ ।
राधावल्लभ शरण—३१५ ।
राधिकादास (रामरूप जी की परंपरा)—१६४, ३०३, ३०४, ३०९, ३३८ ।
,, (रामकरनजी की ,,)—६०१ ।
,, (दातारामजी की ,,)—५७६ ।
राधेश्याम (एम० ए०)—३१४ ।
राधेश्याम शरण (रसिकभाधुरी शरण)—३१४-३१५ ।
रामकरन—२२२, २२९, ५८७, ६०१-६०२ ।
रामकला—३५१ ।
रामकिसनदास (सहजोबाई जी की परंपरा)—२५९ ।
,, (ब्रह्मप्रकाश जी की ,,)—४७९ ।
रामकुँवर बाई—३३७ ।
रामकुमार वर्मा (डॉ०)—१०४, १८५ ।
रामकृष्ण—३५१ ।
रामकृपाल—२०६, २७७, २८२, ३००, ३१०-३१२, ३२९ ।
रामगलतान—२२२, २२९, ५८८, ६१३ ।
रामगुरदास—३७१, ३८१ ।
रामगोपाल (रामरूपजी की परंपरा)—३१०, ३३२ ।
,, (छौना जी की ,,)—४१२, ४२७, ४२८-४३१ ।
,, (हरिसेवक जी की ,,)—५२५, ५२६ ।
रामचंद्र शुक्ल (आचार्य)—१८५ ।
रामचरणदास—३४० ।
रामचेराजी—१५३, २२२, २२३, २२४, ३५४, ३५८ ।
रामजन—३५१ ।
रामजी दास (कबीरपंथी) —२२५ ।
,, (सहजोबाई जी की परंपरा)—२५३, २५६, २५८, २७२, २७३ ।
,, (रामरूप जी की ,,)—२७७, २७८, २८३ ।
,, (डंडोतीरामजी की ,,)—५३८, ५३९ ।
,, (त्यागीराम जी की ,,)—५०७ ।
रामजी शास्त्री—५४१ ।
रामदयाल (रामरूप जी की ,,)—३४४ ।
,, (उपकारी जी की ,,)—४८० ।
रामदास (गुरु)—१८ ।
,, प्रथम (चरणदास जी के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य)–१६४, २२१, २२९, ५८७, ६११।
रामदास द्वितीय (,,)—२२१, २२९, ६१०–६१२।
,, (रामरूप जी की परंपरा)—२७६, २८२, ३४५।
,; प्रथम (जुगतानंद जी की ,,)–३४९।
,, द्वितीय (,,)–३७१, ३७७।
रामदास (गुरुछौना जी की परंपरा) अपर नाम रामुदास, रामूदास–३८७, ३९२, ४०५, ४१०–११, ४१९, ४२०।
,, (ब्रह्मप्रकाशजी की ,,) –४७८।
रामदास (रामलाल)—५२५–५२६।
रामधनदास (सहजोबाई जी की ,,)–२४९, २५०, २५८, २५९।
,, (रामरूपजी की ,,)—२७७, २७८, २८३।
रामघड़ल्ला—६३, ९४, १०३, २२७, २३०, ५२४, ५८०, ५८१।
रामनारायण जी (ठेकेदार)–३१४–३१५।
राम निवास (सहजोबाई जी की परंपरा)–२८१; ३३९।
,, (रामरूप जी की ,,)–२७७, २७१, २८२।
रामप्रताप जी (भार्गव)—२३१, २३६, २४८, ३८७, ५०२–५०४।
रामप्रसाद—२४९, २५७, २७२, ५११।
राम फकीर—३५१।
राम मनोहर—३५१।
राममौला (शाह मौला)—१०३, २२४, २२९, २३०, ५८७, ६०३।
रामरटा—२७७, २७८, २८३।
रामरतनदास (रामरूप जी की परंपरा)—२८२।
,, (ठंडीराम जी की ,,)—५५७।
रामरतन सिंह—३८२।
रामरला—२७७, २८३।
राम रिझावन—२७७, २८३।
रामरिष—४७७।
रामरूप जी (गुरु भक्तानन्द)—१८, २३, ६४, ६८, ८४, ८६, ९९, १०५, १२३, १३२, १३८, १५३, १६४, १७६, १९२, २०३, २१६, २२१, २२६, २३२, २३४, २४१, २४६, २५०, २६१, २७४–३४५, ३८२, ३९२, ४०९, ४३२, ४६५, ४६८, ४७२, ४८७, ५०२, ५०५, ५२८, ५२९, ५३३, ५६४, ६००, ६१०, ६१२, ६२५,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६३०, ६३४।
रामलला (प्रथम)—३५१।
,, (द्वितीय)—३५१।
राम संत—४६४-४६५।
रामसखीजी (रसिकाचार्य)—१०३, १९१, १९३, १९९, २०६, २२७, २३०, २५९, २८४, ३०३, ३६५, ४०९, ४८८-४९६, ७३०, ७३१, ७३६, ७४१।
राससखे (वैष्णव कवि)—४९३, ४९४।
रामसनातन—२२२, २२९, ५८८, ६०५।
रामसनेही (रामरूप जी की परंपरा)—२७७, २८३।
,, (जोगजीत जी की परम्परा)—४६७।
,, (परमसनेही की ,,)—५२७; ६११।
रामसरन दास (सहजोबाईजी की परंपरा)-२५२।
,, (रामरूपजी की ,,)-३०१, ३१२।
,, (गुरुछौना जी की ,,)—३८७, ४०१।
,, (आत्मारामजी की ,,)-४३४, ४३८, ४४६-४४८।
,, (बड़भागी की ,,)—५४४।
रामसिंह हाड़ा—६।
रामसुख दास—(सहजोबाई की परंपरा)-२५२।
,, (जुगतानंद जी की ,,)—३५०।
रामस्वरूप दास (गुरुछौना जी की परंपरा)-४०४।
,, (रामप्रताप जी)-५०३।
रामहुलास—३४९।
रामहेत—२२२, २२३, २२९, ५८७; ६०१-६०२।
रामानंद (आचार्य)—२३, ४८, ४९, १९३, ४८१, ४८२।
रामानुज (,,)—११९, १९२, १९५।
रामेसुरदास-५०७।
राव प्रताप सिंह (अलवरनरेश)—५६५।
राहुल सांस्कृत्यायन-४३।
रिषभदास-२७७, २८३।
रूपदास (रामरूप जी की परंपरा)-२७६, २७८, २८३।
,, (आत्मारामजी की ,,)-४५८-४५९, ४६४-४६५।
रूपनिवास (रामरूपजी की परंपरा)-२७६, २७८, २८३।
,, (जुगतानंद जी की परम्परा)-३५०।
रूपमाधुरी शरण—१०५; १६४; १८५, २०५, २२०, २२४, २४०, २४९, २६७, २७१, २८०; ३१२, ३१३, ३१९-३२१, ३३८, ३३९, ३६७, ४०४, ४२२,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४४३, ४६०, ५०९, ५४५; ५८४, ५९०, ५९१।
रूपानन्द--२७६; २७८, २८३।
रैदास (संत)--४१, ४८१, ४८२।
रोड़ाराम (खवास)--८७।
रोनकी राम-४०२।
रोशन अख्तर--९।

[ल]

लंबदास (लंबादास, लंबनारायण)-३७४, ३७५, ३८२।
लक्खीराम गुप्त-६१८।
लक्ष्मणदास (सहजोबाईजी की परंपरा)-२५५।
,, (लखनदास) (जोगजीत जी की ,,)-४६७, ४७७।
,, (ठंडीराम जी की ,,)-५५८।
लक्ष्मण भट्ट--४८।
लक्ष्मणराव हल्दिया--५५६।
लक्ष्मीबाई-२४९, २५०, २५६-२५७, ५११।
लगनदास-३५१।
लच्छनदास-२५७।
लच्छीदास (लक्षिदास, लक्ष्यदास, लक्ष्मीदास; लच्छीरामदास) १६४, ३८७, ४३३, ४३६, ४३८-४४३, ४४९, ४५०, ४६०, ४६२, ५७१।
लटकनदास-२२१, २२२, २२३।
ललिता सखी (प्रेमगलतानजी)-- (द्रष्टव्य प्रेमगलतान)
लाड़िलीदास (रामरूप जी की परंपरा)-३०२, ३३२।
,, (बेरी की गद्दी की परम्परा)-३३६, ५२८।
लाड़ोबाई—२५५।
लालकुमारी--६।
लालताशरण--५४३।
लालदास (सन्त)—४८।
,, (चरणदासजी के शिष्य)-१६४, २२३, २२९, ५८७, ५९९, ६००, ६०१।
,, (सहजोबाई की परंपरा)-२५६।
,, (लालूजी, जुगतानंद जी की परम्परा)—३५१।
,, (छौना जी जी परंपरा)-३८७।
,, (आत्मारामजी की पर०) --४३४, ४५०, ४५३, ४५५-४५७।
,, (दाताराम जी की परंपरा)—५७६।
लाहड़दास—६४।
लिआकतअली खाँ—३२३।
लेषराम (जुगतानन्द जी की परंपरा)-३५०।
,, (दाताराम जी की परंपरा)—५७६।
लोचनराम—५५२।

[व]

वंशीदास--६०१।
वारेन हेस्टिंग्स--३१।
वासुदेव सनेही--५२७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजयसिंह नरूका--३२४।
विद्यानाथ योगी—४३, १००, १०३, १७०, २२४, २२७, २३०, ५२४, ५८०, ६०४।
विनानदास--२७८, २८३।
विमलवीर सिंह (दास)--४००।
विलास माधुरी शरण-३२४।
विलियम क्रुक्स-७२, १८५।
विलियम बैन्टिक-३३।
विबेकदास-२७६, ३८३।
विशालदास--२७७, २७८।
विशुद्धानन्द-३४, ३९९।
विश्वम्भरदास (विश्वम्भरानन्द)--३९९।
विश्वम्भरानन्द--३९९।
विश्वनाथसिंहजू देव (रीवाँ नरेश)-५४२।
विश्वेश्वरानन्द--३९९।
बिषनानन्द--१६४, २४३, ३४९, ३५६, ३७१।
विष्णुदास (रामरूप जी की परंपरा)-२७७, २७९, २८३।
,, (ठंडीराम जी की परम्परा)-१६४, ५५७, ५५८-५६१।
विष्णु विनोद--३४९।
विष्णु स्वामी--४०, १९३।
बिहारीदास (रामरूप जी की परम्परा)-३११, ३१२।
,, (छौना जी की परंपरा)-३९८, ४०३।
वीरांबाई—४५९-४६०।
वृन्दावनदास (जुगतानन्द जी के शिष्य)--३०, १६४, २३१, २४३, ३४९, ३५६, ३७६—३७८, ३८४।
,, (रामरूपजी की परंपरा)-३४०।
व्यापकदास--२७६, २७८, २८१, २८२, ३३१।
ब्रह्मस्वरूप--२१७।

[श]

शंकरदास--३८१।
शंकराचार्य--१९५।
शंकरानन्द (कबीरपंथी)-२२५।
शंभू जी--२५।
शान्ति प्रकाश--४७७, ४७८।
शादीराम--३००, ३०१।
शार्दूल सिंह (शेखावत)--८२।
शार्दूल सिंह (अखैराम जी के शिष्य)-२५, ४००।
शालिग्राम--२८२, २८६, ३००, ३०१, ३०९, ३२८, ३४४।
शाहआलम द्वितीय (अलीगौहर)--१०, १६, १७, २१, २८, ८६, १०२, १४३, १७७, २४८, २५६, २५७, २९६, ३४३, ३५१।
शाहजहाँ--४।
,, तृतीय--१०, १५, ८५।
शाह निजामुद्दीन--२९६।
शाह मौला--द्रष्टव्य रामलौला।
शाह वलीउल्ला मोहद्दस देहलवी--१२६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाह शुजा--४, २१ ।
शाहू जी--२५, २६ ।
शिवदयाल (संत)--४८ ।
शिवदास (श्रीदास)--२७७, २७९, ३४४ ।
शिवनारायण (संत)--४७ ।
शिवाजी--२५, २९ ।
शीतलदास (रामरूपजी की परंपरा)-२७८, २८३, ३३१ ।
,, (छौनाजी की परंपरा)-३९३, ३९७, ३९८, ४०३ ।
शुजाउद्दौला-११ ।
शुद्ध विनोद-३४९ ।
शोभन जी-५८; ६४, ६५, १२५ ।
शोभादास-४३३ ।
शोभानन्द--२२१, २२३, २२९; ५८८, ६१८ ।
श्यामकृपाल-२७७, ३४२ ।
श्यामगोपाल-३८१ ।
श्यामचरणदास-द्रष्टव्य श्रीचरणदास ।
श्यामदास (सहजोबाई की परंपरा)-२५६ ।
,, (रामरूपजी की परंपरा)-२७८, ३०४ ।
श्याम निरञ्जन-२२९; ५८७, ६१८ ।
श्याम मनोहर-२५५; २६८ ।
श्याम रंग-३२८, ३२९ ।
श्यामरूप-२२१, २२३, २२४, २२६, ५८३, ५८४, ६०६; ६१८ ।
श्याम लड़ावन-३५१, ३७१ ।
श्याम विनोद-३४९ ।
श्याम विलास-२४९-२५०, २५२, २५८, २७२ ।
श्याम सनेही-३५१, ३७४ ।
श्यामसरन बड़भागी-२९, ३०, २१७, २२६, ५१०; ५२३, ५४०, ५४८, ५४९, ५५२, ६००, ६१५ ।
श्यामस्वरूप (रामरूपजी की परंपरा)-३३४ ।
,, (ब्रह्मप्रकाश जी की परम्परा)-४७८, ४७९ ।
श्यामादास-४७७-४७८ ।
श्यामानन्द-१९३ ।
श्यामा सखी-३१४ ।
श्रियानन्द-१९३ ।
श्रीनिवासाचार्य-४८ ।
श्रीमतिशरण (द्रष्टव्य-मूलचन्द)--
श्रुतानन्द--१९३ ।

[स]

संगतराम--२७८, २७९, २८३, ३४४ ।
संगीदास-३०० ।
संतगोपाल-२५६ ।
संतदास (सहजोबाई जी की परंपरा)-२५९ ।
,, (छौना जी की ,,)-४०५ ।
,, (ब्रह्मप्रकाश जी की ,,)-४७७-४७८
संतनिवास-२५८ ।
संतराम-२७८, २८३ ।
संतसनेही-४६७ ।
संतसरन-२७७, २७९ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतसरूप—२७७, २७८, २८३ ।
संतहजूरी—२४९, २५८ ।
संतोषदास (जुगतानंद जी के शिष्य)—३५० ।
,, (छौना जी की परंपरा)—३९८, ४७३ ।
संतोषरूप—३५० ।
संतोष सनेही (सन्तोषशील)—२७७, २८३ ।
संपतराम—२७७, २८३ ।
सआदत खाँ—१३, ७९-८१ ।
सऊदी खाँ (सैय्यदुद्दीन खाँ)—८१ ।
सतबादीराम—२७६, २७८, २८१, २८२, ३२९, ३३३ ।
सत्यनिवास—३३७ ।
सदानन्द (रामरूपजी की परंपरा)—३०० ।
,, (जुगतानंद जी की परंपरा)—३७५ ।
,, (छौना जी की ,,)—३९९ ।
सदाशिव राव—२७ ।
सनम (साहब) (मुहम्मद याकूब)—३१४, ३२३-३२४, ७४५ ।
सनेही दास (रामरूपजी की परंपरा)—२७७, २७८, २८२, २८३ ।
,, (जोगजीतजी जी की परंपरा)—४६८, ४७३ ।
सफदर जंग—१० ।
सबगत राम (प्रथम) (पूर्वनाम बिहारीदास)—१६४, २२१, २२६, ३८७, ३९०, ५११-५१३, ५७७ ।
,, (द्वितीय)—२२१, २२९, ५८७, ६१३ ।
समतादास—३४९ ।
समरतानंद—२७८, २८३ ।
समीपदास—२७८, २७९, २८२, ३४४ ।
सरनबिहारी—३५१ ।
सरबदास (प्रथम)—३४९ ।
,, (द्वितीय)—३५० ।
,, (तृतीय) —,, ।
सरसमाधुरीशरण (पं० शिवदयालु गौड़)—१३६, १३९, १६४, १९३, १९९, २०६, २१४, २१८, २४०, २५५, २६६, २८५, २८८, २९६, ३००, ३०३, ३१३-३२४, ३२९, ३३८, ३३९, ४३७, ५४५, ६२५, ७४६, ७४८ ।
सरूपदास—३३९ ।
सरूपानन्द—३९० ।
सहजप्रताप—३५१ ।
सहजानन्द—१०१, १७१, २२१, २२६, २३०, ५२४, ५५६ ।
सहदेवदास (रोड़ी के)—२४० ।
,, (जुगतानंद जी की परंपरा)—३८२, ४०२ ।
सहजोबाई—१७, ४१, ८६, ९४, ९८, १०३, १०५, १२३, १३२, १५७, १६४, १६६, १७४, १७८,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९५, २०३, २१६, २१८, २२४, २२६, २३४, २४१, २४३–२७३, ३८९, ४०९, ४३१, ४५२; ४६०, ५१०, ५६७, ५७०, ५९०, ५९६, ६०१; ६२५, ६३४, ६४०।
सांवलदास–३८१, ५४०।
साकर खान—१८, ८२, ८४, ९९, १०३।
सागर दास—२२१, २२४, २२९, ५८८, ६१०, ६१८।
साधुराम दास (प्रथम)—२२२, २२३, २३०, ५२४, ५८१–५८३।
,, (द्वितीय)–२२१, २२३, २२९, ५२४, ६१८।
साधुशरणदास–४३४, ४३८, ४४९–४५०।
सालक जी–३५१।
सालकदास (जोगजीत जी की परंपरा)–४६८।
,, (ठंडीरामजी की ,,)–५५८।
सालकराम दास—३३६।
साहबदास (रामरूप जी की परंपरा)–३३१।
,, (जोगजीत जी की ,,)–४६८।
,, (जैदेवदास जी की ,,)–५११।
साहबरंग–२७८, २७९, २८३।
सिद्धराम (स्वामी)–१७, ६८, १६४, १७७, २४३, २७६, २७८, २८१, २८४, २८६, २८९, २९६–३००, ३०२, ३१०, ३२९, ३४२, ४८७, ५०६, ५२८, ५३२।
सिष्यादास–४७।
सीतलदास–३५१।
सुंदरदास (संत)–४७, ३६१।
,, (चरणदास जी के पूर्वपुरुष)–६७।
,, (रामरूप जी की परंपरा)–३०१।
सुखदास (कबीरपंथी)–२२५।
,, (हरभजन जी की परंपरा)–५४९।
सुखदेव दास–२५९।
सुखनंदन–२७७, २७८, ३३२।
सुखनिवास (रामरूपजी के शिष्य)–२७६, २७८, २८१–२८२, ३३७–३३८, ३४२।
,, (रामरूप जी के शिष्य व्यापकदास की परंपरा)–३३१।
सुखबीर दास—२५६।
सुखराम—३५०।
सुखराम दास (प्रथम) (चरणदास जी के शिष्य)—२२२, २२६, ५३०, ५३४, ५३५, ५८७।
,, (द्वितीय) २२१, २२२, २२९, ५२३, ५३०, ६१३।
,, (रामरूपजी के शिष्य)–२७७, २७८, २८३।
सुखलाल दास—२२५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखविलास मस्तराम—२२१, २२८, ५२४, ५५०–५५२, ५५४, ५७८, ६००।
सुखसरूप —३४९।
सुखानंद—(जयपुरनरेश के विशिष्ट सेवक)—८४।
,, (रामरूप जी की परंपरा)—२८२।
,, (जुगतानंद जी की ,,)–३५०।
सुजानदास—२८२।
सुथरादास (संत)—४६, ४७।
सुदरसनदास–३००।
सुनीतराम—२८२।
सुफलदास–३५०।
सुमतिबाई—२४९, २५०, २५८।
सुमिरनदास (रामरूपजी की परंपरा) –३३७।
,, (हरिदास जी प्रथम की ,,)–५३२।
सुमिरानंद—२७७, २७८, २८३।
सुरजनदास—५०७।
सुरत दास—५०७।
सुरत विनोद–३४९।
सुरतानंद (रामरूप जी के शिष्य)–२७७, २८३।
,, (जुगतानंद जी के शिष्य)–३५०।
सुरताराम–३५०।
सूरदास–४८, ६२५।
,, (जुगतानंद जी के शिष्य)–३४९।
,, (सहजोबाईजी की परंपरा)–२५९।
,, (स्वामी सिद्धराम के शिष्य)–३३६।
सेन (संत)–२९१।
सेवक राम (सेवकदास) (चरणदास जी के शिष्य)—१६८, २२२, २२९, ५८८, ६०६, ६१८।
सेवक राम (जुगतानंद जी के शिष्य)–३५०।
सेवादास (रामरूपजी की परंपरा)–२३२, २७७, २७८, २८२, २८३।
,, (रामरूपजी की आचार्य गद्दी के महंत)–२८३, २८६, ३००, ३०१, ३१२, ३२७, ३४४।
,, (छोना जी की ,,)—२३३, ३८७, ३९७–३९९, ४००।
,, (डंडोतीराम जी की ,,)–२४०, ५०२, ५३९, ५४०।
,, (बल्लभदासजी की ,,)–५१६।
,, (दातारामजी की ,,)–५७६।
,, (सहजानन्दजी की ,,)–५५६।
,, (आत्मारामजी की ,,)–१६४, ४३४, ४३८, ४५०, ४५४–४५५।
,, (नंदलालजी की ,,)–५२९।
सेवानंद—३९९।
सेवाराम–४७८।
सोभादास–३४९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्याम गुरु–३५१।
स्याम मनोहर––३५१।
स्वरूप गलतान–४९७।
स्वरूपानन्द–३९९।

[ह]

हंसदास (रामरूपजी की परंपरा)–३२१।
,, (छोना जी की ,,)–४०२, ४०३।
हंसराज–५०७।
हंसरामदास–३५२, ३७२, ३७९।
हँसमुखदास–२२१, २२९, ५५२, ५५४, ५८७, ६१७।
हज़रत मखदूम सिराजुद्दीन शाह—२५३।
हनुमान दास––२५२, २५५।
हनुमान सहाय पुरोहित––३२२।
हर गोपाल (रामरूप जी की परंपरा)–३३३।
,, (जनगोपाल की ,,)–६१७।
हरगोविन्द सिंह—१९।
हरचंद गिरि—२५४।
हरजी दास—२४९, २५६, २५८।
हरनामदास (सहजोबाई जी की परंपरा)—२४९, २५०, २५८, २५९।
,, (घनश्याम जी की ,,)—५१९, ५२५।
,, (रामरूप जी की ,,)–२७८, २७९, २८३।
,, (रामरूपजी के शिष्य ब्रह्मनिवास की परंपरा)—३३५, ३३९, ३८१।
हरनारायण दास—डंडौतीरामजी की परंपरा)–५३८, ५३९।
हरभजनदास (चरणदास जी के शिष्य–२९, ३०, २२१, २२४। २२७, ५४८–५४९।
,, (छौना जी की परंपरा)—३९७, ५०२।
हरविलास—२५७, २५९।
हरशरण दास—३५२, ३५५, ३७४–३७६।
हरषराम—२७७, २८३।
हरसुखदास—३५०।
हरिकृष्णदास—१६९, २२२, २३०, ५८८, ६०६, ६१८, ६१९।
हरिदयाल (रामरूप जी की परंपरा)–२७७, २८३, ३४४।
,, (चरणघूरजी की ,,)–५३१।
हरिदास जी (सखी संप्रदाय के प्रवर्त्तक)–४८।
,, (प्रथम) चरणदास जी के शिष्य)––२२२, २२६, २४०, ५३१–५३३, ५९९, ६००, ६१०।
हरिदास (द्वितीय)—२२२, २२९, ५८७, ५९९–६००।
,, (छौना जी की परंपरा)—४०२, ४३४।
,, (रिवाड़ी)—२४०, ३७९, ३८२; ५०३, ५३९, ५७६।
,, (रामरूप जी की परंपरा)—२७८, ३३१, ३३९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

,, (जुगतानंद जी की परंपरा)—५०८।
हरिदेवदास—२२२, २२६, २३०, ५३९, ५५१, ५७९-५८०।
हरिनारायण (चरणदास जी के शिष्य)—९३, १६४, १६८, २२१, २२२, २३०, २४६, २५९, २६०, ५८७, ५९१, ५९७-५९९, ६०५, ६०७, ६०८।
,, (रामरूप जी की परपरा)—२८६, ३०१।
हरिनारायण जी तोषनीवाल-३१४, ७४५।
हरिप्रसादजी—९३, १३५, १३८, १६४, १६८, २३०, २४६, २५९, २६०, ४३१, ५६२, ५८०, ५९१-५९३, ५९७।
हरिभक्तदास—२२२, २३०, ५८८।
हरिविलास—२२१, ५८७, ६१३-६१४।
हरिशरणदास बी० ए०—३१४।
हरिसेवक दास—२२२, २२६, ५२३, ५२५-५२६।
हरिस्वरूप—२२२, २३०, ५८८।
हरीदास (आतमराम की परंपरा)—४३९, ४४४।
,, (सहजोबाई जी की परं०)—२५२, २५७।
,, (जुगतानंद जी की ,,)—३८३।
हरीनिवास—३५०।
हरीविनोद—३५१।
हरीसरूप—३५१।
हितगोपाल-३५१।
हित वृंदावनदास—४९।
हित हरिवंश—४९, १९५।
हीरादास (चरणदास जी के शिष्य)-१६४।
हीरादास (रामरूप जी की परपरा)-३०२।
,, (जुगतानंद जी की ,,)—३७८।
,, (छोनाजी की ,,)—३८७, ३९२, ४१०, ४११, ४२०-४२२।
,, (डंडोतीराम जी की ,,)—५३८।
,, (दयाबाई जी की ,,)—५६९।
हीरालाल—३१५।
,, भार्गव (अलबेली शरण)—३९२, ४०४।
हुलासदास—१६४, २२२, २२९, ५८७, ६१७।
हुसेन अली-६, ८, ९।
हेतनदास-४८०।
हेमदास-५०८।
हर्षानन्द—२८३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बद्धस्थानानुक्रमणिका

[अ]

अजराड़ा—२२७, ३३१, ३८७, ४६७, ४६८, ५२४, ५५७, ५५८।

अमरीखदान (उमरीखदान)–२०४, ४७६, ४७७, ४७९।

अलवर (ढोली का कुँआ, दिल्ली दरवाजा, नई बस्ती)—२१, २२३, २२६, २३०, २३१, २३८, ४०४, ४३४, ४७४, ५२५, ५४०, ५६५, ५६७।

अलीगढ़ (ढूसरों का मुहल्ला)—२३०, २३५, ५१०, ५८७, ५९९, ६००।

असगरीपुर—२३६, ३८७, ४७६, ४७७।

असोधा—२८०, ३४०, ५५७।

[आ]

आगरा (लंगड़ा की चौकी)–१००, २०३, २२६, २३१, २३५, २७९, २८१, ३००, ३०९, ३४४, ४८६, ४८७।

,, बालूगंज—२०३, २२६, २३५, ३८७, ४८७।

,, बेलनगंज—२३५, २७९, २८१, ३०९, ४८७।

,, मोतीकटला–२०३, २३५, २५८; ३९६, ३९७, ४२०।

[इ]

इन्दौर—२३१, २८०।

इन्द्री—२७९, ३४५।

इषेपुर (इषड़हेड़ी)—२३७, २७५, २८०, २८१, ३०६, ३३९।

[उ]

उज्जैन—१७१, १७३, २०४; २२८, २३९, ६१०।

[ए]

एलगवाँ—२५७।

[क]

कंधार—३३, १७३, २२९, २३०, २३१, २३९, ५८७, ६०२।

ककरोई–२३७, २८०, ३१०, ३११।

कनखल–१७३, २०४, २२५, ३१३, ४०१, ४७७, ४७९।

कनखाला—४७१, ४७९।

कथुआ (कठुवा)—२३६, २७९, ३४५।

करनाल (खास)–८२, ९४, १७१, २१९, २२३, २३१, २३६, ३४५, ४६७, ४७४, ५८१।

,, मुरादनगर—२१७, ३४३।

करमा (इलाहाबाद)–२०४, ५१९।

करीरीवास—२२७, २३८, २४३,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३७१, ३७४, ३७८, ३७९।
कलहोली—२३९, ६०१, ६०२।
कांधला—१७२, २२७, २३०, २३५, ५२४, ५४९, ५५६।
कानपुर (चौक)—३०, १६५, २२७, २३५, ५२३, ५४०।
,, लोहाई बाजार—२३५, ५४३।
,, मानगंज—२३५, ५४९।
कान्होरी—२२५, २३६।
काबुल—७९, ८०, २३९।
कामावन—१७३, २२७, २३०, २३५, ५२४, ५६४, ५८४, ५८८, ५८९, ६१७।
कालांवाली—२३७, ४०२, ४३३।
काशी (श्योपुर, शाहपुर, शिवपुर)—४७, ११८, १७३, ३५८, ४२३, ५०२, ५०३, ६०३।
कीकरवास—२२९, २३५, ६१०।
कुरुक्षेत्र—२५, १५८, २६६, ३८७, ४११, ४६९, ४६८, ५२४।
कुलचाणा (कुलताना, कौलाना)—२२७, २३५, २४०, ३८७, ३९४, ३९५, ४०३।
कोटकासम—६७, २०४, ५१५।
कोयल—२२७, २३५, २५८, ३८७, ५१०, ५८९, ६००।
कोसली—२५, २३७, ३४२।

[ख]

खरक—२५, २२७, ३८७, ४८०, ४८१।
खरक—२५, २२७, ३८७; ४८०; ४८१।
खरखौदा—४६७, ५५७।
खुर्जा (लोहाई मंडी)—१७२, २०५, २३५, २८७, ४६६, ४६८।
खेड़ी—२२९, ५८७, ६११।
खोजलपुर—२७९।

[ग]

गंगूताणा—३५२।
गढ़ मुक्तेश्वर—१७०, २२५, ६०१।
गढ़ा—२३९।
गढ़ी सांपला—२८०, ३४५, ५०५, ५१३।
गढ़ी सिढ़ाना—२८०, ३४०, ५८८, ६१२।
गधेली—४७६, ४७९।
गनौरा—४७९।
गामड़ी—२०४, २४३, ३१३, ३४९, ३७२, ४२६, ५५५।
गोपालपुरा—२०४।
ग्वालियर (गवरवा की मंडी)—१८, २३९।

[च]

चक जैमलासिंह—४००।
चरखारी—१८, २०४, २३१, ३५२, ५२२, ५५३।
चरखी दादरी—२५, २८०।
चित्रकूट—३०, १६५, २२७, २३१, २३५, ५२४, ५४९, ५५२, ५५३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिरचिटा—२२७, २७३, ५२३, ५२९, ५३१, ६१३।
चोरमऊ—२२७, ३७३, ५२३, ५३०, ५८७, ६०९, ६१३।

[छ]

छपरौली—२२४, ५३०, ५३४, ५३५, ५८२, ६१३।
छापर—२५, २८०, ३४५।

[ज]

जगाधरी—२०४, ३४५, ३७९, ३८७, ४६७, ४६८।
जटपुरा—२०५, २२४, ४७६–४७८।
जटाणा—३८७, ४७८, ४७९।
जतिपुरा (मथुरा)—२५, ३४९, ३७२, ३७८।
जयपुर (आतमकुंज)—४३२, ४३३, ४३८, ४३९, ४४४, ४४९, ४५७, ५८९, ५९५।
—खंडार का रास्ता—३९७, ४१०।
—बद्रीविशाल की डूंगरी—२२७, ४३२।
—बारह गनगोर—३७६, ४३२, ४३९, ४५०।
—मोती कटला—४३४।
—राम गंज चौपड़—४५०, ४६४।
—सरस निकुंज (पान दरीबा)—२९९, ३०५, ३०९, ३१४, ३२०, ३३८, ३५९, ३७७, ३८३, ४०१, ४१४, ४१६, ४२६, ४२८, ४३५, ४४२, ४४५, ४५४, ४८१, ४९४, ४९७, ५०७, ५१६, ५२६, ५७१, ६०८।
जलगाँव—२३९, २८०, ३४५।
जसौरा—३८७, ४७६, ४७८।
जिंदौली—३९४, ३९५, ४०३, ४१८।
जैनाबाद—५७६।

[झ]

झंडूकी—३४, २०४, ३८७, ३९२, ३९८, ३९९, ४०१, ४०३, ४०५, ४२५, ५०३।
झींद (खास)—१८, २५, ३४, १६५, २७९, ३८७, ३९२, ३९७, ४०२।
झज्झर (झाझर)—३४३, ४७९, ५५८।

[ड]

डहरा—६४, १०४, १७३, २०३, २०५, २२५, २३१, २४०, ३०६, ५०१, ५२६, ५३५, ५३६, ५३८, ५९२।
डागरू—४००।
डीग—२२७, २३०, ३८७, ५०४, ५८४।
डूडाहेड़ा—२२६, ३४१, ५२३, ५३१, ५३३, ५९७।
डेरावाली—२५, ३८७, ४२६।
डेरा शार्दूलसिंह—३४, ३९८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ढ]

ढासा–२८०, ३४५।

[त]

तषतमल–३४, ३८७, ४०१, ४०२।
तिलसैली–२०४।
तिलहर–२५७।
तीसा–७०, १७१, ५७८, ५७९।
तेरही·२३५, ५४२, ५४४, ५४५।

[थ]

थानेश्वर—२५, ४६७।
थावरा–२३९, ६१०।
थुराना–२८०, २८१, ३३४, ३४९।

[द]

दरियापुर—२३५, ४०३।
दहकोरा—२८०, २८१, ३४०।
दादरी (वृंदावन)–२३५, ३४४।
दिल्ली (शुकदेवपुरा)–१६, ९६।
-- इन्द्रप्रस्थ–२०५, २७४, ३०२, ४६५, ४९६।
-- गदनपुरा–९३, ९४, १४२।
-- घास की मंडी–९१, ९४, ९८, १३५, १३८, १४२, १७०, ४३१।
– चीरेखान–२२७; ३०३, ४८८।
– जयसिंह पुरा–२८०, २८१, ३३७, ३४४।
– जहाँगीर पुरा—१८, २१७, २५८, ३४४।
– तिहाड़ –३४५।
– तेलीवाड़ा–९५, १००, १७०।
– नयी बस्ती–९५।
– नरेला–२५६, २८०।
– परीक्षितपुरा–९२, ९७, १००, १३९, १६८, २२७, २२८; ५२४, ५६२, ५९१, ६१०।
– पुराना किला–२८०, २८१, ३३१।
– साबुन की मंडी–१७१।
– सीताराम बाजार–२२३, २८०, ३३४, ३४४, ३८७, ३९२, ४०२, ४२५।
दिसावर खेडी ३९०, ५१३, ५१४।
दुजाना—२५, २८०, ३३७।
देवास (इंदौर)—२३९, २८०।
देल्हावास—३९४, ३९५, ४०३।
देहरगवाँ (ग्वालियर)–२३९, ३७६, ३८४।

[ध]

धनमौली—२७९, ३४५।
धनौरा—२५, २०४, २२४, २२६, ३८७, ४७६, ४७९, ५८०।
धामपुर—२२४, ३८७, ४७६, ४७७, ४७८।
धाराहेड़ी—२२७, २३०, ५२५, ५७९।
धीरपुर —२१७, २५८, २८०, ३४४, ३४५।

[न]

नागपुर—२०४।
नारनौल—२५, २८०, ३४५, ५४९।
नाहड़—२५, २८०, ३३७।
नूह—९४, ३५०, ३८०।
नौरसपुर—२२७, २३०, ३८७, ५०६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यौरी (नोहरी)—२७९, ३४३ ।

[प]

पंडितपुरा—२७९ ।
पटना (ठठेरी बाजार)—२२७, २३९, ३३४, ३३९; ५२०, ५२४, ५२५ ।
—सुमेरपुर—२३९, २८०, ३३९, ५२५ ।
पटियाला (नाभा दरवाजा)—१८, २५, १६५, २०४, २४३, ३८२, ३९२, ४०२ ।
पटोदा—२८० ।
पटोदी—२५, २८०, ३४५ ।
पतला-निवाड़ी—२८०, ३३९ ।
परमौरा—२३५, २८०, २८१, ३२५, ३२८ ।
पलथा (झरिया)—२३५, २३९, ३५५, ३८१, ५२३, ५२५ ।
पलथा (बरेली)—२०५, २२०, २२७, २३२, २३५, २५८, ३३४, ५२५, ५२६; ५२७ ।
पल्वल—२५, ३४९, ३८० ।
पानीपत—१८, ८२, ९४, २१९, २२३, ३५०, ३८० ।
पुरी (उत्कल)—१७३, २०३, २३१, २९३, ५३३, ५६४, ६०६ ।
पोरी—२३२, ३७६ ।
पृथ्वीपुरा (पावटा)—३८७, ४०३, ४०४ ।
प्रयाग (इलाहाबाद)—२६०, ५१५, ५१९ ।
—कीडगंज—२२७, २३५, ३८८, ३९०, ५२० ।
—झूंसी—२३५, ५१८ ।
—मुट्ठीगंज—२२७, २३५, ३९०, ५१९ ।

[फ]

फतेहपुरी (दिल्ली)—२५, ८८, ११२; ३८० ।
फिरोजपुर—२५ ।
फर्रुखनगर—२५, ३८३ ।

[ब]

बंथला—१७, २१७, २५८ ।
बदेह—२२६, ३८७, ४९६, ४९७ ।
बनी (बंदीपुर)—२७९, ३३४, ५०६, ५०७ ।
बरनाला—२५, ३८७, ४०३ ।
बलिआणा—२५, २३२, २४०, २४१, २८०, २८१, ३००, ५३१, ५९७ ।
बहादुरपुर—१२, ६६, ८५, १०४, २०३; २२६, २३१, २४०, ३१३, ५२५, ५३७, ५३८ ।
बादली—१८, २४८, २५६, २८०, ३४५ ।
बाभनौली—२२७, २३०, २८०, ३८७, ५११, ५२५, ५७७, ५८९, ६१३ ।
बालीवाली—२५, ३४, ३८७, ३९८, ३९९, ४०३, ४२५; ४७९, ५०३ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालावाली (बिजनौर)—४७९ ।
बालागंज—२०४, २३९ ।
बिदकी—२३५, ५४४ ।
बिगोवा—२७९, २९६ ।
बिठूर—३०, २०४; २३५, ३५० ।
बींझ बायला (गंगानगर)—३९९ ।
बीबीपुरा—२७९; ३४५ ।
बीरबल की गढ़ी—५८७; ६०४, ६०६ ।
बीसलपुर—२०४ ।
बुढ़ाना—२५८, २७८, ३४५ ।
बेरी—२५, २२६, २८०, २८६, ३००, ३३६, ५२३, ५२७ ।
ब्राह्मणी खेड़ा—२३०, ३५६, ४६६, ६१८ ।

[भ]

भदेचे—३८७, ३९८ ।
भिवानी—२५, २८० ।
भुसावल (भरतपुर)—२२४, २२७, ५२५, ५७७ ।
भूधड़—३४, ३८४, ४०३ ।
भोरगढ़—१८, २४८ ।
भोहड़ा (बहोड़ा)—२४३, ३५०, ३७१ ।

[म]

मंदपुर—२२४, ३८७, ४७६, ४७८ ।
मडेला—२८० ।
महायो—२७९ ।
महावतपुर—२०५ ।
माँगी—२८० ।
माँदीपुर—१८. २१७, २४८, २५७ ।
माचल—३४, ८७, २०५, २२०, २२६, २३३, ३३४, ३८४, ३९०, ३९३, ३९४-३९७, ४१९, ४२८; ५०३, ५१७, ५४४, ५७६ ।
मालाषेड़ा—३८७, ३९४, ३९५, ४०४ ।
मालेरकोटला—१८, २५ ।
मित्तराउ—२८०, २८१, ३२८, ३३४ ।
मिसरगढ—२८०, २८१, ३३७, ५१२ ।
मीलावली—२८०, २८१, ३३९ ।
मुंगेर (चौक बाजार)—२३९, ३३४ ।
—मोतीबाजार—२०३, २८१ ।
मुकुटपुरा—२८०, ३४५ ।
मुडोला—२२७, २८०, ३३५, ३८७, ५०५, ५०६ ।
मुसेदपुरा—३४, २४३, ३५२, ३९६, ३७२, ३७५, ३७९, ३८४ ।
मेरठ (पाड़ामल का बाड़ा तथा अनाज की मंडी)—२२६, २५८, ५१२, ५७७ ।
मुर्शिदाबाद—५८, १७३, २२७, २२९, २३०, ५२३, ५३३, ५८७, ६११ ।
मोड़िया—३८७, ४७६, ४७९ ।

[र]

रजधान—२२७, ३४१, ५२३, ५४१, ५४८, ५४९, ५५३ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमेल (रवेल)--२२७, ५६९ ।
रसूलाबाद--३२५।
रहलियावास--२२६, २३२, २८०, ३४१, ३४८, ३७५, ५२३, ५२९ ।
रामपुरा--३४९, ३७५, ३७९ ।
रायपुर (हमीरपुर)-५२४, ५५२, ५५३ ।
रावड़की--४००, ४०५ ।
रिवाड़ी (नई बस्ती)--२५, ३४, ६७, २३२, २३९, २४६, ५०३, ५३९, ५७६ ।
--सदर बाजार--३२६, ३७९, ५०३, ५२९, ५३९ ।
रुड़की--२०४, २३१, ४७८ ।
रोड़ी--२०४, २४०, ३८७ ३९२, ३९८, ४०२; ४०३, ४२५, ५०३ ।
रोहतक (खास)-२५, १२६, २२६, २३२, २४३, २८०, २८१, ३९७ ।
—हूडगंज--३५४, ३७४ ।

[ल]

लखनऊ (अलीगंज)-५५०, ५५४ ।
-चौक बाजार-२८८, ५२४, ५४४, ५५० ।
-ठाकुरगंज--५२४, ५४४ ।
-डालीगंज-५५० ।
-दौलतगंज-५५० ।
-फतहगंज-२२८; २३०, ५२४, ५४९, ५५२ ।
-सब्जी मंडी-५५०, ५५४ ।
रस्तोगी टोला (लखनऊ)—२०४, ५५० ।
लाडुवा-३९२, ४०३ ।
लुकसर-२८०, २८१, ३१०, ३१२, ३१३, ३३८ ।
लुजीड़ा--२२७, ५२४, ५७४, ६०३ ।
लुहारी (लहर, झाँसी)—२२९ २३५, ५८७, ६०१, ६०२ ।
लोकरी-२५, ३४९, ३५३, ३७९, ५१५, ५१७ ।

[व]

बिलासपुर (गुड़गाँव)--३४९, ३५५, ३८१ ।
विहारीपुरा--४८० ।
वृंदावन (ग्वालियर वालों की कुंज)- २३५, २४९, ३७६ ।
-बाग बुंदेला—३२१ ।
-युगलघाट-१०६, २०४, २२७, २८०, २८१, ३०३, ३९३, ५८३ ।
-व्यासघेरा (सेवाकुंज)—२२५, ४०४, ५८९ ।
-वंशीवट--५९२ ।
-सिरसियाघाट-५८४ ।

[श]

शामली--६३, १००, १०२, १७०, २२८, २३०, ४९१, ५२४, ५८० ।
शाहजहाँपुर (स्याँझापुर, रिवाड़ी)- २५, ९४, १७०, २८०, ३३२, ३८७, ४२७,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४३०, ४६७, ४६८, ५०२ ।
शाहजहाँपुर (उत्तरप्रदेश)—८७, २४८, २५७, २८१, ५११ ।
शाहपुरा (अलवर)—२२४, २२६, २३२, ३८७ ५०१; ५०३ ५४०, ६०३ ।
शिवराजपुर (स्वराज्यपुर)—२०४; २३५, ५४२ ।
शुक्रतार (शुक्रताल)—७०, १०९, १६५, २०५, २१९, ३२१, ५२५, ५७८, ५७९ ।

[स]

संगरूर (खास)—१८, २५, २०४, २३१, २३२, २४३, ३५२, ३८२, ४०३, ४२५ ।
संग्रामपुर—५५२; ५५३ ।
सवाद—२५, २७९, ३४३, ३८७, ४७६ ।
सहारनपुर (खास)—२८० ।
साँबड़—३४४ ।
सानखास—२७९, ३४४ ।
साप्रा—२८०, ३४४ ।
सिढ़ाना—२२८ ।
सिलसिली—४८१, ५२४, ५८० ।
सुनाम—२५, २०४, २८०, ३४४, ३५०, ३५३, ३८२, ४०३, ५०७ ।
सुलहेड़ा—२२९, ५८२, ६१४ ।
सोरों (शूकर क्षेत्र)—१६५, २१९, २३५, २५८, ३१३, ३२६ ।
सोलघा—२८०, २८१, ३३७ ।
स्यालु—२७९, ३४४ ।

[ह]

हरसौरा—३४७, ३८० ।
हापुड़—१७०, ४६७, ५५७ ।
हायरस—२०५, २२९, २५८, ५८७, ६००, ६०१ ।
हिरनकी—२८०, ३४५ ।
हेजरपुर—३८३, ५२५, ५७९ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपजीव्य ग्रन्थसूची

अखै ज्ञान समूह	अखैराम जी	(हस्त)	४११, ४१४, ६७४।
अखैराम जी की वाणी	,,	(,,)	४०५, ४०६, ४१५।
अखै सागर	,,	(,,)	४०५, ४०६, ४११, ४१४, ४१९, ४२३, ४२६, ४२८।
अगहन बोधिनी	निर्भयराम जी	(,,)	३२६।
अजपादासजी की बानी	अजपादास जी	(,,)	३२९।
अध्यात्म कीर्तन पुष्पांजली	हंसदास जी	(प्रका)	४७७।
अमरलोक अखंडधाम वर्णन	चरणदास जी	(,,)	१३६, १३८-३९, १५३, २०५, ६३७, ६३९।
अवतार अष्टक	श्री ज्ञानानंद निर्वाणी	(हस्त)	४८०, ५०८, ५१०।
अष्टकाल समयविधि	श्री सरसमाधुरीशरण	(,,)	३१७।
अष्टयाम	रामसखी जी	(,,)	३८७, ४९२, ४९५।
अष्टांग योग वर्णन	श्री चरणदास	(प्रका)	१०९, १३१, १३७, १४१।
आठ पहर मूलचेत प्रसंग	गो० जुगतानंद जी	(हस्त)	३५७, ३५९।
आत्मबोध	सबगतिराम जी	(,,)	५१२-५१३।
आदर्श सन्त	प्रेमस्वरूपजी	(प्रका)	३२२, ७५६।
आनन्दबोध	सेवादास जी	(हस्त)	५५४।
आनन्दसागर	पूरनप्रताप जी	(,,)	५०४।
आनन्दसार पोथी	नवनदास जी	(,,)	३६६-३६८।
इतिहास सार समुच्चय	गो० जुगतानन्द जी	(,,)	३२८, ३५७ ३६२—३६३, ३७१।

नोट—हस्त = हस्तलिखित एवं प्रका = प्रकाशित समझें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रप्रस्थ माहात्म्य भाषा	गो० केशवदास	(,,)	३०२, ४२३।
उपदेशचिन्तामणि	श्री रूपमाधुरीशरण	(,,)	१२०।
उपनिषद् सार	श्री चरणदास	(,,)	१०९।
उपदेशामृत धार	श्री सरसमाधुरीशरण	(हस्त)	३१७।
एकादशी माहात्म्य	श्री अमरदास	(,,)	६०३।
एकादशी माहात्म्यकथा	कर्तानन्द जी	(,,)	२७०।
एकादशी महातम	निर्भयराम जी	(,,)	३२६।
,,	बेगमदास जी	(,,)	४१७।
कका बत्तीसी	जंदास जी	(हस्त)	४५२–४५३।
कवित्त	गो० जुगतानंद जी	(,,)	३६०, ३६२–२६३।
कवित्त वर्णन	चरणदास जी	(प्रका)	१३७।
कृष्णविनयावली	रामसरनदास जी	(,,)	३१३।
कार्तिक माहात्म्य भाषा	श्री नवनदास	(,,)	३६६, ३७०।
कालीनथन लीला	चरणदास जी	(प्रका)	१३६, १५७।
कीर्त्तनसंग्रह	श्री सरसमाधुरीशरण	(,,)	३१७।
कुरुक्षेत्र लीला	चरणदास जी	(,,)	१०९, १३७, १३९, १५८, १६३।
कुरुक्षेत्र लीला	अखैराम जी	(हस्त)	४११।
गंगा सतसई	महन्त गंगादास जी	(,,)	२५४।
गंगनदास की बानी	गंगनदास जी	(,,)	४२२, ४२३।
गंगा माहात्म्य	अखैराम जी	(,,)	४११–४१२।
गुरुपरत्व	श्री रूपमाधुरीशरण	(प्रका)	३२०।
गुरुभक्तिप्रकाश	स्वामी रामरूप जी	(,,)	२३, ६४, १००, १०२, ११९, १२३, १२६, १२८, १६७, १८३, २१९, २२०, २४८, २७६, २८७, ३२८, ४७०, ४७१, ४७२, ४७६, ४७७, ४८३, ५०४, ५३९, ५५२, ५६२, ५६४, ५९२, ६१०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुशिष्यसंवाद	श्रीसरसमाधुरीशरण	(हस्त)	३१७।
गुरु स्तुति बीनती	लक्ष्यदास जी	(,,)	४५६।
गुरुस्तोत्र	श्रीजसराम उपकारी	(,,)	४८०।
गोपाल सहस्रनाम	श्री सरसमाधुरी शरण	(,,)	३१७।
चरण प्रकाश या भरद्वाज पंचाध्यायी	लक्ष्यदास जी	(,,)	४३९, ४४२।
चरणदासचरितावली	महंत गंगादासजी	(,,)	१२९, २१४।
चरणदासाचार्य स्तोत्र अष्टक	मनमोहनदास जी	(,,)	३०८।
चरणावत वैष्णव वर्षोत्सव	श्री रूपमाधुरीशरण	(,,)	३२०।
चरणावत वैष्णव सदाचार	,,	(,,)	३२०।
चार पदार्थ	गो० जुगतानंद जी	(हस्त)	३५७, ३६२।
चार भाव	अखैराम जी	(,,)	४११, ४१४।
चीरहरण लीला	चरणदास जी	(प्रका)	१०९, १३७।
चेतनसार	श्री गंगनदास	(हस्त)	४२३।
चौबीस अवतार भाषा	ज्ञानानंद निर्बाणी	(हस्त)	५०७–५०९।
चौबीस एकादशी कथा	,,	(,,)	३८८, ५०८-५०९।
चौमासा और बारहमास	गो० जुगतानन्द	(,,)	३५७, ३६२।
छौना जी की बानी	गुरुछौना जी	(,,)	४०६–४०७।
छौना जी के शब्द	,,	(,,)	४०७–४०९।
जागरण माहात्म्य	श्री चरणदास	(प्रका)	१३८, १५६।
जाप महातम	मुक्तानन्द जी	(हस्त)	५५५–५६।
जीवन्मुक्ति आनन्द बोध	सेवादास जी (इकंगीकी परंपरा के)	(,,)	४५४।
जुगतानंद कवित्त	गो० जुगतानंद जी	(,,)	३६२।
जैमिनि अश्वमेध कथा	स्वामी रामरूप जी	(,,)	२८७, २९२–२९५, ३४९।
जैमिनी पर्व की टीका	ध्यानेश्वर जोगजीतजी	(,,)	४६६–६७, ४७३, ४७५।
ज्ञानस्वरोदय वर्णन	श्रीचरणदासजी	(प्रका)	१३६, १३८, १४३, १४५, १६२।
ज्ञानलता	सेवादास जी	(हस्त)	४५४।
ज्ञाननौका (भाषा)	मानदास जी	(,,)	४५१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानदीप (भाषा)	मानदासजी	(,,)	४५१।
ज्ञानमयी बानी	,,	(,,)	४५२।
ज्ञानसागर	सेवादास जी	(,,)	४५४।
ज्ञाननिरूपण	मुक्तानन्द जी	(,,)	५५५–५५६।
ज्ञानमाला	कमलदास जी (शिष्य ठंडोरामजी)	(हस्त)	५६१।
ढाढ़ी जी की पुस्तक	सरसमाधुरीशरणजी	(,,)	३१७।
तत्वयोगोपनिषद् भाषा	चरणदास जी	(प्रका)	१४४, ६२६।
तेजबिन्दूपनिषद् भाषा	,,	(,,)	१४५, ६२६।
दशम स्कन्ध भागवत भाषा	श्री ज्ञानानन्द निर्वाणी	(हस्त)	५०८, ५२७, ६११।
दयाबोध	सुश्री दयाबाई	(प्रका)	५७०-५७१।
दानलीला	श्री चरणदास	(,,)	१०९, १३१, १३८, १५६, १६१, ४६५।
द्वादश महावाक्य ग्रंथ	गुरुशरणदास जी	(हस्त)	४४५–४४६।
दोहा	श्री लक्षिदास	(,,)	४३९।
दोहावली	श्री सरसमाधुरीशरण	(प्रका)	३१७।
धर्मजहाज	श्री चरणदास	(,,)	१०९, १३६, १३८, १४०, १४१।
नरसी रो भात	सुश्री खुशाला बाई	(हस्त)	४२७।
नवनप्रकाश	श्रीनवनदास	(,,)	१२२, ३६६–३६८।
नव संत माल	श्री रूपमाधुरीशरण	(प्रका)	२२०, २२४, ३२०, ३३३, ३३६, ३९१, ४२२, ४३२, ५३१, ५३४, ६११।
नवधा भक्ति	साधुसरनजी	(हस्त)	४४९।
नवलदास और वीर हेमू के वृत्तान्त	श्री धर्ममित्र	(प्रका)	३२१।
नृत्य राघव मिलन	श्री रामसखी	(हस्त)	३८७, ४९०, ४९४–४९५।
नासकेतपुराण भाषा	नन्दलाल जी	(,,)	५२९।
नासकेत लीला	श्री चरणदास	(प्रका)	१३८, १६३।
निंबार्क भगवान की बधाई	श्रीसरसमाधुरीशरण	(हस्त)	३१७।
नित्य पाठ संग्रह	श्री सरसमाधुरीशरण	(प्रका)	३१७, ४८९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्य पाठसंग्रह	रूपमाधुरीशरणजी	(,,)	३२० ।
नित्यानन्द के भजन	महंत नित्यानंद जी	(हस्त)	५४८ ।
निरकंचन (नाटक)	सरसमाधुरीशरण जी	(,,)	३१७ ।
नेह प्रकाश	कृपानिवास जी	(,,)	३३८ ।
पंचोपनिषद् अथर्वणवेद-भाषा	चरणदास जी	(प्रका)	१३१, १३८, १४४, १४६, १४८, १६२ ।
पंचकोष वर्णन	अखैराम जी	(हस्त)	४११, ४१४ ।
पद्मपुराण भाषा	श्री कर्त्तानन्द	(,,)	२६९, २७० ।
पद	श्री वृन्दावनदास	(,,)	३७७ ।
,,	सुश्री कोकिलाबाई	(,,)	३०४ ।
,,	प्रेमगलतान जी	(,,)	४९७ ।
परमात्मप्रकाश	दौलतराम जी	(,,)	६११ ।
परमानन्द प्रबोध	आनन्दराम जी	(,,)	३२८ ।
पांडव गीता	महन्त भोलादास	(,,)	३०२ ।
पांडव यज्ञ लीला	चरणदास जी	(,,)	१६१, १६५ ।
प्रेमगलतान जी के शब्द	प्रेमगलतान जी	(,,)	४९७, ४९९ ।
प्रेम पयोनिधि (३ भागों में)	मनमोहनदास जी	(प्रका)	३०६–३०८ ।
प्रेमलता	स्वामी रामगोपाल जी	(हस्त)	३३२, ४३० ।
प्रेमसार पोथी	नवनदास जी	(,,)	३६३–३६८ ।
प्रेमसैल पोथी	सेवादास जी	(,,)	४५४ ।
बानी	श्री अगमदास	(,,)	२६६–२६७ ।
,,	हरीदास जी (प्रथम)	(,,)	५३२ ।
,,	रामसरनदास जी	(,,)	४४६ ।
,,	श्री बेगमदास	(,,)	४१७–४१८ ।
,,	गुरुछौना जी	(,,)	४०६–४०९ ।
,,	श्री नागरीदास गोसाई	(,,)	५६८ ।
,,	प्रेमगलतानजी	(हस्त)	४९९–५०० ।
,,	श्री ज्ञानानन्द निर्वाणी	(,,)	५०८ ।
,,	दाताराम जी	(,,)	५७६ ।
,,	दासकुँवर जी	(,,)	५९६ ।
बानी संग्रह	रूपमाधुरीशरणजी	(,,)	५४१ ।
बानी प्रकाश	श्री गुरुसरन दास	(,,)	४४४–४४५ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारह खड़ी	श्री विष्णुदास	(,,)	५६०–५६१ ।
बारहमास	लक्ष्यदास जी	(,,)	४५७, ।
बिचारबोध	गो० जुगतानन्द जी	(,,)	३५७, ३६१–३६३ ।
बुत्रविलास	सुश्री खुशाला बाई	(,,)	४२७ ।
बैसाख माहात्म्य (भाषा)	कर्त्तानन्द जी	(,,)	२६९, २७१, २७५–२७६ ।
बोध विचार	मानसदास जी	(,,)	४५१ ।
बोध बावनी	सेवादास जी	(,,)	४५४–४५५ ।
ब्रजचरित्र वर्णन	चरणदास जी	(प्रका)	१३४, १३६, १३७–१३९, १५३, २०६, ६३९ ।
ब्रज मारावली	भजनानन्द जी	(हस्त)	५५३ ।
ब्रह्मज्ञान सागर	चरणदास जी	(प्रका)	१०९, ५९७ ।
ब्रह्मविद्या सागर	चरणदास जी तथा अन्य	(,,)	२६०, ५६३, ५७०, ५९७ ।
ब्राह्मण तत्व सिद्धान्त	श्री सरसमाधुरीशरण	(हस्त)	३१७ ।
भगवत गीता भाषा	,,	(,,)	३१७ ।
भक्त बावनी	श्री जसराम उपकारी	(,,)	१२३, १२६, १३२, १३३, १३५, १६४, ३८७, ४८०–८१ ।
भक्तमाल की टीका	श्रीश्यामविलास	(,,)	२५२ ।
भक्तिपदार्थ	श्री चरणदास	(प्रका)	१०९, १३६, १४८, ५३३, ६३०, ६३३, ६४४ ।
भक्तिप्रबोध (भक्तिप्रकाश)	श्री जसराम उपकारी	(हस्त०)	४८३–८४ ।
,,	गो० जुगतानन्द जी	(,,)	१६४, ३५७–३९९; २६०, ३८१, ३८३, ६२८, ६३३ ।
भक्तिरतन पोथी	जैदास जी	(,,)	४५०, ४५२–५३ ।
भक्तिरस मंजरी	श्री रामसखी	(,,)	२०७, ३८७, ४९०–४९५, ६४३, ६९२।
भक्तिसागर	श्री चरणदास	(प्रका)	१०९, १३४, १३५,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

		१३६, १३८, १४८, १५०, १५३–१५५, १५९, १६२, २५३, २७८, ३३३, ४५९, ४८१।
भक्तिसिद्धान्त ग्रंथ	स्वामी सिद्धराम जी (हस्त)	१६४, २९७–२९८, ३००।
भक्तिसुधा निधि	गुरुसरनदास जी (,,)	४४४।
भगवतगीता माला	गो० जुगतानंद जी (,,)	३५७–३५८, ३६२।
भागवत महातम	,, (,,)	३५७, ३६२।
भावना पचीसी	कृपानिवास जी (हस्त)	३३८।
भार्गव दर्पण	श्रीधर्ममित्र (प्रका)	३२१।
भाषा ज्ञानदीप	श्री मानदास (हस्त)	४५१।
भाषा ज्ञाननौका	,, (,,)	४५०–४५१।
भाषा मानविनोद पोथी	,, (,,)	४५१।
भाषा श्रीमद्भागवत	नागरीदास गोसाईं (,,)	५६५–५६७।
भूगोल पुराण	श्री कर्त्तानन्द (,,)	२६९, २७२।
भ्रमरगीत	श्री गंगनदास (,,)	४२५।
भ्रमनिवारण	श्री नित्यानन्द (,,)	५४३, ५४८।
मंगलाष्टक	अखैराम जो (,,)	४११।
,,	लक्ष्यदास जी (,,)	४४२।
मटकी लीला	श्री चरणदास (प्रका)	१३७, १३८, १५७, १६१।
मन ज्ञान संग्राम	सेवादास जी (हस्त)	४५४।
मनविरक्तकरण गुटका सार	,, (प्रका)	१४१, १६१–१६२।
माखन चोरी लीला	श्री चरणदास (,,)	१३६, १३८, १५६, १६१।
माघ माहात्म्य सार	कर्त्तानन्द जी (हस्त)	२६९।
मुक्ति मार्ग	स्वामी रामरूप जी (प्रका)	२७६, २८५, २८७, २८८–२९२, ३०५, ३११, ३१२।
मोहनदास जी की वाणी	मोहनदास जी (हस्त)	४२६।
युगल रस	श्री सरसमाधुरीशरण (,,)	११७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगशिखोपनिषद् सार	श्री चरणदास	(प्रका)	१४४–१४५ ।
योग सदेह सागर	,,	(,,)	१०९, १३६, १४२–१४३ ।
योग सार	श्री नन्दराम	(हस्त)	५६२–५६३ ।
रतन गुटका	लालदास जी	(,,)	४५५–४५६ ।
रामचरित महातम	निर्भयराम जी	(,,)	३२६–३२७ ।
रामाश्वमेध की कथा	श्री भगवानदास	(,,)	३८७, ४८६–४८८ ।
रामुदास जी की वाणी	श्री रामुदास	(,,)	४१९–४२० ।
रुक्मिणी मंगल	विष्णुदास जी	(,,)	५५८–५६० ।
लगन पचीसी	कृपानिवास जी	(,,)	३३८ ।
लक्षिदास जी की वाणी	लक्ष्यदास जी	(,,)	४३९, ४४२ ।
लक्षिदास ग्रंथावली	,,	(,,)	४४०, ५७१ ।
लोलासागर	श्री जोगजीत	(प्रका)	१०२, १८, १९, २३, २६, २८, ६६, ६८, ७२, ७५, ७६, २१९, २०, २३, ७६, ३४३, ४६, ४८, ५४, ५६, ८७, ४६६, ४६९–४७५, ४७९, ४८६, ८८, ५०४, ०६, १०, १४, २४, २५, २९, ३०, ३१, ३४, ५१, ५७, ६२, ७०, ८१, ९२, ९४, ६००, ०२, ०५, १०, ११, १४, १७, ३५, ५६, ७०, ७६, ९९, ७०४ ।
वरुण चरित्र	चेतनदास जी	(हस्त)	४२८ ।
वाणगंगा महातम	अखंराम जी	(हस्त)	४११–४१४ ।
वाणी	चेतनदास जी	(,,)	४२८ ।
विचारमाल	श्री देवमुरारी	(,,)	३५३ ।
विचार चरित्र	श्री अखराम	(,,)	४११, ४१२, ४१४ ।
बिज्ञान पदार्थ	श्री प्रेमगलतान	(,,)	३८७, ४९७–९८ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनयमालिका	सुश्री दयाबाई	(,,)	५७३–५७४।
वैद्यबोध	अखैराम जी	(,,)	४११–४१४, ४३०।
वैद्यभास्कर	रामगोपाल जी	(,,)	४१२, ४३०–४३१।
वैराग्य बारहमासी	श्री बेगमदास	(,,)	४१७–४१८।
वैराग्य संबोधन	श्री रामगोपाल	(,,)	३३२, ४३०।
वैष्णवलीला (नाटक)	सरसमाधुरीशरण जी	(,,)	३१७।
शब्द	जसराम उपकारी	(,,)	४८१, ४८४–४८५।
,,	गो० जुगतानन्द	(,,)	३५७, ३६०।
,,	जैदास जी	(,,)	४५३–४५४।
,,	विषनानन्द जी	(,,)	३७१।
,,	बेगमदास जी	(,,)	४१७।
,,	लालदास जी	(,,)	४५६–४५७।
शब्द बावनी	स्वामी सिद्धराम	(,,)	२९७–२९९, ३३५।
शब्द बोधिनी	हरिनारायण जी	(,,)	५९२, ५९७–५९८।
शब्द माधवदास जी के	श्री माधवदास	(,,)	४५७–४५८।
शब्द वर्णन	श्री चरणदास	(प्रका०)	१३७–१३८।
शुकदेव अष्टक	,,	(,,)	१५२।
शुक संप्रदाय सिद्धान्त चंद्रिका	श्रीसरसमाधुरीशरण	(,,)	३१७।
शुक संप्रदाय सिद्धान्त दर्पण	,,	(,,)	३१७।
शुक संप्रदाय प्रकाश	श्री रूपमाधुरी शरण	(,,)	७२, ३२०।
शुक पुराण	लक्ष्यदास जी	(हस्त)	४४०–४४१।
शुभसार	सहजानन्द जी	(हस्त)	५५६।
श्रीश्यामचरणदास चरितावली	महन्त गंगादास	(प्रका)	२२४, २५३–२५४।
श्रीमद्भागवत भाषा	गो० जुगतानन्द जी	(हस्त)	३५७–३५९, ३६२, ४१७, ५५८, ५६७।
,,	रामकृपाल जी	(,,)	३११–३१२।
,,	बेगमदास जी	(,,)	४१७।
श्रीधर ब्राह्मण लीला	चरणदास जी	(प्रका)	१०९, १३७, १५८, १६१।
श्री चरणावत वैष्णव-सदाचार	श्री रूपमाधुरी शरण	(,,)	२०५, २४९, ३२०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री प्रीति परीक्षा (नाटक) श्री सरसमाधुरीशरण (हस्त) ३१७।
श्री गुरुपरत्व श्री रूपमाधुरीशरण (प्रका) ३२०।
श्री चरणावत वैष्णव वर्षोत्सव ,, (,,) ३२०।
श्री रूपमाधुरीशरण की वाणी ,, (,,) ३२१, ५४१।
श्री सरस चरितामृत श्रीमतिशरण जी (प्रका) ३२४, ७५०–७५१।
श्रीमद्भागवत दसम स्कंध
(भाषा) ज्ञानानंद निर्वाणीजी (हस्त) ३४२, ५०८।
,, ,, महंत हरिनारायण जी (,,) ३६२–३६३।
श्रीमद्भागवत महापुराण
(भाषा) गो० जुगतानंद जी (,,) ३६२–३६३।
श्रीमद्भगवत् गीता
(भाषा) नागरीदास गोसाईं (,,) ५६७।
श्री सरस बधाई संग्रह
(संपा०) अलबेली माधुरीशरणजी (प्रका) ७४९।
षट् संपत्ति अखैराम जी (हस्त) ४११।
षट् दर्शन मत ,, (,,) ४११, ४१४।
षट् ऋतु वर्णन मानदास जी (,,) ४५१।
षट् रूप मोक्ष गुरुछोना जी (,,) १६४, ४०५–४०६, ४१२, ४२२।
संत विलास महन्त नित्यानन्द जी (,,) ५४२, ५४३, ५४८।
संतकल्पतरु कमलदास जी (,,) ५६१।
संगीत दर्पण सरसमाधुरीशरणजी (,,) ३१७।
संत माल अज्ञात (,,) ५७०।
सरस प्रताप श्रीजुगलमाधुरीशरण (प्रका) ३१६।
सरस निकुंज विलास श्री सरसमाधुरीशरण (हस्त) ३१७।
सरस मजावली ,, (,,) ३१७।
सरस माधुरी विलास ,, (,,) ३१७।
(भाग १, २)
सरस भारती (नाटक) ,, (,,) ३१७।
सरस बसंत होली संग्रह ,, (,,) ३१७।
सरस झूलन मलार ,, (,,) ३१७।
सर्व अंग सार गुटका महंत मलूकदास जी (हस्त) १२२, ५१४; ५१६–५१८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस सत्गुरु विलास	श्री विलास माधुरीशरण	(,,) ३२४।
सप्तश्लोकी गीता	गो० जुगतानन्द जी	(,,) ३६३।
सप्त भूमिका	अखंराम जी	(,,) ४११, ४१४।
स्फुट पद	श्री लक्ष्यदास	(,,) ४४०, ४४२।
स्फुट पदावली	मुक्तानन्द जी	(,,) ५५५।
सहज प्रकाश	सुश्री सहजोबाई	(प्रका) १६४, २४८, २४९, २५९–२६६, ३१८, ३१९, ४४४, ४५९।
सांख्य योग	अखैराम जी	(हस्त) ४११, ४१४।
सातिक सुभ लक्षण	श्रीआत्माराम इकंगी	(,,) १६४, ४३५।
साधु महिमा ग्रंथ	सुश्री खुशाला बाई	(,,) ४१२, ४२६–४२७।
सात वार	,,	(,) ४२७।
सार संग्रह	श्री लक्ष्यदास	(,,) ४४१।
साखी	श्री मानदास	(,,) ४५१–४५२।
सुदामा चरित्र	बेगमदास जी	(,,) ४१७।
सुयश प्रताप	श्रीसरसमाधुरी शरण	(प्रका) ३१७।
सुखसागर पुराण	श्री लक्ष्यदास	(हस्त) ४४०–४४१।
सेवा रीति	सरसमाधुरीशरण जी	(,,) ३१७।
सेवादास जी के शब्द	सेवादास जी	(,,) ४५४।
हंसनादोपनिषद्	चरणदास जी	(,,) १४४, ६२६।
हरि गुरु प्रकाश	लालदास जी	(हस्त) ४५६।
हरि गुरु स्तोत्र	जसराम उपकारी	(,,) ४८१।
हुलासदास की बानी	हुलासदास जी	(,,) ६१७।
हिन्दू धर्म दिवाकर	धर्ममित्र जी	(प्रका) ३२१।
हीरादास जी की बानी	हीरादास जी	(हस्त) ४२१–४२२।
होरी संग्रह	श्री सरसमाधुरी शरण	(,,) ३१७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक ग्रन्थसूची

[हिन्दी]

आईन ए अकबरी (अनुवादक ब्लाक मैन जेरेट) कलकत्ता, १८९१ ई० ।

इतिहास सार समुच्चय (पांडुलिपि)—गो० जुगतानन्द जी (चरणदास जी के शिष्य)।

आदर्श संत—श्री प्रेमस्वरूप, कोटावालों का रास्ता; जयपुर, सं० २०३४ ।

उत्तरी भारत की संत परम्परा—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी (द्वितीय संस्करण), भारती भंडार, लीडर प्रेस—इलाहाबाद, सं० २०२१ ।

काव्यधारा (हिन्दी)—(संपादक) महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, किताबमहल; प्रयाग, १९४५ ई० ।

गुरुभक्ति प्रकाश—श्री स्वामी रामरूप जी कृत, श्री श्यामचरणदास प्रकाशन कार्यालय, ३१९३, मोहल्ला दस्सान, दिल्ली, सं० २००७ ।

चरनदास जी की बानी (दो भाग)—वेलवेडियर प्रेस—प्रयाग, १९३० ई० ।

चैतन्य चरितावली (५ भागों में)—श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी, गीताप्रेस, गोरखपुर ।

जायसी ग्रंथावली—(सं०) डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, प्रयाग, १९५२ ई० ।

जायसी ग्रंथावली—(सं०) आचार्य रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी ।

नवसंत माल—श्री रूपमाधुरीशरण, प्रकाशक श्रीद्वारकाप्रसाद मूदड़ा, साँभर, (राज०) सं० २०२३ ।

नाथसिद्धों की बानियाँ—(सं०) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ना० प्र० सभा, वाराणसी ।

नित्य पाठ संग्रह (संग्रहकर्त्ता) श्री सरसमाधुरीशरण, प्रकाशक—ईश्वरलाल बुकसेलर, जयपुर ।

प्रेम पयोनिधि—(तीन भाग) मनमोहनदासजी विरचित, प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली । सं० १९७३ वि० ।

बनारसी विलास—स० भँवरलाल जैन, जयपुर, सं० २०११ वि० ।

भक्त चरितावली (भाग १, २)—प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ।

भक्तनामावली—ध्रुवदास कृत (संपादक श्री राधाकृष्ण दास) ना० प्र० सभा, वाराणसी, १९०१ ई० ।

भक्तिरसमंजरी—(पांडुलिपि)—श्री रामसखी कृत ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिसागर—स्वामी चरणदास जी, श्री शुकचरणदासीय प्रकाशक ट्रस्ट, जयपुर, सं० २०२७ वि० ।

भागवत संप्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय, ना० प्र० सभा, वाराणसी, सं० २०१० वि० ।

भारतीय दर्शन— ,, शारदा मंदिर, काशी, १९४५ ई० ।

मध्यकालीन धर्मसाधना—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद (द्वितीय संस्करण)सन् १९५६ ई० ।

मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास—डा० ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस इलाहाबाद ।

मलूकदास की परिचयी—बाबा सुथरादास, पाण्डुलिपि, प्राप्तिस्थान—ना० प्र० सभा, वाराणसी ।

मुक्तिमार्ग—श्री स्वामी रामरूप जी, श्रीशुकचरणदासीय प्रकाशक ट्रस्ट, जयपुर, सं० २०२९ वि० ।

मुगलकालीन भारत—डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, आगरा ।

रहस्यवाद और हिन्दी कविता—(सं०) श्री गुलाबराय और डा० शम्भूनाथ पाण्डेय—आगरा ।

रामचरितमानस—गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, सं० १९१९ वि० ।

रामभक्ति शाखा में रसिक सम्प्रदाय—डा० भगवती प्रसाद सिंह, अवध साहित्य मंदिर, बलरामपुर, सन् १९७५ ई० ।

लीला सागर—ध्यानेश्वर श्री जोगजीत जी, श्री शुक चरणदासीय साहित्य प्रकाशक ट्रस्ट, जयपुर, (सं० २०२५ वि०) ।

वैद्य भास्कर—श्री रामगोपाल, प्रकाशक—हीरालाल प्रेस, जयपुर ।

वैष्णव धर्म नो इतिहास—दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री, बंबई, १९३९ ई० ।

वैष्णव धर्म—परशुराम चतुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

शार्दूल सिंह शेखावत—कुँवर देवीसिंह मंडावा, शार्दूल एज्यूकेशन ट्रस्ट, झुंझुनूं (राजस्थान) १९७० ई० ।

शुक सम्प्रदाय प्रकाश—श्री रूपमाधुरीशरण, सरसकुंज, जुगलघाट, वृंदावन ।

शुक सम्प्रदाय सिद्धान्त चंद्रिका—श्री सरसमाधुरीशरण जी, सरसनिकुंज, पानदरीबा, जयपुर ।

श्यामचरणदास चरितावली—महंत गंगादास, वैकुंठलोक, चरणदास मार्ग, ३२१५, दिल्ली, सं० २०२५ वि० ।

श्री चरणावत वैष्णव सदाचार—श्री रूपमाधुरीशरण, सरसकुंज, युगलघाट, वृन्दावन ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरु ग्रंथ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर, १९३७ ई० ।
श्री सरस प्रताप—श्री जुगलमाधुरीशरण; प्रकाशिका—श्रीमती गौरकला पांड़ेय, गोबर्धन निवास, मथुरा, सं० २०१५ ।
श्री सरस सिद्धान्त—श्री सरसमाधुरीशरण, सरसनिकुंज, जयपुर, सं० २०३२ ।
सरसब धाई संग्रह—सं० अलबेली माधुरीशरणजी, सरसनिकुंज, जयपुर सं. २०३५ ।
संतकाव्य—पं० परशुराम चतुर्वेदी, किताबमहल, प्रयाग, १९५२ ई० ।
संत चरनदास—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, प्रयाग, १९६१ ई० ।
संत वाणी संग्रह—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ।
संतसाहित्य—श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', बाँकीपुर, १९४२ ई० ।
सरस चरितामृत—श्रीमतिसरण, प्रेमधाम प्रेस, वृन्दावन, सं० २०११ वि० ।
सहज प्रकाश—सुश्री सहजोबाई, प्रकाशक—महंत गंगादास, वैकुण्ठलोक, दिल्ली सं० २०१९ ।
सिक्खों का इतिहास—कनिंघमकृत, अनु० कमलाकर तिवारी, इतिहास प्रकाशन संस्थान, वाराणसी ।
सुयश प्रताप—श्री सरसमाधुरीशरण, जयपुर, सन् १९६४ ई० ।
सूफी मत, साधना और साहित्य—डा० रामपूजन तिवारी, काशी, सं० २०१३ ।
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (दो खंडों में) ना० प्र० सभा, वाराणसी, सं० २०२१ वि० ।
हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति—डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९६४ ई० ।
हिन्दी संत साहित्य—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६३ ई० ।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद, १९३८ ई० ।
हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-१)—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ब्रह्मनाल, वाणी वितान, वाराणसी ।
हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, इन्डियन प्रेस, प्रयाग; सं० १९८६ ।
हित हरिवंश गोस्वामी : सम्प्रदाय और साहित्य—ललिताचरण गोस्वामी, वृन्दावन ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत ग्रन्थसूची

उज्ज्वल नीलमणि—(श्रीरूपगोस्वामीकृत) निर्णय सागर प्रेस—बंबई ।
कठोपनिषद्—गीताप्रेस, गोरखपुर ।
केनोपनिषद्—गीताप्रेस, गोरखपुर ।
गीत गोविन्द (महाकवि जयदेव विरचित)—निर्णय सागर प्रेस, बंबई, १९०४ ई०
घेरण्ड संहिता—आड्यार, मद्रास ।
नारद भक्ति सूत्र—गीताप्रेस, गोरखपुर ।
पद्म पुराण (उत्तर खंड)—आनन्दाश्रम ग्रंथ प्रकाशन—पूना ।
प्रश्नोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर ।
ब्रह्मवैवर्त पुराण—आनन्दाश्रम ग्रंथमाला प्रकाशन—पूना ।
भक्तिचन्द्रिका—सरस्वती भवन ग्रंथमाला, संख्या—९, काशी, १९२४ ई० ।
भक्ति रसामृत सिन्धु (रूपगोस्वामी जी कृत) अच्युत ग्रंथमाला, काशी, सं० १९८८ वि० ।
मनुस्मृति—निर्णय सागर प्रेस, मुंबई ।
महाभारत—चित्रशाला प्रेस, पूना ।
मांडूक्योपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर ।
श्रीमद्भगवद्गीता—गीता प्रेस, गोरखपुर ।
श्रीमद्भागवत—गीताप्रेस, गोरखपुर ।
शिव संहिता— ,, ,, ।
स्कन्धपुराण (द्वितीयो भागः) ५, क्लाइव रो, कलकत्ता ।
हठयोग प्रदीपिका—स्वात्माराम योगी विरचित, बंबई, सं० २००९ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH BOOKS.

Caste and Class in India--G. S. Ghurye, Philosphical Library, New York, 1952.

Encyclopaedia of Rcligion and Ethics (Vol, 3) James Hestings, Edinburgh.

Essays and lectures on the Roligion of Hindus (Vol. I)-- 1862, H. H. Wilson and Reinhold Rost, Trudner and Compuny, Paternoster Row-London.

Gazetteir of ulwar (1880) P. W. Powelett.

History of medieval India-Dr. Ishwari Prasad, Indian Press Ltd. Allahabad, 1925.

India what can it teach us- Max Mullar. London. 1919.

Later Medieval India--Dr. A. B. Pande, Central Book Depot, Allahabad, 1963.

Medieval Mysticism of India-kshitimohan Sen, Luzac and Comp., Londen, 1935.

Our Oriental Heritage--Will Durant, New york, 1954.

Punjab Census Report (1891) E, D, Maclegan.

,, ,, ,,(1881) Denzil Charles Jelf Hebetson,

U. P. Census Report (1891) Mr. Baillie.

The Nirgun School of Hindi Poetry--Dr. P. D. Barthwal, Indian Book shop, Benares, 1936.

Tribes and Castes of N. W. Provinces and oudh (Vol. II) William Crooks.

103922

पुस्तकालय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Accession		
Classification		3-8-2000
[illegible]		3.8.2000
Tag etc		"
Filing		22-9-2000
E.A.R		26-9-2000
Any other		3.8.2000
Checked		3-8-2000

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

081,152
103922

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक का परिचय

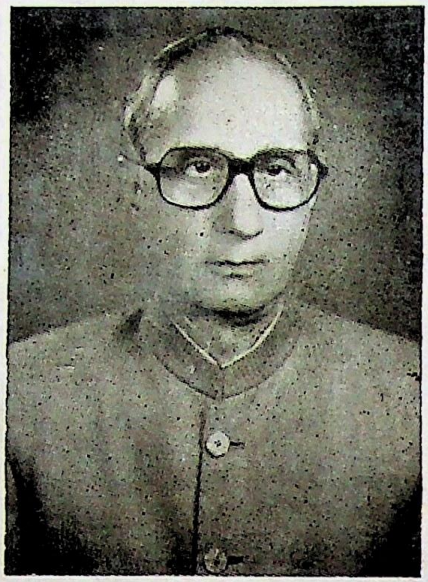

लेखक— श्यामसुन्दर शुक्ल

जन्मतिथि—६ जून, १९३२ ई०

शिक्षा— १. बी. ए. (आनर्स) एम. ए., पी-एच्. डी. (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

२. डी. लिट्.—मागलपुर विश्वविद्यालय

अध्यापन—

१. जून, सन् १९५८-६३ तक प्रकाश विद्याभवन एवं सरदार वल्लभ भाई पटेल कालेज—अहमदाबाद (गुजरात)

२. जुलाई, सन् १९६३ से हिन्दी विभाग—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कार्यरत।

शोध—निर्देशन में १५ शोधछात्र पी-एच्. डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं तथा इतने ही कार्यरत हैं।

प्रकाशन—

१. हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति (पी-एच. डी. का शोध प्रबन्ध) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९६४ में प्रकाशित। पृष्ठ सं० ५००, मूल्य—१२.०० मात्र।

२. चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य—पृ० ८५० मूल्य—२००-०० रु० मात्र

इसके अतिरिक्त ४ दर्जन शोधपरक लेख तथा कतिपय पाठ्य ग्रंथ।

प्रकाश्य—

१. जैगेसुरी बानी (नाथसिद्धों की बानियाँ)

२. सनतवाणी सुधा (सनतकवियों की वाणियाँ)

३. रासपन्चाध्यायी (चरणदास जी के शिष्य गोसाईं जुगतानन्द कृत दोहे-चौपाई में)

४. मध्यकालीन हिन्दी का साधनामूलक साहित्य (शोधपरक ग्रन्थ)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar